ऋग्वेद

मण्डल १

स्वाध्याय मण्डल
किल्ला पारडी
(जिला वलसाड)

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य

प्रथम भाग

[मण्डल १]

भाष्यकार

पद्मभूषण डा० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

स्वाध्याय मण्डल

पारडी

प्रकाशक
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर
स्वाध्याय मण्डल, पारडी
[जि० बलसाड]

This book has been published with financial assistance from the Ministry of Education and Culture, Government of India

If any volume in this set is found defective, it may be returned to the publishers by V. P. P. and the same will be replaced by the publishers, at their own cost including the postage.

1985

Rs. 460 for 10 Vols.

मुद्रक
ज्ञान आफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

प्रथम मण्डल

भूमिका

ऋग्वेद संसारमें सबसे प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। इसमें आर्योंकी उच्चतम संस्कृतिका पुराणतम विवरण है। इसकी प्राचीनताके बारेमें अनेक मत हैं। मैक्समूलरके अनुसार ऋग्वेदका काल १२०० ईसा पूर्व, हॉगके अनुसार २४०० ई. पू. और तिलकके अनुसार ४००० ईसा पूर्व है। ऋग्वेदके कालके बारेमें मतभेद भले ही हों, पर इसमें प्रतिपादित ज्ञानकी अद्वितीयताके विषयमें सभी सहमत हैं।

वेदोंकी महत्ता

प्राचीन भारतीय परम्पराके अनुसार ये वेद सर्वप्रथम ऋषियोंके हृदयमें उतरे थे। लोकके हितके लिए परमात्माने इन वेदोंका प्रकाश किया था। स्वयं वेद इस बातके साक्षी हैं कि वेद उसी परमात्माकी वाणी हैं।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥
(यजु. ३१।७)

" उसी सबके द्वारा बुलाये जानेवाले यजनीय परमात्मासे ऋचायें, साम उत्पन्न हुए, उसीसे छन्द प्रकट हुए और उसीसे यजु प्रकट हुए।" इस मंत्रमें ऋचायें ऋग्वेदके, साम सामवेदके, छन्द अथर्ववेदके और यजु यजुर्वेदके परिचायक हैं। अथर्ववेदमें ही एक मंत्र है, जिसमें सामको परमात्माके लोम और अथर्वको मुख बताया गया है—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वांगिरसो मुखम् ॥
स्कंभं तं ब्रूहि कतमस्विदेव सः। (अथर्व० १०।७।२०)

" जिस स्कंभ अर्थात् सर्वाधार परमात्मासे ऋचायें या ऋग्वेद प्रकट हुआ, जिससे यजुर्वेद प्रकट हुआ, साम जिसके लोमके समान हैं और अंगिरसका अथर्ववेद जिसके मुखके समान है, वही सर्वाधार परमेश्वर है।"

उपनिषद्में वेदोंको परमात्माके निःश्वास बताये गए हैं। जिस प्रकार मनुष्यके निःश्वास अनायास आते जाते रहते हैं, उसीप्रकार ये वेद भी परमात्मासे निकलते रहते हैं और उसीमें विलीन भी होते रहते हैं। सायण भी इस मतका अपने " ऋग्भाष्य " में प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं—

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ॥

" जिस परमात्माके वेद निःश्वासके समान हैं और जिसने

वेदोंसे सारे संसारका निर्माण किया, उस विद्याके सागर परमात्माको प्रणाम है। "

इसप्रकार वेदोंकी प्राचीनता शास्त्रोंमें सिद्ध की है।

वेदोंके अन्दर प्राचीन ऋषियोंके ज्ञानका अगाध भण्डार भरा पडा है। न वेदोंके द्वारा ऋषियोंने संसारके सभी ज्ञानका प्रकाश किया है। संसारमें कोई ज्ञान ऐसा नहीं है, जो वेदोंमें न हो। इस प्रकार सारे ज्ञानका आदिस्रोत परमेश्वर ही है। महर्षि दयानन्दने लिखा है कि— " सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है। " जिसप्रकार भगवान् व्यासने अपने महाकाव्य महाभारतके बारेमें कहा था कि " यदिहाऽस्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् " " जो इसमें है, वही अन्यत्र है और जो इसमें नहीं है, वह दूसरी जगह भी नहीं है। " वही वेदोंके बारेमें भी कहा जा सकता है।

वेदोंके बारेमें वैदिक परम्परामें बडा महत्त्व है। सबका आधार वेद माना गया है, मनु कहते हैं —

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। (मनुस्मृति)

' सम्पूर्ण वेद धर्मके मूल है। " अर्थात् सभी धर्म इसी वेदके आधार पर स्थित हैं। अब प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है? इसका उत्तर भी मनुस्मृति ही देती है।

धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।

" धारण करनेके कारण धर्म कहा जाता है, और यही धर्म प्रजाओंका धारण करता है। " जो ज्ञान प्रजाओंको धारण करता है, प्रजाओंकी हरतरहकी उन्नति करता है, उनका आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थात् हरतरहका अभ्युदय करता है, वही धर्म है। यह धर्म वेदोंका विषय है। आज भी भारतमें कोई भी धार्मिक विधि बिना वेदपाठके प्रारंभ नहीं होती। इतना महत्त्व आज भी वेदोंका है।

वेदोंका स्वरूप

भारतीय परम्पराके अनुसार कुछ ऐसी प्राचीन मान्यता है कि प्रथम एक ही वेद था, पर बादमें जाकर लोगोंके पठनकी सुविधाकी दृष्टिसे एकको चार भागोंमें बांट दिया गया। भागवतमें कहा है।

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
वेदो नारायणो नान्यः एकोऽग्निर्वर्ण एव च।
(भागवत० ९।१४।४८)

प्रथम एक ही वेद था। पर आगे चलकर उसके ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदके रूपमें चार ग्रंथ हो गए। यहां यह शंका हो सकती है कि एक वेद और चार वेद ये दोनों विरोधी बाते क्यों हैं? अथवा एक ही वेदका अध्ययन श्रेयस्कर है या चारोंहीका मिलकर अध्ययन करना ही श्रेयस्कर है? इस प्रश्न पर विचार करनेसे पूर्व हमें वेदोंके उद्देश्यके विषय पर विचार करना पडेगा तभी उपर्युक्त शंकाका निराकरण हो सकेगा। वेदोंके विषयमें और उनके ध्येयके बारेमें विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि वेद यद्यपि स्थूल रूपसे भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं, पर उनका अन्तिम उद्देश्य एक ही है। यजुर्वेदका विषय " कर्म " है। यजुर्वेदको कर्मवेद कहते हैं। इसप्रकार कर्म, सत्कर्म अथवा प्रशस्ततम कर्म यजुर्वेदका विषय है। " उपासना " सामवेदका विषय है। " या ऋक् तत् साम " के अनुसार ताल और स्वरके अनुसार बंठाये गए ऋग्वेदके मंत्र ही साम हैं, उनका उपयोग देवताओंकी उपासना करनेके काममें किया जाता है। सामवेदके १८७५ मंत्रोंमें केवल ७५ मंत्र ऋग्वेदमें नहीं मिलते, बाकी १८०० मंत्र ऋग्वेदमें यत्रतत्र मिलते हैं। ×ये सभी मंत्र उपासना परक हैं। सामके मंत्रोंसे सब देवताओंमें व्यापक आत्माकी उपासना करके शान्ति प्राप्त की जा सकती है। इसलिए इन मंत्रोंको " सामन् " कहते हैं, " साम " का अर्थ है आत्मिक शान्ति देनेवाले मंत्र। इसप्रकार यजुर्वेदका उद्देश्य मनुष्यको उत्तम कर्मोंकी शिक्षा देना है और सामवेदका उद्देश्य भगवदुपासना द्वारा मनुष्योंको आत्मिक शांति प्रदान करना है।

ऋग्वेद " सूक्तवेद " है। " सूक्त " का अर्थ " सु+उक्त " अर्थात् " सुभाषित " या " उत्तम वचन " है। उत्तम वचन जिन मंत्रोंमें होते हैं उन मंत्रोंके समूहको सूक्त कहा जाता है। उन्हींको " ऋक् " या " ऋचा " भी कहते हैं। इसप्रकार ऋग्वेदमें " उत्तम विचारोंको प्रेरित करनेवाले " मंत्र हैं, यजुर्वेदमें मनुष्यको " प्रशस्ततम कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले " मंत्र हैं और सामवेदमें " उपासना द्वारा आत्मिक शान्ति देनेवाले " मंत्र हैं। इनकी तालिका इसप्रकार बनाई जा सकती है।

१ ऋग्वेद– उत्तम विचारोंका संग्रह – सुविचार वेद।
२ यजुर्वेद– उत्तम कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला संग्रह – सत्कर्म वेद।
३ सामवेद– सदुपासनाका संग्रह– उपासना वेद।

× सामवेदके कौन कौनसे मंत्र ऋग्वेदमें कहां कहां पर मिलते हैं, यह जाननेके लिए देखिये, हमारे द्वारा प्रकाशित " सामवेदका सुबोध अनुवाद " मू० ८)

साधारणतया (१) सद्विचार, (२) सत्कर्म और (३) सदुपासना इन तीनोंको यदि वेदत्रयी कहा जाए तो तत्त्वदृष्ट्या दोषपूर्ण नहीं होगा।

"अ-थर्व" का अर्थ है "गति-रहित"। "थर्वति गतिकर्मा न थर्व इति अथर्वः" इसप्रकार इस शब्दकी व्युत्पत्ति है। इसप्रकार "थर्व" शब्द चंचलताका वाचक होनेके कारण "अथर्व" का अर्थ है– निश्चलता, समता, समत्व। गीतामें जिस भावको "स्थितप्रज्ञ" शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है, वही "अथर्ववेद" में "अ-थर्व" शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है। इसप्रकार योगसाधनके द्वारा प्राप्त होनेवाला चित्तवृत्तिका निरोध ही "अथर्व" है। इसप्रकार पूर्वोक्त त्रयीविद्याकी समाप्ति इस चौथी स्थितिमें आकर होती है—

ऋग्वेद
(विचारोंकी पवित्रता)
|
यजुर्वेद
(कर्मोंकी पवित्रता)
|
सामवेद
(उपासनासे शुद्धता)
|
अथर्ववेद
(समता या स्थित प्रज्ञत्व)

मनुष्यकी उन्नतिके लिए ये उत्तरोत्तर सीढियां हैं। प्रथम मनुष्य विचार करता है, तत्पश्चात् उन विचारोंको कार्यमें परिणित करता है, तब वह अपने कर्मोंका फल पाता है; उपनिषद्में कहा है—

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति,
यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति,
यत्कर्मणा करोति, तदभि संपद्यते ।

मनुष्य जिसका मनमें ध्यान करता है, उसीको वाणीसे बोलता है, जो कुछ वाणीसे बोलता है, उसीको कर्ममें लाता है और जो कुछ कर्म करता है, उसका फल वह पाता है।

इन चारों वेदोंके विषय परस्पर अत्यन्त निगडित हैं। सद्विचार और सत्कर्ममें किसी प्रकारका फरक नहीं हो सकता उसीप्रकार ऋग्वेद और यजुर्वेदमें भी किसी प्रकारका फरक मानना भूल है।

विचार, क्रिया, भक्ति और एकाग्रतामें जो परस्पर सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध चार वेदोंमें भी है। इसीलिए ये चार वेद परस्पर भिन्न न होकर "एक ही वेद" हैं।

अथर्ववेदका विषय "योग" है, सर्वसाधारणके वशकी बात नहीं हैं। इसलिए अथर्ववेद कुछ विशेष स्थितिके लोगोंके लिए ही है। बाकीके तीन विषयों या वेदोंको सर्व-साधारणके सामने प्रस्तुत किया गया; इसीलिए इन तीन विषयोंका नाम "त्रयी विद्या" पड गया। पर इस "त्रयी विद्या" के आधार पर जो यह सिद्ध करना चाहते हैं, कि पहले तीन ही वेद थे, अथर्ववेद तो पीछेसे वेदोंकी श्रेणीमें खडा कर दिया गया, यह उनके विचार बिल्कुल गलत हैं।

इसीप्रकार कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका मत है कि वेदोंमें केवल भौतिक ज्ञान है, आध्यात्मज्ञान नहीं है, अतः उसीके प्रतिक्रिया स्वरूप अध्यात्मज्ञान देनेवाली उपनिषदोंकी रचना हुई। पर यह उनका कथन उनकी वेदविषयक अज्ञानताका ही द्योतक है, ऋग्वेदका अस्यवामीय सूक्त (१।१६४); नासदीय सूक्त (१०।६४); हिरण्यगर्भ सूक्त, विष्णुसूक्त आदि सभी सूक्त अध्यात्मविद्याके स्रोत हैं। आज जो पाश्चात्य विद्वान् अनेकतामें एकता (Unity in Diversity) के सिद्धान्तका प्रचार करते हैं, उसको ऋग्वैदिक ऋषियोंने "एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति" कहकर बहुत पहले कह दिया था। इसप्रकार ऋग्वेदमें अनेक दार्शनिक तत्त्वोंके दर्शन होते हैं।

उस अखण्ड ज्ञानके भण्डार "ऋग्वेदका सुबोध भाष्य" पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। ध्यानपूर्वक देखनेके बावजूद भी इस ग्रंथमें संभवतः कुछ प्रूफसम्बन्धी तथा अन्य भी त्रुटियां रह गई हों, उन्हें हम अगले संस्करणमें सुधारनेका प्रयत्न करेंगे।

हम इस ग्रंथके लिए धर्मप्राण दानी स्वर्गीय श्री सेठ जुगलकिशोरजी बिरला के अत्यन्त कृतज्ञ हैं, जिन्होंने धन देकर हमें इस ग्रंथके प्रकाशनके कार्यमें पूरी सहायता दी।

उनके अतिरिक्त श्री सेठ गंगाप्रसादजी बिरलाके भी हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस ग्रंथके प्रकाशनके लिए कागज देकर सहायता दी।

स्वाध्याय मण्डल, पारडी (जि. बलसाड)
आश्विन शुक्ल प्रतिपदा, संवत् २०२४

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

प्रथम मण्डल

(१)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। देवता- अग्निः। छंदः-गायत्री।)

१ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥
२ अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

---

(१)

अर्थ— [१] (पुरोहितं, यज्ञस्य देवं, ऋत्विजं) स्वयं आगे बढकर लोगोंका हित करनेवाले, यज्ञके प्रकाशक, ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले, (होतारं, रत्नधातमं) देवोंको बुलानेवाले और रत्नोंको धारण करनेवाले (अग्निं ईळे) अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

१ पुरोहितं होतारं अग्निं ईळे— पुर अर्थात् नगरका हित करनेवाले, अग्र स्थानमें रहनेवाले, पीछे न रहनेवाले, विद्वानोंको बुलानेवाले अग्रणी नेताकी मैं प्रशंसा करता हूँ। ऐसा नेता सर्वत्र प्रशंसित होता है।

२ यज्ञस्य देवः— समाजके संगठनका संचालक, शुभ कर्म करनेवाला।

३ अग्निः— अग्रणी, नेता अग्निके समान तेजस्वी।

[२] (अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः ईड्यः) यह अग्रणी पहलेके ऋषियोंसे प्रशंसित किया गया था, (नूतनैः उत) नयोंसे भी वह प्रशंसित हुआ है (सः) वह अग्नि (इह देवान् आवक्षति) इस यज्ञमें देवोंको ले आवे ॥ २ ॥

१ इह देवान् आ वक्षति। (सः) अग्निः पूर्वेभिः उत नूतनैः ऋषिभिः ईड्यः— इस संगतिकरणके कार्यमें विद्वानोंको बुलाकर लानेवाला नेता अग्रणी प्राचीन और नवीन ऋषियों द्वारा प्रशंसित होता रहा है।

भावार्थ— सबका हित करनेवाले, यज्ञके प्रकाशक, सदा अनुकूल यज्ञ कर्म करनेवाले, विद्वानोंके सहायक, धनवान् [अग्नि] अग्रणीकी मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ १ ॥

यह अग्नि प्राचीन कालसे लेकर आजतक इसी प्रकार प्रशंसित होता चला आ रहा है। वही सब देवोंको बुलाता है। शरीरके प्रत्येक इंद्रियमें एक एक देव है, ऐसे ३३ देव इस शरीरमें हैं। वे देव शरीरमें तबतक रहते हैं कि जबतक शरीरमें अग्नि (उष्णताके रूपसे) रहती है। इस अग्नि या गर्मीके इस शरीरमेंसे निकल जानेपर इंद्रिय स्थानीय देव भी निकल जाते हैं। यह मृत्युकी ही अवस्था है ॥ २ ॥

३ अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त् पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे । य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमम् ॥ ३ ॥
४ अग्ने॒ यं य॒ज्ञम॑ध्व॒रं वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑ । स इद्दे॒वेषु॑ गच्छति ॥ ४ ॥
५ अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः । दे॒वो दे॒वेभि॒रा ग॑मत् ॥ ५ ॥
६ यद॒ङ्ग दा॒शुषे॒ त्वमग्ने॑ भ॒द्रं क॑रि॒ष्यसि॑ । तवेत् तत् स॒त्यम॑ङ्गिरः ॥ ६ ॥
७ उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे॒ दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यम् । नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि ॥ ७ ॥

अर्थ— [३] मनुष्य (अग्निना दिवेदिवे) अग्निसे प्रतिदिन (पोषं) पोषण (यशसं वीरवत्तमं रयिं एव अश्नुते) यश देनेवाले और अत्यन्त श्रेष्ठ वीरताको देनेवाले धनको अवश्य प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

१ अग्निना पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिं अश्नुते— ऐसे नेताके कारण समाज पोषणकारक यश और वीरतासे युक्त ऐश्वर्य प्राप्त करता है ।

[४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (यं अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूः असि) जिस हिंसारहित यज्ञको सब ओरसे सफल बनाता है, (सः इत् देवेषु गच्छति) वह ही देवोंके समीप जाता है ॥ ४ ॥

१ परि-भूः— शत्रुका पराभव करना, विजय प्राप्त करना, शत्रुको चारों ओरसे घेरना ।

२ अग्निः अ-ध्वरं यज्ञं परि-भूः असि- (अस्ति)— अग्रणी शत्रुका पराभव करके अहिंसामय शुभ कर्मको सफल बनाता है ।

३ अ-ध्वरः— अहिंसा ' ध्वर इति हिंसायां, तत्प्रतिषेधो अध्वरः-यज्ञ इत्यर्थः ' ' यज्ञ ' का नाम ' अ-ध्वर ' है । ' अ-हिंसामय ' यह उस अध्वरका अर्थ है ।

[५] (होता) देवोंको बुलानेवाला यज्ञ निष्पादक (कविक्रतुः) ज्ञानियोंकी कर्मशक्तिका प्रेरक (सत्यः चित्रः श्रवस्तमः) सत्य परायण विविध रूपोंवाला और अतिशय कीर्ति युक्त यह तेजस्वी अग्नि (देवेभिः आगमत्) देवोंके साथ इस यज्ञमें आया है ॥ ५ ॥

१ कविक्रतुः— (कवि) ज्ञानी (क्रतुः) कर्म अर्थात् ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला ।

[६] हे (अङ्ग अग्ने) प्रिय अग्ने ! (यत् त्वं दाशुषे भद्रं करिष्यसि) जो तू दानशीलका कल्याण करता है । (अङ्गिरः) अंगोंमें रमनेवाले अग्ने ! (तव तत् सत्यं इत्) वह तेरा कर्म निस्सन्देह एक सत्य कर्म है ॥ ६ ॥

१ अग्निः दाशुषे भद्रं करिष्यति— यह अग्नि दाताका कल्याण करता है ।

२ अङ्गिरः— अंगों या अवयवोंमें रममाण होनेवाला, रहनेवाला । शरीरके प्रत्येक अंगमें अग्नि रहता है, इसलिये शरीरमें गर्मी रहती है ।

[७] हे (अग्ने) अग्ने ! (वयं दिवे दिवे दोषावस्तः) हम प्रतिदिन दिन और रात (धिया नमः भरन्तः) बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुये (त्वा उप एमसि) तेरे समीप आते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— अग्नि ही पुष्टिकारक बलयुक्त और यशस्वी अन्न प्रदान करता है । अग्निसे पोषण होता है, यश बढता है और वीरतासे धन प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

जिस अहिंसक यज्ञमें इस अग्निकी पूजा होती है, वही देवोंके अनुकूल यज्ञ होता है ॥ ४ ॥

विद्वान् यज्ञशील सत्यस्वरूप तथा अन्नादिसे युक्त अग्नि देवोंके साथ यज्ञमें आता है ॥ ५ ॥

यह अग्नि हमेशा दान देनेवालेका ही कल्याण करता है, कंजूसका नहीं । यह उसका एक अटल नियम है ॥ ६ ॥

अपनी बुद्धियों व स्तुतियोंसे हमेशा उस प्रकाशक एवं तेजस्वी प्रभुके गुण गाने चाहिए । दिनके तथा रात्रीके समय अर्थात् सदा उसको प्रणाम करना चाहिये, उसका आदर करना चाहिये उसका महत्त्व जानना चाहिये और अपने ऊपर उसका अधिकार समझना चाहिये ॥ ७ ॥

८ राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥
९ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

(२)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। देवताः- १-३ वायुः ४-६ इन्द्र-वायू; ७-९ मित्रा-वरुणौ। छन्दः- गायत्री।)

१० वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥
११ वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः । सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥
१२ वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे । उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥

अर्थ— [८] (राजन्तं, अध्वराणां गोपां) दीप्यमान, हिंसारहित यज्ञोंके रक्षक (ऋतस्य दीदिविं) अटल सत्यके प्रकाशक और (स्वे दमे वर्धमानं) अपने घरमें बढनेवाले अग्निके पास हम नमस्कार करते हुये आते हैं ॥ ८ ॥

१ अध्वराणां राजा— हिंसा रहित, कुटिलता रहित शुभ कर्मोंका स्वामी।

[९] हे (अग्ने) अग्ने ! (सः त्वं नः सूनवे पिता इव सु उप अयनः भव) वह प्रसिद्ध तू हमारे लिये, पुत्रके लिये पिताके समान सुखसे प्राप्त होने योग्य हो, (नः स्वस्तये आ सचस्व) हमारे कल्याणके लिये तू हमारा सहायक हो ॥ ९ ॥

१ सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व— हे अग्ने ! जिस प्रकार पिता पुत्रके कल्याणकारी काममें सहायक होता है, उसी प्रकार तू हमारे कल्याणमें सहायक हो।

(२)

[१०] हे (दर्शत वायो) दर्शनीय वायो ! (आ याहि) आ। (इमे सोमाः अरं-कृताः) ये सोमरस तुम्हारे लिये तैय्यार करके रखे हुए हैं। (तेषां पाहि) उनका पान कर और (हवं श्रुधि) हमारी प्रार्थना श्रवण कर ॥ १ ॥

वायु सोमका रक्षक है, क्योंकि वह सोमके साथ रहता है, अथवा सोमरसका हरण करता है। (निरु. ११।५)

[११] हे (वायो) वायो ! (सुत-सोमः) सोमरस तैयार करके रखनेवाले (अहः-विदः) दिनका उत्तम ज्ञान रखनेवाले (जरितारः) स्तोत्रपाठक (उक्थेभिः) स्तोत्रोंसे (त्वां अच्छा जरन्ते) तेरी उत्तम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१ अहः-विदः— दिनका महत्त्व जाननेवाले। समयका ज्ञान रखनेवाले। समयका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

[१२] हे (वायो) वायो ! (तव) तेरी (प्रपृञ्चती) संगठन करनेवाली और (उरूची) विशाल (धेना) वाणी (दाशुषे) दाताके पास (सोमपीतये जिगाति) सोमरसपानकी इच्छासे जाती है। [सोमरस निकालनेवालेके अनुकूल बोलती है] ॥ ३ ॥

भावार्थ— यज्ञोंकी रक्षा करनेवाले, तेजस्वी तथा अपनी स्वयंकी शक्तिसे बढनेवाले अग्निका गुणगान करना चाहिए ॥ ८ ॥

जिस प्रकार पिता पुत्रका सहायक होता है, उसी प्रकार यह अग्नि विद्वानोंका हर काममें सहायक होता है ॥ ९ ॥

हे दर्शनीय वायु ! ये सोमरस तेरे लिए तैयार करके रखे हुए हैं अतः उनका पान कर और हमारी प्रार्थना सुन ॥ १ ॥

उत्तम दिनोंका ज्ञान रखनेवाले स्तोता सोम तैयार करके तेरी स्तुति करते हैं अतः तू आ और इनको पी ॥ २ ॥

संगठन करनेवाली उदार वाणी दाताका वर्णन करती है। दाताके दातृत्वभावसे ही संगठन होता है और संकुचित भाव दूर होकर विशालतासे युक्त उदारताका भाव आता है।

१३ इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥
१४ वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू । तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥
१५ वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् । मक्ष्वि१त्था धिया नरा ॥ ६ ॥
१६ मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥
१७ ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥
१८ कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [१३] (इन्द्रवायू) हे इन्द्र और वायु ! (इमे सुताः) ये सोमके रस यहां तैयार करके रखे हुए हैं, (प्रयोभिः आ गतम्) प्रयत्नके साथ यहां आओ. (हि इन्दवः वां उशन्ति) क्योंकि ये सोमरस तुम्हें चाहते हैं ॥४॥

[१४] हे (वायो) वायु ! तू (इन्द्रः च) और इन्द्र दोनों (वाजिनीवसू) अन्न और धनसे समृद्ध हो और (सुतानां चेतथः) सोमरसकी विशेषताओंको जानते हो, (तौ द्रवत् उप आ यातं) वे तुम दोनों शीघ्र यहां आओ ॥५॥

[१५] (वायो) हे वायु ! तू (इन्द्रः च) और इन्द्र (नरा) आगे ले जानेवाले नेता हो, तुम दोनों (इत्था धिया) इस प्रकार बुद्धिपूर्वक (मक्षु सुन्वतः निष्कृतं) शीघ्र रस निकालनेवालेके द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसके (उप आ यातम्) पास आओ ॥ ६ ॥

[१६] (पूतदक्षं मित्रं) पवित्र बलसे युक्त मित्रको, (रिशादसं वरुणं च हुवे) और शत्रुका नाश करनेवाले वरुणको मैं बुलाता हूँ (घृताचीं धियं साधन्ता) ये स्नेहमयी बुद्धि तथा कर्मको सम्पन्न करते हैं ॥ ७ ॥

[१७] (मित्रावरुणौ ऋतावृधौ) ये मित्र और वरुण सत्यसे बढनेवाले (ऋतस्पृशा) सत्यसे सदा युक्त हैं। (ऋतेन बृहन्तं क्रतुं आशाथे) वे सत्यसे ही बडे यज्ञको सम्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

[१८] (कवी, तुविजाता, उरुक्षया) ज्ञानी, बलशाली और सर्वत्र उपस्थित रहनेवाले (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण (अपसं दक्षं नः दधाते) कर्म करनेका उत्साह देनेवाला बल हमें देते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनोंके लिए ये सोमरस तैयार किए गए हैं और ये तुम्हारी कामना भी करते हैं, अतः तुम यहां आओ ॥ ४ ॥

हे इन्द्र वायु ! तुम दोनों बल और धनसे समृद्ध हो और सोमरसकी विशेषताओंको जानते हो, अतः तुम शीघ्र यहां आओ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनों लोगोंको उत्तम मार्ग पर ले जाते हो । अतः श्रद्धासे तैय्यार किए गए इस आनन्द-दायक रसके पास आओ ॥ ६ ॥

मित्रवत् सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेवाले पवित्र कार्यमें अपनी शक्ति लगानेवाले मित्र और शत्रुको पूर्णरूपसे नष्ट करनेवाले वरुण दोनों स्नेहसे परिपूर्ण कर्म करते हैं ॥ ७ ॥

ये मित्र और वरुण सदा सत्यको ही स्पर्श करनेवाले और सत्यपालक हैं। सत्य व्यवहारसे ही सदा वृद्धिको प्राप्त करनेवाले हैं, कभी असत्यकी ओर नहीं जाते इसलिये बडे बडे कार्योंको सत्यसे ही परिपूर्ण करते हैं ॥ ८ ॥

ये दोनों मित्रावरुण बुद्धिमान् और दूरदर्शी हैं, सामर्थ्यवान् हैं, विस्तृत घरमें रहते हैं, कर्म करनेकी शक्ति धारण करते हैं ॥ ९ ॥

(३)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। देवताः- १-३ अश्विनौ; ४-६ इन्द्रः। ७-९ विश्वे देवाः, १०-१२ सरस्वती। छन्दः- गायत्री।)

१९ अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥
२० अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥
२१ दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥
२२ इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ४ ॥
२३ इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥

---

(३)

अर्थ— [१९] हे (पुरु-भुज) विशाल बाहुवाले ! हे (शुभस्पती) शुभ कार्योंके पालनकर्ता ! और हे (द्रवत् पाणी) अपने हाथोंसे अतिशीघ्र कार्य करनेवाले या कार्यमें शीघ्र जुटजानेवाले (अश्विनौ) अश्विदेवो ! इन हमारे लिये (यज्वरीः इषः) यज्ञके योग्य अर्थात् पवित्र अन्नोंसे (चनस्यतं) सन्तुष्ट हो जाओ। इस अन्नका सेवन करके आनन्दित हो जाओ ॥ १ ॥

[२०] हे (पुरुदंससा) बहुत कार्य करनेवाले। (धिष्ण्या) धैर्ययुक्त बुद्धिमान् तथा (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (शवीरया धिया) बहुत तेज बुद्धिसे अर्थात् ध्यानपूर्वक (गिरः वनतं) हमारे भाषणोंको स्वीकार करो अर्थात् हमारा भाषण प्रेमसे सुनो ॥ २ ॥

[२१] हे (दस्रा) शत्रुके विनाशकर्ता और (नासत्या) असत्यसे दूर रहनेवाले (रुद्र-वर्तनी !) हे शत्रुओंको रुलानेवाले वीरोंके मार्गसे जानेवाले तुम दोनों अश्विदेवो ! (युवाकवः वृक्त-बर्हिषः) ये मिश्रित किये हुए और जिनसे तिनके निकाल लिये गए हैं ऐसे (सुताः) अभी निचोडे हुए सोमरसको पीनेके लिये (आयातं) इधर पधारो ॥ ३ ॥

[२२] हे (चित्रभानो इन्द्र) हे विशेष तेजस्वी इन्द्र ! (आ याहि) यहां आ। (इमे सुताः त्वायवः) ये रस तेरे लिये हैं, ये रस (अण्वीभिः तनाः पूतासः) अंगुलियोंसे निचोडे गए हैं और छानकर पवित्र किये गए हैं ॥ ४ ॥

[२३] हे इन्द्र ! (धिया इषितः) बुद्धिसे प्रेरित तथा (विप्रजूतः) विप्रोंके लिए प्रिय (सुतावतः वाघतः ब्रह्माणि) सोमरस निकालनेवाले स्तोताओंके स्तोत्रोंके गानके पास (आ याहि) आ ॥ ५ ॥

१ धिया इषितः— बुद्धिसे प्राप्त करनेकी इच्छा जिसके विषयमें की जाती है। जिसको प्राप्त करनेकी इच्छा की जाती है। सज्जन जिसको प्राप्त करना चाहते हैं।

२ विप्र-जूतः— ज्ञानी जिसकी प्राप्तिकी इच्छा करते हैं।

भावार्थ— अश्विदेव विशाल भुजावाले, केवल शुभ कार्य ही करनेवाले और आरंभित कार्य अतिशीघ्र समाप्त करनेवाले हैं। वे हमारे यज्ञमें आकर हमारा दिया पवित्र अन्न सेवन करें और हर्षित प्रसन्न हो जायें ॥ १ ॥

अश्विदेव बहुत कार्य करते हैं, बडे बुद्धिमान् हैं, नेता हैं, वे अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे हमारे कथनको सुनें ॥ २ ॥

अश्विदेव शत्रुओंका वध करनेमें प्रवीण, वीरभद्रके मार्गसे जानेवाले और कभी असत्यका आश्रय लेनेवाले नहीं हैं। उन्हें अपने पास बुलाना और निचोडा सोमरस दूध, जल आदिके साथ मिश्रित करके उनको पीनेके लिये देना चाहिये ॥ ३ ॥

हे तेजस्वी इन्द्र ! तेरे लिए ये रस अंगुलियोंसे निचोड कर और छान कर पवित्र किए गए हैं, उनका आनन्द ले ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! स्वयं अपनी श्रद्धासे प्रेरित होकर ज्ञानी ब्राह्मणों द्वारा उत्साहित होकर सोमरस निकालनेवाले स्तोतागण तेरी स्तुति कर रहे हैं, तू उनके पास आ ॥ ५ ॥

२४ इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥
२५ ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ७ ॥
२६ विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि ॥ ८ ॥
२७ विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ॥ ९ ॥
२८ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥
२९ चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

अर्थ— [२४] हे (हरिवः इन्द्रः) घोडोंको पास रखनेवाले इन्द्र ! (तूतुजानः) त्वरा करता हुआ तू (ब्रह्माणि उप आ याहि) हमारे स्तोत्रोंके पास आ । (नः सुते चनः दधिष्व) हमारे दिये सोमरसमें आनन्द मना ॥ ६ ॥

[२५] हे (विश्वे देवासः) सब देवो ! तुम (ओमासः चर्षणिधृतः) सबके रक्षक और सब मनुष्यों धारण करनेवाले तथा (दाश्वांसः) सबको धनादि देनेवाला हो, अतः तुम (दाशुषः सुतं आ गत) दान करनेवाले इस यजमानके सोमयज्ञकी तरफ आओ ॥ ७ ॥

[२६] हे (विश्वे देवासः) विश्वे देवो ! तुम (अप्-तुरः) कर्म करनेमें कुशल (तूर्णयः) तथा शीघ्रतासे कर्म करनेवाले हो, (उस्रा स्वसराणि इव आ गन्त) अतः जिस प्रकार गायें गौशालामें जाती हैं, उसी प्रकार तुम यहां आओ ॥ ८ ॥

[२७] हे (विश्वे देवासः) विश्वे देवो ! (अस्रिधः) तुम अहिंसनीय हो, तुम्हारा वध कोई नहीं कर सकता, (एहिमायासः) अनुपम कुशलतासे युक्त हो, (अ-द्रुहः) किसीसे द्रोह नहीं करते (वन्हयः) तुम सबके लिए सुखके साधन होकर लाते हो, ऐसे (मेधं जुषन्त) तुम हमारे द्वारा दिए गए अन्नका सेवन करो ॥ ९ ॥

[२८] (सरस्वती नः पावका) सरस्वती हमें पवित्र करनेवाली है (वाजेभिः वाजिनीवती) अन्नोंको देनेके कारण वह अन्नवाली भी है । (धियावसुः यज्ञं वष्टु) बुद्धिसे होनेवाले अनेक कर्मोंसे नाना प्रकारका धन देनेवाली यह विद्या हमारे यज्ञको सफल करे ॥ १० ॥

[२९] (सूनृतानां चोदयित्री) सत्य कर्मोंको प्रेरणा देनेवाली (सुमतीनां चेतन्ती) उत्तम बुद्धियोंको बढानेवाली (सरस्वती) विद्याकी देवी (यज्ञं दधे) यज्ञको पूर्णरूपसे धारण करती है ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू शीघ्रतासे हमारी स्तुतियोंको सुन और हमारे द्वारा दिए सोमरसका आनन्द उठा ॥ ६ ॥

ये विश्वे देव सबका रक्षण करनेवाले, मानव संघोंका धारण पोषण करनेवाले तथा दान देनेवाले हैं । ये देव यज्ञकर्ताके सोमयागके पास जाते हैं ॥ ७ ॥

विश्वे देवो ! तुम सब कार्यमें कुशल हो, इसलिए सब कार्य शीघ्रतापूर्वक उत्तम रीतिसे करते हो ! अतः तुम इस स्तोताके घर आओ ॥ ८ ॥

हे विश्वे देवो ! तुम अहिंसनीय, अनुपम कुशलतासे युक्त, किसीसे द्रोह न करनेवाले और सबके लिए सुखके साधन देनेवाले हो, अतः तुम हमारे द्वारा प्रसन्नतापूर्वक दिए गए अन्नका सेवन करो ॥ ९ ॥

यह विद्या शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक सब तरहकी पवित्रता करनेवाली है, विद्या अन्न देती है, अनेक तरहके बल भी इससे प्राप्त होते हैं, बुद्धिपूर्वक किए जानेवाले कर्मोंको यह सफल करती है ॥ १० ॥

[illegible] होनेवाले कर्मोंको प्रेरणा देनेवाली, उत्तम मतियोंको चेतना देनेवाली यह सरस्वती उत्तम कर्मोंको धारण करता है, [illegible] लोगोंको उत्तम कर्मोंमें नियुक्त करती है ॥ ११ ॥

३० महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

(४)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

३१ सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

३२ उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥

३३ अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

३४ परेहि विग्रमस्तृत-मिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

३५ उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥

अर्थ— [३०] (सरस्वती) यह विद्या (केतुना) ज्ञानसे (महः अर्णः प्र चेतयति) संसाररूपी महासागरका ज्ञान कराती है और (विश्वाः धियः वि राजति) सब प्रकारकी बुद्धियोंको प्रकाशित करती है ॥ १२ ॥

(४)

[३१] (सुदुघां इव गोदुहे) उत्तम दूध देनेवाली गौको जैसे दोहनके समय बुलाते हैं, उसी तरह (सु-रूप-कृत्नुं) उत्तम रूप प्रदान करनेवाले इन्द्रको हम (ऊतये द्यवि द्यवि जुहूमसि) सहायतार्थ प्रतिदिन बुलाते हैं ॥ १ ॥

[३२] (नः सवना उप आगहि) हमारे सवनों-यज्ञोंकी ओर आ । (सोमपाः सोमस्य पिब) तू सोमरस पीनेवाला है, अतः तू सोमको पी । (रेवतः मदः गो-दाः) धनवान्‌का आनंद गौओंको देनेवाला होता है ॥ २ ॥

[३३] (अथा ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम) अब हम तेरी अन्दरकी सुमतियोंको जानें । (नः मा अति ख्यः) हमें दूर मत कर, (आ गहि) अपितु हमारे समीप आ ॥ ३ ॥

[३४] (यः) जो इन्द्र (ते सखिभ्यः वरं आ) तेरे मित्रोंको श्रेष्ठ धन देता है उस (विप्रं अ-स्तृतं इन्द्रं परा इहि) बुद्धिमान् अपराजित इन्द्रके पास जा और (विपश्चितं पृच्छ) विशेष ज्ञानी इन्द्रसे प्रार्थना कर ॥ ४ ॥

[३५] (उत नः निदः ब्रुवन्तु) चाहे हमारे निंदक भले ही यह कहें कि (अन्यतः चित् निः आरत) तुम यहांसे निकल जाओ, (इन्द्रे इत् दुवः दधानाः) क्योंकि तुम इन्द्रमें ही भक्ति रखते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ - ज्ञानका प्रसार करनेवाली यह विद्याकी देवी कर्मोंके महासागरको ज्ञानीके सामने खुला कर देती है अर्थात् इस विद्याके कारण मनुष्य कर्मके नाना मार्गोंका ज्ञाता हो जाता है और इस प्रकार अपनी बुद्धिको ज्ञानयुक्त करता है ॥१२॥

जिस प्रकार दूध दुहनेके समय लोग गायोंको बुलाते हैं, उसी प्रकार उत्तम रूप प्रदान करनेवाले इन्द्रको अपनी सहायताके लिए सब बुलाते हैं ॥ १ ॥

धनवान् जब प्रसन्न होते हैं, तब वे गौका दान करते हैं, अतः तू भी हे इन्द्र ! यहां हमारे यज्ञोंमें सोमरस पीकर प्रसन्न हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जो तेरी उत्तम बुद्धियां हैं, उन्हें हम ही जानें, दूसरे नहीं । अतः तू हमें अपने पाससे दूर मत कर, अपितु तू हमारे पास आ ॥ ३ ॥

जो इन्द्र अपने भक्तों और मित्रोंको धन देता है, उसी अपराजित इन्द्रकी धन-प्राप्तिके लिए प्रार्थना करनी चाहिए ॥ ४ ॥

देवोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक जन भले ही ईश्वरकी भक्ति करनेवाले आस्तिक जनोंको अपने समाजसे निकाल दें, पर तो भी आस्तिक जनोंको चाहिए कि वे सदा इन्द्रके ही शरणमें रहें ॥ ५ ॥

३६ उत नः सुभगाँ अरि—र्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
३७ एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन् मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
३८ अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
३९ तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
४० यो रायो३वनिर्महान्त्—सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

(५)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

४१ आ त्वेता नि षीदते—न्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

अर्थ— [३६] क्योंकि हम (इन्द्रस्य शर्मणि स्याम इत्) तुझ इन्द्रकी शरणमें हैं, इसलिए हे (दस्म) दर्शनीय इन्द्र ! (अरिः कृष्टयः) शत्रु और साधारण जन सभी (उत नः सुभगान् वोचेयुः) हमें सौभाग्यसंपन्न कहें ॥ ६ ॥

[३७] (यज्ञश्रियं नृमादनं) यज्ञके शोभारूप, नेताओंको उत्साहित करनेवाले, (मन्दयत्सखं पतयत्) मित्रोंको आनन्दित करनेवाले (ईं आशुं) इस सोमरसको (आशवे आ भर) शीघ्रतासे कार्य करनेवाले इन्द्रके लिये भर ॥ ७ ॥

[३८] हे (शतक्रतो) सैंकडों उत्तम कार्य करनेवाले इन्द्र ! (अस्य पीत्वा) इस सोमरसको पीकर (वृत्राणां घनः अभवः) तू वृत्रोंको मारनेवाला हुआ है । (वाजेषु वाजिनं प्र अवः) तू संग्रामोंमें बलवान् वीरकी रक्षा कर ॥८॥

[३९] हे (शतक्रतो) सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! हम (तं त्वा वाजिनं) उस तुझे बलवाला जानकर (धनानां सातये) धनोंकी प्राप्तिके लिए (वाजयामः) यह सोमरूपी उत्तम अन्न प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥

[४०] (यः रायः महान् अवनिः) जो धनका महान् रक्षक है, (सुपारः) दुःखोंसे पार करानेवाला और (सुन्वतः सखा) यज्ञ कर्ताओंका मित्र है (तस्मै इन्द्राय गायत) उस इन्द्रके स्तोत्र गाओ ॥ १० ॥

(५)

[४१] हे (स्तोमवाहसः सखायः) यज्ञ चलानेवाले मित्रो (आ तु इति) आओ (निषीदत) बैठो और (इन्द्रं अभि प्र गायत) प्रभुकी स्तुति गाओ ॥ १ ॥

भावार्थ— यदि मनुष्य इन्द्रकी शरणमें ही रहेंगे, तो वे ऐसे सौभाग्यशाली होंगे, कि शत्रु भी उनकी प्रशंसा करेंगे ॥ ६ ॥

सोमरस यज्ञको उत्तम बनानेवाला यज्ञकर्ताओंको उत्साहित करनेवाला तथा मित्रोंको आनन्दित करनेवाला है । इसे पीकर कर्ता उत्साहित होकर शीघ्रतासे कार्य करता है ॥ ७ ॥

सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र भी इस सोमरसको पीकर वृत्रों अर्थात् उत्तम काममें विघ्न उपस्थित करनेवालोंका विनाश करता है । और संग्रामोंमें बलवान् वीरकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥

धन चाहनेवाले सभी लोगोंको चाहिए, कि वे सैंकडों तरहके उत्तम कर्म करनेवाले इस इन्द्रको सोमरसरूपी अन्न प्रदान करें ॥ ९ ॥

यह इन्द्र धनका रक्षक है, दुःखोंसे पार करानेवाला है, यज्ञकर्ताओंका मित्र है, ऐसे इन्द्रकी अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए ॥ १० ॥

प्रभुकी सामुदायिक उपासना करो । सामुदायिक उपासनासे संघशक्ति बढती है, इसलिये सार्वजनिक स्थानमें इकट्ठे होकर, एक स्थान पर बैठकर उपासना करनी चाहिये । यज्ञस्थानमें सब इकट्ठे होकर प्रातः, माध्यंदिन और सायं सवनोंमें वैदिक आर्य बैठते थे, इसलिये उनमें ऐक्य था ॥ १ ॥

४२ पुरूतमं पुरूणा॒मीशा॑नं॒ वार्या॑णाम् । इन्द्रं॒ सोमे॒ सचा॑ सु॒ते ॥ २ ॥
४३ स घा॑ नो॒ योग॒ आ भु॑व॒त् स रा॒ये स पुरं॑ध्याम् । गम॒द्वाजे॑भि॒रा स नः॑ ॥ ३ ॥
४४ यस्य॑ सं॒स्थे न वृ॒ण्वते॒ हरी॑ स॒मत्सु॒ शत्र॑वः । तस्मा॒ इन्द्रा॑य गायत ॥ ४ ॥
४५ सु॒त॒पाव्ने॑ सु॒ता इ॒मे शुच॑यो यन्ति वी॒तये॑ । सोमा॑सो॒ दध्या॑शिरः ॥ ५ ॥
४६ त्वं सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ स॒द्यो वृ॒द्धो अ॑जायथाः । इन्द्र॒ ज्यैष्ठ्या॑य सुक्रतो ॥ ६ ॥
४७ आ त्वा॑ विशन्त्वा॒शवः॒ सोमा॑स इन्द्र गिर्वणः । शं ते॑ सन्तु॒ प्रचे॑तसे ॥ ७ ॥

अर्थ— [४२] (सत्रा सुते सोमे) साथ बैठकर सोमरस निकालनेके समय (पुरूतमं) बहुत शत्रुओंका नाश करनेवाले (पुरूणां वार्याणां ईशानं इन्द्रं) बहुत धनोंके स्वामी इन्द्रके गुणोंका गान करो ॥ २ ॥

पुरू-तमं— बहुतसे शत्रुओंको भी (तामयति) दबाता है ।

पुरूणां वार्याणां ईशानं अभि प्रगायत— बहुत धनोंके स्वामी इन्द्रके गुणोंका गान करो ।

[४३] (सः घ नः योगे आ भुवत्) वह निश्चयसे हमारे लिये अप्राप्त धन देनेवाला हो, (सः राये) वह धन देनेवाला हो (स पुरंध्यां) वह अनेक प्रकारकी बुद्धियां देवे । (सः वाजेभिः नः आ गमत्) वह अन्नोंके साथ हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

[४४] (समत्सु यस्य संस्थे हरी शत्रवः न वृण्वते) युद्धोंमें जिसके रथमें जोडे हुए घोडोंको शत्रु पकड नहीं पाते (तस्मै इन्द्राय गायत) उस प्रभुके गुणोंका गान करो ॥ ४ ॥

[४५] (इमे शुचयः दध्याशिरः सुताः सोमासः) ये शुद्ध दही मिलाये गए और निचोडे गए सोमरस (वीतये सुतपाव्ने यन्ति) पीनेके लिये रसपान करनेवाले इन्द्रके पास जाते हैं ॥ ५ ॥

[४६] (सुक्रतो इन्द्र) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं सुतस्य पीतये ज्यैष्ठयाय) तू सोमरसके पीनेके लिये तथा श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिये (सद्यः वृद्धः अजायथाः) तत्काल बडा हो गया है ॥ ६ ॥

१ ज्यैष्ठयाय सद्यः वृद्धः अजायथाः— श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिये तत्काल बडा हो गया ।

[४७] हे (गिर्वणः इन्द्र) प्रशंसनीय इन्द्र ! (आशवः सोमासः त्वा आविशन्तु) उत्साहवर्धक ये सोमरस तुझमें प्रविष्ट हों । ये सोम (ते प्रचेतसे शं सन्तु) तेरे चित्तके लिये सुख देनेवाले हों ॥ ७ ॥

भावार्थ— बहुतसे शत्रुओंका नाश करनेवाले वीर इन्द्रकी स्तुति करो । उसके गुण अपनेमें धारण करो, बढाओ और उसके समान वीर बनो ॥ २ ॥

वह हमें अप्राप्त धन देनेवाला है । वह हमें धन तथा बुद्धि देनेवाला हो । वह अन्नोंके साथ हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

युद्धोंमें जिसके रथमें जुडे हुए घोडोंको शत्रु पकड नहीं पाते । ऐसे वेगवान् और शक्तिशाली जिसके घोडे हैं उस इन्द्रके गुणोंका गान करो ॥ ४ ॥

ये सोमरस कूटे और छाने जानेके बाद दहीके साथ मिलाये जाने पर सोमरसके पान करनेवाले इन्द्रके द्वारा पीने योग्य होते हैं ॥ ५ ॥

उत्तम कर्म करनेवाला यह इन्द्र श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिए और उत्तम कर्म करनेके लिए ही महान् हुआ । इसी प्रकार महान् होकर उत्तम और श्रेष्ठ कर्म ही करने चाहिए ॥ ६ ॥

ये सोमरस अपने पीनेवालेको उत्साह प्रदान करते हैं और उसके चित्तको शान्ति देकर उसे सुख देते हैं । वास्तविक सुख चित्तकी शान्ति और उत्साहमें है ॥ ७ ॥

४८ त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
४९ अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥
५० मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥

(६)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवताः- १-३ इन्द्रः, ४, ६, ८, ९ मरुतः, ५, ७ मरुत इन्द्रश्च, १० इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

५१ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

अर्थ— [४८] हे (शतक्रतो) सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाले वीर ! (त्वां स्तोमाः अवीवृधन्) तुझे स्तोत्र बढावें, तेरी महिमा बढावें, (उक्था त्वां) यह काव्य तेरी महिमा बढावें । (नः गिरः त्वां वर्धन्तु) हमारी वाणियां तेरी महिमा बढावें ॥ ८ ॥

[४९] (अक्षित-ऊतिः इन्द्रः) संरक्षण करनेके अक्षय सामर्थ्यसे युक्त इन्द्र (सहस्रिणं इमं वाजं सनेत्) हजारों तरहके इस अन्नका सेवन करे (यस्मिन् विश्वानि पौंस्या) जिसमें सब बल हैं ॥ ९ ॥

१ अक्षित-ऊतिः इन्द्रः इमं सहस्रिणं वाजं सनेत— अक्षय रक्षण सामर्थ्यवाला वीर इस सहस्रों प्रकार-के बल बढानेवाले अन्नका सेवन करे । अन्नका ऐसा सेवन करना चाहिये जिससे बल बढे ।

२ यस्मिन् विश्वानि पौंस्या— जिसमें अनेक बल बढानेकी शक्ति है । (वह अन्न सेवन किया जाय ।)

[५०] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुत्य इन्द्र ! (मर्ताः नः तनूनां मा अभि द्रुहन्) शत्रुके लोग हमारे शरीरोंसे द्रोह न करें । (ईशानः वधं यवय) सबका स्वामी तू शत्रुके शस्त्रको हमसे दूर रख ॥ १० ॥

१ मर्ताः नः तनूनां मा अभिद्रुहन्— शत्रुके मनुष्य हमारे शरीरोंसे द्रोह न करें, हमारी हानि न करें । हमारे शरीर क्षत विक्षत न करें ।

२ ईशानः वधं यवय— सामर्थ्यवान् तू वीर हमसे शत्रुके शस्त्रको दूर रख । हमें सुरक्षित रख ।

(६)

[५१] (अरुषं) तेजस्वी (चरन्तं) गतिमान् (ब्रध्नं) महान् आत्माको (तस्थुषः परि युञ्जन्ति) स्थिर रहने-वाले उपासक अपने मनसे बांधते हैं । उस समय (रोचनाः दिवि रोचन्ते) चमकनेवाले नक्षत्र प्रकाशते हैं ॥ १ ॥

ब्रध्न— सूर्य, महान् आत्मा ।

भावार्थ— इस उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रकी महिमाको हमारे स्तोत्र बढावें । हर उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी सब प्रशंसा करते हैं और उससे उसकी महिमा बढती है ॥ ८ ॥

संरक्षण करनेमें अत्यन्त सामर्थ्यशाली इन्द्र ऐसे अन्नका सेवन करता है, जो अनेक तरहके बल देता है । अतः मनु-ष्योंको भी बलदायक अन्नका सेवन ही करना चाहिए ॥ ९ ॥

हम इतने शक्तिशाली हों कि शत्रुके शस्त्र भी हमारे शरीरोंको कोई हानि न पहुंचा सकें । हम ऐसे उत्तम कर्म करें कि सबका स्वामी इन्द्र हम पर कभी क्रोधित न हो और अपने शस्त्रोंका हम पर प्रयोग न करे ॥ १० ॥

जिस समय नक्षत्र आकाशमें चमकते हैं उस समय तेजस्वी गतिमान् महान् आत्माको स्वयं स्थिर रहनेवाले साधक उपासक अपनी आत्माके साथ जोड देते हैं । परमात्माकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

५२ युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥
५३ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥
५४ आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥
५५ वीळु चिदारुजत्नुभि–र्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥
५६ देवयन्तो यथा मति–मच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [५२] (अस्य रथे) इस वीर इन्द्रके रथमें (काम्या) सुंदर (विपक्षसा) दोनों बाजूमें रहनेवाले (शोणा) लाल (धृष्णु) शत्रुका धर्षण करनेवाले (नृवाहसा) इन्द्र तथा सारथी रूप नरोंको ले जानेवाले (हरी) दो घोडे (युञ्जन्ति) जोडे जाते हैं ॥ २ ॥

[५३] हे (मर्याः) मनुष्यो ! (अ-केतवे केतुं कृण्वन्) अज्ञानीके लिये ज्ञान देनेवाला, (अ-पेशसे पेशः) रूप रहितको रूप देनेवाला सूर्य (उषद्भिः अजायथाः) उषाओंके साथ उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥

१ अकेतवे केतुं कृण्वन्— अज्ञानीको ज्ञान देवे ।

२ अपेशसे पेशः कृण्वन्— अरूपको सुरूप बनावें ।

[५४] (आत् अह) सचमुच ही (यज्ञियं नाम) पूजनीय नाम तथा यश (दधानाः) धारण करनेवाले वीर मरुत् (स्व-धां अनु) अन्नकी इच्छासे (पुनः) बार बार (गर्भत्वं एरिरे) गर्भको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

[५५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वीळु चित्) अत्यन्त सामर्थ्यवान् शत्रुओंका भी (आ-रुजत्नुभिः) विनाश करनेहारे और (वह्निभिः) धन ढोनेवाले इन वीर मरुतोंकी सहायतासे शत्रुओंके द्वारा (गुहा चित्) गुफामें या गुप्त जगह रखी हुई (उस्रियाः) गौओंको तू (अनु अविन्दः) पा सका, वापिस लेनेमें समर्थ हो गया ॥ ५ ॥

[५६] (देवयन्तः) देवत्व पानेकी लालसावाले उपासकोंकी (गिरः) वाणियाँ, (महां) बडे तथा (विदत्-वसुं) धनकी योग्यता जाननेवाले (श्रुतं) विख्यात वीरोंकी (यथा) जैसे (मतिं) बुद्धिपूर्वक स्तुति करनी चाहिए, (अच्छ अनूषत) उसी प्रकार सराहना करती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्रके रथमें सुन्दर, शत्रुको हरानेवाले तथा मनुष्योंको उत्तम रीतिसे ले जानेवाले घोडे जोडे जाते हैं, इन्हीं घोडोंके कारण वह वीरताके काम करता है । उसी प्रकार यह शरीरस्थ इन्द्र भी अपने इन्द्रियरूपी घोडोंको उत्तम बनाकर स्वयं भी सामर्थ्यशाली बने ॥ २ ॥

उषाके पश्चात् सूर्य उदय होकर ऊपर आता है; वह प्रकाश देता है, पदार्थोंको सुंदर रूप देता है । वैसे ही मनुष्य भी दूसरोंको ज्ञान देवें और अरूपको सुरूप करें ॥ ३ ॥

यथेष्ट अन्न मिले इस लालसासे पूजनीय नामोंसे युक्त यशस्वी मरुत् फिर बार बार गर्भवास स्वीकारनेके लिए तैयार हुए ॥ ४ ॥

ये वीर दुश्मनोंके बडे बडे वीरोंको नष्ट करके अपने अधीन करनेमें बडे ही सफल होते हैं । इन्हीं वीरोंकी मदद पाकर इन्द्र शत्रुओंके द्वारा बडी सतर्कतापूर्वक किसी गुप्त स्थानमें रखी हुई गौएँ या धनसंपदाका पता लगानेमें सफलता पाता है । यदि ये वीर सहायता न पहुँचाते, तो किसी अज्ञात, दुर्गम तथा बीहड भूभागमें छिपी हुई गोसंपदाको पाना उसके लिये दूभर हो जाता, इसमें क्या संशय ? ॥ ५ ॥

जो उपासक देवत्व पाना चाहते हैं, वे वीरोंके समुदायकी सराहना करते हैं; क्योंकि यह संघ जानता है कि, जनताके उन्नतम निवासके लिए आवश्यक धनकी योग्यता कैसी होती है । अतएव वह इस तरहके धनको पाकर सबको उचित प्रमाणमें प्रदान करता है ॥ ५ ॥

५७ इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
५८ अनवद्यैरभिद्युभि-र्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
५९ अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥
६० इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

(७)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

६१ इन्द्रमिद्गाथिनो बृह-दिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

अर्थ— [५७ । हे वीरो ! तुम सदैव (अ-बिभ्युषा इन्द्रेण) न डरनेवाले इन्द्रसे (सं-जग्मानः) मिलकर आक्रमण करनेहारे (सं दृक्षसे हि) सचमुच दीख पडते हो । तुम दोनों (समान-वर्चसा) सदृश तेज या उत्साहसे युक्त हो और (मन्दू) हमेशा प्रसन्न एवं उल्हसित बने रहते हो ॥ ७ ॥

[५८] (मखः) यह यज्ञ (अन्-अवद्यैः) निर्दोष, (अभि-द्युभिः) तेजस्वी तथा (काम्यैः) वाञ्छनीय ऐसे (गणैः) मरुत्समुदायोंसे युक्त (इन्द्रस्य सहस्-वत्) इन्द्रके शत्रुओंको परास्त करनेमें क्षमता रखनेवाले बलकी (अर्चति) पूजा करता है ॥ ८ ॥

[५९] हे (परि-ज्मन्) सभी जगह गमन करनेवाले मरुत् गण ! (अतः) यहाँसे (वा) अथवा (दिवः) द्युलोकसे या (रोचनात् अधि) किसी दूसरे प्रकाशमान अंतरिक्षवर्ती स्थानमेंसे (आ गहि) यहांपर आओ, क्योंकि (अस्मिन्) इस यज्ञमें (गिरः) हमारी वाणियाँ तुम्हारी ही (समृञ्जते) इच्छा कर रही हैं ॥ ९ ॥

[६०] (इतः पार्थिवात् वा) इस पृथ्वीलोकसे (महः रजसः) अथवा इस बडे अंतरिक्षलोकसे अथवा (दिवः वा) द्युलोकसे (इंद्रं सातिं अधि ईमहे) इन्द्रके पाससे हम धनका दान चाहते हैं ॥ १० ॥

(७)

[६१] (गाथिनः इन्द्रं इत् बृहत् अनूषत) गायक इन्द्रका ही बडा गान करते हैं । (अर्किणः अर्केभिः) अर्चक लोग मंत्रोंसे उसकी अर्चना करते हैं । लोग (वाणीः) अपनी वाणियोंसे (इन्द्रं अनूषत) इन्द्रकी ही उपासना करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे वीरो ! तुम निडर इन्द्रके सहवासमें सदैव रहते हो । इन्द्रको छोडकर तुम कभी क्षण भर भी नहीं रहते हो । तुममें एवं इन्द्रमें समान कोटिका तेज एवं प्रभाव विद्यमान है । तुम्हारा उत्साह कभी घटता नहीं है ॥ ७ ॥

यज्ञकी सहायतासे दोषरहित, तेजस्वी तथा सबके प्रिय वीरोंके संघोंमें रहकर, शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्रके महान् प्रभावी सामर्थ्यकी ही महिमा गायी जाती है ॥ ८ ॥

चूँकि मरुत्संघोंमें पर्याप्त मात्रामें शूरता तथा वीरता विद्यमान् है, अतः वे उसके प्रभावसे समूचे विश्वको व्याप्त कर लेते हैं । वीरोंको चाहिए कि वे इन गुणोंको स्वयं धारण करें । ऐसे वीरोंका सत्कार करनेके लिए सभी कवियोंकी वाणियाँ उत्सुक रहा करती हैं ॥ ९ ॥

हम पृथिवीपरसे अन्तरिक्ष वा द्युलोकसे इन्द्रके पास धन मांगते हैं । किसी स्थानसे वह हमें धन लाकर देवे ॥ १० ॥

गायक लोग गानोंसे, मंत्रोंसे और अपनी वाणियोंसे इन्द्रकी महिमाका ही गान करते हैं ॥ १ ॥

६२ इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥
६३ इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयत् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥
६४ इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥
६५ इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥
६६ स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥

अर्थ— [६२] (इन्द्रः इत् वचोयुजा हर्योः सचा) इन्द्र निःसंशय शब्दके इशारेसे जुड जानेवाले घोडोंका साथी है (संमिश्लः वज्री हिरण्ययः इन्द्रः) संमिश्रण करनेवाला, वज्रधारी, सोनेके वस्त्राभूषण धारण करनेवाला इन्द्र है ॥ २ ॥

१ वचोयुजा हर्योः सचा— शब्दके इशारेसे रथके साथ जोडे जानेवाले घोडोंका वह मित्र है । घोडे ऐसे शिक्षित रहने चाहिये ।

२ संमिश्लः वज्री हिरण्ययः— वह सम्यक् रीतिसे मिलनेवाला वज्रधारी और सोनेके आभूषणोंसे वह युक्त है ।

[६३] (इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत्) इन्द्रने विशेष प्रकाशके लिये द्युलोकमें सूर्यका स्थापन किया । उसीने (गोभिः अद्रिं वि ऐरयत्) किरणोंसे मेघको प्रेरित किया है ॥ ३ ॥

[६४] हे (उग्र इन्द्रः) वीर इन्द्र ! (सहस्रप्रधनेषु वाजेषु) सहस्रों लाभ देनेवाले युद्धोंमें (उग्राभिः ऊतिभिः) वीरता युक्त संरक्षणोंसे (नः अव) हमारी रक्षा कर ॥ ४ ॥

[६५] (वयं महाधने इन्द्रं हवामहे) हम बडे युद्धमें इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं और (अर्भे इन्द्रं) छोटी लडाईमें भी इन्द्रको ही बुलाते हैं (वज्रिणं युजं वृत्रेषु) इस वज्रधारी मित्रको हम शत्रुओंके साथ करनेके युद्धमें बुलाते हैं ॥ ५ ॥

१ वयं महाधने इन्द्रं हवामहे— हम बडे युद्धोंमें इन्द्र वीरको सहाय्यार्थ बुलाते हैं ।

२ वयं अर्भे इन्द्रं हवामहे— हम छोटे झगडोंमें भी इन्द्रवीरको सहाय्यार्थ ही बुलाते हैं ।

[६६] हे (सत्रा-दावन्) सतत दान देनेवाले वीर इन्द्र (अ-प्रतिष्कुतः सः) सदा अपराजित ऐसा वह तू (अस्मभ्यं नः) हमारे लिये (अमुं चरुं वृषन् अपा वृधि) इस मेघको वृष्टि करके दूर कर ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्रके घोडे इतने शिक्षित हैं कि केवल कहने मात्रसे ही रथमें जुड जाते हैं । ऐसे शिक्षित घोडे होने चाहिए । इस प्रकार इन्द्र सोनेके अलंकारोंको पहन कर इन घोडोंके रथ पर बैठता है ॥ २ ॥

ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशी परमेश्वरने सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया । वह सूर्य सर्वत्र प्रकाश फैलाता है अपनी किरणोंसे मेघोंको बना कर पानी बरसाता है ॥ ३ ॥

युद्धमें जय कमानेवाले वीरोंको हजारों प्रकारके धन मिलते हैं ये धन पराजित शत्रुसे लूट कर मिलनेवाले धन हैं । 'प्रधन, धन' ये नाम इसीलिये युद्धके हैं । युद्धसे लूट करके धन प्राप्त होते हैं । लूट करना विजेताका अधिकार ही है ॥ ४ ॥

हम बडे छोटे और अनेक शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें इस वज्रधारी इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥५॥

अ-प्रतिरुद्धगतिवाला, प्रतीकार रहित, अपराजित वह इन्द्र हम सबके लिये इस मेघपटलको वृष्टि करके दूर करे । अर्थात् इतनी वर्षा हो कि सब पानी बरसा कर बादल अदृश्य हो जाएं ॥ ६ ॥

६७ तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
६८ वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥
६९ य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥
७० इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

(८)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

७१ एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥
७२ नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥

अर्थ— [६७] (तुञ्जे तुञ्जे) प्रत्येक दानके समय (वज्रिणः इन्द्रस्य स्तोमाः) वज्रधारी इन्द्रके जो अधिक उत्तम स्तोत्र गाये जाते हैं उनमें (अस्य सुष्टुतिं न विन्धे) इसकी उत्तम स्तुति की गई है ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता ॥ ७ ॥

[६८] जैसे (वंसगः वृषा यूथा इव) बलवान् सांड गौओंके झुंडमें जाता है वैसे ही यह (अप्रतिष्कुतः ईशानः ओजसा कृष्टीः इयर्ति) अप्रतिहत शक्तिमान् स्वामी इन्द्र सामर्थ्यसे मनुष्योंमें जाता है ॥ ८ ॥

१ अ-प्रतिष्कुतः (अ-प्रति-ष्कुतः)— अपराजित, जिसका प्रतिकार कोई कर नहीं सकता ऐसा वीर ।

[६९] (चर्षणीनां वसूनां पंचक्षितीनां एकः इन्द्रः इरज्यति) सर्व कृषकों, सर्वधनों तथा पांच ही जनोंका एक इन्द्र ही राजा है ॥ ९ ॥

[७०] (विश्वतः परि वः जनेभ्यः इन्द्रं हवामहे) सब ओरसे सब लोगोंके हितार्थ हम इन्द्रको बुलाते हैं । (अस्माकं केवलः अस्तु) वह हमारा ही केवल सहायक होकर रहे ॥ १० ॥

(८)

[७१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सानसिं) सेवनीय (स-जित्वानं) विजय करनेवाले (सदा-सहं) सदा शत्रुका पराजय करनेवाले (वर्षिष्ठं) श्रेष्ठ (रयिं) धनको (ऊतये आभर) हमारी रक्षाके लिए भर ॥ १ ॥

[७२] (येन) जिस ऐश्वर्यको प्राप्त करके (मुष्टिहत्यया) मुष्टि युद्धसे (वृत्रा नि निरुणधाम है) हम शत्रुओंको रोक दें । (त्वोतासः) तेरे द्वारा सुरक्षित होकर हम (अर्वता नि) अश्वसे भी शत्रुको रोक रखें ॥ २ ॥

भावार्थ— जो स्तुति की जा रही है वह इसके महान् कार्यके लिये योग्य है, ऐसा मुझे नहीं लगता क्योंकि इन्द्रके पराक्रम इससे भी कई गुने अधिक प्रशंसनीय हैं ॥ ७ ॥

जैसे बलवान् सांड गौओंमें जाता है, वैसे ही अपराजित स्वामी इन्द्र सामर्थ्यसे मानवोंमें घूमता है ॥ ८ ॥

सब किसानों, सब धनों और पांचों तरहके मनुष्योंका वह इन्द्र स्वामी है । वह सबका हित करता है, इसीलिए उसे सब अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं, तो भी वह इन्द्र हमारे पास ही आवे शत्रुओंके पास न जावे ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! सेवनीय, विजयी, शत्रुका पराभव करनेवाले श्रेष्ठ धनको हमारे विजयके लिये हमें दे दो । हमें ऐसा धन चाहिये कि जो विजय करनेवाला, सेवनके योग्य और शत्रुका पराभव करनेकी श्रेष्ठ शक्ति देनेवाला हो ॥ १ ॥

धन प्राप्त करनेके बाद हम मुष्टि युद्धसे शत्रुको रोक सकेंगे । तथा घोडोंसे भी शत्रुको रोक सकेंगे । हम ऐश्वर्य मदमें उन्मत्त न होकर वीर बनकर रहेंगे ॥ २ ॥

७३ इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥
७४ वयं शूरेभिरस्तृभि-रिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥
७५ महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥
७६ समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥
७७ यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥

अर्थ— [७३] हे (इन्द्र) इन्द्र (त्वा ऊतासः वयं) तेरे द्वारा सुरक्षित होकर हम (वज्रं धना आददीमहि) वज्र और शस्त्र हाथमें लें और (युधि स्पृधः संजयेम) युद्धमें स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको हम जीतें ॥ ३ ॥

[७४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं त्वया युजा) हम तेरे तथा (अस्तृभिः शूरेभिः) शस्त्र फेंकनेमें कुशल शूरोंके साथ रहकर (पृतन्यतः सासह्याम) सेनासे हमला करनेवाले शत्रुओंको पराभूत करें ॥ ४ ॥

अस्तृ— अस्त्र फेंकनेवाले वीर।

पृतन्यतः वयं सासह्याम— सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुओंको हम पराभूत करें।

[७५] (इन्द्रः महान् परः च नु) इन्द्र बडा और श्रेष्ठ है। (वज्रिणे महित्वं अस्तु) वज्रधारी शूर इन्द्रको महत्त्व प्राप्त हो। (द्यौः न) द्युलोकके समान (प्रथिना शवः) विस्तृत बल प्राप्त हो ॥ ५ ॥

१ वज्रिणे महत्त्वं अस्तु— वज्रधारी वीरको महत्त्व प्राप्त हो।

२ वज्रिणे प्रथिना शवः अस्तु— वज्रधारी वीरको विस्तृत यश और बल प्राप्त हो।

३ इन्द्र महान् परः च— इन्द्र बडा और श्रेष्ठ वीर है।

[७६] (ये नरः समोहे आशत) जो नेता युद्धोंमें लगे रहते हैं। तथा जो (तोकस्य वा सनितौ) पुत्रकी सुव्यवस्थामें लगे हुए हैं तथा जो (धियायवः वा विप्रासः) बुद्धिमान् ज्ञानी हैं वे सब आदरणीय हैं ॥ ६ ॥

१ ये नरः समोहे आशत— जो नेता युद्धमें लगे हुए हैं।

२ ये नरः तोकस्य सनितौ आशत— जो नेता पुत्रपौत्रोंकी सुव्यवस्थामें लगे रहते हैं।

३ ये धियायवः विप्रासः— जो बुद्धिमान् ज्ञानी हैं। ये सब सम्मानके योग्य हैं।

[७७] (यः सोमपातमः कुक्षिः) जो सोम अतिपीनेवाला पेट (समुद्रः इव पिन्वते) समुद्रके समान फैलता है (काकुदः उर्वीः आपः न) और जैसे ऊंचे स्थानसे बडे जल प्रवाह बहते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम अपने हाथोंमें वज्र आदि भयंकर शस्त्र ग्रहण करें साथ ही तेरी सहायता भी प्राप्त करें और इस प्रकार हम शत्रुओंको नष्ट करें ॥ ३ ॥

हम इन्द्रके तथा शस्त्र चलानेवाले कुशल वीरोंके साथ सेना लेकर हम पर चढाई करनेवाले शत्रुओंको हरावें ॥ ४ ॥

जो शस्त्रोंको धारण करता है, वही यश और बल प्राप्त करता है और वही वीर ऐश्वर्यशाली होकर बडा और श्रेष्ठ होता है ॥ ५ ॥

जो नेता सेनापति आदि बाहर शत्रुओंसे युद्ध करते हुए देशके संरक्षणमें रत रहते हैं, तथा जो मंत्री आदि नेता राष्ट्रके अन्दर प्रजाकी उत्तम व्यवस्था करनेमें लगे रहते हैं तथा जो विद्वान् आदि नेता राष्ट्रमें ज्ञान प्रसारके कार्यमें लगे रहते हैं, वे सभी आदरणीय हैं ॥ ६ ॥

जैसे ऊंचे पहाडसे जलके प्रवाह बडे वेगसे नीचेकी ओर बहते हैं, उसी तरह सोमरसके प्रवाह इन्द्रकी ओर बहते हैं और इन्द्रको शक्तिशाली कर उसका यश फैलाते हैं ॥ ७ ॥

७८ एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥
७९ एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥
८० एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥

(९)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

८१ इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
८२ एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥

अर्थ— [७८] जिस प्रकार (पक्वा शाखा न) पके हुए फलोंवाली डालियोंसे युक्त वृक्ष मनुष्योंको सुख देते हैं, (एव) उसी प्रकार (अस्य) इस इन्द्रके (गोमती मही विरप्शी सूनृता) गाय देनेवाले महान् और सच्चे शुभाशीर्वाद (दाशुषे) दानशीलको सुख देते हैं ॥ ८ ॥

[७९] हे (इन्द्र) प्रभो ! (ते एवा हि विभूतयः) तेरी ऐसी विभूतियां या ऐश्वर्य हैं और (मावते ऊतयः) मुझ जैसेके लिये संरक्षण हैं, ये सब (दाशुषे सद्यः चित् सन्ति) दाताके लिये तत्काल फलदायी होती हैं ॥ ९ ॥

१ दाशुषे ऊतयः सद्यः सन्ति— दाताके लिए सुरक्षायें तत्काल प्राप्त हों ।

[८०] (अस्य एवा) इसकी (स्तोम उक्थं च) स्तुतियां और प्रशंसाएं (काम्या शंस्या) बहुत मधुर और प्रशंसनीय हैं । ये सब (सोमपीतये इन्द्राय) सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये हैं ॥ १० ॥

(९)

[८१] हे इन्द्र ! (आ इहि) तू आ, तू (विश्वेभिः सोमपर्वभिः) सब सोमपेयोंसे और (अन्धसः मत्सि) अन्नसे आनंदित होता है । (ओजसा महान् अभिष्टिः) तू अपने सामर्थ्यसे हम सबको महान् प्रिय हो गया है ॥ १ ॥

[८२] (मंदिने इन्द्राय) आनंदित इन्द्रके लिये (सुते) सोमरस निकालने पर (एनं ईं आसृजत) इस हर्ष देनेवाले पेयको अर्पण करो (विश्वानि चक्रये चक्रिं) सब कार्योंके कर्ताको यह कर्तृत्व बतानेवाला पेय अर्पण करो ॥२॥

१ विश्वानि चक्रये चक्रिं आसृजत— सब कार्य करनेवाले वीरके लिये कर्तृत्व और उत्साह बढानेवाला यह अन्न दे दो ।

भावार्थ— पके हुए फलोंसे युक्त वृक्ष जिस तरह लोगोंको सुख देते हैं, उसी प्रकार इन्द्रके कभी व्यर्थ न होनेवाले शुभाशीर्वाद दानशील मनुष्योंको सुख और गौ आदि ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्र अपने सब ऐश्वर्योंसे उदार दाताकी सहायता करता है, उसी प्रकार अन्योंकी भी सहायता करता है । इसलिए सभी उदार और दानी बनें ॥ ९ ॥

इन्द्रका चरित्र बहुत उत्तम और प्रशंसनीय है, इसलिए सब इसको चाहते हैं और सब इसे अपने यज्ञमें बुलाते हैं ॥ १० ॥

जिस प्रकार इन्द्र सोम पीकर उत्साहित और आनन्दित होता है और अपने सामर्थ्यके कारण सबका प्रिय है, उसी प्रकार उत्साहसे कार्य करनेवाले सामर्थ्यशाली मनुष्य सबके प्रिय होते हैं ॥ १ ॥

सबकी रक्षा करनेवाले इस इन्द्रको उत्तम अन्न देना चाहिए । जो वीर देशकी रक्षा करते हैं उन्हें उत्तम अन्न दिया जाना चाहिए ताकि वे उत्तम वीर और बलशाली होकर देशके संरक्षण कार्यमें समर्थ हों ॥ २ ॥

८३ मत्स्वा॑ सुशिप्र म॒न्दिभि॑ः स्तोमे॑भिर्विश्वचर्षणे । सचै॒षु सव॑ने॒ष्वा ॥ ३ ॥

८४ असृ॑ग्रमिन्द्र ते॒ गिर॒ः प्रति॒ त्वामुद॑हासत । अजो॑षा वृ॒ष॒भं पति॑म् ॥ ४ ॥

८५ सं चो॑दय चि॒त्रम॒र्वाग् राध॑ इन्द्र॒ वरे॑ण्यम् । अस॒दित् ते॑ वि॒भु प्र॒भु ॥ ५ ॥

८६ अ॒स्मान्त्सु तत्र॑ चोदये॒न्द्र॑ रा॒ये रभ॑स्वतः । तुवि॑द्युम्न॒ यश॑स्वतः ॥ ६ ॥

८७ सं गोम॑दिन्द्र॒ वाज॑वद॒स्मे पृ॒थु श्रवो॑ बृ॒हत् । वि॒श्वायु॑र्धे॒ह्यक्षि॑तम् ॥ ७ ॥

८८ अ॒स्मे धे॑हि॒ श्रवो॑ बृ॒हद् द्यु॒म्नं स॑हस्र॒सात॑मम् । इन्द्र॒ ता र॒थिनी॒रिष॑ः ॥ ८ ॥

अर्थ— [८३] हे (सु-शिप्र) उत्तम सिरस्त्राण धारण करनेवाले वीर ! हे (विश्व-चर्षणे) सर्वद्रष्टा प्रभो ! (मन्दिभिः स्तोमेभिः मत्स्व) आनन्ददायक स्तोत्रोंसे आनंदित हो । (एषु सवनेषु आ सच) इन यज्ञोंमें आ कर रह ॥ ३ ॥

[८४] हे इन्द्र ! (ते गिरः असृग्रम्) तेरी स्तुतियां रची गयीं, वे स्तुतियां (वृषभं पतिं त्वां प्रति उदहासत) बलवान् और सबके स्वामी तुझे प्राप्त हुई हैं और तूने उन्हें (अजोषाः) स्वीकार भी किया है ॥ ४ ॥

[८५] हे इन्द्र ! (चित्रं वरेण्यं राधः) विलक्षण श्रेष्ठ धन (अर्वाक् संचोदय) हमारे पास भेज ! (विभु प्रभु ते असत् इत्) विपुल प्रभावशाली धन निःसंदेह तेरे पास ही हैं ॥ ५ ॥

[८६] हे इन्द्र ! हे (तुविद्युम्न) विशेष तेजस्वी वीर ! (रभस्वतः यशस्वतः) प्रयत्नशील और यशस्वी (अस्मान्) हमें (तत्र राये सुचोदय) उस धनके प्रति प्रेरित कर ॥ ६ ॥

[८७] हे इन्द्र ! (गोमत् वाजवत्) गौओं और अन्नोंसे युक्त (बृहत् पृथुश्रवः) बडा विशाल यश तथा (अ-क्षितं विश्वायुः) अक्षत पूर्णायु (अस्मे सं धेहि) हमें दे ॥ ७ ॥

[८८] हे इन्द्र ! (सहस्र-सातमं) सहस्रों दान जिससे होते हैं वैसा (द्युम्नं बृहद् श्रवः) तेजस्वी बडा वैभव (अस्मे धेहि) हमें दे (ताः रथिनीः इषः) वे रथसे ढोये जानेवाले अन्न हमें दे ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे सुन्दर सिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! हर्ष बढानेवाले इन स्तोत्रोंसे आनंदित हो और हे सब मानवोंका हित करनेवाले इन्द्र ! तू हमारे यज्ञमें आ । जो मनुष्योंके हितकारी हैं उन्हें हमेशा अपने कार्योंमें बुलाना चाहिए ॥ ३ ॥

यह इन्द्र बहुत बलवान् है, इसीलिए सबका यह स्वामी है । इसकी सब मनुष्य प्रेमसे स्तुति करते हैं और यह भी प्रेमसे की गई स्तुतियोंको स्वीकार करता है । जो बलवान् और स्वामी होते हैं उसकी सब स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! विलक्षण श्रेष्ठ धन हमें दे क्योंकि तेरे पास ही विपुल और प्रभावशाली धन रहता है । सदा श्रेष्ठ धन ही प्राप्त करना चाहिये ॥ ५ ॥

धन प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करने चाहिये । जो महान् प्रयत्न करता है वह यशस्वी होता है । हमेशा प्रयत्न करने चाहिए । प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं होते ॥ ६ ॥

गौओंसे युक्त, अन्नोंसे युक्त बडा यश हमें मिले और क्षयरहित पूर्ण आयु हमें प्राप्त हो । उत्तम गौका दूध पीने और बलदायक अन्न खानेसे आयु दीर्घ होती है ॥ ७ ॥

तेजस्वी और अपार धन प्राप्त होने पर उसका दान मनुष्योंको करना चाहिए । वह धन किसी अकेलेके भोगके लिए नहीं होता, अतः उसे सहस्रों मनुष्योंके पालन पोषण और संवर्धनमें लगाना चाहिए ॥ ८ ॥

८९ वसोरिन्द्रं वसुंपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥९॥
९० सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदुरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥१०॥

(१०)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

९१ गायन्ति त्वा गायत्रिणो ऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद् वंशमिव येमिरे ॥१॥
९२ यत् सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२॥

अर्थ— [८९] (वसु-पतिं) धनोंके स्वामी (वसोः इन्द्रं) ऐश्वर्योंके प्रभु और (ऋग्मियं गीर्भिः गृणन्त) ऋचाओंसे वर्णनीय स्वामीका अपनी वाणियोंसे वर्णन करो। (ऊतये) संरक्षणके लिये (होम गन्तारं) यज्ञके पास जानेवालेका वर्णन करो ॥ ९ ॥

[९०] (सुते सुते) प्रत्येक यज्ञमें (अरिः) यज्ञकर्ता और (न्योकसे इन्द्राय) यज्ञके स्थानमें आनेवाले इन्द्रके लिये (बृहत् बृहत शूषं आ इत् अर्चत) बडे बडे बलकी आदरपूर्वक अर्चना करो ॥ १० ॥

(१०)

[९१] हे (शतक्रतो) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (गायत्रिणः त्वा गायन्ति) गायक तेरे गुण वर्णन-का स्तोत्र गाते हैं। (अर्किणः) पूजक (अर्कं अर्चन्ति) पूजनीय तेरी पूजा करते हैं। (वंशं इव) बांसको जैसे ऊंचा उठाते हैं उसी तरह (ब्रह्माणः त्वा उत् येमिरे) ज्ञानी तुम्हें ऊंचा उठाते हैं ॥ १ ॥

[९२] (यत् सानोः सानुं आरुहत्) जैसे एक पर्वत शिखरसे दूसरे पर्वत शिखर पर जाता है वैसे जो (भूरि कर्त्वं अस्पष्ट) बहुत कार्य पूर्ण करता है, (इन्द्रः तत् अर्थं चेतति) इन्द्र उसके उद्देश्यको जानता है और (यूथेन वृष्णिः एजति) अपने दलके साथ उसके उद्देश्यकी पूर्ति करनेके लिये जाता है ॥ २ ॥

वृष्णिः— वर्षक, उद्देश्य सिद्धिकी वृष्टि करनेवाली।

कर्त्वं— कर्म, पुरुषार्थ।

भावार्थ— यह इन्द्र धनोंका स्वामी, ऐश्वर्यशाली, ऋचाओंसे वर्णनीय है। अतः अपने संरक्षणके लिए इस बलशालीकी अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए ॥ ९ ॥

प्रत्येक यज्ञमें यज्ञकर्ताको चाहिए कि वह यज्ञमें आनेवाले इन्द्रके बलकी पूजा करे और अपने अन्दर धारण करे ॥ १० ॥

यह इन्द्र अनेक बुद्धि सामर्थ्योंसे युक्त है अतः गायक लोग इस पूजनीय इन्द्रकी पूजा करते हैं और जैसे बांस ऊंचा करके उस पर लगे झण्डेको फहराते हैं, उसी प्रकार इस इन्द्रको स्तोत्रों द्वारा ऊंचा करके सबको उसकी उच्चता दिखाते हैं ॥ १ ॥

जब एक पर्वतसे दूसरे पर्वत पर जानेवाला कवि इन्द्रकी प्रचण्ड कर्म शक्तिको साक्षात् देखता है, तब उसके हृदयस्थ भावको जानता हुआ वृष्टिकर्ता इन्द्र भी अपने साथियोंके साथ उस कविकी सहायताके लिए दौडता है ॥ २ ॥

९३ युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥
९४ एहि स्तोमाँ अभि स्वरा - ऽभि गृणीह्या रुव ।
ब्रह्म च नो वसो सचे - न्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥
९५ उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥ ५ ॥
९६ तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शक - दिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥
९७ सुविवृतं सुनिरज - मिन्द्र त्वादातमिद्यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

अर्थ— [९३] हे इन्द्र ! (केशिना वृषणा कक्ष्य-प्रा हरी युक्ष्व हि) केशवाले बलवान् दोनों बाजुओंसे रहनेवाले दो घोडे रथमें जोड और (अथ सोमपाः) हे सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (नः गिरां उपश्रुतिं चर) हमारी वाणियोंसे होनेवाली स्तुति श्रवण करनेके लिये आ ॥ ३ ॥

[९४] हे (वसो सचा इन्द्र) बसानेवाले साथी इन्द्र ! (एहि) आ (स्तोमान् अभि स्वर) हमारी स्तुतियोंका श्रवण कर (गृणीहि) प्रशंसा कर (आ रुव) आनन्द प्रकट कर । (नः ब्रह्म) हमारे ज्ञानका और (यज्ञं च वर्धय) यज्ञका संवर्धन कर ॥ ४ ॥

[९५] (पुरु-निष्षिधे इन्द्राय) बहुतसे शत्रुओंका निवारण करनेवाले इन्द्रके लिये (वर्धनं उक्थं शंस्यं) इसके यशको बढानेवाले स्तोत्र गाने चाहिए । (यथा शक्रः) जिससे यह समर्थ इन्द्र (नः सुतेषु) हमारे पुत्रोंमें और (सख्येषु च) मित्रोंमें (रारणत्) मित्रतापूर्वक भाषण करे ॥ ५ ॥

सुतः— पुत्र, यज्ञ ।

[९६] (तं इत् सखित्वं ईमहे) उसके पास मित्रताके लिये हम जाते हैं, (तं राये) उसके पास धनके लिये, (तं सुवीर्ये) उसके पास उत्तम पराक्रमके लिये हम जाते हैं । (स शक्रः इन्द्रः) वह समर्थ इन्द्र (वसु दयमानः) धन देता हुआ (उत नः शकत्) हमारे सामर्थ्यकी वृद्धि करता है ॥ ६ ॥

[९७] हे इन्द्र ! (त्वादातं यशः इत्) तेरे द्वारा दिया हुआ यशस्वी धन (सु-विवृतं) फैलनेवाला और (सुनिरजं) सहज प्राप्य है । हे (अद्रि-वः) पहाडके किलेमें रहनेवाले इन्द्र ! (गवां व्रजं अपवृधि) गौओंके बाडेको हमारे लिये खुला कर और हमारे लिये (राधः कृणुष्व) धनका दान कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! बडी अयालवाले बलवान् और पुष्ट दोनों घोडोंको अपने रथमें जोड और उस पर बैठकर हमारे पास हमारे द्वारा की जानेवाली स्तुति सुननेके लिए आ ॥ ३ ॥

हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! हमारे समीप आ, हमारे स्तोत्रोंकी प्रशंसा कर, हमारे साथ आनन्दसे बोल और हमारे अन्दर ज्ञान और कर्मकी शक्ति बढा ॥ ४ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रके यशको बढानेवाले स्तोत्र अवश्य गाने चाहिए, ताकि वह हमारे साथ सदा मैत्री करता हुआ प्रेमपूर्वक बोले ॥ ५ ॥

मित्रता, धन एवं श्रेष्ठ पराक्रमको प्राप्त करनेके लिए उसी इन्द्रके पास जाना चाहिए, क्योंकि वह शक्तिमान् इन्द्र ही हमें धन देनेमें समर्थ है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तेरे द्वारा दिया गया यश सर्वत्र फैलनेवाला और आसानीसे प्राप्त होनेवाला है । तू हमें समृद्धशाली बना तथा गाय तथा अन्य सम्पत्तियोंसे सम्पन्न कर ॥ ७ ॥

*

९८ नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥

९९ आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥

१०० विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥

१०१ आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [९८] हे इन्द्र ! (ऋघायमाणं) शत्रुनाश करनेके समय (उभे रोदसी) दोनों भू और द्युलोक (त्वा नहि इन्वतः) तेरी महिमाको धारण कर नहीं सकते, (स्वर्वतीः अपः जेषः) तू स्वर्गीय जल पर विजय कर और (गाः अस्मभ्यं सं धूनुहि) गौओंको हमारे पास भेज ॥ ८ ॥

[९९] हे (आश्रुत्कर्ण) भक्तोंकी प्रार्थना सुननेवाले इन्द्र ! (हवं श्रुधि) हमारी प्रार्थना भी सुन, (मे गिरः नू चित् दधिष्व) हमारी स्तुतिको अपनेमें धारण कर । (इमं मम स्तोमं) इस मेरे स्तोत्रको तथा (युजः जित्) मेरे मित्रके स्तोत्रको भी (अन्तरं कृष्वं) अपने मनमें धारण कर ॥ ९ ॥

[१००] (वृषन्तमं त्वा विद्म हि) तू बलवान् है यह हम जानते हैं । (वाजेषु हवनश्रुतं) युद्धोंमें हमारी पुकार तू सुनता है (वृषन्तमस्य सहस्र-सातमां ऊतिं हूमहे) अति बलवान् तेरे सहस्त्रों प्रकारके धनके साथ रहनेवाले संरक्षणको हम तुझसे मांगते हैं ॥ १० ॥

[१०१] (कौशिक इन्द्र) कुशिक पुत्र इन्द्र ! (नः तु आ) हमारे पास आ । (मन्दसानः सुतं पिब) आनन्दित होकर सोमपान कर (नव्यं आयुः प्र सू तिर) नवीन आयु हमें दे, कर्मशक्ति हमें दे । (ऋषिं सहस्रसां कृधि) इस ऋषिको सहस्र धनोंसे युक्त कर ॥ ११ ॥

कौशिक— कोशमें रहनेवाला, पंचकोशमें रहनेवाला ।

नव्यं आयुः प्र सू तिर— नवीन आयु हमें दे दो ।

ऋषिं सहस्रसां कृधि— ऋषिको सहस्र प्रकारके धनोंसे युक्त कर ।

भावार्थ— शत्रुका नाश करनेवाले इस वीर इन्द्रका यश द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंमें भी नहीं समा सकता । आकाशीय जलप्रवाहों अर्थात् वर्षा पर भी इसी इन्द्रका अधिकार है । उन जल प्रवाहोंसे यह सबको पुष्ट करता है ॥ ८ ॥

हे भक्तोंकी प्रार्थना सुननेवाले इन्द्र ! मेरी और मेरे मित्रकी प्रार्थना ध्यानसे सुन और उस पर मननपूर्वक विचार कर ॥ ९ ॥

यह इन्द्र अत्यन्त बलवान् है और युद्धोंमें अपने मित्रोंकी पुकार सुनकर उनकी रक्षा करता है । इसलिए लोग इस इन्द्रसे हजारों तरहके धनके साथ उसकी संरक्षणशक्ति भी मांगते हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! हमारे पास आ और आनन्दसे सोमरसका पान कर । नवीन उत्साहपूर्ण तारुण्यावस्था हमें दे । और मुझे सहस्त्रों सामर्थ्योंसे युक्त ऋषि बना ॥ ११ ॥

१०२ परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥

(११)

(ऋषिः- जेता माधुच्छन्दसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

१०३ इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त् समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

१०४ सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

१०५ पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [१०२] हे (गिर्वणः) स्तुति योग्य इन्द्र ! (इमाः गिरः त्वा विश्वतः परि भवन्तु) ये स्तुतियां चारों ओरसे तुझे प्राप्त हों । (वृद्धायुं वृद्धयः) अधिक आयुवाले तुझे ये स्तुतियां यशोवर्धक हों, (जुष्टयः जुष्टाः अनु भवन्तु) तेरे द्वारा स्वीकार की गई ये स्तुतियां हमारा आनन्द बढानेवाली हों ॥ १२ ॥

(११)

[१०३] (समुद्र-व्यचसं) सागरके समान विस्तृत (रथीनां रथीतमं) रथियोंमें अतिश्रेष्ठ (वाजानां पतिं सत्पतिं) अन्नोंके स्वामी सज्जनोंके प्रतिपालक (इन्द्रं) इन्द्रको (विश्वा गिरः अवीवृधन्) सारी स्तुतियां संवर्धित करती हैं, इन्द्रका यश बढाती हैं ॥ १ ॥

[१०४] हे (शवसः पते इन्द्र) बलके स्वामी इन्द्र ! (ते सख्ये वाजिनः) तेरी मित्रतामें हम बलवान् बन कर (मा भेम) नहीं डरें । (जेतारं अपराजितं त्वां) विजयी और अपराजित ऐसे तुझको (अभि प्र णोनुमः) हम प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

[१०५] (इन्द्रस्य पूर्वीः रातयः) इन्द्रके दान पूर्व कालसे प्रसिद्ध हैं । (स्तोतृभ्यः गोमतः वाजस्य) स्तोताओंके लिए गौओंसे प्राप्त अन्नका (यदि मघं मंहते) जो दान करते हैं, (ऊतयः न वि दस्यन्ति) उनके लिए संरक्षण कभी कम नहीं होते ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! हमारे द्वारा सब ओरसे की गई ये स्तुतियां तेरी आयुकी वृद्धिके साथ ही साथ तेरा यश भी बढानेवाली हों, साथ ही हमारा भी आनन्द बढानेवाली हों ॥ १२ ॥

सब वाणियां समुद्र जैसे विस्तृत, रथियोंमें श्रेष्ठ रथी, बलों और अन्नोंके स्वामी और सज्जनोंके पालनकर्ता इन्द्रके महत्त्वको बढाती हैं ॥ १ ॥

हे बलोंके स्वामी इन्द्र ! तेरी मित्रतामें रहकर हम बलिष्ठ तथा निर्भीक बनें । कभी किसीसे पराजित न होते हुए सदा विजयी बनें और नित्य तेरी भक्ति करें । इस इन्द्रकी भक्ति अर्थात् इसके गुणोंको अपने अन्दर धारण करनेसे मनुष्य निर्भीक होता है ॥ २ ॥

इन्द्र दान देनेमें बहुत कुशल है । अपने इस कामके लिए वह अनन्त कालसे प्रसिद्ध है । इसीलिए वह दानियोंका सहायक होता है और उनकी हमेशा रक्षा करता है ॥ ३ ॥

१०६ पुरां भिन्दुर्युवा कवि–रमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

१०७ त्वं वलस्य गोमतो–ऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस् तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥

१०८ तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥

१०९ मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास् तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

अर्थ— [१०६] (पुरां भिन्दुः) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला (युवा कविः अ-मित-ओजाः) तरुण, ज्ञानी, अपरिमित पराक्रमी (वज्री पुरुष्टुतः) बहुतों द्वारा प्रशंसित (विश्वस्य कर्मणः धर्ता) सब कर्मोंका कर्ता ऐसा (इन्द्रः अजायत) इन्द्र हुआ है ॥ ४ ॥

पुरां भिन्दुः— शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला, शत्रुके किलोंको तोडनेवाला ।
युवा अमित-ओजाः कविः— तरुण अपरिमित शक्तिवाला ज्ञानी ।
विश्वस्य कर्मणः धर्ता— सब कर्मोंका धारण करनेवाला इन्द्र है ।

[१०७] हे (अद्रिवः) पर्वत पर रहनेवाले इन्द्र ! (गोमतः वलस्य बिलं त्वं अपावः) गौवें हरण करनेवाले बल असुरकी गुहाका तूने द्वार खोला (तुज्यमानासः देवाः) उस समय पीडित हुए देव (अ-बिभ्युषः) निर्भय होकर (त्वां अविषुः) तेरे पास आगये, तेरे आश्रयको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥

[१०८] हे (शूर) शूर ! (तव रातिभिः) तेरे धन दानसे उत्साहित होकर (अहं सिन्धुं आवदन्) मैं समुद्रके समान तेरा गुण वर्णन करता हुआ (प्रत्यायं) आ रहा हूं । हे (गिर्वणः) स्तवनीय इन्द्र ! (कारवः तस्य उपातिष्ठन्त) यज्ञकर्ता तेरे समीप आते हैं और (ते विदुः) वे तेरी महिमाको जानते हैं ॥ ६ ॥

[१०९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मायिनं शुष्णं) मायावी शुष्णको (मायाभिः) मायाओंसे ही (त्वं अवातिरः) तूने दूर किया, वध किया । (मेधिराः तस्य ते विदुः) बुद्धिमान् लोग उस तेरी महिमाको जानते हैं (तेषां श्रवांसि उत्तिर) उनको यश या बल दे ॥ ७ ॥

मायिनं शुष्णं मायाभिः त्वं अवातिरः— कपटी शुष्णको कपटोंसे तुमने मारा है । कपटी शत्रुके साथ कपट प्रयोग करके उस कपटीका पराभव करना चाहिए ।

भावार्थ— शत्रुके किलोंको तोडनेवाला, तरुण, ज्ञानी, अपरिमित बलशाली सब कर्मोंको धारण करनेवाला बहुतों द्वारा प्रशंसित वज्रधारी इन्द्र (अब) प्रकट हुआ है ॥ ४ ॥

हे पर्वत पर रहकर युद्ध करनेवाले इन्द्र ! तूने गौवें चुरानेवाले वलासुरके दुर्गके द्वारको खोल दिया । इस युद्धमें संत्रस्त हुए देव तेरी सुरक्षाके कारण निर्भीक होकर तेरे पास पहुंचे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तेरे दानोंसे उत्साहित होकर मैं तेरे समुद्रके समान विस्तृत गुणोंका वर्णन करता हुआ तेरे आश्रयमें आ रहा हूँ । हे इन्द्र ! जो क्रियाशील मनुष्य तेरे पास पहुंचते हैं, वे ही तेरी महिमाको जान सकते हैं ॥ ६ ॥

कपट करनेवालोंके साथ कपटका रास्ता ही अपनाना चाहिए और उन्हें हर तरहसे समाप्त करना चाहिए । इस प्रकार दुर्जनोंका नाश करके सज्जनोंकी उन्नति करनी चाहिए ॥ ७ ॥

११० इन्द्रमीशानमोजसा—भि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥

(१२)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवताः- अग्निः, ६ प्रथमपादस्य [निर्मथ्याहवनीयौ] अग्नी ।
छन्दः- गायत्री ।)

१११ अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥
११२ अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥
११३ अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

अर्थ— [११०] (यस्य सहस्रं रातयः) जिसके हजारों दान हैं, (उत वा भूयसीः सन्ति) अथवा उससे भी अधिक हैं उस (ओजसा ईशानं इन्द्रं) सामर्थ्यसे स्वामी बने इन्द्रकी (स्तोमाः अभि अनूषत) स्तोत्र प्रशंसा गाते हैं ॥ ८ ॥

(१२)

[१११] (होतारं विश्ववेदसं) देवताओंको बुलानेवाले, सब ज्ञान और सब धनोंसे युक्त और (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं) इस यज्ञको अच्छी तरहसे पूर्ण करनेवाले (अग्निं दूतं वृणीमहे) अग्निको हम दूतके रूपमें स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

१ विश्ववेदाः— सब ज्ञान और धनसे युक्त ।

२ विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं अग्निं वृणीमहे— सब ऊंचनीचको जाननेवाले, इस संघटना (यज्ञ) के कार्यको करनेवाले अग्रणीको हम एकमतसे अपना नेता स्वीकार करते हैं ।

[११२] (विश्पतिं, हव्यवाहं) प्रजाओंके पालक, हविको देवोंके पास ले जानेवाले (पुरुप्रियं अग्निं अग्निं) बहुत लोकप्रिय ऐसी सब प्रकारकी अग्निकी (हवीमभिः सदा हवन्ते) हवियोंके द्वारा लोग हमेशा हवन करते हैं ॥ २ ॥

१ पुरुप्रिय अग्निं विश्पतिं सदा हवन्ते— प्रजाओंको प्रिय और तेजस्वी प्रजापालक राजाकी सदा प्रशंसा होती है ।

[११३] हे (अग्ने) अग्ने ! (जज्ञानः वृक्तबर्हिषे इह देवान् आवह) प्रकट होते ही तू आसन फैलानेवाले भक्तके पास यहां सब देवोंको ले आ (नः होता ईड्यः असि) हमारे लिये देवोंको बुलानेवाला होनेसे तू प्रशंसनीय है ॥ ३ ॥

१ देवान् होता ईड्यः— देवों अर्थात् विद्वानोंको बुलाकर लानेवाला हमेशा प्रशंसनीय होता है ।

भावार्थ— वह इन्द्र हजारों मार्गसे अपने भक्तोंको धन देता है, इसलिए सभी यज्ञकर्ता अपनी शक्तिसे सबके स्वामी बने हुए उस इन्द्रका यश फैलाते हैं ॥ ८ ॥

दूत तेजस्वी, बुलानेवाला अर्थात् अच्छा वक्ता, सब प्रकारके ज्ञान व धनसे युक्त, यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठोंका सत्कार करनेवाला, समाजमें संगठन करनेवाला तथा याचकोंको यथाशक्ति दान देनेवाले हो ॥ १ ॥

राजा प्रजाका पालन करनेवाला, सबके पास (हव्य) अर्थात् अन्न पहुंचानेवाला, सबको प्रिय और तेजस्वी हो ॥ २ ॥

वह अग्नि प्रकट होते ही भक्तोंके पास पहुंचती है और स्तुतिको प्राप्त करती है । तथा विद्वानोंका संगठन करती है ॥ ३ ॥

११४ ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ४ ॥
११५ घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥ ५ ॥
११६ अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ६ ॥
११७ कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥ ७ ॥
११८ यस्त्वामग्ने हविष्पति-र्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥ ८ ॥
११९ यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृळय ॥ ९ ॥

अर्थ— [११४] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् दूत्यं यासि) जब तू दूत कर्म करनेके लिए देवोंके पास पहुंचता है, तब (उशतः तान् वि बोधय) तब हविको चाहनेवाले उन देवोंको बुला और (बर्हिषि देवैः आसत्सि) इस यज्ञमें देवोंके साथ आकर बैठ ॥ ४ ॥

१ दूत्यं उशतः वि बोधय— दूत राष्ट्रकी प्रजाको सत्यज्ञानसे युक्त करे और उन्हें सचेत रखे ।

२ बर्हिषि देवैः आसत्सि— यज्ञमें आ, एक आसन पर बैठ, प्रजाको विद्वानोंके साथ संघटित कर ।

[११५] हे (घृताहवन दीदिवः अग्ने) घीकी आहुतियां लेनेवाले प्रदीप्त अग्ने! (त्वं रक्षस्विनः रिषतः) तू राक्षसी स्वभाववाले हिंसक शत्रुओंको (प्रति दह स्म) सर्वथा जला दे ॥ ५ ॥

१ दीदिवः अग्ने ! त्वं रक्षस्विनः रिषतः दह— हे तेजस्वी अग्ने ! तू राक्षसी स्वभाववाले हिंसक शत्रुओंको जला दे ।

[११६] (कविः गृहपतिः युवा) मेधावी, गृहके स्वामी, तरुण (हव्यवाट् जुह्वास्यः अग्निः) अन्न पहुंचानेवाले और ज्वालारूप मुखवाले अग्निको (अग्निना समिध्यते) दूसरी अग्निसे भली प्रकार प्रदीप्त किया जाता है ॥ ६ ॥

१ अग्निः कविः युवा जुह्वास्यः— अग्रणी सदा ज्ञानी, तरुण और तेजस्वी मुखवाला हो ।

[११७] (कविं सत्यधर्माणं) मेधावी, सत्यधर्मके पालक (अमीवचातनं देवं अग्निं) रोगनाशक और प्रकाशमान अग्निकी (अध्वरे उपस्तुहि) हिंसारहित यज्ञमें स्तुति कर ॥ ७ ॥

१ सत्यधर्मा— अग्रणी सत्यधर्मका पालन करनेवाला हो, वचन और आचरणमें सचाई रखनेवाला हो ।

[११८] हे (अग्ने देव) अग्नि देव ! (यः हविष्पतिः त्वा दूतं सपर्यति) जो हविका देनेवाला यजमान तुझ जैसे दूतकी सेवा करता है (तस्य प्राविता भव स्म) उसका तू भली प्रकार रक्षा करनेवाला हो ॥ ८ ॥

१ यः दूतं सपर्यति, तस्य प्राविता— जो इस अग्रणीकी सेवा करता है, उसकी यह रक्षा करता है ।

[११९] (हविष्मान् यः देववीतये) हविसे युक्त जो यजमान देवोंको प्रसन्न करनेके लिए तुझ (अग्निं आविवासति) अग्निकी सेवा करता है, हे (पावक) पवित्र करनेवाले ! (तस्मै मृळय) उसे सुखी कर ॥ ९ ॥

१ देववीतये अग्निं आ विवासति, तस्मै मृडय— जो श्रेष्ठोंको प्रसन्न करनेके लिए अग्रणीकी सहायता करता है, वह सुखी होता है ।

भावार्थ— यह अग्नि जिस प्रकार देवोंको जगाकर उन्हें यज्ञमें लाता है, उसी प्रकार दूत राष्ट्रकी प्रजाओंमें जागृति फैलाकर उन्हें एक स्थानपर संगठित करे ॥ ४ ॥

तेजस्वी अग्रणीको चाहिए कि वह राक्षसी हिंसक स्वभाववाले शत्रुओंको नष्ट कर दे ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अग्नि हमेशा तरुण और ज्ञानी रहता है, उसी प्रकार सब रहें और जिस प्रकार एक अग्निसे दूसरी अग्नि जलती है और सर्वत्र प्रकाश हो जाता है उसी तरह सर्वत्र ज्ञानाग्निका प्रकाश हो ॥ ६ ॥

ज्ञानी, सत्यके पालक, शत्रुनाशक, तेजस्वी अग्रणीकी सब जगह प्रशंसा होती है ॥ ७ ॥

अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको इस अग्रणीकी सेवा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

इस अग्निकी स्तुति व उपासना करनेसे सब देव प्रसन्न रहते हैं और वह स्तोता सुखी होता है । शरीरमें भी अग्नि रूप प्राण या आत्माकी सेवा करने और उसे बलवान् बनानेसे सब इन्द्रियादि देव प्रसन्न रहते हैं और वह मनुष्य स्वस्थ एवं निरोगी रहकर सुखी होता है ॥ ९ ॥

१२० स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः ॥ १० ॥
१२१ स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥
१२२ अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२ ॥

(१३)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- (आप्रीसूक्तं, अग्निरूपा देवताः =) १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः, ५ बर्हिः, ६ देवीर्द्वारः, ७ उषासानक्ता, ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः । छन्दः- गायत्री ।)

१२३ सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥
१२४ मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

अर्थ— [१२०] हे (दीदिवः पावक अग्ने) तेजस्वी और पवित्र करनेवाले अग्ने ! (सः नः इह देवान् आवह) वह प्रसिद्ध तू हमारे लिये यहाँ श्रेष्ठोंको ले आ और (नः यज्ञं हविः च उपवह) हमारे यज्ञको और हविको देवोंके समीप ले जा ॥ १० ॥

[१२१] हे (अग्ने) अग्ने ! (नवीयसा गायत्रेण स्तवानः सः) नये गायत्री छन्दसे प्रशंसित हुआ हुआ वह तू (नः रयिं वीरवतीं इष आ भर) हमारे लिये धन और शक्तिशाली अन्नको भरपूर भर दे ॥ ११ ॥

[१२२] हे (अग्ने) अग्ने ! (शुक्रेण शोचिषा) अपनी शुद्ध दीप्तिसे और (विश्वाभिः देवहूतिभिः) देवोंके बुलाने योग्य सम्पूर्ण स्तुतियोंसे युक्त होकर (नः इमं स्तोमं जुषस्व) हमारे इस यज्ञका सेवन कर ॥ १२ ॥

१ शुक्रशोचिः— अग्निकी किरणें पवित्रता करनेवाली हैं । अर्थात् जिस स्थानमें अग्नि जलाई जाती या हवन किया जाता है, वह जगह पवित्र हो जाती है ।

(१३)

[१२३] हे (पावक होतः अग्ने) पवित्रता करनेवाले और हवन करनेवाले अग्ने ! (सुसमिद्धः) अच्छी तरह प्रदीप्त हुआ तू (हविष्मते) हवन करनेवालों पर कृपा करनेके लिए (देवान् नः आ वह) सब देवोंको हमारे पास ले आ और (यक्षि) उनके उद्देश्यसे हवन कर ॥ १ ॥

[१२४] हे (कवे) बुद्धिमान् अग्ने ! (तनूनपात्) तू शरीरको न गिरानेवाला है (अद्य नः मधुमन्तं यज्ञं) अतः आज हमारे इस मधुर यज्ञकी हविको (वीतये देवेषु कृणुहि) भक्षण करनेके लिए देवोंतक पहुंचा ॥ २ ॥

भावार्थ— यह अग्निदेव देवोंको हमारे पास लाने और हमारी हवि और स्तुतियोंको देवोंतक पहुंचानेका दूतका काम करता है ॥ १० ॥

नवीन स्तोत्रोंके द्वारा प्रशंसित यह अग्रणी हमें वीरोंसे युक्त धन और अन्न भरपूर दे । हमें ऐसा धन दे जिसका हमारे वीर अर्थात् पुत्रादि उपभोग कर सकें ॥ ११ ॥

हे अग्ने ! पवित्रता बढानेवाली अपनी किरणोंसे हमारी इस यज्ञ स्थली पर आ ॥ १२ ॥

यह अग्नि सर्वत्र पवित्रता करनेवाला है, अतः यह अच्छी तरह प्रदीप्त होकर यज्ञकर्ताओं पर कृपा करनेके लिए देवोंको बुलाकर लाता है और उनका सम्मान करता है ॥ १ ॥

यह अग्नि शरीरका धारक है । जबतक इस शरीरमें अग्निकी उष्णता रहती है, तभीतक यह शरीर क्रियाशील रहता है । इस प्रकार इस शरीरमें रहकर यह अग्नि देवों अर्थात् इन्द्रियोंको रस पहुंचाता है, इस प्रकार इन्द्रियां शक्तिसे युक्त होती हैं ॥ २ ॥

१२५ नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥
१२६ अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥
१२७ स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५ ॥
१२८ वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥
१२९ नक्तोषासा सुपेशसाऽस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥
१३० ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१२५] (इह अस्मिन् यज्ञे), यहां इस यज्ञमें (प्रियं मधुजिव्हं) प्रिय, मधुरभाषी (हविष्कृतं नराशंसं) हविको तैय्यार करनेवाले तथा मनुष्यों द्वारा प्रशंसित अग्निकी (उपह्वये) मैं बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[१२६] हे (अग्ने) अग्ने ! (ईळितः) प्रशंसित हुआ तू (सुखतमे रथे देवान् आ वह) उत्तम सुख देनेवाले रथमें बिठलाकर देवोंको यहां ले आ, क्योंकि तू (मनुर्हितः होता असि) मनुष्योंका हित करनेवाला और मनुष्योंका होता है ॥ ४ ॥

[१२७] हे (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोगो ! (घृतपृष्ठं बर्हिः आनुषक् स्तृणीत) घीके समान तेजस्वी इस अग्निके लिए (यत्र अमृतस्य चक्षणं) जहां अमृतका साक्षात्कार होता है, उस जगह (बर्हिः आनुषक् स्तृणीत) आसनको यथा क्रम बिछाओ ॥ ५ ॥

[१२८] (अद्य नूनं यष्टवे च) आज निस्सन्देह यज्ञ करनेके लिए (ऋतावृधः) सत्यको बढानेवाले (असश्चतः) अविनाशी (देवीः द्वारः विश्रयन्ताम्) ये दिव्य द्वार खुल जाएं ॥ ६ ॥

[१२९] (सुपेशसा नक्तोषासा) सुन्दर रूपवाली रात्रि और उषाको (अस्मिन् यज्ञे उपह्वये) मैं इस यज्ञमें बुलाता हूँ, (नः इदं बर्हिः आ सदे) हमारा यह आसन उनके बैठनेके लिए है ॥ ७ ॥

[१३०] (ता सुजिह्वा, होतारा) उन उत्तम भाषण करनेवाले तथा यज्ञ करनेवाले उन दोनों (दैव्या कवी) दिव्य कवियोंको (उपह्वये) मैं यहां बुलाता हूँ, वे (नः इमं यज्ञं यक्षतां) हमारे इस यज्ञको संपन्न करें ॥ ८ ॥

भावार्थ— यज्ञमें मधुर पदार्थ खानेवाले और प्रिय इस अग्निकी सब प्रशंसा करते हैं। क्योंकि सब ज्ञानी जानते हैं कि इसके बिना विश्वमें कुछ भी कार्य नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

जिससे अत्यन्त सुख होता है, ऐसे रथमें बैठकर यह अग्नि सब देवोंको इस यज्ञभूमिमें लाता है और मनुष्योंका हित करता है ॥ ४ ॥

इस शरीरमें ही अमृतका साक्षात्कार होता है, यहां सब देवताओंके लिए यथा क्रम आसन बिछाये गए हैं। आंख, कान, नाक आदि इन्द्रियोंमें आसनों पर ये देव आकर बैठते हैं और यज्ञ करते हैं। इस यज्ञमें ही अमृतका साक्षात्कार होता है ॥ ५ ॥

प्रातः समय यज्ञशालाके दिव्य द्वार खोले जाते हैं। ये दिव्य द्वार हैं क्योंकि मनुष्य इन्हींके द्वारा यज्ञशालामें प्रविष्ट होता है। यज्ञ ही सबसे परम श्रेष्ठ और उत्तम कर्म है! इसलिए इस पवित्र यज्ञके कारण ये द्वार भी पवित्र ही हैं ॥ ६ ॥

जिस समय उषाके साथ थोडी रात भी संयुक्त होती है, उस कालको नक्तोषस काल कहते हैं। इस समयसे यज्ञ शुरु होते हैं। यह काल अत्यन्त सुन्दर और आनन्दप्रद होता ॥ ७ ॥

यज्ञमें ज्ञानी दिव्य होताओंको बुलाया जाता है, ये उत्तम मीठी जिह्वावाले ज्ञानी उत्तम वक्ता होते हैं। ये आते हैं और यज्ञको यथायोग्य रीतिसे सिद्ध करते हैं ॥ ८ ॥

१३१ इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९ ॥
१३२ इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥
१३३ अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः । प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥ ११ ॥
१३४ स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवाँ उप ह्वये ॥ १२ ॥

(१४)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः। देवताः- विश्वे देवाः (विश्वैर्देवैः सहितोऽग्निः), ३ इन्द्रवायुबृहस्पति-मित्राग्निपूषभगादित्यमरुद्गणः, १० विश्वदेवाग्नीन्द्रवायुमित्रधामानि, ११ अग्निः । छन्दः- गायत्री।)

१३५ ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये । देवेभिर्याहि यक्षि च ॥ १ ॥

अर्थ— [१३१] (इळा, सरस्वती, मही) भूमि, सरस्वती और वाणी ये (तिस्रः देवीः मयोभुवः) तीन देवियां सुख देनेवाली हैं, वे (अस्रिधः बर्हिः सीदन्तु) क्षीण न होती हुई आसन पर बैठें ॥ ९ ॥

[१३२] (अग्रियं विश्वरूपं) प्रथम पूजनीय नानारूपोंके निर्माता (त्वष्टारं इह उपह्वये) कारीगरको यहां बुलाता हूँ, (केवलः अस्माकं अस्तु) वह देव केवल हमारा ही हो ॥ १० ॥

[१३३] हे (देव वनस्पते) वनस्पति देव ! (देवेभ्यः हविः अव सृज) देवोंके लिए हवि रूप अन्न दे, (दातुः चेतनं प्र अस्तु) दाताके लिए उत्साह प्राप्त हो ॥ ११ ॥

[१३४] (यज्वनः गृहे) याजकके घरमें (इन्द्राय यज्ञं स्वाहा कृणोतन) इन्द्रके लिए यज्ञ स्वाहापूर्वक करो, (तत्र देवान् उपह्वये) वहां मैं देवोंको बुलाता हूँ ॥ १२ ॥

(१४)

[१३५] (अग्ने) हे अग्ने ! (एभिः विश्वेभिः देवेभिः) इन सब देवोंके साथ (सोमपीतये) सोम पीनेके लिए यहां (आ याहि) आ और हमारी (दुवः गिरः च) प्रार्थना सुन और (यक्षि च) इस यज्ञको पूर्ण कर ॥ १ ॥

(इळा) मातृभूमि, (सरस्वती) मातृसंस्कृति (महीभारती) मातृभाषा ये तीन देवियां उपासनाके योग्य हैं। ये बडी सुख देनेवाली हैं। भूमि, सभ्यता और वाणी इनमें मानवकी मानवता रहती है। इसलिए यज्ञके द्वारा इनकी सुरक्षा और उन्नति की जानी चाहिए ॥ ९ ॥

भावार्थ— त्वष्टा कारीगरको कहते हैं, 'विश्वरूप त्वष्टा' है, जो मूल कारीगर है, वह विश्वरूप है। विश्व ही विष्णु है, अतः इस विश्वरूप कारीगर देवकी उपासना अवश्य करनी चाहिए ॥ १० ॥

पर्जन्यसे औषधियां और औषधियोंसे अन्न उत्पन्न होता है। यही अन्न देवोंको दिया जाता है। दान देनेसे उत्साह बढता है। इसीसे यज्ञकर्मकी वृद्धि और मनुष्योंका हित होता है ॥ ११ ॥

जो अपनी वस्तु है, उसे दूसरेके लिए अर्पण करनेका नाम 'स्वाहा' है इसीका नाम यज्ञ है। यही श्रेष्ठतम कर्म है। इसमें सभी देवोंका सत्कार करना चाहिए ॥ १२ ॥

वह अग्नि सब देवोंके साथ सोम पीनेके लिए आता है और अपने भक्तोंकी प्रार्थना सुनता है। और यज्ञका संरक्षण करता है ॥ १ ॥

*

१३६ आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः । देवेभिरग्न आ गहि ॥ २ ॥
१३७ इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्यान् मारुतं गणम् ॥ ३ ॥
१३८ प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥ ४ ॥
१३९ ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरंकृतः ॥ ५ ॥
१४० घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ६ ॥

अर्थ— [१३६] हे (विप्र अग्ने) ज्ञानी अग्ने ! (कण्वाः त्वा आ अहूषत) कण्व तुझे बुला रहे हैं । (ते धियः गृणन्ति) तेरी बुद्धि एवं कर्मोंकी प्रशंसा कर रहे हैं इसलिए, (देवेभिः आ गहि) देवोंके साथ यहां आ ॥ २ ॥

१ हे विप्र अग्ने ! ते धियः गृणन्ति— हे ज्ञानी अग्ने ! तेरे ज्ञानपूर्वक कर्मोंकी सब प्रशंसा करते हैं । ज्ञानपूर्वक किए गए कर्मोंकी सर्वत्र प्रशंसा होती है । अतः बुद्धिपूर्वक उत्तम कर्म करने चाहिये ।

[१३७] हे अग्ने ! (इन्द्रवायू बृहस्पतिं, मित्राग्निं पूषणं भगं आदित्यान् मारुतं गणं) इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्य और मरुतोंके गणोंको तू बुलाकर ला ॥ ३ ॥

अग्नि– ज्ञानी है । इन्द्र– शूर है जो शत्रुको दूर करता है (इन्–द्र)– शत्रुका नाश करता है । बृहस्पति ज्ञानी है । मित्र– सहायक है । पूषा– पोषक है । भग– भाग्यवान् है । आदित्य– आदित्य १२ हैं जो सब सहायक हैं । मरुतः– सैनिक हैं । शूरवीर हैं । ये सब प्रजाकी सहायता करनेके लिये यत्न करें ।

[१३८] (चमूषदः) पात्रमें रखे हुए (मत्सराः, मादयिष्णवः) आनन्दवर्धक, उत्साह बढानेवाले (द्रप्साः मध्वः) टपकनेवाले मधुर (इन्दवः) सोमरस (वः प्रभ्रियन्ते) यहां आपके लिए भरे हुए हैं ॥ ४ ॥

[१३९] (हविष्मन्तः) अन्न सिद्ध करनेवाले (अरंकृत) अलंकृत हुए (वृक्तबर्हिषः) आसन फैलानेवाले (अवस्यवः) अपनी सुरक्षाकी इच्छा करनेवाले (कण्वासः त्वां ईळते) कण्व तेरी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

१ अवस्यवः कण्वासः वृक्तबर्हिषः ईळते— अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले ज्ञानीजन अपने अपने आसनोंको फैलाकर अग्रणीकी स्तुति करते हैं ।

[१४०] (घृतपृष्ठाः) तेजस्वी पीठवाले (मनोयुजाः) मनके इशारेसे ही रथमें जुड जानेवाले (ये वह्नयः) जो घोडे (त्वा हवन्ति) तुझे सर्वत्र पहुंचाते हैं, उनसे तू (देवान्) देवोंको (सोमपीतये) सोमपानके लिए (आ) यहां ले आ ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि स्वयं ज्ञानी होनेसे कारण अपने सब कर्म ज्ञानपूर्वक करता है । इसलिए उसे सब लोग अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं, और उसके कामकी प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

वह अग्नि इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा भग, आदित्य और मरुतोंके समूहको बुलाकर लाता है ॥ ३ ॥

सोमरस आनन्द और उत्साह बढानेवाले तथा मधुर होते हैं, यह सोमरस अग्निको दिया जाता है ॥ ४ ॥

इस अग्रणी नेताका सभी लोग आसन बिछाकर आदर करते हैं, और इससे अपने संरक्षणकी इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥

इस अग्रणीके घोडे अर्थात् किरणें घृतके कारण और तेजस्वी होते हैं, अनुकूलतासे रहनेवाले तथा इस अग्रणीको सब जगह पहुंचानेवाले हैं । घोडे तेजस्वी, मनकी इच्छनुसार चलनेवाले हों ॥ ६ ॥

१४१ तान् यजंत्राँ ऋतावृधो ऽग्ने पत्नींवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ॥ ७ ॥
१४२ ये यजंत्रा य ईड्यास् ते तें पिबन्तु जिह्वयां । मधोरग्ने वर्षट्कृति ॥ ८ ॥
१४३ आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान्देवाँ उषर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ॥ ९ ॥
१४४ विश्वेभिः सोम्यं मध्व॒ग्न इन्द्रेण वायुनां । पिबां मित्रस्य धामंभिः ॥ १० ॥
१४५ त्वं होता मनुर्हितो ऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यंज ॥ ११ ॥

अर्थ—[१४१] हे (सुजिह्व अग्ने) मधुर जीभवाले अग्ने ! (तान् यजत्रान्) उन यजन करनेवाले और (ऋतावृधः) सत्यकी वृद्धि करनेवाले मनुष्योंको (पत्नीवतः) पत्नियोंसे युक्त (कृधि) कर और उन्हें (मध्वः पायय) मधुरपेय पिला ॥ ७ ॥

१ यजत्रान् ऋतावृधः पत्नीवतः कृधि— यज्ञ करनेवालों और सत्यको बढानेवालोंको यह अग्रणी पत्नीसे युक्त करता है ।

[१४२] हे (अग्ने) अग्रणी देव ! (ये यजत्राः) जो यज्ञ करनेवाले (ये ईड्याः) जो स्तुति किए जाने योग्य हैं, (ते) वे सब (वषट्कृति) वषट्कार पूर्वक यज्ञकर्मके शुरू होनेपर (मधोः जिह्वया पिबन्तु) मधुर रसको जीभसे पीयें ॥ ८ ॥

[१४३] (विप्रः) ज्ञानी (होता) यज्ञ करनेवाले (उषर्बुधः) उषःकालमें जागनेवाले (विश्वान् देवान्) सब विद्वानोंको (सूर्यस्य रोचनात्) सूर्यकी किरणोंके साथ अग्नि (इह आ वक्षति) यहाँ हमारे पास पहुंचा देगा ॥ ९ ॥

१ विप्रः होता उषर्बुधः— यह अग्रणी नेता ज्ञानी, यज्ञ करनेवाला और उषःकालमें जागनेवाला है ।

२ सूर्यस्य रोचनात् विश्वान् देवान् इह आवक्षति— सूर्यके प्रकाश द्वारा हमारे शरीरमें सब देव प्रविष्ट होते हैं ।

[१४४] हे (अग्ने) अग्रणी देव ! (इन्द्रेण वायुना मित्रस्य) इन्द्र, वायु, मित्र आदि देवोंके (विश्वेभिः धामभिः) सम्पूर्ण तेजके साथ (मधु सोम्यं पिब) मधुर सोमरसको पी ॥ १० ॥

[१४५] (अग्ने) हे तेजस्वी देव ! (त्वं मनुर्हितः) तू मनुष्योंका हित करनेवाला (होता) तथा हवि देने वाला होकर (यज्ञेषु सीदसि) यज्ञोंमें बैठता है, (सः) ऐसा वह तू (नः) हमारे (इमं अध्वरं यज) हमारे यज्ञकी पूर्णता कर ॥ ११ ॥

१ मनुः हितः— यह अग्रणी देव हमेशा मनुष्योंका हित करनेवाला है ।

भावार्थ— यह अग्रणी हमेशा यज्ञ करनेवालों और सत्यपालकोंकी सहायता करता है और उन्हें हर प्रकारके सांसारिक सुख प्रदान करता है ॥ ७ ॥

यज्ञ करनेवाले, स्तुतिके योग्य, वषट्कारसे युक्त यज्ञकर्म करनेवाले जन हमेशा आनन्ददायक सोमरस पीते हैं ॥ ८ ॥

यह अग्रणी ज्ञानी, यज्ञ करने और उषःकालमें जागनेके कारण तेजस्वी है । सूर्य किरणोंके द्वारा अग्नि सब देवोंको बुला- कर लाता है । शरीरमें अग्निके रहनेतक सब इंद्रियोंमें सब देव रहते हैं, आंखमें सूर्य, मुखमें अग्नि इत्यादि ॥ ९ ॥

यह अग्रणी देव इन्द्र आदि देवोंके साथ अत्यन्त तेजस्वी होकर मधुर रस पीता है ॥ १० ॥

यह तेजस्वी अग्रणी सदा मनुष्योंका हित करता है, यज्ञशील है और दूसरोंके यज्ञकी पूर्णता करनेवाला है । ॥ ११ ॥

१४६ युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२ ॥

(१५)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- [प्रतिदैवतं ऋतुसहितम् =] १ इन्द्रः, २ मरुतः, ३ त्वष्टा, ४ अग्निः, ५ इन्द्रः, ६ मित्रावरुणौ, ७-१० द्रविणोदाः, ११ अश्विनौ, १२ अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

१४७ इन्द्र सोमं पिब ऋतुना ऽऽ त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ॥ १ ॥

१४८ मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥

१४९ अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥

१५० अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ॥ ४ ॥

अर्थ—[१४६] हे (देव) प्रकाशमान् अग्ने ! तू (रथे) अपने रथमें (अरुषीः) क्रोध न करनेवाली[1] (हरितः) हमेशा प्रसन्न रहनेवाली (रोहितः) लाल रंगकी घोडियोंको (युक्ष्व) जोड और (ताभिः) उन घोडियोंके द्वारा (देवान्) देवोंको (इहा वह) यहां ले आ ॥ १२ ॥

१ अरुषीः, हरितः, रोहितः— इस अग्रणीकी घोडियां कभी क्रोध न करनेवाली, हमेशा प्रसन्न रहनेवाली और वृद्धिको प्राप्त होनेवाली हैं ।

(१५)

[१४७] हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (ऋतुना सोमं पिब) ऋतुके अनुकूल सोमरसका पान कर, (इन्दवः त्वा आविशन्तु) ये सोमरस तेरे अन्दर प्रविष्ट हों । (तदोकसः मत्सराः) वही घर आनन्ददायक सोमरसोंका है ॥ १ ॥

[१४८] हे (मरुतः) मरुतो ! (पोत्रात् ऋतुना पिबत) पोतृनामक पात्रसे ऋतुके अनुकूल रसोंको पीओ (यज्ञं पुनीत) हमारे यज्ञको पवित्र करो, हे (सुदानवः) उत्तम दान देनेवाले मरुतो ! (हि यूयं स्थ) तुम वैसे ही पवित्रता करनेवाले हो ॥ २ ॥

[१४९] हे (ग्नावः नेष्टः) हे पत्नीसहित प्रगतिशील याचक ! (नः यज्ञं अभि गृणीहि) हमारे यज्ञकी प्रशंसा कर, (ऋतुना सोमं पिब) ऋतुके अनुसार पी, (हि त्वं रत्नधाः असि) क्योंकि तू रत्नोंको धारण करनेवाला है ॥ ३ ॥

[१५०] (अग्ने) अग्ने ! (देवान् इह आवह) देवोंको यहाँ बुला ला और (त्रिषु योनिषु सादय) उनको तीनों स्थानोंपर बैठा । (परिभूष, ऋतुना पिब) उन्हें अलंकृत कर तथा ऋतुके अनुसार सोमका पान कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्रणी देव हमेशा ऐसे घोडियोंवाले रथ पर चढता है, जो इसे सन्मार्ग पर ले जाती हैं । यह हमेशा अपने साथ देवोंको रखता है जहां अग्नि जाता है वहां उसके साथ सब देव जाते और उसके साथ रहते हैं ॥ १२ ॥

हे इन्द्र व मरुत् देवो ! तुम सब यहां यज्ञमें आओ और पोतृनामक पात्रसे आनन्ददायक सोमरस भरपूर पीओ और हम पर प्रसन्न होओ ॥ १-२ ॥

हे यजमान ! तू हमेशा सपत्नीक यज्ञ कर और आनन्दसे सोमरसका पान कर । इस प्रकार अनेक रत्नोंसे युक्त होकर ऐश्वर्यसम्पन्न हो ॥ ३ ॥

यह अग्रणी देव इस शरीरमें तैतीस देवोंको अपने साथ लाता है और मस्तिष्क, हृदय और अधोभागमें स्थापित करता है । वे देव इस शरीरमें उपभोग प्राप्त करते और ऋतुओंके अनुसार कर्म करते हैं । सिर, छाती और पांव तीनों स्थानोंमें ये ३३ देव रहते हैं ॥ ४ ॥

१५१ ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोमममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥ ५ ॥
१५२ युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥
१५३ द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥
१५४ द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥
१५५ द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥
१५६ यत् त्वा तुरीयमृतुभि-र्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ॥

अर्थ—[१५१] हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (ब्राह्मणात् राधसः) ब्राह्मणके पाससे उसके पात्रसे (ऋतून् अनु सोमं पिब) ऋतुओंके अनुसार सोम पी, (हि तव इत् सख्यं अस्तृतं) क्योंकि तेरी यह मित्रता अटूट है ॥ ५ ॥

[१५२] हे (धृतव्रत मित्रावरुण) नियमोंके पालन करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! (युवं) तुम दोनों (ऋतुना) ऋतुके अनुसार (दक्षं दूळभं) बल प्रदान करनेवाले, दुर्दमनीय (यज्ञं आशाथे) यज्ञको सिद्ध करते हो ॥ ६ ॥

[१५३] (द्रविणसः) धन प्राप्त करनेकी इच्छावाले (ग्रावहस्तासः) हाथमें सोम कूटनेके पत्थर लेकर (अध्वरे यज्ञेषु) यज्ञमें और प्रत्येक कर्ममें (द्रविणोदा देवं ईळते) धन देनेवाले देवकी स्तुति गाते हैं ॥ ७ ॥

[१५४] (द्रविणोदाः नः वसूनि ददातु) धन देनेवाला देव हमें उन सभी तरहके धनोंको देवे (यानि शृण्विरे) जिन धनोंका वर्णन हम सुनते आए हैं, (ता देवेषु वनामहे) वे धन हम पुनः देवोंको ही अर्पण करते हैं ॥८॥

[१५५] (द्रविणोदाः) धन देनेवाला देव (नेष्ट्रात्) नेष्टृ सम्बन्धी पात्रसे (ऋतुभिः पिपीषति) ऋतुके अनुसार सोमरस पीनेकी इच्छा करता है, अतः हे मनुष्यो ! (इष्यत, जुहोत प्र च तिष्ठत) वहां जाओ, हवन करो और पश्चात् वहांसे चले जाओ ॥ ९ ॥

[१५६] हे (द्रविणोदः) धनके दाता देव ! (यत् ऋतुभिः) जिस कारण हम ऋतुओंके अनुसार (त्वां तुरीयं यजामहे) तुझे चौथे भागका अर्पण करते हैं, (अध) इस कारण तू (न ददिः भव स्म) हमारे लिए धनका दान करनेवाला हो ॥ १० ॥

भावार्थ— यह ऐश्वर्यवान् इन्द्र सोमसे सम्पन्न अर्थात् यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंके साथ हमेशा मित्रता रखता है। देवोंके साथ एक बार जुडी हुई मित्रता हमेशा बनी रहती है, कभी टूटती नहीं ॥ ५ ॥

सबके मित्र और वरणीय ये देव सब नियमोंका पालन करनेवाले हैं, तथा बलप्रदान करनेवाले और कठिन यज्ञोंको भी पूरा करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

वह धन देनेवाला देव हर उत्तम कर्म करनेवालेको अत्युत्तम धन देता है। पर धनवान्को भी चाहिए कि वह देवोंसे प्राप्त किए धनको अपने पास इकट्ठा न कर उसे फिर देवोंके कामोंमें लगा दे ॥ ७–८ ॥

यह धनको देनेवाला देव सोम पीना चाहता है, अतः हे याजको ! इसको ऋतुके अनुसार सोमका चौथा भाग दो, ताकि यह प्रसन्न होकर तुम्हें धन प्रदान करे ॥ ९–१० ॥

१५७ अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥

१५८ गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज ॥ १२ ॥

(१६)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

१५९ आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये । इन्द्रं त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥

१६० इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः । इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥

१६१ इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

अर्थ— [१५७] हे (दीद्यग्नी, शुचिव्रता) तेजस्वी शुद्ध कर्म करनेवाले (ऋतुना यज्ञवाहसा) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले (अश्विना) अश्विदेवो ! (मधु पिबतं) इस मधुर सोमरसका पान करो ॥ ११ ॥

[१५८] हे (सन्त्य) फल देनेवाले अग्ने ! (गार्हपत्येन ऋतुना) तू गार्हपत्यके नियमोंके अनुसार ऋतुके अनुकूल रहकर (यज्ञनीः असि) यज्ञ करनेवाला है इसलिये (देवयते देवान् यज) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले यजमानके लिये देवोंका सत्कार कर ॥ १२ ॥

१ गार्हपत्येन ऋतुना यज्ञनीः— गृहस्थाश्रममें रहनेवाला ऋतुके अनुसार रहकर ही शुभ कर्म करनेमें समर्थ होता है । अतः गृहस्थियोंको ऋतुके अनुकूल कर्म करने चाहिए ।

२ देवयते देवान् यज— देवत्व पानेकी इच्छा करनेवालोंको ज्ञानियोंका सत्कार करना चाहिए । उन्हें ऐसे कर्म करने चाहिए कि इस शरीरमें सभी देव संगठित होकर सदा शुभकर्ममें तत्पर रहें ।

(१६)

[१५९] हे इन्द्र ! (सूर-चक्षसः हरयः) तेजस्वी घोडे (सोमपीतये) सोमरस पीनेके लिये (वृषणं त्वा) बलवान् ऐसे तुझे (आ वहन्तु) ले आयें ॥ १ ॥

[१६०] (इन्द्रं) इन्द्रको (सुखतमे रथे) अत्यन्त सुखदायक रथमेंसे (इमा घृतस्नुवः धानाः) इन घीसे भीगे लाजाओंके पास (इह) यहां (हरी उपवक्षतः) दो घोडे लावें ॥ २ ॥

१ घृतस्नुवः धानाः— यज्ञमें लाजाओंका हवन करना हो तो वे लाजाएं घीसे भीगी होनी चाहिए ।

[१६१] हम (प्रातः) प्रातःकाल (इन्द्रं हवामहे) इन्द्रको बुलाते हैं, (अ-ध्वरे प्रयति) यज्ञ शुरू होनेपर उसको बुलाते हैं, (सोमस्य पीतये इन्द्रं) सोमरस पीनेके लिये इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— ये अश्विदेव तेजस्वी, हमेशा पवित्र करनेवाले और ऋतुके अनुसार यज्ञकर्म करनेवाले हैं, अतः इनका सत्कार करना चाहिए ॥ ११ ॥

यह अग्रणी गृहस्थी शुभ नियमोंके अनुसार रहता हुआ, ऋतुओंके अनुकूल कर्म करता रहे । और शुभकर्म करनेकी कामना करता हुआ ज्ञानियोंको संगठित करे ॥ १२ ॥

यह इन्द्र सदा सुखदायक वाहनोंपर ही सर्वत्र भ्रमण करता है, यह आनन्ददायक है अतः इसको घी आदिसे पुष्ट करना चाहिए । इसी प्रकार राजाको भी चाहिए कि वह पुष्ट होकर प्रजाकी रक्षा करता हुआ सर्वत्र आनन्दसे घूमे ॥ १-२ ॥

प्रातःसवन, माध्यंदिन सवन और सायं सवन ऐसे यज्ञमें तीन सोमसवन होते हैं । इन तीनों सवनोंमें हम यज्ञमें इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ३ ॥

१६२ उप॑ नः सु॒तमा ग॑हि॒ हरि॑भिरिन्द्र के॒शिभिः । सु॒ते हि त्वा॒ हवा॑महे ॥ ४ ॥
१६३ सेमं॑ नः॒ स्तोम॒मा ग॒ह्युपे॒दं सव॑नं सु॒तम् । गौ॒रो न तृ॑षि॒तः पि॑ब ॥ ५ ॥
१६४ इ॒मे सोमा॑स॒ इन्द॑वः सु॒तासो॒ अधि॑ ब॒र्हिषि॑ । ताँ इ॑न्द्र॒ सह॑से पिब ॥ ६ ॥
१६५ अ॒यं ते॒ स्तोमो॑ अग्रि॒यो हृ॑दि॒स्पृग॑स्तु॒ शंत॑मः । अथा॒ सोमं॑ सु॒तं पि॑ब ॥ ७ ॥
१६६ विश्व॒मित्सव॑नं सु॒तमिन्द्रो॒ मदा॑य गच्छति । वृ॒त्र॒हा सोम॑पीतये ॥ ८ ॥
१६७ सेमं॑ नः॒ काम॒मा पृ॑ण॒ गोभि॒रश्वैः॑ शतक्रतो । स्तवा॑म त्वा स्वा॒ध्यः॑ ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (केशिभिः हरिभिः) अयालवाले घोडोंसे (नः सुतं उप आ गहि) हमारे सोमयागके पास आ। (हि त्वा सुते हवामहे) क्योंकि तुझे हम सोमयज्ञके लिये बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[१६३] (सः) वह तू (नः इमं स्तोमं आ गहि) हमारे स्तोत्रपाठ या इस यज्ञमें आ। (इदं सुतं सवनं उप) इस सोमरसके समीप आ। (तृषितः गौरः न पिब) प्यासे गौर मृगके समान सोमरसको पी ॥ ५ ॥

[१६४] हे इन्द्र ! (इमे इन्दवः सोमासः) ये तेजस्वी सोमरस (सुतासः बर्हिषि अधि) निकाल कर दर्भासनके पास रखे हैं। (सहसे तान् पिब) बल बढानेके लिये उन रसोंको तू पी ॥ ६ ॥

[१६५] (ते अयं स्तोमः) तेरा यह स्तोत्र (अग्रियः) श्रेष्ठ (हृदिस्पृग्) हृदयस्पर्शी और (शंतमः अस्तु) आनंदवर्धक हो। (अथ) अब (सुतं सोमं पिब) निकाले सोम रसको पीओ ॥ ७ ॥

१ अग्रियः हृदिस्पृक् शंतमः— श्रेष्ठ, हृदयको आनंद देनेवाला और शान्ति देनेवाला स्तोत्र हो।

[१६६] (वृत्रहा इन्द्रः) शत्रुको मारनेवाला इन्द्र (सोमपीतये) सोमरस पीनेके लिये तथा (मदाय) आनंद बढानेके लिये (विश्वं सुतं सवनं इत् गच्छति) सभी सोमयागोंके प्रति जाता है ॥ ८ ॥

१ वृत्रहा इन्द्रः— शत्रुका नाश करनेवाला इन्द्र है अतः प्रशंसनीय है। जो शत्रुका नाश करेगा वह प्रशंसनीय होगा।

[१६७] हे (शतक्रतो) सैकडों काम करनेवाले ! इन्द्र (सः) वह तू (नः इमं कामं) हमारी इच्छाको (गोभिः अश्वैः) गौओंसे और घोडोंसे अर्थात् गौवें और घोडे हमें देकर (आ पृण) पूर्ण करो। (स्वाध्यः त्वा स्तवाम) बुद्धिपूर्वक हम तेरी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तुझे सोमरस तैय्यार करके बुला रहे हैं, तू अपने उत्तम अयालवाले घोडोंके द्वारा इस रसके पास आ और इसे प्रेमसे पी ॥ ४–५ ॥

ये सोम चमकनेवाले, बल बढानेवाले उत्तम श्रेष्ठ, हृदयस्पर्शी तथा आनंद बढानेवाले हैं। सोम अर्थात् ब्रह्मज्ञानी भी सदा प्रसन्न और श्रेष्ठ होता है ॥ ६–७ ॥

यह इन्द्र शत्रुओंका नाश करनेवाला है, सैंकडों शुभ कर्म उत्तम रीतिसे करनेवाला है। यह आनन्द बढानेके लिए सबके पास जाता है, तथा सबको गौ आदि पशु देकर समृद्ध बनाता है। इसीलिए सब उसकी प्रशंसा करते हैं। ऐसे उत्तम मनुष्यकी सर्वत्र प्रशंसा होती है ॥ ८–९ ॥

(१७)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- गायत्री, ४-५ पादनिचृत् (५ ह्रसीयसी वा) गायत्री)

१६८ इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥
१६९ गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥
१७० अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥
१७१ युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥
१७२ इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥
१७३ तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥

---

[१७]

अर्थ— [१६८] (अहं) मैं (इन्द्रावरुणयोः सम्राजोः) इन्द्र और वरुण नामक दोनों सम्राटोंसे (अवः आ वृणे) अपनी सुरक्षा करनेकी शक्ति प्राप्त करना चाहता हूं (ईदृशे ता नः मृळातः) ऐसी स्थितिमें वे दोनों हमें सुखी करें ॥ १ ॥

[१६९] (चर्षणीनां धर्तारा) ये दोनों सम्राट मानवोंका धारणपोषण करनेवाले हैं (मावतः विप्रस्य) मुझ जैसे ब्राह्मणकी (अवसे) सुरक्षा करनेके लिये (हवं गन्तारा हि स्थ) पुकारके स्थानतक जानेवाले होवें ॥ २ ॥

[१७०] हे (इन्द्रावरुणा) हे इन्द्र और वरुण ! (अनुकामं) हमारे मनोरथके अनुसार (रायः आ तर्पयेथां) धन देकर हमें तृप्त करो (ता वां) तुम दोनोंका (नेदिष्ठं ईमहे) हमारे समीप रहना ही हम चाहते हैं ॥ ३ ॥

[१७१] (हि शचीनां युवाकु) शक्तियोंकी संघटना हुई है । (सुमतीनां युवाकु) सुमतियोंकी भी एकता हुई है (वाजदाव्नां भूयाम) अन्न दान करनेवालोंमें हम मुख्य बनें ॥ ४ ॥

[१७२] (इन्द्रः सहस्रदाव्नां क्रतुः) इन्द्र सहस्रों दाताओंमें मुख्य कार्यकर्ता है, । (वरुणः शंस्यानां उक्थ्यः भवति) और वरुण सहस्रों प्रशंसनीयोंमें मुख्य प्रशंसित होने योग्य है ॥ ५ ॥

[१७३] (तयोः अवसा) उनकी सुरक्षासे (इत् वयं) सुरक्षित हुए हम (सनेम, निधीमहि च) धन प्राप्त करना और संग्रह करना चाहते हैं । (उत प्ररेचनं स्यात्) चाहे उससे भी अधिक धन हमारे पास हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्र और वरुण दोनों अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाले और मनुष्योंकी रक्षा करके उनका भरणपोषण करनेवाले हैं । ये दोनों बुलाये जाने पर भक्तकी रक्षा करनेके लिए जाते हैं । उसी प्रकार राष्ट्रका राजा अपनी प्रजाओंकी रक्षा करके उनको शक्तिसे युक्त करके उनका पालनपोषण करे और अपने तेजसे वह प्रकाशित हो ॥ १-२ ॥

राष्ट्रमें उत्तम बुद्धिवाले ब्राह्मण, उत्तम शक्तियोंवाले क्षत्रिय और अन्नका दान करनेवाले वैश्य ये सभी वर्ण एक विचारके हों, जिससे राष्ट्रकी उन्नति हो, तथा राजा और मंत्रीगण भी एक विचारवाले हों ॥ ३-४ ॥

इन्द्र दान देनेवालोंमें सर्व श्रेष्ठ है और वरुण प्रशंसाके योग्य देवोंमें सर्वाधिक प्रशंसनीय है । इन दोनोंसे सुरक्षित होकर हम धनादिसे समृद्ध हों । जिस देशका राजा दानशील हो तथा जिस देशके मंत्रियोंकी सब प्रजायें प्रशंसा करे, वह देश निश्चय धनधान्यसे समृद्ध होगा और वहांकी प्रजा भी सुरक्षित और सुखी रहेगी ॥ ५-६ ॥

१७४ इन्द्रा॑वरुण वाम॒हं हु॒वे चि॒त्राय॑ राध॑से । अ॒स्मान्त्सु जि॒ग्युष॑स्कृतम् ॥ ७ ॥
१७५ इन्द्रा॑वरुण॒ नू नु वां॒ सिषा॑सन्तीषु धी॒ष्वा । अ॒स्मभ्यं॒ शर्म॑ यच्छतम् ॥ ८ ॥
१७६ प्र वा॑मश्नोतु सुष्टु॒ति-रिन्द्रा॑वरुण॒ यां हु॒वे । याम्॒धाथे॑ स॒धस्तु॑तिम् ॥ ९ ॥

(१८)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- १-३ ब्रह्मणस्पतिः, ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः सोमश्च, ५ ब्रह्मणस्पतिः सोम इंद्रो दक्षिणा च, ६-८ सदसस्पतिः, ९ सदसस्पतिर्नराशंसो वा । छन्दः- गायत्री ।)

१७७ सो॒मानं॒ स्वर॑णं कृणु॒हि ब्र॑ह्मणस्पते । क॒क्षीव॑न्तं॒ य औ॑शि॒जः ॥ १ ॥
१७८ यो रे॒वान् यो अ॑मीव॒हा व॑सु॒वित् पु॑ष्टि॒वर्ध॑नः । स नः॑ सिषक्तु॒ यस्तु॒रः ॥ २ ॥
१७९ मा न॒ः शंसो॒ अर॑रुषो धू॒र्तिः प्रण॒ङ् मर्त्य॑स्य । रक्षा॑ णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥
१८० स घा॑ वी॒रो न रि॑ष्यति॒ यमिन्द्रो॒ ब्रह्म॒णस्पतिः॑ । सोमो॑ हि॒नोति॒ मर्त्य॑म् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१७४] हे (इन्द्रावरुणा) हे इन्द्र और वरुण ! (वां अहं चित्राय राधसे हुवे) तुम दोनोंकी मैं अद्भुत सिद्धिके लिये प्रार्थना करता हूं । (अस्मान् सु जिग्युषः कृतं) तुम दोनों हमें उत्तम विजयी बनाओ ॥ ७ ॥

[१७५] हे (इन्द्रावरुण) हे इन्द्र और वरुण ! (धीषु वां सिषासन्तीषु) हमारी बुद्धियाँ तुम्हारा कार्य कर रही हैं (अस्मभ्यं शर्म नू नु आ यच्छतं) इसलिये हमें सुख दो ॥ ८ ॥

[१७६] हे (इन्द्रावरुणा) हे इन्द्र और वरुण ! (यां सधस्तुतिं हुवे) जिस संमिलित स्तुतिको हम करते हैं, (यां ऋधाते) जिसको तुम बढाते हो, (सा सुष्टुतिः वां प्र अश्नोतु) वही उत्तम स्तुति तुम्हें प्राप्त हो ॥ ९ ॥

(१८)

[१७७] हे (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते ! (सोमानं स्वरणं कृणुहि) सोमयाग करनेवालेको उत्तम प्रगतिसंपन्न कर । (यः औशिजः, तं कक्षीवन्तं इव) जैसा उशिक्पुत्र कक्षीवान् उन्नत किया गया था वैसा ही इसको कर ॥ १ ॥

[१७८] (यः रेवान्) जो ब्रह्मणस्पति सम्पत्तिमान्, (यः अमीवहा) जो रोगोंका नाश करनेवाला, (वसुवित् पुष्टिवर्धनः) धनदाता और पुष्टिवर्धक (यः तुरः) तथा जो शीघ्रतासे कार्य करनेवाला है, (सः नः सिषक्तु) वही हमारे ऊपर कृपा करता रहे ॥ २ ॥

[१७९] हे (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते ! (अररुषः मर्त्यस्य धूर्तिः) घात करनेवाले कपटी धूर्तकी निंदा (नः मा शंसः) हमारे तक न पहुंचे । (नः रक्ष) इससे हमारी सुरक्षा कर ॥ ३ ॥

[१८०] (यं मर्त्यं) जिस मनुष्यको (इन्द्रः ब्रह्मणस्पतिः सोमः च) इन्द्र, ब्रह्मणस्पति और सोम (हिनोति) बढा देते हैं, (सः घा वीरः न रिष्यति) वह वीर निःसंदेह नष्ट नहीं होता ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो इन्द्र और वरुणकी सच्चे मनसे प्रार्थना करता है, वह हर प्रकारकी सिद्धियोंको प्राप्त कर सकता है, और उत्तम विजयी बन सकता है । जो इन दोनोंके अनुकूल आचरण करता है वह सुखी और उन्नतिशील होता है । राष्ट्रकी प्रजाको भी चाहिए कि वह उत्तम राजा और मंत्रियोंके अनुकूल आचरण करके देशमें एकता स्थापित करे ॥ ७-९ ॥

ज्ञानके स्वामी अर्थात् विद्यासम्पन्न विद्वान् यह ब्रह्मणस्पति रोगोंका नाश करनेवाला, धनदाता और पुष्टिवर्धक तथा अपने भक्तोंकी उन्नति करनेवाला है । ऐसे ज्ञानी विद्वान्की कृपा जिस मनुष्य पर रहती है, वह सदा प्रगति करता है ॥ १-२ ॥

जिस मनुष्यको ब्रह्मणस्पति-ज्ञानी, इन्द्र-शक्तिशाली क्षत्रिय और सोम-धनवान् इन तीनोंकी सहायता मिलती है, उसके पास धूर्त या हिंसक नहीं पहुंच सकते और वह वीर होकर निःसन्देह बढता जाता है ॥ ३-४ ॥

*

१८१ त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥
१८२ सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥
१८३ यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥
१८४ आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥
१८५ नराशंसं सुधृष्टम-मपश्यं सप्रथस्तमम् । दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥

(१९)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- अग्निर्मरुतश्च । छन्दः- गायत्री ।)

१८६ प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥
१८७ नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

अर्थ— [१८१] हे (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते ! (त्वं तं मर्त्यं) तू उस मानवको (अंहसः) पापसे बचा (सोमः इन्द्रः दक्षिणा च पातु) वैसे ही सोम, इन्द्र और दक्षिणा उसको बचावें ॥ ५ ॥

[१८२] (अद्भुतं इन्द्रस्य प्रियं) मैं आश्चर्यकारक, इन्द्रके प्रिय मित्र (काम्यं सनिं सदसस्पति) आदरणीय और धनदाता सदसस्पतिसे (मेधां अयासिषम्) मेधाबुद्धिको मांगता हूँ ॥ ६ ॥

[१८३] (यस्माद् ऋते) जिसके बिना (विपश्चितः चन यज्ञः) ज्ञानीका भी यज्ञ (न सिध्यति) सिद्ध नहीं होता (सः धीनां योगं इन्वति) वह सदसस्पति हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥ ७ ॥

[१८४] (आत् हविष्कृतिं ऋध्नोति) हवि तैयार करनेवालेकी वह उन्नति करता है, (अध्वरं प्राञ्चं कृणोति) हिंसारहित यज्ञको बढाता है, (होत्रा देवेषु गच्छति) हमारी प्रशंसा करनेवाली वाणीको देवोंतक पहुंचा देता है ॥ ८ ॥

[१८५] (दिवो न सद्ममखसं) द्युलोकके समान तेजस्वी (सुधृष्टमं सप्रथस्तमं) प्रतापशाली और प्रसिद्ध (नराशंसं अपश्यं) तथा मानवों द्वारा सुपूजित सदसस्पति मैंने देखा है ॥ ९ ॥

[१९]

[१८६] (हे अग्ने) हे अग्ने ! (त्यं चारुं अध्वरं प्रति) उस सुंदर हिंसारहित यज्ञके प्रति (गोपीथाय प्रहूयसे) तुम्हें सोमरसका पान करनेके लिये बुलाते हैं (मरुद्भिः आ गहि) अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ १ ॥

[१८७] (नहि देवः) ना ही कोई देव (न मर्त्यः) और न कोई मर्त्य ऐसा है कि जो (महः तव क्रतुं परः) तुम्हारे महासामर्थ्यसे किये यज्ञसे बढकर कुछ कर्म कर सकता हो (मरुद्भिः आ गहि) अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्रके प्रिय मित्र, पूज्य सदसस्पति उत्तम मेधाबुद्धिका स्वामी है, उससे इस मेधाबुद्धिको प्राप्त करनेवाला मनुष्य पाप कर्मोंसे बचता है, और उस मनुष्यकी सोम, इन्द्र और दक्षिणा सहायता करते हैं ॥ ५–६ ॥

श्रेष्ठ विद्वानोंकी सभाका सभापति यह सदसस्पति सबकी बुद्धियोंको प्रेरित करता है, सन्मार्गमें चलाता है, उन्नत करता है, इसकी सहायताके बिना कोई कर्म सफल नहीं हो सकता । यह अन्नका दान देनेवालेकी उन्नति करता है और हिंसारहित और कुटिलतारहित कर्मोंको बढाता है तथा स्तोताओंकी प्रार्थनाओंको यह देवोंतक पहुंचाता है । यह द्युलोकके समान विस्तृत और तेजस्वी है । अतः सब इसीकी स्तुति करते हैं ॥ ७–९ ॥

इस अग्निके साथ मरुत् रहते हैं, जो सामर्थ्यशाली हैं, कि उनके सामर्थ्यसे बढकर कर्म न कोई देव ही कर सकता है और न कोई मनुष्य ही । ऐसे इन मरुतोंके साथ अग्निको अहिंसक यज्ञमें उपासक सोम पीनेके लिए बुलाते हैं ॥ १–२ ॥

१८८ ये म॒हो रज॑सो वि॒दु॒र्विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒द्रुहः॑ । म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ३ ॥
१८९ य उ॒ग्रा अ॒र्कमा॑नृ॒चु॒रना॑धृष्टास॒ ओज॑सा । म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ४ ॥
१९० ये शु॒भ्रा घो॒रव॑र्पसः सु॒क्ष॒त्रासो॑ रि॒शाद॑सः । म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ५ ॥
१९१ ये नाक॒स्याधि॑ रोच॒ने दि॒वि दे॒वास॒ आस॑ते । म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ६ ॥
१९२ य ई॒ङ्खय॑न्ति॒ पर्व॑तान् ति॒रः स॑मु॒द्रम॑र्ण॒वम् । म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ७ ॥
१९३ आ ये त॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभि॑स्ति॒रः स॑मु॒द्रमोज॑सा । म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ८ ॥
१९४ अ॒भि त्वा॑ पू॒र्वपी॑तये सृ॒जामि॑ सो॒म्यं मधु॑ । म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ९ ॥

अर्थ— [१८८] (ये अद्रुहः विश्वे देवासः) जो द्रोह न करनेवाले सब देव हैं (महः रजसः विदुः) वे इस बडे अन्तरिक्षको जानते हैं (अग्ने मरुद्भिः आ गहि) हे अग्ने ! अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ ३ ॥

[१८९] हे अग्ने ! (ये ओजसा अनाधृष्टासः) जो अपने विशाल बलके कारण अजेय (उग्राः) और उग्रवीर हैं (अर्कं आनृचुः) और जो प्रकाशके स्थानतक पहुंचते हैं (मरुद्भिः आ गहि) अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ ४ ॥

[१९०] हे अग्ने ! (ये शुभ्राः) जो गौर वर्णवाले (घोरवर्पसः) बडे शरीरवाले (सुक्षत्रासः रिशादसः) उत्तम पराक्रमी और शत्रुका नाश करनेवाले हैं (मरुद्भिः आ गहि) अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ ५ ॥

[१९१] हे अग्ने ! (ये देवासः) जो ये मरुत् देव (नाकस्य अधि रोचने दिवि आसते) सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित हुए द्युलोकमें रहते हैं (मरुद्भिः आ गहि) उन मरुतोंके साथ तुम आओ ॥ ६ ॥

[१९२] (ये पर्वतान् ईंखयन्ति) जो पर्वत जैसे मेघोंको उखाड देते हैं (समुद्रं अर्णवं तिरः) और जलराशीको तुच्छ मानते हैं (मरुद्भिः आ गहि) उन मरुतोंके साथ तुम आओ ॥ ७ ॥

[१९३] (ये रश्मिभिः आ तन्वन्ति) जो किरणोंसे व्यापते हैं (ओजसा समुद्रं तिर) और जो बलसे समुद्रको भी तुच्छ मानते हैं (मरुद्भिः आ गहि) उन मरुतोंके साथ तुम आओ ॥ ८ ॥

[१९४] हे (अग्ने) हे अग्ने ! (पूर्वपीतये त्वा) तुम्हारे प्रथम रसपानके लिये (सोम्यं मधु अभि सृजामि) यह मधुर सोमरस मैं अर्पण करता हूं, (मरुद्भिः आ गहि) अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— ये मरुत् स्वयं किसीसे द्रोह नहीं करते तथा सब विशाल स्थानोंको जानते हैं । ये बलवान् होनेके कारण अजेय हैं, बडे उग्र और शूरवीर हैं और तेजस्वी होनेके कारण सूर्यके समान हैं ॥ ३–४ ॥

सभी मरुत् गौरवर्णवाले, विशाल शरीरवाले और शूरवीरतामें अद्वितीय हैं तथा शत्रुका नाश करनेमें बडे प्रवीण हैं, ये द्युलोकमें सदा सूर्यके समान चमकते रहते हैं ॥ ५–६ ॥

ये इतने शूरवीर हैं कि पर्वतोंको भी तुच्छ समझकर उखाड फेंकते हैं और समुद्रको भी आसानीसे लांघ जाते हैं अर्थात् इतने ज्यादा उत्साही हैं कि उनके रास्तेमें कोई भी विघ्न टिक नहीं पाता । ऐसे ही राष्ट्रके सैनिक उत्साही चाहिए कि जो विघ्नोंकी परवाह न करते हुए आगे बढते चले जायें ॥ ७ ॥

ये अपने तेज और प्रभावके कारण सर्वत्र व्याप्त हैं अर्थात् सर्वत्र बिना अडचनके सब जगह आते जाते हैं । ऐसे ये वीर मरुत् अग्निकी सहायता करनेके लिए सदा तैय्यार रहते हैं । इसी प्रकार राष्ट्रके सैनिक प्रभावशाली हों तथा अपने राज्यमें सर्वत्र घूमते हुए ज्ञानीकी सहायता करें और प्रजायें भी इनका यथोचित सत्कार करें ॥ ८–९ ॥

(२०)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- ऋभवः । छन्दः- गायत्री ।)

१९५ अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया । अकारि रत्नधातमः ॥ १ ॥
१९६ य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी । शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥
१९७ तक्षन् नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् । तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥
१९८ युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः । ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥
१९९ सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता । आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥
२०० उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥
२०१ ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥

[२०]

अर्थ— [१९५] (विप्रेभिः आसया) ज्ञानियोंने अपने मुखसे (अयं रत्नधातमः स्तोमः) इस रत्नोंको देनेवाले स्तोत्रका (जन्मने देवाय अकारि) दिव्य जन्मको प्राप्त होनेवाले ऋभुदेवोंके लिये पाठ किया ॥ १ ॥

[१९६] (ये) जिन्होंने (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (वचोयुजा हरी) शब्दके इशारेसे चलनेवाले दो घोडे (मनसा ततक्षुः) चतुराईसे बनाये, सिखाये; (शमीभिः यज्ञं आशत) वे ऋभु देव शमी अर्थात् चमसादिके साथ यज्ञमें आते हैं ॥ २ ॥

[१९७] (नासत्याभ्यां) अश्विदेवोंके लिये उन्होंने (परिज्मानं सुखं रथं) उत्तम गतिमान् सुखदायी रथका (तक्षन्) निर्माण किया (धेनुं सबर्दुघां तक्षन्) और गौको उत्तम दुधारू बना दिया ॥ ३ ॥

[१९८] (सत्यमन्त्राः ऋजूयवः) सत्य विचारवाले सरल स्वभावी (विष्टी ऋभवः) चारों ओर जानेवाले ऋभुओंने (पितरा पुनः युवाना अक्रत) मातापिताको पुनः जवान बना दिया ॥ ४ ॥

[१९९] (वः मदासः) हे ऋभुओ ! आपको आनन्द देनेवाले सोमरस (मरुत्वता इन्द्रेण,) मरुतोंके साथ इन्द्रके (च राजभिः आदित्येभिः च) और चमकनेवाले आदित्योंके साथ (सं अग्मत) तुमको दिये जाते हैं ॥ ५ ॥

[२००] (उत देवस्य त्वष्टुः निष्कृतं नवं त्यं चमसं) त्वष्टाके द्वारा बनाया यह नया ही चमस था (पुनः चतुरः अकर्त) ऋभुओंने उस एक हीको चार प्रकारका बना दिया ॥ ६ ॥

[२०१] (ते सुशस्तिभिः) वे तुम स्तुतियोंसे प्रशंसित होकर (नः सुन्वते) हमारे सोमयाग करनेवाले ऋत्विजोंमेंसे (एकं एकं त्रिः साप्तानि रत्नानि आ धत्तन) प्रत्येकके लिये इक्कीस रत्नोंको धारण कराओ ॥ ७ ॥

भावार्थ— ये ऋभुदेव कारीगर हैं, ये घोडोंको शिक्षित करते हैं और ऐसा बना देते हैं कि वे इशारेके अनुसार ही चलने लगते हैं। इन्होंने ऐसे घोडे इन्द्रको प्रदान किए थे । ऐसे ऋभुओंका सब ज्ञानी सत्कार करते हैं। ऐसे उत्तम कारीगरोंका सत्कार राष्ट्रमें होना ही चाहिए ॥ १–२ ॥

अश्विनीके लिए इन्होंने उत्तम रथ बनाया, जो बडा सुखदायी था और चारों ओर चलाया जा सकता था । इन्होंने गायोंकोभी दुधारु बनाया । गायोंको दुधारु बनानेकी विद्या ऋभुओंको आती थी ॥ ३ ॥

सरल स्वभाववाले और सत्यमार्ग पर चलनेवाले इनके पास विद्या भी थी, जिससे ये बूढोंको भी जवान बना देते थे । वे जीवनविद्या और औषधि प्रयोगमें भी प्रवीण थे । इस कारण इन्हें इन्द्र और आदित्योंके साथ सोम दिया जाता था ॥ ४–५ ॥

२०२ अधारयन्त वह्नयो ऽभजन्त सुकृत्यया । भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥

(२१)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- गायत्री ।)

२०३ इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित् स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥

२०४ ता यज्ञेषु प्र शंसते-न्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥

२०५ ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

२०६ उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥

२०७ ता महान्ता सदसस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥

२०८ तेन सत्येन जागृत-मधि प्रचेतुने पदे । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

---

[२१]

अर्थ— [२०२] (वह्नयः) अग्निके समान तेजस्वी ऋभु देवोंने (सुकृत्यया) अपने उत्तम कर्मोंसे (देवेषु) देवोंमें स्थान प्राप्त करके (यज्ञियं भागं अधारयन्त अभजन्त) यज्ञका हविर्भाग प्राप्त किया और उसका सेवन भी किया ॥ ८ ॥

[२०३] (इह इन्द्राग्नी उप ह्वये) इस यज्ञमें इन्द्र और अग्निको मैं बुलाता हूं (तयोः इत्) उनकी ही (स्तोमं उश्मसि) स्तुति करना चाहता हूं (ता सोमपातमा सोमं) वे सोमपान करनेवाले यहां सोमरस पीयें ॥ १ ॥

[२०४] हे (नरः) हे मनुष्यो ! (ता इन्द्राग्नी) उन इन्द्र और अग्निकी (यज्ञेषु प्रशंसत) यज्ञोंमें प्रशंसा करो (ता गायत्रेषु गायत) गायत्री छन्दमें उनके काव्योंका गान करो ॥ २ ॥

[२०५] (मित्रस्य प्रशस्तये) मित्रकी प्रशंसा करनेके समान (ता सोमपा) उन सोमपान करनेवाले (ता इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्निको (सोमपीतये हवामहे) सोमपानके लिये ही हम बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[२०६] (इदं सुतं सवनं) सोमरस निकालनेपर (उग्रा सन्ता उप हवामहे) उन उग्रवीरोंको बुलाते हैं । (इन्द्राग्नी इह आ गच्छतां) वे इन्द्र और अग्नि यहां आयें ॥ ४ ॥

[२०७] (ता महान्ता सदसस्पती) वे इन्द्र और अग्नि बडे सभापति हैं (इन्द्राग्नी रक्षः उब्जतां) वे राक्षसोंको सरल स्वभाववाले बना देवें । (अत्रिणः अप्रजाः सन्तु) वे सर्व भक्षक (राक्षस न सुधरें तो) प्रजारहित हो जावें ॥ ५ ॥

[२०८] हे (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि! (प्रचेतुने पदे) चित् प्रकाशसे उज्ज्वल हुए स्थानमें (तेन सत्येन अधि जागृतं) उसी सत्यके साथ तुम जागते रहो (शर्म यच्छतं) और हमें सुख प्रदान करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— ये ऋभुगण अपने उपासकोंको हर तरहके रत्न एवं धनैश्वर्य आदि प्रदान करते हैं। अग्निके समान तेजस्वी इन ऋभुओंने अपने कर्मोंसे देवोंमें स्थान प्राप्त किया और हविर्भाग ग्रहण किया। इस प्रकार हर मनुष्य अपने कर्मोंसे उच्च स्थान प्राप्त कर सकता है ॥ ६-८ ॥

इन्द्र और अग्नि दोनों देव सोमपान करनेवाले हैं, स्तुतिके योग्य हैं । उपासक यज्ञोंमें इनकी प्रशंसा करते हैं और गायत्री छन्दके द्वारा उनके यशका गान करते हैं ॥ १-२ ॥

ये इन्द्र और अग्नि बडे वीर हैं, शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं । ये मित्रके समान सदा सबका हित करनेवाले हैं । इस लिए सब उपासक इनको अपने पास बुलाते हैं । इसी प्रकार सबके हित करनेवालेका सर्वत्र सत्कार होना चाहिए ॥ ३-४ ॥

ये दोनों देव बडे श्रेष्ठ सभापति हैं । सभापतिका कार्य वे उत्तम रीतिसे निभाते हैं, ये दोनों मांसभक्षी राक्षसों पर ऐसा शासन करते हैं कि वे सुधर जाते हैं । सदा ज्ञानसे प्राप्त होने योग्य स्थानमें सत्यके साथ जाग्रत रहते हैं । इसी प्रकार नेताको चाहिए कि वह भी सदा सत्यका पालन करता हुआ राक्षसों और दुष्ट स्वभाववालोंको उत्तम स्वभाववाला बनावे ॥ ५-६ ॥

(२२)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवताः- १-४ अश्विनौ, ५-८ सविता; ९-१० अग्निः; ११ देव्यः; १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्यः; १३-१४ द्यावापृथिव्यौ; १५ पृथिवी; १६ विष्णुर्देवा वा; १७-२१ विष्णुः । छन्द- गायत्री ।)

२०९ प्रातर्युजा वि बोधया॒श्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
२१० या सुरथा रथीतमो॒भा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥
२११ या वां कशा मधुमत्य॒श्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥
२१२ नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥
२१३ हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥
२१४ अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥
२१५ विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [२०९] (प्रातर्युजौ वि बोधय) प्रातःकालके समयमें जागनेवाले अश्विदेवोंको जगाओ । (अश्विनौ इह) वे अश्विदेव इस यज्ञमें (अस्य सोमस्य पीतये आ गच्छतां) इस सोमरसका पान करनेके लिये पधारें ॥ १ ॥

[२१०] (या उभा अश्विना) ये दोनों अश्विदेव (सुरथा रथितमा) सुंदर रथसे युक्त हैं, वे सबसे श्रेष्ठ रथी हैं, (दिविस्पृशा) और वे अपने रथसे आकाशमें संचार करते हैं, (देवा ता हवामहे) इन दोनों देवोंको हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[२११] हे (अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! (वां या मधुमती सूनृतावती कशा) तुम्हारा जो मीठा सुंदर शब्द करनेवाला चाबुक है, (तया सह यज्ञं मिमिक्षतं) उसके साथ यज्ञमें आओ ॥ ३ ॥

[२१२] हे (अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! (सोमिनः गृहं) सोमयाग करनेवालेके घरके पास (यत्र रथेन गच्छथः) जहां अपने रथसे तुम जाते हो (वां दूरके न अस्ति) वह तुम्हारे लिये बिलकुल दूर नहीं है ॥ ४ ॥

[२१३] (हिरण्यपाणिं सवितारं) सुवर्णके समान किरणोंवाले सविताको (ऊतये उप ह्वये) अपनी सुरक्षा करनेके लिये मैं बुलाता हूं । (सः देवता पदं चेत्ता) वही देवता प्राप्तव्य स्थानका बोध करा देता है ॥ ५ ॥

[२१४] (अपां नपातं) जलोंको न प्रवाहित करनेवाले (सवितारं उप स्तुहि) सविताकी स्तुति करो (तस्य व्रतानि उश्मसि) इसके लिये हम व्रतोंका पालन करना चाहते हैं ॥ ६ ॥

[२१५] (वसोः) निवासके कारणीभूत (चित्रस्य राधसः विभक्तारं) नाना प्रकारके धनोंके दाता (नृचक्षसं सवितारं हवामहे) मनुष्योंके लिये प्रकाशके प्रदाता, सूर्यदेवका हम आवाहन करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— ये दोनों अश्विनौ देव प्रातःकाल जागनेवाले तथा उत्तम रथ पर चढकर द्युलोकमें संचार करनेवाले हैं । इसी प्रकार राष्ट्रके वैद्योंको चाहिए कि वे रोज प्रातःकाल उत्तम यानमें बैठकर राष्ट्रनिवासियोंके स्वास्थ्यका निरीक्षण करें ॥१-२॥

इन अश्विनौका चाबुक बहुत मीठा और शब्द करनेवाला है, इस मीठे ताडनसे वे सब रोगियोंको स्वास्थ्य प्रदान करते हैं । इस चाबुकके शब्दसे अश्विनी देवोंके आगमनकी सूचना मिलती है । इनका रथ वेगवान् होनेसे इनके लिए कोई स्थान दूर नहीं है । जहां इन्हें पहुंचना होता है, वहां शीघ्र ही ये पहुंच जाते हैं ॥ ३-४ ॥

सोनेके समान अपनी सुनहरी किरणोंसे सूर्य सब रोग बीजोंको दूर करके आरोग्य बढाता है और दीर्घायु प्रदान करता है । वही प्राप्त करने योग्य स्थानका ज्ञान कराता है । सूर्य जब इच्छा करता है, तब पानी बरसाता है । यह अपनी कृपा उन्हीं लोगों पर करता है, जो इसके व्रतोंका पालन करते हैं ॥ ५-६ ॥

२१६ सखा॑य आ नि षी॑दत सवि॒ता स्तोम्यो॒ नु नः॑ । दाता॒ राधां॑सि शुम्भति ॥ ८ ॥
२१७ अग्ने॒ पत्नी॑रि॒हा व॑ह दे॒वाना॑मुश॒तीरुप॑ । त्वष्टा॑रं॒ सोम॑पीतये ॥ ९ ॥
२१८ आ ग्ना अ॑ग्न इ॒हाव॑से होत्रां॑ यविष्ठ॒ भार॑तीम् । वरू॑त्रीं धि॒षणां॑ वह ॥ १० ॥
२१९ अ॒भि नो॑ दे॒वीरव॑सा म॒हः शर्म॑णा नृ॒पत्नीः॑ । अच्छि॑न्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११ ॥
२२० इ॒हेन्द्रा॒णीमुप॑ ह्वये वरुणा॒नीं स्व॒स्तये॑ । अ॒ग्नायीं॒ सोम॑पीतये ॥ १२ ॥
२२१ म॒ही द्यौः पृ॑थि॒वी च॑ न इ॒मं य॒ज्ञं मि॑मिक्षताम् । पि॒पृ॒तां नो॒ भरी॑मभिः ॥ १३ ॥
२२२ तयो॒रिद् घृ॒तव॒त् पयो॒ विप्रा॑ रिहन्ति धी॒तिभिः॑ । ग॒न्ध॒र्वस्य॑ ध्रु॒वे प॒दे ॥ १४ ॥

अर्थ— [२१६] हे (सखायः) हे मित्रो ! (आ निषीदत) आ कर बैठ जाओ (नः सविता नु स्तोम्यः) हम सबके लिये यह सविता स्तुति करने योग्य है। (राधांसि दाता शुम्भति) सिद्धियोंके प्रदाता सूर्यदेव अब प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ८ ॥

[२१७] (हे अग्ने) हे अग्ने! (उशतीः) इधर आनेकी इच्छा करनेवाली (देवानां पत्नीः) देवोंकी पत्नियोंको (इह उप आ वह) यहाँ ले आओ (त्वष्टारं सोमपीतये) तथा त्वष्टाको सोमपान करनेके लिये यहां ले आओ ॥ ९ ॥

[२१८] (हे अग्ने) हे अग्ने ! (ग्नाः) देवपत्नियोंको (अवसे) हमारी सुरक्षा करनेके लिये (इह आ वह) यहां ले आओ। (हे यविष्ठ) हे तरुण अग्ने ! (अवसे) हमारी सुरक्षाके लिये (होत्रां भारतीं वरूत्रीं, धिषणां) देवोंको बुलानेवाली, भरणपोषण करनेवाली, सुरक्षा करनेवाली बुद्धिको यहां ले आओ ॥ १० ॥

[२१९] (नृपत्नीः अच्छिन्नपत्राः देवीः) जिनके आनेके साधन अविच्छिन्न हैं और जो मनुष्योंका पालन करती हैं, वे देवपत्नियाँ (अवसा महः शर्मणा) हमारी सुरक्षा करके बडे सुखके साथ (नः अभि सचन्तां) हमारे पास इस यज्ञमें आ जायँ ॥ ११ ॥

[२२०] (इह इन्द्राणीं वरुणानीं अग्नायीं) यहां इन्द्रपत्नी, वरुणपत्नी और अग्निपत्नीको (स्वस्तये) अपनी सुरक्षाके लिये (सोमपीतये) और उनके सोमपानके लिये (उप ह्वये) बुलाता हूँ ॥ १२ ॥

[२२१] (मही द्यौः पृथिवी च) महान् द्युलोक और बडी पृथ्वी (नः इमं यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (मिमिक्षतां) उत्तम रससे–जलसे सिंचित करें और (भरीमाभिः नः पिपृतां) पोषणों द्वारा हमें पूर्ण करें ॥ १३ ॥

[२२२] (गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे) गन्धर्व लोकके ध्रुव स्थानमें अर्थात् अन्तरिक्षमें (तयोः इत्) इन दोनों द्यु और पृथ्वीके मध्यमें (घृतवत् पयः) घीके समान जल (विप्राः धीतिभिः रिहन्ति) ज्ञानी लोक अपने कर्मों और बुद्धियोंके बलसे प्राप्त करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ— सूर्य इस शरीरमें नेत्र बना हुआ है, इसलिए यह सबके लिए नेत्रके समान है । इसके प्रकाशमें मनुष्य अच्छी तरह देख सकता है । यह सूर्य अपनी सम्पत्ति प्रकाश सभी वृक्षवनस्पति एवं प्राणीमात्रको समान रूपसे देता है । इसी प्रकार मनुष्यको अपनी धन सम्पत्तिका संग्रह नहीं करना चाहिए, अपितु सबमें समान रूपसे बांट देना चाहिए । तभी वह सूर्यकी तरह स्तुतिके योग्य होगा ॥ ७–८ ॥

त्वष्टा और देवपत्नियोंका सोम देकर सत्कार करना चाहिए । तथा उनकी पूजा करके ऐसी बुद्धि प्राप्त करनी चाहिए, जो देवोंको बुलानेवाली, भरणपोषण करनेवाली और सुरक्षा करनेवाली हो । इसी प्रकार राष्ट्रमें कारीगर और विद्वानोंकी पत्नियोंका भी सत्कार करना चाहिए और उनकी संगतिसे ऐसी उत्तम बुद्धि प्राप्त करनी चाहिए, जो श्रेष्ठ और उत्तम विद्वानोंको आकर्षित कर सके, तथा उस मनुष्यका भरणपोषण करके उसकी रक्षा कर सके ॥ ९–१० ॥

इन्द्रपत्नी, वरुणपत्नी और अग्निपत्नी ये सभी अपने उपासककी रक्षा करनेवाली हैं, इनके मार्ग कहीं भी अवरुद्ध नहीं हैं, ये सभीके यज्ञमें जाती हैं । उसी प्रकार राजाकी, वैश्यकी और ब्राह्मणकी पत्नियोंके मार्ग कभी भी राष्ट्रमें अवरुद्ध नहीं होने चाहिए । ये सभी राष्ट्रकी सुरक्षा करनेवाली हैं ॥ ११–१२ ॥

२२३ स्योना पृथिवि भवा नृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥
२२४ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥
२२५ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥
२२६ त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥
२२७ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥

अर्थ— [२२३] (हे पृथिवि) हे पृथ्वी! (स्योना, अनृक्षरा) तू सुखदायिनी, कण्टकरहित (निवेशिनी भव) और हमारा निवास करानेवाली बन (सप्रथः शर्म नः यच्छ) और हमें विस्तृत सुख दे ॥ १५ ॥

[२२४] (विष्णुः) विष्णुने (सप्त धामभिः) सातों धामोंसे (यतः पृथिव्याः वि चक्रमे) जिस पृथ्वीपर विक्रम किया (अतः नः देवाः अवन्तु) वहांसे हमारी सब देव सुरक्षा करें ॥ १६ ॥

[२२५] (विष्णुः इदं वि चक्रमे) विष्णुने यह विक्रम किया। (त्रेधा पदं नि दधे) उसने तीन प्रकारसे अपने पद रखे थे। (अस्य पांसुरे समूढं) पर इसका एक पद धूली प्रदेशमें (अन्तरिक्षमें) गुप्त हुआ है ॥ १७ ॥

[२२६] (अदाभ्यः गोपाः विष्णुः) न दबनेवाला, सबका रक्षक विष्णु (धर्माणि धारयन्) सब धर्मोंको धारण करता हुआ (अतः त्रीणि पदा वि चक्रमे) यहांसे तीन पद रखनेका विक्रम करता है ॥ १८ ॥

[२२७] (विष्णोः कर्माणि पश्यत) विष्णुके ये कर्म देखो (यतः व्रतानि पस्पशे) उनसे ही हम अपने व्रतोंको किया करते हैं (इन्द्रस्य युज्यः सखा) वह विष्णु इन्द्रका सुयोग्य मित्र है ॥ १९ ॥

भावार्थ— जिस यज्ञमें ये पत्नियां आती हैं; वहां द्युलोक और पृथ्वीलोक उत्तम उत्तम रस सींचते हैं और पोषण युक्त पदार्थ देते हैं। तथा ज्ञानी लोग अपने कर्म और बुद्धिके बलपर सभी स्थलसे घी आदि पोषणयुक्त पदार्थ प्राप्त करते हैं। उनके लिए यह पृथ्वी सुख देनेवाली, विघ्नरहित और सुखसे निवासके योग्य होती है। जो मनुष्य अपनी उत्तम बुद्धिसे उत्तम उत्तम कर्म करते हैं, वे संसारके सभी सुखोंको प्राप्त करते हैं ॥ १३–१५ ॥

जो सब विश्वको व्यापता है, वह व्यापक देव विष्णु कहलाता है। यह व्यापक देव सात धामोंसे पृथ्वीपर विक्रम करता है। पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रा और महत्तत्व ये सात धाम हैं, जहां यह व्यापक प्रभु अपना विक्रम दिखाता है। इसका पराक्रम यहां सतत चल ही रहा है। सब नक्षत्रादि तेजोलोक तथा अग्न्यादि देव इसी व्यापक प्रभुकी महिमासे अपना अपना कार्य करनेमें समर्थ हुए हैं। उस व्यापक देवका सामर्थ्य लेकर ये सब देव हमारी सुरक्षा करें ॥१६॥

यह व्यापक प्रभु ही यह सब, जो इस विश्वमें दिखाई देता है, पराक्रम करता है। जो यहां दीख रहा है वह सब उसीका पराक्रम अथवा उसीका सामर्थ्य ही है। सात्विक, राजस और तामस ऐसे तीन स्थानोंमें तीन पद उन्होंने रखे हुए हैं। द्युलोक सात्विक, अन्तरिक्ष लोक राजस और भूलोक तमोगुण प्रधान है, यहां इसके तीन पद कार्य करते हैं। इनमें बीचके अन्तरिक्षमें जो इनका कार्य है वह गुप्त है। द्युलोक प्रकाशित है, भूलोकपर तो मनुष्य कार्य कर ही रहे हैं अतः ये दो लोक स्पष्ट दीख रहे हैं। पर बीचका अन्तरिक्ष लोकका वायु अदृश्य है, विद्युत् भी अदृश्य ही रहती है, पर कभी कभी दीखती है। इस तरह बीचके स्थानमें होनेवाला उसका कार्य दीखता नहीं ॥ १७ ॥

यह व्यापक प्रभु किसीसे कदापि दबनेवाला नहीं है। यही सबकी सुरक्षा करता है और यही सबमें व्यापक है, अतः प्रत्येक वस्तुमें विद्यमान है। ये सब कार्य वही करता है। भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें जो इनके तीन पद कार्य कर रहे हैं उनको देखो और उसका सामर्थ्य जानो ॥ १८ ॥

इस व्यापक प्रभुके ये सब कार्य देखो। ये कार्य सब विश्वमें सतत चल रहे हैं। इसीके व्यापक कार्योंके आश्रयसे मनुष्यके कार्य होते हैं। उसके किये कर्मोंका आश्रय करके ही मनुष्य अपने कार्य करता है जैसे उसकी अग्निसे मनुष्य अपने अन्न पकाता है, उसके बीजसे यह खेती करता है इत्यादि, यह इन्द्रका योग्य मित्र है। व्यापक प्रभु जीवका मित्र है ॥ १९ ॥

२२८ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥
२२९ तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ २१ ॥

(१३)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवताः- १ वायुः; २-३ इन्द्रवायू; ४-६ मित्रावरुणौ; ७-९ इन्द्रो मरुत्वान्; १०-१२ विश्वे देवाः; १३-१५ पूषा; १६-२२, २३ (पूर्वार्धस्य) आपः; २३ (उत्तरार्धस्य), २४ अग्निः। छन्दः- १-१८ गायत्री; १९ पुर उष्णिक्, २१ प्रतिष्ठा; २०, २२-२४ अनुष्टुप्।)

२३० तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे । वायो तान् प्रस्थितान् पिब ॥ १ ॥
२३१ उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
२३२ इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये । सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥
२३३ मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

अर्थ— [२२८] (विष्णोः तत् परमं पदं) विष्णुका वह परम स्थान (दिवि आततं चक्षुः इव) द्युलोकमें फैले हुए प्रकाशके समान (सूरयः सदा पश्यन्ति) ज्ञानी सदा देखते हैं ॥ २० ॥

[२२९] (विष्णोः यत् परमं पदं) विष्णुका जो पद है (तत् विपन्यवः) उसे कर्मकुशल (जागृवांसः विप्रासः) जाग्रत रहनेवाले ज्ञानी (सं इन्धते) सम्यक् प्रकाशित हुआ देखते हैं ॥ २१ ॥

[२३]

[२३०] (हे वायो) हे वायो! (इमे सोमासः सुताः) ये सोमरस निचोडे गए हैं (तीव्राः आशीर्वन्तः) ये तीखे हैं अतः इनमें दुग्धादि मिलाये हैं। (आ गहि) यहाँ आओ (प्रस्थितान् तान् पिब) और यहां रखे हुए इन रसोंको पीओ ॥ १ ॥

[२३१] (दिविस्पृशा) द्युलोकको स्पर्श करनेवाले (उभा देवा इन्द्रवायू) इन दोनों इन्द्र और वायु देवोंको (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरसके पान करनेके लिये (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[२३२] (सहस्राक्षा) सहस्रों आंखोंवाले (धियः पती) बुद्धिके अधिपति (मनोजुवा) मन जैसे वेगवान् (इन्द्रवायू) ये इन्द्र और वायु हैं, (विप्राः ऊतये हवन्ते) इनको ज्ञानी लोग अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[२३३] (वयं) हम (मित्रं वरुणं च) मित्रको और वरुणको (सोमपीतये हवामहे) सोमपानके लिये बुलाते हैं। (जज्ञाना पूतदक्षसा) वे दोनों बडे ज्ञानी और पवित्रकार्यके लिये अपने बलका उपयोग करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस व्यापक प्रभुका वह परम स्थान है जो आकाशमें है जैसे प्रकाशित हुए सूर्यको मानव देखते हैं, उसी तरह ज्ञानी लोग सदा उसे देखते हैं। प्रत्येक वस्तुमें ये उसके कार्यको स्पष्टताके साथ सदा देखते हैं ॥ २० ॥

व्यापक प्रभुका वह स्थान है कि जो कर्मकुशल, जगनेवाले ज्ञानी सदा प्रकाशित अग्निके समान सर्वत्र प्रकाशित रूपमें देखते हैं ॥ २१ ॥

सोमरस तीखे होते हैं। अतः वैसे ही उसका पान करना अशक्य है। इसीलिए उसमें जल, दूध, दही आदि मिला कर पिया जाता है। कुछ शहद भी मिलाते हैं और इस प्रकार इसे तैय्यार करके इसकी आहुति डाली जाती है ॥ १ ॥

इन्द्र और वायु ये दोनों क्षत्रिय देव हैं। ये आकाशमें विमानोंसे संचार करनेवाले, हजारों आंखोंवाले अर्थात् हजारों गुप्तचरोंके द्वारा अपने तथा शत्रु देशकी जानकारी रखते हैं और अपनी राज्यव्यवस्था करते हैं। ये श्रेष्ठ राजाओंके गुण हैं ॥ २-३ ॥

मित्र और वरुण ये राजाके गुण हैं। राजा सबके हितकर्ता और वरण किए जानेके योग्य हों। ये दोनों देव ज्ञानी और पवित्र कार्य करनेमें ही अपने बलका उपयोग करते हैं, कभी भी बुरे कार्यमें अपनी शक्ति नहीं गंवाते ॥ ४ ॥

*

२३४ ऋतेन यावृतावृधा — वृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥
२३५ वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥
२३६ मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥
२३७ इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥
२३८ हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥
२३९ विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः ॥ १० ॥
२४० जयतामिव तन्यतु — र्मरुतामेति धृष्णुया । यच्छुभं याथना नरः ॥ ११ ॥
२४१ हस्काराद् विद्युतस्पर्य — ऽतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृळयन्तु नः ॥ १२ ॥

अर्थ— [२३४] (यौ ऋतेन ऋतावृधौ) जो सरलतासे सन्मार्गकी वृद्धि करनेवाले (ऋतस्य ज्योतिषः पती) और सन्मार्गकी ज्योतिके पालनकर्ता हैं (ता मित्रावरुणा हुवे) उन मित्र और वरुणको मैं बुलाता हूं ॥ ५ ॥

[२३५] (वरुणः प्राविता भुवत्) वरुण हमारी विशेष सुरक्षा करता है (मित्रः विश्वाभिः ऊतिभिः) मित्र भी सब सुरक्षाके साधनोंसे हमारी सुरक्षा करता है, वे दोनों (नः सुराधसः करतां) हमें उत्तम धनोंसे युक्त करें ॥ ६ ॥

[२३६] (मरुत्वन्तं इन्द्रं) मरुतोंके साथ इन्द्रको (सोमपीतये आ हवामहे) हम सोमपानके लिये बुलाते हैं। (गणेन सजूः तृम्पतु) वह मरुद्गणके साथ तृप्त हो ॥ ७ ॥

[२३७] (हे विश्वे देवासः) हे सब देवो मरुद्गणो ! (इन्द्रज्येष्ठाः पूषरातयः) तुम्हारे अन्दर इन्द्र श्रेष्ठ है, पूषाके समान तुम्हारे दान हैं, (मरुद्गणाः) ऐसे मरुतो (मम हवं श्रुत) मेरी प्रार्थना सुनो ॥ ८ ॥

[२३८] (हे सुदानवः) हे उत्तम दाता मरुतो ! (सहसा युजा इन्द्रेण) बलवान् और अपने साथी इन्द्रके साथ रहकर (वृत्रं हतं) वृत्रका वध करो (दुःशंसः नः मा ईशत) कोई दुष्ट हमारा स्वामी न बन बैठे ॥ ९ ॥

[२३९] (विश्वान् मरुतः देवान्) सब मरुत् देवोंको (सोमपीतये हवामहे) सोमपानके लिये हम बुलाते हैं (हि उग्राः पृश्निमातरः) वे बडे शूरवीर हैं और भूमिको माता मानते हैं ॥ १० ॥

[२४०] (यत् नरः शुभं याथन) जब वे नेता शुभ कार्यके लिये आगे बढते हैं तब (जयतां इव) विजयी लोगोंकी तरह (मरुतां तन्यतुः) मरुतोंका शब्द (धृष्णुया एति) बडी वीरताके साथ होता रहता है ॥ ११ ॥

[२४१] (हस्कारात् विद्युतः अतः परि जाताः) प्रकाशित हुई विद्युत्में उत्पन्न हुए (मरुतः) मरुद्वीर (नः अवन्तुः) हमारी रक्षा करें (मृळयन्तु) और हमें सुख देवें ॥ १२ ॥

भावार्थ— ये दोनों सरल मार्गसे सत्यकी वृद्धि करते हैं। सत्य एवं उन्नतिके लिए कभी भी ये कुमार्गका सहारा नहीं लेते। इस प्रकार ये उत्तम मार्गसे सत्यकी ज्योतिकी रक्षा करते हैं। सत्यके मार्ग पर चलनेवाला सदा ज्योतिर्युक्त और तेजस्वी होता है ॥ ५ ॥

ये अपने उपासकोंकी हर तरहसे रक्षा करते हैं, इनके पास सुरक्षाके अत्युत्तम साधन हैं। जिसकी ये सुरक्षा करते हैं उसे ये सुराधस् अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य या उत्तम सिद्धि प्रदान करते हैं ॥ ६ ॥

मरुद्गण अर्थात् राष्ट्रके सैनिक अपने राजाके साथ आनन्दित हों, तथा इन्द्र अर्थात् राजाके समान श्रेष्ठ तथा पूषा अर्थात् पोषण करनेवाले वैश्यके समान सैनिक अपनी वीरतासे राष्ट्रके शत्रुओंका वध करें, ताकि कोई दूसरा दुष्ट राष्ट्रका स्वामी न बन सके ॥ ७–९ ॥

मरुत् देव बडे शूरवीर और भूमिको माता मानकर उसकी हरतरहसे सुरक्षा करते हैं। और जब वे किसी शुभ कामको करनेके लिए जाते हैं, तब वे बडे हर्षित होते हैं और तब उनका शब्द बहुत बडा होता है। ये विद्युत्से उत्पन्न होते हैं। विद्युत्से उत्पन्न होनेकी बातसे ऐसा प्रतीत होता है कि ये मरुत् मेघ या वर्षाकी धारायें हैं ॥ १०–१२ ॥

२४२ आ पूषञ्चित्रबर्हिष — माघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम् ॥ १३ ॥
२४३ पूषा राजानमाघृणि — रपगूळ्हं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥ १४ ॥
२४४ उतो स मह्यमिन्दुभिः षड् युक्ताँ अनुसेषिधत् । गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥ १५ ॥
२४५ अम्बयो यन्त्यध्वभि — र्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ १६ ॥
२४६ अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥
२४७ अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ १८ ॥
२४८ अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषज — मपामुत प्रशस्तये । देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥

अर्थ— [२४२] (हे आघृणे आज पूषन्) हे दीप्तिमन् शीघ्रगन्ता पूषा देव! (चित्रबर्हिषं धरुणं) तुम सुन्दर तेजवाले तथा धारकशक्ति बढानेवाले सोमको (दिवः आ) द्युलोकसे उसी प्रकार ले आओ (यथा नष्टं पशुं आ) जिस तरह गुम हुए पशुको ढूंढकर लाते हैं ॥ १३ ॥

[२४३] (आघृणिः पूषा) तेजस्वी पूषाने (अपगूळ्हं, गुहाहितं) छिपे हुए, गुहामें रहनेवाले, (चित्रबर्हिषं राजानं) विचित्र सुगंधिवाले सोम राजाको (अविन्दत्) प्राप्त किया ॥ १४ ॥

[२४४] (उतो स मह्यं) और वह मेरे लिये (इन्दुभिः युक्तान् षट्) सोमोंसे युक्त छः ऋतुओंको (अनुसेषिधत्,) बारबार उसी तरह लाया, (गोभिः यवं न चर्कृषत्) जिस तरह किसान बैलोंसे बारबार खेत जोतता है ॥ १५ ॥

[२४५] (अध्वरीयतां जामयः) यज्ञ करनेवालोंके सहायक (अम्बयः) माताओंके समान ये जलप्रवाह (मधुना पयः पृञ्चन्तीः) अपने मधुर रसको दूधमें मिलाकर (अध्वभिः यन्ति) अपने मार्गोंसे जा रहे हैं ॥ १६ ॥

[२४६] (याः अमूः सूर्ये उप) जो यह जल सूर्यके सम्मुख हैं, (याभिः वा सह सूर्यः) अथवा जिनके साथ सूर्य है (ताः नः अध्वरं हिन्वन्तु) वे जलप्रवाह हमारे यज्ञको आनन्दसे प्राप्त हों ॥ १७ ॥

[२४७] (नः गावः यत्र पिबन्ति) हमारी गायें जिस जलका पान करती हैं, (आपः देवीः उपह्वये) उसी जलकी हम प्रशंसा गाते हैं (सिन्धुभ्यः हविः कर्त्वं) नदियोंके लिये हम हवि अर्पण करते हैं ॥ १८ ॥

[२४८] (अप्सु अन्तः अमृतं) जलके भीतर अमृत है, (अप्सु भेषजं) जलमें औषधि गुण हैं (उत अपां प्रशस्तये) ऐसे जलोंकी प्रशंसा करनेके लिये (देवाः वाजिनः भवत) हे देवो! तुम उत्साही बनो ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह सोम उत्तम सुगंधिवाला तथा स्थिर रहनेवाला है। यह द्युलोक अर्थात् आठ दस हजार फुटकी ऊंचाई पर मिलता है। हिमालयके ७–१० हजार फुटकी ऊंचाई पर मिलनेवाला सोम उत्तम माना जाता है। इसलिए इसको प्राप्त करना सरल नहीं है। इसे बहुत ढूंढना पडता है। जैसे खोये हुए पशुको ढूंढना पडता है, उसी प्रकार इसे खोजना पडता है ॥ १३ ॥

यह सोम बहुत गुप्त रहता है। इसके विशेषज्ञ ही इसको पहचान पाते हैं, इसलिए यह गुहामें रहता है। यह तेजस्वी है इसके पत्ते और रस अन्धेरेमें चमकते हैं ॥ १४ ॥

सोम तेज और सामर्थ्य प्रदान करनेवाला है। इसके साथ छहों ऋतुयें रहती हैं अर्थात् यह बारहमासों उगता है। इसलिए यह सदा प्राप्य है और यह बारबार लाया जाता है ॥ १५ ॥

जल सब प्रकारसे मनुष्योंका हित करता है। जैसे माताएं और बहिनें हित करती हैं, वैसाही जल प्राणियोंका हित करता है ॥ १६ ॥

जल सूर्यके सम्मुख रहे अर्थात् वह सूर्य-किरणोंके साथ संबंध रखे, सूर्य-किरणें उसपर पडती रहें। ऐसा जल हिंसा नहीं करता अर्थात् अनेक दोषोंको दूर करता है और प्राणीको सुरक्षित रखता है ॥ १७ ॥

जिन नदियोंमें हमारी गौवें जलपान करती हैं, वे नदियाँ स्तुतिके योग्य हैं, उन नदियोंके लिये हमें हवि अर्पण करना योग्य है ॥ १८ ॥

२४९ अप्सु मे सोमो अब्रवी—दुन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं चं विश्वशंभुव—मापश्च विश्वभेषजीः ॥ २० ॥
२५० आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मर्म । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २१ ॥
२५१ इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि ।
यद् वाहमभिदुद्रोह यद् वा शेप उतानृतम् ॥ २२ ॥
२५२ आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ २३ ॥
२५३ सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ २४ ॥

अर्थ— [२४९] (सोमः मे अब्रवीत्) सोमने मुझसे कहा कि– (अप्सु अन्तः विश्वानि भेषजा) 'जलोंके अन्दर सब औषधियाँ हैं (विश्वशंभुवं अग्निं) सबको सुख देनेवाला अग्नि है (विश्वभेषजीः आपः च) और सब तरहकी दवाईयाँ जल देता है ' ॥ २० ॥

[२५०] हे (आपः) हे जलो ! (मम तन्वे) मेरे शरीरके लिये (वरूथं भेषजं पृणीत) संरक्षक औषधि देओ (ज्योक् च सूर्यं दृशे) जिससे निरोग होकर मैं बहुत कालतक सूर्यको देखता रहूं ॥ २१ ॥

[२५१] (मयि यत् किं च दुरितं) मुझमें जो दोष हो (यत् वा अहं अभिदुद्रोह) जो मैंने द्रोह किया हो (यत् वा शेपे) जो मैंने शाप दिया हो (उत अनृतं) जो असत्य भाषण किया हो (इदं आपः प्र वहत) यह सब दोष ये जल मेरे शरीरसे बाहर बहा कर ले जावें और मैं शुद्ध बन जाऊं ॥ २२ ॥

[२५२] (अद्य आपः अनु अचारिषं) आज जलमें मैं प्रविष्ट हुआ हूं (रसेन सं अगस्महि) मैं इस जलके रसके साथ संमिलित हुआ हूं (हे अग्ने !) हे अग्ने ! (पयस्वान् आ गहि) तू जलमें स्थित है, मेरे पास आ (तं मा वर्चसा सं सृज) और उस मुझे तेजसे युक्त कर ॥ २३ ॥

[२५३] (हे अग्ने) हे अग्ने ! (मा वर्चसा सं सृज) मुझे तेजसे युक्त कर (प्रजया सं, आयुषा सं) प्रजा और दीर्घ आयुसे युक्त कर, (देवाः अस्य मे विद्युः) देव मेरे इस अनुष्ठानको जानें (इन्द्रः ऋषिभिः सह विद्यात्) इन्द्र ऋषियोंके साथ इसको जाने ॥ २४ ॥

भावार्थ— जलमें अमृत है अर्थात् अपमृत्युको दूर करनेका गुण है । जलमें औषधिके गुण धर्म हैं । इसलिए जल प्रशंसाके योग्य है ॥ १९ ॥

औषधियोंका राजा सोम है, उसका कहना है कि ' जलमें सब औषधियां हैं, जलमें विश्वको सुख देनेवाली अग्नि है । और सब दवाइयां जलमें हैं ' ॥ २० ॥

जल मेरे शरीरको औषधि गुण देवे और मुझे दीर्घायु बनावे । मैं दीर्घ आयुतक सूर्यको देखना चाहता हूँ अर्थात् मेरी दृष्टि दीर्घआयु तक उत्तम रहे ॥ २१ ॥

मुझमें जो दोष है, द्रोह भाव है, शाप देनेका दुर्गुण है, असत्य है, वह सब दोष जल मेरे शरीरसे दूर बहा दे । अर्थात् जल चिकित्सासे रोगबीज दूर होते हैं, मनके दुष्ट भाव दूर होते हैं, गालियां देने और असत्य बोलनेकी दुष्प्रवृत्ति दूर होती है । जलसे शरीर निर्दोष होकर मन और वाणीकी भी शुद्धता होती है ॥ २२ ॥

जलमें प्रवेश करके अथवा जलको शरीरमें प्रवेश करा कर जलके रसके साथ मेरे शरीरका संयोग हुआ है । जलके अन्तर्गत उष्णता भी मेरे शरीरकी उष्णतासे मिल चुकी है, इससे मेरा तेज बढेगा ॥ २३ ॥

जलकी अग्नि मुझे तेजस्विता, सुप्रजा और दीर्घायु प्रदान करे । सब देव और इन्द्र तथा सब ऋषि इस कार्यके लिए मेरी सहायता करें, अर्थात् इन सबकी सहायताके साथ मैं तेजस्वी, वर्चस्वी, दीर्घायु, और सुप्रजावान् बनूं ॥ २४ ॥

(२४)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। देवताः- १ कः (प्रजापतिः); २ अग्निः, ३-४ सविता, ५ भगो वा, ६-१५ वरुणः। छन्दः- १, २, ६-१५ त्रिष्टुप्, ३-५ गायत्री।)

२५४ कस्य॑ नू॒नं क॑त॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑ ।
को नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात् पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥ १ ॥

२५५ अ॒ग्नेर्व॒यं प्र॑थ॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑ ।
स नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात् पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥ २ ॥

२५६ अ॒भि त्वा॑ देव सवित॒रीशा॑नं॒ वार्या॑णाम् । सदा॑वन् भा॒गमी॑महे ॥ ३ ॥

२५७ यश्चि॒द्धि त॑ इ॒त्था भगः॑ शशमा॒नः पु॒रा नि॒दः । अ॒द्वे॒षो हस्त॑योर्द॒धे ॥ ४ ॥

२५८ भग॑भक्तस्य ते व॒यमुद॑शेम॒ तवाव॑सा । मू॒र्धानं॑ रा॒य आ॒रभे॑ ॥ ५ ॥

---

[२४]

अर्थ— [२५४] (अमृतानां कतमस्य नूनं कस्य देवस्य) हम अमर देवोंमेंसे किस देवके (चारु नाम मनामहे) शुभनामका मनन करें (कः नः मह्यै अदितये पुनः दात्) कौन देव भला मुझे बडी अदितिके पास पुनः देगा (पितरं च मातरं च दृशेयं) जिससे मैं पिताको और माताको देख सकूं ॥ १ ॥

[२५५] (वयं अमृतानां प्रथमस्य अग्नेः देवस्य) हम अमर देवोंमें पहले अग्नि देवके (चारु नाम मनामहे) शुभनामका मनन करें। (सः नः मह्यै अदितये पुनः दात्) वह मुझे बडी अदितिके पास पुनः देगा (पितरं च मातरं च दृशेयं) जिससे मैं पिताको और माताको देख सकूंगा ॥ २ ॥

[२५६] (हे सदा अवन् सवितः देव) हे सर्वदा सुरक्षा करनेवाले सविता देव ! (वार्याणां ईशानं) तुम स्वीकार करने योग्य धनोंके स्वामी हो, इसलिये तुम्हारे पास (भागं अभि ईमहे) उपभोगके योग्य [illegible] मांगते हैं ॥ ३ ॥

[२५७] (यः हि चित् इत्था शशमानः) जो इसतरहसे प्रशंसायोग्य (पुरा निदः) निंदकोंसे दूर रहनेवाला (अद्वेषः) और शत्रु जिसके पास नहीं पहुंचते (भगः) ऐसा भाग्य (ते हस्तयोः दधे) तुमने अपने दोनों हाथोंमें धारण किया है ॥ ४ ॥

[२५८] (ते वयं) वे हम, (भगभक्तस्य) भाग्यका बंटवारा करनेवाले (तव अवसा उदशेम) तुम्हारी सुरक्षासे उन्नतिको प्राप्त करें (रायः मूर्धानं आरभे) तथा धनके शिखर पर चढकर बडे कर्तव्योंका आरंभ करें ॥ ५ ॥

भावार्थ— (प्रश्न) साधक जिज्ञासा करता है, कि हम अनेकों अमर देवोंमेंसे किस देवका मनन करें, कौन देव हम सबको अदितिके पास देव बननेके लिए भेजता है ? तथा कौन हमें माता पिताके बारबार दर्शन करवाता है ? ॥ १ ॥

(उत्तर) सब देवोंमें अग्नि प्रथम अर्थात् मुख्य है, अतः उसीके सुन्दर नामका मनन करना चाहिए। उसके नामका अर्थके साथ मनन करते हुए जप करना चाहिए। वह अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। वही अदिति अर्थात् अमरता या सततानन्दावस्थाकी तरफ प्रेरित करता है और वही उत्तम कर्म उत्तम करनेके लिए बारबार माता पिताके दर्शन करवाता है अर्थात् बारबार मनुष्य जन्म देता है ॥ २ ॥

सविता देव स्वीकार करने योग्य धनोंका स्वामी है। इसीलिए प्रशंसनीय, निन्दाके अयोग्य और शत्रुओंसे रहित भाग्यको वह धारण करता है। उसकी उपासना करनेवाले भी इसी प्रकार भाग्यशाली बनते हैं ॥ ३-४ ॥

यह सविता सबको अपने कर्मोंके अनुसार भाग्य देनेवाला है। इसलिए मनुष्यको चाहिए कि वह उन्नतिके शिखर पर चढकर भी उत्तम कर्म ही करे। धनवान् होकर अहंकारी न बने ॥ ५ ॥

२५९ नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥ ६ ॥
२६० अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥ ७ ॥
२६१ उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ८ ॥
२६२ शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ९ ॥

अर्थ— [२५९] (पतयन्तः अमी वयः चन) हे वरुण देव ! ये उडनेवाले पक्षी (ते क्षत्रं नहि आपुः) तेरे पराक्रमका अन्त नहीं प्राप्त कर सकते (सहः न) तथा तेरा बल (मन्युं न) तथा उत्साह भी नहीं प्राप्त कर सकते, (अनिमिषं चरन्तीः) सतत गमन करनेवाले (इमाः आपः न) ये जलप्रवाह भी तेरी गतिको नहीं जान सकते (ये वातस्य अभ्वं प्रमिनन्ति, न) और जो वायुके वेगको रोकते हैं, वे भी तेरे सामर्थ्यको लांघ नहीं सकते ॥ ६ ॥

[२६०] (पूतदक्षः राजा वरुणः) पवित्र कार्यके लिये अपना बल लगानेवाला राजा वरुण (वनस्य स्तूपं) वनके स्तंभको (अबुध्ने ऊर्ध्वं ददते) आधाररहित आकाशमें ऊपर ही ऊपर धारण करता है (नीचिनाः स्थुः) इसकी शाखाएं नीचे होती हैं (एषां बुध्नः उपरि) इनका मूल ऊपर है, (अस्मे अन्तः) इसके मध्यमें (केतवः निहिताः स्युः) किरणें फैली रहती हैं ॥ ७ ॥

[२६१] (राजा वरुणः) राजा वरुणने (सूर्याय पन्थां) सूर्यके मार्गको (अनु-एतवै उ) उसके गमनके लिये (उरुं चकार हि) विस्तृत बनाया है (अपदे) स्थानरहित अन्तरिक्षमें (पादा प्रतिधातवे अकः) पांव रखनेके लिये स्थान भी बना दिया है (उत हृदया-विधः चित्) निःसन्देह हृदयको कष्ट पहुंचानेवाले शत्रुओंको (अप-वक्ता) वह देव निषेध करता हुआ सचेत करता है, वैसा न करनेकी आज्ञा देता है ॥ ८ ॥

[२६२] हे (राजन्) हे राजन् ! (ते शतं सहस्रं भिषजः) तेरे पास सैंकडों और हजारों औषधियाँ हैं (ते सुमतिः उर्वी गम्भीरा अस्तु) तेरी सुमति बडी विस्तृत और गम्भीर हो (निर्ऋतिं पराचैः) दुर्गतिको नीचे मुख करके (दूरे बाधस्व) दूर ही रोक रखो (कृतं चित् एनः) किये हुए पापसे (अस्मत् प्र मुमुग्धि) हमें मुक्त करो ॥ ९ ॥

भावार्थ— उस वरणीय प्रभुका पराक्रम इतना महान् और सर्वत्र फैला हुआ है कि द्यौमें उडनेवाले सुपर्ण आदि, पृथ्वी पर बहनेवाले जलप्रवाह तथा अन्तरिक्षमें बहनेवाली वायु भी उसके पराक्रमके अन्तका पता नहीं लगा सकते । तीनों लोकोंमें रहनेवाले उस प्रभुके अनुशासनका उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

यह पवित्र बलवाला वरणीय प्रभु जलके आधारभूत सूर्यको बिना किसी आधारके ऊपर द्युलोकमें लटकाये है । इस सूर्यकी शाखायें अर्थात् किरणें नीचेकी ओर आती हैं, पर इन किरणोंका मूल सूर्य ऊपर ही रहता है । तथा इस सूर्यकी किरणें अन्तरिक्षमें भी चमकती हैं ॥ ७ ॥

उसी वरुणने सूर्यके जानेके लिए इतना बडा विस्तृत द्युलोक बनाया और अन्तरिक्षमें भी वायुके संचार करनेके लिए स्थान बनाया । पृथ्वी पर भी सज्जनोंके लिए उत्तम मार्ग बनाता है और दुष्टोंको वह सीधे मार्ग पर चलनेके लिए बारबार प्रेरणा देता है ॥ ८ ॥

इस तेजस्वी वरुणके पास अनेकों औषध अर्थात् उपाय हैं, जिनके द्वारा वह सज्जनोंकी रक्षा करता है। वह सज्जनोंको उत्तम बुद्धि देकर दुर्गतिसे उनकी रक्षा करता है और पापसे उन्हें मुक्त करता है ॥ ९ ॥

२६३ अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद् दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥ १० ॥
२६४ तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ ११ ॥
२६५ तदिन्नक्तं तद् दिवा मह्यमाहुस् तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥ १२ ॥
२६६ शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस् त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३ ॥

अर्थ—[२६३] (अमी ऋक्षाः) ये नक्षत्र (उच्चा निहितासः) ऊपर आकाशमें उच्च भागमें रखे हुए हैं (ये नक्तं ददृश्रे) ये रात्रीके समय दीखते हैं (दिवा कुह चित् ईयुः) पर ये दिनमें भला कहां चले जाते हैं ? (वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि) वरुण राजाके नियम अटूट हैं (विचाकशत् चन्द्रमाः नक्तं एति) विशेष चमकता हुआ चन्द्रमा रात्रिमें आता है ॥ १० ॥

[२६४] (वरुण) हे वरुण देव ! (ब्रह्मणा वन्दमानः) मन्त्रके अनुसार तुम्हें वन्दन करता हुआ (तत् त्वा यामि) मैं वही दीर्घ आयु तुमसे मांगता हूँ (यजमानः) जो यज्ञ करनेवाला (हविर्भिः तत् आशास्ते) हविर्द्रव्यके अर्पणसे चाहता है (अहेळमानः बोधि) निरादर न करता हुआ तू हमारी इस प्रार्थनाको जान, हे (उरुशंस) बहुतों द्वारा प्रशंसित हुए देव ! (नः आयुः मा प्रमोषीः) हमारी आयुको मत घटा ॥ ११ ॥

[२६५] (तत् इत् नक्तं) वही निश्चयसे रात्रीमें, (तत् दिवा) और वही दिनमें (मह्यं आहुः) ज्ञानियोंने मुझसे कहा था (हृदः अयं केतः) मेरे हृदय स्थानमें रहनेवाला यह ज्ञान भी (तत् आ वि चष्टे) यही कह रहा है (गृभीतः शुनःशेपः) कि बन्धनमें पडे शुनःशेपने (यं अह्वत्) जिस वरुण देवकी प्रार्थना की थी (सः राजा वरुणः) वही राजा वरुण (अस्मान् मुमोक्तु) हम सबोंको मुक्त करे ॥ १२ ॥

[२६६] (त्रिषु द्रुपदेषु बद्धः) तीन स्तंभोंमें बंधे, (गृभीतः शुनःशेपः) अतः बन्धनमें पडे शुनःशेपने (आदित्यं अह्वत्) आदित्य वरुण देवकी प्रार्थना की थी (विद्वान् अदब्धः राजा वरुणः) कि ज्ञानी, न दबनेवाला राजा वरुण (पाशान् वि मुमोक्तु) इसके पाशोंको खोल देवे (एनं अव ससृज्यात्) और इसको मुक्त करे ॥ १३ ॥

भावार्थ— रातमें चमकनेवाले पर दिनमें अदृश्य हो जानेवाले ये तारे अधरमें लटक रहे हैं, एक दूसरेसे टकराते नहीं, कभी गिरते नहीं। चन्द्रमा भी अपने समय पर उदय होकर संसारको प्रकाशित करता है तथा अपने समय पर अस्त हो जाता है। ये सब राजा वरुणके नियमोंमें बंधे हुए चल रहे हैं, उसके नियम अटूट हैं, कोई भी उनको तोड नहीं सकता। इतना उस वरुणका प्रताप है ॥ १० ॥

सभी यज्ञ करनेवाले इस वरुणकी स्तुति करते और उससे दीर्घायुकी प्रार्थना करते हैं। वह भी अपने उपासकोंकी स्तुतियोंका निरादर न करता हुआ उनकी प्रार्थनाओं पर ध्यान देता है और, उनकी आयु दीर्घ करता है ॥ ११ ॥

यदि (शुनः) कुत्तेकी तरह (शेप) कुवृत्तियोंमें पडा हुआ कामी पुरुष भी ज्ञानियोंके सत्संगमें रहता हुआ दिनरात वरुणका हृदयसे ध्यान करे, तो वह भी पापोंसे छूट सकता है ॥ १२ ॥

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों तरहकी पीडाओंके बंधनसे बंधा हुआ दुर्मार्गगामी मनुष्य जब प्रभुकी हृदयसे प्रार्थना करता है, तो वह पाशोंसे छूटकर दुःखसे मुक्ति पा सकता है ॥ १३ ॥

२६७ अव॑ ते हेळो॑ वरुण॒ नमो॑भि॒ -रव॑ य॒ज्ञेभि॑रीमहे ह॒विर्भिः॑ ।
क्षय॑न्न॒स्मभ्य॑मसुर प्रचेता॒ राज॒न्नेनां॑सि शिश्रथः कृ॒तानि॑ ॥ १४ ॥
२६८ उदु॑त्त॒मं व॑रुण॒ पाश॑म॒स्म -दवा॑ध॒मं वि म॑ध्य॒मं श्र॑थाय ।
अथा॑ व॒यमा॑दित्य व्र॒ते तवा -ना॑गसो॒ अदि॑तये स्याम ॥ १५ ॥

(२५)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवता- वरुणः । छन्दः- गायत्री ।)

२६९ यच्चि॒द्धि ते॒ विशो॑ य॒था प्र दे॑व वरुण व्र॒तम् । मि॒नी॒मसि॒ द्यवि॑द्यवि ॥ १ ॥
२७० मा नो॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिहीळा॒नस्य॑ रीरधः । मा हृ॑णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥ २ ॥

अर्थ— [२६७] (वरुण) हे वरुण ! (ते हेळः) तेरे क्रोधको (नमोभिः अव ईमहे) हम अपने नमस्कारोंसे दूर करते हैं (हविर्भिः यज्ञेभिः) हविर्द्रव्योंके द्वारा तथा यज्ञोंसे भी तेरे क्रोधको हम (अव) दूर हटाते हैं (हे असुर प्रचेतः राजन्) हे जीवनशक्तिको प्रदान करनेवाले ज्ञानी राजन् ! (अस्मभ्यं क्षयन्) यहां हमारे कल्याण करनेके लिये निवास करता हुआ (कृतानि एनांसि शिश्रथः) तू हमारे किये पापोंको शिथिल करके विनष्ट कर ॥ १४ ॥

[२६८] (वरुण) हे वरुण ! (उत्तमं पाशं) हमारे इस उत्तम पाशको (अस्मत् उत् श्रथाय) हमसे शिथिल करो (अधमं अव श्रथाय) हमारे इस अधम पाशको नीचे करके शिथिल करो । (मध्यमं वि श्रथाय) हमारे इस मध्यम पाशको विशेष ढीला कर दो । (हे आदित्य) हे अदितिपुत्र वरुण देव ! (अथ वयं) अब हम (तव व्रते) तुम्हारे व्रतमें रहते हुए (अदितये) अदितिके लिये समर्पित होकर (अनागसः स्याम) पापरहित हों ॥ १५ ॥

[२५]

[२६९] (हे वरुण देव) हे वरुण देव ! (यथा विशः) जैसे अन्य मनुष्य (ते यत् चित् हि व्रतं) तेरे जो भी नियम हैं उनके करनेमें प्रमाद करते हैं वैसे (द्यवि द्यवि प्र मिनीमसि) प्रति दिन हम भी प्रमाद करते ही हैं ॥ १ ॥

[२७०] (जिहीळानस्य हत्नवे) तेरा निरादर करनेवालेका वध करनेके लिए (वधाय) ऊपर उठाये तेरे शस्त्रके सामने (नः मा रीरधः) हमको मत खडा रख (हृणानस्य मन्यवे) तथा क्रुद्ध हुए तेरे क्रोधके सामने (मा) हमें मत खडा रख ॥ २ ॥

भावार्थ— वरुणका क्रोध बडा भयंकर होता है । जिस पर वह क्रोध करता है, उसे बंधनोंमें डालकर उसका नाश करता है । इसलिए उसके क्रोधसे सदा डर कर रहना चाहिए । वह वरुण जीवनशक्तिको प्रदान करनेवाला है और वह उत्तमतासे रहनेके लिए पापोंके बंधनको ढीला करता है ॥ १४ ॥

हर मानव तीन प्रकारके पाशोंसे बंधा हुआ है पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण ये तीन ऋण मनुष्यपर हैं या सत्व रज, तम इन तीन गुणोंके पाशसे बंधा हुआ मनुष्य उनसे प्रभावित होता है । इनको दूर कर तीनों ऋणोंसे उऋण होना या त्रिगुणातीत होना ही तीनों पाशोंसे मुक्त होना है । इनसे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय वरुण प्रभुके नियमोंमें चलकर अमरता प्राप्त करना और पापरहित होना ही है ॥ १५ ॥

हे प्रभो ! जैसे सब अन्य मानव सदा प्रमाद करते रहते हैं, वैसे हमारे हाथसे भी प्रतिदिन अनेक प्रमाद होते रहते हैं, इसलिये हमारे प्रत्येक प्रमादके लिये तुम क्रोधित होकर हमें दण्डित मत करो । दयाकी दृष्टि हमारे ऊपर रखो ॥ १-२ ॥

२७१ वि मृळीकार्य ते मनो रथीरश्वं न संदितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥ ३ ॥
२७२ परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये । वयो न वसतीरुप ॥ ४ ॥
२७३ कदा क्षत्रश्रियं नर—मा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥
२७४ तदित् समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥
२७५ वेदा यो वीनां पद—मन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥
२७६ वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ॥ ८ ॥

अर्थ—[२७१] (वरुण) हे वरुण ! (रथीः संदितं अश्वं न) जिस प्रकार रथी वीर अपने थके हुए घोडोंको शान्त करता है, (मृळीकाय ते मनः) उसी तरह सुख देनेवाले तेरे मनको (गीर्भिः वि सीमहि) स्तोत्रोंद्वारा हम विशेष प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

[२७२] (वयः वसतीः उप न) जिस तरह पक्षी अपने घोसलोंकी और दौडते हैं, (मे विमन्यवः) उसी तरह मेरी विशेष उत्साहित बुद्धियाँ (वस्यइष्टये हि) धनकी प्राप्तिके लिये (परा पतन्ति) दूर दूर दौड रही हैं ॥ ४ ॥

[२७३] (क्षत्रश्रियं नरं) पराक्रमके कारण शोभायमान नेता (उरुचक्षसं वरुणं) विशेष द्रष्टा वरुणको (कदा मृळीकाय आ करामहे) हम यहां कब सुखप्राप्तिके लिये बुलावेंगे ? ॥ ५ ॥

[२७४] (धृतव्रताय दाशुषे) व्रत धारण करनेवाले दाताके लिये (वेनन्ता) सुखकी इच्छा करनेवाले ये मित्र और वरुण (समानं तत इत् आशाते) समान भावसे वही हविष्यान्न चाहते हैं (न प्र युच्छतः) वे कभी उसका त्याग नहीं करते ॥ ६ ॥

[२७५] (अन्तरिक्षेण पततां वीनां) अन्तरिक्षमें उडनेवाले पक्षियोंका (पदं यः वेद) मार्ग जो जानते हैं (समुद्रियः नावः वेद) तथा जो समुद्रमें संचार करनेवाली नौकाओंका मार्ग भी जानते हैं ॥ ७ ॥

[२७६] (धृतव्रतः) नियमानुसार चलनेवाला वरुण देव (प्रजावतः द्वादशमासः वेद) प्रजाकी वृद्धि करनेवाले बारह महिनोंको जानता है (यः उपजायते) और जो तेरहवाँ महिना बीचमें उत्पन्न होता है (वेद) उसको भी जानता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! जैसे थके घोडेपर उसका मालिक दया करके उसको विश्राम देता है, उस प्रकार मैं इस संसारमें त्रस्त और दुःखी हुआ हूं, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करता हूं कि स्वामीकी तरह मुझपर दया करो और मुझे अपनी अतुल दयासे सुखी करो । मेरे योग्य कर्म न भी हों, तथापि तुम अपनी दया प्रकट करके मुझे सुखी करो । मैं तुम्हारी प्रार्थना ही कर सकता हूँ ॥ ३ ॥

जिस तरह पक्षी दिनभर इधर उधर घूमघाम करे शामको विश्रामके लिये अपने अपने घोंसलेकी ओर ही जाते हैं, और वहां विश्राम पाते हैं, उसी तरह मेरी बुद्धियाँ और मेरी विचारधाराएं इस विश्वमें इधर उधर घूमती रहती हैं, परंतु चिर शान्तिकी और शाश्वत सुखकी इच्छासे तुम्हारे ही आश्रयमें आती हैं और वहीं शान्ति सुख और आनन्द पाती हैं ॥ ४ ॥

जो प्रभु सबकी सुरक्षितता करनेका सामर्थ्य रखता है, जो विश्वका नेता और संचालक है, जो चारों ओर विशाल दृष्टिसे सबको यथातथ्य रीतिसे देखता है, जो सबसे श्रेष्ठ है, उस सुखदायी प्रभुकी हम सब मिलकर कब उपासना करेंगे ? कब वह हमारे सामने साक्षात् दर्शन देगा ? हम आतुर हुए हैं उसकी भक्ति करनेके लिये, अतः चाहते हैं कि उसके साक्षात्कारका समय शीघ्र प्राप्त हो और हम उस प्रभुकी आनन्दकी प्राप्ति होनेतक यथेच्छ उपासना करें ॥ ५ ॥

ये मित्र और वरुण ऐसे हैं कि जो व्रती और दाता पुरुषकी उन्नति करना चाहते हैं, वे कभी अपने भक्तका त्याग करते नहीं ॥ ६ ॥

२७७ वेदु वातस्य वर्तनि—मुरोर्ऋष्वस्यं बृहतः । वेदा ये अध्यासते ॥ ९ ॥

२७८ नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पुस्त्या३स्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १० ॥

२७९ अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति । कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११ ॥

२८० स नो विश्वाहा सुक्रतु—रादित्यः सुपथा करत् । प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १२ ॥

२८१ बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् । परि स्पशो नि षेदिरे ॥ १३ ॥

२८२ न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् । न देवमभिमातयः ॥ १४ ॥

अर्थ— [२७७] (उरोः ऋष्वस्य बृहतः वातस्य) विशाल महान् और बडे वायुके मार्गको (वर्तनिं वेद) भी जो जानते हैं (ये अध्यासते) तथा जो अधिष्ठाता होते हैं (वेद) उनको भी जानते हैं ॥ ९ ॥

[२७८] (धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः) नियमके अनुसार चलनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले वरुण देव (पस्त्यासु) प्रजाओंमें (साम्राज्याय आ नि ससाद) साम्राज्यके लिये आकर बैठता है ॥ १० ॥

[२७९] (अतः विश्वानि अद्भुता चिकित्वान्) इसलिये सब अद्भुत कर्मोंको करनेकी विधि जाननेवाला (या कृतानि) जो किया है, (च कर्त्वा) और जो करना है (अभि पश्यति) उस सबको पूर्णतासे देखता है ॥ ११ ॥

[२८०] (सुक्रतुः सः आदित्यः) उत्तम कर्म करनेवाला वह अदिति पुत्र वरुण देव (विश्वाहा नः सुपथा करत्) सर्वदा हमें सुपथसे चलनेवाला करे (नः आयूंषि प्र तारिषत्) और हमारी आयु बढावे ॥ १२ ॥

[२८१] (हिरण्ययं द्रापिं बिभ्रत् वरुणः) सुवर्णमय चोगा धारण करनेवाला वरुण देव (निर्णिजं वस्त) उसपर और तेजस्वी वस्त्र धारण करता है (स्पशः परि निषेदिरे) उसके दूत किरण चारों ओर फैले रहते हैं ॥ १३ ॥

[२८२] (दिप्सवः यं न दिप्सन्ति) घातक दुष्ट लोग जिससे दुष्टता नहीं कर सकते (जनानां द्रुह्वाणः न) लोगोंसे द्रोह करनेवाले जिससे द्रोह नहीं करते (अभिमातयः देवं न) शत्रु उस देवको पीडा नहीं देते ॥ १४ ॥

भावार्थ— वह प्रभु आकाशमें उडनेवाले पक्षियोंकी गति जानता है, कौनसा पक्षी कहांसे उडा है और कहां जायेगा यह सब उसको पता है, समुद्रमें इतस्ततः घूमनेवाली नौकाएँ किस गतिसे घूम रही हैं, उनमेंसे कौनसी नौका अपने स्थानको ठीक तरह पहुंचेगी और कौनसी नहीं यह सब उस प्रभुको पता है। वर्षके बारह महिनोंमें और (तीसरे वर्ष आनेवाले) तेरहवें पुरुषोत्तम मासमें क्या उत्पन्न होता है और उससे प्रजाकी उन्नति कैसे होती है यह सब उस प्रभुको पता है। चारों ओर संचार करनेवाले महान् प्राण वायुकी गति कैसी होती है यह भी उसको पता है और इन सबपर जिनकी निगरानी है उन सब अधिष्ठाता देवताओंका भी यथायोग्य ज्ञान उस प्रभुको है ॥ ७–९ ॥

वह प्रभु अपने नियमोंके अनुसार सब कार्य यथायोग्य रीतिसे करता है, जो करता है वह उत्तम रीतिसे करता है, ऐसा वह सर्वश्रेष्ठ प्रभु सब प्रजाओंमें बैठता है और अपना साम्राज्य चलाता है। वहां रहकर विश्वमें क्या हो रहा है, क्या किया गया है और क्या करना चाहिये इसका यथायोग्य निरीक्षण करता है। वही उत्तम कार्य करनेवाला प्रभु सबका बंधनसे छुटकारा करा देनेके लिये सब मानवोंको उत्तम मार्गसे चलाये और सबसे उत्तम कर्म होनेके लिये उनको दीर्घ आयु भी देवे ॥ १०–१२ ॥

उस प्रभुके ऊपर सुवर्णके वस्त्रका आच्छादन है, मानो वह प्रभु जरी कपडे पहनकर और ऊपर वैसा ही दुपट्टा ओढता है। इसके दूत चारों ओर संपूर्ण विश्वमें उसीका कार्य करनेके लिये घूम रहे हैं। वे हम सबके चालचलनको देख रहे हैं। कोई दुष्ट शत्रु या द्रोही इस प्रभुको किसी तरह कष्ट नहीं दे सकता, इतना इसका सामर्थ्य है ॥ १३–१४ ॥

२८३ उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या । अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥
२८४ परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥ १६ ॥
२८५ सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ॥
२८६ दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ॥
२८७ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ॥
२८८ त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥
२८९ उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे ॥ २१ ॥

अर्थ— [२८३] (उत यः मानुषेषु यशः आ चक्रे) और जिसने मनुष्योंमें यश फैलाया है (असामि आ) संपूर्णतया सब कुछ किया है (अस्माकं उदरेषु आ) हमारे पेटोंमें भी सुंदर रचना उसीने की है ॥ १५ ॥

[२८४] (उरुचक्षसं इच्छन्तीः) उस सर्वसाक्षी प्रभुकी इच्छा करनेवाली (मे धीतयः) मेरी बुद्धियाँ (गावः न गव्यूतीः अनु) जिस तरह गौवें गोचर भूमिके पास जाती हैं (परा यन्ति) उसी तरह उसीके पास दूरतक जाती हैं ॥ १६ ॥

[२८५] (यतः मे मधु आभृतं) जो मैं यह मधु भरकर लाया हूँ (होता इव प्रियं क्षदसे) हवनकर्ताके समान इस प्रिय मधुर रसका तुम भक्षण करो (पुनः नु सं वोचावहै) फिर हम दोनों मिलकर बातें करेंगे ॥ १७ ॥

[२८६] (विश्वदर्शतं दर्शं नु) विश्वरूपमें दर्शनीय देवको निःसंदेह मैंने देख लिया है । (क्षमि रथं अधि दर्शं) भूमिपर उसके रथको मैंने देखा है (एता मे गिरः जुषत) ये मेरी स्तुतियां उसने स्वीकार की हैं ॥ १८ ॥

[२८७] (वरुण) हे वरुण ! (इमं मे हवं श्रुधि) मेरी यह प्रार्थना सुन (अद्य मृळय च) आज मुझे सुखी कर (अवस्युः त्वां आ चके) सुरक्षाकी इच्छा करनेवाला मैं तेरी स्तुति करता हूँ ॥ १९ ॥

[२८८] (मेधिर) हे बुद्धिसे प्रकाशित होनेवाले देव ! (त्वं दिवः च ग्मः च विश्वस्य राजसि) तू द्युलोक, भूलोक और सब विश्वपर राज्य करता है (सः यामनि प्रति श्रुधि) वह तू हमारी प्रार्थनाके पश्चात् उसका उत्तर दे ॥ २० ॥

[२८९] (नः उत्तमं पाशं उत् मुमुग्धि) हमारे उत्तम पाशको खुला करो (मध्यमं वि चृत) हमारे मध्यम पाशको ढीला करो (जीवसे अधमानि अव) और दीर्घ जीवनके लिये मेरे अधम पाशोंको भी खोल दो ॥ २१ ॥

भावार्थ— उस प्रभुने ही मानवोंमेंसे कईयोंको यशस्वी किया है । वह जो करता है वह कभी अधूरा नहीं करता है वह यथायोग्य, यथातथ्य परिपूर्ण करता है अतः उसमें कभी त्रुटि नहीं होती । मनुष्यके पेटमें ही देखिये उसने कैसी उत्तम रचना की है कि जिससे खाये अन्नसे अन्दर ही अन्दरसे शरीरका पोषण होता रहता है । ऐसा ही सब विश्वभरमें हो रहा है ॥ १५ ॥

जैसी गौवें घासकी भूमिके पास दौडती हुई जाती है, वैसी ही मेरी बुद्धियाँ इसी प्रभुके पास दौड रहीं हैं । इस प्रभुको अर्पण करनेके लिये जो भी मधुरतायुक्त रस मुझे मिला है वह सब मैंने उसको अर्पण करनेके लिये इकट्ठा करके रखा है । उसको वह स्वीकार करे और पश्चात् उस प्रभुसे मेरा दिल खोलकर वार्तालाप होता रहे ॥ १६–१७ ॥

मैंने उस विश्वरूपमें दिखाई देनेवाले प्रभुका साक्षात् दर्शन किया है । जैसे पृथ्वीपर खडा रथ दीखता है, वैसे ही यह प्रभु मेरे सम्मुख खडा है । वह अब मेरी प्रार्थना सुने । हे प्रभो ! मेरी प्रार्थना सुनो ! आज ही मुझे सुखी करो । अपनी सुरक्षाके लिये मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं । अतः हे प्रभु मुझे आनन्दमय बनाओ । हे बुद्धिप्रदाता प्रभो ! तुम्हारा साम्राज्य आकाशसे पृथ्वीतक सर्वत्र अखण्ड है । वह हमारी प्रार्थनाओंका श्रवण करके उनको पूर्ण करे और हमें पूर्ण आनन्दका भागी बनावे ॥ १८–२० ॥

हे प्रभो ! ऊपरके उत्तम मध्यम और कनिष्ठ ऐसे तीनों पाश ढीले करो और मुझे मुक्त करो ॥ २१ ॥

(२६)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

२९० वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते । सेमं नो अध्वरं यज ॥ १ ॥
२९१ नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिवित्मता वचः ॥ २ ॥
२९२ आ हि ष्मा सूनवे पिता—पिर्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्यः ॥ ३ ॥
२९३ आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा ॥ ४ ॥
२९४ पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ ५ ॥
२९५ यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥ ६ ॥

---

[२६]

अर्थ— [२९०] (मियेध्य ऊर्जा पते) हे पवित्र और बलोंके स्वामी ! (वस्त्राणि वसिष्व हि) वस्त्रोंको पहनो (यः नः इमं अध्वरं यज) और वह तू हमारे इस यज्ञका यजन कर ॥ १ ॥

[२९१] (सदा यविष्ठ अग्ने) हे सदा तरुण अग्नि देव ! (नः वरेण्यः होता) तुम हमारे श्रेष्ठ होता हो (मन्मभिः दिवित्मता वचः) वह तुम हमारे मननीय दिव्य वचन सुननेके लिये (नि) इस यज्ञमें आकर यहां बैठो ॥२॥

[२९२] (वरेण्यः पिता सूनवे) श्रेष्ठ पिता अपने पुत्रकी (आपिः आपये) बन्धु अपने बन्धुकी (सखा सख्ये आ) और मित्र अपने मित्रको सहायता करता है (यजति स्म) वैसे ही यह अग्नि देव हमें सहायता देवे ॥ ३ ॥

[२९३] (रिशादसः वरुणः मित्रः अर्यमा) शत्रुनाशक वरुण, मित्र और अर्यमा (नः बर्हिः आ सीदन्तु) हमारे आसनोंपर बैठे (यथा मनुषः) जैसे मनुष्य बैठते हैं अथवा जैसे मनुके यज्ञमें बैठे थे ॥ ४ ॥

[२९४] (पूर्व्यः होतः) हे प्राचीन होता ! (नः अस्य सख्यस्य च मन्दस्व) हमारे इस मित्रभावसे तुम प्रसन्न हो (इमाः गिरः उ सु श्रुधि) और हमारा यह भाषण उत्तम रीतिसे सुनो ॥ ५ ॥

[२९५] (यत् चित् हि शश्वता) जिस तरह शाश्वत कालसे (तना) और सनातन रीतिसे (देवंदेवं यजामहे) प्रत्येक देवका हम यजन करते आये हैं (हविः त्वे इत् हूयते) वही हवि तुम्हें दी जा रही है ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे सबसे अत्यंत पवित्र और सब प्रकारका बल देनेवाले प्रभो ! तुम अपने प्रकाशरूपी वस्त्रोंको पहनकर प्रकट हो जाओ और हम जिस यज्ञका प्रारंभ कर रहे हैं उसको यथायोग्य रीतिसे संपन्न करो ॥ १ ॥

हे प्रभो ! तुम सदा तरुण हो, बाल्य और वार्धक्य ये अवस्थाएं तुम्हारे लिये नहीं हैं, तुम ही हमारे श्रेष्ठ सहायक हो, इसलिये आओ, यहां विराजमान होकर हमारा काव्यगायन सुनो ॥ २ ॥

जैसे पिता प्रेमसे अपने पुत्रकी सहायता करता है, भाई अपने भाईको हर प्रकारकी मदद पहुंचाता है, और मित्र अपने मित्रका सदा हित ही करता है, वैसे ही तुम हमारे पिता, बन्धु और मित्र हो अतः हम सबकी सहायता करो ॥ ३ ॥

जैसे मनुष्य अपने मित्रके घरमें जाकर वहां प्रेमसे बैठते हैं, वैसे ही तुम मित्रभावसे आकर हमारे यहां बैठो और हमारे सहायक बनो ॥ ४ ॥

तुम सनातन यज्ञकर्ता हो । मित्रभावसे किये इस हमारे आदरातिथ्यसे तुम आनन्द प्रसन्न होओ और हमारा भाषण सुनो ॥ ५ ॥

जैसे सनातन समयसे देवताओंका सत्कार करनेकी रीति चली आ रही है, उसी पद्धतिके अनुसार हम तुम्हारा हविष्यान्नका अर्पण करके पूजन कर रहे हैं ॥ ६ ॥

२९६ प्रियो नो अस्तु विश्पति-र्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥
२९७ स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥
२९८ अथा न उभयेषा-ममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥
२९९ विश्वेभिरग्ने अग्निभि-रिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥ १० ॥

(२७)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवता- १-१२ अग्निः १३ देवाः ।
छन्दः- १-१२ गायत्री, १३ त्रिष्टुप् ।

३०० अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥
३०१ स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

अर्थ— [२९६] (विश्पतिः, होता, मन्द्रः, वरेण्यः) प्रजाओंका पालक, हवनकर्ता, आनन्दित और श्रेष्ठ यह अग्नि (नः प्रियः अस्तु) हमारा प्रिय हो (वयं स्वग्नयः प्रियाः) हम भी उत्तम अग्निसे युक्त होकर उसके प्रिय बनें ॥ ७ ॥

[२९७] (स्वग्नयः देवासः) उत्तम अग्निसे युक्त देवोंने (नः वार्यं दधिरे) हमारे लिये श्रेष्ठ ऐश्वर्य धारण कर रखा है (स्वग्नयः च मनामहे) इसलिये हम उत्तम अग्निसे युक्त होकर इस देवके नामका मनन करते हैं ॥ ८ ॥

[२९८] (अमृत) हे अमर देव! (अथ मर्त्यानां नः) तुम अमर हो और हम मर्त्य हैं (उभयेषां मिथः प्रशस्तयः सन्तु) अतः हम दोनोंके परस्पर प्रशंसायुक्त भाषण होते रहें ॥ ९ ॥

[२९९] (सहसः यहो अग्ने) हे बलके साथ प्रकट होनेवाले अग्निदेव! (विश्वेभिः अग्निभिः) सब अग्नियोंके साथ (इमं यज्ञं इदं वचः) यहां इस यज्ञको और इस स्तोत्रको (चनः धाः) स्वीकार करके हमारे लिये पर्याप्त अन्नका प्रदान करो ॥ १० ॥

[२७]

[३००] (वारवन्तं अश्वं न) बालोंवाले-अयालवाले सुंदर घोडेके समान (अध्वराणां सम्राजन्तं अग्निं) अहिंसायुक्त यज्ञकर्मको निभानेवाले, ज्वालाओंसे प्रदीप्त अग्निको (नमोभिः वन्दध्यै) हम नमस्कारोंसे सुपूजित करते हैं ॥ १ ॥

[३०१] (शवसा सूनुः) बलके लिये ही उत्पन्न हुए (पृथुप्रगामा) सर्वत्र गमन करनेवाले (सः घा नः सुशेवः) वह अग्निदेव निश्चयसे हमारे लिये सुखसे सेवा करनेयोग्य (अस्माकं मीढ्वान् बभूयात्) तथा हमारे लिये सुख देनेवाला हो ॥ २ ॥

भावार्थ— तुम ही हम सबके सच्चे पालनकर्ता हो, तुम ही सबसे श्रेष्ठ हो । हमारे लिये तुम ही सबके हर्ष बढानेवाले हो, तुम ही सबसे श्रेष्ठ हो । हमारे लिये तुम ही अत्यंत प्रिय हो । हम भी इस शुभ कर्म द्वारा तुम्हारे लिये प्रिय होकर रहें ॥ ७ ॥

उत्तम तेजस्वी देवोंने अनेक प्रकारसे उत्तमसे उत्तम धन ऐश्वर्य आदि हमारे हितके लिये यहां धारण किया है, हम भी तेजस्वी बनकर उसका अच्छीतरह मनन करें ॥ ८ ॥

हे देव ! तुम अमर हो और हम मरणधर्मा हैं । हम और तुम मिलकर परस्पर सहायक हों और अपूर्व यश निर्माण करनेवाले बनें ॥ ९ ॥

हे बलके साथ प्रकट होनेवाले प्रभो! सब अपने तेजस्वी सामर्थ्योंके साथ प्रकट होकर हमारे इस यज्ञकर्मको सफल बनाओ और हमारा स्तोत्र सुनकर, हमें सब प्रकारका अन्न धन आदि, उत्तम प्रकारसे प्रदान करो जिससे हम सुखी बनें ॥ १० ॥

जिस तरह अयालवाला घोडा सुंदर दीखता है, वैसे ही ज्वालारूपी अयालसे युक्त प्रदीप्त अग्निरूपी घोडा अति सुंदर दीखता है । इस यज्ञवेदीपर प्रदीप्त हुए इस अग्निको हम नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥

यह देव बलके विविध कार्य करनेके लिये ही प्रकट हुआ है, वह सर्वत्र गमन भी करता है अतः यह हमें सुख देवे ॥२॥

३०२ स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद् विश्वायुः ॥ ३ ॥
३०३ इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ४ ॥
३०४ आ नो भज परमे—ष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥
३०५ विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥
३०६ यमग्ने पृत्सु मर्त्य—मवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७ ॥
३०७ नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ ८ ॥
३०८ स वाजं विश्वचर्षणि—रर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥
३०९ जराबोध तद् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १० ॥

अर्थ— [३०२] (विश्वायुः) हे संपूर्ण आयुके प्रदाता (स दूरात् च आसात् च) वह तुम दूरसे पाससे (अघायोः मर्त्यात् नः) पापी मनुष्यसे हम सबकी (सदं इत् नि पाहि) सदाके लिये सुरक्षा करो ॥ ३ ॥

[३०३] (अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वं अस्माकं) तुम हमारे (इमं उ सु सनिं, नव्यांसं गायत्रं) इस दानकी और नवीन गायत्री छन्दके स्तोत्रकी बात (देवेषु प्रवोचः) देवोंसे कहो ॥ ४ ॥

[३०४] (परमेषु वाजेषु नः आ भज) उच्च कोटिके बल हमें दो, (मध्यमेषु आ) मध्यम कोटिके बल भी हमें दो (अन्तमस्य वस्वः शिक्षा) तथा पाससे मिलनेवाले धन भी हमें प्रदान करो ॥ ५ ॥

[३०५] (चित्रभानो) हे विलक्षण तेजस्वी देव ! (सिन्धोः उपाके ऊर्मौ) सिन्धुके पास तरङ्गकी तरह तुम (विभक्ता असि) धनोंका बंटवारा करनेवाला हो (दाशुषे सद्यः क्षरसि) दाताको तो तुम तत्काल ही धन देते हो ॥६॥

[३०६] (अग्ने) हे अग्नि देव ! (पृत्सु यं मर्त्यं अवाः) युद्धमें जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, (यं वाजेषु जुनाः) जिसको तुम रणोंमें जानेके लिये उत्साहित करते हो (सः शश्वतीः इषः यन्ता) वह शाश्वत अन्नोंका नियामक होता है ॥ ७ ॥

[३०७] (सहन्त्य) हे शत्रुके दमनकर्ता ! (अस्य कयस्य चित् पर्येता नकिः) इसको घेरनेवाला कोई भी नहीं है (वाजः श्रवाय्यः अस्ति) क्योंकि इसकी शक्ति प्रशंसनीय है ॥ ८ ॥

[३०८] (विश्वचर्षणिः सः) सर्व मानवोंका हित करनेवाला वह देव हमें (अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु) घोडोंके साथ युद्धसे पार करनेवाला होवे (विप्रेभिः सनिता अस्तु) तथा ज्ञानियोंके साथ धनका प्रदानकर्ता हो जावे ॥९॥

[३०९] (जराबोध) हे प्रार्थना सुननेके लिये जाग्रत रहनेवाले देव ! (विशे विशे यज्ञियाय) प्रत्येक मनुष्यके कल्याणके लिये चलाये इस यज्ञमें (तत् रुद्राय) रुद्र देवके प्रीतिके लिये (दृशीकं स्तोमं विविड्ढि) सुन्दर स्तोत्र गाया जाता है अतः यहां तुम प्रवेश करो ॥ १० ॥

भावार्थ— यह देव हमें दीर्घ आयु देता है, वह सब स्थानोंसे अर्थात् पाससे और दूरसे पापी मनुष्योंके कपट जालसे हमें बचावे ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! प्रशंसाके योग्य तथा गायककी रक्षा करनेवाले स्तोत्रोंको देवोंमें पहुंचाओ ॥ ४ ॥

हमें उच्च, मध्यम आदि सब प्रकारके बल दो, तथा उन बलोंसे हमें सब प्रकारके धन पास होनेके समान प्राप्त हो ॥५॥

जिस तरह समुद्र तरङ्गोंके कारण उछलता है वैसे ही तुम प्रेमसे उछलो और हमें सब धन दो ॥ ६ ॥

जिसपर तुम्हारी दया है उसको अक्षय धन प्राप्त होते हैं । और वह नियामक होता है ॥ ७ ॥

उसको घेरनेवाला कोई नहीं रहता, इतनी उसकी विशाल शक्ति होती है। वह संपूर्ण रूपसे शत्रुका दमन करता है ॥८॥

वह देव सब मानवोंका हित करता है, वह हमें युद्धोंमें विजय देवे और ज्ञानियोंके साथ रखे ॥ ९ ॥

हे स्तुतिसे जाग्रत होनेवाले देव ! प्रत्येक मनुष्यके कल्याणके लिए इस यज्ञमें सुन्दर स्तोत्र गाया जाता है, अतः तुम इस यज्ञमें आओ ॥ १० ॥

३१० स नो॑ म॒हाँ अ॑नि॒मा॒नो धू॒मके॑तुः पुरु॒श्च॒न्द्रः । धि॒ये वाजा॑य हिन्वतु ॥ ११ ॥

३११ स रे॒वाँ इ॑व वि॒श्पति॒र्दैव्यः॑ के॒तुः शृ॒णोतु नः । उ॒क्थैर॒ग्निर्बृ॒हद्भा॑नुः ॥ १२ ॥

३१२ नमो॑ म॒हद्भ्यो॒ नमो॑ अर्भ॒केभ्यो॒ नमो॒ युव॑भ्यो॒ नम॑ आशि॒नेभ्यः॑ ।
यजा॑म दे॒वान् यदि॑ श॒क्नवा॑म॒ मा ज्याय॑सः शंस॒मा वृ॑क्षि देवाः ॥ १३ ॥

(२८)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवता- १-४ इन्द्रः, ५-६ उलूखलं, ७-८ उलूखलमुसले, ९ प्रजापतिर्हरिश्चन्द्रः, (अधिषवण-) चर्म सोमो वा । छन्दः- १-६ अनुष्टुप्, ७-९ गायत्री ।)

३१३ यत्र॒ ग्रावा॑ पृ॒थुबु॑ध्न ऊ॒र्ध्वो भव॑ति॒ सोत॑वे । उ॒लूख॑लसुता॒नामवे॒द्विन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥

३१४ यत्र॑ द्वावि॑व ज॒घना॑धिषव॒ण्या॑ कृ॒ता । उ॒लूख॑लसुता॒नामवे॒द्विन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥

अर्थ— [३१०] (सः महान् अनिमानः धूमकेतुः) वह बडा अपरिमेय धूमके झण्डेवाला (पुरुश्चन्द्रः) अत्यंत तेजस्वी देव (नः धिये वाजाय हिन्वतु) हमें बुद्धि और बलकी वृद्धिके लिए प्रेरित करे ॥ ११ ॥

[३११] (सः दैव्यः केतुः) वह प्रजापालक दिव्यसामर्थ्यका झण्डा जैसा (विश्पतिः बृहद्भानुः अग्निः) तेजस्वी अग्नि देव, (रेवान् इव) धनवानोंकी तरह (उक्थैः नः शृणोतु) स्तोत्रोंके साथ हमारी प्रार्थनाको सुनें ॥१२॥

[३१२] (महद्भ्यः नमः) बडोंके लिये नमस्कार (अर्भकेभ्यः नमः) बालकोंके लिये प्रणाम (युवभ्यः नमः) तरुणोंके लिये नमन (आशिनेभ्यः नमः) और वृद्धोंके लिये भी हम वन्दन करते हैं (यदि शक्नवाम, देवान् यजाम) जितना सामर्थ्य होगा, उतनेसे हम देवोंका यजन करेंगे (हे देवाः) हे देवो ! (ज्यायसः आशंसं मा वृक्षि) उस एक श्रेष्ठ देवकी प्रशंसा करनेमें हमसे त्रुटी न हो ॥ १३ ॥

[२८]

[३१३] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्र सोतवे) जहां सोमरस चुआनेके लिये (पृथुबुध्नः ग्रावा ऊर्ध्वः भवति) बडे मूलवाला पत्थर ऊपर उठाया जाता है, (उलूखलसुतानां अव इत् जल्गुलः) वहां ओखलसे निचोडा गया सोमरस पास जाकर पान करो ॥ १ ॥

[३१४] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्र अधिषवण्या) जहां सोम कूटनेके दो फलक (द्वौ जघना इव कृता) दो जंघाओंकी तरह विस्तृत रखे होते हैं (उलूखलसुतानां अव इत् जल्गुलः) वहां ओखलसे निचोडा गया सोमरस पास जाकर पान करो ॥ २ ॥

भावार्थ— वह अपरिमित बलसे युक्त देव हमें बुद्धि और बल बढानेके कार्योंमें प्रेरित करे ॥ ११ ॥

वह प्रजापालन करता है, दिव्य सामर्थ्यसे युक्त है, वह हमारी प्रार्थना सुने ॥ १२ ॥

बालक, तरुण, बडे और वृद्ध जो भी पुरुष हैं वे सब इसी प्रभुके रूप हैं, अतः उनको नमन करते हैं। जहांतक हमारी शक्ति रहेगी तबतक उन सब देवोंके लिये हम यज्ञ करते रहेंगे, इससे त्रुटि न हो ॥ १३ ॥

सोमको कूटकर रस निकालनेवाले दोनों पत्थर अर्थात् सिल और बट्टा जांघोंके समान विशाल हैं। जहां इन पत्थरोंसे सोम पीसा जाता है, वहां इन्द्र सोमरस पीनेके लिए जाता है ॥ १-२ ॥

३१५ यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥
३१६ यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥४॥
३१७ यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे । इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥५॥
३१८ उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥
३१९ आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः । हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥
३२० ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः । इन्द्राय मधुमत् सुतम् ॥ ८ ॥
३२१ उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज । नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥

अर्थ—[३१५] (यत्र नारी) जहां यजमानकी पत्नी (अपच्यवं उपच्यवं च शिक्षते) दूर होने और पास जानेकी शिक्षा पाती है (उलूखलसुतानां अव इत् जल्गुलः) वहां ओखलसे निचोडा गया सोमरस पास जाकर पान करो ॥३॥

[३१६] (यत्र मन्थां) जहां मन्थन दण्ड (रश्मीन् यमितवै इव) लगाम पकडनेके समान (विबध्नते) बांधा जाता है (उलूखलसुतानां अव इत् जल्गुलः) वहां ओखलसे निचोडा गया सोमरस पास जाकर पान करो ॥४॥

[३१७] (उलूखलक) हे ओखल ! (यत् चित् हि त्वं गृहेगृहे युज्यसे) यद्यपि घर घरमें तुमसे काम लिया जाता है (जयतां दुन्दुभिः इव) तथापि यहां विजयी लोगोंके ढोलकी तरह (द्युमत्तमं वद) तू बडी ध्वनि कर ॥५॥

[३१८] (वनस्पते) हे वनस्पते ! (उत ते अग्रं इत् वातः वि वाति स्म) तुम्हारे सामने वायु बहती है । (उलूखल) हे ओखल ! (अथो इन्द्राय पातवे सोमं सुनु) अब इन्द्रके पानके लिये सोमका रस निचोडो ॥६॥

[३१९] (आ यजी, वाजसातमा ता हि) यज्ञके साधन, अन्न देनेवाले वे दोनों पत्थर (अन्धांसि बप्सता हरी इव) खाद्य खानेवाले इन्द्रके दोनों घोडोंकी तरह (उच्चा विजर्भृतः) उच्च स्वरसे विहार करते हैं ॥ ७ ॥

[३२०] (अद्य ऋष्वौ वनस्पती ता) आज वृक्षसे उत्पन्न सुन्दर ये दोनों फलक (ऋष्वेभिः सोतृभिः) दर्शनीय स्तोताओंके साथ (मधुमत् नः सुतं) इन्द्रके लिये मीठा सोमरस हमारे यज्ञमें निकालें ॥ ८ ॥

[३२१] (चम्वोः शिष्टं उत् भर) दोनों पात्रोंसे अवशिष्ट रस उठा लो (सोमं पवित्रे आ सृज) सोमको छाननीके ऊपर रखो (गोः त्वचि अधि नि धेहि) गोचर्म पर रखो ॥ ९ ॥

भावार्थ— दहीको मथनेसे मक्खन निकलता है । मक्खन निकालनेकी भी एक कला है, जिसे हर गृहिणीको सीखना चाहिए । इस कार्यके लिए मथना रस्सीसे बांधकर गृहिणी अपने हाथोंको आगे पीछे करके मथती है । उससे मक्खन निकाल कर उसका घी बनाती है, जो यज्ञमें डाला जाता है ॥ ३-४ ॥

ऊखल और मूसलका उपयोग घर घरमें किया जाता है । यह चावलोंको स्वच्छ करनेके लिए काममें लाया जाता है । धानको मूसलसे कूटकर उसे छाजसे साफ किया जाता है । उसके सामने हवा चलती है, उस वायुसे भूसा उड जाता है । इस प्रकारके चावल यज्ञके लिए उपयोगी होते हैं, क्योंकि ऐसे चावलोंमें जीवनसत्त्व अधिक रहता है ॥ ५-६ ॥

ऊखल मूसल ये दो कूटनेके साधन हैं, अतः ये यज्ञके भी साधन हैं । यज्ञमें शब्द करते हुए मूसल और ऊखल नाचते और विहार करते हैं । वृक्ष अर्थात् लकडीसे बने हुए ये दोनों सोमरसको निकालनेके काममें भी आते हैं । उसे छाना जाता और घडोंमें भर दिया जाता है । तथा विशाल स्थानमें उन धान्योंको फैला दिया जाता है । गोचर्मका अर्थ गौका चमडा न होकर विशाल स्थान है । (टिप्पणी देखें) ॥ ७-९ ॥

दशहस्तेन वंशेन दशवंशान् समन्ततः ।
पंच चाभ्यधिकान् दद्यात् एतद् गोचर्म चोच्यते ॥ (वसिष्ठस्मृति)

(२९)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। देवता- इन्द्रः। छन्दः- पंक्तिः ।)

३२२ यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥
३२३ शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥
३२४ नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥
३२५ ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥
३२६ समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥

---

[२९]

अर्थ—[३२२] (सत्य सोमपाः) हे सत्य स्वरूप सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (यत् चित् हि अनाशस्ता इव स्मसि) जो भी हो, हम बहुत प्रशंसित जैसे नहीं है यह सत्य है (तुवीमघ इन्द्र) तथापि हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥१॥

[३२३] (शचीवः शिप्रिन् वाजानां पते) हे सामर्थ्यवान्, शिरस्त्राणधारी और सब बलोंके स्वामी इन्द्र ! (तव दंसना) तेरे कर्म अद्भुत हैं (तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ २ ॥

[३२४] (मिथूदृशा निष्वापय) दोनों दुर्गतियाँ परस्परकी ओर ताकती हुई सो जांय (अबुध्यमाने सस्तां) वे कभी न जागती हुईं बेहोश पडीं रहें अर्थात् हमें उनसे उपद्रव न हो (हे तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ३ ॥

[३२५] (शूर) हे शूर वीर ! (त्या अरातयः ससन्तु) हमारे शत्रु सोये रहें (रातयः बोधन्तु) और मित्र जागते रहें (तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ४ ॥

[३२६] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (अमुया पापया) इस पाप विचारमयी वाणीसे (नुवन्तं गर्दभं सं मृण) बोलनेवाले गधेका वध करो (तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र महासामर्थ्यवान्, शिरस्त्राणको धारण करनेवाला सत्यके मार्गपर चलानेवाला है। वह बलोंका स्वामी इन्द्र अपने अप्रशंसित भक्तके पास भी जाता है, और उसे ऐश्वर्य प्रदान करके समृद्धशाली बनाता है ॥ १–२ ॥

दुर्गतियां कभी भी अपना सिर न उठायें वे हमेशा सोईं रहें। क्योंकि जब मनुष्यपर दुर्गतियां आती हैं, तो उसके शत्रु भी बढ जाते हैं और मित्र कम हो जाते हैं। अतः जब दुर्गतियां सोती रहेंगी, तो उसके शत्रु भी सोते रहेंगे॥ ३–४ ॥

३२७ पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
३२८ सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

(३०)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवता- १-१६ इन्द्रः, १७-१९ अश्विनौ, २०-२२ उषाः । छन्दः- १-१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री, ११ पादनिचृद्गायत्री, १६ त्रिष्टुप् ।)

३२९ आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥
३३० शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥
३३१ सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥

अर्थ— [३२७] (वातः कुण्डृणाच्या) विध्वंस करनेवाले झंझावात (वनात् अधि दूरं पताति) दूरके वनमें चला जाय । (तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ६ ॥

[३२८] (सर्वं परिक्रोशं जहि) आक्रोश करनेवाले सब शत्रुओंका नाश करो । (कृकदाश्वं जम्भय) और हिंसकोंका संहार करो । (तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) सर्वोत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ७ ॥

[३०]

[३२९] (वाजयन्तः वयं) सामर्थ्यकी इच्छा करनेवाले हम (वः) तुम्हारे कल्याणके लिये (शतक्रतुं मंहिष्ठं इन्द्रं) सैंकडों पराक्रम करनेवाले महान् इन्द्रको (यथा क्रिविं आ सिञ्चे) जैसे हौजको पानीसे भरते हैं वैसे सोमरससे भर देते हैं ॥ १ ॥

[३३०] (यः शुचीनां शतं वा) जो शुद्ध सोमरसोंके सैंकडों (समाशिरां सहस्रं वा) तथा दुग्धमिश्रित रसोंके सहस्रों प्रवाहोंके पास (निम्नं न) जैसे जल नीचेकी ओर जाता है (आ इत् उ रीयते) उस तरह जाता है ॥२॥

[३३१] (यत् शुष्मिणे मदाय) जो सोमरस बलवान् इन्द्रके आनन्द बढानेके लिये (एना हि अस्य उदरे) इसके उदरमें (समुद्रः न व्यचा सं दधे) समुद्र जैसा इकट्ठा होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार गधेका रेंकना बहुत बुरा लगता है, उसी प्रकार पापी विचारोंको वाणीसे व्यक्त करना बडा खराब है । वाणीसे निकले हुए पापी विचार मनुष्यको नष्ट कर देते हैं । अतः पापयुक्त विचारवाली वाणीका झंझावात मनुष्योंमें न रहे अपितु दूर वनमें चला जाए । और वह शत्रुओंमें जाकर शत्रुओं और हिंसकोंका संहार करे । और हमें इन्द्र बहुत ऐश्वर्य देवे ॥ ५-७ ॥

अनेक तरह दूध आदि रसोंसे मिले हुए ये सोमरस जैसे पानी नीचेकी ओर बहते हैं, उसी प्रकार इन्द्रकी ओर जाते हैं, और जैसे समुद्रमें जल इकट्ठा हो जाता है, उसी तरह सब सोमरस इन्द्रके पास जाकर इकट्ठे हो जाते हैं और उसे आनंदित करते हैं ॥ १-३ ॥

३३२ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥
३३३ स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥
३३४ ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतये ऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥
३३५ योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥
३३६ आ घा गमद्यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥
३३७ अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥
३३८ तं त्वा वयं विश्ववारा ऽऽशास्महे पुरुहूत । सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥
३३९ अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥ ११ ॥
३४० तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये ॥ १२ ॥

अर्थ— [३३२] (अयं कपोतः गर्भधिं इव) यह सोमरस कपोत गार्भिणी कपोतीके साथ (ते सं अतसि) जैसा रहता है वैसा तुम्हारे लिये है, (तत् चित् नः वचः ओहसे) तब तुम हमारी प्रार्थनाका विचार करो ॥ ४ ॥

[३३३] (राधानां पते गिर्वाहः वीरः) हे धनोंके स्वामिन् स्तुति योग्य वीर ! (यस्य ते स्तोत्रं विभूतिः सूनृता अस्तु) यह स्तोत्र तुम्हारी विभूतिका सत्य सत्य वर्णन करनेवाला हो ॥ ५ ॥

[३३४] (शतक्रतो) हे सैंकडों कर्म करनेवाले ! (अस्मिन् वाजे) इस युद्धमें (नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ) हमारी सुरक्षाके लिये खडा रह । (अन्येषु सं ब्रवावहै) अन्य कार्यके विषयमें पीछेसे संभाषण करेंगे ॥ ६ ॥

[३३५] (योगेयोगे) प्रत्येक कर्ममें (वाजेवाजे) और प्रत्येक युद्धमें (तवस्तरं इन्द्रं ऊतये) बलशाली इन्द्रको हम अपनी सुरक्षाके लिये (सखायः हवामहे) उसके मित्रोंकी तरह बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[३३६] (यदि नः हवं श्रवत्) यदि वह हमारी पुकार सुनेंगे (सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः) तो अपनी सहस्रों प्रकारकी सुरक्षा करनेवाले बलोंके साथ (घ उप आगमत्) हमारे पास निःसन्देह आवेंगे ॥ ८ ॥

[३३७] (प्रत्नस्य ओकसः) अपने पुरातन स्थानसे (तुविप्रतिं नरं अनु हवे) अनेक भक्तोंके पास पहुंचनेवाले वीर इन्द्रको मैं बुलाता हूँ । (यं ते पूर्वं पिता हवे) जिस तुमको पहिले मेरे पिता बुला चुके थे ॥ ९ ॥

[३३८] (विश्ववार पुरुहूत सखे वसो) हे इस विश्वमें वरणीय श्रेष्ठ बहुतों द्वारा प्रशंसित मित्र और धनपति इन्द्र ! (तं त्वा जरितृभ्यः) उस तुमसे स्तोताओंका कल्याण करनेके लिये (वयं आशास्महे) हम आशीर्वाद मांगते हैं ॥ १० ॥

[३३९] (सोमपाः सखे वज्रिन्) हे सोम पीनेवाले मित्र वज्रधारी वीर ! (सखीनां प्रियाणां सोमपाव्नां अस्माकं) मित्र प्रिय और सोम पीनेवाले हमारे (शिप्रिणीनां) पास उत्तम नासिकावाली गौवोंके झुण्ड हों ॥ ११ ॥

[३४०] (हे सोमपाः सखे वज्रिन्) हे सोम पीनेवाले मित्र वज्रधारी (इष्टये ते यथा उश्मसि) हमारी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये तेरी प्राप्तिकी हम जिस तरह इच्छा करेंगे (तथा कृणु तत्) वैसा करो (तथा अस्तु) वह वैसा ही हो ॥ १२ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार कबूतर अपनी कबूतरीके साथ हमेशा रहता है, उसी तरह ये सोम भी इन्द्रके साथ हमेशा रहते हैं । तब उससे उल्लासित होकर वह युद्धमें शत्रुओंके सामने खडा रहता है और तब वाणियां उसकी शूर वीरताका सच्चा वर्णन करती हैं ॥ ४–६ ॥

हमारे पूर्वज ऋषि मुनि भी इस इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते थे, उसी कर्ममें कुशल, युद्ध करनेमें वीर इन्द्रको हम अपनी सुरक्षाके लिए उसके स्थानसे बुलाते हैं । यदि वह हमारी पुकार सुनेगा, तो अवश्य हमारी रक्षा करनेके लिए वह आएगा, ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है ॥ ७–९ ॥

सबके द्वारा वरणीय उस इन्द्रसे सभी आशीर्वाद मांगते हैं । हम उस वज्रधारीको पानेके लिए बहुत प्रयत्न करते हैं, अतः वह हमें प्राप्त हो और वह हमारे पास आकर हमें सुन्दर सुन्दर गायें प्रदान करे ॥ १०–१२ ॥

३४१ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥
३४२ आ घ त्वावान् त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥
३४३ आ यद् दुवः शतक्रत्वा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥
३४४ शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान् त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥
३४५ आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
३४६ समानयोजनो हि वां रथो दस्त्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥
३४७ न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥

अर्थ— [३४१] (क्षुमन्तः याभिः मदेम) अन्नसे युक्त होकर हम जिनसे आनन्दित होंगे (इन्द्रे सधमादे) वैसे इन्द्रके हमारे ऊपर प्रसन्न होनेपर (नः रेवतीः तुविवाजाः सन्तु) हमारे दूध देनेवाली और शक्तिसम्पन्न गायें हों॥१३॥

[३४२] (धृष्णो) हे शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्र ! (त्वावान् त्मना आप्तः) तुम्हारे समान तुम ही आप्त हो (स्तोतृभ्यः इयानः घ) जो तुम स्तोताओंके पास (चक्रयोः अक्षं न) चक्रोंके अक्षकी तरह (आ ऋणोः) पहुंचता है ॥ १४ ॥

[३४३] (शतक्रतो) हे सैंकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले ! (यत् दुवः आ कामं जरितॄणां) जो धन इच्छाके अनुसार स्तोताओंके पास (शचीभिः अक्षं न) शक्तियोंसे रथका अक्ष चलानेके समान (आ ऋणोः) तुम पहुं-चाते हो ॥ १५ ॥

[३४४] (इन्द्रः) इन्द्र (शश्वत्) हमेशा (पोप्रुथद्भिः नानदद्भिः शाश्वसद्भिः) फडफडाते, हिनहिनाते तथा जोरसे श्वास लेते हुए घोंडोके द्वारा (धनानि जिगाय) धनोंको जीतता है (दंसनावान् सः सनिता) कर्मकुशल उस दाता इन्द्रने (नः सनये) हमारे उपयोगके लिये (हिरण्यरथं अदात्) सोनेका रथ दिया है ॥ १६ ॥

[३४५] (अश्विनौ) हे अश्विदेवो! (अश्वावत्या शवीरया इषा) अनेक घोडोंसे युक्त शक्ति देनेवाले अन्नके साथ (आ यातं) आओ (हे दस्रा) हे शत्रुनाशको ! (गोमत् हिरण्यवत्) हमारे घरमें गायें और सुवर्ण होवें ॥ १७ ॥

[३४६] (दस्त्रौ) हे शत्रुनाशको! (वां रथः समानयोजनः अमर्त्यः) तुम दोनोंका एक साथ जोतनेवाला विनाशरहित रथ है (हि समुद्रे ईयते) जो समुद्रमें भी जाता है ॥ १८ ॥

[३४७] (रथस्य चक्रं) तुमने अपने रथका एक चक्र (अघ्न्यस्य मूर्धनि) पर्वतके शिखरके मूलमें (नि येमथुः) रखा है (अन्यत् परि द्याम् ईयते) और दूसरा द्युलोकमें चलता है ॥ १९ ॥

भावार्थ— इन्द्र सबसे ज्यादा आप्त अर्थात् श्रेष्ठ है । उत्तम उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र जब अपनी सभी श्रेष्ठ शक्तियोंके साथ स्तुति करनेवालोंके पास पहुंचता है, और उन्हें शक्ति सम्पन्न गायें प्रदान करता है, तब सभी स्तोता अत्यन्त आनन्दित होते हैं ॥ १३-१५ ॥

यह इन्द्र हमेशा हिनहिनाते हुए तथा वायुके वेगके समान उडनेवाले घोडोंके द्वारा शत्रुओंके धनोंको जीतता है। वह इन्द्र धनके दाताओंको सोनेके रथ अर्थात् अत्यधिक सम्पत्ति देता है ॥ १६ ॥

अश्विदेवोंके पास एक रथ है, जो अश्विनी कुमारोंके लिए एक ही समय जोडा जाता है । यह रथ समुद्रमें भी चलता है, भूमि पर भी चलता है और अमर होनेसे आकाशमें भी उडता है । इस रथ पर बैठकर अश्विनी अन्न, गाय और सुवर्णके साथ सबके घरोंमें जाते हैं ॥ १७-१९ ॥

३४८ कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥

३४९ वयं हि ते अमन्मह्या ऽऽन्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥

३५० त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ ॥

(३१)

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती; ८, १६, १८ त्रिष्टुप् ।

३५१ त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषि-र्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसो ऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १ ॥

३५२ त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥ २ ॥

अर्थ— [३४८] (कधप्रिये अमर्त्ये विभावरि उषः) हे स्तुतिप्रिय अमर शोभावाली उषादेवी ! (भुजे मर्तः कः) तुम्हें भोजन देनेवाला मानव कौन है ? (कं नक्षसे) किसे तुम प्राप्त होना चाहती हो ॥ २० ॥

[३४९] (अश्वे चित्रे अरुषि) हे अश्वयुक्त विचित्र प्रकाशवाली उषादेवी ! (आ अन्तात् आ पराकात्) दूरसे या पाससे (वयं ते न अमन्महि) हम तुम्हें नहीं जान सकते ॥ २१ ॥

[३५०] (हे दिवः दुहितः) हे द्युलोककी पुत्री ! (त्येभिः वाजेभिः त्वं आ गहि) उन बलोंके साथ तुम आओ (अस्मे रयिं नि धारय) और हमें धन प्रदान करो ॥ २२ ॥

[३१]

[३५१] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं प्रथमः अङ्गिरा ऋषिः अभवः) तू सबसे पहला अङ्गिरा नामक ऋषि हुआ था । (देवः देवानां शिवः सखा अभवः) तू देवोंका देव और कल्याणकारक मित्र हुआ (तव व्रते कवयः विद्मनापसः भ्राजदृष्टयः मरुतः अजायन्त) तेरा ही कर्म करनेके लिए मेधावी और कार्यपद्धतिको जाननेवाले तथा शोभायमान शस्त्रोंवाले मरुत् गण पैदा हुये ॥ १ ॥

१ अंगिराः अग्निः देवः— प्रत्येक अंग और अवयवमें रसरूपसे रहनेवाला ।

२ प्रथमः ऋषिः देवानां शिवः सखा— पहला ज्ञानी और देवोंका शुभ मित्र ।

३ व्रते कवयः विद्मनापसः— उसके नियमानुसार जो चलते हैं, वे अतीन्द्रिय ज्ञानी बनकर सब कार्य विधिपूर्वक करते हैं ।

[३५२] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं प्रथमः अङ्गिरस्तमः कविः देवानां व्रतं परिभूषसि) तू सबसे प्रथम मुख्य अंगिरा होकर मेधावी होनेसे देवोंके कर्मको विभूषित करता है । तू (विश्वस्मै भुवनाय विभुः) सारे संसारमें व्यापक है, तथा तू (मेधिरः द्विमाता आयवे कतिधा चित् शयुः) बुद्धिमान् दो माँवाला होकर मनुष्यके हित लिये कई रूपोंमें सर्वत्र वर्तमान है ॥ २ ॥

१ देवानां व्रतं परिभूषसि— यह अग्रणी देवोंके व्रतोंको सुशोभित करता है ।

२ विश्वस्मै भुवनस्य मेधि-रः— सब प्राणियोंको बुद्धिका दान करता है ।

भावार्थ— विचित्र प्रकाशके कारण अत्यन्त शोभा देनेवाली यह उषा सब मनुष्योंके पास पहुंचती है । पर मनुष्य इसके महत्त्वको नहीं जान पाते । यह जब मनुष्योंके पास जाती है, तब बल और धनसे युक्त होकर जाती है । जो उषः कालमें जागते हैं, वे बल और धनसे युक्त होते हैं । पर कुछ मनुष्य इस उषाके महत्त्वको नहीं जानते, और वे उषःकालमें भी सोते रहते हैं, और इस प्रकार धन और बल पानेसे वंचित रह जाते हैं ॥ २०-२२ ॥

यह अग्नि अंगिरा अर्थात् शरीरके अंगोंमें बढनेवाले जीवन रसको पैदा करती है, जब तक शरीरमें अग्नि रहती है, तभी तक यह जीवन रस बहता है । यह देव अर्थात् इन्द्रियोंका देव है । इसीसे शरीरका सारा कार्य चलता है ॥ १ ॥

यह मेधावी अग्रणी देवोंकी हर प्रकारसे सहायता करता है तथा सब मनुष्योंको बुद्धि; देकर उनकी आयु बढानेवाला है तथा दो माताओंवाला है, इसकी एक माता जन्मदात्री है और दूसरी माता विद्या है । यह सर्वत्र व्यापक है ॥ २ ॥

३५३ त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्ये ऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ॥ ३ ॥
३५४ त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।
श्वात्रेण यत् पित्रोर्मुच्यसे पर्या ऽऽ त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ॥ ४ ॥
३५५ त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः ।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृति-मेकायुरग्रे विश आविवासिसि ॥ ५ ॥

अर्थ— [३५३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (प्रथम) अग्रगामी हो, (सुक्रतूया विवस्वते मातरिश्वने आविर्भव) अच्छे कर्म करनेकी इच्छाके साथ सूर्य और वायुके लिये प्रकट हो । तेरी शक्ति देखकर (रोदसी अरेजेतां) आकाश और पृथ्वी काँप गये । तूने (होतृवूर्ये भारं असघ्नोः) होताके रूपमें वरण किये जानेपर यज्ञके भारको वहन किया । हे (वसो) निवासके हेतु अग्ने ! तूने (महः अजयः) पूजनीय देवोंका यज्ञ पूर्ण किया है ॥ ३ ॥

१ सुक्रतूया विवस्वते आविर्भव— उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे युक्त होकर यह अग्नि मनुष्योंके हितके लिए प्रकट हुई है ।

२ रोदसी अरेजेतां— इसके डरसे दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक कांपते हैं ।

[३५४] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं मनवे द्यां अवाशयः) तूने मनुष्यके हितके लिये द्युलोकको शब्दमय किया; (सुकृते पुरूरवसे सुकृत्तरः) सुकर्मा पुरूरवाके लिये तू अधिक अच्छे कर्मवाला हुआ । (यत् पित्रोः श्वात्रेण परिमुच्यसे) जब तू माता पिताके मथन करनेसे मुक्त होता अर्थात् पैदा होता है तब (त्वा पूर्वं आ अनयत्) तुझे पूर्वकी ओर ले गये, (पुनः अपरं आ अनयत्) फिर दूसरी ओर ले गये ॥ ४ ॥

१ मनवे द्यां अ-वाशयः— मनुष्यके हितके लिए आकाशको शब्दगुण-युक्त बनाया ।

२ पुरू-रवसे सुकृते सुकृत्तराः— बहुज्ञानी शुभ कर्म करनेवालेके हित करनेके लिए यह अधिक शुभ काम करता है ।

३ पुरू-रवाः— बहुशब्दवाला, बहुत ज्ञानी, बहुत व्याख्यान देनेवाले ।

[३५५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वृषभः पुष्टिवर्धनः) तू बडा बलिष्ठ और पुष्टि देकर सबको बढानेवाला है । (उद्यतस्रुचे श्रवाय्यः भवसि) यज्ञ करनेवालेके द्वारा तू स्तुतिके योग्य है । (यः वषट्कृतिं आहुतिं परिवेद) जो यज्ञकर्ता वषट्कारसे युक्त आहुतिको देना जानता है उसे तू सम्पूर्ण आयु देता है और (विशः आः विवाससि) प्रजाओंमें सबसे आगेके भागमें प्रतिष्ठापित करता है ॥ ५ ॥

१ वृषभः पुष्टिवर्धनः श्रवाय्यः— वह अग्रणी बलवान् पुष्टिकर्ता और प्रशंसाके योग्य है ।

२ एकायुः विशः आविवाससि— पूर्णायु देकर मनुष्योंको बसाता है ।

भावार्थ— यह अग्नि अग्रगामी है यह महाशक्तिशाली है । इसकी शक्तिसे सारा विश्व कांपता है । इसीके कारण यज्ञ सम्पूर्ण होता है ॥ ३ ॥

आकाशका गुण शब्द है । उस शब्दके रहस्यको जाननेवाला ज्ञानी, लोगोंके हितके लिए हमेशा शुभ कर्म करता है । जब पुत्र पैदा होता है तब वह पहले ब्रह्मचर्याश्रममें प्रविष्ट होता है, तब फिर बादमें गृहस्थाश्रमी होता है ॥ ४ ॥

यह अग्रणी सबको पुष्टि देता है, और यज्ञशीलके लिए सम्पूर्ण आयु प्रदान करता है । यज्ञ करनेसे मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है और सब मनुष्योंमें उत्तम बनता है ॥ ५ ॥

३५६ त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित् समृता हंसि भूयसः ॥ ६ ॥
३५७ त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ॥ ७ ॥
३५८ त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३५६] हे (विचर्षणे अग्ने) विशिष्ट ज्ञानसे युक्त अग्ने ! (त्वं वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् विदथे पिपर्षि) तू कुमार्गगामी मनुष्यकी भी अपने साथ रहनेपर युद्धमें सहायता करता है। और (यः परितक्म्ये धने शूरसाता दभ्रेभिः चित्) जो तू सब ओरसे आक्रमण होनेवाले, धन प्राप्त होनेवाले तथा शूरवीरोंसे युद्ध किये जाने योग्य संग्राममें थोडे वीरतायुक्त पुरुषोंके द्वारा (समृता भूयसः हंसि) अच्छी प्रकार युद्ध प्रारम्भ होनेपर बडे बडे वीरोंको भी मार देता है ॥ ६ ॥

१ वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् विदथे पिपर्षि— पापी मनुष्यको भी विद्वानोंके साथ संयुक्त करके उनकी युद्धमें रक्षा करता है ।

२ शूरसातौ दभ्रेभिः चित् भूयसः हंसि— शूरों द्वारा छेडे गए युद्धमें यह अग्रणी थोडेसे शत्रुओंको लेकर भी बहुतोंको मार देता है ।

[३५७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं तं मर्तं) तुम इस उत्तम मनुष्यको (दिवे दिवे) प्रतिदिन (श्रवसे उत्तमे अमृतत्वे दधासि) यशस्वी बनाते हुए उत्तम अमरपदपर प्रतिष्ठित करते हो और (यः उभयाय जन्मने तातृषाणः) जो दोनों प्रकारके जन्मके लिये अतीव पिपासु हैं, उस (सूरये मयः प्रयः च आ कृणोषि) ज्ञानीके लिये सुख और अन्न सब ओरसे देते हो ॥ ७ ॥

१ मर्तं श्रवसे उत्तमे अमृतत्वे दधासि— यह अग्रणी यशके लिए उत्तम मनुष्यको अमर बनाता है ।

२ उभयाय जन्मने तातृषाणः सूरये मयः प्रयः च कृणोषि— ब्रह्मचर्य और गृहस्थ इन दोनों जीवनोंमें उन्नतिकी इच्छा करनेवाले विद्वान्‌के लिए यह अग्रणी सुख और अन्न देता है। (मयः—सुख—प्रयः—सुख)

[३५८] हे (अग्ने) अग्ने ! (स्तवानः त्वं धनानां सनये) प्रशंसित होता हुआ तू धनोंके दानके लिये (नः यशसं कारुं कृणुहि) हमें यश और कर्म करनेका सामर्थ्य दे । (नवेन अपसा कर्म ऋध्याम) नये कर्मके द्वारा हम यज्ञकर्मकी वृद्धि करें । (द्यावापृथिवी ! देवैः नः प्रावतं) हे द्यु और पृथ्वी लोक ! सब देवोंके साथ हमारी सुचारु-रूपसे रक्षा करो ॥ ८ ॥

१ धनानां सनये यशसं कारुं कृणुहि— यह अग्रणी लोगोंको धनकी प्राप्तिके लिए यश देनेवाली कारीगरीकी विद्या प्रदान करता है ।

भावार्थ— यह अग्रणी दुराचारी मनुष्यको भी अपनी सहायता देकर सुधारता है । तथा युद्धमें चुने हुए वीरोंको लेकर बडीसे बडी शत्रुसेनाको भी हरा देता है । यह अग्रणी इतना वीर है ॥ ६ ॥

उत्तम मनुष्य ब्रह्मचर्य और गृहस्थ इन दोनों जीवनोंमें सुख और अन्न प्राप्त कर अन्तमें अमरपद प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

कारीगरी सदा यश प्रदान करनेवाली होती है । मनुष्य कारीगरीसे धन प्राप्त कर सकता है । जिस देशमें कारीगर ज्यादा होते हैं, वह देश धनधान्य सम्पन्न होता है ॥ ८ ॥

३५९ त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥ ९ ॥
३६० त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत् तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥ १० ॥
३६१ त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम् ।
इळामकृण्वन् मनुषस्य शासनीं पितुर्यत् पुत्रो ममकस्य जायते ॥ ११ ॥

अर्थ— [३५९] हे (अनवद्य अग्ने) दोषोंसे रहित अग्ने ! (देवेषु जागृविः देवः त्वं) सब देवोंके मध्य जागरूक रहनेवाला देव तू (पित्रोः उपस्थे नः तनूकृत् आ बोधि) हमारे माता पिताकी सहायतासे हमारे शरीरका निर्माण करता है और हमें ज्ञानवान् बनाता है। (कारवे प्रमतिः च) कर्म करनेके लिए विशेष बुद्धि देकर, हे (कल्याण) कल्याण करनेवाले अग्ने ! (त्वं विश्वं वसु ओपिषे) तू हमें सम्पूर्ण धन प्रदान कर ॥ ९ ॥

१ देवेषु जागृविः— यह अग्रणी देवोंमें हमेशा जागता रहता है ।

२ कल्याण ! विश्वं वसु ओपिषे— यह अग्रणी कल्याण करनेवाला, धन प्रदान करनेवाला और सबको निवासकी सुविधा देनेवाला है ।

[३६०] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं प्रमतिः) तू विशेष बुद्धिमान् है, (त्वं नः पिता असि) तू हमारा पिता है, (त्वं वयस्कृत्) तू आयुको देनेवाला है, (वयं तव जामयः) हम तेरे बन्धु हैं । हे (अदाभ्य) किसीसे भी हिंसित न होनेवाले अग्ने ! (सुवीरं व्रतपां त्वा शतिनः सहस्रिण रायः संयन्ति) अच्छे वीरोंसे युक्त और नियमोंका पालन करनेवाले तुझको सैंकडों और हजारों तरहके धन प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

१ व्रतपां सुवीरं सहस्रिणः रायः यन्तिः— नियमके पालन करनेवाले तथा उत्तम पुत्रवाले मनुष्यको अनेक प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ।

२ अ-दाभ्यः— वह अग्रणी किसीसे न दबनेवाला है ।

[३६१] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वां देवाः आयवे प्रथमं आयुं) तुझको देवोंने प्रथम आयु दी, पश्चात् उन्होंने (नहुषस्य विश्पतिं अकृण्वन्) मानवोंके लिये प्रजापालक राजाका निर्माण किया । तब (मनुषस्य शासनीं इळां अकृण्वन्) मनुष्योंकी व्यवस्थाके लिये धर्मनीतिका निर्माण किया । (यत् ममकस्य पितुः पुत्रः जायते) जैसे पितासे ममत्वरूप पुत्रका जन्म होता है वैसे ही आत्मीयतासे राजा प्रजाका पुत्रवत् पालन करे ॥ ११ ॥

१ देवाः आयवे आयुं अकृण्वन्— देवोंने मानवोंके लिए आयु बनाई ।

२ विश्पतिं अकृण्वन्— प्रजाके पालकको उत्पन्न किया ।

भावार्थ— यह हमेशा जागरूक रहनेवाला अग्रणी सबको बुद्धि प्रदान कर उन्हें कर्म करनेकी प्रेरणा देता है । इस प्रकार वह सबका कल्याण करता है ॥ ९ ॥

वह अग्रणी प्रभु हमारा माता, पिता, भाई है, वह सर्वशक्तिमान् हर तरहके ऐश्वर्योंसे युक्त है, वह अपने भक्तको भी हर तरहके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ १० ॥

प्रथम सब मनुष्य उत्पन्न हुए, फिर उनका पालन करनेके लिए राजाका चुनाव किया गया । उसने तथा अन्य प्रजा-प्रतिनिधियोंने मिलकर व्यवस्थाके लिए धर्म और नीतिका निर्माण किया, ताकि उन नियमोंके अनुसार चलता हुआ राजा प्रजाका पुत्रवत पालन करे । इस मंत्रमें समाजव्यवस्थाका बहुत सुन्दर वर्णन है ॥ ११ ॥

३६२ त्वं नो अग्ने तव देव पायुभि--र्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवाम--स्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥ १२ ॥
३६३ त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरो ऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्यो ऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन् मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ॥ १३ ॥
३६४ त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद् रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित् प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः ॥ १४ ॥

अर्थ-- [३६२] हे (वन्द्य अग्ने देव) वन्दनीय अग्नि देव ! (त्वं तव पायुभिः मघोनः नः तन्वः च रक्ष) तू अपनी संरक्षण शक्तिसे हमें धनवान् बनाकर हमारे शरीरोंकी सुरक्षा कर । (तव व्रते अनिमेषं रक्षमाणः) तेरे नियममें हमेशा रहनेवालेकी सदा रक्षा करनेवाला तू (तोकस्य तनये गवां त्राता असि) हमारे बालबच्चों तथा गौओंकी रक्षा कर ॥ १२ ॥

१ तव पायुभिः मघोनः तन्वः तोकस्य रक्ष— अपनी शक्तियोंसे हमें धनवान् बनाकर हमारे तथा हमारे पुत्रोंके शरीरोंकी रक्षा करो ।

[३६३] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं यज्यवे पायुः) तू यज्ञ करनेवालेका संरक्षक है । (अनिषङ्गाय अन्तरः चतुः अक्षः इध्यसे) सङ्गरहित होकर कार्य करनेवालेके हितके लिये पास रहकर चारों ओर अपनी आँखें रखते हुआ तू तेजस्वी होकर उसका रक्षक होता है । (अवृकाय धायसे रातहव्यः) अहिंसक और पोषकके लिये जो अन्नदान करता है, उस (कीरे चित् तं मन्त्रं मनसा वनोषि) कविके उस मन्त्रको तू मनसे स्वीकार करता है ॥ १३ ॥

१ यज्यवे पायुः— यज्ञ करनेवालेकी रक्षा करता है ।

२ अ-वृकाय धायसे रातहव्यः— किसीकी हिंसा न करनेवाले और दूसरोंके पोषण करनेवालेको तू अन्न देता है ।

[३६४] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं उरुशंसाय वाघते स्पार्हं परमं यत् रेक्णः तत् वनोषि) तू बहुत प्रशंसा करनेवाले ऋत्विक् यजमानके लिये जो जो इच्छा करने योग्य धन है वह सब इकट्ठा करता है अर्थात् उनको देता है । (आध्रस्य चित् प्रमतिः पिता उच्यसे) दुर्बलके लिये भी उत्तम बुद्धि प्रदान करनेके कारण तुझे सब पिता कहते हैं । तू (विदुष्टरः पाकं दिशः प्र प्र शास्सि) अधिक ज्ञानवान् है, अतः अज्ञानीको सब दिशायें दर्शाता है अर्थात् अच्छी शिक्षा देता है ॥ १४ ॥

१ उरुशंसाय वाघते परमं स्पार्हं रेक्णः वनोषि— यह अग्रणी भक्तको देनेके लिए उत्तम धन ग्रहण करता है ।

२ आध्रस्य प्रमतिः— अज्ञानीके लिए उत्तम बुद्धि देता है ।

३ पाकं दिशः प्रशास्सि— यह अग्रणी अज्ञानियोंको ज्ञान और उन्नतिकी दिशा दिखाता है ।

भावार्थ— यह अग्नि देव अपने सामर्थ्यसे हमारे शरीरोंकी रक्षा करता है । शरीरमें उष्णता पैदा कर शरीरकी स्थिति रखता है, इसीलिए इसे ' तनू-न-पात् ' भी कहते हैं । नियमोंमें रहकर जो व्यक्ति इस अग्निका सामर्थ्य बढाता है, वह स्वस्थ एवं नीरोग रहकर दीर्घायु प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

यज्ञ करनेसे शरीर स्वास्थ्यकी रक्षा होती है । दूसरोंकी हिंसा न करनेवाले दानशीलको ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

यह अग्रणी देव स्तुति करनेवालेको धन प्रदान करता है । अज्ञानियोंको विद्वान् बनाकर उन्हें उन्नत करता है, इसी-लिए सब लोग उसे पालनकर्ता कहते हैं ॥ १४ ॥

३६५ त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥ १५ ॥

३६६ इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥ १६ ॥

३६७ मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥ १७ ॥

अर्थ— [३६५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं प्रयतदक्षिणं नरं) तू प्रयत्नशील मानवके लिये दान देनेवाले नेताको ठीक तरह (स्यूतं वर्म इव विश्वतः परिपासि) सिये हुए कवचके समान सब ओरसे सुरक्षित रखता है। (स्वादुक्षद्मा वसतौ स्योनकृत्) जिस घरमें जो गृहस्वामी मीठा अन्न तैयार करके अपने घरमें अतिथियोंको सुख देता और जो (यः जीवयाजं जयते) जीवोंके हितके लिए यज्ञ करता है (सः दिवः उपमा) वह घर स्वर्गकी उपमाके योग्य होता है ॥ १५ ॥

१ प्रयतदक्षिणं नरं विश्वतः परिपासि— प्रयत्नसे उत्तम कर्म करनेवालेके लिए जो योग्य दक्षिणा देता है, उस नेता अथवा मनुष्यकी तू चारों ओरसे सुरक्षा करता है ।

२ स्वादुक्षद्मा वसतौ स्योनकृत्, यः जीवयाजं यजते स दिवः उपमा— जिस घरमें अतिथियोंके लिए हमेशा स्वादिष्ट पदार्थ तैयार रहते हैं, तथा जीवोंके हितके लिए यज्ञ किया जाता है, वह घर स्वर्गसदृश ही है।

[३६६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (नः इमां शरणिं मीमृषः) हमारी इस त्रुटिको क्षमा कर, क्योंकि हम (दूरात् यं इमं अध्वानं अगाम) इस समय तक दूर दूर भटकते रहे थे पर अब इस धर्म मार्ग पर आ गये हैं । तू (सोम्यानां मर्त्यानां आपिः पिता प्रमतिः भृमिः ऋषिकृत् असि) शान्त स्वभाववाले मानवोंके बन्धु पिता, सुबुद्धि देनेवाले शीघ्रतासे कार्य करनेवाले और ऋषियोंके भी निर्माण करनेवाला है ॥ १६ ॥

१ दूरात् इमं अध्वानं अगाम नः इमां शरणिं मीमृषः— हम अपने अधर्मके मार्गसे हटकर धर्म मार्ग पर आगए हैं अतः अब हमारी त्रुटियोंको क्षमा करो ।

२ सोम्यानां मर्त्यानां पिता असिः— यह अग्रणी देव शान्त और अकुटिल स्वभाववालोंका पालक है ।

[३६७] हे (शुचे अङ्गिरः अग्ने) शुद्ध अङ्गिरा अग्ने! तू (मनुष्वत् अङ्गिरस्वत् ययातिवत् पूर्ववत् सदने अच्छ याहि) मनु, अङ्गिरा, ययाति और पूर्व पुरुषोंके समान यज्ञस्थानमें सीधे जा । वहां (दैव्यं जनं आ वह) दिव्यजनोंको ले आ, उनको (बर्हिषि आसादय) आसनोंपर बिठा और उन्हें (प्रियं यक्षि च) प्रिय अन्न प्रदान कर ॥ १७ ॥

१ दैव्यं जनं आवह— यह अग्रणी दिव्यजनोंको आगे बढाता है ।

भावार्थ— दान सदा प्रयत्नशील मनुष्यको ही देना चाहिए, ताकि किया हुआ दान सत्कर्ममें लगाया जावे । घरोंमें हमेशा अतिथिका सत्कार होना चाहिए और यज्ञ भी प्रतिदिन करना चाहिए । ऐसे घर स्वर्गके समान होते हैं और हमेशा देवों द्वारा सुरक्षित रहते हैं ॥ १५ ॥

परमात्माकी प्रार्थनासे मनुष्य अधर्म मार्गसे हटकर धर्म मार्ग पर चलता है और तब उस अकुटिल मनुष्यकी परमात्मा रक्षा करता है और उसे ज्ञानी बनाता है ॥ १६ ॥

यज्ञमें सब बुलाये जाएं और उनमें जो दिव्य और ज्ञानी पुरुष हों, उन्हें प्राधान्यता देकर उन्हें अन्नादि प्रदान किया जाए ॥ १७ ॥

३६८ एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत् ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान् सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥ १८ ॥

(३२)

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३६९ इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥
३७० अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥
३७१ वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [३६८] हे (अग्ने) अग्ने ! (एतेन ब्रह्मणा वावृधस्व) इस स्तोत्रसे तेरा यश बढता रहे । अपनी (शक्ती वा विदा वा यत् ते चकृमः) शक्तिसे और ज्ञानसे जो यह तेरा पूजन हमने किया है उससे (अस्मान् वस्यः प्रणेषि) हमें धनके पास पहुंचा । (उत नः वाजवत्या सुमत्या संसृज) और हमें बल बढानेवाले अन्नसे सम्पन्न करके शोभनमतिसे भी संयुक्त कर ॥ १८ ॥

[३२]

[३६९] (वज्री) वज्रधारी इन्द्रने (यानि प्रथमानि वीर्याणि चकार) जो पहिले पराक्रम किये थे (इन्द्रस्य नु प्र वोचं) इन्द्रके उन्हीं पराक्रमोंका हम वर्णन करते हैं (अहिं अहन्) उसने अहिका वध किया (अनु अपः तर्द) पश्चात् जलप्रवाहोंको खुला किया (पर्वतानां वक्षणाः प्र अभिनत्) और पर्वतोंमेंसे नदियोंका मार्ग खोदकर विशाल किया ॥ १ ॥

[३७०] (पर्वते शिश्रियाणं अहिं अहन्) पर्वतपर आश्रय करनेवाले अहिका वध इन्द्रने किया (त्वष्टा अस्मै स्वर्यं वज्रं ततक्ष) त्वष्टा कारीगरने उसके लिये शत्रुपर उत्तम रीतिसे फेंकने योग्य दूरसे वेध करनेवाला वज्र बनाया था (धेनव वाश्राः इव) तब गौवें जैसी हम्बारव करती हुई अपने बच्चेकी ओर दौडती हैं वैसे ही, (स्यन्दमाना आपः) दौडनेवाले जल-प्रवाह (समुद्रं अञ्जः अव जग्मुः) समुद्रके पास वेगसे जाने लगे ॥ २ ॥

[३७१] (वृषायमाणः) बलवान् इन्द्रने (सोमं अवृणीत) सोमको स्वीकार किया (त्रिकद्रुकेषु सुतस्य अपिबत्) तीन पात्रोंमें रखे हुए रसका पान किया (मघवा सायकं वज्रं आ अदत्त) धनवान् इन्द्रने बाण और वज्रको हाथमें पकडा (अहीनां प्रथमजां एनं अहन्) और अहियोंमेंसे इस मुखियाका वध किया ॥ ३ ॥

भावार्थ— भक्त अपनी शक्ति एवं ज्ञानसे परमात्माकी भक्ति करे । धन-धान्य आदि सम्पत्ति प्राप्त करनेका एक मात्र उपाय परमात्माकी प्रार्थना ही है ॥ १८ ॥

इन्द्रने अहिको मारा, पानी बहाया, पर्वतोंसे नदियां बहायीं। पर्वतोंपरका बर्फ पिघलनेसे सिन्धु गंगा आदि नदियोंका बहना प्रत्यक्ष दीखता है । इस प्रकार नदियोंको बहाना इन्द्रका पराक्रम है ॥ १ ॥

कारीगर त्वष्टाने शत्रुपर उत्तम प्रकारसे फेंके जाने योग्य वज्रको बनाया, उससे इन्द्रने पर्वतपर रहनेवाले अहिनामक शत्रुका वध किया। तब उसके वध होनेपर जलप्रवाह ऐसे बह निकले जैसे रंभाते हुए बछडे अपनी मांकी तरफ दौडते हैं ॥२॥

इन्द्रने सोमपानसे उत्साहित होकर अहिनामक असुरजातिके मुख्य मुख्य चुने हुए वीरोंको मारा। इसके अलावा और जितने षड्यंत्रकारी थे उनका भी नाश किया । इसी प्रकार सावधानीसे शत्रुओंकी कपटयुक्तिको जानकर उनका नाश करना चाहिए ॥ ३ ॥

३७२ यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीना—मान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत् सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥
३७३ अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंस—मिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णा—ऽहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ ५ ॥
३७४ अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥
३७५ अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्र—मास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥ ७ ॥

अर्थ— [३७२] (उत इन्द्र) और हे इन्द्र ! (यत् अहीनां प्रथमजां अहन्) जब अहियोंमेंसे प्रमुख वीरका वध किया (आत् मायिनां मायाः प्र अमिनाः) तब कपटियोंके कपटमय षड्यंत्रोंका भी विनाश किया (आत् द्यां उषासं सूर्यं जनयन्) पश्चात् आकाशमें उषा और सूर्यको प्रकट किया (तादीत्ना शत्रुं न विवित्से किल) तब तुम्हारे लिये कोई शत्रु निःसंदेह नहीं रहा ॥ ४ ॥

[३७३] (इन्द्रः) इन्द्रने (महता वधेन वज्रेण) बडे घातक शस्त्रसे (वृत्रतरं वृत्रं) बडे घेरनेवाले वृत्रका (व्यंसं, अहन्) उसके बाहु काटनेके पश्चात् वध किया (कुलिशेन विवृक्णा स्कन्धांसि इव) कुल्हाडेसे छेदे गये वृक्षकी शाखाओंकी तरह (अहिः पृथिव्याः उपपृक् शयते) वह अहि पृथ्वीके ऊपर पडा हुआ है ॥ ५ ॥

[३७४] (दुर्मदः अयोद्धा इव) महा घमण्डी और अपनेको अप्रतिम योद्धा माननेवाले वृत्रने (महावीरं तुविबाधं ऋजीषं) महावीर, बहुत शत्रुओंका प्रतिबंध करनेवाले शत्रुनाशक इन्द्रको (आ जुह्वे हि) आह्वान देकर युद्धके लिये बुलाया, पर पश्चात् (अस्य वधानां समृतिं न अतारीत्) इस इन्द्रके आघातोंका सामना वह कर नहीं सका (इन्द्रशत्रुः रुजानाः सं पिपिषे) पश्चात् इन्द्रके शत्रु वृत्रने नदियोंको भी स्वयं गिरते गिरते तोड डाला ॥ ६ ॥

[३७५] (अपात् अहस्तः) पांव और हाथ कट जानेपर भी वृत्रने (इन्द्रं अपृतन्यत्) इन्द्रसे युद्ध करना चाहा (अस्य सानौ अधि वज्रं आ जघान) इन्द्रने इसके सिर पर वज्र मारा (वध्रिः वृष्णः प्रतिमानं बुभूषन्) वीर्यहीन मनुष्यके बलशाली वीरके साथ सामना करनेके समान (वृत्रः पुरुत्रा व्यस्तः अशयत्) वह वृत्र अनेक स्थानोंपर शस्त्रके आघात सहकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ७ ॥

भावार्थ— वृत्र इन्द्रकी सेनाको चारों ओरसे घेरकर मारना चाहता था, पर इस कपटको जानकर इन्द्रने वृत्रको ही मार डाला। इन्द्रने वृत्रके हाथ पैर काटकर उसका वध किया। इसी प्रकार उसने अहिको भी मारा। यहां अहि और वृत्रका अर्थ बर्फ है। मेघ नहीं। क्योंकि मेघ कभी पृथ्वी पर नहीं सोता। बर्फ तो पहाडपर भी गिरती है और भूमिपर भी। वहां सूर्य किरणोंसे यह बर्फ पिघलती है। यही इन्द्र अर्थात् सूर्यके द्वारा वृत्र या अहि अर्थात् बर्फका वध करना है ॥४–५॥

घमण्डी और अपनेको अजिक्य समझनेवाले वृत्रने इन्द्रको लडनेके लिए आह्वान किया। उस शत्रुने अपनेको इन्द्रसे अधिक बलवान् समझकर यह आह्वान किया था। पर इन्द्रने जब उसपर आघात किए तब वह शत्रु आघातोंको सह न सका और वह पृथ्वीपर गिर कर मर गया। इन्द्रका शत्रु वृत्र नदियोंको बर्फके रूपमें जमा कर उनके प्रवाहको रोक देता है। पर जब सूर्य अपनी किरणोंसे उस बर्फको पिघला देता है, तब नदियां फिर बह निकलती हैं ॥ ६ ॥

हाथ पांव टूट जानेपर भी सेनासहित वृत्र युद्ध कर ही रहा था। पर जब इन्द्रने वृत्रके सिरपर वज्रका प्रहार किया तब वह घायल होकर एवं अस्तव्यस्त होकर भूमिपर गिर पडा। वृत्रकी इन्द्रके साथ यह स्पर्धा उसी प्रकार थी जिस प्रकार किसी नपुंसककी वीर पुरुषके साथ ॥ ७ ॥

३७६ नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥
३७७ नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रे-न्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥
३७८ अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ १० ॥
३७९ दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार ॥ ११ ॥

अर्थ— [३७६] (अमुया शयानं) इस पृथ्वीके साथ सोनेवाले वृत्रको लांघकर (भिन्नं नदं न) बाढसे तटको छिन्न भिन्न करके बहनेवाली नदीके समान (मनः रुहाणाः आपः अति यन्ति) मनोहारी जलप्रवाह बहने लगे (वृत्रः महिना याः चित् पर्यतिष्ठत्) वृत्रने अपनी महिमासे जिन जलोंको बन्द कर रखा था (तासां पत्सुतःशीः अहिः बभूव) उनके पांवोंके नीचे सोनेवाला ही अब वही अहि बन गया ॥ ८ ॥

[३७७] (वृत्रपुत्रा नीचावयाः अभवत्) वृत्रकी माताकी संरक्षण करनेकी शक्ति कम हो गयी (इन्द्रः अस्याः वधः अव जभार) वह माता पुत्रके ऊपर सो गयी, पर इन्द्रने उस माताके नीचेसे वृत्रपर प्रहार किया (सूः उतरा, पुत्रः अधरः आसीत्) उस समय माता ऊपर और पुत्र नीचे था (सहवत्सा धेनुः न) बछडेके साथ जैसी धेनु सोती है (दानुः शये) वैसीही वह दानु वृत्रमाता पुत्रके ऊपर सो गयी थी ॥ ९ ॥

[३७८] (अतिष्ठन्तीनां अनिवेशमानानां काष्ठानां मध्ये) स्थिर न रहनेवाले और विश्राम न करनेवाले जलप्रवाहोंके बीचमें (वृत्रस्य निण्यं शरीरं निहितं) वृत्रका शरीर छिपा हुआ था (आपः वि चरन्ति) और उसपरसे जलप्रवाह चल रहे थे (इन्द्रशत्रुः) इन्द्रके शत्रु वृत्रने (दीर्घं तमः आशयत्) बडा ही अन्धकार फैला रखा था ॥ १० ॥

[३७९] (पणिना गावः इव) पणी नामक असुरने जैसी गौवें गुप्त रखी थीं, (दासपत्नीः अहिगोपाः) उस तरह दास वृत्रके द्वारा पालित और अहिद्वारा सुरक्षित (आपः निरुद्धाः अतिष्ठन्) जलप्रवाह रुके पडे थे अर्थात् स्थिर हो गये थे (अपां यत् बिलं अपिहितं आसीत्) जलका जो द्वार बन्द था (तत् वृत्रं जघन्वान्) वह वृत्रके वधके पश्चात् (अप ववार) खोल दिया गया अर्थात् जलप्रवाह बहने लगे ॥ ११ ॥

भावार्थ— वृत्र अपने पौरुषपर बडा अभिमान करता था और लोगोंके सिरपर नाचता था, पर अब वही उनके पांवोंके नीचे गिरा हुआ था । जब यह गिर गया, तब भूमिपर सोनेवाले इस वृत्रपरसे जलप्रवाह लांघकर जाने लगे ॥ ८ ॥

इन्द्रने जब वृत्रपर वज्र फेंका और वृत्र नीचे गिर गया, तब वृत्रकी माता वृत्रको बचानेके लिए उसके ऊपर लेट गई। इस प्रकार अपने पुत्रकी सुरक्षाके लिए उसके ऊपर लेट जानेपर भी इन्द्रने नीचेसे वज्र फेंककर वृत्रको मार दिया ॥ ९ ॥

प्रवाहोंके बीचमें वृत्रका शरीर छिपा पडा था । उस परसे जलप्रवाह बहने लगे थे । इन्द्रके शत्रु इस वृत्रने चारों ओर घना अंधकार छा दिया था । इससे भी यह प्रतीत होता है कि वृत्रका अर्थ बर्फ ही है, बादल नहीं ॥ १० ॥

जलप्रवाह रुके हुए थे, जलोंका द्वार बंद था । अर्थात् जलप्रवाह बह नहीं पाते थे । तब इन्द्रने वृत्रका वध करके वे जलप्रवाह खोल दिए । नदियोंका सब जल बर्फ बन गया था, इसलिए प्रवाह भी बन्द हो गए, पर जब सूर्य किरणोंने बर्फको पिघलाया, तब प्रवाह फिर बहने शुरू हो गए ॥ ११ ॥

३८० अश्व्यो॒ वारो॑ अभव॒स्तदि॑न्द्र सृ॒के यत् त्वा॑ प्र॒त्यह॑न् दे॒व एकः॑ ।
अज॑यो॒ गा अज॑यः शूर॒ सोम॒मवा॑सृ॒जः सर्त॑वे स॒प्त सिन्धू॑न् ॥ १२ ॥
३८१ नास्मै॑ वि॒द्युन्न त॑न्य॒तुः सि॑षेध॒ न यां मिह॒मकि॑रद् ध्रा॒दुनिं॑ च ।
इन्द्र॑श्च॒ यद् यु॑यु॒धाते॒ अहि॑श्चो॒ताप॒रीभ्यो॑ म॒घवा॒ वि जि॑ग्ये ॥ १३ ॥
३८२ अहे॑र्या॒तारं॑ कम॑पश्य इन्द्र हृ॒दि यत् ते॑ ज॒घ्नुषो॒ भीरग॑च्छत् ।
नव॑ च॒ यन् न॑व॒तिं च॒ स्रव॑न्तीः श्ये॒नो न भी॒तो अत॑रो॒ रजां॑सि ॥ १४ ॥
३८३ इन्द्रो॑ या॒तोऽव॑सितस्य॒ राजा॒ शम॑स्य च शृ॒ङ्गिणो॒ वज्र॑बाहुः ।
सेदु॒ राजा॑ क्षयति चर्ष॒णीना॑म॒रान् न नेमिः॒ परि॒ ता ब॑भूव ॥ १५ ॥

अर्थ— [३८०] (सृके यत्) इन्द्रके वज्रपर (एकः देवः त्वा प्रत्यहन्) जब एक अद्वितीय युद्धकुशल वृत्रने, मानो तुमपरही प्रहार किया (तत् अश्व्यः वारः अभवः) तब घोडेकी पूँछकी तरह तुमने उसका निवारण किया (गाः अजयः) और गौओंको प्राप्त किया (हे शूर इन्द्र) हे शूरवीर इन्द्र ! (सोमं अजयः) सोमको तुमने प्राप्त किया (सप्त सिन्धून् सर्तवे अव असृजः) और सात सिन्धुओंके प्रवाहोंको गतिमान् करके खुला छोड दिया ॥ १२ ॥

[३८१] (अस्मै विद्युत् न सिषेध) जब इन्द्र युद्ध करने लगा तब इस इन्द्रका बिजली प्रतिबंध न कर सकी (तन्यतुः, यां मिहं अकिरत् न) मेघगर्जना और जो हिमवृष्टि हुई वह भी उसका प्रतिबंध न कर सकी (ध्रादुनिं च) गिरनेवाली विद्युत् भी इस इन्द्रको न रोक सकी (इन्द्रः च अहिः च यत् युयुधाते) इन्द्र और अहि परस्पर युद्ध करने लगे (उत मघवा) उस समय धनवान् इन्द्रने (अपरीभ्यः वि जिग्ये) अन्यान्य शत्रुप्रेरित कपट प्रयोगोंको भी जीत लिया ॥ १३ ॥

[३८२] (इन्द्रः) हे इन्द्र ! (जघ्नुषः ते हृदि) वृत्रका वध करते समय तुम्हारे हृदयमें (यत् भीः अगच्छत्) यदि भय उत्पन्न हो जाता (अहेः यातारं कं अपश्यः) तब तुमने अहिका वध करनेके लिये किस दूसरे वीरको देखा होता अर्थात् तुम्हें छोडकर दूसरा कोई वीर मिलना संभव ही नहीं था । (यत् नव च नवतिं च स्रवन्तीः रजांसि) तुमने तो नौ और नब्बे जल-प्रवाहोंको (भीतः श्येनः न) अन्तरिक्षमें भयभीत श्येनकी तरह (अतरः) पार कर दिया ॥ १४ ॥

[३८३] (वज्रबाहुः इन्द्रः) वज्रबाहु इन्द्र (यातः अवसितस्य) जङ्गम और स्थावरों (शमस्य शृङ्गिणः च) शान्त और क्रूरों सींगवालोंका (राजा) राजा है (स इत् उ चर्षणीनां राजा क्षयति) वही मनुष्योंका भी राजा है (अरान् नेमिः न) अरोंको जिस तरह चक्रकी नेमि धारण करती है (ताः परि बभूव) उस तरह वे सब उसके चारों ओर रहते हैं अर्थात् वही सबका धारण करता है ॥ १५ ॥

भावार्थ— इन्द्रने वृत्रका वध किया, सोम आदि वनस्पतियां प्राप्त कीं, गायें प्राप्त कीं और सातों सिन्धुनदियोंका जल प्रवाहित किया । सातों नदियां भरपूर बहने लगीं । बर्फके पडनेपर बर्फसे सब वनस्पतियां ढक जाती हैं पर सूर्यके कारण बर्फके पिघलनेपर फिर वनस्पतियां प्रकट हो जाती हैं ॥ १२ ॥

बिजलियां, मेघगर्जन, बडी वृष्टियां, बर्फकी वर्षा, बिजलियोंका गिरना आदि आपत्तियां इन्द्रको न रोक सकीं । इन्द्रके शत्रुपर हमला करनेके समय ये आपत्तियां होती रहीं, पर इन्द्रका हमला रुका नहीं । शत्रुके परास्त होनेतक इन्द्रने विघ्नोंकी परवाह न करते हुए हमला किया और अन्तमें विजय पायी ॥ १३ ॥

जब इस हमलेको करते समय इन्द्रके भी हृदयमें यदि भय उत्पन्न होने लगे तो फिर उसका सहायक कौन होगा ? अर्थात् कोई नहीं । जब इन्द्र जैसा बलशाली भी युद्ध करनेसे डरने लगे, तो फिर वृत्रसे युद्ध करनेमें कोई समर्थ नहीं होगा ॥ १४ ॥

यह इन्द्र सभी प्राणियोंका राजा है । यह शान्त भी है पर भी जब क्रोध आता है, तो भयंकर भी बहुत हो जाता है । इसीलिए सब प्राणी इससे डरते हैं । सभी प्रजायें इसके चारों ओर उसी प्रकार रहती हैं, जिस प्रकार चक्रके चारों ओर अरे । उसी प्रभुके आधार पर सारा विश्व है ॥ १५ ॥

(३३)

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३८४ एतायामोप गव्यन्त इन्द्र॑मस्माकं॒ सु प्रम॑तिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादुस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥

३८५ उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥

३८६ नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥

३८७ वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक् ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥

| ३३ |

अर्थ— [३८४] (आ इत) आओ ! (गव्यन्तः) गायें प्राप्त करनेकी इच्छासे (इन्द्रं उप अयाम) हम इन्द्रके पास जावें (अनामृणः) जिसका कभी पराजय नहीं होता ऐसा यह इन्द्र (अस्माकं प्रमतिं सु वावृधाति) हमारी बुद्धि उत्तम रीतिसे बढायेगा (आत् अस्य) निःसंदेह इसकी भक्ति (रायः गवां परं केतं नः कुवित् आवर्जते) धनों और गायोंकी प्राप्तिका श्रेष्ठ ज्ञान हमें प्रदान करेगी ॥ १ ॥

[३८५] (जुष्टां वसतिं श्येनः न) जैसा श्येन पक्षी अपने रहनेके घोंसलेके पास दौडता है, (धनदां अप्रतीतं इन्द्रं) वैसे उस धनदाता और अपराजित इन्द्रके पास (अहं उपमेभिः अर्कैः नमस्यन्) मैं उपासनाके योग्य स्तोत्रोंसे गमन करता हुआ (उप इत् पतामि) जा पहुंचता हूँ, (यः स्तोतृभ्यः यामन् हव्यः अस्तिः) यह इन्द्र भक्तोंके लिये युद्धके समय सहायार्थ बुलाने योग्य है ॥ २ ॥

[३८६] (सर्वसेनः इषुधीन् नि असक्त) सब सेनाओंका सेनापति इन्द्र तर्कसोंको अपने पीठपर धारण करता है (अर्यः यस्य वृष्टि गाः सं अजति) वह स्वामी इन्द्र जिसको देना चाहता है उसके पास गायें भेजता है (हे प्रवृद्ध इन्द्र) हे श्रेष्ठ इन्द्र ! (भूरि वामं चोष्कूयमाणः) हमें बहुत श्रेष्ठ धन देनेकी इच्छा करते हुए (अस्मत् अधि पणिः मा भूः) हमारे साथ बनिया जैसा व्यवहार न करना ॥ ३ ॥

[३८७] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (उप शाकेभिः) शक्तिशाली वीरोंके साथ हमला करते हुए भी (एकः चरन्) अन्तमें तुम अकेलेने ही चढाई करके (धनिनं दस्युं) धनी दस्यु वृत्रका अपने (घनेन वधीः हि) प्रचण्ड वज्रसे वध किया। (धनोः अधि विषुणक् ते वि आयन्) तब तुम्हारे धनुष्यके ही ऊपर विशेष नाश होनेके लिये ही मानो, वे सब चढाई करने लगे (अयज्वानः सनकाः) अन्तमें वे यज्ञ न करनेवाले दानव (प्र-इतिं ईयुः) मृत्युको ही प्राप्त हुए ॥४॥

भावार्थ— इन्द्र सब भक्तोंके द्वारा बुलाने योग्य है। उसके बलको कोई रोक नहीं सकता। ऐसे इन्द्रको जो नमस्कार करता है, उस पर यह इन्द्र बहुत कृपा करता है और उसे हर तरहसे समृद्धि युक्त करता है ॥ १-२ ॥

सब सेना और सेनापतिको सभी तरहके अस्त्रास्त्रोंसे सज्जित रहना चाहिए। इस प्रकार अपनी शूरवीरतासे जो इन्द्रको प्रसन्न करता है, वह अनेक गायोंसे समृद्ध होता है ॥ ३ ॥

धनुष आदि अस्त्रोंका संग्रह करके शत्रु सैनिक इन्द्रका नाश करनेके लिए आए, पर वे स्वयं विनष्ट हो गए। शत्रु-सैनिक असावधानीसे लाभ उठाना चाहते हैं, उस समय स्वयं सावधान रहकर उनका नाश करना चाहिए ॥ ४ ॥

३८८ परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रा–ऽयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥

३८९ अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेना–मयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥

३९० त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चा–योधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥

३९१ चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥ ८ ॥

अर्थ– [३८८] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (अयज्वानः ते) स्वयं यज्ञ न करनेवाले वे शत्रु (यज्वभिः स्पर्धमानः) याजकोंके साथ स्पर्धा करनेके कारण (शीर्षा परा चित् ववृजुः) अपना सिर घुमा कर दूर भगाये गये (हे हरिवः स्थातः उग्र) हे घोडोंको जोतनेवाले, युद्धमें स्थिर उग्र वीर इन्द्र ! (यत् दिवः रोदस्योः अव्रतान् निः प्र अधमः) तुमने द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वीसे धर्मव्रत–हीन दुष्टोंको भगा दिया है ॥ ५ ॥

[३८९] (अनवद्यस्य सेनां अयुयुत्सन्) निर्दोष इन्द्रकी सेनाके साथ युद्ध करनेकी इच्छा उन शत्रुओंने की, (नवग्वाः क्षितयः अयातयन्त) तब नवीन गतिसे मानवोंने– इन सैनिकोंने उस शत्रुपर चढाई की (वृषायुधः वध्रयः न) बलिष्ठ शूर पुरुषोंके साथ युद्ध करनेसे जो गति नपुंसककी होती है (निरष्टाः चितयन्तः) वैसी ही दशा पराजित होकर उनकी हो गयी (इन्द्रात् प्रवद्भिः आयन्) और वे अपनी निर्बलता मानकर इन्द्रसे दूर भाग गये ॥ ६ ॥

[३९०] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वं रुदतः जक्षतः च एतान्) तुमने रोनेवाले या खानेवाले इन शत्रुओंको (रजसः पारे अयोधयः) रजोलोकके परे युद्ध करके भगा दिया । (दस्युं दिवः आ उच्चा अव अदहः) इस दस्यु (वृत्र) को द्युलोकसे खींचकर नीचे लाकर अच्छी तरह जला दिया (सुन्वतः स्तुवतः शंसं प्र आवः) और सोम–याजकों तथा स्तोताओंके स्तुतियोंकी उत्तम रक्षा की ॥ ७ ॥

[३९१] (हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः) सुवर्णों और रत्नोंसे अपने आपको शोभायमान करके (पृथिव्या परिणहं चक्राणासः) पृथ्वीके ऊपर अपना प्रभाव शत्रुओंने जमाया था (हिन्वानासः) वे बढते ही जाते थे (ते इन्द्रं न तितिरुः) पर वे इन्द्रके साथ युद्धमें न ठहर सके (स्पशः) अन्तमें शत्रुके अनुचरोंको (सूर्येण परि अदधात्) सूर्यके द्वारा पराभूत होना पडा ॥ ८ ॥

भावार्थ– शत्रुके साथ युद्ध करनेकी ऐसी तैय्यारी होनी चाहिए, कि हमला होने पर सब शत्रु सिर नीचा करके भाग जाएं । युद्धमें स्थिर रहनेवाला उग्रवीर ही अनियमसे चलनेवाले दुष्ट शत्रुओंका विनाश कर सकता है ॥ ५ ॥

निर्दोष और बलवान् वीरके साथ युद्ध करनेवाले शत्रुओंपर युद्धके नवीन साधनोंसे युक्त होकर ही हमला करना चाहिए । यहां नवग्वाका अर्थ नवीन गति अर्थात् युद्ध विद्यामें चतुरता है । अपने सैनिक बडे प्रखर हों और शत्रुओंके सैनिक उनके सामने शक्तिहीन नपुंसकके समान हों ॥ ६ ॥

यह इन्द्र इतना वीर है कि यह लडकर शत्रुओंको अन्तरिक्षके उस पारतक खदेड देता है । उनको जला देता है और इस प्रकार अपने भक्तोंकी रक्षा करता है ॥ ७ ॥

शत्रुके गुप्तचर बडे खतरनाक होते हैं, ये सब गुप्त ज्ञान शत्रुओंको पहुंचाते रहते हैं, इसलिए इन्हें चारों ओरसे घेर कर पकडना चाहिए । इसके साथ ही सैनिकोंकी शक्ति इतनी हो कि सुवर्णों और रत्नोंके आभूषण धारण करते हुए अर्थात् ऐश्वर्यसम्पन्न होते हुए, तथा बडे वेगसे हमला करनेपर भी हमारे वीरोंको दबा न सकें ॥ ८ ॥

३९२ परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानै- र्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥

३९३ न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापु- र्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ १० ॥

३९४ अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्या- ऽवर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥ ११ ॥

३९५ न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन् यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥

अर्थ—[३९२] (इन्द्र) हे इन्द्र! (यत् उभे रोदसी) जब दोनों द्यु और भू लोकोंका (महिना) अपनी महिमासे (विश्वतः सीं परि अबुभोजीः) चारों ओरसे सब प्रकार तुमने उपभोग किया, (इन्द्र) तब हे इन्द्र! (अमन्यमानान्) न माननेवालोंको अर्थात् नास्तिकोंको भी (अभि मन्यमानैः ब्रह्मभिः) माननेवालोंके आस्तिकोंके द्वारा ज्ञानपूर्वक की गयी अनेक योजनाओंसे (दस्युं निः अधमः) शत्रुको परास्त किया ॥ ९ ॥

[३९३] (ये दिवः पृथिव्याः अन्तं न आपुः) जो द्यु लोकसे पृथ्वीतकके अवकाशका अन्तिम परिमाण न जान सके (धनदां मायाभिः न पर्यभूवन्) जो धनदाता इन्द्रका कपट युक्तियोंसे भी पराभव न कर सके (वृषभः इन्द्रः वज्रं युजं चक्रे) तब बलवान् इन्द्रने वज्र ठीक तरह पकड लिया (ज्योतिषा तमसः गाः निः अधुक्षत्) और प्रकाश द्वारा अन्धकारमेंसे गौओंको निकाल कर प्राप्त करके, उसने उनका दोहन किया ॥ १० ॥

[३९४] (आपः अस्य स्वधां अनु अक्षरन्) जल-प्रवाह इसके अन्नके अनुसार खेतमेंसे चलने लगे (नाव्यानां मध्ये आ अवर्धत) परंतु वृत्र नौकाओंद्वारा प्रवेश करने योग्य नदियोंके बीच बढ रहा था (इन्द्रः सध्रीचीनेन मनसा) इन्द्रने धैर्ययुक्त मनसे (तं ओजिष्ठेन हन्मना) उस शत्रुको बलवान् घातक वज्रसे (अभि द्यून् अहन्) कुछ एक दिनोंकी अवधिमें मार दिया ॥ ११ ॥

[३९५] (इलीबिशस्य) भूमिपर सोनेवाले वृत्रके (दृळ्हा) सुदृढ सैन्यों वा किलोंका (इन्द्रः नि अविध्यत्) इन्द्रने वेध किया (शृङ्गिणं शुष्णं वि अभिनत्) और सींगवाले शोषक वृत्रको छिन्नभिन्न किया (मघवन्) हे धनवान् इन्द्र! (यावत् तरः) तुम्हारा जितना वेग (यावत् ओजः) और जितना बल था (पृतन्युं शत्रुं वज्रेण अवधीः) उतनेसे तुमने सेनाको साथ रखकर लडनेवाले शत्रुका वज्रसे वध किया ॥ १२ ॥

भावार्थ—अपना कहना न मानकर शत्रुओंका कहना माननेवाले मित्रोंसे दूर ही रहना चाहिए। पहले की गई संधिको न मानकर जो बिना कारण आक्रमण करते हैं, वे शत्रु हैं। उनके साथ लडनेके लिए मित्र सैनिकोंको नियुक्त करना चाहिए ॥ ९ ॥

जो शत्रु द्यु और पृथ्वीतक भी नहीं पहुंच पाते, वे भला किस तरह अपने कपटोंसे इन्द्रको घेर सकते हैं। अपनी शक्ति इतनी अधिक हो कि शत्रु कपटके प्रयोगोंसे भी हमारा विनाश न कर सकें ॥ १० ॥

जलप्रवाह अन्नको बढानेके लिए अच्छी तरह चलते रहें। देशमें अन्नकी स्थिति उत्तम हो। और देशके बाहर देशके सैनिक धैर्ययुक्त मनसे, शांत चित्तसे और उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे शत्रुओंसे मुकाबला करते रहें ॥ ११ ॥

जबर्दस्ती हमारे प्रदेशों पर कब्जा किए हुए शत्रुओंको और उनके सुदृढ किलोंको तोड देना चाहिए। तीक्ष्ण शस्त्रोंसे शत्रुको छिन्न भिन्न करना चाहिए। जहांतक वेग हो और हमारी शक्ति काम कर सके, वहांतक शत्रुओंका सफाया कर देना चाहिए ॥ १२ ॥

*

३९६ अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥

३९७ आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥

३९८ आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥ १५ ॥

(३४)

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- जगती; ९, १२ त्रिष्टुप् ।)

३९९ त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥

अर्थ— [३९६] (अस्य सिध्मः शत्रून् अभि अजिगात्) इस इन्द्रका वज्र शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करने लगा (तिग्मेन वृषभेण वज्रेण) तीक्ष्ण और बलशाली वज्रसे (पुरः वि अभेत्) उस इन्द्रने शत्रुके नगरोंको तोड डाला (इन्द्रः वज्रेण सं असृजत्) इन्द्रने वज्रसे शत्रुपर सम्यक् प्रहार किया (शाशदानः स्वां मतिं प्र अतिरत्) तब शत्रुनाशक इन्द्रने अपनी उत्तम विशाल बुद्धि प्रकट की ॥ १३ ॥

[३९७] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यस्मिन् चाकन् कुत्सं आवः) जिसपर तुमने अपनी कृपा की उस कुत्सकी तुमने सुरक्षा की (युध्यन्तं वृषभं दशद्युं प्र आवः) युद्ध करते हुए बलवान् दशद्युकी भी तुमने रक्षा की (शफच्युतः रेणुः द्यां नक्षत) उस समय तुम्हारे घोडोंके खुरोंसे उडी धूली द्युलोकतक फैला गयी थी। (श्वैत्रेयः नृसाह्याय उत् तस्थौ) श्वैत्रेय भी सब मानवोंमें अधिक समर्थ होनेके लिये तुम्हारी कृपासे ऊपर उठ गया ॥ १४ ॥

[३९८] (मघवन्) हे धनवान् इन्द्र ! (क्षेत्रजेषे) क्षेत्र-प्राप्तिके युद्धमें (शमं वृषभं तुग्र्यासु गां श्वित्र्यं आवः) शान्त बलवान् परंतु जलप्रवाहोंमें डूबनेवाले श्वित्र्यकी तुमने रक्षा की (अत्र ज्योक् चित् तस्थिवांसः अक्रन्) यहां बहुत समयतक ठहरे हुए हमारे शत्रु हमसे युद्ध कर रहे थे (शत्रूयतां अधरा वेदना अकः) उन शत्रुओंको नीचे गिराकर तुमने ही दुःख दिया ॥ १५ ॥

(३४)

[३९९] (नवेदसा अश्विना) हे ज्ञानी अश्विदेवो ! (अद्य) आज तुम दोनों (त्रिः चित् नः भवतं) तीनों बार हमारे ही होकर रहो । (वां यामः) तुम दोनोंका रथ (उत रातिः विभुः) और दान बडा होता है; (वाससः हिम्या इव) जैसे कपडेका सर्दीसे सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है वैसे ही (युवोः यन्त्रं हि) तुम दोनोंका नियंत्रण हमसे घनिष्ठ होता रहे, (मनीषिभिः अभ्यायंसेन्या भवतं) मननशील लोगोंको तुम दोनों सहज हीसे प्राप्त होते रहो ॥ १ ॥

भावार्थ— शत्रुओंके नाशकी इच्छा करनेवाला वीर अपनी बुद्धिको शत्रुसे अधिक उत्तम बनावे, ताकि शत्रु हमारी बुद्धिकी थाह न पा सके और इस प्रकार उत्तम बुद्धिसे शत्रुओंका नाश करना चाहिए ॥ १३ ॥

अपने देशमें (कुत्स) बुराइयोंको नष्ट करनेवालों और (दशद्यु) दान देनेवालोंकी रक्षा करनी चाहिए। और सेना तथा घोडे इतने वेगवान् हों कि उनके चलते समय उनके खुरोंसे उडाई गई धूलसे सारी दिशायें भर जाएं ॥ १४ ॥

शत्रुको नष्ट करनेके लिए प्रथम उसके देशमें अशिक्षाका प्रसार करना चाहिए और अपने राष्ट्रमें शिक्षाका प्रसार करना चाहिए । इस प्रकार जब शत्रु राष्ट्रके निवासी अशिक्षित रहेंगे और अपने देशवासी शिक्षित होंगे, तो शत्रु अवश्य विनष्ट हो जाएगा ॥ १५ ॥

अश्विदेव ज्ञानी हैं । वे हमारे यज्ञमें आज तीनों सवनोंमें आजायें । उनका रथ भी बडा है और उनके पास दान देने योग्य धन भी उस रथमें बहुत रखा रहता है । सर्दीसे कपडेका सम्बन्ध जैसे अटूट रहता है वैसे ही अश्विदेवोंकी निगरानीका सम्बन्ध हमसे रहे । अश्विदेवोंकी सहायता मननशील लोगोंको सहज हीसे प्राप्त होती रहे ॥ १ ॥

४०० त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ २ ॥
४०१ समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥ ३ ॥
४०२ त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४ ॥
४०३ त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः ।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस् त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद् रथम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [४००] इनके (मधु-वाहने रथे) मधुको ढोनेवाले रथमें (त्रयः पवयः) तीन पहिये लगे हुए हैं, (विश्वे इत्) सभी आप दोनोंकी (सोमस्य वेनां अनु विदुः) सोमकी चाहको जानते हैं। हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (आरभे त्रयः स्कम्भासः) तुम दोनोंके रथपर आलम्बनके लिए तीन खंभे (स्कभितासः) स्थिर किये हुए हैं, (नक्तं त्रिः याथः) रात्रीके समय तुम दोनों तीनबार यात्रा करते हो, (दिवा उ त्रिः) और दिनके समय भी तीन बार घूमते हो ॥ २ ॥

[४०१] हे (अवद्य-गोहना अश्विना) अश्विदेवो ! तुम दोनों दोषोंको गुप्त रखनेवाले हो। (समाने अहन्) एक ही दिन (अद्य) आज (यज्ञं त्रिः) हमारे यज्ञको तीन बार (मधुना मिमिक्षतं) मधुसे पूर्ण करो; (युवं अस्मभ्यं) तुम दोनों हमें (उषसः दोषाः च) प्रातःकाल तथा सायंकाल (वाजवतीः इषः) बलवर्धक अन्न (त्रिः पिन्वतं) तीनबार भरपूर दे दो ॥ ३ ॥

[४०२] हे अश्विनौ ! (वर्तिः त्रिः यातं) हमारे घरपर तुम दोनों तीन बार आओ, (अनुव्रते जने त्रिः) अनुयायी लोगोंके मध्य तुम दोनों तीन बार जाओ, (सुप्राव्ये) उत्तम रक्षा करने योग्य मनुष्योंको (त्रिः) तीन बार (त्रेधा इव शिक्षतं) तीन प्रकारके ज्ञानको पढाओ; (युवं) तुम दोनों (नान्द्यं त्रिः वहतं) अभिनन्दनीय पदार्थोंको तीन बार ढोकर इधर पहुँचा दो और (अस्मे) हमें (पृक्षः) अन्नोंको (अक्षरा इव त्रिः पिन्वतं) स्थायी वस्तुओंके समान तीनबार पर्याप्त मात्रामें देकर पुष्ट करो ॥ ४ ॥

[४०३] हे (अश्विनौ) अश्विनौ ! (युवं नः) तुम दोनों हमारे लिए (त्रिः रयिं वहतं) तीनबार धन पहुँचा दो, (देवताता त्रिः) यज्ञमें तीनबार आओ (उत) और वहांके (धियः त्रिः अवतं) कर्मोंको तीनबार सुरक्षित रखो, (सौभगत्वं त्रिः) अच्छा ऐश्वर्य तीनबार दो, (उत श्रवांसि त्रिः) और अन्न समूह तीनबार दो, (वां त्रिः स्थं रथं) तुम दोनोंके तीन पहियोंके रथपर (सूरेः दुहिता) सूर्यकी कन्या (रुहत्) चढ गयी है ॥ ५ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंके रथके तीन पहिये हैं। उसमें बैठ कर वे सोमके स्थानपर जाते हैं क्योंकि वे सोमको चाहनेवाले हैं। इनके रथमें पकडनेके लिये तीन खम्भे हैं, ये खम्भे स्थिर हैं। रात्रीमें तथा दिनमें तीन तीन बार ये अश्विदेव इस रथमें बैठकर भ्रमण करते हैं। इनके रथमें पर्याप्त मधु रहता है ॥ २ ॥

अश्विदेव हमारे कर्ममें दोष अर्थात् त्रुटि रही तो उसको क्षमा करते हैं। दिनमें तीन तीन बार यज्ञमें आते और मधु देते हैं, तथा सवेरे और शामको बलवर्धक अन्न दिनमें तीनबार देते हैं ॥ ३ ॥

अश्विदेव अनुयायियोंके घरपर तीनबार दिनमें जायँ, अपने घर तीनबार आ जायँ। जिसकी सुरक्षा करनी हो उसको तीनबार तीन प्रकारका ज्ञान देकर अपनी सुरक्षा करनेकी रीति बतावें। आनन्द देनेवाले पदार्थ तीनबार दिनमें ले आयें और अन्न भी तीनबार देकर हमें पुष्ट करें ॥ ४ ॥

अश्विदेव हमारे लिए तीनबार धन दें, यज्ञमें आकर तीनबार कर्मोंकी देखभाल करें, उत्तम भाग्य तीनबार दें, और तीनबार अन्न दें। इनके तीन पहियोंवाले रथपर सूर्यकी दुहिता चढ बैठी है ॥ ५ ॥

४०४ त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥ ६ ॥
४०५ त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥ ७ ॥
४०६ त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस् त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥ ८ ॥
४०७ क्व१ त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१ त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४०४] हे (शुभः पती अश्विना) शुभ कर्मोंके पालनकर्ता अश्विदेवो ! (नः) हमें (दिव्यानि भेषजा त्रिः) द्युलोककी दवाइयाँ तीनबार (पार्थिवानि त्रिः) भूमिपरकी औषधियाँ तीनबार और (अद्भ्यः त्रिः दत्तं) जलोंसे तीनबार औषधोंका दान करो । (ममकाय सूनवे शंयोः) मेरे पुत्रको सुखकी प्राप्ति होनेके लिए (ओमानं त्रिधातु शर्म वहतं) संरक्षण तथा तीन धातुओंकी सुस्थितिसे मिलनेवाला सुख पहुँचा दो ॥ ६ ॥

[४०५] (यजता अश्विना) हे पूजनीय अश्विदेवो ! (नः दिवे दिवे) हमारे प्रतिदिन करनेके (त्रिः) तीनों यज्ञोंमें (पृथिवीं) पृथ्वी स्थानीय वेदीपर (त्रिः परि अशायतं) तीनबार आकर बैठो, (रथ्या नासत्या) हे रथारूढ और सत्यपालक देवो ! (परावतः) सुदूरवर्ती स्थानसे भी (वातः आत्मा इव) प्राण वायुरूपी आत्माके समान (स्वसराणि तिस्रः गच्छतं) हमारे घरोंमें तीनों बार आओ ॥ ७ ॥

[४०६] हे अश्विदेवो ! (सप्तमातृभिः सिन्धुभिः) माताओंके समान पवित्र सातों नदियोंके जलसे (त्रिः) तीनबार, (त्रयः आहावाः) ये तीन पात्र भर दिये हैं, (हविः त्रेधा कृतं) हविको भी तीन हिस्सोंमें बांट रखा है, (तिस्रः पृथिवीः उपरि प्रवा) इन तीनों लोगोंमें ऊपर जानेवाले तुम दोनों (दिवः हितं नाकं) द्युलोकमें प्रस्थापित सुखकी (द्युभिः अक्तुभिः) दिनों और रात्रियोंमें (रक्षेथे) रक्षा करते हो ॥ ८ ॥

[४०७] (नासत्या) हे सत्यका पालन करनेवाले देवो ! (त्रिवृतः रथस्य) तीन छोरवाले रथके (त्रि चक्रा क्व) तीन पहिये किधर हैं ? (ये सनीळाः त्रयः) जो एक ही स्थानमें रखे हुए तीनों (बंधुरः क्व) खंभे हैं वे कहाँ हैं ? (वाजिनः रासभस्य) बलवान् गर्दभका तुम्हारे (योगः कदा) रथमें जोतना कब होगा ? तुम दोनों (येन यज्ञं उपयाथः) जिस रथपर चढकर यज्ञमें आते हो ॥ ९ ॥

भावार्थ— अश्विदेव हमारे शुभ कर्मोंकी रक्षा करें । पर्वत, भूमि और जलसे चिकित्सा करें और बाल बच्चोंकी सुरक्षाके लिये वात-पित्त कफकी (विषमताको दूर करके) समताका सुख दें ॥ ६ ॥

पूजनीय अश्विदेव प्रतिदिनके यज्ञमें तीनबार आकर आसनोंपर बैठें । जब वे दूर देशमें हों तब भी वे रथपर चढ कर, जैसा प्राण शरीरमें घुसता है वैसे, वेगसे हमारे यज्ञस्थानमें शीघ्रतासे आ जाँय । अर्थात् जहां कहीं भी हों वहांसे वे अवश्य आ जायँ ॥ ७ ॥

अश्विदेवोंका सत्कार करनेके लिये सात नदियोंका जल भरकर रखा है जिससे ये तीन पात्र भरे पडे हैं । उनके लिये हवि भी तीन पात्रोंमें रखी हुई है । ये दोनों देव तीनों लोकोंमें भ्रमण करते हैं और स्वर्गमें रखे सुखकी दिन रात सुरक्षा करते रहते हैं ॥ ८ ॥

रथको पूर्णतया तैयार करके तथा रथकी सभी वस्तुओंकी भलीभाँति जाँच पडताल करके ही यात्रा करनी चाहिए ॥ ९ ॥

४०८ आ नासत्या गच्छतं हूयते हवि-र्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथ-मृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १० ॥
४०९ आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ११ ॥
४१० आ नो अश्विना त्रिवृता रथेना-ऽर्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ १२ ॥

(३५)

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता- १ (पादानां क्रमेण) अग्निः, मित्रावरुणौ, रात्रिः, सविता च । छन्दः- २-११ सविता । त्रिष्टुप्; १, ९ जगती ।)

४११ ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥ १ ॥

अर्थ— [४०८] (नासत्या) हे असत्यसे दूर रहनेवाले देवो ! (हविः हूयते) यहां हविको अग्निमें डाला जाता है, अतः (आ गच्छतं) यहां आओ। (मधुपेभिः आसभिः) मधु पीनेवाले मुखोंसे (मध्वः पिबतं) मीठे सोम रसका पान करो । (युवः चित्रं घृतवन्तं रथं हि) तुम दोनोंके विचित्र एवं घीसे युक्त रथको तो (सविता उषसः पूर्वं) सूर्य उषःकालके पहले ही (ऋताय इष्यति) यज्ञके लिए प्रेरित करता है ॥ १० ॥

[४०९] (नासत्या अश्विना) हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! (त्रिभिः एकादशैः देवैः) तीनबार ग्यारह अर्थात् तैंतीस देवोंके साथ (इह मधुपेयं आयातं) इधर मीठे सोमरसके पान करनेके लिए यज्ञमें आ जाओ । (आयुः प्र तारिष्टं) हमारे जीवनको सुदीर्घ करो । (रपांसि नि मृक्षतं) दोषोंको पूर्णतया दूर करके हमारी शुद्धता करो। (द्वेषः सेधतं) वैरभावको दूर करो। (सचा भुवा भवतं) हमारे साथ रहो ॥ ११ ॥

[४१०] हे अश्विदेवो ! (त्रिवृता रथेन) तीन छोरवाले रथसे (सुवीरं रयिं) अच्छे वीरोंसे युक्त धनको (नः अर्वाञ्चं आवहतं) हमारे समीप पहुंचा दो । (वां शृण्वन्ता) तुम दोनों सुननेवालोंको (अवसे जोहवीमि) मैं अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ । (वाजसातौ च) और युद्धके मौकेपर (नः वृधे भवतं) हमारी वृद्धिके लिए तुम प्रयत्नशील बनो ॥ १२ ॥

[३५]

[४११] (स्वस्तये प्रथमं अग्निं ह्वयामि) कल्याणके लिये प्रथम अग्निकी मैं प्रार्थना करता हूं । (इह अवसे मित्रावरुणौ ह्वयामि) यहां सुरक्षितताके लिये मित्र और वरुणको मैं बुलाता हूं (जगतः निवेशनीं रात्रीं ह्वयामि) जगत्को विश्राम देनेवाली रात्रिकी मैं प्रार्थना करता हूं (ऊतये सवितारं देवं ह्वयामि) और अपनी सुरक्षाके लिये सविता देवका आवाहन मैं करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ— प्रातःकाल होते ही रथको सज्ज करके यज्ञ स्थानके पास जाना चाहिए। अश्विदेव उषःकालके पहिले ही यज्ञ स्थानपर जाते हैं । क्योंकि सूर्य ही उस समय सबको यज्ञ करनेके लिये प्रवृत्त करता है ॥ १० ॥

अश्विदेव सत्यका पालन करते हैं । तैंतीस देवोंके साथ वे हमारे यहां रसपान करनेके लिये आवें और हमें दीर्घायु करें । हमारे अन्दरके दोष दूर करें, द्वेषभाव दूर करें, और मित्र जैसे हमारे पास रहें ॥ ११ ॥

अश्विदेव अपने त्रिकोणाकृति रथपरसे वीरोंके साथ रहनेवाला धन हमारे पास ले आवें । वे हमारी प्रार्थना सुनते हैं, इसलिये हम उनको बुलाते हैं । युद्ध छिडजानेपर वे हमारी ही सहायता करें ॥ १२ ॥

अग्नि, मित्र, वरुण, रात्रि और सविता ये सभी देव कल्याण करनेवाले हैं। अग्नि ज्ञान और उष्णता द्वारा, मित्र बिजली द्वारा पानी बरसाकर, वरुण जल द्वारा और सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा सबकी सुरक्षा एवं सबका कल्याण करता है ॥ १ ॥

४१२ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना ऽऽ देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २ ॥

४१३ याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतो ऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥ ३ ॥

४१४ अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥ ४ ॥

४१५ वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद् विशः सवितुर्दैव्यस्यो पस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५ ॥

अर्थ— [४१२] (कृष्णेन रजसा आ वर्तमानः) अन्धकारसे युक्त अन्तरिक्षलोकमेंसे परिभ्रमण करनेवाले (अमृतं मर्त्यं च निवेशयन्) अमर्त्य और मर्त्यका निवेश करनेवाले (सविता देवः भुवनानि पश्यन्) सविता देव सब भुवनोंको देखते हुए (हिरण्ययेन रथेन आ याति) सुवर्णके रथसे आते हैं ॥ २ ॥

[४१३] (देवः सविता प्रवता याति) सविता देव प्रथम ऊंचाईके मार्गसे ऊपर चढकर जाते हैं, (उद्वता याति) और पश्चात् अधोगामी मार्गसे नीचे उतरते हुए चलते हैं (यजतः शुभ्राभ्यां हरिभ्यां याति) पूजाके योग्य ये सूर्यदेव तेजस्वी घोडोंसें गमन करते हैं । (सविता देवः) ये सविता देव (विश्वा दुरिता अपबाधमानः) सब पापोंको रोकनेके लिये (परावतः आ याति) दूर देशसे आते हैं ॥ ३ ॥

[४१४] (अभिवृतं, कृशनैः विश्वरूपं) सतत गतिशील, सुवर्णादिके कारण, सुंदर नानारूपवाले (हिरण्यशम्यं बृहन्तं रथं) सुवर्णकी रस्सियोंसे किरणोंसे युक्त बडे रथपर (यजतः चित्रभानुः) पूजनीय चित्रविचित्र किरणोंवाले (कृष्णाः रजांसि तविषीं दधानः) और अन्धकारका नाश करनेवाले प्रकाशका धारण अपने बलसे करनेवाले (सविता आ अस्थात्) सविता देव आ गए हैं ॥ ४ ॥

[४१५] (श्यावाः शितिपादः) सूर्यके घोडे सफेद पैरोंवाले हैं (हिरण्यप्रउगं रथं वहन्तं) वे सुवर्णके युगवाले रथको ढोते हैं (जनान् वि अख्यत्) जो मानवोंके लिये प्रकाश देते हैं । (शश्वत् विश्वा भुवनानि विशः) सर्वदा सभी भुवन और सब प्रजाजन (दैव्यस्य सवितुः उपस्थे तस्थुः) दिव्य सविता देवके समीप उपस्थित होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— अमर और मर्त्य ऐसे दो पदार्थ इस विश्वमें हैं, इन दोनोंका निवास सर्वथा सूर्य देवकी किरणोंपर है । बरसातके दिनोंमें जब एक दो मासतक सूर्य नहीं निकलता, तब सारा स्वास्थ्य बिगड जाता है । इस प्रकार आरोग्य प्रदान करता हुआ सूर्य अपने तेजस्वी रथसे प्रतिदिन जाता है ॥ २ ॥

सूर्य देव सब दुरितोंका नाश तथा प्रतिबंध करता है । जो रोगबीज बाहरसे शरीरके अन्दर या मनके अन्दर घुसता है, उसको दुरित कहते हैं । सूर्य किरणोंसे इन सबका नाश होता है । यह देव प्रथम ऊपर आकाशमें चढता है और फिर उतरता है । इसी प्रकार वह परिभ्रमण करता है ॥ ३ ॥

इस सविता देवका रथ हमेशा गतिशील और सोनेके समान तेजस्वी है । यह अनेक किरणोंसे चमकता रहता है । उस रथपर सवार होकर यह सविता देव अन्धकारका नाश करके सबके अन्दर बल स्थापित करता है । सब तरहके बल इसी सूर्यसे ही मिलते हैं ॥ ४ ॥

इस सूर्यकी किरणें अत्यधिक तेजस्वी होनेके कारण सफेद दीखती हैं । ये ही किरणें सूर्यको प्रकाशित करती हैं और सब प्रजाजन सूर्यका सेवन करते हैं ॥ ५ ॥

४१६ तिस्रो द्यावः॑ सवि॒तुर्द्वा उ॒पस्थाँ॒ एका॑ य॒मस्य॒ भुव॑ने विरा॒षाट् ।
आ॒णिं न रथ्य॑म॒मृताधि॑ तस्थु॒रि॒ह ब्र॑वीतु॒ य उ॒ तच्चिके॑तत् ॥ ६ ॥
४१७ वि सु॑प॒र्णो अ॒न्तरि॑क्षाण्यख्यद् गभी॒रवे॑पा॒ असु॑रः सुनी॒थः ।
क्वे॒३॑दानीं॒ सूर्यः॒ कश्चि॑केत कत॒मां द्यां र॒श्मिर॒स्या त॑तान ॥ ७ ॥
४१८ अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत् क॒कुभः॑ पृथि॒व्यास्त्री धन्व॒ योज॑ना स॒प्त सिन्धू॑न् ।
हि॒र॒ण्या॒क्षः स॑वि॒ता दे॒व आगा॒द् दध॒द्रत्ना॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥ ८ ॥
४१९ हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणि॒रु॒भे द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरी॑यते ।
अपामी॑वां॒ बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ द्याम॑ृणोति ॥ ९ ॥

अर्थ— [४१६] (द्यावः तिस्रः,) तीन दिव्य लोक हैं, (द्वा सवितुः उपस्था,) उनमेंसे दो लोक सविता देवके पास हैं (एका यमस्य भुवने विराषाट्) और तीसरा लोक यमके भुवनमें वीरोंके लिये रहनेका स्थान देता है (रथ्यं आणिं न) रथके अक्षमें रहनेवाली कीलके समान (अमृता अधि तस्थुः) सब अमर देव सूर्यपर अधिष्ठित हैं (यः तत् चिकेतत्) जो यह जानता है, (उ, इह ब्रवीतु) वह यहां आकर कहे ॥ ६ ॥

[४१७] (गभीरवेपाः) गम्भीर गतिसे युक्त, (असुरः, सुनीथः, सुपर्णः) प्राणशक्तिका दाता, उत्तम मार्ग-दर्शक, उत्तम प्रकाश देनेवाला सूर्यदेव (अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्) अन्तरिक्षादि तीनों लोकोंको प्रकाशित करता है (सूर्यः इदानीं क्व) इस समय सूर्य रात्रिके समय कहां है ? (कः चिकेत) कौन जानता है ? उस (अस्य रश्मिः कतमां द्यां आ ततान) सूर्यका किरण किस द्युलोकमें फैला होगा ॥ ७ ॥

[४१८] (पृथिव्याः अष्टौ ककुभः) पृथ्वीकी आठों दिशाएं (योजना धन्व त्रिः) परस्पर संयुक्त हुए तीनों लोक (सप्त सिन्धून् वि अख्यत्) और सात सिन्धु नदियां सविता देवने प्रकाशित की हैं (हिरण्याक्षः सविता देवः) सुवर्णके समान तेजस्वी किरणवाला यह सविता देव (दाशुषे वार्याणि रत्ना दधत्) दाताके लिये स्वीकार कर-नेयोग्य रत्नोंको देता हुआ (आ गात्) समीप आया है ॥ ८ ॥

[४१९] (हिरण्यपाणिः विचर्षणिः सविता) सुवर्णके समान किरणवाला सर्वत्र संचार करनेवाला सविता देव (उभे द्यावापृथिवी अन्तः ईयते) दोनों द्यावापृथिवीके बीचमें संचार करता है (अमीवां अप बाधते) रोगोंको दूर करता है, (सूर्यं वेति) इसीको सूर्य कहते हैं (कृष्णेन रजसा द्यां अभि ऋणोति) प्रकाश-हीन अन्तरिक्ष लोकसे द्युलोक तक प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— आकाशका नाम द्युलोक है। क्योंकि आकाश सदा सर्वदा प्रकाशयुक्त रहता है। इस द्युलोकके तीन विभाग हैं। दो विभाग सूर्यके पास रहते हैं और एक विभाग यमके भुवनमें वीरोंके रहनेका स्थान है। अर्थात् वीर मरनेके बाद वहां जाकर रहते हैं ॥ ६ ॥

जीवनकी शक्ति देनेवाला सूर्य तीन अन्तरिक्षोंको प्रकाशित करता है। पर वह सूर्य क्या है, किसका बना हुआ है और वह अपनी रश्मियां कब फैलाता है, यह कोई भी जानता नहीं, लोग केवल यही, जानते हैं कि वह जगत्को प्रकाशित अवश्य करता है ॥ ७ ॥

पृथ्वीकी आठों दिशाओंको यह सूर्य प्रकाशित करता है। सातों सिन्धुओंको यह प्रकाशित करता है। सोनेके जैसा तेजस्वी यह सूर्य ग्रहण करने योग्य धनोंको धारण करता हुआ उदय होता है ॥ ८ ॥

यह सूर्य सुनहली किरणोंसे युक्त होकर दोनों द्यावा और पृथ्वीके बीचमें चलता है और रोगबीजोंको दूर करता है। सूर्य ही सब रोग बीजोंको दूर करता है। न पचे हुए अन्नको आम कहते हैं। इस आमसे जो रोग होते हैं उन रोगबीजोंका नाश सूर्य करता है सूर्यसे पाचनशक्ति बढती है ॥ ९ ॥

४२० हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन् रक्षसो यातुधाना-नस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

४२१ ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ॥

(३६)

(ऋषिः– कण्वो घौरः । देवता– अग्निः, १३-१४ यूपो वा । छन्दः– प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः (१३ उपरिष्टाद्बृहती । ऐ. ब्रा. २।२ चरणच्छेदः)

४२२ प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ॥ १ ॥

अर्थ— [४२०] (हिरण्यहस्तः असुरः) सुवर्ण जैसे किरणवाला, प्राणशक्तिका दाता (सुनीथः सुमृळीकः स्ववान् अर्वाङ् यातु) उत्तम नेता, सुख-दाता, निज शक्तिसे संपन्न सविता देव यहां आवे । (देवः प्रतिदोषं गृणानः) यह सविता देव प्रत्येक रात्रिमें स्तुति किये जानेपर (रक्षसः यातुधानान् अपसेधन्) राक्षसों और यातना देनेवालोंको दूर करता हुआ (अस्थात्) यहां आवे ॥ १० ॥

[४२१] (सवितः) हे सविता देव ! (ये ते पन्थाः पूर्व्यासः) जो तुम्हारे मार्ग पहिलेसे निश्चित हुए, (अरेणवः अन्तरिक्षे सुकृताः) धूलिरहित और अन्तरिक्षमें उत्तम निर्माण किये हैं (सुगेभिः तेभिः पथिभिः) उत्तम जानेयोग्य उन मार्गोंसे (अद्य नः रक्ष च) आज हमारी सुरक्षा करो और (देव) हे देव ! (नः अधि ब्रूहि च) हमें आशीर्वाद दो ॥ ११ ॥

(३६)

[४२२] (देवयतीनां पुरूणां विशां वः) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले बहुसंख्य तुम सब प्रजाजनोंके लिए (यह्वं अग्निं सूक्तेभिः वचोभिः प्र ईमहे) सामर्थ्यवान् अग्निकी सूक्तों और वाक्यों द्वारा हम प्रार्थना करते हैं । इसी तरह (अन्ये इत् यं सीं ईळते) अन्य भी उसीकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— यह सूर्य सोनेकी किरणोंवाला, प्राणदायक, उत्तम मार्गपर ले जानेवाला और सुखदायक है । यह सूर्य अन्धकाररूपी राक्षसको नष्ट करता हुआ चलता है । इस सूर्यकी किरणोंमें प्राणशक्ति रहती है । उससे मनुष्य स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है ॥ १० ॥

सूर्यका रथ अन्तरिक्षमें चलनेके कारण धूलि नहीं उडाता, उसके रथका मार्ग बहुत उत्तम है । इसी प्रकार सबके रथ उत्तम हों, उनपर सोनेका काम हों । उत्तम घोडे हों और यह रथ धूलि रहित मार्गपर चलें । ऐसे रथोंपर बैठकर वीर राक्षसोंका नाश करें ॥ ११ ॥

यह अग्नि महासामर्थ्यवान् है, इसकी रोज प्रार्थना करनेसे तेजस्विता प्राप्त होती है और उत्तम गुण मिलते हैं । इसी लिए सब उसकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

४२३ जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥

४२४ प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

४२५ देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

अर्थ— [४२३] (जनासः सहोवृधं अग्निं दधिरे) लोगोंने बलके बढानेवाले अग्निको धारण किया। (हविष्मन्तः ते विधेम) हविसे युक्त होकर हम तेरी पूजा करते हैं । (वाजेषु सन्त्य ! स त्वं अद्य इह नः सुमना अविता भव) अन्नोंमें दानशील हे अग्ने ! वह प्रसिद्ध तू आज हमारे उपर प्रसन्नचित्तवाला होकर रक्षक हो ॥ २ ॥

१ जनासः सहोवृधं अग्निं दधिरे— लोग बल बढानेवाली इस अग्निको धारण करते हैं । यह अग्नि शारीरिकशक्तियोंको बढाती है, अंगोंमें रसका संचार करती है ।

२ सुमनाः अविता भव— उत्तम मनवाला संरक्षक हो । रक्षक उत्तम मनवाला ही होना चाहिए अन्यथा वह रक्षककी जगह भक्षक बन जाएगा ।

[४२४] (होतारं विश्ववेदसं दूतं त्वा वृणीमहे) देवोंको बुलानेवाले, सर्वज्ञ और देवताओंके दूत तुझको हम प्रसन्न होकर वरण करते हैं । (महः सतः ते अर्चयः विचरन्ति) महान् और सत्य स्वरूप तेरी ज्वालायें फैल रही हैं और तेरी (भानवः दिवि स्पृशन्ति) किरणें आकाशतक पहुंचती हैं ॥ ३ ॥

१ होतारं विश्ववेदसं दूतं वृणीमहे— दान देनेवाले एवं सब जाननेवाले दूतका वरण हम करते हैं । दूत दाता हो, ज्ञानी हो, समझदार हो ।

२ महः सतः अर्चयः विचरन्ति, मानवः दिवि स्पृशन्ति— जो महात्मा सत्यनिष्ट होते हैं उनका तेज चारों ओर फैलता है और उनका तेज आकाशतक पहुंचता है ।

[४२५] हे (अग्ने) अग्ने ! (वरुणः मित्रः अर्यमा देवासः त्वा प्रत्नं दूतं सं इन्धते) वरुण, मित्र और अर्यमा यह तीनों देव तुझ प्राचीन दूतको अच्छी प्रकार प्रदीप्त करते हैं । (यः मर्त्यः ते ददाश) जो मनुष्य तेरे लिये दान देता है, (सः त्वया विश्वं धनं जयति) वह यजमान तेरी सहायतासे समस्त धनको जीतता है ॥ ४ ॥

१ यः ददाशः सः विश्वं धनं जयति— जो दान करता है, वह सब धन प्राप्त करता है । जो अपने पासके धन आदि सब शक्तियोंका यज्ञ करता है, वह सर्वत्र विजय प्राप्त करता है ।

भावार्थ— यह अग्रणी लोगोंका बल बढाता है और शुद्ध और पवित्र मनसे लोगोंकी रक्षा करता है। ऐसे अग्रणी देवकी पूजा लोगोंको अवश्य करनी चाहिए ॥ २ ॥

यह अग्रणी महान् और सत्यनिष्ठ है, अतः इसे विद्वान् दूतके रूपमें चुनते हैं । इस अग्निका तेज चारों ओर फैलता है ॥ ३ ॥

वरणीय, मित्र श्रेष्ठ पुरुष और विद्वान् पुरुष इस अग्रणीको प्रज्वलित करते हैं । उसमें यज्ञ करके हर प्रकारके धन प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

*

४२६ मन्द्रो होता गृहपति॒रग्ने॑ दू॒तो वि॒शाम॑सि ।
त्वे विश्वा॒ संग॑तानि व्र॒ता ध्रु॒वा यानि॑ दे॒वा अकृ॑ण्वत ॥ ५ ॥
४२७ त्वे इद॑ग्ने सु॒भगे॑ यविष्ठ्य॒ विश्व॒मा हू॑यते ह॒विः ।
स त्वं नो॑ अ॒द्य सु॒मना॑ उ॒ताप॒रं यक्षि॑ दे॒वान्त्सु॒वीर्या॑ ॥ ६ ॥
४२८ तं घे॑मि॒त्था न॑म॒स्विन॒ उप॑ स्व॒राज॑मासते ।
होत्रा॑भिर॒ग्निं मनु॑षः॒ समि॑न्धते तिति॒र्वांसो॒ अति॒ स्रिधः॑ ॥ ७ ॥
४२९ घ्नन्तो॑ वृ॒त्रम॑तर॒न् रोद॑सी अ॒प उ॒रु क्षया॑य चक्रिरे ।
भुव॒त् कण्वे॒ वृषा॑ द्यु॒म्न्याहु॑तः॒ क्रन्द॒दश्वो॒ गवि॑ष्टिषु ॥ ८ ॥

अर्थ— [४२६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (मन्द्रः होता विशां गृहपतिः दूतः असि) हर्षवर्धक, दाता, प्रजाओंके घरोंका रक्षक और देवोंका दूत है। (यानि देवाः ध्रुवा अकृण्वत) जिनको सब देव दृढतापूर्वक करते हैं, (विश्वा व्रता त्वे संगतानि) वे सब व्रत तेरे अन्दर संगत होते हैं ॥ ५ ॥

[४२७] हे (यविष्ठ्य अग्ने) बलशाली अग्ने ! (सुभगे त्वे इत् विश्वं हविः आ हूयते) उत्तम भाग्यसम्पन्न ऐसे तेरे अन्दर ही सब प्रकारकी हविको अर्पण किया जाता है। (सः त्वं नः सुमनाः) वह प्रसिद्ध तू हमारे ऊपर आनन्दचित्तवाला होकर (अद्य उत अपरं सुवीर्या देवान् यक्षि) आज और दूसरे दिन भी प्रभावशाली देवोंका अर्चन कर ॥ ६ ॥

१ सुमनाः सुवीर्या यक्षि— उत्तम मनसे वीरोंकी पूजा करनी चाहिए। वीर भी प्रजाओंसे अपना व्यवहार ऐसे रखें, कि सारी प्रजायें प्रसन्न मनसे उस वीरका सत्कार करें, जबर्दस्ती नहीं ।

[४२८] (नमस्विनः स्वराजं तं घ ईं इत्था उप आसते) नमस्कार करनेवाले उपासक स्वयंप्रकाशी इस अग्निकी इस तरह उपासना करते हैं। (स्रिधः अति तितिर्वांसः मनुष्यः) शत्रुओंको पार करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य (होत्राभिः अग्निं सं इन्धते) हवन करनेके साधनोंके द्वारा अग्निको प्रकाशित करते हैं ॥ ७ ॥

१ नमस्विनः स्वराजं उपासते— शस्त्रधारी वीर पुरुष ही स्वराज्यकी उपासना कर सकते हैं ।

२ स्रिधः अति तितीर्वांसः मनुषः— मनुष्य हिंसक मनुष्योंको परास्त करनेकी इच्छा करे ।

[४२९] (घ्नन्तः वृत्रं अतरन्) प्रहार करनेवालोंने-वीरोंने वृत्रका वध किया। और (रोदसी अपः क्षयाय उरु चक्रिरे) अन्तरिक्षको जलोंके रहनेके लिये बहुत विस्तृत किया। (वृषा द्युम्नी आहुतः कण्वे भुवत्) बलवान् और प्रकाशित अग्नि आहुतियाँ प्राप्त करके कण्वके लिये उसी प्रकार यशदायी हुआ जैसे (गविष्टिषु अश्वः क्रन्दत्) गौवोंकी प्राप्तिके युद्धमें हिनहिनानेवाला घोडा यशदायी होता है ॥ ८ ॥

१ घ्नन्तः वृत्रं अतरन्— प्रहार करनेवालोंने चारों ओरसे घेर कर वृत्रको मारा ।

भावार्थ— प्रजाओंके गृहोंका रक्षक यह अग्नि देवोंका दूत है, तथा सब व्रतोंका पालक है। वह दूसरोंको भी व्रतपालनकी प्रेरणा देता है ॥ ५ ॥

इस भाग्यसम्पन्न तथा सदा तरुण रहनेवाले इस अग्निकी सब प्रसन्न मनसे पूजा करते हैं। इसीके द्वारा मनुष्य दूसरे देवोंकी भी पूजा कर सकता है ॥ ६ ॥

नम्र हुए हुए उपासक ही उस स्वयं प्रकाशक प्रभुकी भक्ति कर सकते हैं। तथा शत्रुओंको परास्त करके ही मनुष्य अग्नि प्रकाशित कर सकते हैं ॥ ७ ॥

वीरोंने वृत्रका वध करके जलोंके लिए अन्तरिक्षको विस्तृत किया, उसी प्रकार मनुष्य भी विशाल घरोंमें रहें और अग्निहोत्र प्रज्ज्वलित करें। और उसके द्वारा यश प्राप्त करें ॥ ८ ॥

४३० सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

४३१ यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥

४३२ यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥ ११ ॥

४३३ रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥ १२ ॥

अर्थ— [४३०] हे देव ! (सं सीदस्व) बैठ जाओ, तुम (महान् असि) बडे हो, (देववीतमः शोचस्व) देवोंकी कामना करते हुये प्रकाशित होओ । हे (मियेध्य प्रशस्त अग्ने) पवित्र और प्रशंसित अग्ने ! (अरुषं दर्शतं धूमं वि सृज) वेगवान् दर्शनीय धूम उत्पन्न करो ॥ ९ ॥

[४३१] हे (हव्यवाहन) हव्य पहुँचानेवाले अग्ने ! (मनवे देवासः यजिष्ठं यं त्वा इह दधुः) मानवोंके हितके लिये सब देवोंने यजनीय ऐसे तुझको यहाँ इस यज्ञमें धारण किया है । (मेध्यातिथिः कण्वः यं धनस्पृतं) मेध्यातिथि कण्वने धन देनेवाले तुझे धारण किया, तथा (वृषा यं उपस्तुतः यं) बलको बढानेवाले वीर और उपस्तुतने भी तुझे धारण किया है ॥ १० ॥

[४३२] (मेध्यतिथिः कण्वः ऋतात् अधि यं अग्निं ईधे) मेध्यातिथि कण्वने सूर्यसे लेकर जिस अग्निको दीप्त किया, (तस्य इषः प्रदीदियुः) उसकी गतिशील किरणें चमकने लगी हैं, (तं इमाः ऋचः) उसीको ये हमारी ऋचायें बढाती हैं, (तं अग्निं वर्धयामसि) उसी अग्निको हम भी बढाते हैं ॥ ११ ॥

[४३३] हे (स्वधावः) अपनी धारणाशक्तिवाले अग्ने ! हमें (रायः पूर्धि) धन भरपूर दे । हे (अग्ने) अग्ने ! (देवेषु ते आप्यं अस्ति हि) देवोंमें तेरी निःसंदेह मित्रता है, (त्वं श्रुत्यस्य वाजस्य राजसि) तू प्रशंसनीय बलका प्रकाशक है । (सः नः मृळ, महान् असि) वह प्रसिद्ध तू हमें सुखी कर, तू महान् है ॥ १२ ॥

१ स्व-धा-वः रायः पूर्धि— अपनी शक्तिसे मनुष्य भरपूर धन कमावे ।

२ श्रुत्यस्य वाजस्य राजसि— प्रशंसनीय बलसे तेजस्वी बनना चाहिए । ऐसे श्रेष्ठ पराक्रम करने चाहिए कि जिससे चारों ओर कीर्ति फैले ।

भावार्थ— यह देव प्रकाश करनेवाला तथा अन्य देवोंकी कामना करता है ॥ ९ ॥

इस पूजनीय और प्रशंसनीय अग्निको देवोंने मनुष्योंके हितके लिए स्थापित किया है । तथा मेधातिथि और उपस्तुत आदि ऋषियोंने भी धारण किया है ॥ १० ॥

मेध्यातिथिने सूर्यसे शक्ति लेकर इस अग्निको प्रदीप्त किया, फिर उसकी किरणोंमें चमक आ गई । उसीको मनुष्य ऋचाओंको बोलकर प्रदीप्त करते हैं ॥ ११ ॥

इस अग्रणीकी मित्रता सब देवोंके साथ है, वह अपने भक्तोंको सुखी और धनसे युक्त करता है ॥ १२ ॥

४३४ ऊर्ध्व ऊ षु णं ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदुञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३ ॥
४३५ ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १४ ॥
४३६ पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १५ ॥
४३७ घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस् तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभि र्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥

अर्थ— [४३४] (नः ऊतये ऊर्ध्वः सु तिष्ठ) हे यूप ! हमारी रक्षाके लिए उसी प्रकार ऊंचे खडे रहो, (देवः सविता न) जिस प्रकार तेजस्वी सूर्य । (ऊर्ध्वः वाजस्य सनिता) उन्नत होकर तुम अन्नके दाता बनो, (यत् अञ्जिभिः वाघद्भिः विह्वयामहे) अच्छी तरहसे अलंकृत स्तोताओंके साथ हम तुम्हें बुला रहे हैं ॥ १३ ॥

[४३५] हे यूप ! (ऊर्ध्वः केतुना नः अंहसः नि पाहि) ऊंचे होकर ज्ञानके द्वारा हमें पापसे बचाओ; (विश्वं अत्रिणं सं दह) सब खाऊ राक्षसोंको जला दो, (चरथाय जीवसे नः ऊर्ध्वान् कृधि) प्रगति और दीर्घजीवनके लिए हमें उच्च बनाओ । (नः दुवः देवेषु विदाः) हमारी प्रार्थना देवोंतक पहुंचाओ ॥ १४ ॥

[४३६] हे (बृहद्भानो यविष्ठ्य अग्ने) महातेजस्वी, बलवान् अग्ने ! (नः रक्षसः पाहि) हमें राक्षसोंसे बचा । (अ-राव्णः धूर्तेः पाहि) कन्जूस धूर्तोंसे बचा । (रिषतः उत वा. जिघांसतः पाहि) हिंसकों और घातकोंसे हमें सुरक्षित रख ॥ १५ ॥

१ राक्षसः, अराव्णः, धूर्तेः, रिषतः जिघांसतः नः पाहि— राक्षसों, कंजूसों, धूर्तों, घातकों और हिंसकोंसे हमें बचाओ । ये पद रोगबीजोंके भी वाचक हैं ।

[४३७] हे (तपुर्जम्भ) अपनी उष्णतासे रोगबीजोंके नाश करनेवाले अग्ने ! (अराव्णः विष्वक् घना इव विजहि) कंजूसोंको चारों ओरसे, गदासे नष्ट करनेके समान विनष्ट कर । (यः अस्मध्रुक्, यः मर्त्यः, अक्तुभिः अति शिशीते) जो हमसे द्रोह करता है और जो रात्रीमें जागता हुआ हमारे नाशका प्रयत्न करता है (सः रिपुः नः मा ईषतः) वह शत्रु हमपर कभी प्रभुत्व न करे ॥ १६ ॥

१ य अस्म-ध्रुक् मर्त्यः अक्तुभिः अति शिशीते सः रिपुः नः मा ईशत— जो द्रोह करनेवाला हमारा शत्रु हमारे घातका विचार करता है, वह कभी हमपर शासन न करे ।

भावार्थ— प्रथम स्वयं उच्च बनकर दूसरोंको उन्नत करनेका प्रयत्न करना चाहिए, यह एक आदर्श है । उन्नत होकर घमंडी नहीं होना चाहिए, अपितु दानी बनना चाहिए ॥ १३ ॥

उत्तम चाल चलन और दीर्घजीवनके लिए सबको उच्च बनना चाहिए । श्रेष्ठ बननेसे उत्तम आचार होगा और दीर्घ जीवन प्राप्त होगा । दीर्घ जीवनका कारण रोगबीजोंका नाश है । ये रोगबीज शरीरमें घुसकर मांस मज्जा खाकर रक्त सुखा देते हैं; इसलिए इन्हें वेदमें अत्रि (खानेवाला) कहा है । इनको जलाकर नष्ट कर देनेसे ही स्वास्थ्य एवं दीर्घजीवन-की प्राप्ति हो सकती है ॥ १४ ॥

यह अग्रणी राक्षस, कंजूस आदि दुष्ट जनोंसे बचाता है । हर राष्ट्रके नेताका कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्रमें कंजूस, धूर्त और हिंसकोंको न रहने दे । इस प्रकार अपने राष्ट्रमें शान्ति रखे । इसी प्रकार राष्ट्रसे रोगोंको भगाकर सब प्रजाओंको स्वस्थ रखे ॥ १५ ॥

कई ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो रातको हमला करके मनुष्योंका घात करते और उनका माल हडप लेते हैं । ऐसे मनुष्य कभी भी शासक न बनें । उसी प्रकार ये रोग भी सहसा आक्रमण करते हैं । अतः इन रोगों और दुष्टोंको अग्नि नष्ट करे ॥ १६ ॥

४३८ अग्निर्वन्ने सुवीर्य॑मग्निः कण्वा॑य सौभ॑गम् ।
अग्निः प्राव॑न् मि॒त्रोत मेध्या॑तिथिमग्निः सा॒ता उप॑स्तुतम् ॥ १७ ॥
४३९ अग्निना॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॑ परा॒वत॑ उ॒ग्रादे॑वं हवामहे ।
अ॒ग्निर्न॑यन्नव॑वास्त्वं बृ॒हद्र॑थं तु॒र्वीतिं॑ दस्य॑वे॒ सहः॑ ॥ १८ ॥
४४० नि त्वाम॑ग्ने मनु॑र्दधे॒ ज्योति॒र्जना॑य॒ शश्व॑ते ।
दी॒देथ॒ कण्व॑ ऋ॒तजा॑त उ॒क्षितो॒ यं न॑म॒स्यन्ति॑ कृ॒ष्टयः॑ ॥ १९ ॥
४४१ त्वे॒षासो॑ अ॒ग्नेरम॑वन्तो अ॒र्चयो॑ भी॒मासो॒ न प्रती॑तये ।
र॒क्ष॒स्विनः॒ सद॒मिद्या॑तु॒माव॑तो॒ विश्वं॒ सम॒त्रिणं॑ दह ॥ २० ॥

अर्थ—[४३८] (अग्निः सुवीर्यं वन्ने) अग्नि उत्तम वीर्य देता है। (अग्निः कण्वाय सौभगं) अग्निने कण्वको उत्तम भाग्य दिया। (अग्निः मित्रा प्र आवत्) अग्निने हमारे मित्रोंकी रक्षा की है (उत अग्निः मेध्यातिथिं उपस्तुतं साती) अग्निने मेध्यातिथि और उपस्तुतकी विनाशसे रक्षा की है ॥ १७ ॥

१ सुवीर्यं वन्ने सौभगं मित्रा प्रावत्— यह अग्रणी उत्तम पराक्रम करता है, सौभाग्य देता है और मित्रोंकी रक्षा करता है।

[४३९] (अग्निना तुर्वशं यदुं उग्रादेवं हवामहे) अग्निके साथ हम तुर्वश, यदु और उग्रदेवको बुलाते हैं। (दस्यवे सहः अग्निः नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं नयत्) दुष्टोंका दमन करनेका बल देनेवाला अग्नि नववास्त्व बृहद्रथ और तुर्वीतिको उत्तम मार्गसे ले चलता है ॥ १८ ॥

[४४०] हे (अग्ने) अग्ने ! (यं कृष्टयः नमस्यन्ति) जिसको सब मनुष्य नमन करते हैं ऐसे (ज्योतिः त्वां शश्वते जनाय मनुः निदधे) ज्योतिस्वरूप तुझको शाश्वतकालसे मानवोंके हितके लिये मनुने स्थापित किया। (ऋतजातः उक्षितः कण्वे दीदेथ) यज्ञमें प्रकट होकर और यज्ञमें तृप्त होकर तूने कण्वको यश दिया ॥ १९ ॥

१ ज्योतिः शश्वते जनाय मनुः निदधे— ज्योतिस्वरूप इस अग्रणीको शाश्वतकालसे मानवोंके हितके लिए मनुने स्थापित किया।

२ ऋतजातः उक्षितः कण्वे दीदेथ— यज्ञमें प्रकट होकर और घीसे तृप्त होकर इस अग्रणीने कण्वको यश दिया।

[४४१] (अग्नेः अर्चयः त्वेषासः अमवन्तः भीमासः) अग्निकी ज्वालायें प्रकाशित, बलशाली और भयंकर हैं, (प्रति-ईतये न) अतः उनका विरोध नहीं किया जा सकता। हे अग्ने ! तू (रक्षस्विनः यातु-मावतः सदं इत् सं दह) राक्षसों और यातना देनेवालोंको जला दे, (विश्वं अत्रिणं सं दह) तथा सभी भक्षकोंको जला दे ॥ २० ॥

१ अग्नेः अर्चयः त्वेषासः अमवन्तः भीमासः— अग्निकी ज्वालायें प्रकाशित, बलशाली और भयंकर हैं।
२ प्रति ईतये न — इनका कोई विरोध नहीं कर सकता।
३ अत्रिणः— खाऊ शत्रु, शरीरको खानेवाले रोगजन्तु।

भावार्थ— इस अग्रणीने पराक्रम करके कण्व, मित्र, मेध्यातिथि, उपस्तुत आदियोंकी रक्षा की और उन्हें सौभाग्य प्रदान किया। इसी प्रकार राष्ट्रमें भी अग्रणी विद्वानोंकी रक्षा करें और उन्हें सौभाग्य प्रदान करें ॥ १७ ॥

यह अग्रणी शत्रुओंको नष्ट करनेवाले वीर दुष्टोंके दमन करनेवाले महारथीकी रक्षा करता है और उन्हें उत्तम मार्गसे ले चलता है ॥ १८ ॥

मनुने इस अग्रणीको मानवोंके हितके लिए सर्व प्रथम स्थापित किया। पश्चात् घी आदि आहुतियोंसे प्रकट होकर उस अग्निने यज्ञकर्ताओंको यश प्रदान किया। इसी कारण सब मनुष्य उसकी पूजा करते हैं ॥ १९ ॥

यह अग्रणी देव बडा शक्तिशाली होता है, इसकी ज्वालायें बडी भयंकर होती हैं, अतः इसे शत्रु या मित्र कोई भी रोक नहीं सकता। इस अग्निमें रोग विनाशक औषधियोंको डालनेसे यह रोगजन्तुओंको विनष्ट करता है ॥ २० ॥

(३७)

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

४४२ क्रीळं वः शर्धो मारुत॑मनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ॥ १ ॥
४४३ ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः ॥ २ ॥
४४४ इहेवं शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद् वदान् । नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३ ॥
४४५ प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥
४४६ प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥

(३७)

अर्थ— [४४२] हे (कण्वाः) काव्यगायन करनेवालो ! (वः) तुम्हारे निजी कल्याणके लिए (मारुतं) मरुतोंके समूहसे उत्पन्न हुआ, (क्रीळं) क्रीडनमय भावसे युक्त (अन्-अर्वाणं) भाइयोंमें पाये जानेवाली कलहप्रिय मनोवृत्तिसे कोसों दूर याने जिसमें पारस्परिक मनोमालिन्य नहीं है, ऐसा (रथे-शुभं) रथमें सुहानेवाले अर्थात् रथी वीरको शोभादायक जो (शर्धं) बल है, उसीका (अभि प्र गायत) वर्णन करो ॥ १ ॥

४४३] (ये स्व-भानवः) जो अपने निजी तेजसे युक्त हैं, वे मरुत् (पृशतीभिः) धब्बोंसे अलंकृत हिरनियों या घोडियोंके साथ (ऋष्टिभिः) भालोंसहित (वाशीभिः) कुठार एवं (अञ्जिभिः) वीरोंके आभूषण या गणवेशके (साकं अजायन्त) संग प्रकट हुए ॥ २ ॥

[४४४] (एषां हस्तेषु) इन मरुतोंके हाथोंमें विद्यमान (कशाः) कोडे (यत्) जब (वदान्) शब्द करने लगते हैं, तब उन ध्वनियोंको मैं (इह इव) इसी जगह पर खडा रह कर (शृण्वे) सुन लेता हूँ । वह ध्वनि (यामन्) युद्धभूमिमें (चित्रं) विलक्षण ढंगसे (नि-ऋञ्जते) शूरता प्रकट करती है ॥ ३ ॥

[४४५] (वः शर्धाय) तुम्हारा बल बढानेके लिये (घृष्वये) शत्रुदलका विनाश करनेके हेतु और (त्वेष-द्युम्नाय) तेजसे प्रकाशमान (शुष्मिणे) सामर्थ्य पानेके लिए (देवत्तं ब्रह्म) देवताविषयक ज्ञानको बतलानेवाले काव्यका (प्र गायत) तुम यथेष्ट गायन करो ॥ ४ ॥

[४४६] (यत्) जो बल (गोषु) गौओंमें पाया जाता है, जो (क्रीळं मारुतं) खिलाडीपनसे परिपूर्ण मरुत् संघोंमें विद्यमान है, जो (रसस्य जम्भे) गोरसके यथेष्ट सेवनसे (ववृधे) बढ जाता है, उस (अघ्न्यं शर्धः) अविनाशनीय बलकी (प्र शंस) स्तुति करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— अपनी प्रगति हो इसलिए उपासक मरुतोंके स्तोत्रका पठन करें; क्योंकि इन मरुतोंमें सांघिक बल, खिलाडीपन, पारस्परिक मित्रता, भ्रातृप्रेम तथा रथी बननेके लिए उचित बल विद्यमान है ॥ १ ॥

मरुतोंके रथमें जो घोडियाँ या हिरनियाँ जोडी जाती हैं वे धब्बेवाली होती हैं । मरुतोंके निकट भाले, कुठार, वीरभूषण या गणवेश पाये जाते हैं । कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि, मरुत् जिस प्रकार सुसज्ज दीख पडते हैं वैसे ही अन्य सभी वीर सदैव शस्त्रास्त्रोंसे लैस रहें ॥ २ ॥

शूर मरुत् अपने हाथोंमें रखे हुए कोडोंसे जब आवाज निकालने लगते हैं तब उस शब्दको सुनकर रणक्षेत्रमें लडनेवाले वीरोंमें जोशीले भाव उठ खडे होते हैं ॥ ३ ॥

अपना बल बढाना चाहिए । शत्रुदलको तहसनहस करनेके लिए उनसे संघर्ष करनेको पर्याप्त बल या शक्ति रहे, ताकि शत्रुओंपर टूट पडनेपर अपनेको मुँहकी खाना न पडे और तेजका उजियारा फैलानेवाला सामर्थ्य प्राप्त हो, इसलिए जिसमें देवताकी जानकारी व्यक्त की गयी हो, ऐसे स्तोत्रका पठन एवं गायन करना उचित है, क्योंकि इस भाँति करनेसे हममें वह शक्ति पैदा होगी । जो विचार बारबार मनमें दुहराये जाते हैं वे कुछ समयके उपरान्त हमसे अभिन्न हो जाते हैं ॥ ४ ॥

गोरसके रूपमें गौओंमें बल तथा सामर्थ्य इकट्ठा किया जाता है, वीरोंकी क्रीडासक्त वृत्तिमें वह बल प्रकट हो जाता है, जो हरएकमें बढानेयोग्य है । गोरसका पर्याप्त सेवन करनेसे वह शक्ति अपने शरीरमें बढ सकती है और इसकी सराहना करनी उचित है ॥ ५ ॥

४४७ को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः । यत् सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥
४४८ नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥
४४९ येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥
४५० स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत् सीमनु द्विता शवः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४४७] हे (नरः) नेतृत्वगुणसे सम्पन्न वीर मरुतो! (दिवः) द्युलोकको एवं (ग्मः च) भूलोकको भी (धूतयः) तुम कंपित करनेवाले हो, ऐसे (वः) तुममें (आ) सब प्रकारसे (वर्षिष्ठः) उच्च कोटिका भला (कः) कौन है? (यत्) जो (सीं) सदैव (अन्तं न) पेडोंके अग्रभागको हिलानेके समान शत्रुदलको विचलित कर देता है, या तुम सभी (धूनुथ) विकंपित कर डालते हो ॥ ६ ॥

[४४८] (वः उग्राय) तुम्हारे भयावह (मन्यवे) क्रोधयुक्त या आवेश एवं उत्साहसे लबालब भरे हुए (यामाय) आक्रमणसे डरकर (मानुषः) मानव तो किसी न किसी (निदध्रे) के सहारे ही रहता है, क्योंकि (पर्वतः) पहाड या (गिरिः) टीलेको भी तुम (जिहीत) विकंपित बना देते हो ॥ ७ ॥

[४४९] (येषां) जिनके (यामेषु) आक्रमणोंके अवसरपर और (अज्मेषु) चढाई करनेके प्रसंगपर (पृथिवी) यह भूमि (जुजुर्वान् विश्पतिः इव) मानों क्षीण नृपतिकी भांति (भिया रेजते) भयके मारे विकंपित तथा विचलित हो उठती है ॥ ८ ॥

[४५०] (एषां) इन वीर मरुतोंकी (जानं) जन्मभूमि (स्थिरं हि) सचमुच दृढीभूत एवं अटल है। (मातुः) मातासे जैसे (वयः) पंछी (निः- एतवे) बाहर जानेके लिए चेष्टा करते हैं, उसी तरह ये अपनी मातृभूमिसे दूरवर्ती देशोंमें विजय पानेके लिए निकल जाते हैं, (यत्) तब इनका (शवः) बल (सीं) सदैव (द्विता अनु) दोनों ओर विभक्त रहता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— वीर मरुत् राष्ट्रके नेता हैं और वे शत्रुसंघको जडमूलसे विचलित एवं कंपायमान कर देते हैं। ठीक उसी तरह जैसे आँधी या तूफान पृथ्वी या द्युलोकमें विद्यमान पेडसदृश वस्तुजातको हिलाता है, अथवा वायुके झकोरे वृक्षोंके ऊपरके हिस्सेको चलायमान कर देते हैं। इन वायुप्रवाहोंकी भांति वीर मरुत् शत्रुओंको अपदस्थ कर डालते हैं। यहाँपर प्रश्न उठाया है कि, क्या ये सभी मरुत् समान हैं अथवा इनमें कोई प्रमुख नेताके पदपर अधिष्ठित हो विराजमान है? ॥ ६ ॥

वीर मरुतोंके भीषण आक्रमणके फलस्वरूप मानवके तो हाथपाँव फूल जाते हैं और वे कहीं न कहीं आश्रय पानेकी चेष्टामें निरत रहते हैं, इसके साथ ही बडे बडे पर्वत भी आन्दोलित एवं स्पंदित हो उठते हैं। वीरोंकी शत्रुदल पर चढाइयाँ इसी भाँति प्रभावोत्पादक हों ॥ ७ ॥

वीर मरुत् जब शत्रुदल पर धावा करते हैं और बडे वेगसे विद्युत्–युद्धप्रणालीसे कार्य करते हैं, उस समय, आगे क्या होगा, क्या नहीं, इस चिंतासे तथा डरसे आसन्नमरण नरेशकी भांति, यह समूची भूमि दहल उठती है। इसी भाँति वीर सैनिकोंको शत्रुदलपर आक्रमणका सूत्रपात करना चाहिए ॥ ८ ॥

वीर मरुत् भूमिके पुत्र हैं। उनकी यह भूमि माता स्थिर है और इसी अटल मातृभूमिसे ये वीर अतीव वेगशाली उत्पन्न हुए हैं। जिस भाँति पंछी अपनी मातासे दूर निकलनेके लिए छटपटाते हैं, ठीक वैसे ही ये वीर अपनी मातृभूमिसे सुदूरवर्ती स्थानोंमें जाकर असीम पराक्रम दर्शानेके लिए उत्सुक हैं और चले भी जाते हैं। ऐसे मौकेपर इनका सारा ध्यान अपनी जन्मदात्री भूमिकी ओर लगा रहता है, वैसे ही शत्रुओंसे जूझते समय युद्ध पर भी इनका ध्यान केन्द्रित रहता है। इस प्रकार इनकी शक्ति दो भागोंमें विभक्त हो जाती है ॥ ९ ॥

४५१ उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ १० ॥
४५२ त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् । प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥
४५३ मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन । गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥
४५४ यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [४५१] (त्ये) उन (गिरः सूनवः) वाणीके पुत्र, वक्ता मरुतोंने (अज्मेषु) अपने शत्रुओंपर किये जानेवाले आक्रमणोंमें अपने हलचलोंकी (काष्ठाः) सीमाएँ या परिधियाँ बढाई हैं, जैसे कि, (वाश्राः) गौओंको (अभि-ज्ञु) सभी जगह घुटनेतकके पानीमेंसे (यातवे) निकल जाना सुगम हो, इसलिए जैसे जलको (उत् उ अत्नत) दूर तक फैलाया जाय ॥ १० ॥

[४५२] (त्यं चित् घ) उस प्रसिद्ध, (दीर्घं) बहुत ही लंबे, (पृथुं) फैले हुए (अ-मृध्रं) तथा जिसका कोई नाश नहीं कर सकता, ऐसे (मिहः न-पातं) जलकी वृष्टि न करनेवाले मेघको भी ये वीर मरुत् (यामभिः) अपनी गतियोंसे (प्र च्यावयंति) हिला देते हैं ॥ ११ ॥

[४५३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यत् ह) जो सचमुच (वः बलं) तुम्हारा बल (जनान् अचुच्यवीतन) लोगोंको हिला देता है, विकंपित या स्थानभ्रष्ट कर डालता है, वही (गिरीन्) पर्वतोंको भी (अचुच्यवीतन) विचलित बना डालता है ॥ १२ ॥

[४५४] (यत् ह) जिस समय सचमुच ही (मरुतः यान्ति) वीर मरुत् संचार करने लगते हैं, यात्राका सूत्रपात करते हैं, तब वे (अध्वन्) सडकके बीचमें ही (आ सं ब्रुवते ह) सब मिल कर परस्पर वार्तालाप करना शुरु कर देते हैं। (एषां) इनका शब्द (कः चित्) भला कोई क्या (शृणोति) सुन लेता है ॥ १३ ॥

भावार्थ— ये मरुत् (गिरः सूनवः) वाणीके पुत्र हैं, वक्ता हैं । या 'गोमातरः' नाम मरुतोंका ही है । 'गौ' अर्थात् 'वाणी, गौ, भूमि' का सूचक शब्द है । मातृभाषा, मातृभूमि तथा गौमाताके सुखके लिए अथक प्रयत्न करनेवाले ये मरुत् विख्यात हैं। अपने शत्रुदलको तितरबितर करनेके लिए उन्होंने जिस भूमिपर हलचल प्रवर्तित किए, उस भूमिकी सीमाएँ बहुत चौडी कर रखी हैं; अर्थात् अपने आक्रमणके क्षेत्रको अति विस्तृत करते हैं । अतः जैसे अगर गौओंको घुटनेतकके जलसंचयमेंसे जाना पडे, तो कुछ कष्टदायक नहीं प्रतीत होता है, वैसे उन्होंने भूमिपर पाये जानेवाले ऊबडखाबड स्थलोंको न्यून कर दिया, भूमि समतल बना डाली, पानी इकट्ठा हो जाय, तो भी गौओंके लिए वह घुटनोंसे ऊपर न चढ जाए ऐसी सतर्कता दर्शायी । गौओंके लिए मरुतोंने भूमिपर इतना अच्छा प्रबन्ध कर डाला । उसी प्रकार शत्रुपर चढाई करनेके लिए भी यातायातकी सभी सुविधाएँ उपस्थित कर दीं, ताकि विरोधी दलपर धावा करते समय अत्यधिक कठिनाइयोंका सामना न करना पडे ॥ १० ॥

जिन मेघोंसे वर्षा नहीं होती हो ऐसे बडे बडे बादलोंको भी मरुत् (वायुप्रवाह) अपने प्रचण्ड वेगसे विकंपित कर डालते हैं । वीरोंको भी यही उचित है कि, वे दान न देनेवाले कृपण शत्रुओंको जडमूलसे हिलाकर पदभ्रष्ट कर दें ॥ ११ ॥

मरुतोंमें इतना बल विद्यमान है कि, उसकी वजहसे शत्रुके सैनिक तथा पार्वतीय दुर्ग या गढ भी दहल उठते हैं । वीर सदा इस भाँति बल बढानेमें सचेष्ट हों ॥ १२ ॥

जिस प्रकार वीर मरुत् सैनिक अभिगमन करते हैं, तब वे इकट्ठे हो सात (सात वीरोंकी पंक्ति बनाकर सडक परसे) चलने लगते हैं । इस प्रकार आगे बढते समय वे जो कुछ भी बातचीत करते हैं उसे सुन लेना बाहरके व्यक्तिको असंभव है; क्योंकि वह भाषण धीमी आवाजमें प्रचलित रहता है ॥ १३ ॥

४५५ प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै ॥ १४ ॥
४५६ अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् । विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ १५ ॥

[३८]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

४५७ कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥
४५८ क्व नूनं कद्व वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः । क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥

अर्थ— [४५५] (आशुभिः) तीव्र गतियोंद्वारा और (शीभं) वेगपूर्वक (प्र यात) चलो, (कण्वेषु) कण्वोंके मध्य, याजकोंके यज्ञोंमें (वः) तुम्हारे (दुवः सन्ति) सत्कार होनेवाले हैं। (तत्रो) उधर तुम (सु मादयाध्वै) भलीभाँति तृप्त बनो ॥ १४ ॥

[४५६] (वः) तुम्हारी (मदाय) तृप्तिके लिए यह हमारा अर्पण (अस्ति हि स्म) तैयार है। (विश्वं चित् आयुः) समूचे जीवन भर सुखपूर्वक (जीवसे) दिन बितानेके लिए (वयं) हम (एषां स्मसि स्म) इनके ही अनुयायी बनकर रहनेवाले हैं ॥ १५ ॥

[३८]

[४५७] (कध-प्रियः) स्तुति बहुत चाहनेवाले (वृक्त-बर्हिषः) तथा आसनपर बैठनेवाले मरुतो ! (पिता) बाप (पुत्रं न) पुत्रको जैसे (हस्तयोः) अपने हाथोंसे उठा लेता है, उसी प्रकार तुम भी हमें (कत् ह नूनं) सचमुच कब भला अपने करकमलोंसे (दधिध्वे) धारण करोगे ? ॥ १ ॥

[४५८] (नूनं क) सचमुच तुम भला किधर जाओगे ? (वः कत्) तुम किस (अर्थं) उद्देश्यको लक्ष्यमें रखकर जानेवाले हो ? (दिवः गन्त) तुम भले ही द्युलोकसे प्रस्थान करो, लेकिन (न पृथिव्याः) इस भूलोकसे तुम कृपा करके न चले जाओ; भूमंडलपर ही अविरत निवास करो। (वः गावः) तुम्हारी गौएँ (क) भला कहाँ (न रण्यन्ति) नहीं रँभाती हैं ? ॥ २ ॥

भावार्थ— 'आशुभिः शीभं प्रयात' (Quick march) अत्यन्त वेगसे शीघ्रतापूर्वक चलो। सैनिक शीघ्रतया चलना प्रारंभ करें, इसलिए यह 'सैनिकीय आज्ञा' है। मरुत् यथासंभव शीघ्र यज्ञभूमिमें पहुँच जायँ, क्योंकि उधर उनके सत्कार एवं आवभगतके लिए आयोजनाएँ प्रस्तुत कर रखी हैं। मरुत् उस आदरसत्कारको स्वीकार करें और तृप्त हों ॥ १४ ॥

वीर मरुतोंको हर्षित तथा प्रसन्न करनेके लिए हम खानेपीनेकी वस्तुएँ दे रहे हैं। जब तक हमारे जीवनकी अवधि प्रचलित होगी, तब तक यह हमारा निर्धार हो चुका है कि हम मरुतोंके ही अनुयायी बनकर रहेंगे ॥ १५ ॥

जिस भाँति पिताका आधार पानेसे पुत्र निर्भय होकर रहता है, ठीक उसी प्रकार भला कब हमें इन वीरोंका सहारा मिलेगा ? एक बार यदि यह निश्चित हो जाए कि, हमें उनका आश्रय मिलेगा, तो हम अकुतोभय हो सुखपूर्वक कालक्रमण करने लगेंगे और हमारी जीवनयात्रा निश्चित हो जायेगी ॥ १ ॥

वीर मरुत् कहाँ जा रहे हैं ? किस दिशामें वे गमन कर रहे हैं ? किस अभिप्रायसे वे अभियान कर रहे हैं ? हमारी यह तीव्र लालसा है कि, वे द्युलोकसे इधर पधारनेकी कृपा करें और इसी अवनीतलपर सदाके लिए निवास करें। कारण यही है कि उनकी छत्रछायामें हमारी रक्षामें कोई त्रुटि न रहने पायेगी, अतः वे इधरसे अन्य किसी जगह न चले जाएँ। मरुतोंकी गौएँ सभी स्थानोंमें विद्यमान हैं और वे अत्यानन्दवश रँभाती हैं ॥ २ ॥

*

४५९ क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता । क्वो३ विश्वानि सौभगा ॥ ३ ॥
४६० यद् यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन । स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥ ४ ॥
४६१ मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः । पथा यमस्य गादुप ॥ ५ ॥
४६२ मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत् । पदीष्ट तृष्णया सह ॥ ६ ॥
४६३ सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः । मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [४५९] हे (मरुतः !) वीर मरुद्गण ! (वः) तुम्हारी (नव्यांसि) नयी नयी (सुम्ना क्व) संरक्षणकी आयोजनाएँ कहाँ हैं ? तुम्हारे (सुविता क्व) उच्च कोटिके वैभव तथा सुखके साधन ऐश्वर्य किधर हैं ? और (विश्वानि) सभी प्रकारके (सौभगा क्वो) सौभाग्य कहाँ हैं ? ॥ ३ ॥

[४६०] हे (पृश्नि-मातरः !) मातृभूमिके सुपुत्र वीरो ! (यूयं) तुम (यद्) यद्यपि (मर्तासः) मर्त्य या मरणशील (स्यातन) हो, तो भी (वः) तुम्हारा (स्तोता) काव्यगायन करनेवाला बेशक (अमृतः स्यात्) अमर होगा ॥ ४ ॥

[४६१] (मृगः) हिरन (यवसे न) जैसे तृणको असेवनीय नहीं समझता है, ठीक उसी प्रकार (वः जरिता) तुम्हारी स्तुति एवं सराहना करनेवाला तुम्हें (अ-जोष्यः) अ-सेव्य या अप्रिय (मा भूत्) न होने पाय और वैसे ही वह (यमस्य पथा) यमलोककी राहपर (मा उप गात्) न चले, अर्थात् उसकी मौत न होने पाय ॥ ५ ॥

[४६२] (परा-परा) अत्यधिक मात्रामें बलिष्ठ तथा (दुर्-हना) विनाश करनेमें बहुत ही कठिन ऐसी (निर्-ऋतिः) बुरी दशा या दुर्दशा (नः) हमारा (मो सु वधीत्) विनाश न करे. (तृष्णया सह) प्यासके मारे उसी का (पदीष्ट) विनाश हो जाए ॥ ६ ॥

[४६३] (धन्वन् चित्) मरुभूमिमें भी (त्वेषाः) तेजयुक्त और (अमवन्तः) बलिष्ठ (रुद्रियासः) महान् वीर मरुत् (अ-वाताम्) वायुरहित (मिहं आ कृण्वन्ति) वर्षाको चहुं ओर कर डालते हैं, (सत्यं) यह सच बात है ॥ ७ ॥

भावार्थ— वीर मरुत् संरक्षणकार्यका बीडा उठाते हैं, अतः जनताकी रक्षा भलीभाँति हुआ करती है और वह श्रेष्ठ वैभव एवं सुख पानेमें सफलता प्राप्त करती है । वीरोंके लिए यह अतीव उचित कार्य है कि, वे जनताकी यथोचित रक्षा कर उसे वैभवशाली तथा सुखी करें ॥ ३ ॥

शूर वीर मरुत् (पृश्नि-मातरः, गो-मातरः) मातृभूमि, मातृभाषा तथा गोमाताकी सेवा करनेवाले हैं और यद्यपि ये स्वयं मर्त्य हैं, तो भी इनके अनुयायी अमरपन पानेमें सफलता पायेंगे ॥ ४ ॥

जैसे हिरन जौ के खेतको सेवनीय मानता है, उसी तरह तुम्हारा बखान करनेवाला कवि तुम्हें सदैव प्रिय लगे और वह मृत्युके दायरेसे कोसों दूर रहे । वह यमलोकको पहुँचानेवाली सडक पर संचार न करे, याने वह अमर बने ॥ ५ ॥

विपदा, बुरी हालत एवं भाग्यचक्रके उलट फेरके फलस्वरूप होनेवाली परिस्थिति सुतरां बलवत्तर होती है और उसे हटाना तो कोई सुगम कार्य बिलकुल नहीं, ऐसी आपदाके कारण हमारा नाश न होने पाय; परन्तु सुखकी प्यास या क्षुधा बढ जाए, जिससे वही विपत्ति विनष्ट होवे ॥ ६ ॥

मरुस्थलमें वर्षा प्रायः नहीं होती है, परन्तु यदि मरुत् वैसा चाहें तो वैसे ऊसर स्थानमें भी वे धुवाँधार बारिश कर सकते हैं । अभिप्राय यही है कि, बारश होना या न होना मरुतों-वायुप्रवाहोंके अधीन है । यदि अनुकूल वायुप्रवाह बहने लग जायँ, तो वर्षा होनेमें देरी न लगेगी ॥ ७ ॥

४६४ वाश्रेवं विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥
४६५ दिवा चित् तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥
४६६ अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषाः ॥ १० ॥
४६७ मरुतो वीळुपाणिभिश् चित्रा रोधस्वतीरनु । यातेमखिद्रयामभिः ॥ ११ ॥
४६८ स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् । सुसंस्कृता अभीशवः ॥ १२ ॥
४६९ अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् । अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [४६४] (यत्) जब (एषां) इन मरुतोंकी सहायतासे (वृष्टिः असर्जि) वर्षाका सृजन होता है तब (वाश्रा इव) रँभानेवाली गौके समान (विद्युत्) बिजली (मिमाति) बडा भारी शब्द करती है और (माता) माता (वत्सं न) जिस प्रकार बालकको अपने समीप रखती है, वैसही बिजली मेघोंके समीप (सिषक्ति) रहती है ॥ ८ ॥

[४६५] हे वीर मरुत् ! (यत्) जब (पृथिवीं) भूमिको (व्युन्दन्ति) गीली या आर्द्र कर डालते हैं, उस समय (उद्-वाहेन पर्जन्येन) जलसे भरे हुए मेघोंसे सूर्यको ढककर (दिवा चित्) दिनकी वेलामें भी (तमः कृण्वन्ति) अँधियारी फैलाते हैं ॥ ९ ॥

[४६६] (मरुतां स्वनात् अधः) मरुतोंकी दहाड या गर्जनाके फलस्वरूप निम्न भागमें अवस्थित (पार्थिवं) पृथ्वीमें पाये जानेवाला (विश्वं सद्म) समूचा स्थान (आ अरेजत) विचलित, विकंपित एवं स्पन्दमान हो उठता है और (मानुषाः प्र अरेजन्त) मानव भी काँप उठते हैं ॥ १० ॥

[४६७] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वीळु-पाणिभिः) बलयुक्त बाहुओंसे युक्त तुम (चित्राः रोधस्वतीः अनु) सुन्दर नदियोंके तटोंपरसे (अ-खिद्र-यामभिः) बिना किसी थकावटके (यात ई) गमन करो ॥ ११ ॥

[४६८] (एषां वः रथाः) ये तुम्हारे रथ (नेमयः) रथके अरे तथा (अश्वासः) घोडे एवं (अभीशवः) लगाम सभी (स्थिराः) दृढ तथा अटल और (सु-संस्कृताः) ठीक प्रकार परिष्कृत हों ॥ १२ ॥

[४६९] (ब्रह्मणः पतिं) ज्ञानके अधिपति (अग्निं) अग्निको अर्थात् नेताको (दर्शतं मित्रं न) देखनेयोग्य मित्रके समान (जरायै) स्तुति करनेके लिए (तना) सातत्ययुक्त (गिरा) वाणीसे (अच्छ वद) प्रमुखतया सराहते जाओ ॥ १३ ॥

भावार्थ— जिस समय भारी आँधीके पश्चात् वर्षाका प्रारम्भ होता है उस समय बिजलीकी गर्जना सुनाई देती है और मेघवृन्दोंमें दामिनीकी दमक दिखाई देती है । (यहाँ पर ऐसी कल्पना की है कि, बिजली मानों गाय है) वह जिस तरह अपने बछडेके लिए रँभाती है और अपने वत्सको समीप रखना चाहती है, उसी तरह बिजली मेघका आलिंगन करती है ॥ ८ ॥

जिस वक्त मरुत् बारिश करनेकी तैयारीमें लगे रहते हैं, तब समूचा आकाश बादलोंसे आच्छादित हो जाता है, सूर्यका दर्शन नहीं होता है, अँधेरा फैला जाता है और तदुपरान्त वर्षाके फलस्वरूप भूमंडल गीला या पानीसे तर हो जाता है ॥ ९ ॥

तीव्र आँधी, बिजलीकी दहाड तथा चमकनेसे समूची पृथ्वी मानों विचलित हो उठती है और मनुष्य भी सहम जाते हैं, तनिक भयभीतसे हो जाते हैं ॥ १० ॥

इन वीरोंके बाहुओंमें बहुत भारी शक्ति है और इस बाहुबलसे चतुर्दिक् ख्याति पाते हुए ये वीर नदियोंके नयन-मनोरम तटकी राहसे थकानकी तनिक भी अनुभूति पाये बिना आगे बढते जायँ ॥ ११ ॥

वीरोंके रथ, पहिए, अरे, अश्व एवं लगाम सभी बलयुक्त एवं सुसंस्कृत रहें । अश्व भी भली भाँति शिक्षित हों तथा रथ जैसी चीजें भी सुहानेवालीं एवं परिष्कृत हों ॥ १२ ॥

अग्नि मरुतोंका मित्र है, तथा ज्ञानका स्वामी है । इसलिए इसकी महिमाकी सराहना करनी चाहिए ॥ १३ ॥

४७० मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्यं इव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४ ॥
४७१ वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह ॥ १५ ॥

[३९]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- मरुतः । छन्दः- प्रगाथः=विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

४७२ प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥ १ ॥

अर्थ -- [४७०] तुम्हारे (आस्ये) मुँहके अन्दर ही (श्लोकं मिमीहि) श्लोकको भलीभाँति नापजोखकर तैयार करो और (पर्जन्यः इव) मेघके समान (ततनः) विस्तारित करो। वैसे ही (गायत्रं) गायत्री छन्दमें रचे हुये (उक्थ्यं) काव्यका (गाय) गायन करो ॥ १४ ॥

[४७१] (त्वेषं) तेजयुक्त (पनस्युं) स्तुत्य अथवा सराहनीय तथा (अर्किणं) पूजनीय ऐसे (मारुतं गणं) वीर मरुतोंके दल या समुदायका (वन्दस्व) अभिवादन करो । (इह) यहाँपर (अस्मे) हमारे समीप ही ये (वृद्धाः असन्) वृद्ध रहें ॥ १५ ॥

[३९]

[४७२] हे (धूतयः मरुतः) शत्रुदलको विकंपित तथा विचलित करनेवाले वीर मरुतो ! (यत्) जब तुम अपना (मानं) बल (परावतः इत्थाः) अत्यन्त सुदूर स्थानसे इस भाँति (शोचिः न) बिजलीके समान (प्र अस्यस्थ) यहाँ पर फेंकते हो, तब (कस्य क्रत्वा) भला किस कार्य तथा उद्देश्यको लक्ष्यमें रख, (कस्य वर्पसा) किसकी आयोजनासे अथवा (कं याथ) किसकी तरफ तुम चल रहे हो या (कं ह) तुम्हें किसके निकट पहुँचना है ॥ १ ॥

भावार्थ— मन ही मन अक्षरसंख्या गिनकर श्लोक तैयार कर रखे और वह कंठस्थ या मुखस्थ हो । यह आवश्यक है कि, ऐसे श्लोकमें किसी न किसी वीर पुरुषकी महनीयताका बखान किया हो । जैसे वर्षाका प्रारम्भ होने पर वह लगातार हुआ करती है और सर्वत्र शांतिका वायुमण्डल फैला देती है, उसी प्रकार इस श्लोकका स्पष्टीकरण या व्याख्यान अथवा प्रवचन बिना तनिक भी रुके करो और अर्थकी व्यापकता या गहराई सबको बतलाकर उनके चित्तमें शांतता उत्पन्न होवे, ऐसी चेष्टा करो । गायत्री छन्दमें जो श्लोक बनाये जायँ, उनका गायन विभिन्न स्वरोंमें करो ॥ १४ ॥

तेजसे अत्यधिक मात्रामें परिपूर्ण, प्रशंसाके योग्य तथा आदरसत्कारके अधिकारी जो वीर हों, उनको ही प्रणाम करना, उनके सम्मुख ही सीस झुकाना अतीव उचित है । अतः तुम ऐसा ही करो, तथा तुम इस भाँति सतर्क एवं सचेष्ट रहो कि, अपने संघमें एवं समाजमें ज्ञानवृद्ध, वीर्यवृद्ध, धनवृद्ध तथा कर्मवृद्ध महान् पुरुष पर्याप्त मात्रामें रहने पायँ ॥ १५ ॥

(अधिदैवत) वायुके प्रवाह जब बहुत वेगसे संचार करना शुरु करते हैं, तब मनमें यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहता है कि, भला ये कहाँ और किसके समीप जाना चाहते हैं, तथा उनके गन्तव्य स्थानमें क्या रखा होगा, कौनसी बात उन्हें कार्यरूपमें परिणत करनी होगी ? नहीं तो उनके ऐसे वेगसे बहते रहनेका अन्य प्रयोजन क्या हो सकता है ? (आधिभूतमें) जिस समय वीर पुरुष शत्रुदलको मटियामेट करनेने लिए उनपर धावा करना प्रारम्भ करते हैं, तब वे शूर मानव अपना सारा बल उसी कार्य पर पूर्णरूपेण केन्द्रित करते हैं । ऐसे अवसर पर यह अत्यन्त आवश्यक है कि, वे सर्वप्रथम यह पूरी तरह निश्चित कर लें कि, किस हेतुकी पूर्तिके लिए यह चढाई करनी है, कितनी सफलता मिलनी चाहिए, किस स्थल पर पहुँचना है और बीचमें किसकी सहायता लेनी पडेगी । पश्चात् वह निर्धारित योजना फलीभूत हो जाए, इस ढंगसे कार्य-वाही प्रारम्भ कर दें । वीरोंके लिए यह उचित है कि, वे निश्चयात्मक हेतुसे प्रभावित हों, विशिष्ट कार्यको सफलतापूर्वक निष्पन्न करनेके लिए ही अपना आंदोलन प्रवर्तित करें, व्यर्थ ही खटाटोप या गीदड भभकी न दें, क्योंकि उतावलापन एवं अविचारितासे सदैव हानि उठानी पडती है ॥ १ ॥

४७३ स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥
४७४ परा ह यत् स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥
४७५ नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥
४७६ प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥

अर्थ— [४७३] (वः आयुधा) तुम्हारे हथियार (परा-नुदे) शत्रुदलको हटानेके लिए (स्थिरा) अटल तथा सुदृढ रहें, (उत) और (प्रतिष्कभे) उनकी राहमें रुकावटें खडी करनेके लिए, प्रतिबंध करनेके लिए (वीळु सन्तु) अत्यधिक बलयुक्त एवं शक्तिसंपन्न भी हों । (युष्माकं तविषी) तुम्हारी शक्ति या सामर्थ्य (पनीयसी अस्तु) अतीव प्रशंसार्ह और सराहनीय हो; (मायिनः) कपटी (मर्त्यस्य) लोगोंका बल (मा) न बढे ॥ २ ॥

[४७४] (नरः !) नेता वीरो ! (यत्) जब तुम (स्थिरं) स्थिर रूपसे अवस्थित शत्रुको (परा हत) अत्यधिक मात्रामें विनष्ट करते हो, (गुरु) बलिष्ठ शत्रुको भी (वर्तयथ) हिला देते हो, विकंपित कर डालते हो और (पृथिव्याः वनिनः) भूमंडलपर विद्यमान अरण्योंके वृक्षोंको भी (वि याथन) जडमूलसे उखाड फेंक देते हो, तब (पर्वतानां आशाः) पर्वतोंके चतुर्दिक् (वि ह) तुम सुगमतासे निकल जाते हो ॥ ३ ॥

[३७५] हे (रिश-अदसः) शत्रुको नष्ट करनेवाले वीरो ! (अधि द्यवि) द्युलोकमें तो (वः शत्रुः) तुम्हारा शत्रु (नहि विविदे) अस्तित्वमें ही नहीं पाया जाता है और (भूम्यां न) भूमंडलपर भी नहीं विद्यमान है; हे (रुद्रासः !) शत्रुको रुलानेवाले वीरो ! (युष्माकं युजा) तुम्हारे साथ रहते हुए (आधृषे) शत्रुओंको तहसनहस करनेके लिए मेरी (तविषी) शक्ति (नु चित् तना अस्तु) शीघ्र ही विस्तारशील तथा बढनेवाली हो जाए ॥ ४ ॥

[४७६] हे (देवासः मरुतः !) वीर मरुतो ! (दुर्मदाः इव) बलके कारण मतवाले हुए लोगोंके समान तुम्हारे वीर (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पर्वतोंको भी विचलित कर देते हैं, हिला देते हैं और (वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति) पेडोंको उखाडकर दूर फेंक देते हैं, इसलिए तुम (सर्वया विशा) समूची जनताके साथ मिलजुलकर (प्रो आरत) प्रगति करते चलो ॥ ५ ॥

भावार्थ— वीर पुरुष अपने हथियारों एवं शस्त्रास्त्रोंको बलयुक्त, तीक्ष्ण तथा शत्रुओंके शस्त्रोंसे भी अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षम बना दें । वे सदाके लिए सतर्क एवं सचेष्ट रहें कि वे शत्रुदलसे मुठभेड या भिडंत करते समय यथेष्ट मात्रामें प्रभावशाली ठहरें । (ध्यानमें रखना चाहिए कि, कदापि विरोधी तथा शत्रुसंघके हथियार अपने हथियारोंसे बढकर प्रबल तथा प्रभावशाली न होने पायें) और कपटाचरणमें न झिझकनेवाले शत्रुओंका बल कभी न वृद्धिंगत हो ॥ २ ॥

वीर पुरुष सदैव स्थिर एवं प्रबल शत्रुको भी विचलित करनेकी क्षमता रखते हैं, वनोंमेंसे सडकोंका निर्माण करते हैं और पर्वतोंके मध्यसे भी लीलयैव दूसरी ओर चले जाते हैं, तथा शत्रुसंघ पर आक्रमणका सूत्रपात करते हैं ॥ ३ ॥

वीरोंका यह अनिवार्य कर्तव्य है कि, वे अपने शत्रुओंका समूल विनाश करें, कहीं भी उन्हें रहनेके लिए स्थान न दें और उनका आमूलचूल विध्वंस कर चुकने पर ही अपनी शक्तिको बढाते चलें ॥ ४ ॥

बल अत्यधिक बढ जानेसे तनिक मतवालेसे बनकर वीर पुरुष शत्रुदल पर आक्रमण करते समय पर्वतोंको भी विकंपित कर देते हैं और मार्ग पर पाये जानेवाले वृक्षोंको भी उखाडकर हटा देते हैं । ऐसे बलकी आवश्यकता रखनेवाले कार्योंकी पूर्ति करना उनके लिए संभव है, अतः वे सारी जनताके सहयोगकी सहायतासे ऐसी कार्य सिद्धिमें अपना बल लगा देवें कि अन्तमें सबकी प्रगति हो । व्यर्थ ही उत्पात तथा विध्वंस-कार्योंमें उलझे न रहें । वायु जिस तरह वेगवान् बनने पर पेडोंको तोडमरोड देती है, ठीक उसी प्रकार ये वीर भी शत्रुदलको विनष्ट कर देते हैं ॥ ५ ॥

४७७ उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रो—दबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥

४७८ आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरे—त्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥

४७९ युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥ ८ ॥

४८० असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभि—र्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४७७] तुम (रथेषु) अपने रथोंमें (पृषतीः) चित्रविचित्र धब्बोंसहित घोडियाँ या हरिनियाँ (उपो अयुग्ध्वं) जोड चुके हो और (रोहितः) लालवर्णवाला घोडा या हिरन (प्रष्टिः) धुराको (वहति) खींच लेता है। (वः यामाय) तुम्हारे जानेका शब्द (पृथिवी चित्) भूमि (आ अश्रोत्) सुन लेती है, पर उस आवाजसे (मानुषाः अबीभयन्त) सभी मानव भयभीत हो उठते हैं ॥ ६ ॥

[४७८] हे (रुद्राः) शत्रुको रुलानेवाले वीर मरुद्गण! (तनाय कं) हमारे बालबच्चोंका कल्याण तथा हित होवे, इसलिए (मक्षु) बहुत ही शीघ्र हमें (वः अवः) तुम्हारा संरक्षण मिल जाए, ऐसा (आ वृणीमहे) हम चाहते हैं; (यथा पुरा) जैसे पहले तुम (बिभ्युषे कण्वाय) भयभीत कण्वकी ओर (नूनं गन्त) शीघ्र जा चुके थे, (इत्था) इसी प्रकार (अवसा) रक्षा करनेकी शक्तिके साथ (नः) हमारी ओर जितनी जल्द हो सके, उतनी जल्दी आ जाओ ॥ ७ ॥

[४७९] हे (मरुतः) वीर मरुत्संघ! (यः अभ्वः) जो डरावना हथियार (युष्मा–इषितः) तुमसे फेंका हुआ या (मर्त्य–इषितः) किसी अन्य मानवसे प्रेरित होता हुआ, अगर (नः आ ईषते) हमारे ऊपर आ गिरता हो तो (तं) उसे (शवसा वि युयोत) अपने बलसे हटा दो, (ओजसा वि) अपने तेजसे दूर कर दो और (युष्माकाभिः ऊतिभिः) तुम्हारी संरक्षण आयोजनाओंद्वारा उसे (वि) विनष्ट करो ॥ ८ ॥

[४८०] हे (प्र–यज्यवः) अतीव पूज्य तथा (प्र–चेतसः) उत्कृष्ट ज्ञानी (मरुतः) वीर मरुतो! (कण्वं) कण्वको जैसे तुमने (अ–सामि हि) पूर्ण रूपसे (दद) आधार या आश्रय दे दिया था, वैसे ही (अ–सामिभिः ऊतिभिः) संरक्षणकी संपूर्ण एवं अविकल आयोजनाओं तथा साधनोंसे युक्त होकर (विद्युतः वृष्टिं न) बिजलियाँ वर्षाकी ओर जैसे चली जाती हैं, वैसे ही तुम (नः आगन्त) हमारी ओर आ जाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— मरुतोंके रथमें जो घोडियाँ या हिरनियाँ जोडी जाती हैं, उनके पृष्ठभागपर धब्बे होते हैं, और उनके अग्र-भागमें धुरी उठानेके लिए एक लाल रंगका अश्व या हरिण रखा जाता है। जब मरुतोंका रथ आगे बढने लगता है, तब सारी पृथ्वी उसके शब्दको ध्यानपूर्वक सुन लेती है। हाँ, अन्य सभी मानव उस ध्वनिको श्रवण करते ही सहम जाते हैं, उनके अन्तस्तलमें भीतिरेखा चमक उठती है। यहाँपर एक ध्यानमें रखनेयोग्य बात है कि, मरुतोंके वाहन लालवर्णवाले होते हैं, भले ही वे हरिण या घोडे हों। मरुतोंके पहनावेका रंग केसरिया बतलाया है ॥ ६ ॥

राष्ट्रके बालकोंका रक्षण करनेका कार्य वीरोंपर अवलम्बित है, जो आगामी पुश्तकी प्रगतिके लिए अत्यधिक सावधानता रखें। जैसे अतीतकालमें समय समय पर वीरोंने सहायता प्रदान की थी, वैसे ही अब भी वे करें ॥ ७ ॥

यदि हमपर कोई आपत्ति आनेवाली हो, तो वीर अपने बलसे, प्रभावसे तथा संरक्षणसे उसे हटाकर पूर्णतया पैरोंतले रौंद दें, क्योंकि जनताको निर्भय करना वीरोंका ही कर्तव्य है ॥ ८ ॥

पूजाई तथा ज्ञानविज्ञानसे युक्त एवं विभूषित वीर लोग हमें सब प्रकारसे सुरक्षित रखें और हमारी मदद करें ॥ ९ ॥

४८१ असाम्योजो बिभृथा सुदानवो ऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥

[४०]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- ब्रह्मणस्पतिः । छन्दः- प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

४८२ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥

४८३ त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥

४८४ प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४८१] हे (सु-दानवः) अच्छे दान देनेवाले वीर मरुत् ! (अ-सामि ओजः) अधूरा नहीं, ऐसा समूचा बल एवं (अ-सामि शवः) अविकल शक्ति (बिभृथ) तुम धारण करते हो, हे (धूतयः मरुतः) शत्रुदलको विकंपित करनेवाले वीर मरुद्गण ! (ऋषि-द्विषे) ऋषियोंसे द्वेष करनेवाले (परि-मन्यवे) क्रोधी शत्रुको धराशायी करनेके लिए (इषुं न) बाणके समान (द्विषं) द्वेष करनेवाले शत्रुको ही (सृजत) उसपर छोड दो ॥ १० ॥

[४०]

[४८२] (ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञानके स्वामिन् ! (उत्तिष्ठ) उठो (देवयन्तः त्वा ईमहे) देवत्वकी इच्छा करनेवाले हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं (सुदानवः मरुतः उप प्र यन्तु) उत्तम दानी मरुत् वीर साथ साथ रहकर यहां आ जायँ (इन्द्र) हे इन्द्र ! (सचा प्राशूः भव) सबके साथ रहकर इस सोमरसका पान कर ॥ १ ॥

[४८३] (सहसः पुत्र) हे बलके लिये उत्पन्न होनेवाले वीर ! (मर्त्यः) मनुष्य (हिते धने) युद्ध छिड जानेपर (त्वां इत् उपब्रूते हि) तुम्हें ही सहायतार्थ बुलाता है (मरुतः) हे मरुतों ! (यः वः आचके) जो तुम्हारे गुण गाता है, (स्वश्व्यं सुवीर्यं आ दधाति) वह उत्तम घोडोंसे युक्त और उत्तम वीरतावाला धन पाता है ॥ २ ॥

[४८४] (ब्रह्मणस्पतिः प्र एतु) ज्ञानी ब्रह्मणस्पति हमारे पास आ जावे (सूनृता देवी प्र एतु) सत्यरूपिणी देवी भी आवे (देवाः) सब देव (नर्यं पङ्क्तिराधसं यज्ञं वीरं) मनुष्योंके लिये हितकारी, पंक्तिके समान योग्य, उत्तम यज्ञ करनेवाले वीरको (नः अच्छ नयन्तु) हमारे पास ले आवें ॥ ३ ॥

भावार्थ— वीर मरुतोंके समीप अविकल रूपसे शारीरिक बल तथा अन्य सामर्थ्य भी है, किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं है । वे इस असीम सामर्थ्यका प्रयोग करके उस शत्रुको दूर हटा दें, जो ऋषियोंका अर्थात् विद्वान् तथा श्रेष्ठ ज्ञानियोंसे द्वेषपूर्ण भाव रखता हो; या उसीपर दूसरे शत्रुको छोडकर उसे विनष्ट कर डाले ॥ १० ॥

हे ज्ञानी उठो । राष्ट्रमें क्षात्रवृत्तिको जगाओ । जो देवत्वका भाव अपने अन्दर बढानेके इच्छुक हों, उन्हें संगठित किया जाए । मातृभूमिके लिए आत्मसमर्पण करनेवाले वीर समीप आकर प्रगति करनेके लिए आगे बढें ॥ १ ॥

ये क्षत्रियवीर बलके कार्यके लिए ही उत्पन्न हुए हैं । बलसे होनेवाला हर एक कार्य ये आनन्दसे करते हैं । मनुष्य युद्ध छिड जाने पर उन वीरोंको ही अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं । ये क्षत्रियवीर अपने पास उत्तम घोडे रखते हैं, वे पराक्रमी शूरवीर भी होते हैं ॥ २ ॥

वीर पुरुष सब मानवोंके हित करनेमें तत्पर रहें । शत्रुओंको अपनी वीरतासे दूर करें । श्रेष्ठोंका सत्कार करें, प्रजाओंमें संगठन करे और दीनदुःखियोंकी सहायता करे, ऐसा करनेसे वह अपने आगमनसे पंक्तियोंकी शोभा बढाता है ॥ ३ ॥

४८५ यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

४८६ प्र नूनं ब्रह्मणस्पति- र्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५ ॥

४८७ तमिद् वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥

४८८ को देवयन्तमश्नवज् जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थिता- ऽन्तर्वावत् क्षयं दधे ॥ ७ ॥

अर्थ— [४८५] (यः वाघते सूनरं वसु ददाति) जो यज्ञकर्ताको उत्तम धन देता है (सः अक्षिति श्रवः धत्ते) वह अक्षय यश प्राप्त करता है (तस्मै सुवीरां सुप्रतूर्तिं अनेहसं इळां आ यजामहे) उसके हितार्थ हम उत्तम वीरोंसे युक्त, शत्रुका हनन करनेवाली, अपराजित मातृभूमिकी प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

[४८६] (यस्मिन् इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चक्रिरे) जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा देवोंने अपने घर बनाये हैं । (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्मणस्पति (उक्थ्यं मंत्रं नूनं प्र वदति) पवित्र मंत्रका अवश्य ही उच्चारण करता है ॥ ५ ॥

[४८७] (देवाः) हे देवों ! (तं इत् शंभुवं अनेहसं मन्त्रं) उस सुखदायी अविनाशी मंत्रको (विदथेषु वोचेम) हम यज्ञमें बोलते हैं (नरः) हे नेता लोगों ! (इमां वाचं प्रतिहर्यथ च) इस मंत्ररूप वाणीकी यदि प्रशंसा करोगे (विश्वा इत् वामा वः अश्नवत्) तो सभी सुख तुम्हें मिलेंगे ॥ ६ ॥

[४८८] (देवयन्तं जनं कः अश्नवत्) देवत्वकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके पास ब्रह्मणस्पतिको छोडकर कौन भला दूसरा आवेगा (वृक्तबर्हिषं कः) आसन फैलानेवाले उपासकके पास दूसरा कौन आवेगा (दाश्वान् पस्त्याभिः प्रप्र अस्थित) दाता अपनी प्रजाके साथ प्रगति करता है (अन्तर्वावत् क्षयं दधे) संतानोंवाले घरका आश्रय करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— इसी वीरके लिए उत्तम वीरोंको उत्पन्न करनेवाली, शत्रुओंका नाश करनेवाली, अपराजिता तथा अन्नदायी मातृभूमिकी हम प्रार्थना करते हैं । मातृभूमिके लिए हम सर्वस्वका यज्ञ करते हैं । क्योंकि जो धनका दान करता है, वह अक्षय यश कमाता है ॥ ४ ॥

यह ज्ञानका देव ब्रह्मणस्पति ऐसे उत्तम और पवित्र मंत्र बोलता है, जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देव अपना घर बनाकर निवास करते हैं । इसीलिए ये मंत्र सबका कल्याण करनेवाले, पराभव और विनाशसे बचानेवाले होते हैं, इसीलिए युद्धके समय इन मंत्रोंका उच्चारण किया जाता है ॥ ५-६ ॥

देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला मनुष्य ब्रह्मणस्पति अर्थात् ज्ञानके देवको बुलाता है । क्योंकि ज्ञानके बिना देवत्वकी प्राप्ति असंभव है । अतः जो उपासक इस ज्ञान देव ब्रह्मणस्पतिके लिए आसन बिछाता है, उसकी उपासना करता है, वह अपनी प्रजाके साथ प्रगति करता है ॥ ७ ॥

४८९ उप॑ क्षत्रं पृ॑ञ्चीत॒ हन्ति॒ राज॑भि॒र्भये॑ चित् सुक्षि॒तिं द॑धे ।
नास्य॑ व॒र्ता न त॑रु॒ता म॑हाध॒ने नार्भे॑ अस्ति व॒ज्रिण॑ः ॥ ८ ॥

[४१]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- वरुणमित्रार्यमणः, ४-६ आदित्याः । छन्दः- गायत्री ।)

४९० यं रक्ष॑न्ति॒ प्रचे॑तसो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा । नू चि॒त् स द॑भ्यते॒ जन॑ः ॥ १ ॥

४९१ यं बा॒हुते॑व॒ पिप्र॑ति॒ पान्ति॒ मर्त्यं॑ रि॒षः । अरि॑ष्टः॒ सर्व॑ एधते ॥ २ ॥

४९२ वि दु॒र्गा वि द्विष॑ः पु॒रो घ्नन्ति॒ राजा॑न एषाम् । नय॑न्ति दुरि॒ता ति॒रः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४८९] (ब्रह्मणस्पतिः क्षत्रं उप पृञ्चीत) ब्रह्मणस्पति क्षात्रबलका संचय करता है (राजभिः हन्ति) राजाओंकी सहायतासे यह शत्रुओंको मारता है (भये चित् सुक्षितिं दधे) महा भयके उपस्थित होने पर भी यह उत्तम धैर्यको धारण करता है । (वज्रिणः अस्य) इस वज्रधारीके साथ होनेवाले (महाधने) बडे युद्धमें (न वर्ता अस्ति) इसका निवारण करनेवाला है (न तरुता) और पराजय करनेवाला नहीं है (न अर्भे) और छोटे युद्धमें भी कोई नहीं है ॥ ८ ॥

[४१]

[४९०] (प्रचेतसः वरुणः मित्रः अर्यमा) उत्तम ज्ञानी वरुण, मित्र, अर्यमा ये देव (यं रक्षन्ति) जिसकी सुरक्षा करते हैं, (सः जनः नू चित् दभ्यते ?) उस मानवको कौन भला दबा सकता है ? ॥ १ ॥

[४९१] (यं बाहुता इव पिप्रति) ये देव जिसका अपने बाहुबलसे जैसा हो वैसा पोषण करते हैं (मर्त्यं रिषः पान्ति) और जिस मानवको हिंसक शत्रुसे बचाते हैं , (सर्वः अरिष्टः एधते) वह सब प्रकारसे अहिंसित होता हुआ बढता ही है ॥ २ ॥

१ प्रचेतसः यं पान्ति स अरिष्टः एधते— ज्ञानी जिसकी रक्षा करते हैं, वह बढता है ।

[४९२] (राजानः एषां पुरः दुर्गा वि घ्नन्ति) राजाके समान ये देव शत्रुओंके नगरों और किलोंका नाश करते हैं (द्विषः वि) द्वेष करनेवालोंका भी नाश करते हैं (दुरिता तिरः नयन्ति) और पापोंसे परे पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— क्षात्रशक्तिको संगठित करना चाहिए, उसे बढाना चाहिए । वह इतनी बढे कि इस शूरवीरके साथ होनेवाले बडे अथवा छोटे संग्राममें इसको परास्त करनेवाला कोई न रहे । ऐसा यह वीर अपने दलोंके साथ शत्रुओंपर हमला करके उन्हें विनष्ट करे ॥ ८ ॥

शत्रुका निवारण करना चाहिए । शत्रुके निवारण करनेका मुख्य साधन ' ज्ञान और विज्ञान ' है । अतः ज्ञानी जन जिसकी सुरक्षा करते हैं, वह मनुष्य दबाया नहीं जा सकता । जिसके पीछे ज्ञानकी शक्ति है, वह मनुष्य कभी पराधीन नहीं होता । यह ज्ञानका महत्त्व है । केवल सुरक्षा ही मुख्य नहीं है अपितु ज्ञानपूर्वक ज्ञान विज्ञान द्वारा होनेवाली सुरक्षा ही मुख्य है ॥ १ ॥

ज्ञानी जिसका पालन करते हैं, ज्ञानी जिसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंसे बचाते हैं, वह विनाशको प्राप्त नहीं होता । इसके विपरीत वह बढता जाता है । ज्ञानी जिसका पोषण करते हैं और जिसको हिंसकोंसे सुरक्षित रखते हैं, वह कभी विनष्ट नहीं होता ॥ २ ॥

ज्ञानी क्षत्रियवीर राजपुरुष शत्रुओंके नगरों और किलोंको तोड देते हैं । अपने मित्रोंके विद्वेषक वैरियोंका नाश करते हैं और उन्हें पापोंसे बचाकर दूर पहुंचा देते हैं ॥ ३ ॥

*

४९३ सुगः पन्थां अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रांवखादो अस्ति वः ॥ ४ ॥
४९४ यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुनां पथा । प्र वः स धीतये नशत् ॥ ५ ॥
४९५ स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मनां । अच्छां गच्छत्यस्तृतः ॥ ६ ॥
४९६ कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः । महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥
४९७ मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् । सुम्नैरिद् व आ विवासे ॥ ८ ॥
४९८ चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीयादा निधातोः । न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ— [४९३] (आदित्यासः) हे अदितिके पुत्रों ! (ऋतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः) सत्य मार्गसे जानेवालेके लिये मार्ग सुगम और कण्टकरहित होता है (अत्र वः अवखादः न अस्ति) इससे यहां तुम्हारे लिये बुरा खाद्य कभी नहीं मिलता ॥ ४ ॥

१ ऋतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः च— सत्यके मार्गसे जानेवालेके लिए इस विश्वमें सुगम और कण्टक-रहित मार्ग मिलता है ।

[४९४] (नरः आदित्याः) हे नेता, अदितिके पुत्रों ! (यं यज्ञं ऋतुना पथा नयथ) जिस यज्ञको तुम सरल मार्गसे चलाते हो (सः वः धीयते प्र नशत्) वह यज्ञ आपके ध्यानमें भला कैसे नष्ट होगा ? ॥ ५ ॥

[४९५] (सः मर्त्यः अस्तृतः) वह मनुष्य विनष्ट न होता हुआ (रत्नं विश्वं वसु अच्छ गच्छति) रत्न आदि सब धन सहजहीसे प्राप्त करता है (उत त्मना तोकं) और अपने लिये पुत्र भी प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

[४९६] (सखायः) हे मित्रो ! (मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य) मित्र, अर्यमा और वरुणके (महि प्सरः स्तोमं कथा राधाम) महत्त्वके अनुरूप स्तोत्र हम किस तरह सिद्ध करेंगे ? ॥ ७ ॥

[४९७] (देवयन्तं घ्नन्तं) देवत्व-प्राप्तिके इच्छुकका जो नाश करता है, (वः मा प्रति वोचे) आपसे हम कहते हैं कि उससे हमारा भाषण भी न होवे, (शपन्तं मा) उसी तरह गाली देनेवालेके साथ भी न भाषण होवे (सुम्नैः इत् वः आ विवासे) शुभ संकल्पोंके द्वारा ही आपको हम तृप्त करें ॥ ८ ॥

[४९८] (दुरुक्ताय न स्पृहयेत्) दुष्ट भाषण करनेकी इच्छा कोई न करे, (चतुरः ददमानात्) चारों पुरुषार्थोंको जो धारण करता है (आ निधातोः बिभीयात्) उससे विरोध करनेवालेसे मनुष्य डरे ॥ ९ ॥

भावार्थ— सत्यमार्गसे जानेवालेके लिए इस विश्वमें सुगम और कण्टक-रहित मार्ग मिलता है । एकबार सत्यके मार्गसे जानेका निश्चय करने पर आगेका मार्ग सरल हो जाता है । इसे अयोग्य और निन्द्य भोजन कभी नहीं मिलता ॥ ४ ॥

जो सन्मार्गसे जाता है, भला वह विनष्ट कैसे हो सकता है । अथवा जिसे देव स्वयं सन्मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा देते हैं, उसको विनष्ट करनेका साहस किसीमें भी नहीं है ॥ ५ ॥

ऐसा मनुष्य कभी भी विनष्ट नहीं होता, इसके विपरीत वह हर तरहके धन प्राप्त करता है और उत्तम औरस संतान भी प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

राष्ट्रके वीर श्रेष्ठवीर, मित्रवत् व्यवहार करनेवाले, श्रेष्ठताके विचार करनेवाले और देव अर्थात् सज्जन और संगठन-कर्ता हों, ये ज्ञानी हों । सभी मानवोंको चाहिए कि वे इन गुणोंको धारण करें और उत्तम देव बननेका यत्न करें ॥ ७ ॥

देवत्वको पानेके लिए प्रयत्न करनेवालोंका जो विनाश करते हैं, ऐसे दुष्टोंके साथ बोलना भी नहीं चाहिए । स्वयं तो ऐसे दुष्टोंसे व्यवहार करना ही नहीं चाहिए, इस पर यदि वे दुष्ट स्वयं आकर बोलने भी लगें, तो भी उनसे बातचीत करनी नहीं चाहिए । इस प्रकार उन्हें पूर्णरूपसे बहिष्कृत कर देना चाहिए, इसी प्रकार गालीगलौज करनेवालेके साथ भी नहीं बोलना चाहिए ! सदा उत्तम मन और शुभ संकल्पोंके साथ ही ईश्वरकी सेवा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

बुरे शब्द बोलनेवालेको अपने सम्मुख आने भी नहीं देना चाहिए । चारों पुरुषार्थको करनेका सामर्थ्य धारण करने-वालेको जो नीचे दबाता है, उससे डरना चाहिए, क्योंकि वह कब और किसका घात करेगा, इसका कुछ भी पता नहीं । इसलिए ऐसोंसे दूर ही रहना चाहिए ॥ ९ ॥

[४२]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री ।)

४९९ सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥
५०० यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥
५०१ अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥
५०२ त्वं तस्य द्वयाविनो ऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥
५०३ आ तत् ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ॥ ५ ॥
५०४ अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥

[४२]

अर्थ— [४९९] (विमुचो नपात् पूषन्) हे मुक्त करनेवाले पूषा ! (अध्वनः सं तिर) हमें मार्गके पार पहुंचा दो (अंहः वि) हमें पापके परे कर दो । (देव नः पुरः प्र सक्ष्व) हे देव हमें आगे बढाओ ॥ १ ॥

[५००] (पूषन्) हे पूषा ! (यः अघः वृकः दुःशेवः) जो कोई पापी, क्रूर और; सेवाके अयोग्य शत्रु (नः आदिदेशति) हमें आदेश देता हो, (तं पथः अप जहि स्म) उसको मार्गसे दूर करो ॥ २ ॥

[५०१] (त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितं) उस बटमार चोर कपटीको (स्रुतेः दूरं अधि अप अज) मार्गसे दूर करके विनष्ट करो ॥ ३ ॥

[५०२] (त्वं) तू (कस्य चित् तस्य द्वयाविनः अघशंसस्य) किसी भी उस दुरंगे पापीके (तपुषिं) शरीरको (पदा अभि तिष्ठ) अपने पांवसे दबाकर खडा रह ॥ ४ ॥

[५०३] (मन्तुमः दस्र पूषन्) हे शत्रुका दमन करनेवाले ज्ञानी पूषा ! (ते तत् अवः आ वृणीमहे) तुम्हारा वह रक्षा-सामर्थ्य हम चाहते हैं (येन पितॄन् अचोदयः) कि जिससे तुमने पितरोंको उत्साह दिया था ॥ ५ ॥

[५०४] (विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम) हे विश्वमें सौभाग्ययुक्त और सुवर्णके अलंकारोंसे युक्त (अध नः धनानि सुषणा कृधि) अब हमें धनोंको और उत्तम दानोंको अर्पण करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य पुष्टि चाहता हो, वह अपने मुक्तिके मार्गकी तलाश करे और उस मार्ग पर चलता हुआ वह दुःखके पार पहुंच जाए । अपने उन्नतिके मार्गको निष्कण्टक करे। अपने आपको पापसे बचावे और इस प्रकार प्रगति करे ॥ १ ॥

जो पापी, क्रूर और सेवाके अयोग्य मनुष्य सज्जनों पर हुकूमत करता हो, उसे अपने मार्गसे हटा देना चाहिए। दुष्टकी आज्ञा कोई न माने ॥ २ ॥

बटमार, चोर, कपटी, मार्गके बीचमें छिपकर राहगीरोंको लूटनेवाले ऐसे व्यक्तियोंको सदाके लिए विनष्ट कर देना चाहिए ॥ ३ ॥

दुरंगे पापीको अपने पैरके नीचे दबाकर रखना चाहिए । ऐसे दुरंगी चालवाले मनुष्य समाजके लिए बडे खतरनाक होते हैं । जो एक जगह जाकर कुछ और कहते हैं और दूसरी जगह जाकर कुछ और कहते हैं, वे समाजको विनाशकी ओर ले चलते हैं और वे समाजको गर्तमें गिरा देते हैं ॥ ४ ॥

राष्ट्रका पोषक शत्रुओंका दमन करनेवाला हो, जब राष्ट्र चारों ओरसे शत्रुओंसे रहित हो, तभी वह शान्तिसे रहकर सामर्थ्यशाली हो सकता है । शत्रुओंको दूर करनेका सामर्थ्य सभी मनुष्योंमें हों । पर यह कार्य तभी हो सकता है, जब राष्ट्रके रक्षक सत्कर्ममें प्रवृत्त हों । पर जब राष्ट्रके रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं, तब राष्ट्रका पतन निस्सन्देह ही समझना चाहिए ॥ ५ ॥

जिसके पास सेवन करने योग्य धन होता है, जिसके पास सब सुखके साधन प्राप्त हों, वही सच्चा सौभाग्यशाली है। जिसके पास अपार सम्पत्ति होनेपर भी जो कंजूसी करता है, उससे ज्यादा दुर्भाग्यशाली और कोई नहीं हो सकता । ऐसे उत्तम धनको अच्छे कामोंमें ही अर्पित करना चाहिए ॥ ६ ॥

५०५ अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥
५०६ अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥
५०७ शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥
५०८ न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥

[४३]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- रुद्रः ३, रुद्रः मित्रावरुणौ च ७-९ सोमः । छन्दः- गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।)

५०९ कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे ॥ १ ॥

अर्थ— [५०५] (सश्चतः नः अति नय) बाधा करनेवाले दुष्टोंसे हमें पार ले जाओ (नः सुगा सुपथा कृणु) हमें सुगम उत्तम मार्गसे ले चलो (पूषन्) हे पूषन् ! (इह क्रतुं विदः) तुम्हें यहांके कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ७ ॥

[५०६] (पूषन्) हे पूषन् ! (सुयवसं अभि नय) उत्तम जौंवाले देशमें हमें ले चलो । (अध्वने नवज्वारः न) मार्गमें नवीन संताप न होने पावे । (हे पूषन्) हे पूषन् ! (इह क्रतुं विदः) तुम्हें यहांके कर्तव्यका पता है ॥ ८ ॥

[५०७] (पूषन्) हे पूषन् ! (शग्धि) हमें सामर्थ्यवान् बनाओ (पूर्धि) हमें धनधान्यसे संपन्न करो । (प्र यंसि) हमें संपत्तिमान् करो, (शिशीहि) हमें तेजस्वी करो । (उदरं प्रासि) हमारे पेटको भर दो । (पूषन्) हे पूषन् ! (इह क्रतुं विदः) तुम्हें यहांके कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ९ ॥

[५०८] (पूषणं न मेथामसि) हम पूषाको भूल नहीं सकते (सूक्तैः अभि गृहीमसि) सूक्तोंसे उनकी स्तुति करते हैं (दस्मं वसूनि ईमहे) दर्शनीय धनोंको हम चाहते हैं ॥ १० ॥

[४३]

[५०९] (प्रचेतसे) विशेष ज्ञानी (मीळ्हुष्टमाय) अत्यंत सुखदायी (तव्यसे रुद्राय) महान् रुद्रके लिये (हृदे कत् शंतमं वोचेम) हृदयसे कब शान्तिपाठकके स्तोत्र बोलेंगे ? ॥ १ ॥

भावार्थ— उन्नतिके मार्गमें बाधा डालनेवाले दुष्टोंको दूर करना चाहिए । सुखसे जाने योग्य उत्तम मार्गोंको दूर करना चाहिए और राष्ट्रको उन्नत करनेवाले कर्तव्योंको जानना चाहिए ॥ ७ ॥

अपने राष्ट्रको उत्तम धन धान्यसे पूर्ण करना चाहिए । जो भूमि उपजाऊ नहीं है, उसे उपजाऊ बनाना चाहिए । राष्ट्रमें किसी प्रकारका रोग न हो, कोई कष्ट न हो, कोई सन्ताप न हो ॥ ८ ॥

सभी प्रजाजनको समर्थ बनना चाहिए, सभी कर्म पूर्ण करने चाहिए, सभीको सम्पन्न बनना चाहिए, तेजस्वी बनना चाहिए । अपने शस्त्रास्त्रोंको सदा तीक्ष्ण करना चाहिए और सदा उत्साहित रहना चाहिए ॥ ९ ॥

जो हमारा पोषण करता है, उसका उपकार कभी नहीं भूलना चाहिए । उसकी हमेशा प्रशंसा करनी चाहिए और उसकी धनादिसे हमेशा सहायता करनी चाहिए ॥ १० ॥

४८ रुद्र देव विशेष ज्ञानी, रोग दूर करके आनन्द बढानेवाला, आयु बढानेकी शक्ति बढानेवाला, रोगोंके कारणोंका नाश करके रोगोंको दूर करनेवाला है । ऐसे ही गुण राष्ट्रके वीरोंको भी धारण करने चाहिए ॥ १ ॥

५१० यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥

५११ यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ॥ ३ ॥

५१२ गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् । तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥

५१३ यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥

५१४ शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥

५१५ अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [५१०] (अदितिः नः रुद्रियं यथा करत्) अदिति हमारे लिये रोग दूर करनेका चिकित्साका उपाय जैसा करे (यथा पश्वे नृभ्यः गवे) वैसा ही पशु, मानव, गाय (यथा तोकाय) और बालबच्चोंके लिये भी करे ॥ २ ॥

[५११] (मित्रः वरुणः नः यथा चिकेतति) मित्र और वरुण हमारे लिये हित करना जैसा जानता है (रुद्रः यथा चिकेतति) रुद्र जैसा जानता है (सजोषसः विश्वे) वैसा ही सब उत्साही देव जानते हैं ॥ ३ ॥

[५१२] (गाथपतिं मेधपतिं) गाथाओंके स्वामी, यज्ञोंके प्रभु (जलाषभेषजं रुद्रं) जलचिकित्सक रुद्रके पाससे (शंयोः) हम शान्तिकी प्राप्ति और अनिष्टको दूर करनेसे मिलनेवाला (तत् सुम्नं ईमहे) वह सुख हम प्राप्त करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

[५१३] (यः शुक्रः इव सूर्यः) जो सामर्थ्यवान् होनेसे सूर्यके समान (हिरण्यं इव रोचते) तथा सुवर्णके समान प्रकाशता है (देवानां श्रेष्ठः वसुः) वह देवोंमें वैभववान् है ॥ ५ ॥

[५१४] (नः अर्वते मेषाय मेष्ये नृभ्यः नारिभ्यः गवे) हमारे घोडे, मेढे, मेढी, पुरुषों, नारियों और गौके लिये (सुगं शं करति) वह रुद्र देव सुख प्रदान करता है ॥ ६ ॥

[५१५] (सोम) हे सोम ! (नृणां शतस्य) हमें सैंकडों मानवोंके लिये (महि तुविनृम्णं श्रवः) पर्याप्त होनेवाला महान् तेजस्वी अन्न (श्रियं अस्मे अधि नि धेहि) बल या धन दो ॥ ७ ॥

भावार्थ — खाने, पीने, दवा देने आदिका प्रबन्ध करनेवाली देवमाता अदिति है । खानपानकी व्यवस्था जो यथायोग्य और यथासमय करती है, वही रोगोंको दूर करने औषधको प्रदान करती है । मनुष्य, पशु, गायें, बालबच्चे इन सबके लिए खानपानका पथ्य आवश्यक है ॥ २ ॥

मित्र, वरुण, रुद्र तथा सब अन्य देव रोग दूर करते हैं । सूर्यकिरणोंसे, औषधिके रसोंसे, जलसे, विद्युत्से इसी तरह सब अन्य देवोंके सामर्थ्यसे रोग दूर होते हैं । मानवी जीवनको सुखमय करना इन्हीं देवोंके सामर्थ्यपर अवलम्बित है ॥३॥

वैद्य गाथाओंको जाने, क्योंकि पूर्वकालके लोगोंके अनुभव गाथामें लिखे रहते हैं, उन्हें जानना चाहिए । औषधियोंको परस्पर मिश्रण करनेका नाम ' मेध ' है । किन औषधियोंको मिलानेसे क्या लाभ होते हैं, यह सब वैद्योंको जानना चाहिए । रोगको शान्त करनेवाले उपायका नाम ' शं ' है और रोगबीज तथा अनिष्टभावको दूर करनेका नाम ' यु ' है । इसीसे सुख होता है । मन प्रसन्न होता है ॥ ४ ॥

सूर्य वीर्यवर्धक है, सुवर्ण तेजस्विता बढानेवाला है, देवताओंमें जो मूल सत्त्व हैं, ये मनुष्योंको लाभ देनेवाले हैं ॥ ५ ॥

घोडे, भेड, मेढा, पुरुष, स्त्रियाँ और गाय आदिको स्वस्थ रखनेसे मनुष्य भी समृद्ध और ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥६॥

सोम आदि औषधियां सैंकडों मानवोंको पुष्ट करती हैं । यह सोमरूप अन्न भी वनस्पतिसे उत्पन्न होता है । बहुत अन्न खानेपर भी जिसका मन प्रसन्न नहीं होता, वह कभी सामर्थ्यशाली नहीं हो सकता, इसीलिए कहा है कि मनुष्यका मन भी उत्तम हो । जिसका मन समर्थ है, उसका शरीर भी समर्थ होता है ॥ ७ ॥

५१६ मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ॥ ८ ॥
५१७ यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥

[४४]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अग्निः, १-२ अग्निः, अश्विनौ, उषाश्च ।
छन्दः- प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

५१८ अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥
५१९ जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

अर्थ— [५१६] (सोमपरिबाधः नः मा जुहुरन्त) सोममें विघ्न करनेवाले शत्रु हमारा घातपात न करें (अरातयः मा) दुष्ट कंजूस भी हमें न सतावे (इन्दो) हे सोम ! (वाजे नः आ भज) हमारा बल बढाओ ॥ ८ ॥

[५१७] (सोम) हे सोम ! (परस्मिन् धामन्) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले (ऋतस्य अमृतस्य) सत्य और अमृतसे युक्त (ते याः आभूषन्तीः प्रजाः) ऐसे तेरी पूजा करनेवाली यह प्रजा (मूर्धा नाभा वेनः वेद) उच्च स्थानमें अपने ही घरमें विराजे ॥ ९ ॥

[४४]

[५१८] हे (अमर्त्य जातवेदः अग्ने) अमर ज्ञानी अग्ने ! (त्वं उषसः विवस्वत्) तू उषाके साथ (चित्रं राधः दाशुषे आवह) अनेक प्रकारका तेजस्वी धन दाताको देनेके लिये ला और (अद्य उषर्बुधः देवान्) आज उषः-कालमें जागनेवाले देवोंको यहाँ ले आ ॥ १ ॥

१ उषर्बुधः देवाः— उषःकालमें जागनेवाले देव । उषःकालमें जागनेसे देवत्वकी प्राप्ति होती है ।

[५१९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (जुष्टः दूतः हव्यवाहनः) देवों द्वारा सेवित, दूत, हव्य लानेवाला (अध्वराणां रथीः असि हि) और हिंसारहित कर्मोंको निभानेवाला तथा रथवाला है । (अश्विभ्यां उषसा सजूः) अश्विदेवों और उषाके साथ (सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि) उत्तम वीर्य बढानेवाला बडा धन हमें ला ॥ २ ॥

१ सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि— उत्तम वीर्य, सामर्थ्य और पराक्रम बढानेवाला धन, अन्न और यश हमें मिले ।

२ अध्वराणां रथीः— हिंसा, कुटिलता, कपटता आदि कर्मोंको न करनेवालोंमें श्रेष्ठ ।

भावार्थ— सोम आदि वनस्पतियोंसे मिलनेवाले अन्नमें जो बाधा डालते हैं, वे मानवोंके शत्रु हैं । वे हमारे मार्गमें बाधा न डालें अर्थात् वनस्पतियाँ हमें पर्याप्त मात्रामें प्राप्त होती रहें । कंजूस भी हमारे बाधक न हों ॥ ८ ॥

यह सोम (उत्तम बुद्धि) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाली, सत्य और अमृतसे युक्त होती है । इस उत्तम बुद्धिकी उपासना करके जो बुद्धिशाली होता है, वह मनुष्य भी श्रेष्ठ स्थानमें जाकर विराजता है ॥ ९ ॥

यह अमर और सब कुछ जाननेवाला अग्रणी देव अनेक प्रकारका तेजस्वी धन दाताको देता है और उषःकालमें उठने-वाले देवोंको अपने साथ लाता है । उषःकालमें उठनेसे शरीरस्थ देव अर्थात् इन्द्रियोंकी शक्ति बढती है ॥ १ ॥

यह अग्रणी देव विद्वानों द्वारा सेवित, दूतकर्म करनेवाला और देवोंतक हव्य पहुंचानेवाला है । यह हिंसायुक्त कामोंमें कभी भी हिस्सा नहीं लेता । हिंसारहित काम करनेवालोंको यह उत्तम सामर्थ्य और यशयुक्त धन देता है ॥ २ ॥

५२० अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥
५२१ श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदस—मग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥
५२२ स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥
५२३ सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [५२०] (अद्य) आज हम (दूतं, वसुं, पुरुप्रियं, धूमकेतुं, भाऋजीकं) देवोंके दूत, सबके निवासके हेतु, सर्व प्रिय, धुएंकी ध्वजावाले, ज्वालाओंसे सुशोभित (व्युष्टिषु यज्ञानां अध्वरश्रियं अग्निं वृणीमहे) उषःकालमें अहिंसक यज्ञकर्मोंके कर्ता तथा उन यज्ञोंसे ऐश्वर्यको प्राप्त हुए हुए अग्निको स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

वसुः— सबको बसानेवाला। उष्णता देकर सबको जीवित रखनेवाला।

[५२१] (व्युष्टिषु देवान् अच्छा यातवे) उषःकालोंमें देवोंकी ओर जानेके लिये (श्रेष्ठं, यविष्ठं, अतिथिं स्वाहुतं) श्रेष्ठ, अतिशय युवक, सदा गतिशील, सबसे बुलाये हुये (दाशुषे जनाय जुष्टं जातवेदसं अग्निं ईळे) दानशील यजमानके द्वारा सेवित और सर्वज्ञ अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

१ व्युष्टिषु देवान् यातवे— प्रातःकालमें देवोंको बुलाना चाहिए।

२ जातवेदः— संसारमें जो भी उत्पन्न हुआ है, उसे जाननेवाला अथवा ज्ञान जिससे उत्पन्न हुआ है।

[५२२] हे (अमृत, विश्वस्य भोजन, हव्यवाहन मियेध्य अग्ने) अमर, सबको भोजन देने हारे तथा हविको पहुँचानेवाले पवित्र अग्ने! (त्रातारं अमृतं, यविष्ठं त्वां अहं स्तविष्यामि) विश्वके त्राणकर्ता, मरणरहित और सामर्थ्यवान् तेरी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

१ विश्वस्य भोजन— यह अग्नि ही सबको भोजन देता है। यदि वृक्ष वनस्पति औषधादियोंमें सूर्य अग्नितत्त्वका आधान न करे, तो सब विनष्ट हो जाए।

२ त्रातारं अहं स्तविष्यामि— रक्षककी मैं प्रशंसा करता हूँ। जो वीर निर्बलोंकी रक्षा करता है, उसकी प्रशंसा होनी ही चाहिए।

[५२३] हे (यविष्ठ्य) तरुण अग्ने! (गृणते सुशंसः मधुजिह्वः स्वाहुतः बोधि) तू स्तोता यजमानके लिये स्तुतिका पात्र है, मधुर शिखाओंवाला तू उत्तम हवन होनेके पश्चात् हमारे अभिप्रायको समझ। (प्रस्कण्वस्य जीवसे आयुः प्रतिरन् दैव्यं जनं नमस्य) प्रस्कण्वके दीर्घ जीवनके लिये आयु बढाता हुआ तू दिव्य मानवको सम्मान दे ॥ ६ ॥

१ मधुजिह्वः— घृतादि मधुर पदार्थोंको अपनी जीभ अर्थात् ज्वालाओंसे चाटनेवाला। अथवा हमेशा मधुर वाणी बोलनेवाला ज्ञानी।

२ दैव्यं जनं नमस्य— दिव्य अर्थात् उत्तम गुणवालोंकी हमेशा पूजा करनी चाहिए।

भावार्थ— यह अग्नि सबको बसानेवाला, सर्व प्रिय, उषःकालमें होनेवाले यज्ञोंकी ज्वालासे शोभित और ऐश्वर्ययुक्त है। ऐसे अग्निको सब चाहते हैं। अर्थात् प्रत्येकके घरमें यज्ञ होने चाहिए ॥ ३ ॥

देवत्वको प्राप्त करनेके लिए मैं श्रेष्ठ, बलशाली, दानियों द्वारा सेवित अग्निकी स्तुति करता हूँ। अग्नि अर्थात् ज्ञानीकी उपासना अर्थात् उसके पास बैठनेसे ही मनुष्य देवत्व प्राप्त कर सकता है ॥ ४ ॥

अमर, सबको जीवन देनेवाले, हवियोंको ले जानेवाले, पवित्र तथा दूसरोंकी रक्षा करनेवाले अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ ५ ॥

यह अग्रणी मीठी वाणी बोलनेवाला, सबके मनोगतोंको जाननेवाला कण्व अर्थात् ज्ञानियोंको दीर्घायु देनेवाला और उत्तम गुणोंसे युक्त है। ऐसे अग्रणीका सबको सम्मान करना चाहिए ॥ ६ ॥

५२४ होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसो ऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥
५२५ सवितारमुषसमश्विना भग मग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥
५२६ पतिर्ह्यध्वराणा मग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥
५२७ अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितो ऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥

अर्थ— [५२४] (होतारं विश्ववेदसं त्वा) हवन करनेवाले सर्वज्ञ तुझको (विशः हि सं इन्धते) सब प्रजायें निश्चयसे प्रदीप्त करती हैं। हे (पुरुहूत अग्ने) बहुतोंसे बुलाये गये अग्ने ! (सः प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आवह) वह प्रसिद्ध तू प्रकृष्ट ज्ञानसे युक्त देवोंको यहाँ इस यज्ञकर्ममें दौडते हुये शीघ्र ले आ ॥ ७ ॥

१ विश्ववेदसं विशः सं इन्धते— सर्वज्ञ इस अग्निको सब प्रजायें प्रदीप्त करती हैं। सब प्रजाजनोंके घरोंमें हवन होना चाहिए।

[५२५] हे (स्वध्वर) शोभन यज्ञके कर्ता अग्ने ! (क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उषसं अश्विना भगं अग्निं) रात्रीके अनन्तर उषःकालमें सविता, उषा, दोनों अश्विनीकुमारों, भग और अग्निको यहाँ ले आ। (सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा इन्धते) सोम तैयार किये हुये ज्ञानी लोग हवियोंको पहुँचानेवाले तुझको प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

[५२६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि) प्रजाओंके यज्ञका पालक और देवोंका दूत है। (उषर्बुधः स्वर्दृशः देवान् अद्य सोमपीतये आ वह) उषःकालमें जागनेवाले आत्मदर्शी देवोंको आज सोम-पान करनेके लिये ले आ ॥ ९ ॥

१ उषर्बुधः स्वर्दृशः देवान्— उषःकालमें जागनेवाले तथा आत्मसाक्षात्कारी ज्ञानियोंको 'देव' कहते हैं।

[५२७] हे (विभावसो अग्ने) विशेष तेजस्वी अग्ने ! (विश्वदर्शतः पूर्वाः उषसः अनु दीदेथ) विश्वमें दर्शनीय ऐसा तू उषासे पहले प्रदीप्त होता है। तू (ग्रामेषु अविता असि) ग्रामोंमें रक्षक है, और (यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि) यज्ञोंमें, मनुष्योंका अग्रगामी नेता है ॥ १० ॥

१ उषसः पूर्वाः अनु दीदेथ— यह अग्रणी उषासे पहले प्रदीप्त किया जाता है। उषःकालसे पूर्व उठनेवाला तेजस्वी होता है।

२ ग्रामेषु अविता असि— यह अग्रणीनेता अपने ग्रामका रक्षक होता है। हर अग्रणी नेताको अपने अपने ग्रामकी रक्षा करनी चाहिए।

भावार्थ—क्योंकि यह ज्ञानी अग्रणी देव सब देवोंको बुलाकर लाता है, इसलिए सभी प्रजायें उसे प्रदीप्त करती हैं ॥७॥

उषःकालमें अग्नि सविता, उषा, अश्विनीकुमार आदि सब देवताओंको बुलाकर लाता है। इसलिए सबेरे सबेरे ज्ञानीजन सोम तैयार करके इस अग्निको प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

यह अग्रणी यज्ञोंका स्वामी है। यह उषःकालमें जागनेवाले और आत्मसाक्षात्कारी देवोंको सोमयज्ञमें बुलाकर लाता है। आत्मचिन्तनका सर्वोत्तमकाल उषःकाल या ब्राह्ममुहूर्त है, इसी समय ज्ञानीजन आत्मचिन्तन करते हैं। मनुस्मृतिमें भी कहा है— ॥ ९ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत, धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥

' मनुष्य ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर, धर्म, अर्थ, कायक्लेश और उनके कारण तथा वेदोंके तत्त्वोंका चिन्तन करे। '

प्राचीनकालमें उषःकालसे पहले यज्ञ प्रारम्भ हो जाते थे, अतः उषासे पूर्व ही इस तेजस्वी अग्निको प्रकट करते थे। यह यज्ञाग्नि जिस जिस ग्राममें जलाई जाती है, वहाँ वहाँके रोगजन्तुओंको नष्ट करके यह अग्नि उस ग्रामकी रक्षा करती है। इसीलिए यज्ञमें इसे सर्वप्रथम प्रदीप्त किया जाता है ॥ १० ॥

५२८ नि त्वा यज्ञस्य साधन॒मग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतमर्मत्र्यम् ॥ ११ ॥

५२९ यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितो ऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयो ऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥ १२ ॥

५३० श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभि॒र्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

५३१ शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतो ऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥

अर्थ— [५२८] हे (अग्ने देव) अग्नि देव ! हम (मनुष्वत् त्वा) मनुष्योंकी तरह तुझको (यज्ञस्य साधनं होतारं ऋत्विजं, प्रचेतसं) यज्ञके साधन, होता, याजक, ज्ञानी, (जीरं, अमर्त्यं दूतं नि धीमहि) वृद्ध अमर दूतके रूपमें यहाँ स्थापित करते हैं ॥ ११ ॥

[५२९] हे (मित्रमहः) मित्रोंमें पूजनीय अग्ने ! तू (यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि) जब यज्ञके पुरोहित रूपमें देवोंके बीचमें दूतकर्म करनेके लिये जाता है, तब (सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव) समुद्रके प्रचण्ड ध्वनि करनेवाली लहरोंके सदृश (अग्नेः अर्चयः भ्राजन्ते) तुझ अग्निकी ज्वालायें प्रदीप्त होती हैं ॥ १२ ॥

[५३०] हे ((श्रुत्कर्ण अग्ने) सुननेमें समर्थ कानोंवाले अग्ने (श्रुधि) हमारे कथनको सुन ले । (प्रातर्यावाणः मित्रः, अर्यमा, वह्निभिः सयावभिः देवैः) प्रातःकालमें जानेवाले मित्र और अर्यमा तथा तेजस्वी रथोंसे जानेवाले देवोंके साथ (अध्वरं बर्हिषि आ सीदन्तु) हिंसारहित यज्ञमें आसनपर आकर विराजमान होवें ॥ १३ ॥

[५३१] (सुदानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु) उत्तमदानी, अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञ कर्मकी वृद्धि करनेवाले मरुत् वीर इस स्तोत्रको सुनें । तथा (धृतव्रतः वरुणः) व्रतपालन करनेवाला वरुण (अश्विभ्यां उषसा सजूः सोमं पिबतु) अश्विनीकुमारों और उषाके साथ सोम रसका पान करे ॥ १४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि यज्ञका साधन, होता, ज्ञानी और सबसे महान् और अमर है ॥ ११ ॥

जब देवताओंको हवि पहुंचानेके उद्देश्यसे यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती है, तब उसकी ज्वालायें समुद्रकी लहरोंकी तरह आकाशमें बहुत ऊंची उठती हैं ॥ १२ ॥

यह अग्रणी देव सबकी प्रार्थनाओंको ध्यानसे सुनता है और सब देवोंके साथ मनुष्यके श्रेष्ठ कर्मोंमें सहायक होता है। उसी प्रकार अग्रणी नेता भी अपनी प्रजाओंकी प्रार्थनायें सुने और तदनुसार उनकी सहायता करे ॥ १३ ॥

उत्तम दानी मरुत् गण हमारी प्रार्थना सुनें, तथा व्रतके पालक वरुण एवं अश्विनीकुमार आदि देव भी हमारे यज्ञमें आवें ॥ १४ ॥

*

[४५]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अग्निः, १० (उत्तरार्धस्य) देवाः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

५३२ त्वम॑ग्ने॒ वसूँ॑रि॒ह रु॒द्राँ आ॑दि॒त्याँ उ॒त । यजा॑ स्वध्व॒रं जनं॒ मनु॑जातं घृत॒प्रुष॑म् ॥१॥

५३३ श्रु॒ष्टी॒वानो॒ हि दा॒शुषे॑ दे॒वा अ॑ग्ने॒ विचे॑तसः । तान् रो॑हिदश्व गिर्वण॒स् त्रय॑स्त्रिंशत॒मा व॑ह ॥२॥

५३४ प्रि॒य॒मे॒ध॒वद॑त्रि॒वज् जात॑वेदो विरूप॒वत् । अ॒ङ्गि॒र॒स्वन्म॑हिव्रत॒ प्रस्क॑ण्वस्य श्रुधी॒ हव॑म् ॥३॥

५३५ महि॑केरव ऊ॒तये॑ प्रि॒यमे॑धा अहूषत । राज॑न्तमध्व॒राणा॑म॒ग्निं शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ ॥४॥

[४५]

अर्थ— [५३२] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं इह वसून् रुद्रान् आदित्यान् यज) तू यहाँ वसुओं, रुद्रों और आदित्योंकी सन्तुष्टिके लिये यज्ञ कर । (उत स्वध्वरं घृतप्रुषं मनुजातं जनं आयज) तथा उत्तम यज्ञ करनेवाले एवं घृताहुति देनेवाले मनुसे उत्पन्न हुये मानवोंकी सन्तुष्टिके लिये भी यज्ञ कर ॥ १ ॥

१ वसून् रुद्रान् आदित्यान् इह यज— वसु, रुद्र और आदित्योंके लिए यजन कर। अर्थात् इनकी प्रसन्नताके लिए यज्ञ करना चाहिए । इनके प्रसन्न रहनेपर स्वास्थ्य उत्तम रहेगा ।

२ जनं यज— मनुष्य मात्रके हितके लिए यज्ञ करना चाहिए ।

[५३३] हे (अग्ने) अग्ने ! (विचेतसः देवाः दाशुषे श्रुष्टीवानो हि) विशेष ज्ञानसम्पन्न देवता लोग दाताके लिये उत्तम फल देते ही हैं । हे (रोहिदश्व, गिर्वणः) लाल रङ्गके घोडेवाले, स्तुति योग्य अग्ने ! (त्रयस्त्रिंशतं तान् आ वह) उन तैंतीस देवोंको तू यहाँ ले आ ॥ २ ॥

१ विचेतसः देवाः दाशुषे श्रुष्टीवानो हि— विशेष ज्ञान सम्पन्न देव दाताको उत्तम फल देते ही हैं ।

[५३४] हे (महिव्रत जातवेदः) महान् कर्म करनेवाले ज्ञानी अग्ने ! (प्रियमेधवत् अत्रिवत् विरूपवत् अङ्गिरस्वत् प्रस्कण्वस्य हवं श्रुधि) तूने जैसी प्रियमेध, अत्रि, विरूप और अङ्गिरसकी प्रार्थनाएँ सुनी थीं, वैसी प्रस्कण्वकी भी प्रार्थना श्रवण कर ॥ ३ ॥

प्रियमेधाः— बुद्धिपूर्वक कार्य करना जिसे प्रिय है ।

अत्रिः— (अतति) जो भ्रमण करता है ।

विरूपः— विशेष रूपवान् ।

अंगिराः— अंगरस-चिकित्सा-विद्याका ज्ञाता ।

प्रस्कण्वः— विशेष व्याख्याता 'कण्-शब्दे' ।

[५३५] (महिकेरवः प्रियमेधाः) महान् कर्म करनेवाले प्रियमेध ऋषियोंने (अध्वराणां शुक्रेण शोचिषा राजन्तं अग्निं ऊतये अहूषत) यज्ञोंके मध्यमें पवित्र प्रकाश और तेजस्वी हुये अग्निकी अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४ ॥

१ प्रियमेधाः महिकेरवः ऊतये अग्निं अहूषत— बुद्धिपूर्वक महान् कार्य करनेवालोंने अपनी रक्षाके लिए अग्रणीको बुलाया । ऐसोंकी अग्नि सहायता करता है ।

भावार्थ— यह अग्रणी देवोंको प्रसन्न करनेके लिए यज्ञ करता है, इस यज्ञसे मानवोंका स्वास्थ्य उत्तम रहता है, इसलिए यज्ञ एक उपयोगी कार्य है ॥ १ ॥

विद्वान् तथा दिव्य गुण सम्पन्न देव दाताको सदा सुखी रखते हैं और उसके हर कार्यमें ३३ देव सहायक होते हैं ॥२॥

यह अग्रणी देव बुद्धिसे कार्य करनेवाले ज्ञान प्रसार करते हुए सर्वत्र घूमनेवाले अंगरस् चिकित्साके ज्ञाता तथा ज्ञानी पुरुषकी प्रार्थना सुनता है और उसकी सहायता करता है ॥ ३ ॥

महान् कर्म करनेवाले बुद्धिमान् ऋषियोंने रक्षाके लिए अग्निसे प्रार्थना की ॥ ४ ॥

५३६ घृताहवन सन्त्ये॒मा उ॒ षु श्रु॑धी गिर॑ः । याभि॒ः कण्व॑स्य सू॒नवो॒ हव॑न्तेऽवसे त्वा ॥५॥
५३७ त्वां चि॒त्रश्र॑वस्तम॒ हव॑न्ते वि॒क्षु ज॒न्तव॑ः । शो॒चिष्के॑शं पुरुप्रि॒या॒ऽग्ने ह॒व्याय॒ वोळ्ह॑वे ॥६॥
५३८ नि त्वा॒ होता॑रमृ॒त्विजं॑ द॒धिरे व॑सु॒वित्त॑मम् । श्रुत्क॑र्णं स॒प्रथ॑स्तमं॒ विप्रा॑ अग्ने दि॒वि॑ष्टिषु ॥७॥
५३९ आ त्वा॒ विप्रा॑ अचुच्यवुः सु॒तसो॑मा अ॒भि प्रय॑ः ।
बृ॒हद् भा बिभ्र॑तो ह॒वि॒रग्ने॒ मर्ता॑य दा॒शुषे॑ ॥ ८ ॥
५४० प्रा॒त॒र्याव्णः॑ सहस्कृत सोमपे॒या॑य सन्त्य । इ॒हाद्य दैव्यं॒ जनं॑ ब॒र्हिरा सा॑दया वसो ॥९॥

अर्थ— [५३६] हे (घृताहवन सन्त्य) घृतकी आहुतियाँ लेनेवाले दाता अग्ने! (कण्वस्य सूनवः याभिः अवसे त्वा हवन्ते) कण्वके पुत्र जिनसे सबकी सुरक्षाके लिये तेरी प्रार्थना करते हैं, उन (इमा उ गिरः सुश्रुधि) इन प्रार्थनाओंको भली प्रकार सुन ॥ ५ ॥

१ सन्त्य— दाता ।

[५३७] हे (चित्र श्रवस्तम पुरुप्रिय अग्ने) विलक्षण यशवाले और सबके प्रिय अग्ने! (शोचिष्केशं त्वां) तेजस्वी किरणवाले तुझको (हव्याय वोहळवे) हव्य वहन करनेके लिये (विक्षु जन्तवः हवन्ते) प्रजाओंमें सब प्राणी बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ शोचिष्केशः— ज्वालायें ही इस अग्निके बाल हैं। शुद्ध प्रकाशसे युक्त ।

२ जन्तवः हवन्ते— इस अग्रणीको सब प्राणी अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

[५३८] हे (अग्ने) अग्ने! (विप्राः दिविष्टिषु) ज्ञानी लोग यज्ञोंमें (होतारं ऋत्विजं वसुवित्तमं) देवोंको बुलाने हारे, ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाले, बहुत धनके दाता, (श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा नि दधिरे) प्रार्थना सुननेमें तत्पर और सर्वत्र प्रसिद्ध ऐसे तुम्हें स्थापित करते हैं ॥ ७ ॥

१ ऋत्विज्— (ऋतु-यज्) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाला ।

२ श्रुत्कर्ण— जो लोगोंकी प्रार्थना सुनकर उनकी हर तरहसे सहायता करता है ।

३ सप्रथस्तमः— सर्वत्र अत्यन्त प्रसिद्ध ।

[५३९] हे (अग्ने) अग्ने! (दाशुषे मर्ताय हविः बिभ्रतः) दानशील मनुष्यके लिये हव्य धारण किये हुये, (सुतसोमाः विप्राः प्रयः अभि) सोमरसको तैयार करनेवाले बुद्धिमान् लोग अन्नके पास (बृहत् भाः त्वा अचुच्यवुः) महान् तेजस्वी तुझको बुलाते हैं ॥ ८ ॥

१ बृहत् भाः— अत्यन्त तेजस्वी ।

[५४०] हे (सहस्कृत, सन्त्य, वसो) बलके उत्पन्नकर्ता, दानशील तथा सबके निवासक अग्ने! (इह अद्य सोमपेयाय) यहाँ आज सोमपानके लिये (प्रातर्याव्णः दैव्यं जनं बर्हिः आ सादय) प्रातःकाल हीमें आनेवाले दिव्य विबुधोंको इन आसनों पर लाकर बिठला ॥ ९ ॥

भावार्थ— वह अग्रणी विद्वानोंकी प्रार्थना सुनकर उनकी हर प्रकारसे सहायता करता है। वह हमारी भी प्रार्थना सुने ॥ ५ ॥

ज्वालाओंके बालोंसे युक्त इस अग्रणीका सम्मान करनेके लिए सब बुलाते हैं ॥ ६ ॥

यह अग्रणी देवोंको बुलाकर लानेवाला, प्रार्थनाओंको ध्यानसे सुननेवाला, धन ऐश्वर्यादिको देनेवाला है, ऐसे इसको ज्ञानी जन यज्ञमें प्रज्वलित करते हैं ॥ ७ ॥

दानशील मनुष्यके सुखके लिए बुद्धिमान् होता सोमरस तैय्यार करके अग्निको अन्नके पास बुलाते हैं ॥ ८ ॥

यह अग्नि सबको जीवन देनेवाला, बल देनेवाला तथा सोमपानके लिए प्रातःकालमें उठनेवाले दिव्य गुण युक्त ज्ञानियोंको यज्ञमें लानेवाला है ॥ ९ ॥

५४१ अर्वाञ्चं दैव्यं जन-मग्ने यक्ष्व सहूतिभिः । अयं सोमः सुदानवस् तं पात तिरोअह्न्यम् ॥१०॥

[४६]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- गायत्री ।)

५४२ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥
५४३ या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥
५४४ वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥
५४५ हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥

अर्थ— [५४१] हे (अग्ने) अग्ने (अर्वाञ्चं दैव्यं जनं सहूतिभिः यक्ष्व) पास आये दिव्य जनोंका उत्तम भाषणके साथ आदरपूर्वक यजन कर । हे (सुदानवः) दानशीलो ! (अयं सोमः तं तिरो अह्नयं पात) यह सोमरस है, गत दिवस तैयार किया गया है उसका पान कर ॥ १० ॥

[४६]

[५४२] हे अश्विदेवो ! (एषा प्रिया) यह प्रिय (अपूर्व्या उषाः) अपूर्वसी दीखनेवाली उषा (दिवः व्युच्छति) द्युलोकसे आती है । अर्थात् अन्धकार दूर करती है । इस समय (वां बृहत् स्तुषे) तुम दोनोंकी मैं बहुत स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[५४३] (या देवा, दस्रा) जो तुम दोनों देवतारूपी, शत्रुविनाशकर्ता (सिन्धु-मातरा, रयीणां मनो-तरा) नदीको माता समझनेवाले, धनोंको मनसोक्त देनेहारे तथा (धिया वसुविदा) कर्म और बुद्धिके अनुसार धनको देनेहारे हो ॥ २ ॥

[५४४] (वां रथः) तुम दोनोंका रथ (यत् विभिः पतात्) जिस समय पक्षिके सदृश उडने लगता है, तब (जूर्णायां) प्रशंसाके योग्य (अधि विष्टपि) द्युलोकमें भी (वां ककुहासः वच्यन्ते) तुम दोनोंके प्रधान कर्मोंका वर्णन किया जाता है ॥ ३ ॥

[५४५] हे (नरा !) नेताओ ! (अपां जारः) जलोंको सुखानेवाला (पपुरिः पिता) पोषणकर्ता पिता (कुटस्य चर्षणिः) किये हुए कार्योंका निरीक्षक सूर्य (हविषा पिपर्ति) हविसे आपको संतुष्ट करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— घरमें आए हुए दिव्य अर्थात् उत्तम गुणोंसे विभूषित मनुष्योंका मीठी बोलीसे सदा सत्कार करना चाहिए । ताकि उसके यहां विद्वान् बैठकर आनन्दसे सोमरसका पान करें ॥ १० ॥

उषा आकर अन्धकारको दूर करती है । हे अश्वि देवो ! इस समय मैं आपकी स्तुति करता हूं । मनुष्यको अपना अज्ञान दूर करना चाहिये ॥ १ ॥

अश्विदेव शत्रुका नाश करनेवाले, धनका दान करनेवाले नदीको माता माननेवाले और कर्म करनेकी योग्यतानुसार धन देनेवाले हैं । मनुष्य अपने शत्रुको दूर करे, धनका दान करे, जो जैसा कर्म करेगा वैसा धन उस कर्मकी योग्यतानुसार उसको देता रहे, अधिक कर्म कराकर थोडा धन न देवे, अपने देशकी नदियोंकी माताके समान सुरक्षा करें । क्योंकि उनसे धान्य उत्पन्न होकर मानवोंका पोषण होता है ॥ २ ॥

अश्विदेवोंका रथ पक्षीके सदृश आकाशमें उडने लगता है, तब स्वर्गमें भी उसकी प्रशंसा होती है । (यह रथ विमान ही है ।) आकाशमें गमन करनेके लिये आकाशगामी रथ (विमान) मनुष्य बनावें । यह कर्म प्रशंसा योग्य है ॥ ३ ॥

जलको सुखानेवाला, सबका पोषक, कृत कर्मोंको देखनेवाला पिता सूर्य अश्विदेवोंको अन्नसे सन्तुष्ट करता है । मनुष्य अन्न उत्पन्न करे, उससे यज्ञ करे, अनुयायियोंका पोषण करे, अनुयायियोंके लिये कर्मोंका निरीक्षण करें और योग्यतानुसार उनको धन आदि देवे ॥ ४ ॥

५४६ आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥
५४७ या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥
५४८ आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥
५४९ अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८ ॥
५५० दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे । स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥
५५१ अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः । व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १० ॥

अर्थ— [५४६] (मत-वचसा नासत्या) हे मननपूर्वक भाषण करनेहारे तथा असत्यसे दूर रहनेवाले अश्विदेवो! यह (वां मतीनां आदारः) तुम दोनोंकी बुद्धियोंकी प्रेरणा करनेवाला है, (धृष्णुया सोमस्य पातं) धर्षक शक्ति देनेवाले सोमका पान करो ॥ ५ ॥

[५४७] हे अश्विदेवो ! (या ज्योतिष्मती) जो प्रकाशसे पूर्ण होकर (तमः तिरः) अँधियारीको दूर हटाकर (नः पीपरत्) हमें पुष्ट करता है, (तां इषं) उस अन्नको (अस्मे रासाथां) हमें दे दो ॥ ६ ॥

[५४८] हे अश्विदेवो ! (रथं युञ्जाथां) तुम दोनों अपना रथ जोतो, (पाराय गन्तवे) पार चले जानेके लिये (नः मतीनां) हमारी बुद्धिपूर्वक रची हुई (नावा आयातं) नौकासे आओ ॥ ७ ॥

[५४९] (सिन्धुनां तीर्थे) नदियोंकी उतराईके स्थानपर (वां अरित्रं) तुम दोनोंकी बल्ली या नाव खेनेका डंडा (दिवः पृथु) द्युलोक जैसा विस्तीर्ण है, (रथः) तुम दोनोंका रथ भी तैयार है, यहां वे (इन्द्रवः धिया युयुज्रे) सोमरस कुशलतासे तैयार किये हैं ॥ ८ ॥

[५५०] (कण्वासः) हे कण्वपरिवारके लोगो ! (दिवः इन्दवः) द्युलोकसे सोमरस लाये हैं । (सिन्धूनां पदे वसु) नदियोंके तटपर धन है, अब (स्वं वव्रिं) अपने स्वरूपको (कुह धित्सथः) भला तुम दोनों किधर रखना चाहते हो ? ॥ ९ ॥

[५५१] (भाः अंशवे) यह आभा सोमके लिये ही (अभूत् उ) प्रकट हुई है, (सूर्यः हिरण्यं प्रति) सूर्य सुवर्ण तुल्य प्रकाशसे युक्त हो रहा है; (अ-सितः) कुछ फीकासा पडा हुआ अग्नि (जिह्वया वि अख्यत्) अपनी ज्वालासे विशेषतया प्रकाशमान हो चुका है ॥ १० ॥

भावार्थ— अश्विदेव मननपूर्वक भाषण करते हैं, वे सोमरस पीते हैं जो वीरत्वके उत्साहको बढाता है । मनुष्य भाषण करनेके पूर्व मनन करे और अपना वक्तव्य निश्चित करें और उतना ही बोले । बलवर्धक रसोंका पान करें ॥ ५ ॥

अश्विदेव ऐसा अन्न देते हैं, जो हमें प्रकाश देगा, अन्धकार दूर करेगा और हमारा पालन भी करेगा । मनुष्य अपने अज्ञानान्धकारको दूर करें, ज्ञानके प्रकाशको प्राप्त करें और उत्तम पुष्टि देनेवाला अन्न प्राप्त करें ॥ ६ ॥

समुद्रको पार करके आना हो तो नौकासे आवें, ये नौकाएं उत्तम बुद्धिसे तैयार की हैं। भूमि परसे रथ जोड कर आओ। मनुष्य समुद्र पार करनेके लिये उत्तमसे उत्तम नौकायें तैयार करे और भूमीपर संचार करनेके लिये उत्तम रथ तैयार करे ॥७॥

नदियोंमें जहां उतार होता है, वहां अच्छी विस्तीर्ण बल्लियां तैयार हैं, भूमि पर रथ भी तैयार है, यहां सोमरस भी तैयार रखे हैं। नदियोंके उतारके स्थानपर नौका रखनेके लिये आवश्यक साधन रहें, मनुष्योंके लिये रथ भी वहाँ रहें और खानपानका भी सतत प्रबंध रहे ॥ ८ ॥

पर्वतके शिखर परसे सोम लाकर तयार रखा है, नदीपार होनेपर यहां धन भी बहुत है । हे बुद्धिमानो ! आप अब कहां जायेंगे ? पर्वतपरसे औषधियां लाकर उनके रस पीनेके लिये तैयार करो । समुद्रके पार जाकर धन भी कमाओ ॥ ९ ॥

सोमका रस तैयार करनेके लिये ही यह उषाका प्रकाश हुआ है, इसीलिये सूर्य प्रकाशित हुआ है, अग्नि भी इसीलिये प्रदीप्त हुआ है । सोम, सूर्य और अग्नि मनुष्योंकी सहायता करनेके लिये सिद्ध हैं (अर्थात् मनुष्य पुरुषार्थ करके उनसे सुख प्राप्त करे) ॥ १० ॥

५५२ अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११ ॥

५५३ तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति । मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥

५५४ वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥ १३ ॥

५५५ युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥

५५६ उभा पिबतमश्विनो--भा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥

अर्थ— [५५२] (ऋतस्य पन्थाः) यज्ञका मार्ग (पारं एतवे) दुःखके पार होनेके लिए (साधुया अभूत् उ) अच्छा बन चुका है । (दिवः) द्युलोकसे (विस्रुतिः अदर्शि) विशेष प्रकाशकी प्रभा दीख पडी है ॥ ११ ॥

[५५३] (सोमस्य मदे) सोमरसके सेवनसे उत्पन्न हर्षमें (पिप्रतोः अश्विनोः) जनताको सन्तुष्ट रखनेवाले अश्विदेवोंके (तत् तत्) उसी (अवः इत्) संरक्षणको (जरिता प्रति भूषति) स्तोता अच्छे ढंगसे वर्णित करता है ॥ १२ ॥

[५५४] हे (शंभू) सुख देनेवाले और (मनुष्यत् विवस्वति) मनुके समान विशेष सेवा करनेवालेके समीप (वावसाना) रहनेकी इच्छा करनेवाले अश्विदेवो ! (गिरा) हमारे भाषणसे आकर्षित होकर (सोमस्य पीत्या) सोम-पान करनेके निमित्त (आगतं) इधर आओ ॥ १३ ॥

[५५५] (परिज्मनोः युवोः) चारों ओर घूमनेवालों तुम दोनोंकी (श्रियं अनु) शोभाके पीछे पीछे (उषा उपाचरत्) उषा प्रकट हो समीप संचार कर रही है; (अक्तुभिः) रात्रियोंमें (ऋता वनथः) तुम दोनों यज्ञोंका सेवन करते हो ॥ १४ ॥

[५५६] हे अश्विदेवो ! (उभा पिबतं) तुम दोनों सोमपान करो, (अविद्रियाभिः ऊतिभिः) निरलस रक्षाओंकी आयोजनाओंके साथ (उभा) तुम दोनों (नः शर्म यच्छतं) हमें सुख दे दो ॥ १५ ॥

भावार्थ— दुःखसे पार होनेके लिए यह यज्ञका मार्ग उत्तम रीतिसे बन गया है । मानो यह स्वर्गसे प्रकाश ही आया है । मनुष्योंके दुःख दूर करनेके लिये यह यज्ञका मार्ग बडा ही सरल मार्ग है । इसमें किसी तरहके कष्ट नहीं हैं । यह स्वर्गका ही मार्ग है ॥ ११ ॥

अश्विदेव सोम पीकर आनन्दित होते और जनताको संतुष्ट करके उनकी सुरक्षा करते हैं । इसकी स्तुति सभी करते हैं । मनुष्य स्वयं आनन्द प्रसन्न रहें, अन्योंको संतुष्ट करें और जनताकी उत्तम रक्षा रहें, यही प्रशंसनीय कार्य है ।

अश्विदेव सबको सुख देते और अनुयायियोंके संबमें रहते हैं । वे सोमपानके लिये यहां आवें । नेता अनुयायियोंको सुख देवे, उनके साथ रहे, उनसे पृथक् न रहे । वनस्पतियोंके मधुर रसोंका पान करे ॥ १३ ॥

उषःकालके पूर्व अश्विदेव चारों ओर भ्रमण करते हैं । और रात्रीके समयमें भी यज्ञोंको देखते हैं । नेता लोग अनु-यायियोंके पूर्व ही उठकर चारों ओरके सब कर्मोंकी अच्छी तरह देखभाल करें । रात्रीके समयमें भी निरीक्षण करें ॥ १४ ॥

अश्विदेव सोमपान करें और निरलस रक्षाओंसे सबको सुख देवें । नेता लोग आलस्य छोडकर अनुयायियोंकी रक्षा करें और उनको सुखी करें । वनस्पतियोंके रसोंका पान करें ॥ १५ ॥

(४७)

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- प्रगाथः=विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

५५७ अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥
५५८ त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥ २ ॥
५५९ अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥
५६० त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥

---

[४७]

अर्थ— [५५७] हे (ऋतावृधा अश्विना) यज्ञको बढानेवाले अश्विदेवो ! (अयं मधुमत्तमः) वह अत्यन्त मीठा (सोमः वां सुतः) सोम तुम दोनोंके लिए निचोडा जा चुका है, (तिरोअह्न्यं तं पिबतं) कल निचोडे हुए उस रसको तुम दोनों पी लो और (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दाताको अनेक रत्न दे दो ॥ १ ॥

[५५८] हे अश्विदेवो ! (सुपेशसा त्रिवृता) सुन्दर आकारवाले, तीन छोरवाले, (त्रिवन्धुरेण रथेन आयातं) तीन शिखरोंसे युक्त रथपर चढकर आओ । (अध्वरे) हिंसा रहित कार्यमें (वां) तुम दोनोंके लिए (कण्वासः ब्रह्म कृण्वन्ति) कण्व परिवारके लोग काव्य, स्तोत्र, बनाते हैं, करते हैं, (तेषां हवं) उनकी पुकारको (सु शृणुतं) भली भाँति सुन लो ॥ २ ॥

[५५९] हे (ऋतावृधा) यज्ञको बढानेवाले ! (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (मधुमत्तमं सोमं पातं) अत्यन्त मीठे सोमरसका तुम दोनों पान करो । (अथ अद्य) और आजके दिन (रथे वसु बिभ्रता) रथमें धन रखे हुए तुम दोनों (दाश्वांसं उप गच्छतं) दानीके समीप चले जाओ ॥ ३ ॥

[५६०] हे (विश्ववेदसा अश्विना) सब कुछ जाननेहारे अश्विदेवो ! (त्रिषधस्थे बर्हिषि) तीन स्थानों पर रखे हुए कुशासनपर बैठकर (यज्ञं मध्वा मिमिक्षतं) यज्ञको मधुसे युक्त करो (अभिद्यवः कण्वासः) द्योतमान कण्व-के पुत्र (वां सुतसोमाः) तुम दोनोंके लिए सोमरस निचोडकर (युवां हवन्ते) तुम दोनोंको बुलाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यज्ञकी वृद्धि करनेवाले अश्विदेव यहां आवें और हमने गत दिन तैयार करके रखा हुआ यह अत्यंत मीठा सोमरस पीवें, और दाताको अनेक रत्न देवें । यज्ञकी वृद्धि करो । सोम आदि वनस्पतियोंका रस पीओ और उदार दाताओंको बहुत धन दो ॥ १ ॥

हे अश्विदेव ! तुम दोनों दीखनेमें सुन्दर, तीन छोरवाले और तीन शिखरोंवाले अपने रथमें बैठकर यहां आओ और इस हिंसा रहित यज्ञमें जो कण्वोंका मन्त्र पाठ हो रहा है उसे सुन लो । सुन्दर रथ तैयार करो, उन रथोंमें बैठकर यज्ञके स्थानमें जाओ और वहांके पुण्य कर्मका निरीक्षण करो । नेता लोग वहांके काव्य गानको सुनें ॥ २ ॥

यज्ञ मार्गके प्रचारक, शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो मधुर सोमरस पीओ और अपने रथमें बहुत धन रखकर दाताको उसका दान करो । यज्ञ मार्गका प्रचार करो । शत्रुका नाश करो । धनका दान करो और रसपान करो ॥ ३ ॥

सर्वज्ञ अश्विदेवो ! तीन कोनोंवाले आसन पर बैठो और यज्ञको मधुरिमामय करो । सोमरस निचोडकर ये कण्व तुम्हें बुलाते हैं। आसन पर आकर बैठो, सर्वत्र मीठा वायुमण्डल बनाओ ॥ ४ ॥

५६१ याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥
५६२ सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्य१स्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥
५६३ यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥
५६४ अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥

अर्थ— [५६१] हे (ऋतावृधा) यज्ञको बढानेवाले (शुभस्पती अश्विना) सज्जनोंके पालक अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (याभिः अभिष्टिभिः) जिन इच्छा योग्य शक्तियोंसे (कण्वं प्र अवतं) कण्वकी अच्छी रक्षा की थी (ताभिः अस्मान्) उन्हींसे हमारी (सु अवतं) भली प्रकार रक्षा करो और (सोमं पातं) सोमका पान करो ॥ ५ ॥

[५६२] हे (दस्रा अश्विना) शत्रुनाशक अश्विदेवो ! (रथे वसु बिभ्रता) रथमें धन रखकर आनेवाले तुम दोनों (सुदासे पृक्षः वहतं) सुदासको अन्न सामग्री पहुँचाओ; (समुद्रात्) समुन्दरमेंसे (उत) या (दिवः परि वा) द्युलोकसे (अस्मे) हमारे लिए (पुरुस्पृहं रयिं धत्तं) बहुतों द्वारा स्पृहणीय धन दे दो ॥ ६ ॥

[५६३] (नासत्या !) हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! (यत् तुर्वशे अधिस्थः) जो तुम दोनों समीप रहे हो, (यत् वा) अथवा (परावति) सुदूरवर्ती स्थानमें रहे हो, (अतः सुवृता रथेन) वहांसे सुन्दर रथमें बैठकर (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूरजकी किरणोंके साथ (नः आगतं) हमारे समीप आओ ॥ ७ ॥

[५६४] हे (नरा) नेताओ ! (अध्वरश्रियः सप्तयः) यज्ञकी शोभा बढानेवाले तुम्हारे घोडे (वां सवना) तुम दोनोंको सोम सवनके उद्देश्यसे (अर्वाञ्चा) समीप आनेवाले बनाकर (उप इत् वहन्तु) यज्ञके समीप ही जरूर ले आयँ, (सुकृते सुदानवे) अच्छे कार्यकर्ता और दानी पुरुषके लिए (इषं पृञ्चन्ता) अन्नकी पूर्ति करते हुए तुम दोनों (बर्हिः आसीदतं) कुशासन पर बैठ जाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— अश्विदेव यज्ञके प्रसारक और शुभ कार्योंके रक्षक हैं। उन्होंने कण्वकी जैसी रक्षा की थी, वैसी ही वे हमारी रक्षा करें, क्योंकि हम भी अच्छे कर्म कर रहे हैं। मनुष्य यज्ञ मार्गका प्रचार करें और सदा शुभ कर्म करते रहें। तथा शुभ कर्म करनेवालोंकी रक्षा करें ॥ ५ ॥

अश्विदेव शत्रुका नाश करते हैं। उन्होंने अपने रथ पर बहुत धन रख कर सुदासको बहुत ही द्रव्य दिया था, उसी तरह समुद्रके अथवा स्वर्गसे धन लाकर वे हमें दें। मनुष्य शत्रुका नाश करें। अपने रथ पर बहुत धन और धान्य रखकर अपने अनुयायियोंको बाँटें। वे यह धन समुद्रके पारसे, पर्वतके शिखरपर जाकर अथवा किसी अन्य स्थानसे ले आवें और उसका प्रदान करें ॥ ६ ॥

अश्विदेव सत्यका पालन करते हैं। वे समीप हों या दूर रहें, परन्तु वे अपने रथ पर चढ कर सूर्योदयके समय ही हमारे पास आवें। मनुष्य सत्यका पालन करें। असत्य मार्गसे न जायें। नेता लोग कहीं भी हों, वे अपने वाहनोंपर बैठकर जहां कार्यकर्ता कार्य करते हों, वहां तडके ही पहुंच जायँ और उस कार्यका निरीक्षण करें ॥ ७ ॥

हे नेता अश्विदेवो ! तुम्हारे घोडे यज्ञ भूमिकी शोभा बढाते हैं। वे तुम्हें सोमरस निचोडनेके समय यज्ञके पास ले आवें। आनेपर तुम दोनों आसनोंपर बैठ जाओ। नेता लोग सदा जहां शुभ कार्य चलते हों वहां जायँ, उस कार्यके कर्ताओंकी हर प्रकारकी सहायता करें। शुभ कार्योंमें जायँ, वहां बैठें, उसका निरीक्षण करें ॥ ८ ॥

५६५ तेन॑ नासत्या ग॑तं॒ रथे॑न॒ सूर्य॑त्वचा ।
येन॒ शश्व॑दूहथु॑र्दा॒शुषे॒ वसु॒ मध्व॑: सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ ९ ॥

५६६ उ॒क्थेभि॑र॒र्वाग॑वसे पुरू॒वसू॑ अ॒र्कैश्च॒ नि ह्व॑यामहे ।
शश्व॒त् कण्वा॑नां॒ सद॑सि प्रि॒ये हि कं॒ सोमं॑ प॒पथु॑रश्विना ॥ १० ॥

[४८]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- उषाः । प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

५६७ स॒ह वा॒मेन॑ न उषो॒ व्यु॑च्छा दुहितर्दिवः ।
स॒ह द्यु॒म्नेन॑ बृह॒ता वि॑भावरि रा॒या दे॑वि॒ दास्व॑ती ॥ १ ॥

अर्थ— [५६५] (नासत्या) हे असत्यसे दूर रहनेवाले ! (येन सूर्यत्वचा रथेन) जिस सूर्यसम कान्तिवाले रथसे (दाशुषे शश्वत्) दानीके लिए हमेशा (वसु ऊहथुः) धन ढोकर तुम दोनों पहुँचा देते हो, (तेन) उसी रथपर बैठकर (मध्वः सोमस्य पीतये) मीठे सोमरसके पानके लिए (आगतं) तुम दोनों आओ ॥ ९ ॥

[५६६] हे (पुरूवसू अश्विना) बहुत धनवाले अश्विदेवो ! (उक्थेभिः अर्कैः च) स्तोत्रोंसे और अर्चनोंसे हम (अवसे) अपनी रक्षाके लिए (अर्वाक् नि ह्वयामहे) अपने सम्मुख तुम्हें बुला रहे हैं । (कण्वानां प्रिये सदसि हि) कण्वोंके प्रिय यज्ञ सभा मंडपमें तो (कं सोमं) आनन्ददायी सोमरसको (शश्वत् पपथुः) सदासे तुम दोनों पीते आये हो ॥ १० ॥

[४८]

[५६७] हे (दिवः दुहितः उषः) स्वर्गकन्ये उषा देवी ! (वामेन सह नः व्युच्छ) उत्तम धनके साथ हमारे लिये प्रकाशित होती रह । हे (विभावरि देवी) तेजस्विनि देवी ! (बृहता द्युम्नेन सह) बडे तेजस्वी धनके साथ प्रकाशित हो और हे उषा ! (दास्वती) दान देनेवाली तू (राया) बडे वैभवसे प्रकाशित हो ॥ १ ॥

भावार्थ— अश्विदेव असत्यका आश्रय कभी नहीं करते । अपने सूर्यके समान तेजस्वी रथपर बैठकर दाता लोगोंको धन देनेके लिये सदा जाते हैं । उसी रथपर बैठकर वे मधुर सोमरस पीनेके लिये हमारे पास आ जायँ । कभी असत्यका आश्रय न करो । अपने रथपर चढकर अपने अनुयायियोंको धनका प्रदान करो ॥ ९ ॥

अश्विदेवोंके पास बहुत ही धन रहता है । अपनी रक्षा करनेके लिए उनको हम स्तोत्रों द्वारा बुलाते हैं । कण्वोंके यज्ञमें ये सोमरस पीनेके लिये वारंवार आते हैं । नेता अपने पास बहुत धन रखे । उससे अपने अनुयायियोंका हित करे, अनुयायियोंको सुरक्षित रखनेके लिये प्रयत्न करे ॥ १० ॥

उषा स्वर्गसे अवतरित होती है । जब वह अवतरित होती है, तब वह दर्शनीय होती है । वह आते समय अपने साथ अनेक तरहके धन लाती है । उसी प्रकार राष्ट्रकी कन्यायें धनैश्वर्यसे सम्पन्न होकर दर्शनीय हों और प्रकाशित हों । उषा किसी भी देशकी स्त्रियोंके लिए आदर्श है ॥ १ ॥

*

५६८ अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्वि॒श्वसु॑विदो॒ भूरि॑ च्यवन्त॒ वस्त॑वे ।
उदी॑रय॒ प्रति॑ मा सू॒नृता॑ उष॒श् चोद॒ राधो॑ म॒घोना॑म् ॥ २ ॥

५६९ उ॒वासो॒षा उ॒च्छाच्च॒ नु दे॒वी जी॒रा रथा॑नाम् ।
ये अ॑स्या आ॒चर॑णेषु दध्रि॒रे स॑मु॒द्रे न श्र॑व॒स्यव॑ः ॥ ३ ॥

५७० उषो॒ ये ते॒ प्र यामे॑षु यु॒ञ्जते॒ मनो॑ दा॒नाय॑ सू॒रय॑ः ।
अत्राह॒ तत् कण्व॑ एषां॒ कण्व॑तमो॒ नाम॑ गृणाति नृ॒णाम् ॥ ४ ॥

५७१ आ घा॒ योषे॑व सू॒नर्यु॒षा या॑ति प्रभु॒ञ्जती॒ ।
ज॒रय॑न्ती॒ वृज॑नं प॒द्वदी॑यत॒ उत्पा॑तयति प॒क्षिण॑ः ॥ ५ ॥

अर्थ—[५६८] (अश्वावतीः गोमतीः) घोडोंवाली और गौवोंवाली तथा (विश्वसु-विदः) सब प्रकारके धन-को प्राप्त करानेवाली उषाएँ (वस्तवे भूरि च्यवन्त) प्रजाजनोंके निवासको हितकारी करनेके लिये बहुत प्रकारसे प्रकाशित हो चुकी हैं। (मा प्रति सूनृता उदीरय) ऐसी तू मेरे लिये हितकारी वाणी बोल । हे (उषः) उषा ! (मघोनां राधः चोद) धनवानोंके योग्य धन हमारे पास भेज ॥ २ ॥

[५६९] जो (उषाः देवी उवास) उषा देवी पहिले भी निवास कर चुकी थी (रथानां जीरा) वह रथोंको चलानेवाली उषा (च नु उच्छात्) और भी प्रकाशती रहे । (श्रवस्यवः समुद्रे न) धनकी इच्छा करनेवाले लोग जिस तरह समुद्रमें नौकाएं चलाते हैं, उस तरह (ये अस्याः आचरणेषु दध्रिरे) जो रथ इस उषाके आगमनके समय तैयार रखे रहते हैं उन रथोंको उषा चलाती है ॥ ३ ॥

[५७०] हे (उषः) उषा देवी ! (ते यामेषु) तेरे आगमनके समय (ये सूरयः) जो विद्वान् (मनः दानाय प्र युञ्जते) अपना मन धनादिका दान करनेमें लगा देते हैं, (एषां नृणां) इन मनुष्योंके (कण्वतमो नाम कण्वः) अत्यंत बुद्धिमान् करके जो प्रसिद्ध है वह कण्व ऋषि (अत्र अह गृणाति) यहां ही स्तोत्र गाता है ॥ ४ ॥

[५७१] (सू-नरी योषा इव) उत्तम गृहिणी स्त्रीके समान (प्रभुञ्जती उषाः) विशेष रीतिसे सबका पालन करनेवाली उषा (घ आ याति) आ रही है । वह (वृजनं जरयन्ती) बलवान् बना देती है (पद्वत् ईयते) पांव-वालोंको चलाती और (पक्षिणः उत्पातयति) पक्षियोंको उडाती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह उषा घोडों और गौवोंसे युक्त होती है । यह प्रकाशित होती हुई प्रजाओंका हित करती है, उनसे हितकारक वाणी बोलती है और गरीबोंकी हर तरहसे सहायता करती है, उसी प्रकार देशकी स्त्रियां भी गौवोंसे युक्त हों, प्रजाओंका हित करें, सभीसे मीठी वाणी बोलें और सबकी हर तरहसे सहायता करें ॥ २ ॥

जिस प्रकार धनको प्राप्त करनेकी इच्छावाले व्यापारसे धन कमानेके लिए अपनी नावें समुद्रमें चलाकर देश विदेशोंमें व्यापार करते हैं, उसी प्रकार यह उषा भी अपने रथ चलाती है । जो मनुष्य इस उषाके आदर्शोंके अनुकूल अपना आचरण बनाते हैं, वे इस उषाके प्रिय होकर समृद्ध एवं सम्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

उषाके आनेके समय जो मनुष्य धनका दान करते हैं, वे मनुष्योंमें अत्यन्त बुद्धिमान् होते हैं । जो मनुष्य सबेरे सबेरे उठकर अपना मन उत्तम कर्मोंमें लगाता है, उसका मन इधर उधर नहीं घूमता, इस प्रकार उसकी बुद्धि तीक्ष्ण होकर वह बुद्धिमान् होता है । इसीलिए उषःकालमें किया हुआ अध्ययन बडा फलप्रद होता है ॥ ४ ॥

उषा एक उत्तम गृहिणी है, वह सबको बलवान् बनाती है, वह सबका पालन करनेवाली है, उसके आते ही सारे मनुष्य अपने कामोंमें लग जाते हैं और पक्षी भी अपने आहारकी टोहमें अपने घोंसलोंसे उड जाते हैं ॥ ५ ॥

५७२ वि या सृजति सर्मनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥

५७३ एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥

५७४ विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज् ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ८ ॥

५७५ उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

अर्थ— [५७२] (या स-मनं विसृजति) जो मननशील पुरुषोंको कार्य करनेके लिये प्रेरित करती है, (अर्थिनः वि) धनेच्छुओंको जो प्रेरित करती है तथा (ओदती पदं न वेति) जीवन देनेवाली यह उषा एक स्थानपर स्थिर नहीं रहती । हे (वाजिनीवति) वैभवसंपन्न उषा देवी ! (ते व्युष्टौ) तेरे प्रकाशित होनेपर (पतिवांसः वयः) उडनेवाले पक्षी भी (न किः आसते) बैठे नहीं रहते ॥ ६ ॥

[५७३] (एषा) यह उषा (परावतः सूर्यस्य उदयनात् अधि) दूरसे सूर्यके उदयके पूर्व ही (अयुक्त) अपने रथोंको जोडती है । (इयं सुभगा उषा) यह उत्तम भाग्यशाली उषा (मानुषान् अभि) मनुष्योंके प्रति (शतं रथेभिः वि याति) सैंकडों रथोंसे जाती है ॥ ७ ॥

[५७४] (विश्वं जगत्) सब जगत् (अस्याः चक्षसे नानाम) इस उषाको देखते ही नमस्कार करता है क्योंकि यह (सू-नरी) उत्तम संचालन करनेवाली उषा (ज्योतिः कृणोति) प्रकाश करती है। (मघोनी दिवः दुहिता उषाः) ऐश्वर्यवाली स्वर्गीय कन्या यह उषा (स्रिधः द्वेषः अप अप उच्छत्) हिंसक शत्रुओंको दूर करती है ॥ ८ ॥

[५७५] हे (दिवः दुहितः उषः) स्वर्गकन्ये उषा देवि ! (चन्द्रेण भानुना आ भाहि) तू आल्हाददायक प्रकाशसे प्रकाशित हो । (दिविष्टिषु व्युच्छन्ती) दिनोंके इष्टीके समय अन्धकारको दूर करती हुई (अस्मभ्यं भूरि सौभगं आवहन्ती) हमारे लिये विपुल सौभाग्य ले आ ॥ ९ ॥

भावार्थ— मनन करनेवाले योगीजन भी इसी कालमें उठकर अपनी साधना करते हैं, तथा जो धनकी इच्छा करते हैं वे भी इसी कालमें उठकर परिश्रम करते हैं। यह सबको जीवन प्रदान करती हुई सर्वत्र चमकती है । इस कालमें प्राणप्रद हवा बहती है, जो सबको जीवन प्रदान करती है ! इसके प्रकाशित होनेपर उडनेवाले पक्षी भी बैठे नहीं रहते, वे भी घोंसले छोडकर उड जाते हैं ॥ ६ ॥

यह उषा सूर्यके उदयके पूर्व चमकती है अर्थात् प्रथम उषःकाल आता है, फिर सूर्य उदय होता है । अपनी सैंकडों किरणोंपर चढकर यह उषा मनुष्योंके पास जाती है और उन्हें भाग्यशाली बनाती है । इसलिए सारा संसार इसे देखते ही इसे प्रणाम करता है । यह लोगोंको अपने अपने कामोंमें लगाती है। इस प्रकार स्वर्ग या आकाशसे उतरनेवाली यह उषा हिंसक शत्रुओंको दूर करती है, अर्थात् यह वीर भी है ॥ ७–८ ॥

हे स्वर्ग कन्ये उषे ! तू अपने आल्हाददायक प्रकाशसे युक्त होकर इस भूमिपर उतर और अन्धकारको दूर कर ताकि हम सभी तेरे उपासक उत्तम सौभाग्य प्राप्त करें । जब सभी कामोंका संचालन करनेवाली यह उषा अन्धकार दूर करती है, तब संसारके प्राणियोंको जीवन मिलता है ॥ ९–१० ॥

५७६ विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥
५७७ उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥
५७८ विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतये ऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२ ॥
५७९ यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३ ॥

अर्थ—[५७६] हे (सू-नरि) उत्तम नेतृत्व करनेवाली उषा देवी ! (यत् वि उच्छसि) जब तू अन्धकार दूर करती है, तब (त्वे हि विश्वस्य प्राणनं जीवनं) सब विश्वका प्राण और जीवन तेरे अन्दर ही रहता है। हे (चित्रा-मघे विभा-वरि) विलक्षण धनवाली तेजस्विनी उषा देवि ! (सा) वह तू (बृहता रथेन) अपने बडे रथसे आ और (नः हवं श्रुधि) हमारी प्रार्थनाका श्रवण कर ॥ १० ॥

[५७७] हे (उषः) उषा ! (यः मानुषे जने चित्रः) जो मानवी लोगोंमें विलक्षण अन्नधन है, (वाजं वंस्व हि) उस अन्नधनको तू स्वीकार कर, यज्ञमें दिये हुए अन्नभागको स्वीकार कर। तथा (ये वह्नयः त्वा गृणन्ति) जो याजक तेरी स्तुति गाते हैं, (तेन सुकृतः अध्वरान् उप वह) उनसे संतुष्ट होकर पुण्य कर्म करनेवालोंको यज्ञोंके समीप ले जा ॥ ११ ॥

[५७८] हे (उषः) उषा ! (त्वं) तू (सोमपीतये) सोमपानके लिये (विश्वान् देवान् अन्तरिक्षात् आ वह) सब देवोंको अन्तरिक्षसे ले आ। हे (उषः) उषा ! (सा) वह तू (गोमत् अश्वावत् उक्थ्यं सुवीर्यं वाजं) गौओं और घोडोंसे समृद्ध प्रशंसनीय वीर्य बढानेवाला अन्न बल तथा उत्तम वीर्य (अस्मासु धाः) हमारे अंदर स्थापित कर ॥ १२ ॥

[५७९] (यस्याः रुशन्तः) जिस उषाकी शत्रुनाशक तेजस्वी (भद्राः अर्चयः) कल्याणकारी किरणें (प्रति अदृक्षत) दीख रही हैं। (सा उषाः) वह उषा (नः) हमें (विश्ववारं सुपेशसं सुग्म्यं रयिं) सबके स्वीकार करने योग्य सुंदर और सुखकारक धन (ददातु) देवे ॥ १३ ॥

भावार्थ— हे उषे ! मानवोंके पास जो उत्तम और विलक्षण धन हो, वह बलवर्धक अन्न आदि धन हमें प्रदान कर, जो स्तोत्रपाठक तेरी स्तुति करते हैं, उस स्तुतिको सुननेके लिए सत्कर्म करनेवालोंके पास तू जा। इस मंत्रका बोध यह है कि उषा लोगोंको यज्ञशालामें पहुंचाती है, क्योंकि उषःकालमें याजक यज्ञका कार्य शुरू करते हैं। घर घरमें तरुण भी हवन करें ॥ ११ ॥

हे उषे ! तू गौओंवाला तथा घोडोंवाला प्रशंसनीय अन्न जो उत्तम वीर्य शरीरमें उत्पन्न करता है, वैसा अन्न हमें दे। वैसा बल दे। गौवें दूध दही मक्खन घी आदि पदार्थ देती हैं। घोडे बाहरके प्रदेशसे अन्न लाते हैं। इन पदार्थोंको खानेसे उत्तम सन्तानका निर्माण करनेवाला वीर्य शरीरमें उत्पन्न होता है। ऐसा वीर्य हमारे शरीरमें बढे और हमारी सन्तान उत्तम बलवाली हो ॥ १२ ॥

जिस उषाकी किरणें सुन्दर और कल्याण करनेवाली हैं, वह उषा मनुष्योंके द्वारा स्वीकार करने योग्य सुन्दर और सुखदायी धन हमें देवे ॥ १३ ॥

५८० ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥
५८१ उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥ १५ ॥
५८२ सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ ॥

[४९]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- उषाः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

५८३ उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥

अर्थ— [५८०] हे (महि उषः) श्रेष्ठ उषा! (त्वां ये चित् हि) तुम्हारी जो कोई (पूर्वे ऋषयः) प्राचीन ऋषि (ऊतये अवसे जुहूरे) संरक्षण और अन्न प्राप्तिके लिये प्रार्थना करते थे, (सा) वह तू (राधसा शुक्रेन शोचिषा) सिद्धि, वीर्य और तेजसे युक्त होकर (नः स्तोमान् अभि गृणीहि) हमारे स्तोत्रोंकी प्रशंसा कर ॥ १४ ॥

[५८१] हे (उषः) उषा ! (यत् अद्य) जब तूने आज (भानुना) अपने प्रकाशसे (दिवः द्वारौ ऋणवः) द्युलोकके दोनों द्वार खोल दिये हैं, (नः अवृकं पृथु छर्दिः) तब हमें अहिंसक विस्तीर्ण तेजस्वी घर रहनेके लिये (प्र यच्छतात्) दे । हे देवि उषा ! तथा (गोमतीः इषः प्र) गोदुग्धादि युक्त अन्न हमें प्राप्त हों ॥ १५ ॥

[५८२] हे (उषः) उषा ! (बृहता विश्वपेशसा राया) बडे अत्यंत सुंदर धनसे (नः सं मिमिक्ष्व) हमें संयुक्त कर, तथा (इळाभिः सं आ) गौओंसे युक्त कर । हे (वाजिनीवति महि उषः) अन्नवाली श्रेष्ठ उषा! (विश्व तुरा द्युम्नेन सं) शत्रुनाशक तेजस्वी धनसे हमें युक्त कर । तथा (वाजैः सं) अन्नों और बलोंसे हमें युक्त कर ॥ १६ ॥

[४९]

[५८३] हे (उषः) उषा ! (दिवः रोचनात् चित् अधि) द्युलोकके तेजस्वी स्थानसे (भद्रेभिः आ गहि) कल्याण करनेवाले मार्गोंसे इधर आ (अरुण-प्सवः) अरुण वर्णके घोडे (त्वा सोमिनो गृहं) तुझे सोमयाजकके घर (उप वहन्तु) पहुंचा देवें ॥ १ ॥

भावार्थ— हे श्रेष्ठ उषा देवी ! प्राचीन श्रेष्ठ ऋषि अपनी सुरक्षाके लिए तुम्हारी प्रार्थना करते रहे, वह तू उत्तम तेजस्वी सिद्धिके साथ हमारे यज्ञोंके सम्बन्धका उत्तम वर्णन कर । हमारे शुभकर्मोंकी प्रशंसा कर । जिससे हमें अधिक उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा मिले ॥ १४ ॥

हे उषा ! आज तूने अपने प्रकाशसे द्युलोकके दोनों द्वार खोल दिए हैं, अब हिंसा जहां नहीं होती, ऐसे विशाल घर और गौवोंके साथ पर्याप्त अन्न हमें प्रदान कर । तरुण स्त्री घरमें प्रातःकाल उठे, घरमें प्रकाश करे, घरके द्वार खोले, हिंसक पशुओंको दूर हटाकर अपना घर सुरक्षित रखे । गौओंका दोहन करे, पुष्टिकारक अन्न तैय्यार करे ॥ १५ ॥

हे उषा ! विशाल और सबसे सुन्दर धनसे, गौओंसे, शत्रुनाशक तेजस्वी धनसे और बलवर्धक अन्नोंसे हमें युक्त कर। इतने पदार्थ हमें चाहिए ॥ १६ ॥

हे उषा ! द्युलोकके तेजस्वी स्थानसे हमारे पास प्रतिदिन आ और हमारे घरोंको प्रकाशित कर ॥ १ ॥

५८४ सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥
५८५ वयश्चित् ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उष प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥
५८६ व्युच्छन्तीहि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥

[५०]

(ऋषिः– प्रस्कण्वः काण्वः । देवता– सूर्यः (११–१३ रोगघ्न्य उपनिषदः, १३ अन्त्योऽर्धर्चः द्विषद्द्वेषघ्न) । छन्दः– गायत्री, १०–१३ अनुष्टुप् ।)

५८७ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १ ॥
५८८ अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ २ ॥

अर्थ— [५८४] हे (उषः) उषा ! (त्वं यं सुपेशसं सुखं रथं) तू जिस सुन्दर सुखदायी रथपर (अध्यावस्थाः) बैठी है । हे (दिवः दुहितः) स्वर्गीय कन्ये ! (तेन) उस रथसे (अद्य सुश्रवसं जनं) आज उत्तम अन्नवाले मनुष्यका (प्र अव) विशेष रक्षण कर ॥ २ ॥

[५८५] हे (अर्जुनि उषः) गौरवर्णवाली उषा ! (ते ऋतून् अनु) तुम्हारे आगमनके अनुसार (द्विपत् चतुष्पत्) द्विपाद मनुष्य, चतुष्पाद पशु और (पतत्रिणः वयः चित्) उडनेवाले पक्षी भी (दिवः अन्तेभ्यः परि) द्युलोकके अन्ततक तेरा स्वागत करनेके लिये (प्र–आरन्) उडते हैं ॥ ३ ॥

[५८६] हे (उषः) उषा देवी ! (व्युच्छन्ती) अन्धकारको दूर करनेवाली तू (रश्मिभिः विश्वं रोचनं) अपने किरणोंसे सब विश्वको तेजस्वी करके (आ भासि) प्रकाशित करती है । (तां त्वां) उस तुझको (वसूयवः कण्वाः) धनकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी कण्व ऋषि (अहूषत) बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[४३]

[५८७] (विश्वाय दृशे) सम्पूर्ण जगत् सूर्यको देखे, इसलिए (त्यं जातवेदसं देवं सूर्यं) उस सर्वज्ञ और तेजस्वी सूर्यको (केतवः उत् वहन्ति) उसकी किरणें ऊपर उठाती हैं ॥ १ ॥

[५८८] (विश्वचक्षसे सूराय) सर्वद्रष्टा सूर्यके उदय होने पर (अक्तुभिः) रात्रियोंके साथ (नक्षत्रा अप यन्ति) नक्षत्र उसी तरह भाग जाते हैं (तायवः यथा) जिस प्रकार सूर्यके दर्शन होते ही चोर भाग जाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे उषा ! तू उत्तम और सुन्दर रीतिसे बनाये गए रथपर बैठ और उत्तम तथा यशस्वी अन्नका दान करनेवाले मनुष्यका संरक्षण कर ॥ २ ॥

हे उषा! तुम्हारे आते ही दो पांववाले, चार पांववाले तथा उडनेवाले सभी प्राणी उठते हैं और द्युलोकके अन्ततक पक्षी गण संचार करते हैं । चारों ओर आनन्द ही आनन्द अनुभवमें आने लगता है ॥ ३ ॥

हे उषा ! तू प्रकाशित हो, अन्धेरा दूर कर, अपने किरणोंसे सब विश्वको प्रकाशित कर । कण्वगोत्री लोग अथवा ज्ञानी तुम्हारी प्रशंसा गा रहे हैं । अतः हमें सुखी कर और हमारा संरक्षण कर ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करनेके लिए वह सर्वज्ञ और प्रत्येक प्राणियोंके कर्मोंको देखनेवाला सूर्य उदय होता है और उसके उदय होनेके साथ ही रात्री और तारे उसी तरह गायब हो जाते हैं, जिस तरह सुबह होते ही चोर ॥ १–२ ॥

५८९ अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ २ ॥
५९० तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ४ ॥
५९१ प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ ५ ॥
५९२ येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ६ ॥
५९३ वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ ७ ॥
५९४ सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ८ ॥
५९५ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥
५९६ उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

अर्थ— [५८९] (अग्नयः यथा भ्राजन्तः) अग्नियोंके समान जगमगानेवाली (अस्य केतवः रश्मयः) इस सूर्यके आगमनको जतानेवाली किरणें (जनान् अदृश्रं) मनुष्योंको दिखाई देने लगी हैं ॥ ३ ॥

[५९०] हे (सूर्य) सूर्य ! (विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृत्) सबको देखनेवाला तथा प्रकाश करनेवाला तू (तरणिः) महावेगसे जानेवाला है । तू ही (विश्वं रोचनं आ भासि) सारे आकाशको प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

[५९१] (स्वः दृशे) सबको सूर्यका दर्शन हो, इसलिए हे सूर्य ! तू (देवानां प्रत्यङ्) देवोंके सामने और (विश्वं प्रत्यङ्) सारे संसारके सामने (उत् एषि) उदय होता है ॥ ५ ॥

[५९२] हे (पावक वरुण) पवित्र करनेवाले स्वीकरणीय देव ! (येन चक्षसा) जिस दृष्टिसे (त्वं) तू (भुरण्यन्तं जनान् पश्यसि) अपने अपने कामोंमें व्यस्त लोगोंको देखता है, उस कृपादृष्टिको (अनु) हमारी ओर भी कर ॥ ६ ॥

[५९३] हे (सूर्य) सूर्य ! (जन्मानि पश्यन्) सब प्राणियोंको देखता हुआ तू (अक्तुभिः अहा मिमानः) रात्रियोंसे दिनोंका मापन करता हुआ (पृथु रजः द्यां एषि) विस्तृत अन्तरिक्ष और द्युलोकमें संचार करता है ॥ ७ ॥

[५९४] हे (विचक्षण देव सूर्य) सर्वद्रष्टा दिव्यगुणयुक्त सूर्य ! (शोचिष्केशं त्वा) तेजस्वी ज्वालारूपी बालोंवाले तुझे (सप्त हरित) सात हरणशील घोडे (रथे वहन्ति) रथ पर बैठाकर ले जाते हैं ॥ ८ ॥

[५९५] (शुंध्युवः सूरः नप्त्यः) पवित्र करनेवाला, बुद्धिमान् तथा कभी न गिरनेवाला सूर्य (रथस्य सप्त अयुक्त) अपने रथमें सात घोडे जोडता है और फिर (ताभिः स्वयुक्तिभिः याति) उन स्वयं जुड जानेवाले घोडोंसे वह सर्वत्र जाता है ॥ ९ ॥

[५९६] (तमसः परि) अन्धकारसे ऊपर (उत्तरं ज्योतिः पश्यन्तः) श्रेष्ठतर ज्योतिको देखते हुए (वयं) हमने (उत्तमं ज्योतिः) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्योति और (देवत्रा देवं) देवोंमें भी सर्वश्रेष्ठ देव ऐसे (सूर्य उत् अगन्म) सूर्यको प्राप्त किया ॥ १० ॥

भावार्थ— इस सूर्यकी किरणें अग्निकी तरह जगमगाती हैं, जो सूर्यके आगमनकी पूर्व सूचना देती हैं। इन्हीं किरणोंसे वह सूर्य सब संसारके कार्योंको देखता हुआ चलता है और महावेगसे जाता है तथा अपने तेजसे संपूर्ण आकाशको प्रकाशित करता है ॥ ३–४ ॥

यह सूर्य देवोंके, मनुष्योंके और सारे संसारके सामने उदय होता हुआ अपनी दृष्टिसे सभी लोगोंके कामोंको देखता चलता है और अपनी कृपादृष्टि सभी मनुष्योंपर करता चलता है ॥ ५–६ ॥

सब प्राणियोंको देखता हुआ यह सूर्य रात और दिनका निर्माण करता हुआ विशाल अन्तरिक्षमें अपने प्रकाशको फैलाता हुआ द्युलोकमें संचार करता है । इस सूर्यके रथमें सात रंगके घोडे जुडे हुए होते हैं । सात रंगकी किरणें ही इस सूर्यके घोडे हैं, जिनपर चढकर यह सूर्य विचरता है ॥ ७–८ ॥

सूर्यकी किरणें पवित्र करनेवाली हैं, अर्थात् जहां ये सूर्यकी किरणें पडती हैं, वहां की जगह पवित्र हो जाती है । यह सूर्य देवोंमें सर्वश्रेष्ठ देव और अत्यन्त श्रेष्ठ ज्योति है, यह अन्धकारसे ऊपर उठकर सर्वत्र प्रकाश करता है ॥ ९–१० ॥

५९७ उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥
५९८ शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥
५९९ उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् ॥१३॥

[५१]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; १४, १५ त्रिष्टुप् ।)

६०० अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मिय- मिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥

अर्थ— [५९७] हे (मित्रमह सूर्य) हितकारी तेजवाले सूर्य ! (अद्य उद्यन्) आज उदय होते हुए तथा (उत्तरां दिवं आरोहन्) उत्तर दिशामें चढते हुए तू (मम हृद्रोगं हरिमाणं च नाशय) मेरे हृदयके रोग अर्थात् क्षय आदि तथा पीलिया आदि रोगोंको नष्ट कर ॥ ११ ॥

[५९८] (मे हरिमाणं) अपने हरे रंगवाले रोगको हम (शुकेषु रोपणाकासु) तोतों और वृक्षोंमें (दध्मसि) रखते हैं, (अथ) और (मे हरिमाणं) अपने हरे रंगवाले रोगको हम (हारिद्रवेषु नि दध्मसि) हरे रंगवाले वनस्पतियोंमें स्थापित करते हैं ॥ १२ ॥

[५९९] (द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्) द्वेष करनेवाले शत्रुओंको हमारे अधिकारमें करता हुआ (आदित्यः) यह सूर्य (विश्वेन सहसा सह) अपने सम्पूर्ण तेजके साथ (उत् अगात्) उदय हो गया है । उसकी कृपासे (अहं द्विषते मा रधं) मैं कभी शत्रुओंके अधिकारमें न जाऊं ॥ १३ ॥

[५१]

[६००] हे मनुष्यो ! (मेषं, पुरुहूतं) स्पर्धाके योग्य, बहुतोंसे बुलाये गए, (ऋग्मियं वस्वो अर्णवं) ऋचाओंसे प्रशंसनीय, धनके समुद्र (त्यं इन्द्रं अभि) उस इन्द्रको (गीर्भिः मदत) स्तुतियोंसे आनन्दित करो, (यस्य मानुषाः) जिसके गुप्तचर (द्यावः न) किरणोंके समान सर्वत्र (विचरन्ति) विचरते हैं, ऐसे (मंहिष्ठं विप्रं) महान् ज्ञानी इन्द्रका (अभि अर्चत) सत्कार करो ॥ १ ॥

१ मेषः— स्पर्धाके योग्य 'मिष स्पर्धायां'।
२ ऋग्-मियः— ऋचाओंसे प्रशंसनीय।
३ यस्य मानुषाः विचरन्ति— इस इन्द्रके गुप्तचर सब जगह घूमते हैं ।

भावार्थ— इस सूर्यका तेज बहुत हितकारी है, इसके प्रकाशमें रोगोंको दूर करनेकी शक्ति है । इसीलिए बालसूर्यमें नंगे बदन बैठनेका विधान वैद्यकशास्त्रोंमें है । जो रोज सूर्यप्रकाशका सेवन करता है, उसे कभी भी क्षयरोग और पीलिया नहीं हो सकता । इसके अलावा सूर्य-प्रकाश सेवनसे हृदयके सारे रोग मिट जाते हैं । इस प्रकार सूर्यप्रकाश अनेक रोगोंकी अत्युत्तम औषधि है ॥ ११ ॥

वह रोग, जिससे रोगीका शरीर हरा हरा सा हो जाता है, तोते पेड आदि हरी वनस्पतियोंमें ही रहे, अर्थात् वे मनुष्योंको कष्ट न दें । इस प्रकार मनुष्य स्वस्थ होकर अपनेसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंपर अधिकार करता रहे, वह कभी भी अपने शत्रुओंके अधिकारमें न जावे । ये शत्रु रोगोंके जन्तु हैं, जो मौका पाकर मनुष्यको धर दबाते हैं । पर जिसपर सूर्यकी दृष्टि रहती है अर्थात् जो सूर्यकी किरणोंका उत्तम उपयोग करता है, वह कभी भी इन रोगजन्तुओंके अधिकारमें नहीं जाता ॥ १२-१३ ॥

यह इन्द्र विशेष ज्ञानी है । ऋचाओंका यह अध्ययन करता है और ऋचाओं द्वारा इसका वर्णन किया जाता है । इसके पास धनका समुद्र भरा पडा है । यह सर्वद्रष्टा है । इसके गुप्तचर सब जगह घूमते रहते हैं । इन्हीं गुणोंसे युक्त देशके राजाको होना चाहिए । राजाके गुप्तचर राष्ट्रके चप्पे चप्पेमें घूमते रहें ॥ १ ॥

६०१ अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयो ऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २ ॥

६०२ त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपो- तात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद् विमदायावहो वस्वा- जावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३ ॥

६०३ त्वमपामपिधानावृणोरपा- ऽधारयः पर्वते दानुमद् वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहि- मादित् सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४ ॥

अर्थ— [६०१] (ऊतयः दक्षासः ऋभवः) रक्षा करनेवाले, वृद्धिको प्राप्त हुए मरुतोंने (सु-अभिष्टिं) इच्छित पदार्थ देनेवाले, (अन्तरिक्ष-प्रां) अन्तरिक्षको [अपने तेजसे] पूर्ण करनेवाले (तविषीभिः आवृतं) बलसे युक्त (मदच्युतं) [शत्रुके] घमण्डको चूर करनेवाले (शतक्रतुं) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले (ईं इन्द्रं) इस इन्द्रकी (अभि अवन्वन्) सहायता की और (जवनी सूनृता) बलसे युक्त स्तुतियोंने भी (आरुहत्) सहायता की ॥ २ ॥

[६०२] हे इन्द्र ! (त्वं) तूने (अंगिरोभ्यः) अंगिरा ऋषियोंके लिए (गोत्रं अप अवृणोः) गौ समूहको बाहर निकाला, (उत) और (शतदुरेषु) सैंकडों द्वारवाले भवनमें कैद किए गए (अत्रये) अत्रि ऋषिके लिए (गातुविद्) मार्ग ढूंढ निकाला, (विमदाय) विमद ऋषिके लिए (ससेन चित् वसु) अन्नसे युक्त धनको (अवहः) पहुंचाया, और (अद्रिं नर्तयन्) वज्रको नचाते हुए (आजौ वावसानस्य) संग्राममें स्थित लोगोंकी रक्षा की ॥ ३ ॥

१ त्वं अंगिरोभ्यः गोत्रं अप वृणोः— तूने अंगिराओंके लिए गौसमूहको बाहर निकाला ।

२ शतदुरेषु अत्रये गातुविद्— सैंकडों द्वारवाले भवनमें कैद किए गए अत्रिके लिए मार्गको ढूंढा ।

३ विमदाय ससेन चित् वसु अवहः — विमद ऋषिके लिए अन्नयुक्त धनको पहुंचाया ।

[६०३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तूने (अपां अपिधाना) जलोंको रोकनेवाले मेघोंको (अप अवृणोः) बरसाया, तथा (पर्वते) पर्वतमें रहनेवाले (दानुमत्) वृत्रके (वसु) धनको (अधारयः) धारण किया, तथा (यत्) जब (शवसा वृत्रं अहिं अवधीः) बलसे वृत्रको और अहिको मारा (आत् इत्) उसके अनन्तर ही (दृशे) देखनेके लिए (सूर्यं दिवि आरोहयः) सूर्यको द्युलोकमें चढाया ॥ ४ ॥

१ यत् शवसा वृत्रं अहिं अवधीः यत् इत् दृशे सूर्यं दिवि आरोहयः — जब बलसे आच्छादन करनेवाले अहिको मारा, उसके बाद ही देखनेके लिए सूर्यको द्युलोकमें चढाया अर्थात् जब बादल हट गए तो सूर्य चमका ।

भावार्थ— रक्षा करनेवाले, वृद्धिको प्राप्त हुए मरुतोंने अन्तरिक्षको अपने यशसे पूर्ण करनेवाले, शत्रुके घमण्डको चूर करनेवाले, इच्छित पदार्थ देनेवाले बलसे युक्त इन्द्रकी सहायता की । मरुत राष्ट्रके सैनिक हैं और इन्द्र उनका राजा है । सैनिकोंका कर्तव्य है कि वे राजाकी हर तरहसे सहायता करें । सैनिक भी बडे निर्भीक और शत्रुओंके घमण्डको चूर करनेवाले हों ॥ २ ॥

अंगरसकी विद्या जाननेवालोंकी इन्द्रियें पुष्ट होती हैं । इन्द्रने अंगिराओंके लिए गौओंका मार्ग खोल दिया । अत्रि ऋषि अनेकों द्वारवाले किलेमें बंद था, उस किलेमेंसे उसे बाहर निकाला, वि-मद अर्थात् अहंकार रहित मनुष्यको अनेक तरहसे समृद्ध किया । इन्द्रके बहाने ये सब राजाके कर्तव्य वेदने बताये हैं । इसी प्रकार राजा भी गौओंका पालक, ऋषियोंका रक्षक और सज्जनोंका पालक हो ॥ ३ ॥

इन्द्रने जलोंको रोककर रखनेवाले मेघोंको बरसाया तथा पर्वतोंकी चोटियों पर बैठकर जलरूपी धनको रोककर रखनेवाले आवरणशील मेघोंको नीचे गिराया । जब इन्द्रने शक्तिसे वृत्रको मारा, इसके बाद सूर्यने अपना प्रकाश फैलाया । इस मंत्रमें मेघका वर्णन है, जो सारे आकाशमें छा जाता है, पर बरसता नहीं । इन्द्र बिजली है, जो मेघोंको बरसाकर आकाश साफ करता है और सूर्यको चमकाता है ॥ ४ ॥

६०४ त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ५ ॥

६०५ त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथाऽरन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ६ ॥

अर्थ— [६०४] (ये स्वधाभिः शुप्तौ अधि अजुह्वत) जो अन्न आदिका अपने मुंहमें ही हवन करते थे, उन (मायिनः, मायावियोंको (त्वं) तूने (मायाभिः) मायाओंसे ही (अप अधमः) मारा, हे (नृमणः) मनुष्योंसे प्रशंसनीय इन्द्र ! (त्वं) तूने (पिप्रोः) पिप्र नामक असुरके (पुरः) नगरोंको (प्र अरुजः) तोडा तथा (दस्युहत्येषु) संग्रामोंमें (ऋजिश्वानं) ऋजिश्वा ऋषिकी (प्र आविथ) रक्षा की ॥ ५ ॥

१ त्वं पिप्रोः पुरः प्र अरुजः, दस्युहत्येषु ऋजिश्वानं आविथ— तूने पिप्र असुरके नगरोंको तोडा और युद्धोंमें ऋजिश्वकी रक्षा की ।

२ पिप्र— जो केवल अपना ही पेट भरते हैं, असुर ।

[६०५] हे इन्द्र ! (त्वं) तूने (शुष्णहत्येषु) शुष्ण असुरके मारे जानेवाले संग्राममें (कुत्सं आ विथ) कुत्स ऋषिकी रक्षा की, (अतिथिग्वाय शम्बरं अरन्धयः) अतिथिग्व ऋषिके लिए शम्बरासुरको मारा, तथा (महान्तं अर्बुदं चित्) महान् शक्तिशाली अर्बुदको भी (पदा निक्रमीः) पैरसे कुचल डाला, तू (सनात् एव दस्युहत्याय जज्ञिषे) प्राचीन कालसे ही असुरोंको मारनेके लिए उत्पन्न हुआ है ॥ ६ ॥

१ त्वं शुष्णहत्येषु कुत्सं आविथ— तूने युद्धोंमें कुत्सकी रक्षा की ।

२ अतिथिग्वाय शम्बरं अरन्धयः— अतिथिग्वके लिए शम्बरको मारा ।

३ महान्तं अर्बुदं चित् पदा निक्रमीः— महान् अर्बुदको भी पैरसे कुचल डाला ।

४ सनात् एव दस्युहत्याय जज्ञिषे— प्राचीन कालसे ही तू असुरोंको मारनेके लिए पैदा हुआ है ।

शुष्ण– सोखनेवाला; कुत्स– कुत्सितं सारयति– बुराइयोंको हटानेवाला; आतिथिग्व– अतिथियोंका सत्कार करनेवाला ।

भावार्थ — जो स्वयं अपने मुंहमें ही अन्नोंका हवन करते थे, अर्थात् अन्नोंका उपभोग स्वयं करते थे, ऐसे अपना ही पेट भरनेवाले तथा छलकपटका मार्ग अपनानेवाले असुरोंको छलकपटसे ही मारा और ऋजु अर्थात् सरल मार्गसे चलनेवालेकी रक्षा की। इसी प्रकार राजा भी स्वार्थी तथा केवल अपना ही फायदा देखनेवाले दुष्टोंको छलकपटसे ही मारे । छली और कपटीसे उसी तरहका व्यवहार करना चाहिए और इस प्रकार उनका नाश करके सत्य मार्गगामी सज्जनोंकी रक्षा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

प्रजाको निचोडने अर्थात् पीडा देनेवाले दुष्टको मारकर इन्द्रने बुराइयोंको दूर करनेवाले सज्जन पुरुषकी रक्षा की, इसी प्रकार अतिथिग्वके लिए शम्बरासुरको मारा, अर्बुदको तो इन्द्रने पैरोंसे कुचल डाला, इस प्रकार यह इन्द्र राष्ट्रसे द्वेष करनेवाले असुरोंको मारता रहता है, क्योंकि यह इसी कार्यके लिए उत्पन्न हुआ है । इसी प्रकार राजाको भी चाहिए कि वह राष्ट्रसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंको नष्ट करे, क्योंकि प्रजायें किसीको राजगद्दी पर इसीलिए बिठाती हैं कि वह उनकी हर तरहसे रक्षा करे ॥ ६ ॥

६०६ त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥
६०७ वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८ ॥
६०८ अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रता नाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥ ९ ॥

अर्थ— [६०६] हे इन्द्र ! (त्वे) तुझमें (विश्वा तविषी) सम्पूर्ण बल (सध्र्यक् हिता) एक साथ स्थित हैं, (तव राधः) तेरा धन (सोमपीथाय हर्षते) सोम पीनेवालेको हर्षित करता है, (चिकिते) ज्ञानी मनुष्यकी रक्षाके लिए (वज्रः) वज्रको (तव बाह्वोः हितः) तेरी भुजाओंमें रखा गया है, अतः (शत्रोः) शत्रुके (विश्वानि वृष्ण्या) सम्पूर्ण बलोंको (अव वृश्च) काट डाल ॥ ७ ॥

१ त्वे विश्वा तविषी सध्र्यक् हिता— इस इन्द्रमें सब बल एक साथ स्थित हैं।

२ तव बाह्वोः वज्रः हितः— तेरी भुजाओंमें वज्र रखा गया है ।

३ शत्रोः विश्वानि वृष्ण्या अव वृश्च— शत्रुके सब बलोंको नष्ट कर ।

[६०७] हे इन्द्र ! तू (आर्यान् वि जानीहि) आर्योंको जान (ये च दस्यवः) और जो राक्षस हैं, उन्हें भी जान, तथा (अव्रतान् शासत्) व्रतहीनों पर शासन करते हुए उन्हें (बर्हिष्मते रन्धय) यज्ञकर्ताओंके लिए नष्ट कर, हे (शाकी) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! (यजमानस्य चोदिता भव) यजमानका प्रेरक हो, (ते ता विश्वा इत्) तेरे वे सम्पूर्ण कर्म (सधमादेषु चाकन) यज्ञोंमें प्रशंसित हों ऐसा मैं चाहता हूँ ॥ ८ ॥

१ अव्रतान् शासत् बर्हिष्मते रन्धय— व्रतहीनों पर शासन करते हुए उन्हें यज्ञकर्ताओंके लिए मार ।

२ आर्यान् विजानीहि— आर्योंके संरक्षणको ध्यानमें रख ।

[६०८] (इन्द्रः) यह इन्द्र (अनुव्रताय) व्रत करनेवालोंके लिए (अपव्रतान् रन्धयन्) व्रतहीनोंको मारते हुए तथा (आभूभिः) मातृभूमिके भक्तोंके द्वारा (अनाभुवः श्नथयन्) देशद्रोहियोंको विनष्ट करते हुए वर्तमान है ऐसे (वृद्धस्य चित्) बढे हुए इन्द्रकी (स्तवानः) स्तुति करते हुए (वम्रः) वम्र ऋषिने (वर्धतः) बढते हुए तथा (द्यां इनक्षतः) द्युलोकको ढकनेवाले असुरोंको (सन्दिहः वि जघान) काटा और मार डाला॥ ९ ॥

१ इन्द्रः अनुव्रताय अपव्रतान् रन्धयन्— यह इन्द्र व्रत करनेवालोंके लिए व्रतहीनोंका नाश करता है।

२ आभूभिः अनाभुवः श्नथयन्— मातृभूमिके भक्तोंसे देशसे द्रोह करनेवालोंको नष्ट किया ।

भावार्थ— इस इन्द्रमें सभी तरहके बल एकत्रित हैं। इसका धन यज्ञ-करनेवालेको मिलता है । इसका वज्र ज्ञानियोंकी रक्षा करता है, देशका राजा भी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक बलोंसे युक्त हो। उसका शस्त्र सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंके नाशके लिए ही हो, अर्थात् उसका शस्त्र कभी सज्जनोंको पीडित और दुष्टोंकी रक्षा न करे । इन शस्त्रोंसे वह अपने शत्रुओंकी सम्पूर्ण शक्तिको समाप्त कर दे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! हे राजन् ! तू श्रेष्ठ पुरुषोंको अच्छी तरह पहचान ले, और जो दुष्ट हैं, उन्हें भी अच्छी तरह पहचान ले । और ऐसे व्रतहीन या उत्तम कर्म न करनेवाले मनुष्योंको संगतिकरण, दान, देवपूजा आदि उत्तम कर्म करनेवालोंके लिए नष्ट कर अर्थात् ऐसा प्रबन्ध कर कि व्रतहीन मनुष्य उत्तम कर्म करनेवालोंको दुःख न दे सकें । उन मनुष्योंको अपने शासनमें रख । इस प्रकार तेरे राज्यमें प्रजाओंको उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा मिले और वे प्रजायें तेरे हर कामोंकी हृदयसे प्रशंसा करें ॥ ८ ॥

यह इन्द्र मातृभूमिके भक्तों द्वारा मातृभूमिके विरोधकोंका नाश करवाता है । अनुकूल कर्म करनेवालोंके हितके लिए व्रतहीन कुकर्मियोंका नाश करता है । इस इन्द्रके गुणोंको अपने अन्दर धारण करके मनुष्य अपने शत्रुओंका समूल नाश कर सकता है ॥ ९ ॥

६०९ तक्षद् यत् त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूयमाणमवहन्नभि श्रवः ॥ १० ॥
६१० मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद् वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः ॥ ११ ॥
६११ आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥ १२ ॥

अर्थ— [६०९] हे इन्द्र ! (यत्) जब (उशना) उशना ऋषिने अपने (सहसा) बलसे (ते सहः) तेरे बलको (तक्षद्) तीक्ष्ण किया, तो तेरे (शवः) बलने (मज्मना) अपनी तीक्ष्णतासे (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोकको (वि बाधते) डराया, हे (नृमणः) मनुष्योंसे स्तुत्य इन्द्र ! (आ पूयमाणं त्वा) अन्नादिसे पूर्ण तुझे (मनोयुजः वातस्य) संकल्प मात्रसे जुड जानेवाले तथा वायु जैसे वेगवाले घोडे, (श्रवः) यशकी ओर (अभि आ वहन्) ले आये ॥ १० ॥

१ मज्मना रोदसी वि बाधते— इन्द्रके बलसे द्युलोक और पृथिवी लोक डरते हैं ।

[६१०] (इन्द्रः) इन्द्र (यत्) जब (उशने काव्ये) सुन्दर स्तुतिके (सचा मन्दिष्ट) साथ साथ आनन्दित होता है, तब (वंकू वंकूतर अधि) अत्यन्त कुटिल शत्रु पर भी (तिष्ठति) शासन करता है, (उग्रः) वीर इन्द्रने (ययिं) मेघसे (स्रोतसा) प्रवाहरूपमें (अपः निर् असृजत्) जलोंको बहाया और (शुष्णस्य दृंहिता पुरः ऐरयत्) शुष्ण असुरके बडे बडे सुदृढ नगरोंको तोडा ॥ ११ ॥

१ इन्द्रः मन्दिष्ट, वंकू वंकुतर अधि तिष्ठति— इन्द्र जब आनन्दित होता है, तब कुटिलसे कुटिल शत्रु पर भी शासन करता है ।

२ उग्रः अपः निर् असृजत्— वीर इन्द्रने जलोंको बहाया ।

३ शुष्णस्य दृंहिता पुरः ऐरयत्— शुष्णके बडे बडे सुदृढ नगरोंको तोडा ।

[६११] हे इन्द्र ! तू (वृषपाणेषु) सोम यज्ञोंमें (रथं आ तिष्ठति स्म) रथ पर चढकर जाता है (येषु मन्दसे) जिन सोमरसोंमें आनन्दित होता है वे सोमरस (शार्यातस्य प्रभृताः) अंगुलियोंके द्वारा निकाले गए हैं, हे इन्द्र ! तू (यथा सुतसोमेषु चाकनः) जैसे ही सोमयज्ञोंमें आनन्दित होता है, वैसे ही (दिवि) द्युलोकमें (अन्-अर्वाणं श्लोकं आरोहसे) स्थिर यशको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ— इन्द्रके बलको उशनाने बढाया तब उसने दोनों लोकों पर विजय प्राप्त की और वह यशस्वी हुआ । इसी प्रकार जो राजा दूरदर्शी (उशना) विद्वान् ब्राह्मणोंकी सहायतासे अपनी शक्ति बढाता है, वह सभी संसार पर विजय प्राप्त करके अपने यशको चारों ओर फैला सकता है । यह मंत्र यह बताता है कि क्षात्रशक्तिको ब्राह्मशक्तिसे मिलकर ही साम्राज्यका विस्तार करना चाहिए । ब्राह्मशक्तिसे शून्य क्षात्रशक्ति उच्छृंखल हो जाती है और वह देशका नाश कर देती है । अतः क्षात्रशक्ति सदा ब्राह्मशक्तिसे शासित होनी चाहिए ॥ १० ॥

इन्द्र जब उशनाके साथ आनन्दित होता है, तब वह कुटिलसे भी कुटिल लोगों पर अपना शासन करता है । तब वह मेघोंसे पानी बहाता और शुष्णके नगरोंको नष्ट करता है । जब राष्ट्रमें क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों संगठित होकर आनन्दसे रहते हैं, तब उस राष्ट्रमें कुटिलसे कुटिल शत्रु भी राजाके वशमें हो जाते हैं और तब मेघ भी उस राष्ट्रमें पानी समयानुसार बरसाता है, जिसके कारण भयंकरसे भयंकर (शुष्ण) सूखा या अकाल भी सर्वथा नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

यह इन्द्र बलवर्धक सोमपान करनेके स्थान पर पहुंचनेके लिए रथ पर चढता है और उस स्थान पर जाकर वह अंगुलियोंसे निचोडे गए सोमरसको पीता है और आनन्दित होकर यशको फैलाता है ॥ १२ ॥

६१२ अद॑दा अर्भां मह॒ते व॑च॒स्यवे॑ क॒क्षीव॑ते वृच॒यामि॑न्द्र सुन्व॒ते ।
मेना॑भवो वृषण॒श्वस्य॑ सुक्रतो॒ विश्वेत् ता ते॒ सव॑नेषु प्र॒वाच्या॑ ॥ १३ ॥
६१३ इन्द्रो॒ अश्रायि सु॒ध्यो॑ निरे॒के प॒ज्रेषु॒ स्तोमो॒ दुर्यो॒ न यूप॑: ।
अ॒श्व॒युर्ग॒व्यू र॑थ॒युर्व॑सू॒यु--रिन्द्र॒ इद्रा॒यः क्ष॑यति प्रय॒न्ता ॥ १४ ॥
६१४ इ॒दं नमो॑ वृष॒भाय॑ स्व॒राजे॑ स॒त्यशु॑ष्माय त॒वसे॑ऽवाचि ।
अ॒स्मिन्नि॑न्द्र वृ॒जने॒ सर्व॑वीराः॒ स्मत् सू॒रिभि॒स्तव॒ शर्म॑न्त्स्याम ॥ १५ ॥

[५२]

(ऋषिः-सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; १३, १५ त्रिष्टुप् ।)

६१५ त्यं सु मे॒षं म॑हया स्व॒र्विदं॑ श॒तं यस्य॑ सु॒भ्व॑: सा॒कमीर॑ते ।
अत्यं॒ न वाजं॑ हवन॒स्यदं॒ रथ॒--मेन्द्रं॑ ववृत्याम॒वसे॑ सुवृ॒क्तिभि॑: ॥ १ ॥

अर्थ— [६१२] हे (इन्द्रः) इन्द्र ! तूने (महते, वचस्यवे सुन्वते, कक्षीवते) महान्, स्तुति करनेकी इच्छावाले सोमयाग करनेवाले कक्षीवान् राजाके लिए (अर्भां) कम आयुवाली (वृचयां अददाः) वृचया नामकी स्त्री दी। हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तूने (वृषणश्वस्य मेना अभवः) वृषणश्व राजाकी मेना स्त्री बनाई (ते) तेरे (ता विश्वा इत्) वे सभी कर्म (सवनेषु प्रवाच्या) यज्ञोंमें कहने योग्य हैं ॥ १३ ॥

[६१३] (इन्द्रः) इन्द्र (निरेके) दरिद्र हो जानेपर (सुध्यः) उत्तम प्रज्ञावालोंकी (अश्रायि) सहायता करता है, अतः (पज्रेषु) मनुष्योंमें (स्तोमः) इन्द्रकी स्तुति (यूपः दुर्यः न) जैसे खम्बा दरवाजेमें स्थिर रहता है, उसी प्रकार स्थिर रहती है। (प्रयन्ता) दाता (अश्वयुः गव्युः रथयुः वसूयुः इन्द्रः इत्) घोडे, गाय, रथ और धन-का चाहनेवाला इन्द्र ही (रायः क्षयति) धनोंपर शासन करता है ॥ १४ ॥

१ इन्द्रः सु-ध्यः निरेके अश्रायि— वह इन्द्र उत्तम बुद्धिवालोंकी दारिद्र्यमें सहायता करता है।
२ इन्द्रः रायः क्षयति— इन्द्र सब धनोंपर शासन करता है।

[६१४] हम (वृषभाय, स्वराजे, सत्यशुष्माय तवसे) बलवान्, स्वयं प्रकाशमान्, यथार्थ बलवाले, अत्यंत महान् इन्द्रके लिए (इदं नमः अवाचि) इस स्तुतिको कहते हैं; हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मिन् वृजने) इस संग्राममें हम (सर्ववीराः स्मत्) सब वीर होते हुए (सुरिभिः) पुत्रादि सहित (तव शर्मन् स्याम) तेरे आश्रयमें रहें ॥१५॥

१ वृषभाय, स्वराजे, सत्यशुष्माय तवसे नमः अवाचि— बलवान्, स्वयं तेजस्वी, सत्यपराक्रमी महान् इन्द्रके लिए हम प्रणाम करते हैं।
२ अस्मिन् वृजने सर्ववीराः तव शर्मन् स्याम— इस संग्राममें हम सब वीरोंके साथ तेरे आश्रयमें रहें।

[५२]

[६१५] हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस इन्द्रके रथको (शतं सुभ्वः) सौ घोडे (साकं ईरते) एक साथ ले जाते हैं, ऐसे (त्यं मेषं स्वः विदं) उस स्पर्धाके योग्य, सुखको प्राप्त करानेवाले इन्द्रका (सु महय) उत्तम रीतिसे सत्कार करो, मैं (अवसे) संरक्षणके लिए (वाजं अत्यं न) तेज घोडेके समान (हवनस्यदं) यज्ञकी तरफ तेजीसे दौडनेवाले (ऐन्द्रं रथं) इन्द्रके रथको अपने (सु-वृक्तिभिः) उत्तम वचनोंसे (ववृत्यां) लौटाता हूँ ॥ १ ॥

१ यस्य शतं सुभ्वः साकं ईरते— उस इन्द्रके रथको सौ घोडे एक साथ ढोते हैं। रथको सौ घोडे जोतना यह वर्णन आलंकारिक है।

भावार्थ— इस इन्द्रने कक्षीवान्को वृचया नामकी स्त्री प्रदान की, वृषणश्वको मेना प्रदान की। तथा यह इन्द्र उत्तम बुद्धिवालोंकी सदा सहायता करता है, उन्हें कभी दरिद्र नहीं रहने देता। इन्हीं कारणोंसे उसकी कीर्ति सर्वत्र गाई जाती है और उसकी यह कीर्ति हमेशा स्थायी रहती है। इसी तरह जो राजा अपनी प्रजाकी हर आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है और बुद्धि-मानोंकी हर तरहसे सहायता करता है, उसका यश चारों ओर फैलता है और वह यश भी स्थायी रहता है ॥ १३-१४ ॥

बलवान्, स्वयं तेजस्वी, सत्य पराक्रमी और महान् इन्द्रको सभी प्रणाम करते हैं। क्योंकि बडे बडे संग्रामोंमें वही एक ऐसा वीर है, जिसका आश्रय सब लेते हैं ॥ १५ ॥

६१६ स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥

६१७ स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥ ३ ॥

६१८ आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अहुतप्सवः ॥ ४ ॥

अर्थ— [६१६] (यत्) जब (अन्धसा जर्हृषाणः) सोमरूपी अन्नसे हर्षित होते हुए (इन्द्रः) इन्द्रने (नदीवृतं वृत्रं) जलप्रवाहोंको रोकनेवाले वृत्रको (अर्णांसि उब्जन्) पानियोंको बहाते हुए (अवधीत्) मारा, तब (सहस्रं ऊतिः सः) हजारों तरहसे संरक्षण करनेवाला वह इन्द्र (धरुणेषु पर्वतः न अच्युतः) जलप्रवाहोंमें पर्वतके समान स्थिर रहकर (तविषीषु वावृधे) बलोंमें बढा ॥ २ ॥

१ सः तविषीषु धरुणेषु पर्वतः न अच्युतः-- वह संग्रामोंमें, जलप्रवाहोंमें पर्वतके समान, स्थिर रहता है ।

[६१७] (सः हि) वह इन्द्र (द्वरिषु द्वरः) शत्रुओंका कट्टर शत्रु है, (ऊधनि वव्रः) अन्तरिक्षमें व्याप्त है, (चन्द्रबुध्नः) आल्हादक है, तथा (मनीषिभिः मदवृद्धः) बुद्धिमानों द्वारा सोमरसोंसे बढाया गया है, ऐसे (मंहिष्ठरातिं) अत्यधिक धनके देनेवाले (तं इन्द्रं) उस इन्द्रको (सु-अपस्यया धिया) शुभ कर्म करनेवाली बुद्धिसे (अह्वे) बुलाता हूँ, (हि) क्योंकि (सः) वह ही (अन्धसा पप्रिः) सोमरसरूपी अन्नसे पूर्ण होनेवाला है ॥ ३ ॥

१ सः हि द्वरिषु द्वरः— वह शत्रुओंका कट्टर शत्रु है ।
२ (मित्रेभ्यः) चन्द्रबुध्नः— मित्रोंके लिए वह आह्लादकारक है ।

[६१८] (सद्मबर्हिषः) यज्ञगृहमें आसनपर बैठे हुए स्तोता (दिवि यं) द्युलोकमें वर्तमान जिस इन्द्रको (सुभ्वा समुद्रं न) नदियां जैसे समुद्रको पूर्ण करती हैं, उसी प्रकार, (आ पृणन्ति) पूर्ण करते हैं, ऐसे (तं इन्द्रं) उस इन्द्रकी (स्वाः अभिष्टयः) सुख देनेवाले तथा इच्छित पदार्थको देनेवाले, (ऊतयः) संरक्षण करनेवाले (शुष्माः) बलवान् (अ-वाता) शत्रुरहित (अ-हुतप्सवः) शोभनरूपवाले मरुत् (वृत्रहत्ये) वृत्रको मारनेमें (अनु तस्थुः) सहायता करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रके पास सैंकडों उत्तमसे उत्तम घोडे हैं । इन घोडोंको अपने रथमें जोडकर वह यज्ञोंकी तरफ शीघ्रतासे जाता है और इन्हीं घोडोंके कारण वह बडे बडे संग्रामोंमें भी पर्वतके समान अचल खडा रहता है और पानीको रोककर रखनेवाले वृत्रको मारकर जल प्रवाह बहाता है । यहां इन्द्रके घोडोंका वर्णन आलंकारिक है, इन्द्रके ये घोडे वस्तुतः सूर्यकी किरणें हैं । स्वयं इन्द्र सूर्य है और किरणें उसके घोडे हैं, इन किरणरूपी घोडों पर सवार होकर यह सूर्य सभी यज्ञोंमें जाता है और अपनी इन किरणोंकी सहायतासे ही वह वृत्र अर्थात् मेघोंसे संग्राम करता है और मेघोंसे जल बरसाता है ॥ १-२ ॥

वह इन्द्र शत्रुओंका कट्टर शत्रु और मित्रोंको आनन्द देनेवाला है । वह बुद्धिमान्को हर तरहसे बढाता है । ऐसे धनके दाता उस इन्द्रको उत्तम बुद्धिसे सब लोग बुलाते हैं । इसी तरह राजा भी शत्रुओंका विनाशक और मित्रोंको आनन्द देनेवाला हो तथा अपने राज्यमें रहनेवाले सभी बुद्धिमानोंको वह हर तरहसे प्रेरणा देकर बढाये ॥ ३ ॥

जब अहंकारसे मत्त होकर वृत्र पानी नहीं बरसाता, तब इन्द्र उसके साथ युद्ध करता है। उस समय इन्द्रकी सहायताके लिए मरुत् उसी प्रकार वेगसे जाते हैं, जिस प्रकार ढालवाली जगह पर पानीका प्रवाह वेगसे बहने लगता है । तब मरुतोंकी सहायता पाकर इन्द्र बल आदि असुरोंका नाश करता है। मरुत् सैनिक हैं अतः सैनिकोंका कर्तव्य है कि वे युद्धमें अपने राजाकी हरतरहसे सहायता करें ॥ ४ ॥

६१९ अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधीँरिव त्रितः ॥ ५ ॥

६२० परीं घृणा चरति तित्विषे शवो ऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६ ॥

६२१ ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [६१९] (मदे) उत्साहमें (सु-अ-वृष्टिं) उत्तम वृष्टि न करनेवाले असुरके साथ (युध्यतः) युद्ध करनेवाले (अस्य) इस इन्द्रकी सहायताके लिए (ऊतयः) संरक्षण करनेवाले मरुत् (रघ्वीः प्रवणे इव) जैसे नदियां नीचेकी ओर बहती हैं, उसी प्रकार (अभि सस्रुः) गये। (अन्धसा धृषमाणः) सोमसे बलवान् होते हुए (वज्री इन्द्रः) वज्रधारी इन्द्रने (यद्) जब (वलस्य भिनद्) वलको मारा तब, (त्रितः परिधीन् इव) मानों तीनों सीमाओंको तोड डाला ॥ ५ ॥

[६२०] जब वृत्र (अपः वृत्वी) जलोंको रोककर (रजसः बुध्नं आशयत्) अन्तरिक्षके मूलमें सो गया था, तथा (यत्) जब (प्रवणे) जलोंको बहानेके लिए हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (दुर्गृभिश्वनः वृत्रस्य) मुश्किलसे मारे जानेवाले वृत्रके (हन्वोः) ठोडी पर (तन्युतं नि जघन्थ) वज्रको मारा, तब (ईं परि घृणा चरति) इस इन्द्रके चारों ओर दीप्ति फैली और इसका (शवः तित्विषे) बल प्रकाशित हुआ ॥ ६ ॥

[६२१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तव वर्धना) तुझे बढानेवाले (या नि ब्रह्माणि) जो स्तोत्र हैं वे (त्वा) तुझे (ऊर्मयः ह्रदं न) जैसे जल प्रवाह तालाबको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार (नि ऋषंति) प्राप्त होते हैं, (त्वष्टा चित्) त्वष्टाने भी (ते युज्यं शवः वावृधे) तेरे योग्य बलको बढाया, तथा (अभिभूति ओजसं) शत्रुको हरानेमें समर्थ तेरे (वज्रं) वज्रको भी (ततक्ष) तीक्ष्ण किया ॥ ७ ॥

१ त्वष्टा चित् ते युज्यं शवः वावृधे— त्वष्टाने भी तेरे योग्य बलको बढाया । और
२ अभिभूति-ओजसं वज्रं ततक्ष— शत्रुको हरानेमें समर्थ वज्रको तीक्ष्ण किया ।

भावार्थ— बल आदि असुर ये मेघ हैं, जो पानीको रोके रखते हैं, बरसने नहीं देते; उस समय मरुत् अर्थात् हवाओंकी सहायतासे इन्द्र अर्थात् बिजली इन मेघोंपर आघात करता है तब पानी इतना बरसता है, कि उसकी कोई सीमा नहीं रहती ॥ ५ ॥

युद्धमें पकडनेके लिए कठिन वृत्रके हनु पर निम्न भागमें ही वज्र मारा, तब वज्रसे इन्द्रका तेज सब जगह फैला और उसका बल भी चमक उठा, पश्चात् जलको रोकनेवाला असुर भूमिके ऊपर गिर गया और मर गया । यह देखकर त्वष्टाने इन्द्रको बढाया और उसके लिए वज्र बनाकर भी दिया । तभीसे सारी स्तुतियां इन्द्रके पास पहुंचती हैं अर्थात् तबसे सभी प्राणी इन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥ ६-७ ॥

६२२ ज॒घ॒न्वाँ उ॒ हरि॑भिः संभृतक्रत॒—विन्द्र॑ वृ॒त्रं मनु॑षे गातु॒यन्न॒पः ।
अय॑च्छथा बा॒ह्वोर्वज्र॑माय॒स—मधा॑रयो दि॒व्या सूर्यं॑ दृ॒शे ॥ ८ ॥
६२३ बृ॒हत् स्वश्च॑न्द्र॒मम॑वद् यदु॒क्थ्य१॒—मकृ॑ण्वत भि॒यसा॒ रोह॑णं दि॒वः ।
यन्मानु॑षप्रधना॒ इन्द्र॑मू॒तयः॒ स्व॑र्नृ॒षाचो॑ म॒रुतोऽम॑दु॒न्नन॑ु ॥ ९ ॥
६२४ द्यौश्चि॑दस्या॒मवाँ॒ अहेः॑ स्व॒ना—दयो॑यवीद् भि॒यसा॒ वज्र॑ इन्द्र ते ।
वृ॒त्रस्य॒ यद् ब॑द्बधा॒नस्य॑ रोद॒सी मदे॑ सु॒तस्य॒ शव॑सा॒भिन॒च्छिरः॑ ॥ १० ॥

अर्थ— [६२२] हे (संभृतक्रतो इन्द्र) हे उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तूने (मनुषे अपः गातुयन्) मनुष्यके लिए जलके मार्गको बनाते हुए (हरिभिः) घोडोंसे युक्त होकर (वृत्रं जघन्वान् उ) वृत्रको मारा, तथा अपने (बाह्वोः) भुजाओंमें (आयसं वज्रं अयच्छथाः) फौलादके वज्रको ग्रहण किया, तथा (दृशे) देखनेके लिए (सूर्यं दिवि अधारयः) सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया ॥ ८ ॥

[६२३] मनुष्योंने (यत्) जब (भियसा) वृत्रके डरसे (स्वः अमवत् चन्द्रं) सुखकारक, बलकारक आह्लादकारक तथा (दिवः रोहणं) स्वर्गको प्राप्त करानेवाले (बृहत् उक्थ्यं) बडे स्तोत्रको (अकृण्वत) किया, और (यत्) जब (मानुषप्रधनाः) मनुष्योंके हितके लिए संग्राम करनेवाले (नृषाचः) मनुष्योंकी सेवा करनेवाले तथा (स्वः ऊतय) द्युलोककी रक्षा करनेवाले (मरुतः) मरुतोंने (इन्द्रं अनु अमदन्) इन्द्रको आनन्दित किया ॥ ९ ॥

१ यत् मानुषप्रधनाः, नृषाचः, स्वः ऊतयः मरुतः इन्द्रं अनु अमदन्— जब मनुष्योंके संग्राम शुरु हुए तब मनुष्योंकी सेवा करनेवाले, तथा द्युलोककी रक्षा करनेवाले मरुतोंने इन्द्रकी सहायता की ।

[६२४] (यत्) जब हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सुतस्य मदे) सोमके आनन्दमें (ते वज्रः) तेरे वज्रने (शवसा) बलसे (रोदसी बद्बधानस्य वृत्रस्य) द्युलोक और पृथिवी लोकको पीडित करनेवाले वृत्रके (शिरः अभिनत्) शिरको काट डाला, तब (अमवान् द्यौः चित्) बलवान् द्युलोक भी (अहेः स्वनाद् भियसा) वृत्रके शब्दके डरसे (अयोयवीत्) कांपने लगा ॥ १० ॥

भावार्थ— उत्तम कर्म करनेवाले इस इन्द्रने मनुष्योंके हितके लिए जलको बरसानेके लिए अपनी किरणोंसे वृत्रको मारा और अपनी भुजाओंमें वज्रको धारण किया, तब वृत्रको मारकर इन्द्रने सूर्यको आकाशमें चमकाया । यह आलंकारिक वर्णन वर्षाका है । वृत्र अर्थात् मेघ पानीको रोककर अन्तरिक्षमें पडा रहता है, पर जब इन्द्र–बिजली अपने वज्र अर्थात् गर्जनेकी शक्तिसे मेघ पर आघात करता है, तब वह टुकडा टुकडा होकर पृथ्वी पर गिर जाता है अर्थात् मेघोंके बरस जाने पर आकाश साफ हो जाता है तब सूर्य चमकने लगता है। इस प्रकार पानी बरसाना, आकाश साफ करना और सूर्यको चमकाना यह सब काम इन्द्रका ही है ॥ ८ ॥

जब मनुष्योंने देखा कि वृत्र–मेघ पानीको रोककर बैठ गया है तब अवर्षणसे डरकर मनुष्योंने सामगान करना शुरु किया अर्थात् यज्ञ करके सामोंका गान किया । तब प्रजाके हितके लिए युद्ध करनेवाले, रक्षक और प्रजाके साथ घुलमिल कर उनके सुख दुःखमें बराबर उनके साथ रहनेवाले सहायकोंने इन्द्रको प्रेरित किया और तब इन्द्रने वृत्रको मारा । यज्ञ करनेसे मरुत् अर्थात् वायु उत्पन्न होती है, यही वायु मेघ बनते हैं और इन्हीं मेघोंके टकरानेसे इन्द्र या बिजली उत्पन्न होती है, और यह इन्द्र–बिजली ही अपनी शक्ति अर्थात् वज्रसे वृत्रको मार कर पानी बरसाता है । इस प्रकार यज्ञसे वर्षा होती है ॥ ९ ॥

जब इन्द्रने सोमके आनन्दमें आकर अपने वज्रसे वृत्रको मारा, तब उस वृत्रने गिरते समय जो गर्जना की, उससे सारा विश्व कांप उठा । वर्षाकालका आलंकारिक वर्णन इस मंत्रमें किया है, जब मेघ आपसमें टकराते हैं और जब बिजली गिरती है, उस समय मेघोंका गर्जन सुनकर मानों पृथ्वी भी कांपने लगती है । यही वृत्रका नाश है ॥ १० ॥

६२५ यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजि-रहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥ ११ ॥

६२६ त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसो ऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १२ ॥

६२७ त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥ १३ ॥

अर्थ— [६२५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यदा इत्) जब (पृथिवी दशभुजि) पृथ्वी दस गुणी हो जाए और (कृष्टयः) मनुष्य (विश्वा अहानि) सम्पूर्ण दिनोंको (ततनन्त) विस्तृत कर दें, तब हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (ते सहः) तेरा बल (अत्राह विश्रुतं) यहां प्रसिद्ध हो तथा (शवसा बर्हणा) बल और पराक्रमसे (द्यां अनु भुवत्) द्यौ लोक भी पूर्ण हो जाए ॥ ११ ॥

[६२६] हे (धृषन्मनः) शत्रुओंको मारनेकी इच्छावाले इन्द्र ! (अस्य व्योमनः रजसः पारे) इस अन्तरिक्ष लोकके परे (स्वभूत्योजाः त्वं) अपने ऐश्वर्यसे बलशाली तूने (अवसे) संरक्षणके लिए (भूमिं चकृषे) भूमिको बनाया, तू (ओजसः प्रतिमानं) बलकी मूर्त्ति है, तथा तू ही (स्वः अपः दिवं परि भूः) सुखकारक अन्तरिक्ष तथा द्युलोकको व्याप्त करके (एषि) उन्हें प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

१ ओजसः प्रतिमानं— यह इन्द्र बलकी मूर्त्ति है ।

[६२७] हे इन्द्र ! (त्वं पृथिव्याः भुवः प्रतिमानं) तू विस्तृत भूमिका प्रतिनिधि है, तथा (ऋष्ववीरस्य बृहतः) महान् वीरोंसे युक्त विशाल द्युलोकका भी (पतिः भूः) स्वामी है, तू (महित्वा) अपने यशसे (विश्वं अन्तरिक्षं) सम्पूर्ण अन्तरिक्षको (आ प्रा) पूर्ण करता है, (सत्यं अद्धा) यह सत्य है, कि (त्वावान् अन्यः नकिः) तेरे जैसा और दूसरा नहीं ॥ १३ ॥

१ त्वं पृथिव्याः भुवः प्रतिमानम्— तू विस्तृत भूमिकी प्रतिमा है ।

२ ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिः— महान् वीरोंसे युक्त द्यौ का भी स्वामी है ।

३ महित्वा विश्वं अन्तरिक्षं आ प्रा— तू अपने यशसे सम्पूर्ण अन्तरिक्षको पूर्ण करता है ।

४ सत्यं अद्धा त्वावान् अन्यः न किः— यह सत्य है, कि तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है ।

भावार्थ— यदि यह भूमि दस गुनी बढ जाए और ये दिन भी अत्यन्त विस्तृत हो जाएं, तथा द्युलोक भी और अधिक विस्तृत हो जाए, तो भी इस इन्द्रकी महिमा इनमें समा नहीं सकती और न उसकी महिमाका वर्णन ही किया जा सकता है । इतना महिमाशाली इन्द्र है ॥ ११ ॥

इसी इन्द्रने अन्तरिक्ष लोकके अलावा भूमिका भी निर्माण किया, और इससे उसने सब प्राणियोंको रक्षा की । इस प्रकार वह इन्द्र भूमिका संरक्षक होनेसे वह इसका पालक है, वह द्युलोकका स्वामी है और सम्पूर्ण अन्तरिक्षको अपनी महिमासे भर देता है । इसलिए इस इन्द्र जैसा शूरवीर और महिमाशाली और कोई नहीं है ॥ १२-१३ ॥

६२८ न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ १४ ॥
६२९ आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥ १५ ॥

[५३]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; १०-११ त्रिष्टुप् ।)

६३० न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥

अर्थ— [६२८] (यस्य व्यचः द्यावा पृथिवी न अनु) जिसके विस्तारको द्युलोक और पृथिवी लोक नहीं पा सकते, तथा (रजसः सिन्धवः अन्तं न आनशुः) लोक तथा नदियां भी जिसके अन्तको नहीं पा सकीं, (उत) और (मदे) उत्साहमें (सु अवृष्टिं) उत्तम वृष्टि न करनेवाले वृत्रके साथ (युध्यतः) युद्ध करनेवाले (अस्य) इसका अन्त वृत्र भी न पा सका, ऐसा हे इन्द्र ! तू (एकः) अकेला ही (अन्यत् विश्वं) अपनेसे भिन्न विश्वको (आनुषक् च कृषे) निश्चयसे बनाता है ॥ १४ ॥

१ यस्य व्यचः द्यावापृथिवी न अनु -- जिसके विस्तारको द्युलोक और पृथ्वीलोक भी न पा सके ।
२ रजसः सिन्धवः अन्तं न आनशुः— लोक तथा नदियां भी इसके अन्तको न पा सके ।
३ मदे सु-अ-वृष्टिं युध्यतः अस्य [वृत्रः अन्तं न आनशे]— उत्साहमें उत्तम-वृष्टि न करनेवाले वृत्रके साथ युद्ध करते हुए भी वृत्र इसके अन्तको न पा सका ।
४ एकः अन्यत् विश्वं चकृषे— यह अकेला ही विश्वको बनाता है ।

[६२९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब (त्वं) तूने (भृष्टि मता वधेन) शत्रुको मारनेवाले वज्रको (वृत्रस्य आनं) वृत्रके मुख पर (प्रति जघन्थ) मारा, तब (अत्र) इस संग्राममें (मरुतः) मरुतोंने तेरी (अर्चन्) प्रशंसा की तथा (सस्मिन् आजौ) सभी संग्रामोंमें (विश्वे देवासः) सभी देवोंने (त्वा) तुझे (अमदन् ननु) उत्साहित किया ॥ १५ ॥

१ इन्द्र ! यत् त्वं वधेन वृत्रस्य आनं प्रति जघन्थ— हे इन्द्र ! तूने जब वज्रको वृत्रके मुख पर मारा । तब
२ आजौ मरुतः विश्वे देवासः त्वा अमदन्— संग्राममें मरुतों और सभी देवोंने तुझे उत्साहित किया ।

[५३]

[६३०] हम (विवस्वतः सदने) विवस्वान्के यज्ञमें (महे इन्द्राय) शक्तिशाली इन्द्रके लिए (सु वाचं गिरः) उत्तम स्तुति तथा प्रशंसाओंको (नि उ प्र भरामहे) करते हैं, (हि) क्योंकि वह (रत्नं) रत्नोंको (ससतां इव) जैसे चोर सोते हुओंके धनको शीघ्र उठा ले जाता है, उसी प्रकार (नि चित् अविदन्) शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है, (द्रविणोदेषु दुस्तुतिः न शस्यते) धन देनेवालोंकी बुरी स्तुति प्रशंसित नहीं होती ॥ १ ॥

१ द्रविणोदेषु दु-स्तुतिः न शस्यते-- धन देनेवालोंके बारेमें निन्दा प्रशंसित नहीं होती ।

भावार्थ— जब इन्द्रने अपने शत्रुनाशक वज्रसे वृत्रको मारा तब सब देवता खुश हो गए और मरुतोंने भी इसका बडा सत्कार किया और तभी इसकी विशाल महिमाका लोगोंको पता चला कि द्युलोक आदि लोक, अनन्त नदियां भी इसकी महिमाका पार न पा सकीं और यहां तक कि इसके साथ सदा युद्ध करनेवाला वृत्र भी इसकी महिमाका पार न पा सका, इतनी इसकी विशाल महिमा है ॥ १४-१५ ॥

इन्द्र सब रत्नोंको आसानीसे प्राप्त करता है और दानमें भी देता है, अतः उसकी हमेशा उत्तम स्तुति करनी चाहिए । क्योंकि जो उत्तम दान देता है उसको कभी बुराई या निन्दा नहीं करनी चाहिए । वह हमेशा उत्तम स्तुतिके ही योग्य होता है ॥ १ ॥

६३१ दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥
६३२ शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥
६३३ एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभि- र्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभि- र्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥

अर्थ— [६३१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (अश्वस्य दुरः असि) घोडोंका देनेवाला है, (गोः दुरः) गायोंका देनेवाला है (यवस्य दुरः) अन्नका देनेवाला है, तथा (वसुनः इनः) धनका स्वामी और (पतिः) सबका पालन करनेवाला है, तू (शिक्षानरः) दान देनेवालोंका नेता है, (प्र दिवः) विशेष तेजस्वी है, (अ-कामकर्शनः) तू संकल्पोंको नष्ट नहीं करता और (सखिभ्यः सखा) मित्रोंके लिए मित्र है, ऐसे (तं) उस इन्द्रको (इदं गृणीमसि) इस तरह हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१ वसुनः इनः— वह धनका स्वामी है ।
२ शिक्षानरः— वह दानियोंका नेता है ।
३ प्र-दिवः— विशेष तेजस्वी है ।
४ सखिभ्यः सखा— वह मित्रोंके लिए मित्र है ।

[६३२] हे (शचीवः, पुरु-कृत् द्युमत्तम इन्द्र) शक्तिमान्, बहुत कर्म करनेवाले, अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र ! जो (अभितः वसु) चारों ओर धन है, वह (तव इत्) तेरा ही है, यह (चेकिते) हम जानते हैं, (अतः) इसलिए (सं गृभ्य) धनको इकट्ठा करके (अभिभूते) शत्रुको मारनेवाले हमारे लिए (आ भर) भरपूर दे, (त्वायतः जरितुः) तुझको चाहनेवाले स्तोताकी (कामं) इच्छाको (मा ऊनयीः) मत नष्ट कर ॥ ३ ॥

ऊनयीः— नष्ट करना 'ऊन परिहाणे'
१ अभितः वसु तव इत्— चारों ओरका धन तुम्हारा अर्थात् इसी इन्द्रका है ।
२ अतः सं गृभ्य अभिभूते आ भर— इसलिए उनको इकट्ठा करके शत्रुको मारनेवालेको भरपूर दे ।

[६३३] हे इन्द्र ! तू (एभिः द्युभिः) इन तेजोंसे तथा (एभिः इन्दुभिः) इन सोम रसोंसे तृप्त होकर (गोभिः अश्विना) गायों और घोडोंसे हमारी (अ-मतिं) दरिद्रताको (निरुन्धानः) रोकता हुआ (सु-मनाः) उत्तम मनवाला हो, हम भी (इन्दुभिः) सोमरसोंसे तृप्त (इन्द्रेण दस्युं दरयन्तः) इन्द्रके द्वारा शत्रुको नष्ट करते हुए (युतद्वेषसः) शत्रु रहित होकर (इषा) अन्नसे (सं रभेमहि) अच्छी तरह आनन्दित हों ॥ ४ ॥

१ (इन्द्र) गोभिः अश्विना अमतिं निरुन्धानः सुमनाः— हे इन्द्र ! गायें और घोडोंसे हमारी दरिद्रताको रोकते हुए उत्तम मनवाला हो ।

२ इन्द्रेण दस्युं दरयन्तः युतद्वेषसः इषा सं रभेमहि— इन्द्रके द्वारा शत्रुको नष्ट करते हुए शत्रु रहित होकर अन्नसे अच्छी तरह हम आनन्दित होवें ।

भावार्थ— इस विश्वमें चारों ओर फैला हुआ धन इन्द्रका ही है, वह उन सबपर प्रभुत्व करता है, साथ ही वह दान देनेवालोंका नेता है अर्थात् दान देनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ है । पर वह अपना यह धन उन्हींको देता है, जो अपने शत्रुओंको नष्ट करते हैं । यह इन्द्र मित्रोंके लिए मित्र है, पर शत्रुओंके लिए बहुत भयंकर है । यह अपने भक्तोंके संकल्पोंको कभी नष्ट नहीं करता ॥ २-३ ॥

सोम उत्साहको देनेवाला है । इससे उत्साहित होकर इन्द्र उत्तम मनसे युक्त होता है और सज्जनोंकी दरिद्रताको रोकता है और उन्हें धनवान् बनाता है । और उसके भक्त भी इससे उत्साहित होकर अपने शत्रुओंको नष्ट करते हैं ॥ ४ ॥

६३४ समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥
६३५ ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥
६३६ युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [६३४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (राया, इषा) धन, अन्न तथा (पुरुः चन्द्रैः अभिद्युभिः वाजेभिः) बहुतोंको प्रसन्न करनेवाले, चारों ओरके तेजस्वी बलोंसे (सं सं सं रभेमहि) अच्छी तरह आनन्दित हों, तथा (वीर-शुष्मया) बलशाली पुत्रोंसे, (गो अग्रया) मुख्य गौवोंसे (अश्वावत्या) घोडोंसे तथा (देव्या प्रमत्या) तेजस्वी बुद्धिसे (सं रभेमहि) युक्त हों ॥ ५ ॥

[६३५] हे (सत्पते) सज्जनोंके पालनकर्ता इन्द्र ! तूने (यत्) जब (कारवे बर्हिष्मते) ऋत्विज तथा यज्ञ-कर्ताके लिए (वृत्रहत्येषु) युद्धोंमें (दश सहस्राणि वृत्राणि) दस हजार असुरोंको (अ-प्रति) पीछे न हटते हुए (निबर्हयः) मारा था, तब (त्वा) तुझे (ते मदाः अमदन्) उन मरुतोंने उत्साहित किया, (तानि वृष्ण्या) उन बलोंने तथा (ते सोमासः) उन सोमरसोंने भी तुझे उत्साहित किया ॥ ६ ॥

१ वृत्रहत्येषु दश सहस्राणि वृत्राणि अ-प्रति निबर्हयः— इस इन्द्रने युद्धोंमें दस हजार असुरोंको पीछे न हटते हुए मारा ।

[६३६] हे इन्द्र ! (धृष्णुया) शत्रुको मारनेवाला तू (युधा युधं उप इत् घ एषि) शत्रुके योद्धाओंसे सदा युद्ध करता है, तथा तूने (पुरा इदं पुरं) पहले इस महान् नगरको (ओजसा सं हंसि) बलसे तोडा है, (यत्) तथा (नम्या सख्या) नमनशील मित्रभूत वज्रसे (परावति) दूर देशमें (नमुचिं नाम मायिनं) नमुचि नामवाले मायावी असुरको (नि बर्हयः) मारा है ॥ ७ ॥

१ धृष्णुया ! युधा युधं उप घेदेषि— अपने पराक्रमसे तू शत्रुके योद्धाओंसे सदा युद्ध करता है ।
२ सख्या परावति नमुचिं नि बर्हयः— अपने मित्र वज्रसे दूर देशमें नमुचिको मारा है ।

भावार्थ— इस प्रकार शत्रुरहित होकर वे तेजस्वी बलोंसे अनेक तरहके पशुओंसे और उत्तम बुद्धियोंसे युक्त होकर आनन्दसे जीवन व्यतीत करते हैं । यह सोम उत्तम बुद्धिका द्योतक है । जो उत्तम बुद्धिसे युक्त होते हैं, वे हमेशा आनन्दमें रहते हैं ॥ ४-५ ॥

राजा इतना धीर और वीर हो कि अनेक शत्रुओंसे लोहा लेते समय भी युद्धमें स्थिर रहे और इस प्रकार शत्रुओंको मारे । उसके इस पवित्र कार्यमें उसे सैनिक तथा अन्य विद्वान् भी उत्साहित करें । क्योंकि राजाको सदा शत्रुओंसे युद्ध करना पडता है, इसलिए वह और उसका राष्ट्र सदा वज्र जैसे हथियारोंसे सुसज्जित रहे ॥ ६-७ ॥

६३७ त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधी--स्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरो ऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥
६३८ त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशा--ऽबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥
६३९ त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभि--स्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥

अर्थ--[६३७] हे इन्द्र ! (त्वं) तूने (अतिथिग्वस्य वर्तनी) अतिथिग्वके मार्गमें बाधक (करंजं उत पर्णयं) करंज तथा पर्णय नामके असुरोंको अपने (तेजिष्ठया) तीक्ष्ण शस्त्रसे (वधीः) मारा तथा (अन-अनुदः) सहायकके बिना ही (त्वं) तूने (ऋजिश्वना परिषूताः) ऋजिश्वके द्वारा घेरे गए (वंगृदस्य) वंगृदनामक असुरके (शता पुरः) सैंकडों नगरोंको (अभिनत्) तोडा ॥ ८ ॥

१ अन-अनुदः ऋजिश्वना परिषूताः वंगृदस्य शता पुरः अभिनद्-- सहायकके बिना ही तूने ऋजिश्व-के द्वारा घेरे गए वंगृद असुरके सैंकडों नगरोंको तोडा ।

[६३८] हे (श्रुतः त्वं) प्रसिद्ध इन्द्र ! तूने (अ-बन्धुना सुश्रवसा) भाई अर्थात् सहायक रहित सुश्रवस राजासे (उप जग्मुषः) लडनेके लिए गए हुए (द्विदश जन राज्ञः) बीस राजाओंको तथा उनके (एतान् षष्टिं नव नवतिं सहस्रा) इन साठ तथा निन्यानवे हजार सैनिकोंको (रथ्या दुष्पदा चक्रेण) रथके, कठिनाईसे पाने योग्य चक्रसे (अवृणक्) मार डाला ॥ ९ ॥

१ त्वं द्विदश जनराज्ञः षष्टिं नव नवतिं सहस्रा रथ्या चक्रेण अवृणक्-- तूने बीस राजा तथा उनके साठ तथा निन्यानवे हजार सैनिकोंको रथके पहिएसे मार डाला ।

[६३९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तूने (तव ऊतिभिः) अपने संरक्षणोंसे (सु श्रवसं आ विथ) सुश्रवसकी रक्षा की, तथा (तव) अपने (त्रामभिः) पालनके साधनोंसे (तूर्वयाणं) तूर्वयाणकी रक्षा की, (त्वं) तूने (महे यूने अस्मै राज्ञे) महान्, तरुण इस राजाके लिए (कुत्सं, अतिथिग्वं, आयुं) कुत्स, अतिथिग्व और आयुको (अरन्धनायः) वशमें किया ॥ १० ॥

अरन्धनायः-- वशमें करना ' रध्यतिर्वशगमने ' (निरु. ६।३२)
त्रामः-- पालनके साधन ' त्रैङ् पालने '
कुत्-सः-- कुटिल गतिवाला ।
अतिथि-ग्वः-- अतिथिकी गायें ले जानेवाला ।

भावार्थ-- यह इन्द्र सज्जनोंका पालक एवं दुष्टोंका संहारक है । अतिथियोंका सत्कार करनेवालेके लिए इन्द्रने उसके इस पवित्र काममें बाधा डालनेवाले असुरोंको मारा, तथा बिना किसीकी सहायताके उसने शत्रुओंके अनेक नगरोंको तोडा और हजारों सैनिकोंसे केवल रथके चक्रसे युद्ध किया अर्थात् इन्द्र इतना वीर है कि वह किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखता । इसी तरह राजाको भी वीर होना चाहिए ॥ ८-९ ॥

राजाको चाहिए कि वह हमेशा उत्तम यशवालोंकी सहायता करे तथा कुटिल गतिवाले, अतिथियोंको कष्ट देनेवाले और आलसी लोगोंको मारता है । इन्द्र अतिथिग्व, कुत्स आदि सज्जनोंकी रक्षा करता है, पर यदि वे ही बुरे कर्म करने लग जाएं तो उन्हें दण्ड भी देता है । राजा भी सज्जनोंका पालन करे, पर यदि वे ही कुमार्ग पर चलने लगें, तो उनको दण्डित करे ॥ १० ॥

६४० य उद्दचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥

[५४]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; ६, ८-१० ११ त्रिष्टुप् ।)

६४१ मा नो अस्मिन् मघवन् पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे ।
अक्रन्दयो नद्योऽ३ रोरुवद् वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥ १ ॥

६४२ अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ २ ॥

अर्थ— [६४०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (देवगोपाः) देवोंसे सुरक्षित (ये) जो हम (ते सखायः) तेरे मित्र हैं, वे (शिवतमाः असाम) अत्यन्त सुखवाले हों, हम (त्वया) तेरी कृपासे (सु-वीराः) उत्तम प्रजावाले होकर (द्राघीयः प्रतरं आयुः दधानाः) दीर्घ तथा उत्तम आयुको धारण करते हुए (उत्-ऋचि) यज्ञमें (त्वां स्तोषाम) तुझे सन्तुष्ट करते हैं ॥ ११ ॥

१ त्वया सु-वीराः द्राघीयः आयुः दधाना उत् ऋचि त्वां स्तोषाम— हम तेरी कृपासे उत्तम प्रजावाले तथा दीर्घ आयुवाले होकर यज्ञमें तुझे सन्तुष्ट करें ।

[४१]

[६४१] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (नः) हमें (अस्मिन् अंहसि) इस दुःखमें तथा (पृत्सु) युद्धोंमें (मा) मत डाल, (ते शवसः अन्तः नहि परीणसे) तेरे बलका अन्त नहीं पाया जा सकता, (रोरुवद्) स्वयं शब्द करते हुए तूने (नद्यः वना) नदियों तथा जलोंको (अक्रन्दयः) शब्द करते हुए गतियुक्त किया है, तब (क्षोणीः) ये लोक (भियसा) तेरे डरसे (कथा न सं आरत) कैसे न डरें ? ॥ १ ॥

१ मघवन् ! नः अस्मिन् अंहसि पृत्सु मा— हे इन्द्र ! हमें इस दुःख और युद्धोंमें मत डाल ।

२ ते शवसः अन्तः नहि परीणसे— तेरे बलका अन्त नहीं पाया जा सकता ।

[६४२] हे मनुष्यो ! (शचीवते) शक्तियोंके स्वामी, (शाकिने) बलवान् (शक्राय) इन्द्रका तुम (अर्च) सत्कार करो, (शृण्वन्तं इन्द्रं) स्तुतियोंको सुननेवाले इन्द्रकी (महयन्) प्रशंसा करते हुए (अभि स्तुहि) स्तुति करो, (यः धृष्णुना शवसा) जो इन्द्र शत्रुको मारनेवाले बलसे (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको (न्यृञ्जते) उत्तम रीतिसे बनाता है, वह (वृषा) बलवान् इन्द्र (वृषत्वा) अपने सामर्थ्यसे (वृषभः) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है ॥ २ ॥

१ यः शवसा उभे रोदसी न्यृञ्जते— वह इन्द्र अपने बलसे दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको उत्तम रीतिसे बनाता है ।

२ वृषा वृषत्वा वृषभः— वह बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे महा बलवान् है ।

भावार्थ— इन्द्रके मित्र हरतरहसे ऐश्वर्यसंपन्न होकर आनन्दसे रहते और उत्तम सन्तानोंके साथ सुखी जीवन व्यतीत करते हैं । इसी प्रकार राजाके मित्र भी उत्तम और सुखी जीवन गुजारें । उसके मित्र कभी भी दुःखी न हों । क्योंकि मित्रोंका बल राजाके लिए बडा आवश्यक होता है ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तू इतना शक्तिशाली है, कि तेरी शक्तिका पार कोई भी नहीं पा सकता । तूने ही अपनी वीरतासे नदियों और जलोंको बहाया । तेरी इस शक्तिको देखकर सारे लोक इन्द्रसे डरते हैं । हम तेरी स्तुति करते हैं अतः हे इन्द्र ! हमें तू दुःखमें मत डाल ॥ १ ॥

यह इन्द्र अपनी शक्तिसे बलवान् है अर्थात् इसे बलवान् और शक्तिमान् होनेके लिए किसी दूसरेके सहायताकी आवश्यकता नहीं होती । यह अपनी शक्तिसे सारे लोकोंका निर्माण करता हैं । इसीलिए सब लोग इसकी स्तुति करते हैं । वह भी अपने स्तोताओंके प्राणोंकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

६४३ अर्चा दिवे बृहते शूष्यं१ वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥ ३ ॥
६४४ त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयो ऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥ ४ ॥
६४५ नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो रोरुवद् वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि ॥ ५ ॥

अर्थ— [६४३] (धृषतः यस्य) शत्रुको पराजित करनेवाले जिस इन्द्रके (मनः स्वक्षत्रं) मन और बल (धृषत्) शत्रुको मारनेवाले हो गए हैं, ऐसे (दिवे) तेजस्वी तथा (बृहते) महान् इन्द्रके लिए (शूष्यं वचः अर्च) सुखकारी स्तुतियोंको कहो, (सः हि) वह इन्द्र (बृहत् श्रवा) महान् यशवाला, (असु-रः) प्राणोंका देनेवाला, (बर्हणा) शत्रुओंको मारनेवाला, (हरिभ्यां पुरः कृतः) घोडों द्वारा आगे किया गया (वृषभः) बलवान् तथा (रथः) गतिवाला है ॥ ३ ॥

१ सः हि बृहत् श्रवा, असु-रः, बर्हणा वृषभः— वह इन्द्र महान् यशवाला, प्राणोंका दाता, शत्रुओंका मारनेवाला तथा बलवान् है ।

[६४४] हे इन्द्र ! (यत्) जब तू (मायिनः व्रन्दिनः) मायावी असुरके सैन्य समूहको (मन्दिना धृषत्) उत्साहसे मारते हुए (शितां) तीक्ष्ण किये गये (गभस्तिं अशनिं) हाथमें पकडे हुए वज्रका उनपर (पृतन्यसि) प्रहार करता है तब (त्वं) तू (बृहतः दिवः सानु) विशाल द्युलोकके ऊपरके प्रदेश पर (कोपयः) क्रोध करता है ऐसा दीखता है और (त्मना धृषता) अपने बलसे (शम्बरं अव भिनत्) शम्बरको मारता है ॥ ४ ॥

१ मायिनः व्रन्दिनः धृषत् शितां गभस्तिं अशनिं पृतन्यसि— असुरके सैन्य समूहको मारते हुए तीक्ष्ण किए गए हाथमें पकडे हुए वज्रको उनपर मारता है ।

२ त्मना धृषता शम्बरं अव भिनत्— अपने बलसे शम्बरको मारता है ।

[६४५] हे इन्द्र ! (रोरुवत्) गर्जते हुए तूने (यत्) जब (व्रन्दिनः चित्) सेनाओंके होते हुए भी (श्वसनस्य शुष्णस्य) लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले शुष्णके (मूर्धनि) सिर पर (वना निवृणक्षि) शस्त्रोंको मारा तब अपने (बर्हणावता मनसा) बल युक्त मनसे तू (प्राचीनेन अद्या चित्) प्राचीन कालसे लेकर आजतक वा ही काम (कृणवः) करता आ रहा है, अतः (त्वा परि कः) तेरे ऊपर कौन स्वामी है ? ॥ ५ ॥

१ रोरुवत् व्रन्दिनः चित् श्वसनस्य शुष्णस्य मूर्धनि वना नि वृणक्षि— गर्जते हुए इन्द्रने सेनाओंके होते हुए भी लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले शुष्णके सिरपर शस्त्रास्त्रोंको मारा ।

भावार्थ— शत्रुओंको मारना उसका स्वभाव हो गया है, इसलिए वह मन और बलसे शत्रुओंके नाशका ही विचार करता रहता है । इसी तरह राजाको भी चाहिए कि वह देशद्रोहियों पर कडी नजर रखे और हमेशा उनके नाश करनेका विचार किया करे ॥ ३ ॥

यह इन्द्र बडा निर्भीक है, यह अकेला ही असुरोंकी सारी सेनाओंको मार भगाता है । वह इतना वीर है कि सेनाओंके बीचमें स्थित शुष्णको भी उसने मारा अर्थात् वह सेनाओंको देखकर भी नहीं घबडाया । शत्रुओंको मारना यह उसका सनातन कर्तव्य है, वह प्राचीनकालसे ऐसे कामोंको करता आया है । इसलिए उसपर कोई दूसरा शासन नहीं कर सकता ॥ ४–५ ॥

६४६ त्वामविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥ ६ ॥
६४७ स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥ ७ ॥
६४८ असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८ ॥

अर्थ— [६४६] हे (शतक्रतो) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तूने (धने कृत्व्ये) संग्रामके प्रारम्भ हो जाने पर (नर्यं तुर्वशं यदुं आ विथ) नर्य, तुर्वश और यदुका संरक्षण किया, (त्वं वय्यं तुर्वीतिं) तूने वय्य कुलोत्पन्न तुर्वीतिकी रक्षा की, (त्वं) तूने (रथं एतशं) रथ और एतशकी रक्षा की, तथा (त्वं) तूने असुरके (नव नवतिं पुरः दम्भयः) निन्यानवे नगरोंको तोडा था ॥ ६ ॥

१ नव नवतिं पुरः दम्भयः— इन्द्रने असुरके निन्यानवे नगरोंको तोडा ।

[६४७] (यः) जो मनुष्य (प्रति) इन्द्रके लिए (रातहव्यः) हविको देता हुआ उसके (शासं इन्वति) शासनमें रहता है, (सः घ जनः) वही मनुष्य (राजा) तेजस्वी (सत्पतिः) सज्जनोंका पालनकर्ता तथा (शूशुवद्) समृद्धशाली होता है, (यः वा) और जो (राधसा उक्था) अन्नके साथ स्तोत्रोंको (अभि गृणाति) कहता है, (अस्मै) इसके लिए (दानुः) दानशील इन्द्र (दिवः) द्युलोकसे (उपरा पिन्वते) मेघोंका बरसाता है ॥ ७ ॥

उपरा-मेघ ' उपरा इति मेघनाम उपरः उपलः मेघो भवति उपरमन्तेऽस्मिन्न भ्राणि उपरता आप इति वा (निरु. ३।२१)

१ यः शासं इन्वति सः जनः राजा सत्पतिः शूशुवद्— जो इन्द्रके शासनमें रहता है वह मनुष्य तेजस्वी सज्जनोंका पालक और समृद्धशाली होता है ।

[६४८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तेरा (क्षत्रं अ-समं) क्षात्र बल अतुलनीय है, (मनीषा असमा) बुद्धि भी अतुलनीय है, (ददुषः ये) हविको देनेवाले जो मनुष्य (ते महि क्षत्रं) तेरे महान् बलको, (स्थविरं वृष्ण्यं) महत्ताको, तथा सामर्थ्यको (वर्धयन्ति) बढाते हैं, (नेमे) ये (सोम-पाः) सोमको पीनेवाले मनुष्य (अपसा सन्तु) कर्मसे समृद्धि प्राप्त करें ॥ ८ ॥

१ ये ते क्षत्रं, स्थविरं वृष्ण्य वर्धयन्ति— जो तेरे बल, महत्ता और सामर्थ्यको बढाते हैं ।

२ नेमे अपसा सन्तु— ये कर्मोंसे समृद्धिशाली हों ।

भावार्थ— यह इन्द्र अनेकों उत्तम कर्म करता हैं, इसोलिए इसे शतक्रतु कहा जाता है । धनकी प्राप्ति करानेवाले संग्रामके शुरू हो जानेपर यह उत्तम नेता, अपने यशको फैलानेवाले प्रयत्न करनेवाले, गतिशील अर्थात् आलस्यरहित मनुष्यकी रक्षा करता है और शत्रुओंके अनेक नगरोंका नाश करता है ॥ ६ ॥

जो मनुष्य इस इन्द्रके शासनमें रहता है, अर्थात् इसके अनुकूल काम करता है, वही मनुष्य तेजस्वी सज्जनोंका पालक और समृद्धशाली होता है । जो इस इन्द्रकी मनःपूर्वक स्तुति करता है, उसके लिए वह इन्द्र पानी बरसाता है और हरतरहसे उसे ऐश्वर्यसम्पन्न बनाता है । अनुशासनमें रहनेसे मनुष्य श्रेष्ठ और ऐश्वर्य सम्पन्न होता है ॥ ७ ॥

इस इन्द्रका क्षात्रबल, बुद्धिबल अद्वितीय है । इन बलोंमें इसके समान और कोई नहीं है । अतः इस अद्वितीय इन्द्रकी जो स्तुति करता है, वह मनुष्य इस इन्द्रकी कृपा और अपने प्रयत्नोंसे समृद्धि प्राप्त करता है । समृद्धि प्राप्त करनेका एक उपाय प्रयत्न करना है । प्रयत्नोंसे मनुष्य हर तरहकी दुःसाध्यसे दुःसाध्य सम्पत्ति भी प्राप्त कर सकता है ॥ ८ ॥

६४९ तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९ ॥

६५० अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमो ऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥ १० ॥

६५१ स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥ ११ ॥

अर्थ— [६४९] हे इन्द्र ! (एते बहुलाः, आद्रिदुग्धाः, चमूषदः) ये बहुतसे, पत्थरोंसे निचोडकर बर्तनोंमें रखे हुए (इन्द्रपानाः) इन्द्रके पीने योग्य (चमसाः) सोम (तुभ्या इत्) तेरे लिए ही हैं, अतः तू उनको (व्यश्नुहि) पी (अथ) और (एषां) इनको पीकर (कामं तर्पय) अपनी इच्छाको तृप्त कर, और (वसुदेयाय) धन देनेके लिए (मनः कृष्व) अपने मनको कर ॥ ९ ॥

[६५०] (धरुणह्वरं तमः) जलधाराओंको रोकनेवाला अन्धकार (पर्वतः वृत्रस्य) अनेकों पर्ववाले वृत्रके (जठरेषु अन्तः) पेटमें (अपां) जलोंको रोककर (आतिष्ठत्) बैठ गया, तब (इन्द्रः) इन्द्रने (वव्रिणा हिता) वृत्र द्वारा रोके हुए (अनु-स्थाः) अनुकूलतासे चलनेवाले (ईं विश्वाः नद्यः) इन सभी जल प्रवाहोंको (प्रवणेषु अभि जिघ्नते) नीचेके स्थानोंमें गिराया ॥ १० ॥

[६५१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः) वह तू (अस्मे) हममें (शेवृधं द्युम्नं) अमूल्य यशको (आ धाः) स्थापित कर, तथा (महि) प्रशंसनीय (जनाषाट्, तव्यं) शत्रुको पराजित करनेवाले महान् (क्षत्रं) बलको स्थापित कर, (नः मघोनः) हमें धनवाला बनाकर (रक्ष) हमारा पालन कर (सूरीन् पाहि) विद्वानोंकी रक्षा कर (च) और (सु अपत्यै) अच्छी सन्तानको प्राप्त करनेके लिए (नः) हमें (राये इषे च धाः) धनमें और अन्नमें स्थापित कर ॥ ११ ॥

१ अस्मे शेवृधं द्युम्नं, महि जनाषाट् तव्यं क्षत्रं आ धाः— हे इन्द्र ! हममें अमूल्य यश, महान्, शत्रुको पराजित करनेवाले प्रवृद्ध बलको स्थापित कर ।

भावार्थ— यह इन्द्र सोम पीकर उत्साहित होता है और उस समय वह अनेक कठिनसे कठिन भी काम आसानीसे कर देता है । उदाहरणार्थ- जब गाढ अंधकार अनेक परतोंवाले मेघोंमें पानी रोककर बैठ गया, तब इन्द्रने उत्साहित होकर उन मेघोंसे पानी बरसाया । जब काले बादल आते हैं, तब सर्वत्र भयंकर अन्धेरा छा जाता है, उस समय बिजली चमकती है और उसके कारण अन्धेरा हटकर सर्वत्र प्रकाश छा जाता है ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! तू हमें अमूल्य तेज और यश प्रदान कर, शत्रुओंको हरानेवाला महान् बल भी प्रदान कर, हमें धनवान् बनाकर हमारा पालन कर, विद्वानोंकी रक्षा कर तथा सन्तानोंका पालन अच्छी तरह करनेके लिए हमें उत्तम धन और अन्न दे । राजाका यह कर्तव्य है कि वह राष्ट्रमें अन्न और धनकी व्यवस्था इतनी उत्तम रखे कि राष्ट्रकी सारी प्रजायें सुखी और आनन्दित रहें ॥ ११ ॥

*

[५५]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती ।)

६५२ दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥ १ ॥
६५३ सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात् स युध्म ओजसा पनस्यते ॥ २ ॥
६५४ त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥ ३ ॥

[५५]

अर्थ— [६५२] (अस्य वरिमा) इस इन्द्रकी श्रेष्ठता (दिवः चित् वि पप्रथे) द्युलोकसे भी अधिक विस्तृत है, तथा (पृथिवी चन) पृथ्वी भी (मह्ना) अपने बलसे (इन्द्रं न प्रति) इन्द्रको हरा नहीं सकती, (भीमः तुविष्मान्) भयंकर, अत्यन्त बलवान्, तथा (चर्षणिभ्यः आतपः) शत्रुओंको पीडित करनेवाला इन्द्र (तेजसे) प्रहार करनेके लिए (वज्रं) वज्रको (वंसगः न) जैसे बैल लडनेके लिए अपने सींगोंको तेज करता है, उसी प्रकार (शिशीते) तीक्ष्ण करता है ॥ १ ॥

१ अस्य वरिमा दिवः चित् वि पप्रथे— इस इन्द्रकी श्रेष्ठता द्युलोकसे भी ज्यादा फैली हुई है ।

२ पृथिवी चन मह्ना इन्द्रं न प्रति— पृथ्वी भी अपने बलसे इन्द्रको नहीं हरा सकती ।

[६५३] (सः) वह इन्द्र अपने (वरीमभिः) श्रेष्ठपनसे (विश्रिताः समुद्रियः नद्यः) सर्वत्र व्याप्त अन्तरिक्षके जल प्रवाहोंको (अर्णवः न) समुद्रके समान (प्रति गृभ्णाति) ग्रहण करता है, (इन्द्रः) इन्द्र (सोमस्य पीतये) सोमके पीनेके लिए (वृषायते) बहुत इच्छा करता है, (युध्मः सः) युद्ध करनेवाला वह इन्द्र (सनात्) प्राचीन कालसे ही (ओजसा पनस्यते) अपने बलके कारण प्रशंसित होता है ॥ २ ॥

१ युध्मः सः सनात् ओजसा पनस्यते— युद्ध करनेवाला वह इन्द्र प्राचीन कालसे ही अपने बलके कारण प्रशंसित होता है ।

[६५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (महः नृम्णस्य धर्मणां) महान् बलोंको धारण करनेवालोंपर भी (इरज्यसि) शासन करता है, अतः (भोजसे) अपने भोग करनेके लिए (तं पर्वतं न) उस मेघको नहीं बरसाता, यह (उग्रः) वीर इन्द्र (विश्वस्मै कर्मणे) सभी कर्मोंमें (पुरः हितः) आगे स्थापित किया जाता है, तथा वह (वीर्येण देवताति) अपने बलके कारण सब देवोंसे श्रेष्ठ (चेकिते) जाना जाता है ॥ ३ ॥

१ त्वं महः नृम्णस्य धर्मणां इरज्यसि— वह इन्द्र बडे बडे पौरुषोंको धारण करनेवालोंपर भी शासन करता है ।

२ उग्रः विश्वस्मै कर्मणे पुरः हितः— वह वीर इन्द्र सभी कार्योंमें आगे किया जाता है ।

भावार्थ— इस इन्द्रकी महिमा द्युलोकसे भी ज्यादा विस्तृत है। पृथ्वी भी उसकी महिमाका पार नहीं पा सकती । वह इन्द्र शत्रुओंके लिए भयंकर, अत्यन्त बलवान् तथा शत्रुओंको पीडित करनेवाला है, वह अपने शस्त्रास्त्रोंको सदा तीक्ष्ण रखता है । इसी प्रकार राष्ट्रके सैनिकों एवं राजाके शस्त्रास्त्र सदा तीक्ष्ण और सुसज्जित रहने चाहिए, ताकि हमलावरोंका किसी भी समय मुकाबला किया जा सके ॥ १ ॥

वह इन्द्र अपने बलके कारण प्राचीनकालसे प्रशंसित है, इसीलिए वह बडेसे बडे बलशाली पुरुषों पर भी शासन करता है, वह अपने स्वार्थके लिए प्रयत्न नहीं करता, उसके कर्म सर्वजनोंके लिए हितकारी होते हैं । इसीलिए वह सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ २-३ ॥

६५५ स इद् वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥ ४ ॥

६५६ स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद् दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥ ५ ॥

६५७ स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६ ॥

अर्थ— [६५५] (जनेषु इन्द्रियं प्रब्रुवाणः) मनुष्योंमें अपने बलको प्रकट करता हुआ (चारु) सुन्दर रूपवाला (सः इत्) वह इन्द्र ही (वने) जंगलमें (नमस्युभिः) स्तुति करनेकी इच्छावालों द्वारा (वचस्यते) प्रशंसित होता है, (यत्) जब (वृषा मघवा) बलवान् तथा धनवान् इन्द्र (क्षेमेण) सुखसे (धेनां इन्वति) स्तुतिको सुनता है, तब (वृषा) वह कामनाओंको पूर्ण करनेवाला इन्द्र (हर्यतः) धनकी कामना करनेवालोंको (छन्दुः भवति) प्रसन्न करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

१ जनेषु इन्द्रियं प्रब्रुवाणः— वह लोगोंमें अपनी शक्तिको प्रकट करता है।

[६५६] (सः युध्मः) वह योद्धा इन्द्र (जनेभ्यः) स्तोताओंके हितके लिए (मज्मना ओजसा) अपने महान् बलसे (महानि समिथानि इत्) बडे बडे युद्धोंको भी (कृणोति) करता है। और (वधं वज्रं) अपने आयुध वज्रको शत्रुपर (निघनिघ्नते) मारता है, (अधा चन) उसके बाद लोग (त्विषीमते इन्द्राय) तेजस्वी इन्द्रपर (श्रद् दधति) श्रद्धा रखते हैं ॥ ५ ॥

१ सः युध्मः जनेभ्यः ओजसा महानि समिथानि कृणोति— वह योद्धा इन्द्र मनुष्योंके हितके लिए अपने बलसे बडे बडे युद्धोंको करता है।

[६५७] (स हि) उस (श्रवस्युः) यशकी इच्छावाले तथा (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने (क्ष्मया ओजसा) शत्रुको मारनेवाले बलसे (कृत्रिमा सदनानि) शत्रुओंके निर्मित पुरोंको (विनाशयन्) नष्ट करते हुए, (वृधानः) बढते हुए, (ज्योतींषि अवृकाणि कृण्वन्) ज्योतियोंको सूर्यादिको आवरणरहित करते हुए (यज्यवे) यजमानके लिए (सर्तवै अपः) बहनेवाले जलोंको (अवसृजत्) बाहर निकाला ॥ ६ ॥

१ स सुक्रतुः कृत्रिमा सदनानि विनाशयन्— वह उत्तम कर्म करनेवाला वीर शत्रुके निर्माण किये नगरोंको विनष्ट करता है।

भावार्थ— इन्द्र जब शत्रुओंसे युद्ध करके मनुष्योंकी रक्षा करता हुआ उनका हित करता है, मनुष्योंमें अपना बल प्रकट करता है और सब मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करता है, तभी लोग उस पर श्रद्धा रखते हैं। इसी प्रकार जो राजा राष्ट्रकी रक्षा करेगा, प्रजाकी समृद्धिका ख्याल करेगा, और उनका हित करेगा, और इस प्रकार बलशाली सिद्ध होगा, तभी प्रजायें उस पर श्रद्धा करेंगी ॥ ४–५ ॥

उस उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने अपने बलसे शत्रुओंके सारे नगरोंको नष्ट किया और वृत्रने आवरणके द्वारा जिन सारी सूर्यादि ज्योतियोंको ढक दिया था, उस आवरणको हटाकर उन सब ज्योतियोंको प्रकट किया और मनुष्योंके हितके लिए जलप्रवाहोंको बहाया। इसी प्रकार राजा भी राष्ट्रमें नहरबम्बों आदिके द्वारा जलके प्रवाहकी उत्तम व्यवस्था करे और प्रकाशकी भी योजना उत्तम हो ॥ ६ ॥

६५८ दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते ऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ॥ ७ ॥
६५९ अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयो- रषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभि- स्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८ ॥

[५६]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती ।)

६६० एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषो ऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १ ॥

अर्थ— [६५८] हे (सोमपावन्) सोमको पीनेवाले इन्द्र ! (ते मनः दानाय अस्तु) तेरा मन दानके लिए हो, हे (वन्दनश्रुत्) स्तुतियोंको सुननेवाले इन्द्र ! अपने (हरी) घोडोंको (अर्वांचा आ कृधि) हमारी ओर कर, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ये ते सारथयः) जो तेरे सारथि हैं, वे (यमिष्ठासः) अच्छा नियंत्रण करनेवाले हैं, इसलिए, (केताः भूर्णयः) भयंकर शत्रु भी (त्वा न आ दभ्नुवन्ति) तुझे नहीं दबा सकते हैं ॥ ७ ॥

१ ते सारथयः यमिष्ठासः— इन्द्रके रथके सारथि घोडोंपर अच्छा नियंत्रण रखते हैं ।

२ केता भूर्णयः त्वा न आ दभ्नुवन्ति— प्रसिद्ध शत्रु भी तुझे दबा नहीं सकते ।

[६५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (हस्तयोः) अपने हाथोंमें (अप्रक्षितं) क्षयरहित (वसु) धनको (बिभर्षि) धारण करता है, तथा हे (श्रुतः) प्रसिद्ध इन्द्र ! (तन्वि) अपने शरीरमें (अषाळ्हं सहः) न दबाये जानेवाले बलको (दधे) धारण करता है, (ते तनूषु) तेरे शरीरोंमें (भूरयः क्रतवः) बहुतसे कर्म हैं, अतः तेरे शरीर (कर्तृभिः) कर्मोंसे (अवतासः न) जैसे कुएं मनुष्योंसे घिरे रहते हैं, उसी प्रकार (आवृतासः) घिरे हुए रहते हैं ॥ ८ ॥

१ इन्द्र ! हस्तयोः अ-प्रक्षितं वसु बिभर्षि— हे इन्द्र ! तू हाथोंमें क्षयरहित धनको धारण करता है ।

२ श्रुतः ! तन्वि अषाळ्हं सहः दधे— हे प्रसिद्ध इन्द्र ! अपने शरीरमें न दबाये जानेवाले बलको धारण करता है ।

३ ते तनूषु भूरयः क्रतवः— तेरे शरीरोंसे बहुतसे कर्म होते हैं ।

[५६]

[६६०] (भुर्वणिः) भरणपोषण करनेवाला (एषः) यह इन्द्र (तस्य) उस यजमानके (पूर्वीः चम्रिषः) बहुतसे सोमके पात्रोंसे (अत्यः योषां न) जैसे घोडा घोडीसे मिलता है, उसी प्रकार (अव उदयंस्त) मिलता है, यजमान भी (महे) बडे युद्धके लिए (हरियोगं) घोडोंसे जुडे हुए (ऋभ्वसं) चमकते हुए (हिरण्ययं रथं आवृत्य) सुनहरे रथको घेरकर बैठे हुए इस (दक्षं) बलवान् इन्द्रको (पाययते) सोम पिलाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रके सारथि घोडोंपर अच्छा नियंत्रण रखते हैं, इसलिए इन्द्र कभी भी युद्धोंमें पराजित नहीं होता, इसीके कारण वह भयंकरसे भयंकर शत्रुओंको भी दबा देता है। इसी प्रकार राजाके घोडे तैय्यार और हृष्टपुष्ट रहें, उसको अपने शासनमें रखनेवाले सारथि भी सुशिक्षित और अपने कार्यमें कुशल हों, इस प्रकार वह राजा अपने शत्रुओंपर अधिकार करनेवाला वीर हो ॥ ७ ॥

इस इन्द्रके पास कभी न क्षीण होनेवाले धन रहते हैं । वह अपने शरीरमें अप्रतिम बल धारण करता है । यह इन्द्र हमेशा कर्म करता रहता है, कभी भी निष्क्रिय या आलसी होकर नहीं बैठता । इसी प्रकार राजा भी हमेशा अत्युत्तम धन और ऐश्वर्यसे युक्त होकर बलशाली हो, तथा वह हमेशा राष्ट्रकी उन्नतिके लिए प्रयत्नशील रहे, कभी भी निष्क्रिय या आलसी होकर न बैठे ॥ ८ ॥

६६१ तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥ २ ॥
६६२ स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥
६६३ देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥ ४ ॥

अर्थ— [६६१] (सनिष्यवः संचरणे समुद्रं न) जैसे धनके चाहनेवाले, परदेश जानेके लिए समुद्रमें जाते हैं उसी प्रकार (नेमन्निषः) हविको ले जाते हुए (परीणसः) चारों तरफ जानेवाले (गूर्तयः) स्तोता (तं) उस इन्द्रके पास जाते हैं हे स्तोता ! (वेना गिरिं न) जैसे नदियां पहाडको घेरती हैं, उसी प्रकार (दक्षस्य विदथस्य) महान् यज्ञके स्वामी (सहः) बलवान् इन्द्रको (तेजसा) अपने तेजसे (अधि रोह) घेर लो ॥ २ ॥

१ सनिष्यवः संचरणे समुद्रं न— धन चाहनेवाले परदेश जानेके लिए समुद्रमें जाते हैं। परदेशमें जाकर व्यापार आदि करके धन कमाते हैं।

[६६२] (सः) वह इन्द्र (तुर्वणिः) शत्रुओंको मारनेवाला तथा (महान्) श्रेष्ठ है। (आयसः, दुध्रः) लोहमय कवचवाला, शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र (मदे) उत्साहमें (येन) जिस बलसे (मायिनं शुष्णं) मायावी शुष्ण असुरको (आ भूषु) कारागृहोंमें (दामनि) रस्सियोंसे (रामयत्) बांधता है, वह उसका (अरेणु) अनिन्दनीय (तुजा शवः) शत्रुको मारनेवाला बल (पौंस्ये) संग्राममें (गिरेः भृष्टिः न) पहाडकी चोटीके समान (भ्राजते) प्रकाशित होता ॥ ३ ॥

१ आयसः दुध्रः मदे मायिनं शुष्णं आभूषु दामनि रामयत्— वह लोहेके कवचवाला, शत्रुओंको मारने वाला इन्द्र उत्साहमें मायावी शुष्णको कारागृहोंमें रस्सियोंसे बांधता है।

२ तुजा शवः पौंस्ये भ्राजते— शत्रुको मारनेवाला बल संग्राममें चमकता है।

[६६३] (यः) जो इन्द्र (धृष्णुना शवसा) शत्रुको मारनेवाले बलसे (तमः बाधते) अन्धकारका नाश करता है, ऐसे (ऊतये त्वावृधा इन्द्रं) संरक्षणके लिए तेरे द्वारा बढाये गए इन्द्रसे (यदि) जब (देवी तविषी) दिव्य बल (सूर्यः उषसं न) उषासे सूर्यके समान (सिषक्ति) सम्बन्धित होता है, तब (अर्हरिष्वणिः) शत्रुओंको रुलानेवाला इन्द्र (बृहद् रेणुं गमयति) बहुत धूलिको उडाता है ॥ ४ ॥

१ धृष्णुणा शवसा तमः बाधते— वह इन्द्र अपने बलसे अन्धकारका नाश करता है।

२ यदि इन्द्रं देवी तविषी सिषक्ति अर्हरिष्वणिः बृहद् रेणुं गमयति— जब इन्द्रसे दिव्य बल प्रकट होता है, तब वह इन्द्र बहुत धूलि उडाता है अर्थात् जब बलसे युक्त होने पर सेनाओंके साथ शत्रु पर हमला करता है, तब सेनाके चलनेसे बहुत धूलि उडती है।

भावार्थ— यह इन्द्र हमेशा सोमसे घिरा रहता है और उत्तम रथपर बैठकर यह चारों ओर घूमता है। जिस प्रकार धन चाहनेवाले व्यापार करनेकी इच्छासे परदेश जाते हुए समुद्रको पार करते हैं, अथवा जिस प्रकार नदियां चारों ओरसे पहाडको घेरे रहती हैं, उसी प्रकार सब स्तुतियां इस इन्द्रके पास जाकर उसे घेरती हैं ॥ १–२ ॥

यह ऐश्वर्यवान् देव शत्रुओंको मारते समय लोहेका कवच धारण करके उत्साहमें शत्रुओंका विनाश करता है, तब उसका तेज उसी तरह चमकता है, जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशमें पर्वतोंकी चोटियां चमकती हैं ॥ ३ ॥

यह शक्तिशाली इन्द्र अपनी शक्तिसे बादलोंद्वारा फैलाए गए अन्धकारका नाश करता है और अपने उत्तम बलसे युक्त होता है, तब वह उषासे संयुक्त हुए हुए सूर्यके समान चमकता है और शत्रुओंपर आक्रमण करते समय इसकी सेनाके कारण बहुत धूलि उडती है ॥ ४ ॥

६६४ वि यत् तिरो धरुणमच्युतं रजो ऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥
६६५ त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥ ६ ॥

[५७]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती ।)

६६६ प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
६६७ अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥

अर्थ— [६६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बर्हणा) शत्रुको मारनेवाले तूने (यत्) जब (तिरः) वृत्र द्वारा ढके हुए (धरुणं अ-च्युतं रजः) सबको धारण करनेवाले, नष्ट न होनेवाले जलको (दिवः) द्युलोकसे (आतासु) सभी दिशाओंमें (अतिष्ठिपः) फैला दिया और (यत्) जब (मदे हर्ष्य) सोमसे हर्षित होते हुए (स्वमीळ्हे) युद्धमें (वृत्रं अहन्) वृत्रको मारा, तब (अपां अर्णवं) जलोंके समुद्रको (नि अब्जः) नीचे मुखवाला किया है ॥ ५ ॥

[६६५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (माहिनः त्वं) महान् तूने (ओजसा) बलसे (धरुणं) जलको (पृथिव्याः सदनेषु) पृथिवीके सब स्थानोंमें (धिषः) फैलाया, (त्वं) तूने ही (सुतस्य मदे) सोमके उत्साहमें (अपः अरिणाः) जलको बहाया तथा तूने ही (समया पाष्या) घर्षणशील बलसे (वृत्रस्य अरुजः) वृत्रको मारा ॥ ६ ॥

[५७]

[६६६] (यस्य) जिस इन्द्रकी (प्रवणे अपां इव) नीचेकी तरफ बहनेवाले प्रवाहके समान (दुर्धरं रायः) कठिनतासे वशमें करने योग्य सम्पत्ति (विश्व आयु अपावृतं) सभी मनुष्योंके लिए खुली हुई है, ऐसे उस (प्र मंहिष्ठाय) अत्यन्त दानशील, (बृहते बृहद्रये) महान् बडे ऐश्वर्यवाले, (सत्यशुष्माय) सच्चे बलवाले (तवसे) अत्यन्त महान् इन्द्रकी (मतिं भरे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

१ यस्य रायः विश्व-आयु अपावृतम्— इस इन्द्रकी सम्पत्ति सभी मनुष्योंके लिए खुली हुई है ।

[६६७] (यत्) जब (इन्द्रस्य) इन्द्रका (श्नथिता) शत्रुको मारनेवाला (हर्यतः हिरण्ययः वज्रः) सुन्दर सुनहरा वज्र (पर्वते न सं अशीत) बादलको मारनेमें कमजोर नहीं रहा (अध) तब हे इन्द्र ! (विश्वं) सारा जगत् (ते) तेरे लिए (इष्टये अनु असत्) यज्ञ करने लगा और (आपः निम्ना इव) जैसे जल नीचेकी ओर बहता है, उसी प्रकार (हविष्मतः सवना) यज्ञकर्ताके सोम तेरे पास बहने लगे ॥ २ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रने सोमरस पीनेके बाद उसके उत्साहमें आवरण करनेवाले वृत्रको मार कर उसके द्वारा रोककर रखे गए जलको पृथ्वीपर सब जगह बहाया ॥ ५-६ ॥

इस ऐश्वर्यवान् देवकी सम्पत्ति उसी प्रकार है, जिस प्रकार बहता हुआ पानी । अतः जिस प्रकार प्रवाहको इकट्ठा करना असंभव है, उसी प्रकार इसकी सम्पत्तिको इकट्ठा करना असंभव है, अथवा यदि किसी प्रकार पानी इकट्ठा कर भी दिया जाए तो वह सडने लगता है, उसी प्रकार इकट्ठा किया हुआ धन भी सडने लगता है अर्थात् निरुपयोगी हो जाता है। अतः धनका सदुपयोग मनुष्योंके हितकारी कामोंमें अवश्य होना चाहिए ॥ १ ॥

इस इन्द्रके शत्रुको मारनेवाला, सुन्दर और शक्तिशाली वज्र, सामर्थ्य और तेज लोगोंके हित करनेमें प्रयत्नशील रहते हैं । इस इन्द्रकी इस शक्तिको देखकर सारी प्रजा इस इन्द्रकी स्तुति करती है ॥ २ ॥

६६८ अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
६६९ इमे तं इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥
६७० भूरिं त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्य॒स्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

अर्थ— [६६८] हे ! (शुभ्र उषः) हे तेजस्विनी उषे ! (यस्य) जिस इन्द्रकी (धाम) तेजस्वी (नाम) प्रसिद्ध (इन्द्रियं ज्योतिः) शक्ति और तेज लोगोंको (श्रवसे) अन्नादि देनेके लिए (हरितः न) घोडेके समान (अयसे अकारि) इधर उधर चलते हैं, ऐसे (अस्मै भीमाय) इस वीर तथा (पनीयसे) प्रशंसनीय इन्द्रके लिए (न) अब (अध्वरे) यज्ञमें (नमसा आ भर) नमस्कार करो ॥ ३ ॥

१ यस्य धाम नाम इन्द्रियं ज्योतिः श्रवसे अयसे अकारि— इस इन्द्रके तेजस्वी तथा प्रसिद्ध सामर्थ्य और तेज लोगोंको अन्नादि देनेके लिए प्रयत्नशील होते हैं ।

[६६९] हे (प्रभूवसो पुरुस्तुत इन्द्र) बहुत धनवाले, बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! (ये) जो हम (त्वा आरभ्य) तेरा आश्रय लेकर (चरामसि) विचरण कर रहे हैं, वे (वयं) हम (ते) तेरे हैं, और (इमे) ये अन्य भी (ते) तेरे हैं, हे (गिर्वणः) हे वाणियोंसे स्तुत्य इन्द्र ! (त्वत् गिरः) तेरी स्तुतिकी (अन्यः नहि सघत्) दूसरा कोई हिंसा नहीं कर सकता, अतः (नः तद् वचः) हमारे उस प्रार्थनाकी (क्षोणीः इव) अन्य मनुष्योंकी तरह (प्रति हर्य) इच्छा कर ॥ ४ ॥

सघत्— हिंसा करना ' षघ् हिंसायाम् '

१ त्वत् गिरः अन्यः नहि सघत्— इस इन्द्रके यशको दूसरा कोई नष्ट नहीं कर सकता ।

[६७०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते वीर्यं भूरि) तेरा बल महान् है, हम (तव स्मसि) तेरे हैं, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (अस्य स्तोतुः) इस स्तोताकी (कामं आ पृण) कामना पूर्ण कर, (बृहती द्यौः) महान् द्युलोक (ते वीर्यं अनु ममे) तेरे पराक्रमकी प्रशंसा करता है, (च) और (इयं पृथिवी) यह पृथिवी (ते ओजसे) तेरे बलके आगे (नेमे) झुकती है ॥ ५ ॥

ममे— शब्द करना, प्रशंसा करना, नापना " माङ् माने शब्दे च "

१ बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु ममे— महान् द्युलोक भी तेरे पराक्रमकी प्रशंसा करता है ।

२ इयं पृथिवी ते ओजसे नेमे— यह पृथिवी तेरे बलके आगे झुकती है ।

भावार्थ— इस प्रकार वह इन्द्र हर तरहसे लोगोंका हित करता है। इसीलिए इसकी सब ओरसे स्तुति होती है ॥३॥

जो बिना किसी छल कपटके आत्मसमर्पणके भावसे पूर्णतया इस इन्द्रकी शरणमें जाते हैं, वे इस इन्द्रके ही हो जाते हैं । तब उस भक्तका कोई भी कुछ अहित नहीं कर सकता । क्योंकि यह बहुत सामर्थ्यशाली है । इसलिए इसके यशको भी कोई नष्ट नहीं कर सकता या कलंक नहीं लगा सकता । इतने उत्तम चरित्रवाला राजा हो ॥ ४ ॥

यह सत्य है कि इन्द्र ही सब तरहके बलोंको धारण करता है । वह वीर है क्योंकि वह भयानकसे भयानक शत्रुको भी आसानीसे मार देता है ॥ ५ ॥

६७१ त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६ ॥

[५८]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती; ६-९ त्रिष्टुप् ।)

६७२ नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥ १ ॥

६७३ आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥ २ ॥

अर्थ— [६७१] हे (वज्रिन् इन्द्र) हे वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तूने (महां उरुं तं पर्वतं) महान् बलशाली उस मेघके (वज्रेण) अपने वज्रसे (पर्वशः चकर्तिथ) टुकडे टुकडे कर डाले और (निवृताः अपः) रुके हुए जलप्रवाहोंको (सर्तवै) बहनेके लिए (अवासृजः) बाहर निकाला, (केवलं) केवल तूही (विश्वं सहः) सब बलोंको (दधिषे) धारण करता है, यह (सत्रा) सत्य है ॥ ६ ॥

सत्रा, सत्य— सत्रा इति सत्य नाम ' सत्रा इत्था (निरु. ३।१०।३) इति तन्नामसु पाठात् '

१ केवलं विश्वं सहः दधिषे— केवल वह इन्द्र ही सब बलोंको धारण करता है ।

[५८]

[६७२] (नू चित् सहो-जाः) निःसन्देह बलके साथ उत्पन्न हुआ (अमृतः) यह अमर अग्निदेव (नि तुन्दते) कभी व्यथित नहीं होता (यत् विवस्वतः दूतः अभवत्) जिस समय वह विवस्वान्का सहाय्यकारी हुआ (साधिष्ठेभिः पथिभिः) उस समय उत्तम सहाय्यक मार्गोंसे (रजः वि ममे) उसने अन्तरिक्ष-लोकमें गमन किया प्रकाश किया और (देवताता हविषा आ विवासति) देवताओंकी शक्ति फैलानेके कार्यमें हविके अर्पणसे देवोंका आदरातिथ्य भी किया ॥ १ ॥

[६७३] (अजरः) जरारहित अग्नि (स्वं अद्म युवमानः) अपने भक्ष्यके साथ मिलता हुआ (तृषु अविष्यन्) तुरन्त ही खाद्य खाकर (अतसेषु तिष्ठति) काष्ठोंपर जलता रहता है (प्रुषितस्य पृष्ठं) घी सिंचित होनेपर वह (अत्यः न) घोडेके समान (रोचते) शोभता है (दिवः सानु न) और द्युलोकके शिखरपर रहनेवाले मेघके समान (स्तनयन्) गर्जता हुआ (अचिक्रदत्) वारंवार शब्द करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— वह दयालु है, क्योंकि वह आत्मसमर्पणके भावसे आनेवाले अपने भक्तकी हर तरहसे सहायता करता है और उसे किसी भी प्रकारका दुःख नहीं होने देता । इसी प्रकार राजा भी अपने शरणागतोंकी हर तरहसे रक्षा करनेवाला हो ॥ ६ ॥

यह अग्नि बलसे उत्पन्न होता है । यह बलके पुत्र होनेसे कभी भी दुःखी नहीं होता । यही अग्नि अन्तरिक्षमें जाकर सूर्यको प्रकाशित करता है । अन्तरिक्षमें जाकर यह सबको प्रकाशित करता है । और सभी देवताओंकी यह सेवा करता है जो बलवान् है, उसको किसी तरहके कष्ट नहीं हो सकते । जो निर्बल है, वही सदा दुःखी होता है । इसलिए सुख प्राप्त करनेकी इच्छावालोंको बलवान् होना चाहिए ॥ १ ॥

अग्नि अपने खाने योग्य पदार्थोंको खाता हुआ बढता है और अपनी सुरक्षा करता है । उसी प्रकार जो अपने स्वास्थ्यके अनुकूल पदार्थोंको खाता है, वही अपनी सुरक्षा और अपनी वृद्धि कर सकता है । इस प्रकारसे बढा हुआ मनुष्य बहुत बलशाली होकर उच्चस्थानपर जाकर विराजमान होता है ॥ २ ॥

६७४ क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३ ॥
६७५ वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥
६७६ तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥ ५ ॥
६७७ दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ ६ ॥

अर्थ— [६७४] (क्राणा, रुद्रेभिः वसुभिः पुरोहितः) कर्तृत्वशाली, रुद्रों और वसुओं द्वारा प्रमुख स्थानमें रखा हुआ (होता, अमर्त्यः रयिषाट् निषत्तः देवः) हवनकर्ता, अमर शत्रुके धनोंको जीतकर लानेवाला यहां विराजमान हुआ देव (रथः नः) रथकी तरह (विक्षु ऋञ्जसानः) प्रजाओंमें वर्णनीय होकर (आयुषु आनुषक्) सब लोगोंमें क्रमसे (वार्या वि ऋण्वति) स्वीकार करने योग्य धन लाता है ॥ ३ ॥

[६७५] (वात-जूतः) वायु द्वारा प्रेरित होकर (अतसेषु जुहुभिः सृण्या तुविष्वणिः) लकडियोंमें जब अपनी ज्वालाओंकी तेजस्विताके साथ बडा शब्द करता हुआ (वृथा वि तिष्ठते) सहजहीसे रहता है (हे अजर रुशदूर्मे अग्ने) हे जरारहित तेजस्वी ज्वालाओंवाले अग्ने ! (यत् तृषु वनिनः वृषायसे) तब तत्काल वृक्षोंमें अपना बल प्रकट करते हुए (ते एम कृष्णं) तेरा मार्ग काला दिखाई देता है ॥ ४ ॥

[६७६] (वातचोदितः तपुर्जम्भः) वायु द्वारा प्रेरित हुआ ज्वालारूप दंष्ट्रावाला अग्नि (वने साह्वान्) वनमें बलसे (यूथे वंसगः न, अव वा वाति) गौसमुदायमें सांडकी तरह, घूमता है (अक्षितं रजः पाजसा अभि व्रजन्) जब यह अक्षय अन्तरिक्षमें अपने बलसे घूमता है, (पतत्रिणः स्थातुः चरथं भयते) तब सारे स्थावर जंगम इस पक्षी-के समान वेगसे जानेवालेसे डरते हैं ॥ ५ ॥

[६७७] (अग्ने) हे अग्ने ! (मानुषेषु भृगवः) मनुष्योंमें भृगुओंने (दिव्याय जन्मने) देवत्वकी प्राप्तिके लिये (चारुं रयिं न) सुन्दर धनके समान (जनेभ्यः सुहवं, होतारं) मनुष्योंके द्वारा अच्छे प्रकारसे आवाहन करने योग्य (अतिथिं) अतिथिके समान पूज्य और (वरेण्यं, मित्रं न शेवं) वरण करने योग्य, मित्रके समान सुखकारी (वा आ दधुः) तुझको धारण किया ॥ ६ ॥

१ भृगवः मानुषेषु जनेभ्यः दिव्याय जन्मने वरेण्यं आ दधुः— भृगुओंने मनुष्योंके समाजमें सब मनुष्योंके कल्याण करने और उनके जन्मको दिव्य बनानेके लिए इस अग्रणीको स्थापित किया ।

२ सुहवः, चारुः, होता, अतिथिः— यह अग्नि उत्तम प्रकारसे स्तुतिके योग्य, सुन्दर, देवोंको बुलानेवाला और अतिथिके समान पूजनीय है ।

भावार्थ— कर्ममें कुशल, उद्यमी, अमर, शत्रुका पराभव करनेवाला, दैवी सम्पत्तिसे युक्त यह नेता अग्नि अपनी उन्नतिके लिए हमेशा प्रयत्नशील और गतिशील रहता है । मनुष्योंमें सदा उत्तम धन देता है । इसी तरह मनुष्यको भी अपनी उन्नतिके लिए हमेशा प्रयत्नशील रहना चाहिए । कभी अयोग्य वस्तुको स्वीकार नहीं करना चाहिए ॥ ३ ॥

यह अग्नि वायुसे प्रेरित होकर हमेशा बढता है । तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त होता है और वनोंपर अपना प्रभाव डालता है । जिधरसे यह अग्नि जाता है, वह मार्ग काला पड जाता है । उसी प्रकार मनुष्य अपने सहायकोंसे प्रेरणा पाकर आगे बढता जाए और मार्गोंपर अपने चिन्ह छोडता जाए ॥ ४ ॥

ज्वालारूपी जबडोंवाला यह अग्नि वनोंका पराभव करता है, अन्तरिक्षमें भ्रमण करता है । जब वनमें आग लगती है, तब इसकी ज्वालायें आकाशमें खूब ऊंची जाती हैं । इसके इस भयंकर रूपको देखकर सारे पशुपक्षी घबडा जाते हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपने शत्रुओंका पराभव करके अपने यशको चारों ओर फैलाये, ताकि शत्रु उसके यशको देखकर घबडायें ॥५॥

हे अग्ने ! तुझे मानवोंमें भृगु ऋषियोंने दिव्यत्वके रक्षणके लिये उत्तम रीतिसे स्थापित किया था । तथा श्रेष्ठ सम्मान्य अतिथिके समान और मित्रके समान पूज्य मानने लगे थे ॥ ६ ॥

६७८ होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ७ ॥
६७९ अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ॥ ८ ॥
६८० भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

अर्थ— [६७८] (सप्तजुह्वः) सात होता लोग और (वाघतः) तथा स्तुति करनेवाले ऋत्विक् लोग (अध्वरेषु) बडे बडे यज्ञोंमें (यविष्ठं, होतारं) श्रेष्ठतम देवताओंको बुलानेवाले (यं वृणते) जिस अग्निका वरण करते हैं। उस (विश्वेषां वसूनां अरतिं) सम्पूर्ण धनोंको प्राप्त करानेवाले (अग्निं) अग्निकी (प्रयसा सपर्यामि) हवि अन्नादिसे मैं सेवा करता हूं । और उससे (रत्नं यामि) रत्नकी प्राप्ति भी करता हूँ ॥ ७ ॥

१ अध्वरेषु वाघतः— हिंसारहित अकुटिल कर्मोंमें इस अग्निकी प्रशंसा की जाती है ।

२ विश्वेषां वसूनां अरतिः— यह अग्रणी सब तरहके धनोंका दाता है ।

[६७९] (सहसः सूनो) हे बलसे उत्पन्न और (मित्रमहः) मित्रका महत्त्व बढानेवाले अग्ने ! (नः स्तोतृभ्यः) हम स्तुति करनेवालोंके लिये (अद्य) आज इस कर्ममें (अछिद्रा शर्म यच्छ) छिद्रसे रहित सुख दे; क्योंकि हे (ऊर्जो नपात् अग्ने) बलको न गिरानेवाले अग्ने ! हम (गृणन्तं) स्तुति करनेवालेकी जिस प्रकार (आयसीभिः पूर्भिः) लोहेके दृढ किलोंसे रक्षा करते हैं, उसी प्रकार तू (अंहसः उरुष्य) पापोंसे हमारी रक्षा कर ॥ ८ ॥

१ मित्रमहः— मित्रकी महत्ता बढानेवाला ।

२ अच्छिद्रं शर्म यच्छ— यह अग्रणी अक्षय सुख देता है ।

३ आयसीभिः पूर्भिः गृणन्तं उरुष्य— लोहेकी नगरियोंसे स्तोताकी रक्षा कर । वैदिक समयमें नगरियोंका रक्षण लोहेके किलोंसे होता था । कई नगरियोंके चारों ओर लोहेके किले रहते थे ।

[६८०] (विभावः) हे प्रकाशसे युक्त अग्ने ! (गृणते) यजमानको तू (वरूथं भव) अनिष्टसे बचानेवाला हो । (मघवन्) हे धनसम्पन्न अग्ने ! तू (मघवद्भ्यः) धनयुक्त यजमानके लिये (शर्म) सुखकारी हो । (अग्ने) हे अग्ने ! (गृणन्तं, अंहसः उरुष्य) स्तुति करते हुये हमारी पापोंसे रक्षा कर । (धियावसुः) बुद्धिसे धन देनेवाला यह अग्नि (प्रातः मक्षू जगम्यात्) सबेरे शीघ्र ही आवे ॥ ९ ॥

भावार्थ— सात होता और ऋत्विज यज्ञोंमें श्रेष्ठ होता अग्निको स्वीकारते हैं । और सब धनोंको प्राप्त करते हैं । हविसे उस अग्निका सत्कार करते हैं और रमणीय धन प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! स्तुति करनेवालोंको तेजस्वितासे युक्त सुख दे । हे अन्न उत्पन्न करनेवाले अग्ने ! स्तुति करनेवालोंको लोहेके किलोंके समान, पापोंसे दूर रख । उनको सुरक्षित रख ॥ ८ ॥

हे प्रकाशमान देव अग्ने ! सुरक्षित घरके समान तू हमारा उत्तम संरक्षण करनेवाला हो । हे धनवान् अग्ने ! यजमानको उत्तम सुख दे । जो स्तुति करते हैं उनको तू उत्तम आनंद दे तथा उनकी रक्षा पापसे कर ॥ ९ ॥

[५९]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- अग्निर्वैश्वानरः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६८१ व॒या इद॑ग्ने अ॒ग्नय॑स्ते अ॒न्ये त्वे विश्वे॑ अ॒मृता॑ मादयन्ते ।
वैश्वा॑नर॒ नाभि॑रसि क्षिती॒नां स्थूणे॑व॒ जनाँ॑ उप॒मिद् य॑यन्थ ॥ १ ॥
६८२ मू॒र्धा दि॒वो नाभि॑र॒ग्निः पृ॑थि॒व्या अथा॑भवदर॒ती रोद॑स्योः ।
तं त्वा॑ दे॒वासो॑ऽजनयन्त दे॒वं वैश्वा॑नर॒ ज्योति॒रिदार्या॑य ॥ २ ॥
६८३ आ सूर्ये॑ न र॒श्मयो॑ ध्रु॒वासो॑ वैश्वा॒नरे॑ दधिरे॒ऽग्ना वसू॑नि ।
या पर्व॑ते॒ष्वोष॑धीष्व॒प्सु या मानु॑षे॒ष्वसि॒ तस्य॒ राजा॑ ॥ ३ ॥
६८४ बृ॒ह॒ती इ॑व सू॒नवे॒ रोद॑सी॒ गिरो॒ होता॑ मनु॒ष्यो॒३॒ न दक्षः॑ ।
स्व॑र्वते स॒त्यशु॑ष्माय पू॒र्वीर्वैश्वान॒राय॒ नृत॑माय य॒ह्वीः ॥ ४ ॥

---

[५९]

अर्थ— [६८१] (अग्ने) हे अग्ने ! (अन्ये अग्नयः) दूसरे सब अग्नि (ते वयाः इत्) तेरी शाखाएं हैं (विश्वे अमृताः) सब देव (त्वे मादयन्ते) तेरे पाससे ही आनन्द पाते हैं (वैश्वानर) हे विश्वके नेता ! (क्षितीनां नाभिः असि) सब मानवों-प्राणियोंका-तू नाभि है (उपमित् स्थूणा इव) समीपस्थ स्तम्भके समान (जनान् ययन्थ) सब जनोंका तू आधार है ॥ १ ॥

[६८२] (अग्निः) यह अग्नि (दिवः मूर्धा) द्युलोकका सिर (पृथिव्याः नाभिः) और पृथ्वीकी नाभि है (अथ रोदस्योः अरतिः अभवत्) यह द्यावापृथ्वीका स्वामी है (तं त्वा देवं) उस तुझ देवको (देवासः अजनयन्त) सब देव प्रकट करते हैं । (वैश्वानर) हे विश्वके नेता ! (आर्याय ज्योतिः इत्) आर्योंके लिये तूनें प्रकाशका मार्ग बताया है ॥ २ ॥

[६८३] (सूर्ये ध्रुवासः रश्मयः न) सूर्यमें जिस तरह स्थायी प्रकाश किरणें रहती हैं, (वैश्वानरे अग्नाः) उसी तरह इस विश्वके नेता अग्निमें (वसूनि आ दधिरे) सब धन रहते हैं । (या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु) जो पर्वतों, औषधियों, जलों (या मानुषेषु) तथा मानवोंमें संपत्तियाँ हैं (तस्य राजा असि) उसका तू राजा है ॥ ३ ॥

[६८४] (रोदसी सूनवे बृहती इव) द्यावापृथिवी इस पुत्ररूप विश्वनेताके लिए बडी भारी विस्तृत सी हो गयी है (मनुष्यः न) मनुष्यके समान (दक्षः होता) दक्ष होता (स्वर्वते सत्यशुष्माय नृतमाय वैश्वानराय) इस सामर्थ्यवान्, सत्य बलसे युक्त, मानवश्रेष्ठ विश्वनेताके लिये (पूर्वीः यह्वीः गिरः) प्राचीनकालसे चली आयी विशाल स्तुतियां गाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सभी प्राणियोंका केन्द्र है, उसीके सहारे सब प्राणी जीवित रहते हैं । जिस प्रकार गृह खंभोंके आधारपर खडे रहते हैं, उसी प्रकार सभी प्राणी इसीके सहारे रहते हैं । इसीलिए यह विश्वका नेता है । यह सारे विश्वका नाभि है । यह श्रेष्ठ सज्जनोंको प्रकाशका मार्ग दिखाता है ॥ १-२ ॥

जो कुछ भी पर्वतों, औषधियों, जलों और मानवोंमें है, अर्थात् जो कुछ इस विश्वमें है, उसका यह राजा है उस सबका स्वामी और अधिपति है । उसके यजनके लिए ही इन सब पदार्थोंका स्पष्टीकरण होना चाहिए । जिस प्रकार सूर्यकी किरणें सूर्यमें समाई रहती हैं, उसी प्रकार सभी विश्व इस अग्निमें समाया हुआ है । इसलिए इसका विशाल यश द्यु और पृथ्वीमें भी नहीं समा सकता ॥ ३-४ ॥

६८५ दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ५ ॥
६८६ प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥ ६ ॥
६८७ वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टि-र्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७ ॥

[६०]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६८८ वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा ॥ १ ॥

अर्थ— [६८५] हे (जातवेदः वैश्वानरः) वेदज्ञाता विश्वनेता ! (ते महित्वं) तेरी महिमा (बृहतः दिवः चित्) बडे द्युलोकसे भी (प्र रिरिचे) बडी है (मानुषीणां कृष्टीनां) मानवी प्रजाओंका (राजा असि) तू राजा है (युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) तू युद्धसे देवोंके लिये धन देता है ॥ ५ ॥

[६८६] (वृषभस्य महित्वं प्र वोचं नु) मैं बलवान् देवके महात्म्यका वर्णन करता हूं (पूरवः यं वृत्रहणं सचन्ते) सब नागरिकजन इस वृत्रनाशकके पास पहुंचते हैं (वैश्वानरः अग्निः) विश्वनेता अग्नि (दस्युं जघन्वान्) दस्युका वध करता है (काष्ठाः अधूनोत्) दिशाओंको हिला देता है (शम्बरं अव भेत्) और शम्बरका भेदन करता है ॥ ६ ॥

[६८७] (वैश्वानरः महिम्ना विश्वकृष्टिः) यह विश्वनेता अपनी महिमासे सब मानवका हितकारी है (भरद्वाजेषु यजतः विभावा) अन्नका दान करनेवालोंमें यह पूजनीय और वैभवशाली है, (शातवनेये पुरुणीथे) शतवनके पुत्र पुरुनीथके यज्ञमें (सूनृतावान् अग्निः शतनीभिः जरते) यह सत्यवचनी अग्निदेव सैकडों गानोंसे गाया जाता है ॥ ७ ॥

[६०]

[६८८] (वह्निं) हविको ढोनेवाले, (यशसं) कीर्तिसे युक्त (विदथस्य केतुं) यज्ञके झण्डेके समान, (सुप्राव्यं) अच्छी प्रकारसे रक्षा करने योग्य, (सद्यः अर्थं) शीघ्र धन प्राप्ति करानेवाला, (दूतं) देवताओंको हवि पहुँचानेके लिये दूत कार्य करनेके लिये नियुक्त, (द्विजन्मानं) एक द्युलोकमें दूसरे पृथ्वी लोकमें ऐसे दो लोकोंमें दो बार जन्म लेनेवाले, (रयिं इव) धनकी तरह (प्रशस्तं) श्रेष्ठ इस प्रकारके अग्निको (मातरिश्वा) वायुने (भृगवे रातिं भरत्) भृगुके लिये मित्र बनाया ॥ १ ॥

भावार्थ— मानवी प्रजाजनोंका यह राजा है । राष्ट्रका शासन प्रजाओं द्वारा ही हो, इसीका नाम स्वराज्य है । समाजका शासन समाज द्वारा समाजकी उन्नतिके लिए ही हो । समाजमें सभी देव हों । सभी दैवी सम्पत्तिसे युक्त हों । ये देव युद्धादि प्राप्त धनोंका उपयोग उत्तम कार्योंमें करें ॥ ५ ॥

नागरिक जन शत्रुका वध करनेवाले राजाकी ही सेवा करते हैं । सब जनोंका हित करनेवाला अग्रणी दस्युका वध करता है । दस्युओंको दण्ड देकर आर्योंकी सुरक्षा करनी चाहिए ॥ ६ ॥

अन्न दान करनेवालोंमें यही पूजनीय देव है । अन्न दान करनेमें सब जनोंकी सुस्थिति ही मुख्यतया देखनी होती है । यहां अग्निके रूपमें 'वैश्वा-नर' (सार्वमानुष) अग्निका विशेष वर्णन है । वैश्वानर- सर्व मानवसंघ अग्निका ही एक रूप है ॥ ७ ॥

यह अग्नि यश देनेवाला, धन देनेवाला और धनकी तरह प्रशंसनीय है । यह भरणपोषण करनेवालेका मित्र होता है ॥ १ ॥

६८९ अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित् पूर्वो न्यसादि होता ऽऽपृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥ २ ॥
६९० तं नव्यसी हृद आ जायमान-मस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥
६९१ उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥
६९२ तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥

अर्थ— [६८९] (हविष्मन्तः उशिजः) हविवाले, उन्नतिकी इच्छा करनेवाले याजक (ये च मर्ताः) और जो साधारण मानव हैं (उभयासः अस्य शासु सचन्ते) दोनों इसके शासनमें रहते हैं। (आपृच्छ्य वेधाः होता विश्पतिः) प्रशंसनीय, कर्मकुशल, हवनकर्ता और प्रजापालक यह अग्नि (दिवः चित् पूर्वः) दिनसे पूर्व ही (विक्षु नि असादि) प्रजाजनोंमें आकर स्थित हो जाता है ॥ २ ॥

१ उभयासः अस्य शासु सचन्ते— दोनों प्रकारके लोग इसके शासनमें रहते हैं।

२ आपृच्छ्यः दिवः पूर्वं न्यसादि— प्रशंसनीय यह अग्नि सूर्योदयके पूर्व ही अपना कर्तव्य करनेके लिए प्रजाओंमें आ जाता है। यज्ञमें जलदी ही अग्निकी स्थापना की जाती है।

[६९०] (वृजने) संग्रामके प्राप्त होनेपर (प्रयस्वन्तः ऋत्विजः मानुषासः आयवः) अन्नसे युक्त, ऋतुके अनुसार कर्म करनेवाले, मननशील तथा प्रगति करनेवाले मनुष्य (यं जीजनन्त) जिस अग्रणीको उत्पन्न करते हैं, ऐसे (हृदः जायमानं) हृदयमें प्रकट होनेवाले (मधुजिव्हं तं) मधुरभाषी उस अग्रणीको (अस्मत् नव्यसी सुकीर्तिः अश्याः) हमारी नवीन और उत्तम कीर्ति प्राप्त हो ॥ ३ ॥

१ मधुजिव्हं अस्मत् सुकीर्तिः अश्याः— मधुरभाषी उस अग्रणीतक हमारी उत्तम कीर्ति पहुंचे।

[६९१] (उशिक्) कामना करने योग्य (पावकः) पवित्र करनेवाला, (वसुः) धनका स्वामी (वरेण्यः) श्रेष्ठ, (होता) हवनका कर्ता अग्नि (विक्षुः मानुषेषु आधायि) मनुष्यसमाजमें स्थापित किया जाता है। (दमूनाः) शत्रुका दमन करनेवाला, (गृहपतिः) घरोंका पालनकर्ता, (रयीणां रयिपतिः दमे आभुवत्) श्रेष्ठ सब धनोंका स्वामी (अग्निः) यह अग्नि यज्ञशालामें प्रकट होता है ॥ ४ ॥

[६९२] हे (अग्ने) अग्ने ! (गोतमासः वयं) गोतमगोत्रोत्पन्न हम (वाजंभरं मर्जयन्तः आशुं न) अन्नको देनेवाले तुझे घोडेकी तरह पवित्र करते हुए। (रयीणां पतिं त्वा) धनके स्वामी तेरी (मतिभिः प्रशंसामः) अपनी बुद्धियोंसे प्रशंसा करते हैं। (धिया वसुः, प्रातः मक्षु जगम्यात्) कर्म और बुद्धिसे प्राप्त होनेवाला तू हमें प्रातःकालके समयमें शीघ्र ही प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— सभी तरहके प्राणी इस अग्निके शासनमें रहते हैं। यह हमेशा निरलस होकर अपना कार्य सबसे पूर्व कर डालता है। इसलिए यह अग्रणी प्रजाओंमें प्रशंसित होता है ॥ १ ॥

सब प्राणियोंके शरीरमें उष्णता रूप अग्निके रहनेतक ही उनके शरीर अपना अपना कार्य करनेमें समर्थ होते हैं शरीरकी उष्णता दूर हुई तो शरीर मरता है। कार्य करनेमें असमर्थ होता है ॥ २ ॥

यह वीर अग्रणी संग्राममें अपने शौर्य दिखाकर अपना बल प्रकट करता है। अतः हम भी ऐसे उत्तमोत्तम कर्म करें कि हमारी कीर्ति भी इस अग्रणीतक पहुंचे ॥ ३ ॥

यह अग्नि पवित्र करनेवाला तथा धनवान् होनेके कारण मनुष्योंमें सबसे आगे स्थापित किया जाता है। इसी प्रकार सब मनुष्योंको चाहिए कि वे भी सब तरहके उत्तम धनोंके स्वामी होकर सबसे आगे रहें ॥ ४ ॥

पवित्र हुए हुए इस धनके स्वामी अग्रणीकी हम अपनी बुद्धियोंसे प्रशंसा करते हैं। वह अग्रणी हमें प्रतिदिन प्राप्त हो ॥ ५ ॥

[६१]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६९३ अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओह-मिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥

६९४ अस्मा इदु प्रयं इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥

६९५ अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥

६९६ अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्ती-न्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥

---

[६१]

अर्थ— [६९३] (अस्मै इत् उ तवसे) इसही समर्थ शीघ्रकारी (तुराय माहिनाय ऋचीषमाय) वेगवान् महिमावाले, वर्णनीय गुणवाले (अध्रिगवे इन्द्राय) अप्रतिबंधगतिवाले इन्द्रके लिये मैं, (प्रयः न,) अन्नके दानके समान (ओहं स्तोमं राततमा ब्रह्माणि प्र हर्मि) मननीय स्तोत्र और दातृत्वकी जिनमें अधिक प्रशंसा है ऐसे मंत्र अर्पण करता हूं ॥ १ ॥

[६९४] (अस्मै इत् उ,) मैं इस इन्द्रके लिये (प्रयः इव) अन्न देनेके समानही (प्र यंसि) सोमरस देता हूं (बाधे सुवृक्ति) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्रके लिये (आङ्गूषं भरामि) उत्तम स्तोत्र अर्पण करता हूँ (प्रत्नाय पत्ये इन्द्राय) विश्वके पुराने रक्षक इन्द्रके लिये (हृदा मनसा मनीषा) हृदय, मन और बुद्धिसे (धियः मर्जयन्तः) विचारोंको शुद्ध करनेवाले अनेक स्तोत्र किये हैं ॥ २ ॥

[६९५] (मतीनां सुवृक्तिभिः) बुद्धिपूर्वक किये, उत्तम शत्रुभावनाशक शुभ वाणियोंद्वारा (मंहिष्ठं सूरिं वावृधध्यै) महान् विद्वान् इन्द्रकी महत्ता बढानेके लिये (अस्मै इत्) उसी इन्द्रको (उ त्यं उपमं स्वर्सां आंगूषं) उस उपमायोग्य धनप्रापक घोषको (आस्येन भरामि) अपने मुखसे मैं भर देता हूं, बोल देता हूं ॥ ३ ॥

[६९६] (त्वष्टा इव रथं न) जैसे कारीगर रथको बनाता है (अस्मै इत् उ तत्सिनाय गिर्वाहसे मेधिराय इन्द्राय) वैसे ही इस सब सिद्धि करनेवाले प्रशंसनीय बुद्धिमान् इन्द्रके लिये (स्तोमं गिरः विश्वं इन्वं च सुवृक्ति सं हिनोमि) मैं अपनी वाणियोंके द्वारा सबको उत्तेजित करनेवाले स्तोत्रको प्रेरित करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र बडा ही सामर्थ्यवान्, शीघ्रतासे काम करनेमें प्रवीण, आनन्दपूर्ण, हर्षयुक्त, नित्य उत्साही, अन्योंको आनन्द देनेवाला, राज्य शासन करनेमें समर्थ, सभी विद्याओंमें निपुण और जिसकी सम्पत्ति कोई चुरा नहीं सकता ऐसा सामर्थ्यशाली है । इन सभी गुणोंसे राजाको युक्त होना चाहिए ॥ १ ॥

यह इन्द्र पुरातन प्रथा एवं उत्तम पद्धतियोंको सुरक्षित रखता है । वह सबका अधिपति है । उसके लिए की गई स्तुतियां हृदय, मन और विचारोंको शुद्ध करनेवाली हैं । प्राचीनत्वकी रक्षा राजाको अवश्य करनी चाहिए । क्योंकि प्राचीन प्रथाओंमें राष्ट्रकी संस्कृति और सभ्यता निहित रहती है ॥ २ ॥

यह इन्द्र बहुत प्रशंसनीय दाता है, ज्ञानी, विद्वान् है सबसे श्रेष्ठ है । ऐसे उत्तम देवकी उत्तम मनसे हमेशा ऐसी स्तुति करनी चाहिए कि उसका उत्साह बढे और वह शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ हो । राजाओंको हमेशा अपने पास ऐसे कवि रखने चाहिए कि जो हमेशा अपनी कविताओंसे उसका उत्साह और जोश बढाते रहें ॥ ३ ॥

वह इन्द्र अन्नवान् है, प्रशंसनीय है और बुद्धि देनेवाला तथा ज्ञानका देनेवाला है । जैसे कारीगर रथको बनाता है, उसी प्रकार मैं अपनी स्तुतियोंसे इन्द्रको उत्साहित करता हूँ ॥ ४ ॥

६९७ अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्ये—न्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥
६९८ अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ६ ॥
६९९ अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥
७०० अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नी—रिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥

अर्थ— [६९७] (श्रवस्या) धनकी इच्छासे (अस्मै इत् इन्द्राय) इस इन्द्रके लिए (अर्कं) स्तोत्रको (सप्तिं इव) जैसे घोडेको रथसे संयुक्त करते हैं, उसी प्रकार (जुह्वा) वाणीसे (समंजे) संयुक्त करता हूँ, उस (वीरं, दान-ओकसं) शूरवीर, दान देनेवाले (गूर्तश्रवसं) श्रेष्ठ यशवाले (पुरां दर्माणं) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रकी (वन्दध्यै) स्तुति करनेके लिये मैं बोलता हूँ ॥ ५ ॥

[६९८] (तुजन्) शत्रुकी हिंसा करते हुए (ईशानः) सबके स्वामी, (कियेधाः) अपरिमित बलवाले इन्द्रने (तुजता) शत्रुओंको मारते हुए (वृत्रस्य चित् मर्म) वृत्रके मर्म स्थानपर (येन विदद्) जिस वज्रसे प्रहार किया, उस (सु-अपस्तमं) उत्तम कर्म करनेवाले, (स्वर्यं) शत्रुपर उत्तमतासे फेंके जानेवाले (वज्रं) वज्रको (रणाय) युद्धके प्रयोजनसे (त्वष्टा) त्वष्टाने (अस्मै इत्) इस इन्द्रके लिए ही (तक्षत्) तैयार किया था ॥ ६ ॥

१ अस्मै इत् त्वष्टा स्वर्यं वज्रं ततक्ष— इसी इन्द्रके लिए त्वष्टाने उत्तम वेगवान् वज्रको तैय्यार किया।

[६९९] (मातुः) सबको बनानेवाले (महः अस्य इत्) महान् इस इन्द्रने (सवनेषु) यज्ञोंमें (पितुं चारु अन्ना) हविको और उत्तम सोमको (सद्यः पपिवान्) शीघ्र पिया, तथा (विष्णुः) सर्वव्यापक इन्द्रने शत्रुओंके (पचतं) पके हुए अन्नको (मुषायत्) चुराया, तथा (सहीयान्) शत्रुको मारनेवाले (अद्रिं अस्ता) वज्रको फेंकनेवाले इन्द्रने (तिरः) तिरछा करके (वराहं विध्यद्) मेघको मारा ॥ ७ ॥

[७००] (अहिहत्ये) अहिको मार देनेपर (अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिए (ग्नाः चित्) गति करनेवाली (देवपत्नीः) देव पत्नियोंने (अर्कं ऊवुः) स्तुति की, उस इन्द्रने (उर्वी) विशाल (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोकको (जभ्रे) पकड लिया, अतः (ते) वे द्यावापृथिवी (अस्य महिमानं) इसकी महिमाका (न परि स्तः) पार नहीं पा सकीं ॥ ८ ॥

१ उर्वी द्यावापृथिवी जभ्रे, अस्य महिमानं न परि स्तः— उस इन्द्रने विशाल द्यावापृथ्वीको अपने अधीन किया, अतः वे द्यावापृथिवी इसकी महिमाका पार नहीं पा सके ।

भावार्थ— जिस प्रकार रथमें जुडे हुए उत्तम घोडे शत्रुओंसे लडनेवाले शूरवीरको युद्धमें उत्तमतासे ले जाते हैं, उसी प्रकार स्तुतियोंसे इस इन्द्रको प्रेरित करना चाहिए, ताकि यह शत्रुओंका वध कर सके ॥ ५ ॥

यह इन्द्र कितने ही असंख्य बलोंको धारण करता है। इसीलिए यह सबपर शासन करता है। यह जिस वज्रसे वृत्रासुरके मर्म स्थान पर आघात करता है, उस वज्रको त्वष्टाने इस इन्द्रके लिए विशेष रूपसे तैय्यार किया था। इसी प्रकार राष्ट्रके शत्रुओंको मारनेके लिए लोग तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र तैय्यार करें और राष्ट्रका संरक्षण करें ॥ ६ ॥

यह इन्द्र सब जगत्का निर्माण करनेवाला है, सबका पालन करनेवाला है। यह सर्वव्यापक है। यह बलशाली इन्द्र शत्रुओंके अन्नोंको नष्ट करके उनका विनाश करता है और वज्रके द्वारा शत्रुओंके नेता वृत्रको मारता है। राजा भी नये नये साम्राज्योंका निर्माण करनेवाला हो, उन साम्राज्योंकी प्रजाओंका उत्तम रीतिसे पालन करे ॥ ७ ॥

अहि नामक असुरको मारनेपर प्रसन्न होकर सभी देवपत्नियोंने इन्द्रकी स्तुति की। उसके कारण उसका यश इतना बढा कि उसका यश द्युलोक और पृथ्वीलोकमें भी नहीं समा सका। इसी तरह अध्यात्ममें जब जीवात्मा कामक्रोध आदि असुरोंको मार देता है, उन्हें विनष्ट कर देता है, तो सारी देवपत्नियां अर्थात् इन्द्रियोंकी शक्तियां आत्माके वशमें हो जाती हैं और तब उस महापुरुषका विस्तृत यश सर्वत्र फैलता है ॥ ८ ॥

७०१ अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥
७०२ अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥
७०३ अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥

अर्थ— [७०१] (अस्य इत् एव महित्वं) इस इन्द्रका यश (दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात् परि) द्युलोक, पृथिवी, और अन्तरिक्षसे भी (प्ररिरिचे) अधिक है, (दमे स्वराट्) युद्धमें अपने बलसे प्रकाशित होनेवाला (विश्व-गूर्तः) सभी वीरोंमें श्रेष्ठ वीर, (सु-अरिः) उत्तम योद्धा (अमत्रः) अपरिमित बलवाला (इन्द्रः) इन्द्र (रणाय ववक्षे) युद्धके लिए जाता है ॥ ९ ॥

१ दमे स्वराट् विश्वगूर्तः इन्द्रः रणाय ववक्षे— युद्धमें अपने बलसे प्रकाशित होनेवाला श्रेष्ठ वीर इन्द्र युद्धके लिए हमेशा तैय्यार रहता है ।

२ अस्य महित्वं दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात् परि— इस इन्द्रकी महिमा द्यु, पृथ्वी और अन्तरिक्षसे भी बडी है ।

[७०२] (स-चेताः इन्द्रः) उत्तम ज्ञानवाले इन्द्रने (अस्य इत् एव शवसा) अपने बलसे (शुषन्तं वृत्रं) शोषण करनेवाले वृत्रको (वज्रेण) वज्रसे (वि वृश्चत्) काट डाला, तथा (गाः न) गौवोंके समान (व्राणाः) वृत्र द्वारा रोके हुए (अवनीः) भूमिको (अमुंचद्) मुक्त किया, तथा (दावने) दानशील पुरुषके लिए (श्रवः अभि) अन्न दिया ॥ १० ॥

१ इन्द्रः शुषन्तं वृत्रं वज्रेण वि वृश्चत्— इन्द्रने शोषण करनेवाले वृत्रको वज्रसे काट डाला ।

२ व्राणाः अवनीः अमुंचत्— शत्रु द्वारा कब्जेमेंकी गई भूमिको इन्द्रने छुडाया ।

[७०३] (अस्य इत् त्वेषसा) इस इन्द्रके ही बलसे (सिन्धवः रन्तः) नदियां बहती हैं, (यत्) क्योंकि इसने ही उनको (वज्रेण सीं परि अयच्छत्) वज्रसे सीमित कर दिया, (ईशानकृत्) सब पर शासन करनेवाले तथा (तुर्वणिः) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रने (दाशुषे दशस्यन्) दानशीलके लिए धन देते हुए (तुर्वीतये) तुर्वीती ऋषिके लिए (गाधं कः) स्थानको बनाया ॥ ११ ॥

१ अस्य त्वेषसा सिन्धवः रन्तः— इस इन्द्रके बलसे नदियां बहती हैं ।

२ वज्रेण सीं परि अयच्छत्— वज्रसे इन्द्रने नदियोंको सीमित किया ।

३ तुर्वणिः तुर्वीतये गाधं कः— शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला इन्द्र शत्रुओंको विनष्ट करनेवालेकी ही सहायता करता है ।

भावार्थ— यह इन्द्र अपने शत्रुओंसे लडनेके लिए हमेशा सन्नद्ध रहता है, कभी भी असावधान नहीं रहता । इसीलिए इसके शत्रु भी सदा इससे डरते रहते हैं और इसका यश फैलता रहता है । इसी तरह हर राजा या सेनापतिको चाहिए कि वह युद्धके लिए हमेशा तैय्यार रहे शत्रुओंसे सावधान रहे । जो ऐसा हमेशा सावधान रहता है, वही देशकी अच्छी तरह रक्षा कर सकता है ॥ ९ ॥

उत्तम ज्ञानी इन्द्रने शोषण करनेवाले वृत्रको वज्रसे काट डाला और गायोंको मुक्त किया तथा वृत्रके हाथमें पडी हुई अपनी भूमिको भी छुडाया और इस प्रकार उस इन्द्रका यश फैला । इसी प्रकार राष्ट्रमें प्रजाओंका शोषण करनेवाले जो अधिकारी या अन्य व्यापारी आदि हों, उन्हें विनष्ट करे । राष्ट्रमें गायें स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करें, उन्हें बंधनमें न रखा जाए । शत्रुओं द्वारा जबर्दस्ती कब्जेमें की गई भूमिको राजा मुक्त करे । अर्थात् राष्ट्र अखण्ड रहे ॥ १० ॥

इस इन्द्रके बलके कारण ही नदियां बहती हैं । इसी इन्द्रने वज्रसे नदियोंको सीमित किया है । इसी प्रकार राजा भी बांध आदि बांध कर नदियोंको सीमित करे, अर्थात् नदियां उच्छृंखल होकर बाढ आदिके रूपमें राष्ट्रकी प्रजाओंको कष्ट न दें । यह इन्द्र स्वयं शत्रुओंका विनाशक है, इसलिए शत्रुओंके नाश करनेवाले वीरकी ही यह सहायता करता है ॥ ११ ॥

७०४ अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चे-ष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥
७०५ अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधा-न्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥
७०६ अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥

अर्थ— [७०४] हे इन्द्र ! (तूतुजानः) शत्रुओंका हिंसक, (ईशानः) सबका स्वामी, (कियेधाः) अपरिमित बलको धारण करनेवाला वह तू (अस्मै वृत्राय) इस वृत्रपर (वज्रं प्रभर) वज्रका प्रहार कर तथा (अर्णांसि इष्यन्) जलोंको बहाते हुए (अपां चरध्यै) प्रवाहोंके बहनेके लिए इस वृत्रके (पर्व) अवयवको (तिरश्चा) वज्रसे (गोः न) जैसे बिजली पदार्थोंको काटती हैं, उसी प्रकार (विरद) काट ॥ १२ ॥

[७०५] हे मनुष्य ! (उक्थैः नव्यः) गुणोंसे प्रशंसनीय यह इन्द्र (यत्) जब (युधे) युद्धमें (आयुधानि इष्णानः) शस्त्रोंका प्रहार करता हुआ (ऋघायमाणः शत्रून्) हिंसक शत्रुओंको (निरिणाति) मारता है, तब (तुरस्य अस्य इत्) शीघ्रता करनेवाले इस इन्द्रके (पूर्व्याणि कर्माणि) पुराने कर्मोंका (प्र ब्रूहि) वर्णन कर ॥ १३ ॥

१ युधे आयुधानि इष्णानः ऋघायमाणः शत्रून् निरिणाति— युद्धमें आयुधोंको शत्रुपर मारता है और हिंसक शत्रुओंको नष्ट करता है ।

२ उक्थैः नव्यः— वह इन्द्र अपने ही गुणोंके कारण सबसे प्रशंसनीय होता है ।

[७०६] (अस्य इत् भिया) इस इन्द्रके ही डरसे (गिरयः च दृळ्हाः) पर्वत स्थिर हैं, तथा (जनुषः) सबको उत्पन्न करनेवाले (द्यावा-भूमा च तुजेते) द्युलोक और पृथ्वीलोक कांपते हैं, (जोगुवानः नोधाः) गुणवर्णन करनेवाला नोधा ऋषि (वेनस्य ओणिं उप) इस सुन्दर रूपवाले इन्द्रके रक्षणमें रहकर (सद्यः) शीघ्र ही (वीर्याय भुवत्) बलवान् हो गया ॥ १४ ॥

१ अस्य इत् भिया गिरयः च दृळ्हा— इस इन्द्रके ही डरसे पर्वत स्थिर हैं ।

२ द्यावा-भूमा च तुजेते— द्युलोक और पृथ्वीलोक भी कांपते हैं ।

भावार्थ— अन्तरिक्षकी बिजली जिस प्रकार सभी पदार्थोंको काटती है, अर्थात् जिस पर यह बिजली गिरती है, वही पदार्थ नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इन्द्रका वज्र जिस शत्रु पर पडता है, वही शत्रु नष्ट हो जाता है । इसी तरह राष्ट्रके राजाकी शक्ति हो । जिस शत्रु पर राजाके शस्त्रास्त्र गिरें वह शत्रु सर्वथा नष्ट हो जाए ॥ १२ ॥

यह इन्द्र बडा फुर्तीला और उत्साहवान् है, वह अपने ही गुणोंके कारण सर्वत्र प्रशंसनीय है । अर्थात् दूसरोंके गुणों और बलोंके आधार पर वह काम नहीं करता । वह अपने ही बलोंका आश्रय लेकर हिंसक शत्रुओंका विनाश करता है । इसी तरह हर राष्ट्रका स्वामी स्वावलम्बी हो, दूसरोंकी सहायताके बिना भी वह अपने बलके सहारे राष्ट्रके शत्रुओंका विनाश करे । इस प्रकार वह अपने गुणोंके कारण सर्वत्र प्रशंसनीय हो ॥ १३ ॥

इस इन्द्रके डरके कारण सभी पर्वत स्थिर हैं और सबको उत्पन्न करनेवाले द्युलोक और पृथ्वीलोक भी डरते हैं । इस सुन्दर रूपवाले इन्द्रकी उपासना करनेवाले तथा (नो-धा) इसकी स्तुतिको धारण करनेवाले जन शक्तिशाली होते हैं ॥ १४ ॥

*

७०७ अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषा—मेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥

७०८ एवा ते हारियोजना सुवृक्ती—न्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

[६२]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७०९ प्र मन्महे शवसानाय शूष—माङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियाया—र्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥

अर्थ— [७०७] (एकः भूरेः ईशानः) अकेला ही बहुतसे धनोंका स्वामी यह इन्द्र (यत् वव्ने) जिस स्तोत्रकी इच्छा करता है, (त्यत्) उसको (एषां) ये स्तोतागण (अस्मै इद्) इस इन्द्रके लिए (अदायि) गान करते हैं। (इन्द्रः) इन्द्रने (सौवश्व्ये सूर्ये) स्वश्वके पुत्र सूर्यके साथ (पस्पृधानं) युद्ध करते हुए (सुष्विं) सोमयज्ञ करनेवाले (एतशं प्र आवत्) एतश ऋषिकी रक्षा की ॥ १५ ॥

१ एकः भूरेः ईशानः— यह इन्द्र अकेला ही बहुतसे धनोंका ईश्वर है।

[७०८] हे (हारियोजना इन्द्र) घोडोंको अपने रथमें जोडनेवाले इन्द्र ! (गोतमासः) गौतमपुत्रोंने (ते एव) तेरे लिये ही इन (सुवृक्ति ब्रह्माणि) शत्रुको हटानेमें समर्थ स्तोत्रोंको (अक्रन्) किया है, अतः तू (एषु) इनमें (विश्वपेशसं धियं धाः) बहुत रूपवाली बुद्धियोंको लगा । वह (धियावसुः) बुद्धिसे धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र हमारे रक्षणके लिए (प्रातः) प्रातःकाल (मक्षू) शीघ्र ही (जगम्यात्) आवे ॥ १६ ॥

१ गोतमासः विश्वपेशसं धियं धाः— अत्यन्त प्रयत्न करनेवाले ही अत्यन्त सुन्दर रूपवाली बुद्धिको प्राप्त करते हैं।

[६२]

[७०९] हम (शवसानाय) अत्यन्त बलशाली (गिर्वणसे) वाणियोंसे प्रशंसनीय इन्द्रके लिए (अंगिरस्-वत्) अंगिरस् ऋषिके समान (शूषं आङ्गूषं) सुखकारी स्तोत्रका हम (प्र मन्महे) मनन करते हैं। (च) और (सुवृक्तिभिः स्तुवते ऋग्मियाय) शत्रुको हटानेमें समर्थ स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले ऋषिके लिए पूज्य तथा (विश्रुताय नरे) सुप्रसिद्ध नेता इन्द्रके लिए हम (अर्कं अर्चाम) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अकेला ही सब तरहके ऐश्वर्योंपर शासन करता है, इसलिए यह जिस प्रकारकी स्तुतिकी इच्छा करता है, उसी तरहकी स्तुति वह प्राप्त करता है । सब तरहके ऐश्वर्यसे सम्पन्न मनुष्य हर तरहकी सुख और सुविधा प्राप्त कर सकता है ॥ १५ ॥

अत्यन्त परिश्रमी और प्रयत्नशील लोग ही शत्रुओंको हटानेमें समर्थ होते हैं और ऐसे ही लोग उत्तम रूपवाली बुद्धिको प्राप्त करनेमें सफल होते हैं । अर्थात् प्रयत्न करनेसे ही ज्ञान मिल सकता है ॥ १६ ॥

वाणियोंसे प्रशंसनीय तथा प्रसिद्ध अग्रणी अथवा नेता इन्द्रके लिए की जानेवाली स्तुतियोंपर उपासकको मनन करना चाहिए । यहां वेदोंके अर्थके बारेमें कहा है । वेदका मंत्र बोलनेके साथ उसके अर्थज्ञान पर विचार करना चाहिए ॥ १ ॥

७१० प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्व — माङ्गू॒ष्यं॑ शवसा॒नाय॒ साम॑ ।
येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञा अर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन् ॥ २ ॥

७११ इन्द्र॒स्याङ्गि॑रसां चे॒ष्टौ वि॒दत् स॒रमा॒ तन॑याय धा॒सिम् ।
बृह॒स्पति॑र्भि॒नदद्रिं॑ वि॒दद् गाः समु॒स्रिया॑भिर्वावशन्त॒ नरः॑ ॥ ३ ॥

७१२ स सु॒ष्टुभा॒ स स्तु॒भा स॒प्त विप्रैः॑ स्व॒रेणाद्रिं॑ स्व॒र्यो॒३॑ नव॑ग्वैः ।
स॒र॒ण्युभिः॑ फलि॒गमि॑न्द्र शक्र व॒लं रवे॑ण दरयो॒ दश॑ग्वैः ॥ ४ ॥

७१३ गृ॒णा॒नो अङ्गि॑रोभिर्दस्म॒ वि व॑ — रु॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ गोभि॒रन्धः॑ ।
वि भूम्या॑ अप्रथय इन्द्र॒ सानु॑ दि॒वो रज॒ उप॑रमस्तभायः ॥ ५ ॥

अर्थ— [७१०] (येन) जिस इन्द्रकी सहायतासे (नः पूर्वे पितरः) हमारे प्राचीन पितरोंने तथा (पदज्ञाः अङ्गिरसः) पदोंको जाननेवाले अङ्गिरसोंने (अर्चन्त) स्तुति करते हुए (गाः अविन्दन्) ज्ञानको प्राप्त किया। उस (शवसानाय) बलशाली (महे) महान् इन्द्रके लिए (वः) तुम (आङ्गूष्यं साम) स्तुतिके तथा सामके (महि नमः) महान् स्तोत्रको (प्र भरध्वम्) कहो ॥ २ ॥

१ येन नः पूर्वे पितरः गाः अविन्दन्, पदज्ञाः— इसी इन्द्रकी सहायतासे हमारे पूर्वजोंने ज्ञानको प्राप्त किया था और पदोंके ज्ञाता बने थे।

[७११] (इन्द्रस्य अंगिरसां च इष्टौ) इन्द्रके और अंगिरसोंके यज्ञमें (सरमा) सरमाने (तनयाय) अपने पुत्रके लिए (धासिं विदत्) अन्न प्राप्त किया, (बृहः-पतिः अद्रिं भिनत्) बडे बडे देवोंके स्वामी इन्द्रने मेघोंको मारा (गाः विदद्) जलको प्राप्त किया, तब (नरः) मनुष्य (उस्रियाभिः) गायोंसे (सं वावशन्तः) हर्षित होने लगे ॥३॥

[७१२] (नवग्वैः दशग्वैः) उत्तम गतिसे तथा अपनी रश्मियोंसे दशों दिशाओंमें (सरण्युभिः) जानेकी इच्छावाले (सप्त विप्रैः) सात ऋषियोंके द्वारा पूजित (स्वरेण सु-स्तुभा स्तुभा) स्वर युक्त उत्तम प्रशंसनीय वज्रसे (स्वर्यः) प्रशंसनीय (सः सः) उस हे (शक्र इन्द्र) सामर्थ्यशाली इन्द्र ! तूने (फलिगं वलं) जलमें स्थित बल असुरको (अद्रिं) तथा मेघको (रवेण) शब्द करते हुए (दरयः) मारा ॥ ४ ॥

नवग्वा— उत्तम गतिवाला — नवनीतगतयः । निरु. ११।१९

दशग्वा— अपनी किरणोंसे दशों दिशाओंमें गमन करनेवाला।

[७१३] हे (दस्म इन्द्र) दर्शनीय इन्द्र ! तूने (अंगिरोभिः गृणानः) अंगिरा ऋषियोंसे प्रशंसित होते हुए (उषसा सूर्येण) उषा और सूर्यकी सहायतासे (गोभिः) किरणोंद्वारा (अन्धः विवः) अन्धकारका नाश किया, (भूम्याः सानु) भूमिके प्रदेशोंको (वि अ प्रथयः) विस्तृत किया तथा (दिवः रजः उपरं अस्तभायः) द्युलोकके लोकोंके मूल प्रदेशको थामा ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र महाज्ञानी है और समयसे अप्रभावित होनेके कारण गुरुओंका भी गुरु है। इसी ज्ञानी इन्द्रकी कृपासे हमारे पूर्वजोंने ज्ञान प्राप्त किया और पदोंके तथा अङ्गरसोंके जाननेवाले ऋषि बने। वह इन्द्र महाज्ञानी होनेके साथ साथ महाबलशाली भी है। अतः जो बल और ज्ञानकी दृष्टिसे अत्यन्त श्रेष्ठ होता है, वह महान् होता है ॥ २ ॥

सभी देवताओंके स्वामी इन्द्रने मेघोंपर प्रहार करके पानी बरसाया तब सब मनुष्य और गाय आदि पशु बरसात होते देखकर बहुत हर्षित हुए और तब इन्द्र और उसके सहायकोंके लिए लोग यज्ञ करने लगे और उस यज्ञसे बचे हुए अन्नसे कुत्तों आदि जानवरोंका पालन होने लगा ॥ ३ ॥

इन्द्रका वज्र एकबार फेंके जानेपर बडे वेगसे जाता है और इसकी चमक इतनी है कि इसकी किरणोंसे सभी दिशायें चमकती हैं, इसकी सभी प्रशंसा करते हैं। ऐसे वज्रसे वह मेघों और असुरोंको नष्ट करता है ॥ ४ ॥

अङ्गिरा ऋषियोंसे प्रशंसित होते हुए इस इन्द्रने उषा और सूर्यकी सहायतासे अपनी किरणोंको विस्तृत करके अन्धकारको दूर किया। अन्धकारके दूर होते ही भूमिके प्रदेश दिखाई देने लगे। उषा और सूर्यके उगते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥५॥

७१४ तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन् मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ॥ ६ ॥

७१५ द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद् रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥

७१६ सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥

अर्थ—[७१४] इस इन्द्रने (उपह्वरे) जमीनके प्रदेशमें (उपराः) बहनेवालीं (चतस्रः नद्यः) चार नदियोंको (मधु-अर्णसः) मीठे पानीसे (अपिन्वत्) भर दिया यह (यत्) जो (अस्य दस्मस्य कर्म) इस दर्शनीय इन्द्रका कर्म है (तत् उ प्रयक्षतमं) वही अत्यधिक प्रशंसनीय है, वही (दंसः) कर्म (चारुतमं अस्ति) सबसे सुन्दर है ॥६॥

१. अस्य दस्मस्य कर्म प्रयक्षतमं चारुतमम्— इस दर्शनीय इन्द्रका कर्म अत्यधिक प्रशंसनीय और अत्यधिक सुन्दर है ।

[७१५] (अयास्यः स्तवमानेभिः अर्कैः) अयास्य ऋषिके प्रशंसाके योग्य स्तोत्रोंसे पूजित इन्द्रने (सनजा सनीळे) एक साथ उत्पन्न होनेवाले तथा समान स्थानवाले द्युलोकको (द्विता वि वव्रे) दो रूपमें विभक्त कर दिया, तथा (सु-दंसा) उत्तम कर्मा इन्द्रने (मेने परमे व्योमन्) मानके योग्य उत्तम आकाशमें स्थित (भगः न) सूर्यके समान (रोदसी अधारयत्) द्युलोक और पृथिवी लोकको धारण किया ॥ ७ ॥

१ सु-दंसा रोदसी अधारयत्— उत्तम कर्मा इन्द्रने द्युलोक और पृथ्वी लोकको धारण किया ।

[७१६] (विरूपे) अनेक रूपोंवालीं, (पुनः भुवा) बार बार उत्पन्न होनेवालीं (युवती) दो युवतियां (स्वेभिः एवैः) स्वेच्छानुसार गतियोंसे (दिवं भूमा परि) द्युलोकसे लेकर भूमि तक (सनात्) बहुत समयसे चलती हैं, इनमें (अक्ता) रात्री (कृष्णेभिः) कृष्णवर्णसे युक्त होकर तथा (उषा) उषा (रुशद्भिः वपुभिः) देदीप्यमान किरणोंसे युक्त होकर (अन्या अन्या) एक दूसरेसे भिन्न होकर (आ चरतः) चलती हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र जो अपने कर्मोंसे मीठे पानीके स्रोतोंको बहाता है, वह उसका कर्म अत्यन्त प्रशंसनीय और सबसे सुन्दर है ॥ ६ ॥

सर्वप्रथम केवल एक ही लोक था, आगे जाकर इन्द्रने उस एक लोकके दो विभाग कर दिए और वे ही दोनों भाग द्युलोक और पृथ्वीलोकके नामसे प्रसिद्ध हुए । इस प्रकार दो भाग करके इन्द्र उन दोनों लोकोंके बीचमें स्थित हो गया और वहींसे वह दोनों लोकोंको धारण करने लगा । पृथ्वी और द्युलोकके बीचमें स्थित अन्तरिक्षलोकमें रहनेवाली बिजली अपने सामर्थ्यसे इन दोनों लोकोंको धारण करती है ॥ ७ ॥

इस विश्वमें दो स्त्रियां ऐसी हैं, जो निरन्तर चलती रहती हैं । इनका मार्ग पृथ्वीसे लेकर द्युलोकतक है । इनकी गतिको कोई रोक नहीं सकता । इनमें एक स्त्री काले कपडे पहनकर घूमती है और दूसरी उजले और चमचमाते कपडे पहनकर घूमती है । दोनों एक साथ नहीं रहतीं । पहिलीके रहनेपर दूसरी नहीं रहती और दूसरीके रहनेपर पहली नहीं रहती । इस प्रकार ये दोनों परस्पर विरोधी हैं । इनमें पहिलीका नाम रात्री है और दूसरीका नाम उषा है ॥ ८ ॥

७१७ सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद् दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु ॥ ९ ॥
७१८ सनात् सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥ १० ॥
७१९ सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन् मनीषाः ॥ ११ ॥
७२० सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥ १२ ॥

अर्थ— [७१७] (सु-अपस्यमानः) उत्तम कर्म करनेवाला (शवसा सूनुः) बलका पुत्र (सु-दंसाः) शोभन कर्मा वह इन्द्र स्तोताओंकी (सख्यं) मित्रताको (सनेमि) बहुत समयसे (दाधार) धारण करता है, हे इन्द्र ! तू (आमासु चित् अन्तः) अपरिपक्व गायोंमें भी (पक्वं पयः) पक्व दूधको (दधिषे) स्थापित करता है और (कृष्णासु रोहिणीषु) काली तथा लाल गायोंमें (रुशद्) सफेद दूधको स्थापित करता है ॥ ९ ॥

१ सु-अपस्यमानः शवसा सूनुः सख्यं सनेमि दाधार— उत्तम कर्म करनेवाला, बलका पुत्र वह इन्द्र स्तोताओंकी मित्रताको प्राचीनकालसे धारण करता है ।

[७१८] (सनात्) बहुत कालसे (सनीळाः) एक स्थान पर रहनेवाली (अ-वाता) स्थिर तथा (अ-मृताः) नष्ट न होनेवालीं (अवनीः) अंगुलियां (सहोभिः) अपने बलसे (पुरू सहस्रा व्रता) बहुतसे हजारों कर्म (रक्षन्ते) करती हैं, तथा (स्वसारः) स्वयं चलनेवालीं अंगुलियां (जनयः पत्नीः न) जैसे मनुष्य अपनी पत्नियोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार (अ-ह्रयाणं दुवस्यन्ति) प्रशस्तगमनवाले इन्द्रकी सेवा करती हैं ॥ १० ॥

[७१९] हे (दस्म) दर्शनीय तथा (अर्कैः नमसा नव्यः) स्तोत्रोंसे तथा नमस्कारोंसे पूज्य इन्द्र ! तेरे पास (सनायुवः वसूयवः) यज्ञ तथा धनकी कामना करनेवाले (मतयः) ज्ञानीजन (दद्रुः) जाते हैं, हे (शवसावन्) बलवान् इन्द्र ! उनकी (मनीषाः) स्तुतियां (त्वा) तुझे (उशन्तं पतिं उशतीः पत्नीः न) कामना करनेवाले पति को जिस प्रकार कामना करनेवाली पत्नी प्राप्त होती है, उसी प्रकार (स्पृशन्ति) प्राप्त होती हैं ॥ ११ ॥

[७२०] हे (दस्म) दर्शनीय इन्द्र ! (सनात् एव) प्राचीनकालसे ही (तव गभस्तौ) तेरे हाथोंमें विद्यमान (रायः) धन (नः क्षीयन्ते) क्षीण नहीं होते और (न उप दस्यन्ति) नष्ट भी नहीं होते, हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (द्युमान्, क्रतुमान् धीरः असि) तेजस्वी, कर्म करनेवाला तथा वीर है, हे (शचीवः) सामर्थ्यशाली इन्द्र ! तू (तव शचीभिः) अपने सामर्थ्योंसे (नः) हमें (शिक्ष) धन दे ॥ १२ ॥

१ इन्द्र ! सनात् एव तव गभस्तौ रायः न क्षीयन्ते, न उप दस्यन्ति— हे इन्द्र ! प्राचीनकालसे ही तेरे हाथोंमें विद्यमान धन क्षीण नहीं होते, और नष्ट भी नहीं होते ।

भावार्थ— यह इन्द्रकी ही महिमा है कि अपरिपक्व गायोंसे भी पक्के दूधको प्राप्त किया जा सकता है और गायें काली, लाल, सफेद अर्थात् चाहे जिस रंगकी हो, दूध सफेद ही होता है । ऐसे ऐसे उत्तम कर्म करनेवाला बलका पुत्र इन्द्र सभीका मित्र है ॥ ९ ॥

यद्यपि हाथकी अंगुलियां बडी छोटी रहती हैं, पर कर्म करनेके समय एक होकर कर्म करती हैं तथा सगी बहिनोंकी-तरह एक होकर इन्द्रकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार राष्ट्रकी प्रजायें बडी छोटी होनेपर भी राष्ट्रके हितकारी कार्योंमें एक मन-वाली होकर प्रयत्न करे और एक मनसे राजाका हित करें ॥ १० ॥

जिस प्रकार पतिकी कामना करनेवाली स्त्री अपने पतिके पास जाती है, और उसे प्रसन्न करती है, उसी प्रकार यज्ञ तथा धनकी कामना करनेवाले ज्ञानीजन इस इन्द्रके पास जाकर उसे अपने स्तोत्रोंसे प्रसन्न करते हैं ॥ ११ ॥

यह इन्द्र तेजस्वी, परिश्रमी, वीर तथा दानशील है, अतः इसके पास रहनेवाला धन कभी क्षीण या नष्ट नहीं होता । इसी प्रकार जो मनुष्य तेजस्वी होकर परिश्रमसे धन कमायेगा और उसका सदुपयोग दानमें करेगा, उसका धन कभी भी नष्ट नहीं होता । दान करनेसे धनकी वृद्धि ही होती है ॥ १२ ॥

७२१ सनायते गोतम इन्द्र नव्य—मतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १३ ॥

[६३]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७२२ त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मै—र्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥

७२३ आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वे—रा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥

अर्थ— [७२१] वह इन्द्र (सनायते) सनातनकालसे विद्यमान है, हे (शवसान) बलवान् इन्द्र ! (हरि-
योजनाय, सु-नीथाय) अपने रथमें घोडोंको जोडनेवाले, उत्तम नेता तेरी स्तुतिके लिए (गोतमः नोधाः) अत्यन्त तेजस्वी
स्तोत्रको धारण करनेवाले ऋषिने (नव्यं ब्रह्म) नये स्तोत्रको (नः) हमारे लिए (अतक्षत्) बनाया, वह (धियावसुः)
कर्मसे धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र (प्रातः) प्रातःकाल (मक्षू) शीघ्र ही (जगम्यात्) आवे ॥ १३ ॥

[६२]

[७२२] (यः ह) जिस तूने (जज्ञानः) उत्पन्न होते ही (अमे द्यावापृथिवी) भयभीत द्युलोक और पृथ्वी-
लोकको (शुष्मैः) अपने बलोंसे (धाः) धारण किया, और (यत् ह) क्योंकि (ते भिया) तेरे भयसे (विश्वा
अभ्वाः गिरयः) सम्पूर्ण बडे बडे पर्वत (दृळहासः चित्) दृढ होते हुए भी (किरणाः न) किरणोंके समान
(एजन्) कांपते हैं, इसलिए हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं महान्) तू महान् है ॥ १ ॥

१ जज्ञानः अमे द्यावापृथिवी शुष्मैः धाः— इस इन्द्रने उत्पन्न होते ही भयभीत द्युलोक और पृथ्वी-
लोकको अपने बलोंसे धारण किया ।

२ ते भिया विश्वा अभ्वा गिरयः दृळहासः चित् किरणाः न एजन्— इस इन्द्रके डरसे सभी बडे
बडे पहाड दृढ होते हुए भी किरणोंके समान कांपते हैं ।

[७२३] हे (अविहर्यत क्रतो, पुरुहूत इन्द्र) उत्तम कर्म करनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! तू (यत्)
जब अपने रथमें (विव्रता हरी) विविध कर्म करनेवाले घोडोंको (आवेः) जोडता है, तब तू (येन) जिस वज्रसे
(अमित्रान्) शत्रुओंको तथा उनके (पूर्वीः पुरः इष्णासि) बहुतसे नगरोंको तोडता है। उस (वज्रं) वज्रको
(जरिता) स्तोता (ते बाह्वोः आ धात्) तेरे हाथोंमें स्थापित करता है ॥ २ ॥

१ इन्द्र ! येन अमित्रान् पूर्वीः पुरः इष्णासि वज्रं जरिता ते बाह्वोः आधात्— हे इन्द्र ! तू जिस
वज्रसे शत्रुओंको और उनके बहुतसे नगरोंको तोडता है, उस वज्रको स्तोता तेरे हाथोंमें स्थापित करता है।

भावार्थ— यह इन्द्र सनातन कालसे विद्यमान है । अनादि और अनन्त है, यह न कभी उत्पन्न हुआ न कभी
मरेगा। यह सदा कर्म करनेमें प्रवृत्त रहता है । और कर्म करके ही धन प्राप्त करता है । कर्ममें अमृत निहित है, अतः कर्म
करते रहनेसे जीवनकी वृद्धि होती है और निष्क्रियतासे जीवन क्षीण होता है । साथ ही उस परमात्माकी पूजा भी आवश्यक
है । इस प्रकार जो मनुष्य कर्म करता हुआ परमात्माकी उपासना करता है, वह चिरंजीवि होता है ॥ १३ ॥

इन्द्रके कर्म आदर्शरूप हैं, इसने कांपते हुए द्यु और पृथ्वीलोकको धारण किया और दृढतासे खडे हुए पर्वतोंको
कंपाया । अर्थात् इस इन्द्रके सामने जो विनीत होकर शुद्ध हृदयसे आया, उसकी इसने रक्षा की, पर जो अभिमानसे इन्द्रके
सामने सिर ऊंचा करके खडा रहा उसका इस इन्द्रने नाश किया । इसी प्रकार राजा विनीत और पवित्र हृदयवाले सज्जनों-
की रक्षा करे और उद्धत एवं अभिमानी दुष्टों एवं शत्रुओंका नाश करे ॥ १ ॥

जब जब यह इन्द्र युद्ध करनेके लिए रथमें घोडोंको जोडता है और शत्रुओंके नगरोंको तोडना चाहता है, तब स्तोता
गण उसके हाथोंमें शस्त्रास्त्र देते हैं । इसी प्रकार प्राचीनकालमें शत्रुपर आक्रमण करनेके लिए जाते समय राजाके लिए ब्राह्मण
स्वस्त्ययन करके उसके हाथोंमें शस्त्र देते थे ॥ २ ॥

७२४ त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥
७२५ त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः ।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४ ॥
७२६ त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [७२४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (सत्यः) सत्यका पालक है, (एतान् धृष्णुः) शत्रुओंको मारनेवाला है, (त्वं ऋभुक्षा नर्यः) तू ऋभुओंका स्वामी है, और नेता है (त्वं षाट्) तू सहनशील है, (त्वं) तूने (वृजने पृक्षे आणौ) शत्रुओंको मारनेवाले बडे युद्धमें (द्युमते यूने कुत्साय) तेजस्वी, तरुण कुत्सके लिए (सचा) सहायक होकर (शुष्णं अहन्) शुष्णको मारा ॥ ३ ॥

१ कुत्साय शुष्णं अहन्— बुराइयोंको दूर करनेवाले सज्जनकी रक्षाके लिए इन्द्रने शोषण करनेवालेको मारा ।

[७२५] हे (वृषकर्मन्, शूर, वृषमणः वृथाषाट् वज्रिन् इन्द्र) शौर्यके कर्म करनेवाले, शूरवीर, कामनाओंके पूरक, अनायास ही शत्रुको जीतनेवाले, वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (यत्) जब तूने (वृत्रं उभ्नाः) वृत्रको मारा, और (यत् ह) जब (योनौ) युद्धमें (दस्यून्) असुरोंको (पराचैः अकृतः) पराङ्मुख कर दिया, तब (त्वं) तूने (सखा) मित्र होकर (त्यत् चोदीः) उस यशको फैलाया ॥ ४ ॥

[७२६] हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (त्वं) तू (मर्तानां अजुष्टौ) शत्रु मनुष्योंके क्रोधित होनेपर (त्यत् दृळ्हस्य) उस दृढसे दृढ शत्रुको भी (अरिषण्यन्) मार देता है, हे इन्द्र ! (अमित्रान्) शत्रुओंको (घना इव) हथौडेसे जैसे लोहेको मारते हैं, उसी प्रकार (श्नथि) मार और (अस्मद् अर्वते) हमारे घोडेके लिए (काष्ठाः वि आवः) दिशाओंको खोल दे ॥ ५ ॥

१ त्वं मर्तानां अ-जुष्टौ त्यत् दृळ्हस्य अरिषण्यन्— हे इन्द्र ! तू शत्रु मनुष्योंके क्रोधित होनेपर उस दृढसे दृढ शत्रुको भी मार देता है ।

भावार्थ— राजा सत्यमार्ग पर चलनेवाला सत्यका पालक हो, शत्रुओंका विनाशक हो, अपने राष्ट्रमें रहनेवाले ऋभुओं अर्थात् बढई, राज आदि कारीगरोंका रक्षक हो, उत्तम नेता हो, समय पडने पर कष्ट आदियोंको सहनेकी क्षमतावाला हो, तथा घमासान युद्धके शुरु होने पर शत्रुओंका नाश करते हुए आगे बढनेवाला हो, तथा राष्ट्रमेंसे बुराइयोंको दूर करनेवाले सज्जनोंका रक्षक एवं प्रजाका शोषण करनेवाले दुष्टोंका संहारक हो ॥ ३ ॥

राजा शौर्यके काम करनेवाला, शूरवीर, सभीकी सदिच्छाओंको पूरा करनेवाला, बिना कठिनताके शत्रुओंको जीतनेवाला, वज्रके समान तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंको धारण करनेवाला, शत्रुओंको हराकर तथा राष्ट्रमें उपद्रव करके प्रजाको पीडित करनेवाले चोर डाकू आदि दस्युओंको नष्ट करनेवाला तथा सज्जनोंका मित्र हो ॥ ४ ॥

जब कोई शत्रु मनुष्य क्रोधित होकर इन्द्रका मुकाबला करनेके लिए सामने आता है, तो उस समय इन्द्र दृढसे दृढ शत्रुको भी आसानीसे मार देता है । वह शत्रुओंको इसी प्रकार मारता है, जिस प्रकार घनसे लोहेको पीटा जाता है । इस प्रकार शत्रुरहित होकर वह सर्वत्र जाता है अर्थात् उस समय उसके मार्गमें कोई रुकावट नहीं डाल सकता ॥ ५ ॥

७२७ त्वां ह त्यदिन्द्राणसातौ स्वर्मीह्ळे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥
७२८ त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन् वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥
७२९ त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८ ॥
७३० अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

अर्थ— [७२७] हे इन्द्र ! (अर्णसातौ, स्वर्मीळ्हे आजौ) धन प्राप्त करानेवाले, सुखके वर्धक संग्राममें (नरः) योद्धा मनुष्य (त्यद् त्वां) उस प्रसिद्ध तुझे ही सहायार्थ (हवन्ते) बुलाते हैं, हे (स्वधावः) अन्नवान् इन्द्र ! (वाजेषु समर्ये) बलकी परीक्षा होनेवाले संग्राममें (अतसाय्या) योद्धाओं द्वारा प्राप्त की जानेवाली (तव इयं ऊतिः) तेरी यह संरक्षण शक्ति (आ भूत्) हमें प्राप्त हो ॥ ६ ॥

१ वाजेषु अतसाय्या तव इयं ऊतिः आभूत्— बलकी परीक्षा होनेवाले संग्राममें सब लोग इस इन्द्रके रक्षाकी कामना करते हैं ।

[७२८] हे (राजन् वज्रिन् इन्द्र) तेजस्वी वज्रधारी इन्द्र ! (त्वं) तूने (युध्यन्) युद्ध करते हुए (त्यत् सप्त पुरः) शत्रुके उन सात नगरोंको (पुरुकुत्साय) पुरुकुत्सके लिए (दर्दः) तोडा, तथा तूने (सुदासे) सुदासके लिए (यत्) जिस धनको (बर्हिः न) घासके समान (वृथा) बिना परिश्रमके ही (अंहः वर्क्) अंह असुरसे छीन लिया, उस (वरिवः) धनको (पूरवे कः) पुरुके लिए दे ॥ ७ ॥

[७२९] हे (शूर इन्द्र देव) शूरवीर इन्द्र ! (त्वं) तू (यया) जिस शक्तिसे (त्मनं) जीवको शक्तिशाली करता है, वह शक्ति (विश्वधः क्षरध्यै ऊर्जं न) चारों ओर बहनेके लिए जैसे पानीको छोडता है, उसी प्रकार (अस्मभ्यं प्रति यंसि) हमें देता है, (त्यां चित्रां इषं) उस सुन्दर शक्तिको (परिज्मन्) सर्वत्र व्याप्त भूमिमें (आपः न) जैसे जलको बढाता है, उसी प्रकार (पीपयः) बढा ॥ ८ ॥

[७३०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हरिभ्यां ते) घोडोंसे युक्त तेरे लिए (गोतमेभिः) गोतमके पुत्रोंने (नमसा ब्रह्माणि अकारि) नमस्कारोंसे युक्त स्तोत्रोंको बनाया, और (आ उक्ता) उनको गाया, हे इन्द्र ! (नः) हमारे लिए (सुपेशसं वाजं आ भर) उत्तम श्रेष्ठ बल दे, वह (धियावसुः) कर्मोंसे धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र (प्रातः) प्रातः काल (मक्षू) शीघ्र ही (जगम्यात्) आवे ॥ ९ ॥

भावार्थ— धन प्राप्त करानेवाले तथा सुख देनेवाले संग्राममें योद्धा इसी इन्द्रको बुलाते हैं और ऐसे संग्रामोंमें, जिनमें योद्धाओंके बलकी परीक्षा होती है, लोग इन्द्रके संरक्षणकी ही कामना करते हैं ॥ ६ ॥

इस इन्द्रने युद्ध करते हुए शत्रुओंके अनेक नगर तोडे, तथा बुराइयोंको दूर करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी रक्षा की तथा असुरोंके धनको छीनकर उत्तम पुरुषोंमें बांट दिया । इसी प्रकार राजा भी राष्ट्रमें उपद्रव करनेवाले दस्युओंके धनको छीन कर सज्जनोंका प्रतिपालन करे ॥ ७ ॥

यह इन्द्र आत्माकी शक्तिको बढाता है अर्थात् इन्द्ररूप उस परमात्माकी उपासनासे आत्माकी शक्ति बढती है। इन्द्रकी जिसके ऊपर कृपा होती है, उसकी आत्मशक्ति उसी प्रकार बढती है, जिस प्रकार जलसे अन्न बढता है ॥ ८ ॥

अन्धकारमें भी न रुकनेवाले अर्थात् सदा ही उन्नति करनेवाले ऋषियोंने इन्द्रके लिए स्तोत्रोंको बनाया और गाया । इस प्रकार इन्द्रने प्रसन्न होकर उनकी हर तरहसे रक्षा की और उन्नति की ॥ ९ ॥

[६४]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगती, १५ त्रिष्टुप्)

७३१ वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥ १ ॥

७३२ ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥ २ ॥

७३३ युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ ३ ॥

[६४]

अर्थ— [७३१] हे (नोधः) काव्य करनेवाले ऋषे ! (वृष्णे) बल पानेके लिए, (सु-मखाय) यज्ञ भलीभाँति हों, इस हेतुसे, (वेधसे) अच्छे ज्ञानी होनेके लिए और (शर्धाय) अपना बल बढानेके लिए (मरुद्भ्यः) मरुतोंके लिए (सु-वृक्तिं प्र भर) उत्कृष्टतम काव्योंकी यथेष्ट निर्मिति करो, (धीरः) बुद्धिमान् तथा (सु-हस्त्यः) हाथ जोडकर मैं (मनसा) मनसे उनकी सराहना कर रहा हूँ और (विदथेषु आ-भुवः) यज्ञोंमें प्रभावयुक्त (गिरः) वाणियोंकी (अपः न) जलके समान (सं अञ्जे) वर्षा कर रहा हूं अर्थात् उनके काव्योंका गायन करता हूँ ॥ १ ॥

[७३२] (ते) वे (ऋष्वासः) ऊँचे, (उक्षणः) बडे (असु-राः) जीवनका दान करनेवाले, (अ-रेपसः) पापरहित, (पावकासः) पवित्रता करनेहारे, (सूर्याः इव शुचयः) सूर्यकी भांति तेजस्वी, (द्रप्सिनः) सोम पीनेवाले और (सत्वानः न घोर-वर्पसः) सामर्थ्ययुक्त लोगोंके जैसे बृहदाकार शरीरवाले (रुद्रस्य मर्याः) मानों रुद्रके मरण-धर्मा वीर (दिवः) स्वर्गसे ही (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए ॥ २ ॥

[७३३] (युवानः) युवकदशामें रहनेवाले (अ-जराः) बुढापेसे अछूते (अ-भोक्-हनः) अनुदार कृपणोंको दूर करनेवाले (अध्रि-गावः) आगे बढनेवाले (पर्वताः इव) पहाडोंकी तरह अपने स्थानपर अटल रूपसे खडे रहनेवाले (रुद्राः) शत्रुओंको रुलानेवाले ये वीर लोगोंको सहायता (ववक्षुः) पहुँचाते हैं; (पार्थिवा) पृथ्वी पर पाये जानेवाले तथा (दिव्यानि) द्युलोकमें विद्यमान (विश्वा भुवनानि) सभी लोक (दळहा चित्) कितने भी स्थिर हों, तो भी उन्हें ये (मज्मना) अपने बलसे (प्र च्यावयन्ति) अपदस्थ कर देते हैं, विचलित कर डालते हैं ॥ ३ ॥

१ पर्वताः इव (स्थिराः)— यदि शत्रु ही प्रारम्भमें आक्रमण कर बैठें तो भी अपने निर्धारित स्थानोंपर अटल भावसे खडे रहनेवाले अतएव शत्रुदलकी चढाईसे अपनी जगह छोडकर पीछे न हटनेवाले।

२ पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवना दळहा चित् मज्मना प्र च्यावयन्ति — भूमिपरके तथा पर्वतशिखरोंपर विद्यमान सुदृढ दुर्गतकको अपने अद्भुत सामर्थ्यसे हिला देते हैं।

भावार्थ— बल, उत्तम कर्म, ज्ञान तथा सामर्थ्य अपनेमें बढे इसलिए वीर मरुतोंके काव्य रचने चाहिए और सार्वजनिक सभाओंमें उनका गायन करना चाहिए ॥ १ ॥

उच्च, महान्, विश्वके हितार्थ अपने प्राणोंका भी न झिझकते हुए बलिदान करनेवाले, निष्पाप, सभी जगह पवित्रता फैलानेवाले तेजस्वी, सोमपान करनेवाले, बलिष्ठ और प्रचंड देहधारी ये वीर मानों स्वर्गसे ही इस भूमंडल पर उतर पडे हों ॥ २ ॥

सदैव नवयुवक, बुढापा आनेपर भी नवयुवकोंके जैसे उमंगभरे, कंजूस तथा स्वार्थी मानवोंको अपने समीप न रहने देनेवाले, किसी भी रुकावटके सामने शीश न झुकाते हुए प्रतिपल आगे ही बढनेवाले, पर्वतकी तरह अपनी जगहपर अटल खडे हुए, शत्रुदलको विचलित करनेवाले ये वीर जनताकी संपूर्ण सहायता करनेके लिए हमेशा सिद्ध रहते हैं। पृथ्वी या स्वर्गमें पाये जानेवाली सुदृढ चीजोंको भी ये अपने बलसे हिला देते हैं, (तो फिर शत्रु इनके सामने थरथर काँपने लगें, तो कौन आश्चर्यकी बात है ?) ॥ ३ ॥

७३४ चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुरृष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४ ॥
७३५ ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५ ॥
७३६ पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिन-मुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [७३४] (वपुषे) शरीरकी सुन्दरता बढानेके लिए (चित्रैः आञ्जिभिः) भाँति भाँतिके आभूषणोंद्वारा वे (वि अञ्जते) विशेष ढंगसे अपनी सुषमा वृद्धिंगत करते हैं । (वक्षःसु) छातियोंपर (शुभे) शोभाके लिए (रुक्मान्) सुवर्णके बनाये हारोंको (अधि येतिरे) धारण करते हैं । (एषां अंसेषु) इन मरुतोंके कंधोंपर (ऋष्टयः नि मिमृक्षुः) हथियार चमकते रहते हैं । (नरः) ये नेताके पदपर अधिष्ठित वीर (दिवः) द्युलोकसे (स्व-धया साकं) अपने बलके साथ (जज्ञिरे) प्रकट हुए ॥ ४ ॥

[७३५] (ईशान-कृतः) स्वामी तथा अधिकारीवर्गका निर्माण करनेवाले, (धुनयः) शत्रुदलको हिलानेवाले, (रिश-अदसः) हिंसामें निरत विरोधियोंका विनाश करनेवाले, (तविषीभिः) अपनी शक्तियोंसे (वातान्) वायुओंको तथा (विद्युतः) बिजलियोंको (अक्रत) उत्पन्न करते हैं । (परि-ज्रयः) चतुर्दिक् वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले तथा (धूतयः) शत्रुसेनाको विकंपित करनेवाले ये वीर (दिव्यानि ऊधः) आकाशस्थ मेघोंका (दुहन्ति) दोहन करते हैं और (भूमिं पयसा पिन्वन्ति) यथेष्ट वर्षाद्वारा भूमिको तृप्त करते हैं ॥ ५ ॥

१ दिव्यानि ऊधः दुहन्ति भूमिं पयसा पिन्वन्ति— दिव्य स्तनोंका दोहन करके भूमंडल पर दूधकी वर्षा करते हैं ।

[७३६] (सु-दानवः) अच्छे दानी, (आ-भुवः) प्रभावशाली (मरुतः) वीर मरुतोंका संघ (विदथेषु) यज्ञों एवं युद्धस्थलोंमें (घृतवत् पयः) घीके साथ दूध तथा (अपः पिन्वन्ति) जलकी समृद्धि करते हैं, (अत्यं न) घोडेको सिखाते समय जैसे उसे घुमाते हैं, ठीक वैसे ही (वाजिनं) बलयुक्त मेघोंको (मिहे) वर्षाके लिए वे (वि नयन्ति) विशेष ढंगसे ले चलते हैं, चलाते हैं और तदुपरान्त (स्तनयन्तं उत्सं) गरजनेवाले उस झरनेका-मेघका (अ-क्षितं दुहन्ति) अक्षय रूपसे दोहन करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— वीर मरुत् गहनोंसे अपने शरीर सुशोभित करते हैं, वक्षःस्थलोंपर सोनेके हार पहनते हैं, कंधोंपर चमकीले आयुध धारण करते हैं । ऐसी दशामें उन्हें देखनेपर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानों वे स्वर्गमेंसे ही अपनी अतुलनीय शक्तियोंके साथ इस भूमंडलमें उतरे हों ॥ ४ ॥

राष्ट्रके शासनकी बागडोर हाथमें लेनेवाले, शासकोंके वर्गको अस्तित्वमें लानेवाले, शत्रुओंको विचलित करनेवाले, कष्ट देनेवाले शत्रुसैन्यको जड मूलसे उखाड देनेवाले, अपनी शक्तियोंसे चारों ओर बडे वेगसे दुश्मनों पर धावा करनेवाले तथा उन्हें नीचे धकेलनेवाले ये वीर वायुप्रवाह विद्युत् एवं वर्षाका सृजन करते हैं । ये ही मेघोंको दुहकर भूमि पर वर्षारूपी दूधका सेचन करते हैं ॥ ५ ॥

उदारधी तथा प्रभावशाली ये वीर मरुत् यज्ञोंमें घृत, दुग्ध तथा जलकी यथेष्ट समृद्धि करते हैं और घोडोंको सिखाते समय जिस ढंगसे उन्हें चलाते हैं, वैसे ही अन्नके उत्पादनमें सहायता पहुँचानेवाले मेघवृंदको निश्चित राहसे चलाते हैं। उस मेघसमूहरूपी बृहदाकार जलकुंडसे पानीके प्रवाह अविरत रूपसे प्रवर्तित करते हैं ॥ ६ ॥

७३७ महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ ७ ॥
७३८ सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥ ८ ॥
७३९ रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९ ॥

अर्थ— [७३७] हे मरुतो ! (महिषासः) बडे, (मायिनः) निपुण कारीगर, (चित्र-भानवः) अत्यन्त तेजस्वी (गिरयः न) पर्वतोंके समान (स्व-तवसः) अपने निजी बलसे स्थिर रहनेवाले, परन्तु (रघु-स्यदः) वेगपूर्वक जानेवाले तुम (हस्तिनः मृगाः इव) हाथियों एवं मृगोंके समान (वना खादथ) वनोंको खा जाते हो, तोडमरोड देते हो, (यत्) क्योंकि (आरुणीषु) लाल वर्णवाली घोडियोंमेंसे (तविषीः) बलिष्ठोंको ही (अयुग्ध्वं) तुम रथोंमें लगाते हो ॥ ७ ॥

[७३८] (प्र-चेतसः) ये उत्कृष्ट ज्ञानी वीर (सिंहाः इव) सिंहोंके समान (नानदति) गर्जना करते हैं। (पिशाः इव सु-पिशः) आभूषणोंसे युक्त पुरुषोंकी तरह सुहानेवाले, (विश्व-वेदसः) सब धनोंसे युक्त होकर (क्षपः) शत्रुदलकी धज्जियाँ उडानेवाले, (जिन्वन्तः) लोगोंको संतुष्ट करनेवाले, (शवसा अ-हि-मन्यवः) बलयुक्त होनेके कारण जिनका उत्साह कभी घटता नहीं ऐसे वे वीर (पृषतीभिः) धब्बेवाली घोडियोंके साथ और (ऋष्टिभिः) हथियारोंके साथ (स-बाधः) पीडित जनताकी ओर उसकी रक्षा करनेके लिए (सं इत्) तुरन्त इकट्ठे होकर चले जाते हैं ॥८॥

१ पृषतीभिः ऋष्टिभिः स-बाधः सं इत्— (रक्षिणं गच्छन्ति) = सुशोभित आयुध साथ ले दुःखी जनताके निकट जाकर उनकी रक्षा करते हैं।

[७३९] हे (गण-श्रियः) समुदायके कारण सुहानेवाले, (नृ-साचः) लोगोंकी सेवा करनेवाले, (शूराः) वीर, (शवसा अ-हि-मन्यवः) अत्यधिक बलके कारण न घटनेवाले उत्साहसे युक्त (मरुतः) वीर मरुतो! (रोदसी आ वदत) भूतल एवं द्युलोकको अपनी दहाडसे भर दो, (वन्धुरेषु रथेषु) जिनमें बैठनेके लिए अच्छी जगह है, ऐसे रथोंमें (अमतिः न) निर्मल रूपवालोंके समान तथा (दर्शता विद्युत् न) दर्शन करनेयोग्य बिजलीके समान (वः) तुम्हारा तेज (आ तस्थौ) फैल चुका है ॥ ९ ॥

भावार्थ— ये वीर मरुत् बडे भारी कुशल, तेजस्वी, पर्वतकी भांति अपने सामर्थ्यके सहारे अपनी जगह स्थिर रहनेवाले, पर शत्रुओंपर बडे वेगसे हमला करनेवाले हैं और मतवाले गजराजकी भांति वनोंको कुचलनेकी क्षमता रखते हैं। लाल घोडियोंके झुंडमेंसे ये केवल बलयुक्त घोडियोंको ही अपने रथोंमें जोडनेके लिए चुनते हैं ॥ ७ ॥

ये ज्ञानी वीर सिंहकी भांति दहाडते हुए घोषणा करते हैं। आभूषणोंसे बनेठने दीख पडते हैं। सब प्रकारके धन एवं सामर्थ्य बटोरकर और शत्रुदलकी धज्जियाँ उडाकर ये सज्जनोंका समाधान करते हैं। इनमें असीम बल विद्यमान है, इस लिए इनका उत्साह कभी घटता ही नहीं। भाँतिभाँतिके अनूठे हथियार साथमें रखकर पीडित प्रजाका दुःख हरण करनेके लिए ये वीर एकत्रित होकर अत्याचारी शत्रुओंपर चढाई करते हैं ॥ ८ ॥

वीर मरुत् जब गणवेश (वरदी) पहनते हैं, तो बडे प्रेक्षणीय जान पडते हैं। इनमें वीरता कूटकूटकर भरी होती है और जनताकी सेवा करनेका मानों इन्होंने व्रतसा लिया हुआ होता है। पर्याप्त रूपसे बलवान् हैं, अतः इनकी उमंग कभी घटती ही नहीं। जब वे अपने सुशोभित रथोंपर जा बैठते हैं, तो दामिनीकी दमककी भांति तेजस्वी दिखाई देते हैं ॥ ९ ॥

७४० विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्यो- रनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० ॥
७४१ हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥
७४२ घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गण- मृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२ ॥

अर्थ— [७४०] (रयिभिः विश्व-वेदसः) अनेक धनोंसे युक्त होनेके कारण सर्व धनयुक्त, (सं-ओकसः) एक ही घरमें रहनेवाले, (तविषीभिः सं-मिश्लासः) भाँति भाँतिके बलोंसे युक्त, (वि-रप्शिनः) विशेष सामर्थ्यवान्, (अस्तारः) शत्रुसेनापर अस्त्र फेंकनेवाले, (अन्-अन्त-शुष्माः) असीम सामर्थ्यवाले, (वृष-खादयः) बडे बडे आभूषण धारण करनेवाले, (नरः) नेतृत्वगुणसे विभूषित वीर (गभस्त्योः) बाहुओंपर (इषुं दधिरे) बाण धारण कर रहे हैं ॥ १० ॥

[७४१] (पयो-वृधः) दूध पीकर पुष्ट बननेवाले, (मखाः) यज्ञ करनेवाले, (अयासः) आगे जानेवाले, (स्व-सृतः) स्वेच्छापूर्वक हलचल करनेवाले, (ध्रुव-च्युतः) अटल रूपसे खडे शत्रुओंको भी हिलानेवाले, तथा (दु-ध्र कृतः) दूसरोंके द्वारा न घेरे जानेयोग्य अर्थात् अत्यन्त वीर (भ्राजत् ऋष्टयः) तेजस्वी हथियार साथ रखनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (आ-पथ्यः न) चलनेवाला जिस तरह राहमें पडा हुआ तिनका दूर फेंक देता है, ठीक वैसे ही (पर्वतान्) पहाडोंतकको (हिरण्ययेभिः पविभिः) स्वर्णमय रथोंके पहियोंसे (उत् जिघ्नन्ते) उडा देते हैं ॥ ११ ॥

१ पर्वतान् उत् जिघ्नन्ते— पहाडोंको ये नगण्य एवं अकिंचित्कर समझते हैं, इसलिए शत्रुदल पर चढाई करते समय अगर राहमें पहाडोंकी वजहसे कठिनाई प्रतीत हो, तो उन्हें भी तिनका मानकर पार कर जाते हैं और अपने गंतव्य स्थलको पहुंच जाते हैं ।

[७४२] (घृषुं) युद्धके संघर्षमें चतुर, (पावकं) पवित्रता करनेवाले, (वनिनं) जंगलोंमें घूमनेवाले, (वि-चर्षणिं) विशेष ध्यानपूर्वक हलचल करनेवाले, (रुद्रस्य सूनुं) महावीरके पुत्ररूपी इन वीरोंके समूहकी (हवसा) प्रार्थना करते हुए (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं; तुम (श्रिये) अपने ऐश्वर्यको बढानेके लिए (रजस्-तुरं) धूलि उडानेवाले अर्थात् अति वेगसे गमन करनेवाले, (तवसं) बलिष्ठ, (वृषणं) वीर्यवान् तथा (ऋजीषिणं) सोम पीनेवाले (मारुतं गणं) मरुत् समुदायको (सश्चत) प्राप्त हो जाओ ॥ १२ ॥

भावार्थ— विविध धन समीप रखनेवाले, एक ही घर या निवासस्थानमें रहनेवाले, विभिन्न शक्तियोंसे युक्त, शत्रुसेनापर अस्त्र फेंकनेवाले जो भारी गहने पहनते हैं, ऐसे वीर नेता कंधोंपर बाण तथा तरकस धारण करते हैं ॥ १० ॥

गोदुग्ध-सेवनसे पुष्टि पाकर अच्छे कार्य करते हुए शत्रुओंपर हमले करनेके लिए आगे बढनेवाले, स्थिर शत्रुओंको भी विचलित करनेवाले, आभापूर्ण हथियारोंसे सज्ज तथा जिन्हें कोई घेर नहीं सकता, ऐसे ये वीर पर्वतोंको भी नगण्य तथा तुच्छ मानते हैं ॥ ११ ॥

महासमरके छिड जानेपर चतुराईसे अपना कर्तव्य निभानेवाले, पवित्र आचरण रखनेवाले, वनस्थलोंमें संचार करनेवाले, अधिक सोचविचारपूर्वक हलचलोंका सूत्रपात करनेवाले ये वीर मरुत् हैं । हम इन्हीं वीरोंकी सराहना करनेके लिए काव्यगायन करते हैं । तुम लोग भी अपना वैभव बढानेके लिए शीघ्रतासे चढाई करनेवाले, बलिष्ठ, पराक्रमी एवं सोम पीनेवाले मरुतोंके निकट जाओ ॥ १२ ॥

७४३ प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभि- रापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥ १३ ॥
७४४ चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १४ ॥
७४५ नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्त- मृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥

[६५]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

७४६ पश्वा न तायुं, गुहा चतन्तं नमो युजानं, नमो वहन्तम् १
७४७ सजोषा धीराः, पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन्, विश्वे यजत्राः ॥ १ ॥ २

अर्थ— [७४३] हे (मरुतः !) मरुतो ! तुम (वः ऊती) अपनी संरक्षक शक्तिके द्वारा (यं वै आवत) जिसकी रक्षा करते हो, (सः मर्तः) वह मनुष्य (शवसा) बलमें (जनान् अति) अन्य लोगोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होकर (नु तस्थौ) स्थिर बन जाता है । (अर्वद्भिः वाजं) वह घुडसवारोंके दलकी सहायतासे अन्न पाता है, (नृभिः धना भरते) वीरोंकी मददसे यथेष्ट मात्रामें धन इकट्ठा करता है और (पुष्यति) पुष्ट होता है । उसी प्रकार (आपृच्छ्यं क्रतुं) सराहनीय यज्ञकी ओर (आ क्षेति) चला जाता है, अर्थात् यज्ञ करता है ॥ १३ ॥

[७४४] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (मघ-वत्सु) धनिक तथा वैभवसंपन्न लोगोंमें (चर्कृत्यं) उत्तम कार्य करनेवाला, (पृत्सु दुस्-तरं) युद्धोंमें विजेता, (द्युमन्तं) तेजस्वी, (शुष्मं) बलिष्ठ, (धन-स्पृतं) धनसे युक्त, (उक्थ्यं) सराहनीय, (विश्व-चर्षणिं) सब लोगोंके हितकर्ता (तोकं) पुत्र एवं (तनयं) पौत्र (धत्तन) होते रहें । उसी प्रकार (शतं हिमाः पुष्येम) हम सौ वर्षतक जीवित रहकर पुष्ट होते रहें ॥ १४ ॥

[७४५] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (अस्मासु) हममें (स्थिरं वीर-वन्तं) स्थायी तथा वीरोंसे युक्त, (ऋतीषाहं) शत्रुओंका पराभव करनेवाले, (शतिनं सहस्रिणं) सैंकडों और सहस्रों तरहके, (शूशुवांसं) वर्धिष्णु (रयिं) धनको (नु धत्त) अवश्य ही स्थापित करो, (प्रातः) प्रातःकालके समय (धिया-वसुः) बुद्धि द्वारा कर्मोंका सम्पादन करके धन पानेवाले तुम (मक्षु जगम्यात्) शीघ्र हमारे निकट चले आओ ॥ १५ ॥

[६५]

[७४६] (गुहा चतन्तं) गुहामें रहनेवाले, (नमः युजानं) अन्नको सिद्ध करनेवाले, (नमः वहन्तं) अन्नको साथ रखनेवाले, (पश्वा तायुं न) पशुको (चोरी करके उसके साथ रहनेवाले) चोरको जैसे ॥ १ ॥

[७४७] (सजोषाः धीराः) मिलकर रहनेवाले धीर वीर लोग (पदैः अनु ग्मन्) उसके पावोंके चिन्होंसे पता लगाकर उसे प्राप्त करते हैं, (विश्वे यजत्राः त्वा उप सीदन्) वैसे सभी याजक तेरे समीप चारों ओर बैठते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— ये वीर जिसकी रक्षा करते हैं, वह दूसरोंसे भी अपेक्षाकृत उच्च एवं श्रेष्ठ ठहरता है और अपने पैदल तथा घुडसवारोंके दलमें विद्यमान वीरोंकी सहायतासे यथेष्ट धनधान्य बटोरता हुआ हृष्टपुष्ट होकर भाँति भाँतिके यज्ञ करता रहता है ॥ १३ ॥

उत्साहसे कार्य करनेवाले, लडाइयोंमें सदैव विजयी बननेवाले, शक्ति तथा बलसे लबालब भरे हुए, धन बढानेवाले, सराहनीय, समूची जनताके हितके लिए बडी लगनसे प्रयत्न करनेवाले पुत्र एवं पौत्र धनाढ्य लोगोंके घरोंमें उत्पन्न हों और हम पूरी एक शताब्दि तक जीवित रह कर पुष्टि प्राप्त करें ॥ १४ ॥

हमें उस धनकी आवश्यकता है, जो चिरकाल तक टिक सके, जिससे वीरता बढे, शत्रुदलका निःपात करना सुगम हो कीर्ति फैल सके और जो सैंकडों एवं सहस्रों प्रकारका हो, या जिसकी गिनतीमें शतसंख्याका तथा सहस्र संख्याका उपयोग हो ॥ १५ ॥

७४८ ऋतस्य देवा, अनु व्रता गु-र्भुवत् परिष्टिर्द्यौर्न भूम । ३
७४९ वर्धन्तीमापः, पन्वा सुशिश्वि-मृतस्य योना, गर्भे सुजातम् ॥ २ ॥ ४
७५० पुष्टिर्न रण्वा, क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म, क्षोदो न शंभु ५
७५१ अत्यो नाज्मन्, त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥ ३ ॥ ६
७५२ जामिः सिन्धूनां, भ्रातेव स्वस्रा-मिभ्यान्न राजा, वनान्यत्ति । ७
७५३ यद् वातजूतो, वना व्यस्था-दग्निर्ह दाति, रोमा पृथिव्याः ॥ ४ ॥ ८

अर्थ— [७४८] (देवाः ऋतस्य व्रता अनु गुः) देवोंने सत्यके व्रतोंके अनुकूल गमन किया, व्रतोंका पालन किया। (परिष्टिः भुवत् ,) बडी खोज चारों ओर हुई (द्यौः न भूम) भूमि स्वर्ग समान सुख देनेवाली बनायी गयी ॥३॥

[७४९] (ऋतस्य योना गर्भे सुजातं) सत्यके बीचमें उत्तम प्रकार उत्पन्न (पन्वा सुशिश्विं ईं) स्तुतिसे बढनेवाले इस देवको (आपः वर्धन्ति) जलप्रवाह बढा रहे हैं ॥ ४ ॥

[७५०] (पुष्टिः न रण्वा) पुष्टि जैसी रमणीय होती है, (क्षितिः न पृथ्वी) भूमि जैसी विस्तीर्ण होती है, (गिरिः न भुज्म) पर्वत जैसा भोजन देता है (क्षोदः न शंभु) जल जैसा हितकारी होता है ॥ ५ ॥

[७५१] (अत्यः न अज्मन् सर्गप्रतक्तः) घोडा जैसा युद्धके स्थानपर वीरद्वारा प्रेरित होता हुआ दौडता जाता है (सिन्धुः न क्षोदः) जैसी नदी किनारोंको तोडती हुई आगे बढती है वैसा ही यह अग्नि है (ईं कः वराते) इसको कौन रोक सकता है ? ॥ ६ ॥

[७५२] (सिन्धूनां जामिः) यह नदियोंका मित्र (स्वस्रां भ्राता इव) बहिनोंके लिए भाई जैसा हितकारी, (इभ्यान् न राजा) शत्रुओंका जैसा राजा नाश करता है वैसा यह (वनानि अत्ति) वनोंको खा जाता है ॥ ७ ॥

[७५३] (यत् वातजूतः वना वि अस्थात्) जब वायुसे प्रेरित होकर यह वनोंपर आक्रमण करता है, (अग्निः ह पृथिव्याः रोम दाति) तब यह अग्नि पृथ्वीके बालों-औषधियोंको काटता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— गुहामें रहनेवाले भक्तोंके नमस्कारको स्वीकार करनेवाले चोर जैसे सर्वत्र गुप्त या छिपकर रहनेवाले ईश्वरको ढूंढनेके लिए धीर वीर भक्तपदोंका अनुसंधान करके उस ईश्वरको प्राप्त करते हैं, और उसकी उपासना करनेके लिए ये सब यज्ञ करनेवाले साथ साथ बैठते हैं ॥ १-२ ॥

देवोंने सत्य और उत्तम व्रतोंका पालन किया इससे भूमि स्वर्गके समान रमणीय बन गई । तब सत्यके गर्भ या मध्यमें रहनेवाले तथा प्रशंसाके योग्य इस अग्निको लोग बढाते हैं । यह अग्नि सदा सत्यके द्वारा ही प्राप्य है ॥ ३-४ ॥

पुष्टि जैसी रमणीय होती है, उसी प्रकार यह अग्नि पोषक है और रमणीय भी है । यह भूमिके समान विस्तृत है और पर्वतके समान यह सबको भोजन देता है । जलके समान यह कल्याणकारी, जीवनदाता और हितकर्ता है । जैसे उत्तम घोडा अपने सवारसे प्रेरित होनेपर वेगसे दौडता जाता है और बीचमें रुकता नहीं, उसी प्रकार यह प्रभु भक्तिके शब्दोंसे प्रेरित होकर भक्तके पास सहायताके लिए जाता है । तथा जिस प्रकार नदीका प्रवाह वेगवान् होनेपर भूमिको काटते तथा अन्य विघ्नोंको पार करते हुए आगे बढता है, उसी प्रकार यह अग्नि भी अपने भक्तोंके पास पहुंचता है । उस समय इसको कोई रोक नहीं सकता ॥ ५-६ ॥

अग्निसे जलोंकी उत्पत्ति होनेके कारण यह अग्नि नदियोंका सम्बन्धी है । जैसे भाई बहिनोंका हित करता है, वैसे ही अग्नि सबका भरण-पोषण करता है । यह अग्नि बिजलीके रूपमें मेघोंमें स्थित होकर पानी बरसाता है और उसके द्वारा अन्न उत्पन्न होकर सबका पोषण होता है । इस प्रकार मानो अग्नि ही सबका पोषण करता है ॥ ७ ॥

वायुसे प्रेरित होकर अग्नि जब वनोंपर हमला करता है तब वह अग्नि भूमिके बालों अर्थात् वृक्षोंको काटता है और जिस प्रकार एक राजा शत्रुओंको नष्टभ्रष्ट करता है, उसी प्रकार यह अग्नि वनोंको अर्थात् लकडियोंको खा जाता है । यहां राजाका या क्षत्रियका कर्तव्य बताया है कि जैसे अग्नि लकडीको जलाकर भस्म कर देता है, उसी तरह क्षत्रिय वीर राजा अपने शत्रुओंका नाश करे ॥ ८ ॥

७५४ श्वसित्यप्सु, हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो, विशामुषर्भुत् । ९
७५५ सोमो न वेधा, ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा, विभुर्दूरेभाः ॥ ५ ॥ १०

[९६]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

७५६ रयिर्न चित्रा, सूरो न संदृगायुर्न प्राणो, नित्यो न सूनुः १
७५७ तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः, शुचिर्विभावा ॥ १ ॥ २
७५८ दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो, जेता जनानाम् ३
७५९ ऋषिर्न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो, वयो दधाति ॥ २ ॥ ४

अर्थ— [७५४-७५५] (उषः भुत् क्रत्वा विशां चेतिष्ठः) उषःकालमें जागनेवाला, अपने कर्मसे प्रजाओंको जगानेवाला (सोमः न वेधाः) सोमकी भाँति बढानेवाला (ऋतः प्रजातः) सत्यसे उत्पन्न (पशुः न शिश्वा विभुः दूरेभाः) पशुके समान चंचल, सर्वत्र व्यापक दूर तक प्रकाश फैलानेवाला यह अग्नि (हंसः न) हंसके समान (अप्सु सीदन्) जलोंमें बैठकर (श्वसिति) प्राण धारण करता है अर्थात् गति करता है ॥ ९-१० ॥

१ उषः भुत् क्रत्वा विशां चेतिष्ठः— यह अग्रणी उषःकालमें जागकर अपने कर्मसे अन्योंको भी जगानेवाला है ।

[९६]

[७५६-७५७] (रयिः न चित्रा) रमणीय धनके समान चाहने योग्य, (सूरः न संदृक्) ज्ञानीके समान सम्यक् द्रष्टा, (आयुः न प्राणः) जीवनके समान प्राणवान्, (नित्यः न सूनुः) सगे पुत्रके समान हित करनेवाला (तक्वा न भूर्णिः) अश्वके समान पोषण करनेवाला और (पयः न धेनुः) दूधको धारण करनेवाली गौके समान उपकारी यह अग्नि (शुचिः विभावा वना सिषक्ति) प्रज्वलित होकर अपने विशिष्ट प्रकाशसे वनोंको जला देता है ॥१-२॥

१ सूरः न संदृक्— ज्ञानीके समान यह अग्रणी सबको अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे देखता है ।
२ नित्यः सूनुः न— सगे पुत्रके समान हितकारी है ।
३ पयः न धेनुः— दूधसे भरपूर गायके समान हितकारी है ।

[७५८-७५९] (ओकः न रण्वः) गृहके समान रमणीय, (यवः न पक्वः) अन्नके समान परिपक्व यह अग्नि (क्षेमं दाधार) लोगोंके लिए कल्याण धारण करता है । (जनानां जेता) शत्रुओंको जीतनेवाला (ऋषिः न स्तुभ्वा) ऋषिके समान स्तुति करनेवाला है और (विक्षु प्रशस्तः) मनुष्योंके मध्यमें प्रशंसनीय, (प्रीतः वाजी न) प्रसन्न मनवाले वीरके समान (वयः दधाति) सबके हितके लिए अपना जीवन अर्पित करता है ॥ ३-४ ॥

१ रण्वः क्षेमं दधाति— यह रमणीय अग्रणी लोगोंका कल्याण करता है ।
२ विक्षु प्रशस्तः प्रीतः वयः दधाति— प्रजाजनोंमें प्रशंसित तथा प्रसन्न मनवाला यह अग्रणी नेता लोगोंके हितके लिए अपना जीवन अर्पित करता है । यह नेताका एक उत्तम लक्षण है ।

भावार्थ— हमेशा कर्म करनेवाला, बढानेवाला, सत्यकी वृद्धिके लिए प्रकट हुआ, चंचल यह अग्नि यज्ञ कर्मोंमें प्रकट होता है ॥ ९-१० ॥

यह अग्रणी देव चाहने योग्य, सम्यक् द्रष्टा, प्राणदाता, हितकारी, पोषक, उपकारी तथा तेजस्वी है ॥ १-२ ॥

रमणीय, उपभोगके योग्य पदार्थोंको देनेवाला, शत्रुओंका विजेता, मनुष्योंमें पूज्य, सदा प्रसन्न रहनेवाला यह अग्रणी नेता अपनी प्रजाओंकी भलाईके लिए अपना जीवन भी दे देता है ॥ ३-४ ॥

७६० दुरोकशोचिः, क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ५
७६१ चित्रो यदभ्राट्, छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी, त्वेषः समत्सु ॥ ३ ॥ ६
७६२ सेनेव सृष्टामं दधात्य—स्तुर्न दिद्युत्, त्वेषप्रतीका ७
७६३ यमो ह जातो, यमो जनित्वं जारः कनीनां, पतिर्जनीनाम् ॥ ४ ॥ ८
७६४ तं वश्चराथा, वयं वसत्या—स्तं न गावो, नक्षन्त इद्धम् ९
७६५ सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनो—न्नवन्त गावः स्व१र्दृशीके ॥ ५ ॥ १०

अर्थ— [७६०-७६१] (दुरोकशोचिः) असह्य तेजवाला, (क्रतुः न नित्यः) नित्य शुभ कर्म करनेवालेके समान कर्मशील (योनौ जाया इव विश्वस्मै अरं) जिस प्रकार घरमें स्त्री सुख देती है, उसी तरह सबको पर्याप्त सुख देनेवाला (चित्रः) विचित्र दीप्ति युक्त यह अग्नि (यत् अभ्राट्) जब प्रकाशमान होता है, उस समय (श्वेतः न) शुभ्र वर्णवाले आदित्यके समान हो जाता है (विक्षुः रथः न) प्रजाओंमें महारथी वीरके समान प्रशंसनीय यह अग्नि (समत्सु रुक्मी त्वेषः) संग्रामोंमें सुवर्णमय तेजसे पूरित होता है ॥ ५-६ ॥

१ योनौ जाया इव सर्वस्मै अरं— घरमें जिस प्रकार स्त्री सुखदायी होती है, उसी तरह यह अग्रणी सबको पर्याप्त सुख देता है ।

२ समत्सु रुक्मी त्वेषः— यह अग्रणी वीर युद्धोंमें और अधिक तेजस्वी हो जाता है ।

[७६२-७६३] (सृष्टा सेना इव) शत्रु पर भेजी गई सेनाकी तरह यह अग्नि (अमं दधाति) बलको धारण करता है । (अस्तुः न दिद्युत् त्वेषप्रतीका) वेगसे फेंके गए बिजलीके अस्त्रके समान वह भयंकर और दीप्तियुक्त मुखवाला है । (यमः ह जातः, यमः जनित्वं) जो उत्पन्न हुआ, या जो भविष्यमें उत्पन्न होगा, उन सबका नियामक अग्नि है । अग्नि (कनीनां जारः, जनीनां पतिः) अग्नि कन्याओंका कौमार्य समाप्त करनेवाला, तथा विवाहिताका पति है । (स्त्रियां गार्हपत्य अग्निकी पतिके साथ नित्य पूजन करती हैं इस दृष्टिसे उसको पति कहा गया है) ॥ ७-८ ॥

१ सृष्टा सेना इव अस्तुः दिद्युत् अमं दधाति— शत्रु पर प्रेरित की गई सेनाके समान और वेगसे फेंके गए अस्त्रके समान यह अग्रणी बलशाली है ।

२ कनीनां जारः— यह अग्नि कुमारियोंको कौमार्य समाप्त करता है । विवाहके समय अग्निमें लाजाकी आहुति पडनेके बाद कन्यापन समाप्त हो जाता है । (विवाहसमये अग्नौ लाजादिद्रव्यहोमे सति तासां कन्यात्वं निवर्तते । (सायण)

[विवाहमें लाजाकी आहुति दी जाती है, उसके पश्चात् कन्या पत्नी बन जाती है । अथवा ' लज्जा एव लाजा ' लज्जा ही लाजा है । विवाहोपरान्त पतिके विषयमें पत्नी लज्जा धारण नहीं करती । अथवा जिस स्त्रीकी लज्जा नष्ट हो जाये उसका कन्यात्व भी नष्ट हो जाता है ।]

[७६४-७६५] हे अग्ने ! (गावः) गौवें (अस्तं न,) जिस प्रकार सूर्यके अस्त होने पर घरको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार (चराथा वसत्या वयं) पशु और मनुष्योंसे युक्त होकर हम (तं वः) उस प्रसिद्ध तुझको (नक्षन्ते) प्राप्त होते हैं । यह अग्नि (सिन्धुः न क्षोदः नीचीः प्र ऐनोत्) प्रवाहित जलके समान ज्वालाओंको प्रवाहित करता है । उसकी (दृशीके गावः) दर्शनीय किरणें (स्वः नवन्त) आकाशकी ओर ऊपरको उठती हैं ॥ ९-१० ॥

भावार्थ— यह अग्रणी अत्यन्त तेजस्वी, कर्मशील, सुखकारी प्रकाशमान् तथा महारथी है । युद्धमें भी अत्यन्त तेज एवं दृढताके साथ पराक्रम दिखाता है, इसलिए यह मनुष्योंमें प्रशंसनीय होता है ॥ ५-६ ॥

यह अग्रणी सेनाके समान बलशाली तथा शस्त्रके समान भयंकर है । संसारमें उत्पन्न हुए या उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थोंका यह अग्नि नियामक है । सभी पदार्थोंके अन्दर उष्णता रहती है और इसी कारण उनकी सत्ता भी रहती है ॥७-८॥

शामको अपने घरकी तरफ आनेवाली गायोंकी तरह हम भी इस अग्निकी ओर जाते हैं । यह अग्नि जब अपनी ज्वालाओंको प्रकट करता है, तब इसकी ज्वालाएं आकाशमें फैलती हैं ॥ ९-१० ॥

[६७]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

७६६ वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं, राजेवाजुर्यम् १
७६७ क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत् स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥ १ ॥ २
७६८ हस्ते दधानो, नृम्णा विश्वा-न्यमे देवान् धाद्, गुहा निषीदन् ३
७६९ विदन्तीमत्र, नरो धियंधा हृदा यत् तष्टान्, मन्त्राँ अशंसन् ॥ २ ॥ ४
७७० अजो न क्षां, दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां, मन्त्रेभिः सत्यैः ५
७७१ प्रिया पदानि, पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने, गुहा गुहं गाः ॥ ३ ॥ ६

---

[६७]

अर्थ— [७६६–७६७] (राजा अजुर्यं इव) जैसे राजा सर्व गुणसम्पन्न वीर पुरुषका वरण करता है वैसे ही (वनेषु जायुः) जंगलमें उत्पन्न, (मर्तेषु मित्रः) मनुष्योंमें मित्र, (क्षेमः न साधुः) रक्षकके समान हितकारी (क्रतुः न भद्रः) यज्ञके समान पूज्य (होता) देवोंको बुलानेवाला अग्नि भी प्रजाकी (श्रुष्टिं) सहायता करनेवालेको (वृणीते) स्वीकार करता है अर्थात् उसका सम्मान करता है। ऐसा (हव्यवाट्) हविको लेजानेवाला यह अग्नि हमारे लिये (स्वाधीः भुवत्) कल्याण करनेवाला हो ॥ १–२ ॥

१ मित्रः साधुः श्रुष्टिं वृणीते— सबका मित्र, सज्जनोंका हित करनेवाला यह अग्रणी प्रजाके कल्याण करनेवालेको अपना सहायक चुनता है।

[७६८–७६९] (विश्वानि नृम्णा) सम्पूर्ण धनोंको (हस्ते दधानः) हाथमें धारण कर (गुहा, निषीदन्) गुफामें रहते हुए इस अग्निने (देवान् अमे धाद्) देवोंको बलमें स्थापित किया। (यत् हृदा तष्टान् मन्त्रान् अशंसन्) जब हृदयसे उत्पन्न मन्त्रोंसे स्तुति करते हैं तब (धियं धा नरः अत्र ईं विन्दन्ति) बुद्धिको धारण करनेवाले मनुष्य यहाँ इस अग्निको जानते हैं ॥ ३–४ ॥

[७७०–७७१] (अजः न क्षां दाधार) अजन्मा होकर इस अग्निने पृथ्वीको धारण किया, उसीने (पृथिवीं) अन्तरिक्षको धारण किया तथा (सत्यैः मन्त्रेभिः) सत्य संकल्पोंसे (द्यां तस्तम्भ) द्युलोकको भी स्थिर किया है। हे (अग्ने) अग्ने ! तू (पश्वः प्रिया पदानि निपाहि) पशुओंके प्रिय स्थानोंकी रक्षा कर। क्योंकि (विश्वायुः गुहा गुहं गाः) सब प्राणियोंका आयु रूप तू गुहाओंके अत्यन्त गुप्तस्थानोंमें प्रवेश करता है ॥ ५–६ ॥

भावार्थ— कल्याणकारी, पूज्य, सभीका मित्र यह अग्रणी उसीको अपना सहकारी चुनता है, जो प्रजाकी सहायता करता है। इसीलिए यह अग्नि सदा कल्याणके कामोंमें तत्पर रहता है ॥ १–२ ॥

जब लोग मंत्रोंसे इसकी प्रशंसा करते हैं, तब यह अग्रणी अपना बल प्रकट करता है और फिर अपने बलसे देवोंमें शक्ति बढाता है ॥ ३–४ ॥

यह अग्नि ही अपने सत्यके बलसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीनों लोकोंको धारण करता है। वह अत्यन्त गुप्त रहता है। पर हम सबका रक्षक है ॥ ५–६ ॥

अग्निरूपसे पृथिवीपर, विद्युद्रूपसे अन्तरिक्षमें और सूर्यादिके रूपमें द्युलोकमें अग्नि ही रहता है। और सर्वत्र अग्निके कार्य करता है।

७७२ य ईं चिकेत, गुहा भवन्त॒मा यः स॒साद॒, धारा॑मृतस्य॑ ७
७७३ वि ये चृतन्त्यृता सप॑न्त आदिद्व॒सू॑नि, प्र व॑वाचास्मै ॥ ४ ॥ ८
७७४ वि यो वीरुत्सु, रोध॑न्महि॒त्वो॒त प्र॒जा, उ॒त प्र॒सूष्व॒न्तः ९
७७५ चित्ति॑रपां, दमे॑ वि॒श्वायु॑ः सद्मे॑व धीरा॑ः, संमाय॑ चक्रुः ॥ ५ ॥ १०

[६८]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

७७६ श्रीणन्नुप॑ स्थाद्, दिवं॑ भु॒र॒ण्युः स्था॒तुश्च॒रथ॑म॒क्तून् व्यू॑र्णोत् १
७७७ परि॒ यदे॑षा॒मेको॒ विश्वे॑षां भुव॑द्दे॒वो, दे॒वानां॑ महि॒त्वा ॥ १ ॥ २

अर्थ— [७७२-७७३] (यः गुहा भवन्तं ईं चिकेत) जो गुफामें स्थित इस अग्निको जानता है। और (यः ऋतस्य धारां आ ससाद) जो यज्ञके धारक अग्निकी उपासना करता है। तथा (ये ऋता सपन्तः विचृतन्ति) जो लोग यज्ञमें अग्निकी स्तुति करते हैं, (आत् इत् अस्मै वसूनि प्र ववाच) तदनन्तर अग्नि उन सब स्तोतृ जनोंके लिये श्रेष्ठ धनोंकी प्राप्तिके मार्ग बतलाता है ॥ ७-८ ॥

१ यः आ ससाद अस्मै वसूनि प्र ववाच— जो इस अग्रणीकी उपासना करता है, उसे ही यह अग्नि धन-प्राप्तिके मार्ग बताता है।

[७७४-७७५] (यः वीरुत्सु महित्वा विरोधत्) जो अग्नि औषधियोंमें अपना महत्त्व स्थापित करता है तथा (उत प्रजाः प्रसूषु अन्तः इति) पुष्प फलादि प्रकट करनेवाले वृक्षोंमें भी अपना महत्त्व स्थापित करता है। (धीरः) ज्ञानी पुरुष उस (चित्तिः अपां दमे विश्वायुः) ज्ञान देनेवाले तथा जलोंके मध्यमें स्थित अग्निकी, (सद्म इव) घरकी तरह (संमाय चक्रुः) पूजा करके अपने काम करते हैं ॥ ९-१० ॥

१ वीरुत्सु महित्वा विरोधत्— वृक्ष वनस्पत्यादियोंमें यह अपना महत्त्व प्रकट करता है।

[६८]

[७७६-७७७] (भुरण्युः) हविको धारण करनेवाला अग्नि (स्थातुः चरथं श्रीणन्) स्थावर तथा जंगम वस्तुओंको परिपक्व कर (दिवं उपस्थातुः) आकाशको प्राप्त हुआ। उसीने (अक्तून् व्यूर्णोत्) सब रात्रियोंको अपने तेजसे प्रकाशित किया, (एषां विश्वेषां देवानां) इन सब देवोंका (यत् महित्वा) जो महात्म्य था, उस महात्म्यको (एकः देवः) एक अग्निने ही (परि भुवत्) सब ओरसे प्राप्त कर लिया ॥ १-२ ॥

१ विश्वेषां देवानां महित्वा परि भुवत्— सभी देवोंका महत्त्व इस अग्निने पा लिया। यह अग्रणी देव अन्य सब देवोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्ववाला है।

भावार्थ— जो गुप्तस्थानमें छिपे हुए इस अग्निको जानकर इसकी प्रशंसा, उपासना व स्तुति करता है, वही धन प्राप्त करता है ॥ ७-८ ॥

सबसे प्रथम अग्निकी पूजा करनी चाहिए। इतना महत्त्व इस अग्निका है जो सर्वत्र उपस्थित है ॥ ९-१० ॥

यह अग्नि सब स्थावर और जंगमको जीवन देता हुआ द्युलोककी ओर बढता है। इसलिए यह देवोंमें सर्वाधिक महत्त्वशाली है। मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति आदियोंमें अग्निके कारण ही जीवनतत्त्व है ॥ १-२ ॥

७७८ आदित् ते विश्वे, क्रतुं जुषन्त शुष्काद् यद् देव, जीवो जनिष्ठाः ३
७७९ भजन्त विश्वे, देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो, अमृतमेवैः ॥ ४ ॥ ४
७८० ऋतस्य प्रेषा, ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे, अपांसि चक्रुः ५
७८१ यस्तुभ्यं दाशाद्, यो वा ते शिक्षात् तस्मै चिकित्वान्, रयिं दयस्व ॥ ३ ॥ ६
७८२ होता निषत्तो, मनोरपत्ये स चिन्न्वासां, पती रयीणाम् ७
७८३ इच्छन्त रेतो, मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥ ८
७८४ पितुर्न पुत्राः, क्रतुं जुषन्त श्रोषन् ये अस्य, शासं तुरासः ९
७८५ वि राय और्णोद्, दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं, स्तृभिर्दमूनाः ॥ ५ ॥ १०

अर्थ— [७७८–७७९] हे (देव) प्रकाशमान् अग्ने ! (यत् शुष्कात् जीवः जनिष्ठाः) जब तू सूखे काष्ठके घर्षणसे जलकर उत्पन्न हुआ, तो उसके (आत् इत्) अनन्तर ही (विश्वे ते क्रतुं जुषन्त) सब देव गण तेरे इस कर्तृत्वकी प्रशंसा करने लगे। (अमृतं, एवैः सपन्तः) मरण रहित इस प्रकारके तुझको प्राप्त होनेसे ही (विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्त) वे सब देव यश, सत्य और देवत्वको प्राप्त कर सके ॥ ३–४ ॥

१ अमृतं एव सपन्तः विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्ते— उस अमर अग्रणीकी उपासना करके सब लोग यश, सत्य और देवत्व प्राप्त करते हैं।

[७८०–७८१] यह अग्नि (ऋतस्य प्रेषाः) सत्यका प्रेरक और (ऋतस्य धीतिः) सत्यका रक्षक है (विश्वायुः, विश्वे अपांसि चक्रुः) यह सबको आयु प्रदान करनेवाला है; सब इसीके लिये यज्ञ कर्म करते हैं। (तुभ्यं यः दाशात्) हे अग्ने! तेरे लिये जो हव्य प्रदान करता है; (यः वा ते शिक्षात्) और जो तुझसे ज्ञान प्राप्त करता है (तस्मै चिकित्वान् रयिं दयस्व) तू उसकी योग्यता जानकर धन प्रदान कर ॥ ५–६ ॥

१ यः शिक्षात्, रयिं दयस्व— जो ज्ञान प्राप्त करता है, वही धन भी प्राप्त करता है।

[७८२–७८३] (मनोः अपत्ये होता निषत्तः) मनुष्योंमें होता रूपसे विद्यमान (सः चित् नु आसां रयीणां पतिः) वह अग्नि ही प्रजाओं और धनोंका स्वामी है। (तनूषु मिथः रेतः इच्छन्तः) आपसमें वीर्यके सम्बन्धकी इच्छा करते हुए (अमूराः स्वैः दक्षैः सं जानत) उन ज्ञानियोंने अपने सामर्थ्योंसे पुत्रप्राप्तिके मार्गको जाना ॥ ७–८ ॥

[७८४–७८५] (पितुः न पुत्राः) पिताका आदेश माननेवाले पुत्रोंके समान (ये अस्य शासं) जिन मनुष्योंने इस अग्निकी आज्ञाको (श्रोषन्, तुरासः क्रतुं जुषन्त) सुनकर शीघ्र ही कर्म प्रारंभ कर दिया, उनके लिये (पुरुक्षुः रायः दुरः वि और्णोत्) बहुत अन्नके देनेवाले अग्निने धनके द्वार खोल दिये। (दमूनाः स्तृभिः नाकं पिपेश) संयमसे रहनेवाले इस अग्निने ही नक्षत्रोंसे आकाशको अलंकृत किया ॥ ९–१० ॥

१ ये अस्य शासं क्रतुं जुषन्त, रायः दुरः वि और्णोत्— जो मनुष्य इस अग्निके शासनमें रहकर कर्म करते हैं, उनके लिए यह अग्नि धनके द्वार खोल देता है।

भावार्थ— जब यह अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, तब इसकी सब उपासना करते हैं। इस अग्निकी उपासना करके ही यश और देवत्व प्राप्त किया जा सकता है ॥ ३–४ ॥

वह अग्रणी सत्यका पालक एवं रक्षक है, उसीकी प्रेरणासे सब कर्म करते हैं। जो इससे नम्रतासे ज्ञान प्राप्त करता है, वही धन भी प्राप्त करता है ॥ ५–६ ॥

वह अग्नि धनोंका स्वामी है। उसी अग्निकी प्रेरणासे मनुष्योंने सन्तानोत्पत्तिका क्रम चलाया ॥ ७–८ ॥

यह मनुष्य अपने शासनमें रहकर धर्म करनेवालोंको धन प्रदान करता है। यह स्वयं भी संयमी है। इसीके सामर्थ्यसे आकाशमें नक्षत्र स्थिर हैं ॥ ९–१० ॥

[६९]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

७८६ शुक्रः शुशुक्वाँ, उषो न जारः पप्रा समीची, दिवो न ज्योतिः
७८७ परि प्रजातः, क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां, पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥
७८८ वेधा अदृप्तो, अग्निर्विजानन् ऊधर्न गोनां, स्वाद्मा पितूनाम्
७८९ जने न शेव, आहूर्यः सन् मध्ये निषत्तो, रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥
७९० पुत्रो न जातो, रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो, विशो वि तारीत्
७९१ विशो यदह्वे, नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा, विश्वान्यश्याः ॥ ३ ॥

[६९]

अर्थ—[७८६-७८७] (उषः जारः न शुक्रः शुशुकान्) उषा-प्रेमी सूर्यके समान शुभ्रवर्ण अग्नि सबका प्रकाशक है । तथा (दिवः न ज्योतिः समीची पप्रा) प्रकाशमान् सूर्यकी ज्योतिके समान अपने तेजसे द्यौ और पृथ्वीको एक साथ पूर्ण करता है । हे अग्ने ! तूने (प्रजातः क्रत्वा परि बभूथ) उत्पन्न होकर अपने कर्म अथवा प्रकाशसे सारे विश्वको व्याप्त कर लिया और (देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः) तू देवताओंका पुत्र होता हुआ भी उनका पिता हो गया ॥ १-२ ॥

१ शुक्रः समीची पप्रा— यह तेजस्वी अग्नि द्यु और पृथ्वीको अपने प्रकाशसे भर देता है ।

२ देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः— देवोंका पुत्र होता हुआ भी यह अग्नि हवि आदि पहुंचाकर उनका पालन करता है ।

[७८८-७८९] (वेधाः अदृप्तः) बुद्धिमान् और अहंकारसे रहित, (विजानन् अग्निः) कर्तव्याकर्तव्यको जानते हुये अग्नि, (गोनां ऊधः न) गौवोंके थनके दूधके समान (पितूनां स्वाद्म) अन्नोंको स्वादिष्ट करता है । और (जने न शेवः) मनुष्योंमें हितैषी पुरुषकी तरह (मध्ये आहूर्यः सन्) यज्ञके मध्यमें आहूत होकर (दुरोणे निषत्तः रण्वः) यज्ञ गृहमें आकर शोभायमान होता है ॥ ३-४ ॥

१ वेधाः अदृप्तः गोनां ऊधः न पितूनां स्वाद्म— बुद्धिमान् होते हुए भी निरहंकारी यह अग्नि गायोंके दूधके समान पदार्थोंको स्वादिष्ट करता है ।

[७९०-७९१] (दुरोणे पुत्रः न जातः रण्वः) घरमें उत्पन्न हुये पुत्रके समान सुखदायक अग्नि, (वाजी न प्रीतः विशः वि तारीत्) घोडेकी तरह हर्षान्वित होकर मनुष्योंको दुःखसे पार लगाता है । (यत् नृभिः) जब मनुष्योंके साथ मैं (सनीळाः विशः अह्वे) यज्ञमें समान स्थानवाले मनुष्योंका आह्वान करता हूँ, तब (अग्निः विश्वानि देवत्वा अश्याः) अग्नि देवोंके देवत्वभावको प्राप्त करता है ॥ ५-६ ॥

१ रण्वः प्रीतः वि तारीत्— यह सुखदायक अग्रणी प्रसन्न होनेपर भक्तको दुःखसे पार कराता है ।

२ अग्निः विश्वानि देवत्वा अश्याः— यह अग्रणी सारे देवभावोंको प्राप्त करता है ।

भावार्थ—यह अग्नि अत्यन्त प्रकाशमान होनेके कारण सभी लोकोंको अपने तेजसे भर देता है । यह अन्नादिसे देवों-विद्वानोंका पालन करता है ॥ १-२ ॥

वह अग्रणी बुद्धिमान होते हुए भी निरहंकारी है । यही अग्नि अन्नको स्वादिष्ट बनाता है । यज्ञगृहमें वह आकर शोभायमान होता है ॥ ३-४ ॥

पुत्रके समान सुखदायक अग्नि प्रसन्न होकर मनुष्योंको दुःखसे पार कराता है और बुलाए जानेपर सभी उत्तम गुणोंको अपने साथ लेकर आता है ॥ ५-६ ॥

७९२ नकिंष्ट एता, व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः, श्रुष्टिं चकर्थं ७
७९३ तत् तु ते दंसो, यदहन्त्समानै–र्नृभिर्यद् युक्तो, विवे रपांसि ॥ ४ ॥ ८
७९४ उषो न जारो, विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ९
७९५ त्मना वहन्तो, दुरो व्यृण्वन् नवन्त विश्वे, स्व१र्दृशीके ॥ ५ ॥ १०

[७०]

(ऋषिः– पराशरः शाक्त्यः । देवता– अग्निः । छन्दः– द्विपदा विराट् ।)

७९६ वनेमं पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको, विश्वान्यश्याः १
७९७ आ दैव्यानि, व्रता चिकित्वा–ना मानुषस्य, जनस्य जन्म ॥ १ ॥ २

अर्थ— [७२२–७९३] (यत् एभ्यः नृभ्यः) चूंकि तू नियममें रहनेवाले इन मनुष्योंको (श्रुष्टिं चकर्थ) सहायता करता है, इसलिए (ते एता व्रता नकिः मिनन्ति) तेरे इन नियमोंको कोई तोड नहीं सकता । (यत् अहन्) जो तूने शत्रुओंको मारा और (यत् समानैः नृभिः युक्तः रपांसि विवेः) जो साधारण मानवोंसे युक्त होकर तूने राक्षसोंको मार भगाया (तत् ते दंसः) वह तेरा पराक्रम प्रशंसनीय है ॥ ७–८ ॥

१ व्रता नकिः मिनन्ति— इस अग्रणीके नियमोंको कोई तोड नहीं सकता ।

२ समानैः नृभिः रपांसि विवेः— साधारण मनुष्योंकी सहायतासे अग्रणी वीरने शत्रुओंको मार भगाया । यह इतना वीर है ।

[७९४–७९५] (उषः जारः न विभावा) उषा प्रेमी सूर्यके समान विशेष तेजस्वी (उस्रः संज्ञातरूपः अस्मै चिकेतत्) और प्रकाशयुक्त, प्रख्यात अग्नि इस मनुष्यको जाने । (त्मना वहन्तः) स्वयं हविको लेकर और (दुरः वि ऋण्वन्) यज्ञ गृहके द्वारको खोलकर (विश्वे) अग्निकी वे सारी किरणें (दृशीके, स्वः) दर्शनीय आकाशमें (नवन्त) चारों ओर जाती हैं ॥ ९–१० ॥

१ दुरः ऋण्वन् दृशीके स्वः विश्वे नवन्त— द्वारोंको खोलकर इस अग्निकी किरणें अनन्त आकाशमें फैल जाती हैं ।

[७०]

[७९६–७९७] जिससे हम (पूर्वीः वनेम) प्रभूत धन माँगते हैं वह (अग्निः) अग्नि (मनीषा, अर्थः सुशोकः) बुद्धिसे प्राप्त करने योग्य, श्रेष्ठ और उत्तमतासे तेजस्वी है । (विश्वानि, दैव्यानि व्रता) देवोंके सब कर्मोंको तथा (मानुषस्य जन्म) मनुष्यके जन्मको (चिकित्वान् आ अश्याः) जाननेवाला यह अग्नि सर्वत्र पूर्णरूपसे व्याप्त हो रहा है ॥ १–२ ॥

१ अग्निः मनीषा— वह अग्नि देव बुद्धिसे प्राप्त करने योग्य है ।

२ विश्वानि दैव्यानि व्रता मनुषस्य जन्म चिकित्वान्— वह देवोंके सम्पूर्ण कर्मों और मनुष्यके जन्मोंको जानता है ।

भावार्थ— यह अग्रणी उन मनुष्योंकी सहायता करता है जो इसके अनुशासनमें रहता है । वह ऐसे मनुष्योंकी सहायता लेकर शत्रुओंको खदेड देता है ॥ ७–८ ॥

यह अग्नि देव तेजस्वी और प्रकाशयुक्त होनेके कारण सभीके द्वारा ज्ञात है । इसकी ज्वालायें बहुत ऊंची उठती हुई आकाशमें फैल जाती हैं ॥ ९–१० ॥

भरपूर धनको देनेवाला वह अग्नि श्रेष्ठ होनेके कारण बुद्धिसे जाना जा सकता है । वह सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण सब कुछ जानता है ॥ १–२ ॥

७९८ गर्भो यो अपां, गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां, गर्भश्चरथाम् ३
७९९ अद्रौ चिदस्मा, अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो, अमृतः स्वाधीः ॥ २ ॥ ४
८०० स हि क्षपावाँ, अग्नी रयीणां दाशद् यो अस्मा, अरं सूक्तैः ५
८०१ एता चिकित्वो, भूमा नि पाहि देवानां जन्म, मर्तांश्च विद्वान् ॥ ३ ॥ ६
८०२ वर्धान्यं पूर्वीः, क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् ७
८०३ अराधि होता, स्व१र्निषत्तः कृण्वन् विश्वान्यपांसि सत्या ॥ ४ ॥ ८
८०४ गोषु प्रशस्तिं, वनेषु धिषे भरन्त विश्वे, बलिं स्वर्णः ९
८०५ वि त्वा नरः, पुरुत्रा संपर्यन् पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥ ५ ॥ १०

अर्थ—[७९८-७९९] (यः अपां गर्भः) जो अग्नि जलोंके बीचमें, (वनानां गर्भः) जंगलोंके बीचमें, (स्थातां गर्भः) स्थावरोंके बीचमें, (च चरथां गर्भः) और जंगम प्राणियोंके बीचमें विद्यमान है। (अमृतः स्वाधीः विश्वः विशां न) यह अमर और उत्तम कर्म करनेवाला अग्नि सबको उसी प्रकार आधार देता है जिस प्रकार राजा अपनी प्रजाओंको। इसलिए लोग (अस्मै दुरोणे अद्रौ चित् अन्तः) इसे घरमें और पर्वतपर भी हवि देते हैं ॥ ३-४ ॥

१ अपां गर्भः— जलोंके बीच बाडवाग्नि या समुद्रकी अग्निके रूपमें।
२ वनानां गर्भः— वनोंमें दावाग्नि या जंगलकी अग्निके रूपमें।
३ स्थातां गर्भः— स्थावरोंकी अग्नि पत्थरादियोंमें।
४ चरथां गर्भः— मनुष्य या प्राणियोंमें जठराग्निके रूपमें।

[८००-८०१] (यः अस्मै सूक्तैः अरं) जो इस अग्निकी वेदमन्त्रोंसे पर्याप्त स्तुति करता है, उसे (स क्षपावान् अग्निः) वह रात्रीमें प्रदीप्त होनेवाला अग्नि (हि रयीणां दाशत्) निश्चयसे धनोंको प्रदान करता है। (चिकित्वः) हे सर्वज्ञाता अग्ने ! तू (देवानां च मर्तान् जन्म विद्वान्) देवों और मनुष्योंके जन्मोंको जानता है इसलिये (एता भूम निपाहि) समस्त प्राणियोंकी रक्षा कर ॥ ५-६ ॥

[८०२-८०३] (विरूपाः पूर्वीः क्षपः यं वर्धान्) विभिन्न रूपवाली उषायें और रात्रियां जिस अग्निको बढाती हैं। तथा (स्थातुः च रथं ऋतप्रवीतं) स्थावर वृक्षादि और जंगम मनुष्यादि भी सत्य रूपवाले अग्निको बढाते हैं। (स्वः निषत्तः) देवपूजाके स्थानमें बैठकर (होता, विश्वानि अपांसि सत्या कृण्वन् अराधि) देवोंका आह्वाता यह अग्नि सारे कर्मोंके फलोंको सत्य करता हुआ पूजित होता है ॥ ७-८ ॥

[८०४-८०५] हे अग्ने ! तू (वनेषु गोषु प्रशस्तिं धिषे) हमारे वनों और गौवोंमें प्रशंसाको स्थापित कर। (विश्वे नः स्वः बलिं भरन्त) सब मनुष्य हमारे लिये, ग्रहण करने योग्य धनको ले आवें। और (त्वा नरः पुरुत्रा विसपर्यन्) तुम्हारी मनुष्य विविध प्रकारकी पूजा करते हैं और जिस प्रकार (जिव्रेः पितुः न वेदः विभरन्त) पुत्र वृद्ध पितासे धन पाता है उसी प्रकार तुमसे धन प्राप्त करते हैं ॥ ९-१० ॥

भावार्थ— यह अग्नि सर्वत्र व्यापक होकर सबको आधार देता है, इसलिए सर्वत्र इसकी पूजा की जाती है ॥३-४॥

प्रशंसित होकर यह अग्नि स्तोताको धन देता है। यह सर्वज्ञ है अतः सभीके जन्मोंको जानता है और सारे प्राणियोंकी रक्षा करता है ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि सभी समय वृद्धिको प्राप्त होता रहता है। सभी प्राणी इसे बढाते हैं। यह भी सभी प्राणियोंके कर्मोंके अनुसार फल देता है ॥ ७-८ ॥

यह अग्नि सभी पदार्थोंको प्रशंसित बनाता है। इसी कारण यह सर्वत्र पूजा जाता है और यह भक्तोंको धन प्रदान करता है ॥ ९-१० ॥

८०६ साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥ ६ ॥ ११

[७१]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः। देवता- अग्निः। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

८०७ उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥
८०८ वीळु चिद् दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥ २ ॥
८०९ दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥

अर्थ— [८०६] यह अग्नि (साधुः न गृध्नुः) सत्पुरुषकी तरह सत्कारके योग्य (अस्ता इव शूरः) अस्त्र चलानेवालेके समान वीर, (याता इव भीमः) आक्रमणकारीके समान भयंकर और (समत्सु त्वेषः) युद्धक्षेत्रमें साक्षात् तेज है ॥ ११ ॥

[७१]

[८०७] (न उशतीः जनयः पतिं नित्यं उप प्रजिन्वन्) जैसे कामना करती हुई स्त्रियां अपने पतिको हमेशा अच्छी प्रकारसे प्रसन्न करती हैं, तथा (श्यावीं उच्छन्तीं अरुषीं) श्यामवर्णवाली, अन्धकारको दूर करनेवाली श्वेतवर्णवाली (उषसं) उषाको देखकर जिस प्रकार (गावः) गायें प्रसन्न होती हैं, उसी प्रकार (सनीळाः स्वसारः) एक स्थानमें रहनेवाली भगिनीरूप अँगुलियां (चित्रं उशन्तं अजुष्रन्) पूजनीय अभिलाषी अग्निको प्रसन्न करती हैं ॥ १ ॥

[८०८] (नः अङ्गिरसः पितरः) हमारे अङ्गिरानामक पितरोंने (उक्थैः विळु चित् दळ्हा अद्रिं) मंत्र द्वारा बडे और सुदृढ पर्वतके किलेको (रवेण रुजन्) शब्दमात्रसे ही नष्ट कर दिया। उसके पश्चात् तब (बृहतः दिवः गातुं अस्मे चक्रुः) महान् आकाशके मार्गको हमारे लिए बनाया और (स्वः अहः) सुखकर दिवस, (केतुं, अस्राः विविदुः) सूर्य एवं गौवोंको उन लोगोंने प्राप्त किया ॥ २ ॥

१ आंगिरसः दळ्हा अद्रिं रवेण रुजन्— अंगरसको जाननेवालोंने सुदृढ पहाडके किलेको भी शब्दमात्रसे तोड दिया।

[८०९] (ऋतं दधन्) सत्यको धारण करनेवाले मनुष्योंने (अस्य धीतिं धनयन्) इस अग्निके तेजको धनके समान धारण किया। (आत् इत्) उसके बाद ही (अर्यः दिधिष्वः) धनकी स्वामिनी, तेज धारण करनेवाली (विभृत्राः अतृष्यन्तीः) पोषण करनेवाली, तृष्णारहित (अपसः) कर्म करनेवाली प्रजाएं (प्रयसा) अन्नदानसे (देवान् जन्म वर्धयन्तीः) देवोंको और मनुष्योंको बढाती हुई (अच्छ यन्ति) इस अग्निके पास सीधी जाती हैं ॥ ३ ॥

१ अर्यः दिधिष्वः विभृत्राः, अतृष्यन्तीः अपसः प्रयसा देवान् जन्म वर्धयन्तीः— राष्ट्रकी प्रजाएं धनकी स्वामिनी, तेज धारण करनेवाली, पोषण करनेवाली, तृष्णा रहित, कर्म करनेवाली तथा हविदान और अन्नदानसे देवों और मनुष्यको बढानेवाली हों।

भावार्थ— वह अग्नि सत्कारके योग्य, शूरवीर, भयंकर और अत्यन्त तेजस्वी है ॥ ११ ॥

यह अग्नि यज्ञमें जलाई जाती है, तब मनुष्य हवि आदि देकर इसे प्रसन्न करते हैं ॥ १ ॥

अंगरसको जाननेवालोंने पर्वत पर घने किलोंको नष्ट किया और आकाशके मार्गको बनाया जिससे मनुष्योंने धन प्राप्त किया ॥ २ ॥

पहले तेजस्वी बनना चाहिए, फिर उत्तम गुणोंसे युक्त होकर अग्निकी उपासना करनी चाहिए ॥ ३ ॥

८१० मथीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥ ४ ॥

८११ महे यत् पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥ ५ ॥

८१२ स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद् राया सरथं यं जुनासि ॥ ६ ॥

अर्थ— [८१०] (ईं यत् विभृतः मातरिश्वा मथीद्) इस अग्निको जब पोषण करनेवाले वायुने मथकर प्रकट किया तब यह अग्नि (श्येतः गृहे गृहे जेन्यः) शुभ्रवर्णवाला होकर घर-घरमें विजयी हुआ। (आत्, ईं भृगवाणः दूत्यं आ विवाय) फिर भृगुओंने इस अग्निको उसी प्रकार दूत बनाया, (न) जिस प्रकार (सचा सन् सहीयसे राज्ञे) मित्र हुआ हुआ कोई राजा दूसरे प्रबल राजाके पास दूत भेजता है ॥ ४ ॥

१ ईं मातरिश्वा मथीत्— इस अग्निको वायु मथकर पैदा करता है मनुष्य शरीरमें वायुरूप व्यान अग्निको प्रज्वलित रखता है। 'अग्नेर्मन्थनस्य व्यानवायुसाध्यत्वं ' (सायण)। प्राण और अपानके मिले हुए रूपको व्यान कहते हैं।

२ गृहे गृहे जेन्यः— यह अग्नि प्रत्येक घर अर्थात् शरीरमें प्रकट होता है।

[८११] (यत्) जब मनुष्य (महे पित्रे दिवे) महान् और पोषण करनेवाले देवगणके लिए (ईं रसं) इस सोमरसको तैय्यार करता है, तब (कः पृशन्यः चिकित्वान्) कौन सज्जन और ज्ञानी पुरुष (अवत्सरत्) इसे चुराकर भाग सकता है ? क्योंकि (अस्ता) अस्त्र फेंकनेमें निपुण यह अग्नि (धृषता) अपने धनुषसे (अस्मै) इस चुरानेवालेपर (दिद्युं सृजत्) बाण फेंकता है। (देवः स्वायां दुहितरि) सूर्यदेव अपनी ही पुत्री उषामें (त्विषिं धात्) तेज स्थापित करता है ॥ ५ ॥

[८१२] हे (अग्ने) अग्ने (तुभ्यं स्वे दमे यः आ विभाति) तुझे अपने गृहमें जो मनुष्य प्रदीप्त करता है, और (अनुद्यून् उशतः नमः वा दाशात्) प्रतिदिन तेरी कामना करते हुये तुझे हविरूप अन्न प्रदान करता है, हे (द्विबर्हाः) दो स्थानोंमें वर्धित अग्ने ! (अस्य वयः वर्धः) तू उस मनुष्यकी आयु बढा। और (यं सरथं जुनासि) जिस पुरुषको रथके साथ युद्धमें प्रेरित करता है उसको (राया यासत्) धनसे युक्त कर ॥ ६ ॥

१ तुभ्यं स्वे दमे विभाति, अनुद्यून् नमः दाशात् वयः वर्धः, राया यासत्— इस अग्निको जो अपने घरमें प्रकाशित करता एवं प्रतिदिन हवि देता है, उसकी आयु बढती है और उसे धन प्राप्त होता है।

भावार्थ— वायुके मन्थनसे प्रकट होकर यह अग्नि प्रत्येक शरीरको धारण करता है और देवताओं अर्थात् इन्द्रियोंको रस पहुंचाता है ॥ ४ ॥

इस अग्रणी देवके सर्वव्यापक होनेसे कोई भी इससे छिपकर कुछ कर नहीं सकता। यह अग्नि प्रत्येकको यथायोग्य दण्ड देता है ॥ ५ ॥

घरमें प्रतिदिन यज्ञ करनेसे आयु बढती है और धन प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

८१३ अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥ ७ ॥
८१४ आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सूदयंच्च ॥ ८ ॥
८१५ मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥
८१६ मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥ १० ॥

अर्थ— [८१३] (विश्वाः पृक्षः अग्निं अभिसचन्ते) सम्पूर्ण अन्न अग्निको उसी प्रकार प्राप्त होते हैं, (सप्त यह्वीः स्रवतः समुद्रं न) जिस प्रकार सात महान् नदियाँ बहती हुई समुद्रको प्राप्त होती हैं । (नः जामिभिः वयः न वि चिकिते) हमारे जातिवालोंको अन्न प्राप्त नहीं होता है अतः हे अग्ने ! तू (देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् विदाः) देवोंमें उनकी उत्तम बुद्धिको या भक्तिको जानकर उन्हें अन्न प्रदान कर ॥ ७ ॥

[८१४] (यत् शुचिः द्यौः तेजः) जब शुद्ध, दीप्तिमान् तेज (नृपतिं इषे आनट् आ) अन्नके लिये मनुष्यके चारों ओर व्याप्त हुआ, तब (अग्निः अभीके निषिक्तं रेतः जनयत्) अग्निने पास ही स्थित जलसे भरे मेघको उत्पन्न किया और उससे (शर्धं अनवद्यं, युवानं स्वाध्यं सूदयत्) बलवान्, प्रशंसनीय, पुष्टिकारक तथा अन्नको उत्पन्न करनेवाले जलको (च सूदयत्) प्रेरित किया ॥ ८ ॥

[८१५] (मनो न) मनकी तरह शीघ्रगामी (यः सूरः एकः अध्वनः सद्यः एति) जो सूर्य अकेले ही दिव्य-मार्गसे शीघ्र जाता है, और (वस्वः सत्रा ईशे) और विविध धनपर शीघ्र अधिकार जमाता है; तथा (राजाना सुपाणी) शोभायमान सुन्दर भुजाओंवाले (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण हमारी (गोषु प्रियं, अमृतं रक्षमाणा) गौओंमें प्रीतिकर अमृततुल्य दूधकी जो रक्षा करते हैं, हे अग्ने ! वह सब तेरा ही प्रभाव है ॥ ९ ॥

[८१६] हे (अग्ने) अग्ने ! (पित्र्याणि सख्या मा प्र मर्षिष्ठाः) पितरोंसे आई हुई हमारी मित्रता नष्ट न कर, क्योंकि तू (कविः सन् अभिविदुः) क्रान्तदर्शी होकर सब कुछ जाननेवाला है । (नभः न) जैसे मेघ सूर्यकी किरणोंको ढक लेते हैं वैसे (रूपं जरिमा मिनाति) रूपको बुढापा नष्ट कर देता है, (अभिशस्तेः तस्याः पुरा अधि इति) अतः हे अग्ने ! विनाश करनेवाले उस बुढापेके आनेके पहले ही उसे तू समाप्त कर दे ॥ १० ॥

भावार्थ— वह अग्नि सब तरहके अन्नोंका भण्डार है, इसलिए जो उसकी भक्ति करता है, वह अन्नसे युक्त होता है ॥७॥

यज्ञाग्निसे मेघ उत्पन्न होते हैं और उससे पुष्टिकारक तथा अन्नोत्पादक जल बरसता है ॥ ८ ॥

इसी अग्निके प्रभावके कारण सूर्य अकेले ही अपने विस्तृत मार्गपर चलता है और धनोंपर अधिकार करता है । मित्र और वरुण गायोंकी रक्षा करते हैं ॥ ९ ॥

यह अग्नि सर्वज्ञ है । अतः इस अग्निको प्रज्वलित करनेसे तेज बढता है और बुढापा जल्दी नहीं आता ॥ १० ॥

[७२]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८१७ नि काव्या वेधसः शश्वतस्क-र्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥ १ ॥

८१८ अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्द-न्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधा-स्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २ ॥

८१९ तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामि-च्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियान्य-सूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ ३ ॥

८२० आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वा-नग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ ४ ॥

---

[७२]

अर्थ— [८१७] (नर्या पुरूणि हस्ते दधानः) मनुष्योंके हितसाधक बहुतसे धनोंको हाथमें धारण करता हुआ यह अग्नि (शश्वतः वेधसः काव्या) नित्य ब्रह्माके मन्त्ररूप स्तोत्रोंको (नि कः) ग्रहण करता है, और अपने स्तुति करनेवालोंको (विश्वा अमृतानि सत्रा चक्राणः) सम्पूर्ण सुवर्णोंको एक साथ प्रदान करता हुआ यह (अग्निः रयीणां रयिपतिः भुवत्) अग्नि सर्वोच्च धनोंमें भी सर्वश्रेष्ठ धनका स्वामी होता है ॥ १ ॥

[८१८] (विश्वे अमूराः अमृताः इच्छन्तः) सारे ज्ञानी देवगण इच्छा करते हुये भी (अस्मे वत्सं परिषन्तं न विन्दन्) हमारे प्रिय सर्वव्यापी अग्निको न पा सके । (पदव्यः श्रमयुवः धियंधाः) अग्निके अन्वेषणमें श्रम करनेवाले वे बुद्धिमान् लोग अन्तमें (अग्नेः चारु परमे पदे तस्थुः) अग्निके उस सुन्दर स्थानतक पहुंच गए ॥ २ ॥

१ विश्वे अमूरा अमृताः न विन्दन्— सब ज्ञानी और अमर देवगण भी अग्निको न पा सके ।

२ पदव्यः अग्नेः परमे पदे तस्थुः— फिर भी खोजनेवाले अग्निके उत्तम स्थानतक पहुंच ही गए ।

[८१९] हे (अग्ने) अग्ने ! (शुचिं त्वां इत्) पवित्र तुझको (शुचयः तिस्रः शरदः) दीप्तमान् मनुष्योंने तीन वर्षोंतक (घृतेन यत् सपर्यान्) घृतसे जब प्रसन्न किया, तब (यज्ञियानि नामानि चित् दधिरे) उन्होंने प्रशंसनीय यशको धारण कर, (सुजातः तन्वः असूदयन्त) उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए उन्होंने अपने शरीरोंको पवित्र किया ॥ ३ ॥

[८२०] (यज्ञियासः बृहती रोदसी आ वेविदानाः) पूज्य याजकोंने महान् पृथ्वी और आकाशका ज्ञान कराते हुए (रुद्रिया प्रजभ्रिरे) अग्निके योग्य स्तोत्रोंको भेंट किया । (मर्तः नेमधिता परमे पदे) मनुष्योंनेइन्द्रके साथ उत्तम स्थानमें (तस्थिवांसं) ठहरे हुये (अग्निं चिकित्वान् विदत्) अग्निको जानकर प्राप्त किया ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है और स्तोताओंकी धनसे सहायता करता है ॥ १ ॥

अग्निके रहस्यको पाना साधारण काम नहीं है । पर उसकी खोजमें यदि परिश्रम किया जाए तो बुद्धिमान् इसके रहस्यको जान सकते हैं ॥ २ ॥

अग्निमें घृतादिकी आहुति डालनेसे हवा शुद्ध होती है, उससे शरीर शुद्ध होकर मनुष्योंका स्वास्थ्य उत्तम रहता है ॥ ३ ॥

उन याजकोंने अग्निके रहस्यको जानकर उसके स्थानको प्राप्त कर लिया ॥ ४ ॥

८२१ संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ ५ ॥
८२२ त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ ६ ॥
८२३ विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् छुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयाना-नतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७ ॥

अर्थ— [८२१] हे अग्ने ! उन याजकोंने (संजानानाः) सम्यक् प्रकारसे जानकर, (पत्नीवन्तः, नमस्यं अभिज्ञु उपसीदन् नमस्यन्) अपनी पत्नियों सहित, नमस्कारके योग्य तेरे सम्मुख घुटनोंके बल बैठकर पूजा की । उस समय (स्वाः तन्वः रिरिक्वांसः कृण्वत्) अपने शरीरोंको पवित्र करते हुए (रक्षमाणाः सखा सख्युः निमिषि) और तुझसे रक्षित होकर, मित्र देवोंने मित्रभावसे निमिषमात्रके लिये तुमको देखा ॥ ५ ॥

[८२२] हे अग्ने ! (यज्ञियासः) यज्ञ करनेवालोंने (त्रिः सप्त गुह्यानि यत् पदाः) इक्कीस संख्यावाले रहस्यसे भरे हुये जो पद (त्वे इत् निहिता आविदन्) तुझमें स्थित हैं उनको जाना, (तेभिः अमृतं रक्षन्ते) वे उनसे अमृत-की रक्षा करते हैं । तू (सजोषाः पशून् च स्थातॄन् च चरथं पाहि) सब पर प्रीति युक्त होकर उनके पशुओंकी और स्थावरोंकी तथा जंगम प्राणियोंकी रक्षा कर ॥ ६ ॥

त्रिसप्त गुह्यानि पदा— तीन गुना सात अर्थात् इक्कीस प्रकारकी यज्ञकी विधियां हैं, जो मानवोंका हित करती हैं ।

[८२३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (वयुनानि विद्वान् क्षितीनां जीवसे) मनुष्योंके व्यवहारोंका ज्ञाता और सम्पूर्ण विद्या युक्त है, अतः प्रजाओंके जीवन धारणके लिये (शुरुधः आनुषक् वि धाः) अन्नादिसे क्षुधा निवृत्ति कर । (अन्तः देवयानान् विद्वान् अध्वनः) द्युलोक और पृथ्वी लोकके मध्यमें जिस मार्गसे देवता लोग जाते हैं उसको जान-कर (अतन्द्रः हविः वाट् अभवः) आलस्य रहित होकर दूत रूपसे हव्यका वहन करनेवाला हो ॥ ७ ॥

१ वयुनानि विद्वान् क्षितीनां जीवसे शुरुधः आनुषक् विधाः— राष्ट्रमें अग्रणीको प्रजाका आचार विचार जानकर उनके जीवनके लिए अन्नकी प्राप्तिका प्रयत्न करना चाहिए ।

भावार्थ— जो मनुष्य विनम्रभावसे इस अग्निकी पूजा करते हैं, वे अग्निसे रक्षित व पवित्र होकर उसका दर्शन करते हैं ॥ ५ ॥

यज्ञकी इक्कीस विधियोंको जानकर मनुष्योंका हित किया जा सकता है । राष्ट्रमें पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति आदि सभीकी सुरक्षा होनी चाहिए ॥ ६ ॥

अग्रणीको प्रथम प्रजाओंका आचार विचार जानना चाहिए, फिर उनके सुखका प्रबन्ध करना चाहिए । तथा आलस्य रहित होना चाहिए ॥ ७ ॥

८२४ स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद् गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ ८ ॥
८२५ आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ ९ ॥
८२६ अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन् दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥ १० ॥

अर्थ— [८२४] (स्वाध्यः सप्त यह्वीः) शुभकर्मसे युक्त सात बडी बडी नदियां (दिवः आ) द्युलोकसे बह रही हैं। (ऋतज्ञाः रायः दुरः वि अजानन्) सत्यको जाननेवालोंने सम्पत्तिके दरवाजोंको खोलनेकी रीति जान ली। (गव्यं दृळ्हं ऊर्वं सरमा विदत्) गायोंमें होनेवाले बहुतसे अन्नको सरमाने जाना, (येन नु मानुषी विट् कं भोजते) जिसे आजकल मनुष्यकी प्रजाएं सुखसे खाती पीती हैं ॥ ८ ॥

१ ऋतज्ञाः रायः दुरः विदन्— सत्यको जाननेवालोंने ऐश्वर्यका मार्ग जान लिया।

२ स्वाध्यः सप्त यह्वीः— (सु+आ+धी) उत्तम प्रकार ध्यान धारणा जिनके किनारे होती है, ऐसी सात नदियां। नदियोंके किनारे और पर्वतोंकी गुफाओंमें ध्यान धारणा अच्छी प्रकार हो सकती है, ऐसा यजुर्वेद में कहा है— ' उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां। धिया विप्रो अजायत ॥ (यजु. २६।१५)

[८२५] (ये अमृतत्वाय) जो अमरत्व प्राप्तिके लिए (गातुं कृण्वानासः) मार्ग तैय्यार करते हैं, वे (विश्वा स्वपत्यानि) उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। (महद्भिः पुत्रैः) बडे वीर पुत्रोंसे युक्त (माता अदितिः) माता तथा खण्डनके अयोग्य (पृथिवी) पृथ्वी (धायसे मह्ना वि तस्थे) धारणपोषणके लिए अपनी महिमासे विस्तृत हुई। (वेः) वहीं हे अग्ने ! तू हवि खाता है ॥ ९ ॥

१ ये अमृतत्वाय गातुं कृण्वानासः विश्वा स्वपत्यानि आ तस्थुः— जो अमरत्वकी प्राप्तिका मार्ग तैय्यार करते हैं, वे उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं।

[८२६] (दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन्) द्युलोकसे अमर देवोंने जब दो आंखें बनाई तब (अस्मिन् चारुं श्रियं अधि नि दधुः) उन्होंने इस अग्निमें सुन्दर और शोभायुक्त तेज स्थापित किया। (अध सृष्टाः सिन्धवः न) बादमें जिस प्रकार प्रेरित हुई नदियां फैलती हैं, उसी तरह (नीचीः अरुषीः अरन्ति) सभी दिशाओंमें इस अग्निके तेज फैलते हैं उन तेजोंसे हे अग्ने ! (प्रजाजन्) तेरा ज्ञान हुआ ॥ १० ॥

१ दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन् अस्मिन् चारु श्रियं नि दधुः— द्युलोकमें देवोंने जब दो आंखें अर्थात् सूर्य चन्द्र बनाये उसी समय उन्होंने इस अग्निमें तेज स्थापित किया।

भावार्थ— मनुष्य नदीके किनारे ध्यान करके सत्यको जानकर सभी सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है। गायका दूध मनुष्योंके लिए एक उत्तम भोजन है ॥ ८ ॥

उत्तम कर्मोंके अनुष्ठानसे ही अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है। धारण पोषणके लिए ही यह पृथ्वी इतनी विस्तृत है। इसी पृथ्वी पर यज्ञ किए जाते हैं ॥ ९ ॥

सूर्य चन्द्रके साथ ही देवोंने इस अग्निका भी निर्माण किया। उसके बाद इसकी किरणें फूटीं और चारों ओर फैल गईं, उससे इस अग्निको लोगोंने जाना ॥ १० ॥

[७३]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः। देवता- अग्निः। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

८१७ र॒यिर्न यः पि॑तृवि॒त्तो व॑यो॒धाः सु॒प्रणी॑तिश्चिकि॒तुषो॒ न शा॒सुः ।
स्यो॒न॒शीरति॑थि॒र्न प्री॑णा॒नो होते॑व॒ सद्म॑ विध॒तो वि ता॑रीत् ॥ १ ॥

८१८ दे॒वो न यः स॑वि॒ता स॒त्यम॑न्मा॒ क्रत्वा॑ नि॒पाति॑ वृ॒जना॑नि॒ विश्वा॑ ।
पु॒रु॒प्र॒श॒स्तो अ॒मति॒र्न स॒त्य आ॒त्मेव॒ शेवो॑ दिधि॒षाय्यो॑ भूत् ॥ २ ॥

८१९ दे॒वो न यः पृ॑थि॒वीं वि॒श्वधा॑या उप॒क्षेति॑ हि॒तमि॑त्रो॒ न राजा॑ ।
पु॒रः॒सदः॑ शर्म॒सदो॒ न वी॒रा अ॑नव॒द्या पति॑जुष्टेव॒ नारी॑ ॥ ३ ॥

---

[७३]

अर्थ— [८१७] (यः) यह अग्नि (पितृवित्तः रयिः वयःऽधाः) पितासे प्राप्त सम्पत्तिकी तरह अन्नका देनेवाला, (चिकितुषः न शासुः सुप्रणीतः) ज्ञानी व्यक्तिके उपदेशकी तरह उत्तम मार्गपर ले जाता है, (स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः) सद्‌गृहस्थके घरमें आदरसे बैठाये हुये अतिथिकी तरह यह सुखदायी है, और (होता इव, विधतः सद्म वि तारीत्) होताके समान यजमानके घरको बढाता है ॥ १ ॥

१ स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः— सुखसे विश्राम करनेवाले अतिथिकी तरह सुख देनेवाला यह अग्नि है।

[८१८] (देवः सविता न) प्रकाशमान् सूर्यकी तरह (सत्यमन्मा, यः क्रत्वा विश्वा वृजनानि निपाति) यथार्थदर्शी जो अग्नि अपने कर्मों द्वारा सब पापोंसे रक्षा करता है। (पुरुप्रशस्तः अमतिः न सत्यः) अनेकोंसे प्रशंसित यह अग्नि प्रगति करनेवालेकी तरह सत्य मार्गपर चलता है। (आत्मा इव, शेवः, दिधिषाय्यः भूत्) आत्माकी तरह सुखकर और सबके द्वारा धारण करने योग्य है ॥ २ ॥

१ यः सत्यमन्मा क्रत्वा विश्वा विजनानि नि पाति— जो सत्यमार्ग पर चलता है, वह अपने कर्मोंसे सारे पापोंसे सबको सुरक्षित रखता है।

२ अमतिः सत्यः— सत्य मार्गपर चलनेसे ही प्रगति या उन्नति हो सकती है।

[८१९] (यः देवः न विश्वधायाः) जो अग्नि प्रकाशमान् सूर्यकी तरह समस्त संसारको धारण करता है। (हितमित्रः न राजा) अनुकूल मित्रके सम्पन्न राजाकी तरह (पृथिवीं उपक्षेति) पृथिवीपर निवास करता है। (पुरः सदः, शर्मसदः न वीराः) लोग इसके सामने इस प्रकारसे बैठते हैं, जिस प्रकार पिताके घरमें पुत्र बैठता है। तथा यह (अनवद्या, पतिजुष्टा नारी इव) पतिसे सेवित पतिव्रता स्त्रीकी तरह विशुद्ध है ॥ ३ ॥

१ हितमित्रः पृथिवीं उपेक्षति— हितकारी मित्रोंसे युक्त व्यक्ति ही इस संसारमें सुखसे रह सकता है।

२ अनवद्या पति जुष्टा नारी विश्वधायाः— अनिन्दित पतिव्रता नारी ही संसारको धारण करती है।

भावार्थ— यह अग्नि अन्न देनेवाला, उत्तम मार्गसे ले चलनेवाला, सुखदायक और घरकी शोभा बढानेवाला है ॥१॥

सत्य मार्गपर चलनेवाला उन्नतिशील अग्नि दूसरोंको भी सत्य मार्गपर चलाकर उनकी पापोंसे रक्षा करता है और उन्नत बनाता है। यह आत्माकी तरह सबका आश्रय स्थान है ॥ २ ॥

यह अग्नि सर्वथा पवित्र है इसीलिये यह पृथ्वीको धारण करता है और सबसे प्रशंसित होता है ॥ ३ ॥

८३० तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्ध–मग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥ ४ ॥
८३१ वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्यु–र्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५ ॥
८३२ ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥ ६ ॥
८३३ त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥ ७ ॥

अर्थ— [८३०] हे (अग्ने) अग्ने! (तं त्वा ध्रुवासु, क्षितिषु) उस तुझको लोग उपद्रवशून्य स्थानोंपर (दमे नित्यं इद्धं, आ सचन्त) अपने घरमें सदा समिधाओंसे जलाकर तेरी सेवा करते हैं। साथ ही (अस्मिन्, भूरि द्युम्नं अधि नि दधुः) इस अग्निमें लोगोंने बहुत अन्नको प्रदान किया है। (विश्वायुः, रयीणां धरुणः भव) सबका प्राण-रूप होकर तू हमारे लिये धनोंको देनेवाला हो ॥ ४ ॥

[८३१] हे (अग्ने) अग्ने! (मघवानः, पृक्षः वि अश्युः) धनशील यज्ञ करनेवाले अन्नोंको प्राप्त करें। और (सूरयः, ददतः विश्वमायुः वि) विद्वान् दाताओंको दीर्घ आयु प्राप्त हो तथा हम (श्रवसे देवेषु भागं दधानाः) यशके निमित्त देवताओंको हवि देते हुये, (समिथेषु अर्यः वाजं सनेम) युद्धोंमें शत्रुके अन्नको प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[८३२] (स्मदूध्नीः, द्युभक्तः, धेनवः, वावशानाः) नित्य दूध देनेवाली, तेजस्विनी गायें, पुनः पुनः कामना, करके (ऋतस्य हि पीपयन्त) यज्ञ स्थानमें प्राप्त अग्निको ही दुग्धपान कराती हैं। और (सिन्धवः, सुमतिं भिक्षमाणाः) बहनेवाली नदियां अग्निसे बुद्धिकी याचना करती हुई (अद्रिं समया परावतः विसस्रुः) पर्वतके समीप दूर देशसे प्रवाहित होती हैं ॥ ६ ॥

[८३३] हे (अग्ने) अग्ने! (यज्ञियासः सुमतिं भिक्षमाणाः) पूज्यजनोंने कल्याणकारी बुद्धिकी याचना करते हुये, (दिवि त्वे श्रवः दधिरे) तेजस्वी तुझमें हवि प्रदान की, उसके अनन्तर (उषसा च नक्ता विरूपे चक्रुः) उषा और रात्रीको विभिन्न रूपोंसे युक्त किया। (च कृष्णं वर्णं च अरुणं सं धुः) और रात्रीमें कृष्णवर्णको, तथा उषामें अरुण वर्णको भरा ॥ ७ ॥

१ सुमतिं भिक्षमाणाः यज्ञियासः श्रवः दधिरे— उत्तम बुद्धिकी कामना करनेवाले पूज्य जन अग्निमें हविकी आहुतियां देते हैं।

भावार्थ— हे अग्ने! लोग तुझे यज्ञ स्थानमें प्रदीप्त करके तेरी पूजा करते हैं। तुझमें बहुतसे अन्नकी हवि भी दी जाती है। अतः तू हमें पूर्ण दीर्घ आयु देकर धन दे ॥ ४ ॥

हे अग्ने! धनसम्पन्न यजमान अन्न प्राप्त करें, तथा ज्ञानी दाता दीर्घायु प्राप्त करें। यशके लिए हम देवोंकी पूजा करते हुए शत्रुओंको हराकर उनके धन पर अधिकार करें ॥ ५ ॥

यज्ञकी सेवाकी इच्छा करनेवाली दूधसे भरे थनोंवाली, तेजयुक्त गायें यज्ञके लिए दूध देती हैं। साथ साथ नदियां भी पर्वतोंसे प्रवाहित होती हैं ॥ ६ ॥

उत्तम बुद्धिको चाहनेवालोंने यज्ञ प्रारंभ किया और यश प्राप्त किया। उनके यज्ञ उषःकाल और रात्रीमें भी चलते थे ॥ ७ ॥

८३४ यान् राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ८ ॥
८३५ अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥ ९ ॥
८३६ एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥ १० ॥

[७४]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

८३७ उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥

अर्थ— [८३४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (यान् मर्तान् राये सुषूदः) जिन मनुष्योंको धनकी प्राप्तिके लिये प्रेरित करता है, (ते च वयं मघवानः स्याम) वे और हम धनवान् हों। तूने (रोदसी) आकाश-पृथ्वी और (अन्तरिक्षं आ पप्रिवान्) अन्तरिक्षको प्रकाशसे परिपूर्ण किया है; साथ ही (विश्वं भुवनं छाया इव सिसक्षि) सम्पूर्ण जगत् छायाकी तरह तेरे साथ संयुक्त है ॥ ८ ॥

[८३५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वा ऊताः अर्वद्भिः अर्वतः) तुझसे रक्षित होकर हम अपने अश्वोंसे शत्रुओंके अश्वोंका (नृभिः नॄन् वीरैः वीरान् वनुयाम) अपने योद्धाओंके द्वारा शत्रुओंके योद्धाओंका और अपने पुत्रोंके द्वारा शत्रुओंके पुत्रोंका वध करें । (पितृवित्तस्य रायः ईशानासः) पैतृक सम्पत्तिके धनके स्वामी होकर (सूरयः नः शतहिमाः वि अश्युः) विद्वान् हमारे पुत्र सौ वर्षके जीवनका विशेष भोग करें ॥ ९ ॥

[८३६] हे (वेधः अग्ने) बुद्धिमान् अग्ने ! (एता उचथानि) ये हमारे स्तोत्र (ते मनसे हृदे च जुष्टानि सन्तु) तेरे मन और हृदयको प्रिय लगे, ताकि हम (देवभक्तं श्रवः अधि दधानाः) तेजस्विताको प्राप्त करानेवाले अन्नको प्राप्त करते हुए (सुधुरः ते रायः यमं शकेम) दारिद्र्यको नष्ट करनेवाले तेरे धनका नियंत्रण कर सकें ॥ १० ॥

१ एता उचथानि ते जुष्टानि सन्तु— हे अग्ने ! हमारे ये स्तोत्र तुझे प्रिय लगें ।

२ सुधुरः राय यमं शकेम— दारिद्र्यको नष्ट करनेवाले तेरे उत्तम धनके हम स्वामी बनें ।

[७४]

[८३७] (अध्वरं उदप्रयन्तः) यज्ञके समीप जाते हुये (आरे च अस्मे शृण्वते) दूरसे भी हमारी स्तुतियोंको सुननेवाले (अग्नये मन्त्रं वोचेम) अग्निकी हम मननशील स्तोत्रोंसे स्तुति करें ॥ १ ॥

१ अ-ध्वरं उदप्रयन्तः— हिंसा और कुटिलता रहित कार्यको ही मनुष्य करे ।

२ शृण्वते मंत्रं वोचेम— सुननेवालेको ही हम उपदेश दें । जो सुनता न हो उसे कभी भी उपदेश न दें ।

भावार्थ— इस अग्निके बताए मार्ग पर चल कर ही लोग धनवान् होते हैं । अग्निके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित हैं । जिस तरह प्रत्येक पदार्थके साथ उसकी छाया रहती है उसी तरह इस अग्निके साथ यह सारा जगत् रहता है ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुझसे सुरक्षित होकर हम अपने घोडों, मनुष्यों और वीरोंसे शत्रुओंका नाश करें ताकि हमारे पुत्र अपने सम्पत्तिके स्वामी होकर अनेक वर्षोंतक उनका उपभोग करते रहे ॥ ९ ॥

इस अग्रणीके स्तोत्र द्वारा प्रसन्न करनेसे पुष्टिकारक अन्न और अपार धनकी प्राप्ति होती है ॥ १० ॥

हे अग्ने ! तू हिंसा रहित कार्यमें ही जा और समीप अथवा दूरसे मनुष्योंकी प्रार्थनाओंको सुन ॥ १ ॥

८३८ यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद् दाशुषे गयम् ॥ २ ॥
८३९ उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणेरणे ॥ ३ ॥
८४० यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत् कृणोष्यध्वरम् ॥ ४ ॥
८४१ तमित् सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो । जना आहुः सुबर्हिषम् ॥ ५ ॥
८४२ आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥ ६ ॥
८४३ न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [८३८] (यः पूर्व्यः) जो अग्नि चिरन्तनकालसे (स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु) हिंसक स्वभाव-वाले प्रजाओंके एकत्र होनेपर (दाशुषे गयं अरक्षत्) दान देनेवाले यजमानके धनकी रक्षा करता है, उसका हम स्तवन करें ॥ २ ॥

१ स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु दाशुषे गयं अरक्षत्— हिंसक मनुष्योंके एकत्रित होनेपर दाताके घरकी रक्षा करनी चाहिए ।

[८३९] (वृत्रहा रणे रणे धनंजयः) वृत्रको मारनेवाला तथा प्रत्येक संग्राममें शत्रुओंके धनको जीतनेवाला जो (अग्निः उत् अजनि) यह अग्नि प्रकट हुआ है, (जन्तवः ब्रुवन्तु) उस अग्निको सब प्राणी स्तुति करें ॥ ३ ॥

[८४०] हे अग्ने ! तू (यस्य क्षये) जिस यजमानके यज्ञगृहमें (दूतः असि) दूत होता है और (हव्यानि वीतये वेषि) हव्योंको देवोंके निमित्त भक्षण करनेके लिये ले जाता है उस समय तू (अध्वरं दस्मत् कृणोषि) यज्ञको सबके लिये दर्शनीय बना देता है ॥ ४ ॥

१ अ-ध्वरं दस्मत् कृणोति— सब लोग हिंसा रहित कर्मको उत्तमतासे करें ।

[८४१] (सहसः यहो अङ्गिरः) बलके पुत्र अङ्गिरा नामवाले अग्ने ! तू (तं इत्) उसीको (सुहव्यं, सुदेवं, सुबर्हिषं) सुन्दरहविसे युक्त, सुन्दर देवताओंसे तथा सुन्दर यज्ञसे पूर्ण करता है ऐसा (जनाः आहुः) सारे मनुष्य कहते हैं ॥ ५ ॥

[८४२] हे (सुश्चन्द्र) उत्तम तेजस्वी अग्ने ! (इह प्रशस्तये) इस यज्ञमें स्तुति ग्रहण करनेके लिये और (हव्या वीतये) हवि भक्षण करनेके लिए (तान् देवान् उप आ वहासि) उन दिव्यगुण सम्पन्न देवोंको हमारे समीप ले आ ॥ ६ ॥

[८४३] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् कत् चन दूतं यासि) जिस समय तू कभी भी देवोंका दूत बन कर जाता है उस समय (योः रथस्य अश्व्यः उपब्दिः) तेरे जाते हुये रथके घोडोंका शब्द भी (न शृण्वे) नहीं सुनाई देता ॥७॥

भावार्थ— यह अग्नि आपत्तिके समय उदार चित्तवालोंके घरकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

संग्राममें शत्रुओंको मारकर उनके धनको जीतकर लानेवाले इस अग्निका लोग जयघोष करें ॥ ३ ॥

जिन लोगोंके सत्कर्ममें यह अग्नि सहायक होता है उनके उन कर्मोंका योग्य भाग विद्वानोंको मिलता है और उनके सभी सत्कार्य उत्तम और प्रशंसाके योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

विद्वानोंका यह कहना है कि सत्कर्म करनेवाला ही उत्तम हविसे, देवोंकी भक्ति और सुन्दर यज्ञसे युक्त होता है ॥ ५ ॥

यज्ञ-अग्नि यज्ञमें स्तुति और हविको ग्रहण करनेके लिए देवोंको बुलाकर लाता है ॥ ६ ॥

यह अग्नि जब भी दौत्यकर्म करने जाता है तो सारा काम बडी ही गुप्ततासे करता है कि उसके रथकी आवाज भी नहीं सुनाई देती ॥ ७ ॥

८४४ त्वोतो वाज्यह्रयो ऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥ ८ ॥
८४५ उत द्युमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषे ॥ ९ ॥

[७५]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

८४६ जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥ १ ॥
८४७ अथा ते अङ्गिरस्तमा-ग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि ॥ २ ॥
८४८ कस्ते जामिर्जनाना-मग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ ३ ॥
८४९ त्वं जामिर्जनाना-मग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ ४ ॥

अर्थ— [८४४] हे (अग्ने) अग्ने ! (दाश्वान् त्वोतः) दान करनेवाला तेरे द्वारा रक्षित होकर (वाजी अहयः) बलवान् बना और हीनताकी भावनासे मुक्त हुआ, तब (पूर्वस्मात् अपरः प्र अस्थात्) निकृष्ट अवस्थासे उच्च अवस्थाको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥

१ दाश्वान् त्वा ऊतः वाजी अहयः पूर्वस्मात् अपरः अस्थात्— दाता अग्निसे सुरक्षित होकर बलवान् बनता और हीनताकी भावनासे छूटकर निकृष्ट अवस्थासे उच्च अवस्थाको प्राप्त होता है ।

[८४५] हे (देव अग्ने) दिव्यगुण युक्त अग्ने ! तू (देवेभ्यः दाशुषे) देवोंको हवि प्रदान करनेवालेके लिये (बृहत्, द्युमत्, सुवीर्यं उत विवाससि) बहुत, अतिशय दीप्तिमान् और वीर्यशाली धन देता है ॥ ९ ॥

[७५]

[८४६] हे अग्ने ! (आसनि हव्या जुह्वानः) मुखमें हवियोंको ग्रहण करता हुआ हमारे द्वारा (देवप्सरस्तमं सप्रथस्तमं वचः) देवताओंके अत्यन्त प्रख्यात स्तोत्रको (जुषस्व) स्वीकार कर ॥ १ ॥

[८४७] हे (अङ्गिरस्तम वेधस्तम अग्ने) अंग रसकी विद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ और मेधावियोंमें वरिष्ठ अग्ने ! (अथ ते सानसि) अनन्तर हम तेरे ग्रहण करने योग्य, (प्रियं ब्रह्म वोचेम) प्रसन्नतादायक स्तोत्र कहें ॥ २ ॥

[८४८] (अग्ने जनानां ते कः जामिः) हे अग्ने ! मनुष्योंमें तेरा बन्धु कौन है ? (कः दाशु अध्वरः) दान पूर्वक तेरा यज्ञ कौन करता है ? (कः ह) तू कौन है ? तथा (कस्मिन् श्रितः असि) किसके आश्रित है ? ॥ ३ ॥

[८४९] हे (अग्ने त्वं जनानां जामिः असि) अग्ने ! तू सब मनुष्योंका बन्धु है । (प्रियः मित्रः) उनका प्रिय मित्र है, (सखिभ्यः ईड्यः सखा) और मित्रोंके लिए तू प्रशंसनीय मित्र है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि दाताओंको बलवान् बनाकर अच्छी स्थितिमें पहुंचाता है ॥ ८ ॥

देवोंके लिए जो हविका अर्पण करते हैं उनको यह अग्नि सर्वश्रेष्ठ बनाता है । यज्ञ न करनेवाले तेज रहित हो जाते हैं ॥ ९ ॥

जो उत्तम अग्रणी हो वही जनतामें मुख्य रूपसे सत्कारके योग्य है । उसीकी सब प्रशंसा करें ॥ १ ॥

यह अग्रणी अंग प्रत्यंगोंमें जीवन रसकी समृद्धि करनेवाला तथा बुद्धिमानोंमें सर्वश्रेष्ठ है । ऐसे अग्रणीकी प्रशंसा अवश्य करनी चाहिए ॥ २ ॥

इस अग्रणीका भाई और मित्र आदि कौन है, कौन इसकी पूजा करता है । यह किसके सहारे रहता है ? इन सब बातोंका पता लगाना चाहिए ॥ ३ ॥

यह अग्रणी सबका हितकारी मित्र है, यह अपने अनुयायियोंपर स्नेह करता है अतः इसके मित्र भी इसकी भरपूर प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

८५० यजा॑ नो मि॒त्रावरु॑णा॒ यजा॑ दे॒वाँ ऋ॒तं बृ॒हत् । अग्ने॒ यक्षि॒ स्वं दम॑म् ॥ ५ ॥

[७६]

(ऋषिः– गोतमो राहूगणः । देवता– अग्निः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

८५१ का त॒ उपे॑ति॒र्मन॑सो॒ वरा॑य॒ भुव॑दग्ने॒ शंत॑मा॒ का म॑नी॒षा ।
को वा॑ य॒ज्ञैः परि॒ दक्षं॑ त आप॒ केन॑ वा ते॒ मन॑सा दाशेम ॥ १ ॥

८५२ एह्य॑ग्न इ॒ह होता॒ नि षी॒दाद॑ब्धः॒ सु पु॑रए॒ता भ॑वा नः ।
अव॑तां त्वा॒ रोद॑सी विश्वमि॒न्वे यजा॑ म॒हे सौ॑मन॒साय॑ दे॒वान् ॥ २ ॥

८५३ प्र सु विश्वा॑न् र॒क्षसो॒ धक्ष्य॑ग्ने॒ भवा॑ य॒ज्ञाना॑मभिशस्ति॒पावा॑ ।
अथा व॑ह॒ सोम॑पतिं॒ हरि॑भ्यामाति॒थ्यम॑स्मै चकृमा सु॒दाव्ने॑ ॥ ३ ॥

अर्थ— [८५०] हे (अग्ने नः मित्रावरुणा यज) अग्ने ! तू हमारे लिये मित्र और वरुण नामके देवोंकी पूजा कर। तथा (देवान् यज) इन्द्रादि देवोंकी पूजा कर। और (बृहत्, ऋतं, स्वं दमं यक्षि) विशाल यज्ञका सम्पादन कर और अपने गृहमें यज्ञ कर ॥ ५ ॥

[७६]

[८५१] (अग्ने ते मनसा वराय) हे अग्ने ! तेरे मनको प्रसन्न करनेका (का उपेतिः भुवत्) क्या उपाय है ? (का मनीषा शंतमा) कौनसी स्तुति तुझे सुख देगी ? (कः वा यज्ञैः दक्षं आप) कौन यजमान यज्ञसे तेरा बल प्राप्त कर सकता है ? (ते केन मनसा दाशेम) हम तुझे किस मनसे हव्य प्रदान करें ? ॥ १ ॥

[८५२] हे (अग्ने इह एहि होता निसीद) अग्ने ! इस यज्ञमें आ और होता रूपसे विराज। तू (नः अदब्धः पुरः एता सु भव) हमारा आलस्यसे रहित होकर अग्रणी बन। (विश्वमिन्वे रोदसी त्वा अवतां) सर्व व्यापक आकाश और पृथ्वी तेरी रक्षा करें। तू (महे सौमनसाय देवान् यज) हमको महान् प्रसाद प्राप्त करानेके लिये देवोंकी पूजा कर ॥ २ ॥

१ महे सौमनसाय देवान् यज— उत्तम मनकी प्राप्तिके लिए देवोंके मार्गपर चलना ही एक मात्र उपाय है।

[८५३] (अग्ने विश्वान् रक्षसः प्र सु धक्षि) हे अग्ने ! सम्पूर्ण राक्षसोंको अच्छी प्रकार जला दे। (यज्ञानां अभिशस्तिपावा भव) यज्ञको हिंसकोंसे चारों ओरसे बचा। (अथ सोमपतिं हरिभ्यां आवह) अनन्तर सोमका पान करनेवाले इन्द्रको अश्वों सहित इस यज्ञमें ले आ। हम (अस्मै सुदाव्ने आतिथ्यं चकृम) इस उत्तम दाता इन्द्रका आतिथ्य सत्कार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— मित्र और वरणीय श्रेष्ठ जनोंका सत्कार करना चाहिए। उत्तम गुणोंसे युक्त विद्वानोंकी सेवा करनी चाहिए। इस प्रकार प्रथम अपने घरमें संघटनका कार्य करके राष्ट्रके संघटनका कार्य करना चाहिए ॥ ५ ॥

हे अग्रणी देव ! तू किस प्रकार हमपर प्रसन्न होगा। वह उपाय बता ॥ १ ॥

हमारा नेता हमेशा आगे रहकर सबका यथायोग्य संचालन करनेवाला हो तथा कभी किसीसे न दबे या आलस्य न करे ॥ २ ॥

यह अग्नि रक्षक है। सभी हिंसक वृत्तिवालोंको यह नष्ट कर देता है। यह इन्द्रको बुलाकर लाता है अतः यह सत्कार के योग्य है ॥ ३ ॥

८५४ प्रजावता वचसा वह्निरासा ऽऽ च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥
८५५ यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भि र्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्या ऽग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥

[७७]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८५६ कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत् कृणोति देवान् ॥ १ ॥
८५७ यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अग्निर्यद् वेर्मर्ताय देवा न्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥

अर्थ— [८५४] (आसा वह्निः) मुख द्वारा हव्य ग्रहण करनेवाले अग्निको (प्रजावता वचसा आ च हुवे) पुत्रादियोंको देनेवाले स्तोत्रोंसे मैं बुलाता हूँ । हे (यजत्र ! इह देवैः नि सत्सि) यजनीय अग्ने ! तू इस यज्ञकर्ममें देवोंके साथ आकर बैठ (च होत्रं उत पोत्रं वेषि) और हवनके तथा पवित्रताके कामको कर । तू (वसूनां प्रयन्तः जनितः बोधि) धनोंका नियामक और जन्मदाता होकर हमें ज्ञानवान् कर ॥ ४ ॥

१ वसूनां प्रयन्तः जनितः बोधि— तू धनोंका नियामक और उत्पादक होकर हमें ज्ञानवान् कर ।

[८५५] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (कविभिः कविः सन्) मेधावियोंके साथ मेधावी बन कर, (विप्रस्य मनुषः हविर्भिः) ज्ञानी मनुष्यकी हवियोंसे (यथा देवान् अयजः) देवोंके समान पूजित हो (होतः सत्यतर, त्वं अद्य) होमके कर्ता, तथा सत्यस्वरूप अग्ने ! तू आज हमारे इस यज्ञ कर्ममें (मन्द्रया जुह्वा यजस्व) देवोंके आनन्ददायक चमचेसे आहुति ग्रहण कर और देवोंकी पूजा कर ॥ ५ ॥

१ कविः सन् कविभिः यजस्व— स्वयं ज्ञानी बनकर ज्ञानियोंके साथ प्रशस्त कर्म कर ।

[७७]

[८५६] (यः) जो (अमृतः, ऋतावा, होता यजिष्ठः) अमर, सत्यवान्, देवोंको बुलानेवाला और यज्ञोंका सम्पादन करनेवाला है । जो (मर्त्येषु देवान् इत् कृणोति) मनुष्योंके बीच रहकर देवोंको हवियोंसे युक्त करता है । ऐसे (अस्मै अग्नये कथा दाशेम) इस अग्निके लिये हम हवि कैसे प्रदान करें ? अथवा (भामिने देवजुष्टा गीः का उच्यते) तेजस्वी, सब देवताओंसे पूजित अग्निके लिए कौनसी स्तुति कहें ? ॥ १ ॥

[८५७] (यः अध्वरेषु) जो अग्नि यज्ञोंमें (शंतमः, ऋतावा, होता) अत्यन्त सुखकारी, यथार्थदर्शी और देवोंका बुलानेवाला है; (तं उ नमोभिः आकृणुध्वं) उस अग्निका हे लोगो ! स्तोत्रोंसे सत्कार करो । (यत् अग्निः मर्ताय देवान् वेः) जब यह अग्नि मनुष्योंके हित करनेके लिये देवताओंके पास जाता है, उस समय (सः बोधाति च मनसा यजाति) वह सब कुछ जानता है, और जानकर मनसे उन देवोंकी पूजा करता है ॥ २ ॥

१ मर्ताय देवान् वेः— यह अग्रणी मनुष्योंका हित करनेके लिए दिव्य ज्ञानियोंकी सहायता लेता है ।

भावार्थ— यह अग्नि सबके द्वारा बुलाया जाता है । आते हुए अपने साथ अन्य देवोंको भी बुलाकर लाता है । यह मनुष्योंको उत्पन्न कर उन्हें धन और ज्ञानसे युक्त करता है ॥ ४ ॥

ज्ञानियोंके साथ मिलकर हमेशा उत्तम कर्म ही करने चाहिए । तथा अपनी बुद्धिसे देवोंकी पूजा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

यह अग्नि मानव शरीरोंमें दिव्य देवों- इन्द्रियोंको लाकर बसाता है और इस शरीरमें अग्नि शतसांवत्सरिक यज्ञ शुरु करता है । ऐसे इस श्रेष्ठ अग्निकी पूजाका मार्ग क्या है, यह जानना चाहिए ॥ १ ॥

यह अग्रणी छल, हिंसा आदिसे रहित कामोंको पूर्ण करता है यह सर्वज्ञ है अतः मनुष्योंके मनकी बातोंको भी जानता हुआ उनकी सहायता करता है अतः यह सत्कारके योग्य है ॥ २ ॥

८५८ स हि क्रतुः स मर्यः स साधु—र्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्ती—र्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३ ॥
८५९ स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४ ॥
८६० एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।
स एषु द्युम्नं पीपयत् स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५ ॥

[७८]

(ऋषिः– गोतमो राहूगणः । देवता– अग्निः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

८६१ अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ १ ॥

अर्थ— [८५८] (स हि क्रतुः) यह अग्नि निश्चयसे कर्मशील है । (सः साधुः स मर्यः) वह संसारका उत्पादक और वही उपसंहारक है । (सः मित्रः न) वह मित्रकी तरह सहायक है (अद्भुतस्य रथीः भूत्) वह ही दिव्य रथपर चढनेवाला वीर है । (मेधेषु देवयन्तीः विशः) यज्ञोंमें देवाभिलाषी प्रजायें (तं दस्मं आरीः प्रथमं उप ब्रुवते) उस दर्शनीय अग्निके समीप जाकर उत्तम स्तुति करती हैं ॥ ३ ॥

१ मर्यः— संहारक ' मृङ् प्राणत्यागे ' ।

२ अद्भुतस्य रथीः— वह अग्नि इस शरीररूपी विचित्र रथका रथी स्वामी है ।

[८५९] (अग्निः नृणां नृतमः रिशादाः) अग्नि मनुष्योंके बीचमें उत्कृष्ट नेता और शत्रुओंका विनाशक है । (सः नः गिरः अवसा धीतिं वेतु) वह हमारी स्तुतिको स्वीकार करता हुआ अपने संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर बुद्धिपूर्वक किए गए हमारे कर्मको जाने (च ये, तना मघवानः) और जो यजमान धनसे अत्यधिक धनशाली और (शविष्ठाः) बलशाली हैं तथा (वाजप्रसूताः, मन्म, इषयन्त) अन्नसे हवि प्रदान करके स्तुति करते हैं उनकी स्तुति सुने ॥ ४ ॥

१ सः अवसा धीतिं वेतु— वह हमारी रक्षा करके हमें उत्तम बुद्धि प्राप्त करावे ।

[८६०] (ऋतावा जातवेदाः अग्निः) सत्यनिष्ठ सर्वज्ञ अग्नि (विप्रेभिः गोतमेभिः अस्तोष्ट) मेधावी गौतमोंसे प्रशंसित हुआ । (सः एषु द्युम्नं पीपयत्) उसने उनमें बैठकर प्रकाशमान् सोमरसका पान किया । तथा (सः वाजं) उसने हवि युक्त अन्नका भी भक्षण किया । इस प्रकार (सः जोषं चिकित्वान् पुष्टिं याति) वह अग्नि हमारी सेवाओंको जानकर पुष्टिको प्राप्त करे ॥ ५ ॥

[७८]

[८६१] हे (जातवेदः विचर्षणे) सर्वज्ञ और सर्व द्रष्टा अग्ने । (गोतमाः त्वा गिर अभि) गौतम वंशमें उत्पन्न हम तेरा वाणियोंसे (द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः) और उज्ज्वल स्तोत्रोंसे बारबार सत्कार करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— वह कर्मशील अग्नि इस संसारका उत्पादक एवं संहारक है । वह सब प्राणियोंका सहायक है । इसलिए सब प्रजाएं उसीकी स्तुति करती हैं ॥ ३ ॥

यह अग्नि उत्तम नेता तथा शत्रुओंका विनाशक है । अतः यह हमारी सुरक्षा करके हमें उत्तम बुद्धि दे ताकि हम सत्कर्म करते हुए इसकी स्तुति कर सकें ॥ ४ ॥

वह (गो–तम) उत्तम अर्थात् संयमी इन्द्रियोंवाले ज्ञानियोंमें बैठ कर आनन्द प्राप्त करता है । अर्थात् संयमी लोगोंके शरीरोंमें अग्नि चिरकाल तक आनन्दसे रहता है ॥ ५ ॥

इस सर्वज्ञ और सर्व द्रष्टा अग्निका सत्कार सबको करना चाहिए ॥ १ ॥

८६२ तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ २ ॥
८६३ तमु त्वा वाजसातम मङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ३ ॥
८६४ तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ४ ॥
८६५ अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद् वचः । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ५ ॥

[७९]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- १-३ अग्निः मध्यमोऽग्निर्वा; ४-१२ अग्निः ।
छन्दः- १-३ त्रिष्टुप्; ४-६ उष्णिक्; ७-१२ गायत्री ।)

८६६ हिरण्यकेशो रजसो विसारे ऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥ १ ॥
८६७ आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥ २ ॥

अर्थ— [८६२] हे अग्ने ! (रायस्कामः गोतमः त्वा) धनकी कामनासे गोतम तेरी (गिरा दुवस्यति) स्तोत्रों द्वारा सेवा करता है उस (तमु द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः) तेरी उज्ज्वल स्तोत्रोंसे हम भी बारबार स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[८६३] (आङ्गिरस्वत्) अङ्गिराओंके समान (वाजसातमं त्वा हवामहे) बहुत सारा धन देनेवाले तेरा हम आह्वान करते हैं और (तमु द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः) तेरी उज्ज्वल स्तोत्रोंसे पूजा करते हैं ॥ ३ ॥

[८६४] हे अग्ने ! (यः दस्यून् अवधूनुषे) जो तू राक्षसोंको कँपाता है, (तं वृत्रहन्तमं) उस वृत्रके नाशक (त्वा) तेरी हम (द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः) उज्ज्वल मन्त्रोंसे बारबार स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[८६५] (रहूगणः) रहूगणके वंशमें उत्पन्न हमने (अग्नये मधुमद्वचः अवोचाम) अग्निके लिये मधुर स्तुतियाँ की, अब उसी अग्निकी (द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः) प्रकाशित मन्त्रोंसे बारबार स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[७९]

[८६६] (हिरण्यकेशः अहिः धुनिः) सुवर्णकेश अर्थात् तेजस्वी ज्वालावाला, हननशील मेघको कम्पित करनेवाला, (वातः इव ध्रजीमान्) वायुकी तरह शीघ्र गतिवाला तथा (शुचिभ्राजाः रजसः विसारे) शोभन दीप्तिसे युक्त यह अग्नि लोकोंके विस्तारमें निपुण है (यशस्वतीः अपस्युवः सत्याः न) पर यशसे युक्त, निज कार्य परायण और सरल स्वभाववाली स्त्री (उषसः न वेदाः) उषायें इस बातको नहीं जानतीं ॥ १ ॥

[८६७] हे अग्नि ! जब (ते सुपर्णाः एवैः आ अमिनन्त) तेरी सुन्दर और पतनशील किरणोंने अपनी शक्तियोंसे सब दिशाओंमें मेघोंको ताडित किया, तब (कृष्णः वृषभः नोनाव) कृष्ण वर्णवाले वर्षणशील मेघ गर्जने लगे । (यदि इदं, स्मयमानाभिः शिवाभिः न आ, आगत्) जब इस प्रकारका कार्य होता है, उस समय हास्य युक्त सुखकर बिजलियोंसे युक्त होकर यह मेघ आता है तब (मिहः पतन्ति, अभ्रा स्तनयन्ति) जलकी बूंदें गिरती हैं, और बादलोंके समूह गर्जते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— धनकी इच्छा करनेवालोंको चाहिए कि वे अग्नि देवकी पूजा करें ॥ २ ॥

अंगरस अर्थात् शरीरके अंगोंमें प्रवाहित होनेवाले रसकी विद्याके ज्ञाता इस अग्निका महत्त्व जानकर इसकी सेवा करते हैं ॥ ३ ॥

यह अग्रणी इतना बलवान् है कि इससे डरकर शत्रु कांपते हैं । यह वृत्र अर्थात् रोगोंका भी नाशक है ॥ ४ ॥

रहु वंशमें उत्पन्न लोगोंने जिस प्रकार उसकी स्तुति की, उसी प्रकार सब मनुष्य उसकी स्तुति करें ॥ ५ ॥

यह अग्नि उषाओंके लिए अन्तरिक्षको विस्तृत करता है, उषायें इसको नहीं जानतीं ॥ १ ॥

इस अग्निकी शक्तिसे ताडित होकर मेघ गर्जता है, उसमें बिजलियोंके उत्पन्न होनेके कारण धुवांधार वृष्टि होती है । इसमें वृष्टि-विज्ञानका वर्णन है ॥ २ ॥

८६८ यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥ ३ ॥
८६९ अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥
८७० स इधानो वसुष्कविः अग्निरीळेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥
८७१ क्षपो राजन्नुत त्मना ऽग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥
८७२ अवा नो अग्न ऊतिभिः गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ ७ ॥
८७३ आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [८६८] (यत् ईं ऋतस्य पयसा पियानः) जिस समय मेघ वृष्टिके रससे संसारको पुष्ट करता हुआ (ऋतस्य रजिष्ठैः पथिभिः नयन्) जलको सरलतम मार्गसे ले जाता है, उस समय (अर्यमा, मित्रः, वरुणः परिज्मा) अर्यमा, मित्र, वरुण और चारों ओर जानेवाले मरुद्गण (उपरस्य, योनौ त्वचं पृञ्चन्ति) मेघकी उत्पत्ति स्थानमें उसकी त्वचाको जलसे भर देते हैं ॥ ३ ॥

[८६९] (सहसः यहो अग्ने) हे बलके पुत्र अग्ने ! तू (गोमतः वाजस्य ईशानः) गौसे युक्त अन्नका स्वामी है अतः (जातवेदः अस्मे महि श्रवः धेहि) हे सब उत्पन्न प्राणियोंका ज्ञाता ! तू हमें भरपूर अन्न प्रदान कर ॥ ४ ॥

१ सहसः यहुः— बलका पुत्र यह अग्रणी बलके कार्यके लिए जन्मा है ।

[८७०] (सः इधानः वसुः कविः अग्निः) वह प्रकाशमान् धनोंका ईश्वर, मेधावी अग्नि (गिरा ईळेन्यः) उत्तम वाणियोंसे स्तुतिके योग्य है । हे (पुर्वणीक अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि) बहुत ज्वालाओंवाले अग्ने ! हमें भरपूर धन देता हुआ तू प्रज्वलित हो ॥ ५ ॥

[८७१] हे (राजन् तिग्मजम्भ अग्ने) हे प्रकाशमान् और तीक्ष्ण दाढवाले अग्ने ! (सः) वह प्रसिद्ध तू (क्षपः) शत्रुओंका नाश कर तथा (वस्तोः उत उषसः) रात्री दिवस और उषःकालमें (त्मना उत रक्षसः प्रति दह) स्वयं दैत्योंको भस्म कर ॥ ६ ॥

रक्षसः– क्षर–सः— शरीरको क्षीण करनेवाले रोग जन्तु ।

[८७२] हे (विश्वासु धीषु वन्द्य अग्ने) सम्पूर्ण बुद्धिके कर्मोंमें पूज्य अग्ने ! (गायत्रस्य प्रभर्मणि) हमारे द्वारा गायत्री स्तोत्र निवेदन करनेपर (ऊतिभिः नः अव) अपने रक्षाके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ॥ ७ ॥

गायत्री गायकं त्रायति इति गायत्री— यह अपने गानेवालेकी रक्षा करती है ।

[८७३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (नः) हमारे लिये (सत्रासाहं विश्वासु पृत्सु दुष्टरं) शत्रुओंके विनाशक, सम्पूर्ण संग्रामोंमें शत्रुओंसे जीतनेमें अशक्य और (वरेण्यं, रयिं) श्रेष्ठ धनको (आभर) सब ओरसे भरपूर प्रदान कर ॥ ८ ॥

भावार्थ— मेघ अपने जलसे संसारको पुष्ट करते हैं और सरलतासे अपने जलोंको देते हैं अर्यमा, मित्र (सूर्य) और वरुण (समुद्र) तथा मरुद्गण (वायु) इससे मेघको फिर भर देते हैं ॥ ३ ॥

यह अग्रणी स्वयं अन्नका स्वामी होकर दूसरोंको भी अन्न प्रदान करता है ॥ ४ ॥

विशेष तेजस्वी और धनोंका स्वामी यह अग्रणी अपने धनोंको बांटता है, इसलिए यह प्रशंसाके योग्य है ॥ ५ ॥

उषःकाल तथा दिनके समय अग्निको जलाने अर्थात् हवन करनेसे शरीरको क्षीण करनेवाले सारे राक्षस जल जाते हैं ॥ ६ ॥

यह अग्रणी अपने उपासकोंकी हर तरहसे रक्षा करता है ॥ ७ ॥

यह अग्रणी शत्रुओंके नाशके लिए अपने भक्तोंको धन देता है ॥ ८ ॥

८७४ आ नों अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुंपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसें ॥ ९ ॥
८७५ प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचों गोतमाग्रयें । भरंस्व सुम्नयुर्गिरः ॥ १० ॥
८७६ यो नों अग्नेऽभिदासत्य न्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद् वृधे भव ॥ ११ ॥
८७७ सहस्राक्षो विचर्षणि रग्नी रक्षांसि सेधति । होता गृणीत उक्थ्यः ॥ १२ ॥

[८०]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- इन्द्रः (अथवा, मनुः दध्यङ् च) । छन्दः- पंक्तिः ।)

८७८ इत्था हि सोम इन्मदें ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविंष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शंशा अहि मर्चन्ननुं स्वराज्यम् ॥ १ ॥

अर्थ— [८७४] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः जीवसे) हमारे दीर्घ जीवनके लिये (सुचेतुना मार्डीकं विश्वायु-पोषसं) सुन्दर ज्ञानसे युक्त सुख देनेवाले और सम्पूर्ण आयुको पुष्ट करनेवाले (रयिं आ धेहि) धनको सब ओरसे प्रदान कर ॥ ९ ॥

[८७५] हे (गोतम) गोतम ! (सुम्नयुः तिग्मशोचिषे अग्नये) कल्याणकी इच्छा करनेवाला तू तीक्ष्णसे तीक्ष्ण ज्वालावाले अग्निके लिये (पूताः वाचः गिरः प्रभरस्व) पवित्र वचनोंवाली स्तुतियाँ कह ॥ १० ॥

गो-तम— उत्तम इंद्रियोंवाला ।

[८७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः अन्ति, दूरे यः अभिदासति) हमारे समीपमें अथवा दूरमें रहकर जो शत्रु हमको अपना दास बनाना चाहे, (सः पदीष्टः) वह नाशको प्राप्त हो । (अस्माकं इत् वृधे भव) तू हमारी वृद्धि करनेवाला हो ॥ ११ ॥

[८७७] (सहस्राक्षः विचर्षणिः अग्निः) सहस्रों ज्वालाओंवाला और सबका द्रष्टा अग्नि (रक्षांसि सेधति) राक्षसोंको नष्ट करता है । वह (होता, उक्थ्यः गृणीत) देवोंको बुलानेवाला वह प्रशंसनीय अग्नि प्रशंसित हो रहा है ॥१२॥

[८०]

[८७८] (ब्रह्मा) ज्ञानीने (इत्था हि सोमे मदे) इस प्रकारके सोमके आनन्दमें (इन्द्र वर्धनं चकार) इन्द्रके उत्साहका वर्धन किया । (शविष्ठ वज्रिन्) हे बल-सम्पन्न वज्रधारी इन्द्र ! (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) तूने, स्वराज्यका आदरसत्कार करते हुए (ओजसा) अपने पराक्रमसे (अहिं पृथिव्याः निः शशाः) शत्रुको पृथ्वी परसे नष्ट कर दिया ॥ १ ॥

भावार्थ— इस अग्रणीके द्वारा दिए गए धनसे आयु दीर्घ होती है शरीर पुष्ट होता है ॥ ९ ॥

उत्तम इन्द्रियोंवाला जितेन्द्रिय मनुष्य ही इस अग्निकी उपासना कर सकता है और कल्याण प्राप्त कर सकता है ॥१०॥

जो अग्रणीके उपासकों पर हमला करके उन्हें अपना दास बनाना चाहता है वह नाशको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

यह अग्रणी सर्वव्यापक होनेसे अपनी हजार आंखोंसे सबके कर्मोंको देखता है और जो राक्षसी कर्म करते हैं उन्हें नष्ट कर देता है । अपने इसी कर्मके कारण वह सर्वत्र प्रशंसित होता है ॥ १२ ॥

ज्ञानियोंने इन्द्रके बलको बढाया और इन्द्रने देशकी स्वतंत्रताको खतरेमें डालनेवाले शत्रुओंको नष्ट किया और स्वराज्यको सुदृढ बनाया । इसी प्रकार राष्ट्रके अन्दर ज्ञानी अपने राष्ट्रका बल बढानेका प्रयत्न करें, नाना साधनोंसे क्षात्र-शक्तिका संवर्धन करें । और क्षत्रिय भी देशद्रोहियोंको विनष्ट करके या उन्हें अपने अधिकारमें रखकर अपने देशकी स्वतं-त्रताको अक्षुण्ण बनानेकी कोशिश करें ॥ १ ॥

८७९ स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसा ऽर्चन्नु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

८८० प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपो ऽर्चन्नु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

८८१ निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपो ऽर्चन्नु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

८८२ इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।
अभिक्रम्याव जिघ्नते ऽपः समीय चोदय-न्नर्चन्नु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [८७९] (वज्रिन्) हे वज्रधारी इन्द्र ! (सः श्येन-आभृतः) उस श्येन द्वारा लाये गये (सुतः वृषा मदः सोमः) कूट-छानकर निचोडे, बल बढानेवाले आनन्ददायक सोमने (त्वा अमदत्) तुझे आनंदित कर दिया (येन) जिससे तूने (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यका सत्कार करते हुए (ओजसा) अपने बलसे (वृत्रं अत्-भ्यः निः जघन्थ) शत्रुको मारकर उसे जलसे बाहर निकाल दिया, जल-स्थानसे दूर भगा दिया ॥ २ ॥

[८८०] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (प्र इहि) शत्रुके सम्मुख जा, (अभि इहि) उसे सब ओरसे घेर ले (धृष्णुहि) और उसका नाश कर दे । (ते वज्रः नि यंसते न) तेरा वज्र कभी पराभूत नहीं किया जा सकता । (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) तू अपने स्वराज्यका सत्कार करते हुए (वृत्रं हनः) शत्रुको मार (अपः जयाः) और जलोंको जीत (ते शवः नृम्णं हि) क्योंकि तेरा बल मानवोंका हित करनेवाला है ॥ ३ ॥

[८८१] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यका आदरसत्कार करते हुए (भूम्याः अधि) भूमिपर (दिवः) और दिव् लोकमें (वृत्रं निः निः जघन्थ) शत्रुको निःशेष होनेतक नष्ट कर । (इमाः । मरुत्वतीः जीवधन्याः अपः) तू इन वीरोंको अपने साथ रखनेवाले जीवन-धारक जलोंको (अव सृज) बहनेके लिये छोड दे ॥ ४ ॥

[८८२] (इन्द्रः हीळितः) इन्द्र क्रोधमें आकर (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी प्रेमसे पूजा करते हुए (दोधतः वृत्रस्य सानुं) प्रजाको कँपानेवाले शत्रुरूप वृत्रकी ठुड्डीपर (अभि-क्रम्य वज्रेण अव जिघ्नते) चारों ओरसे वज्रसे प्रहार करता है (समीय अपः चोदयन्) और बहनेके लिये जलोंको प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— राष्ट्रमें सोम अर्थात् सब तरहके धान्यका संग्रह भरपूर रहे । राष्ट्रमें सर्वत्र श्येन यज्ञ हों, श्येनयज्ञ धान्यका संवर्धक होता है, अथवा श्येन अर्थात् घोडों द्वारा राष्ट्रमें भरपूर धान्य लाया जाए । इस प्रकार राष्ट्रकी आन्तरिक स्थिति उत्तम हो, फिर बलसे युक्त होकर राष्ट्रको घेरनेवाले शत्रुओंको नष्ट किया जाए ॥ २ ॥

हे वीर ! आगे बढ, हमला कर, चारों ओरसे शत्रुको घेरकर युद्ध कर । तेरे वज्रको निष्प्रभ करनेकी शक्ति किसी भी शत्रुमें नहीं है । तेरे शस्त्रका नियमन कोई भी नहीं कर सकता । तेरे सामर्थ्यका उपयोग मानवोंके हित करनेमें ही हो, तू कभी उनपर अत्याचार मत कर ॥ ३ ॥

हे वीर ! अपने देशकी और अपनी स्वतंत्रताके महत्त्वको समझ और उसकी हर तरहसे रक्षा कर । तेरे देशको दास बनानेकी इच्छा करनेवाले जो भी शत्रु इस पृथ्वीपर हों, उन्हें तू नष्ट कर दे । और अपने प्रजाके प्राणोंकी तू हर तरहसे रक्षा कर ॥ ४ ॥

हे वीर ! तेरी प्रजाओंपर अत्याचार करके उन्हें भयभीत करनेवाले शत्रुओंके उत्तम भाग पर तू आक्रमण कर और यदि शत्रुओंने तेरे देशमें बहनेवाली नदियोंके मार्गको बंद कर दिये हों, तो उन्हें तू खोल और इस प्रकार देशकी रक्षा कर ॥ ५ ॥

८८३ अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छ—त्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ६ ॥
८८४ इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवो ऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधी—रर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ७ ॥
८८५ वि ते वज्रासो अस्थिर—न्नवतिं नाव्याः अनु ।
महत् त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हित—मर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥
८८६ सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवु—रिन्द्राय ब्रह्मोद्यत—मर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [८८३] (मन्दानः इन्द्रः) आनन्दित हुआ इन्द्र (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी सदा पूजा करते हुए (शत-पर्वणा वज्रेण) सैंकडों धाराओंवाले वज्रसे (सानौ अधि नि जिघ्नते) इस वृत्रके ढुड्डीपर प्रहार करता है (सखि-भ्यः) और मित्रोंके लिये (अन्धसः गातुं इच्छति) अन्नकी प्राप्तिका मार्ग ढूंढना चाहता है ॥ ६ ॥

[८८४] (अद्रि-वः वज्रिन् इन्द्र) हे पर्वतपर रहनेवाले वज्रधारी इन्द्र ! (तुभ्यं इत् वीर्यं अनुत्तं) तेरा ही पराक्रम उत्कृष्ट है, (यत् ह त्वं) जिस कारण तूने (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए (तं उ त्यं मायिनं मृगं) ढूंढकर पकडे उसे कपटी शत्रुको (मायया अवधीः) कपटसे मारा ॥ ७ ॥

[८८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते वज्रासः) तेरे वज्र वृत्रसे घिरे हुए (नवतिं नाव्याः अनु वि अस्थिरन्) नब्बे नावसे तरने योग्य जलके समीपके विविध स्थानोंमें ठहरे हुए थे । (ते वीर्यं महत्) तेरा पराक्रम महान् है (ते बाह्वोः बलं हितं) और तेरी भुजाओंमें बहुत बल है । (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) इसलिये तू अपने स्वराज्यका सत्कार करते हुए उस जल-रोधक वृत्रका नाश कर ॥ ८ ॥

[८८६] हे मनुष्यो ! (सहस्रं साकं अर्चत) तुम सहस्रोंकी संख्यामें एक साथ मिलकर प्रभुकी प्रार्थना या पूजा करो । (विंशतिः परि स्तोभत) बीसों मिलकर उस इन्द्रकी प्रशंसा करो । (शता एनं अनु अनोनवुः) सैंकडों मिलकर इस प्रभुकी वारंवार प्रार्थना करो । (इन्द्राय ब्रह्म उत्-यतं) इन्द्रके लिये यह स्तोत्र तैयार किया है । हे इन्द्र ! (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए तू उसका सेवन कर ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सैंकडों धारोंवाले वज्रसे शत्रुके सिर पर आघात करके उसे घायल करता है और अपने अनुयायियोंके लिए पर्याप्त अन्न देनेके उपाय सोचता है। इस प्रकार सदा अपनी प्रजाके हित करनेके लिए मार्ग ढूंढता रहता है । इसी प्रकार देशका राजा भी सदा देशका हित साधक हो ॥ ६ ॥

यह इन्द्र इतना भयंकर शत्रुनाशक है कि जो इससे डरकर किसी जगह जाकर छिप भी जाए– तो भी यह उसे ढूंढ कर मारता है । इसी प्रकार जो शत्रु माया या छल कपटसे इन्द्र पर अपना अधिकार जमाना चाहता है उस छली शत्रुको इन्द्र भी छलसे ही मारता है, इस प्रकार यह इन्द्र जैसेके साथ तैसेका व्यववार करता है । यह शत्रुनाशके समय जो अपना पराक्रम दिखाता है, वह अद्वितीय होता है ॥ ७ ॥

इस इन्द्रका वज्र नौकासे जाने योग्य नब्बे नदियोंके समीपके देशोंमें स्थिर हो चुका है, प्रभावी हो गया है, अर्थात् यह इन्द्र शत्रुके नब्बे नगरोंपर हमला करके उन्हें अपने अधिकारमें रखता है । यह सब बातें वह इसीलिए कर पाता है क्योंकि उसकी भुजाओंमें बल है । अतः राष्ट्रके हर व्यक्तिको अपनी शक्ति बढानी चाहिए ॥ ८ ॥

हे मनुष्यो ! तुम सहस्रोंकी संख्यामें मिलकर प्रभुकी प्रार्थना करो । यदि सहस्रों नहीं तो सैंकडोंकी संख्यामें अवश्य सम्मिलित होओ, और यदि वह भी असंभव हो, तो बीसकी संख्यामें तो अवश्य ही संगठित होओ । इसमें मनुष्योंको संगठनका उपदेश दिया है। संगठनसे मनुष्योंके हृदय एक होते हैं और इस प्रकार देशकी सुरक्षा आसानीसे हो सकती है ॥ ९ ॥

*

८८७ इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।
महत् तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृज–दर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १० ॥
८८८ इमे चित् तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधी–रर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥
८८९ न वेपसा न तन्यते–न्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायता–र्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
८९० यद् वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवो ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [८८७] (इन्द्रः) इन्द्रने (सहसा) बलसे (वृत्रस्य तविषीं सहः निः अहन्) वृत्रकी सेना और बलको नष्ट कर दिया। (अस्य तत् पौंस्यं महत्) इसका वह पौरुष बहुत ही बडा है। (स्व–राज्यं) उसने अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए (वृत्रं जघन्वान्) वृत्रको मारा (अनु अर्चन्) और जलोंको बहनेके लिये खुला छोड दिया ॥१०॥

[८८८] (वज्रिन् इन्द्र) हे वज्रधारी इन्द्र ! (स्व–राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए (यत् मरुत्वान् ओजसा वृत्रं अवधीः) जब वीरोंको साथी बनानेवाले तूने अपने बलसे वृत्रका वध किया (इमे चित् मही) उस समय ये बडे दोनों लोक (तव मन्यवे भियसा वपेते) तेरे क्रोधके सम्मुख भयसे काँपने लगे ॥ ११ ॥

[८८९] (वृत्रः न वेपसा न तन्यता इन्द्रं वि बीभयत्) वृत्र न अपने कम्पन और नहीं अपनी गर्जनासे इन्द्रको डरा सका (स्व–राज्यं अनु अर्चन्) इसके विपरीत, जो इन्द्र स्व–राज्यकी पूजा करनेमें लगा हुआ था (एनं) उसके द्वारा इस वृत्रकी ओर (आयसः सहस्र–भृष्टिः वज्रः अभि आयत) लोहेका सहस्रों धारोंवाला वज्र फेंका गया ॥ १२ ॥

[८९०] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत् स्व–राज्यं अनु अर्चन्) जिस समय अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए तूने (वृत्रं अशनिं च तव वज्रेण सं–अयोधयः) वृत्र और उसके विद्युत् जैसे तीक्ष्ण शस्त्रपर अपने वज्रसे प्रहार किया (अहिं जिघांसतः ते शवः) उस समय वृत्रको मारनेकी इच्छावाले तुझ इन्द्रका बल (दिवि बद्बधे) प्रकाशमय लोकमें भी स्थिर हो गया ॥ १३ ॥

भावार्थ— इन्द्रने अपनी शक्तिसे शत्रुकी सेनाको नष्ट किया और उसके सामर्थ्यका नाश किया। अतः इन्द्रका सामर्थ्य बहुत बडा है। इन्द्रके समान ही राजा अपनी शक्तिसे शक्तिमान् बने। वह देशमें ही शस्त्रास्त्रोंका उत्पादन करे। किसी दूसरे देशसे शस्त्र न मांगे इस प्रकार अपनी ही शक्तिसे शक्तिशाली देश चिरस्थायी रह सकता है ॥ १० ॥

यह इन्द्र स्वतंत्रताका पूजक है। उसकी वह इस तरहसे रक्षा करता है कि कोई भी शत्रु उसकी स्वतंत्रताको नष्ट नहीं कर सकता। यदि कोई शत्रु उसके स्वराज्यको नष्ट करनेका प्रयत्न करता है, तो यह इन्द्र इतना क्रोधित होकर उसका नाश करता है कि उसके क्रोधको देखकर पृथ्वी और द्युलोक भयसे कांपने लगते हैं। इसी प्रकार राजा अपने शत्रुओंका नाश करे ॥ ११ ॥

इन्द्र सौ धारोंवाले वज्रको शत्रु पर फेंक कर मारता है। इसी वज्रके कारण वह इतना निर्भीक है, कि वृत्र अपनी गर्जनासे और अपने वेगसे भी इन्द्रको भयभीत न कर सका। इसी प्रकार शत्रुके किसी भी प्रयत्नसे वीरोंको भय प्राप्त न होवे। अपने सब वीर निर्भय हों ॥ १२ ॥

जिस समय अपने स्वातंत्र्यका संरक्षण करते हुए इन्द्रने दास बनानेकी इच्छावाले शत्रु पर अपने वज्रसे प्रहार किया, तब उस इन्द्रका वास्तविक बल प्रकट हुआ और सब लोकोंमें उसका यश फैल गया ॥ १३ ॥

८९१ अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित् तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥

८९२ नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १५ ॥

८९३ यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥

अर्थ— [८९१] (अद्रि-वः इन्द्र) हे पर्वतपर रहनेवाले इन्द्र (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) तू अपने स्वराज्यका सम्मान करते हुए वृत्रको मारता है। (यत् ते अभि-स्तने स्थाः जगत् च रेजते) जब तेरे गर्जनेपर स्थावर और जंगम क्रोधके दोनों प्रकारके पदार्थ काँप उठते हैं (त्वष्टा चित् भिया तव मन्यवे वेविज्यते) तब त्वष्टा भी भयसे तेरे सम्मुख काँपने लगता है ॥ १४ ॥

[८९२] (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) इन्द्र अपने स्वराज्यकी पूजा करता हुआ वृत्रको मारता है। (यात् नहि नु अधि-इमसि) उस सर्वत्र व्यापक इन्द्रको हम पूर्ण रूपसे नहीं जानते। (परः इन्द्रं वीर्या कः) हमसे बहुत दूर स्थानमें रहनेवाले इन्द्र और उसकी शक्तियोंको कौन जान सकता है? (देवाः) देवोंने (तस्मिन्) उस इन्द्रमें (ओजांसि नृम्णं उत क्रतुं सं दधुः) बल, धन और कार्यशक्ति स्थापित की ॥ १५ ॥

[८९३] इन्द्र (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए वृत्रको मारता है। (अथर्वा, पिता मनुः, दध्यङ्) अथर्वा पालनकर्ता मनु और दध्यङ्ने (यां धियं अत्नत) जिस बुद्धिको फैलाया (पूर्व-था) और पहलेकी भाँति उन्होंने (तस्मिन् इन्द्र ब्रह्माणि) उसी इन्द्रमें उन ज्ञानों (उक्था) और स्तोत्रोंको (सं अग्मत) सुसंगत कर दिया, उसीके कार्यमें लगा दिया। ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे पर्वतके किलोंमें रहनेवाले इन्द्र! तू अपने स्वराज्यका संरक्षण करते हुए जब वृत्रको मारता है और उसे मारते समय तू जो गर्जना करता है, उस गर्जनको सुनकर स्थावर और जंगम सभी कांप उठते हैं। औरोंका तो कहना ही क्या, स्वयं त्वष्टा देव भी कांप उठते हैं ॥ १४ ॥

जब वृत्रको मारते समय इन्द्रमें शक्ति और उत्साह भर जाता है, तब उसकी शक्ति और उत्साहका थाह कोई नहीं पा सकता। इसीलिए देवोंने उसे अपना नेता चुना और उसमें बल, वीर्य और कर्तृत्वशक्ति स्थापित की। इसी तरह हर मनुष्यको चाहिए कि वह शत्रुको परास्त करनेके लिए बल, वीर्य और कर्तृत्वशक्ति अपनेमें संगठित करे क्योंकि इन्हींसे शत्रु-का पराभव होता है ॥ १५ ॥

(अ-थर्वा) चंचल मनसे रहित अर्थात् अचंचल वृत्तिवाला, सबका पालनकर्ता, मननशील मनुष्य ही सर्वत्र उत्तम बुद्धिको फैला सकता है। यह उत्तम बुद्धि जिस कार्यमें लगाई जाती है, वह कार्य सदा सबल होता है। इसीलिए इन्द्र इस बुद्धिका उपभोग करता है ॥ १६ ॥

[८१]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- पंक्तिः ।)

८९४ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥

८९५ असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥

८९६ यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥

---

[८१]

अर्थ— [८९४] (वृत्र-हा इन्द्रः) वृत्रनाशक इन्द्र (मदाय शवसे) आनन्द और बलके लिये (नृ-भिः वावृधे) मनुष्यों द्वारा बढाया जाता है । (तं इत्) हम उसी इन्द्रको (महत्-सु आजिषु उत ईं अर्भे) बडे युद्धोंमें और उसीको छोटे युद्धोंमें (हवामहे) बुलाते हैं । (सः वाजेषु नः प्र अविषत्) वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करे ॥ १ ॥

[८९५] (वीर) हे वीर ! (सेन्यः असि) तू सेनासे युक्त है । (भूरि परा-ददिः असि) बहुत धन दान देनेवाला है । (दभ्रस्य चित् वृधः असि) तू छोटेको भी बडा करनेवाला है । (यजमानाय शिक्षसि) तू यज्ञ करनेवालेके लिये धन देता है । (सुन्वते ते वसु भूरि) सोमयाग करनेवालेको देनेके लिये तेरे पास बहुत धन है ॥ २ ॥

[८९६] (यत् आजयः उत्-ईरते) जिस समय युद्ध छिड जाते हैं (धृष्णवे धना धीयते) तब तेरे द्वारा निडर वीरके लिये धन दिया जाता है । (इन्द्र) हे इन्द्र ! (मद्-च्युता हरी युक्ष्व) तू अपने मद चुवानेवाले घोडोंको रथमें जोड । (कं हनः, कं वसौ दधः) तूने किसी दुष्टको मारा और किसीको धनके बीचमें रखा, धनवान् बना दिया । (अस्मान् वसौ दधः) तूने हमें धनके बीच रखकर धनवान् बनाया है ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र शत्रुओंका नाश करता है, इसलिए सब इन्द्रदेवताकी प्रशंसा करते हैं । बडे और छोटे युद्धोंमें लोग अपनी सहायताके लिए इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं । वह इन्द्र हमारी रक्षा करे । इन्द्रकी स्तुतिके मंत्रोंको पढनेसे मनुष्य अपना बल बढाने और शत्रुके नाशका उपाय जान सकता है और विजयी होनेका तरीका भी जान सकता है ॥ १ ॥

हे वीर ! तू सदा सेनासे युक्त है । वह वीर सेनाके साथ रहता है । वह छोटेको बडा करता है अर्थात् गिरे हुओंको ऊपर उठाता है । वह गरीबोंको दान देकर उन्हें श्रीसम्पन्न करता है । इसी तरह राजा भी गिरे हुओंको ऊंचा उठाये और उन्हें सम्पत्तिमान् बनाये ॥ २ ॥

जब युद्ध छिड जाते हैं, तब शत्रुओंका मुकाबला करनेके लिए निडर वीरको भरपूर धन देना चाहिए । ताकि वह वीर प्रसन्न हो और उस धनके उपयोगके लिए युद्धके साधनोंका भरपूर संग्रह कर सके । उस वीरके रथमें उत्तम उत्तम घोडे जोडे जायें । वह वीर भी श्रेष्ठ बुद्धिवाला हो और किसका वध किया जाए और किसे धनसे युक्त किया जाए, इसका विचार अच्छी तरह करे । ऐसा न हो कि मित्र तो मारा जाए और शत्रु धनवान् हो जाए ॥ ३ ॥

८९७ क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयो॒र्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ४ ॥
८९८ आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यते ऽति विश्वं ववक्षिथ ॥ ५ ॥
८९९ यो अर्यो मर्तभोजनं परादर्दाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥ ६ ॥
९०० मदेमदे हि नो दुदि॒र्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतो॒भयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ७ ॥

अर्थ— [८९७] (क्रत्वा महान् भीमः) क्रियाशील होनेके कारण श्रेष्ठ और भयङ्कर प्रभाववान् इन्द्रने (अनु-स्वधं शवः आ वावृधे) योग्य अन्नके सेवनसे अपना बल बढाया। (ऋष्वः शिप्री हरि-वान्) उस दर्शनीय, शिरस्त्राणधारी, घोडेवाले इन्द्रने (उपाकयोः हस्तयोः) अपने समीपवर्ती दोनों हाथोंमें (श्रिये आयसं वज्रं नि दधे) श्रीकी प्राप्तिके लिये लोहेका बना हुआ वज्र धारण किया है ॥ ४ ॥

[८९८] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (पार्थिवं रजः आ पप्रौ) तूने अपनी व्यापकतासे पार्थिव लोकोंको पूरा भर दिया है। (दिवि रोचना बद्बधे) तूने दिव् लोकमें प्रकाशमय लोक स्थापित किये हैं। (कः चन त्वा-वान् न) कोई भी तेरे समान नहीं है। (न जातः) तेरे समान न कोई उत्पन्न हुआ था (न जनिष्यते) और न आगे उत्पन्न होगा (विश्वं अति ववक्षिथ) तू ही सम्पूर्ण विश्वको चला रहा है ॥ ५ ॥

[८९९] (यः अर्यः इन्द्रः) जो स्वामी इन्द्र (दाशुषे) दाताके लिये (मर्त-भोजनं परा-ददाति) मनुष्योंके भोगने योग्य धन देता है, (अस्मभ्यं शिक्षतु) वह हमारे लिये धनका दान करे (ते भूरि वसु वि भज) हे इन्द्र ! तू अपना विपुल धन हमें बाँट (तव राधसः भक्षीय) मैं तेरे धनका उपभोग करूँ ॥ ६ ॥

[९००] (ऋजु-क्रतुः) हे इन्द्र ! सरल कर्मवाला तू (गवां यूथा) गायोंके झुण्ड (मदे-मदे हि नः ददिः) प्रत्येक आनन्दके समय हमें देनेवाला है। (पुरु शता वसु उभयाहस्त्या सं गृभाय) तू बहुत सैंकडों प्रकारका धन दोनों हाथोंसे ग्रहण कर (रायः आ भर) तू वीरता करके ऐश्वर्यका सम्पादन कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— मनुष्य पुरुषार्थ करके भयंकर वीर हो सकता है अथवा पुरुषार्थ करनेवाला वीर होता है। इसके अलावा जो उत्तम उत्तम अन्न खाता है, वह भी उत्तम वीर होता है। ऐसा वीर शिरस्त्राण धारण करके शस्त्रास्त्र लेकर शत्रुओंका वध करता है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र इतना महान् है कि अपनी शक्तिसे सब लोकोंमें व्याप्त है, सर्वत्र प्रकाशित होता है। अतः न इसके समान कोई उत्पन्न हुआ, न है और न आगे होगा ही। यह अद्वितीय और अकेला शाश्वतकालसे विश्वको चला रहा है ॥ ५ ॥

स्वामी दाताको मानवोंके योग्य भोजन देता है। स्वामी अपने सेवकोंके लिए जीवनवेतन देता है। जो ऐसा देता है, वही सखा और श्रेष्ठ स्वामी होता है अतः जिसके पास बहुत धन हो, उसे चाहिए कि वह उस धनको श्रेष्ठ मनुष्योंको दे ॥ ६ ॥

सरल भावसे कर्म करनेवाला गायोंके झुण्डोंका दान देवे। सैंकडों प्रकारका बहुत धन दोनों हाथोंमें लेकर लोगोंको देवे ताकि सज्जन मनुष्य उस धनका उपभोग कर सकें ॥ ७ ॥

९०१ मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसु- मुप कामान्त्ससृज्महे ऽथा नोऽविता भव ॥ ८ ॥
९०२ एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनाना- मर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ९ ॥

[८२]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- पंक्तिः, जगती ।)

९०३ उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद् योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १ ॥
९०४ अक्षन्नमीमदन्त ह्य- व प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥

अर्थ— [९०१] (शूर) हे शूर (शवसे राधसे) बल और धनके लिये (सुते सचा मादयस्व) तू यज्ञस्थानमें एक साथ आनन्दित हो (त्वा पुरु-वसुं विद्म हि) हम तुझ विपुल सम्पत्तिवाले इन्द्रको निश्चय जानते हैं (कामान् उप ससृज्महे) तेरे सामने अपनी कामनाओंको रखते हैं (अथ नः अविता भव) अब तू हमारा रक्षक हो ॥ ८ ॥

[९०२] (इन्द्र) हे इन्द्र (एते जन्तवः ते विश्वं वार्यं पुष्यन्ति) ये सब प्राणी तेरे सम्पूर्ण वरणीय धनको बढाते हैं (अर्यः) सबका स्वामी इन्द्र तू (अदाशुषां जनानां) दान न करनेवाले लोगोंके (अन्तः वेदः ख्यः हि) गुप्त धन जानता ही है (तेषां वेदः नः आ भर) तू उनका धन हमें ला दे ॥ ९ ॥

[८२]

[९०३] (मघ-वन्) हे धनवाले इन्द्र ! (गिरः उपो सु शृणुहि) तू हमारी प्रार्थनाओंको पास बैठकर सुन (अतथाः इव मा) परायेके समान मत हो (यदा नः सूनृता-वतः करः) जब तू हमें मीठी वाणीवाला करता है, (आत् अर्थयासे इत्) तब हमारा स्तोत्र चाहता ही है (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते हरी योज नु) तू अपने घोडे शीघ्र जोड और यहां हमारे पास शीघ्र आ ॥ १ ॥

[९०४] हे इन्द्र ! (स्व-भानवः विप्राः अक्षन्,) अपने तेजसे तेजस्वी हुए बुद्धिमान् लोगोंने तेरा दिया अन्न खाया (अमीमदन्त हि) और वे बहुत आनन्दित हुए (प्रियाः अव अधूषत) उस आनन्दमें उन्होंने अपने प्रिय मस्तक तेरे आदरके लिये कँपाये (नविष्ठया मती अस्तोषत) फिर प्रशंसासे भरपूर स्तोत्रसे तेरी प्रशंसा की (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते हरी योज नु) यज्ञमें जानेके लिये तू अपने घोडे शीघ्र जोड ॥ २ ॥

भावार्थ— बलको बढानेके लिए और धनकी वृद्धिके लिए अपने साथियोंके साथ आनंद प्रसङ्गके समयोंमें सहभागी होते रहें । इस प्रकार संगठित होकर हम एक दूसरेके रक्षक हों ॥ ८ ॥

स्वामी कंजूस मनुष्योंके सुरक्षित रखे धनको जानता है, अर्थात् उसे प्राप्त करके सबकी भलाईके लिए प्रयुक्त करता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तू हमसे परायेके समान व्यवहार मत कर । तू हमें मीठी वाणीवाला कर । हम सदा एक दूसरेके साथ मधुरताका व्यवहार करें । इस प्रकार हम सब एक दूसरेको मित्र बनाकर संगठित होकर रहें । मीठी वाणी बोलनेसे सभी मित्रताका व्यवहार करते हैं ॥ १ ॥

बुद्धिमान् जन जिसका अन्न खाते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं, पर दुर्जन अपने अन्नदातासे ही ईर्ष्या एवं द्वेष करते हैं ॥ २ ॥

९०५ सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ३ ॥

९०६ स घा तं वृषणं रथ—मधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ४ ॥

९०७ युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५ ॥

९०८ युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत् त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान् वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥ ६ ॥

अर्थ— [९०५] (मघ-वन्) हे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्र ! (वयं) हम लोग (त्वा सु-संदृशं वन्दिषीमहि) तुझ, सुरूप इन्द्रकी वन्दना करते हैं । (नूनं पूर्ण-वन्धुरः) निश्चयसे धन-धान्यसे भरपूर रथवाला तू (स्तुतः) प्रशंसा प्राप्त करता हुआ (वशान् अनु प्र याहि) भक्तोंकी ओर जा । (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते हरी योज नु) तू अपने घोडोंको जोड ॥ ३ ॥

[९०६] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यः हारि-योजनं पूर्ण पात्रं चिकेतति) जो मनुष्य, जिसके पीनेपर रथमें घोडे जोडे जायँ ऐसा, भरा हुआ पात्र तुझे समर्पित करता है, (सः घा तं गो-विदं वृषणं रथं अधि तिष्ठाति) वही मनुष्य उस गौएँ प्राप्त करानेवाले सुखदायी रथपर बैठता है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते हरी योज नु) तू अपने घोडे रथमें शीघ्र जोड ॥ ४ ॥

[९०७] (शत-क्रतो) हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (ते दक्षिणः उत सव्यः युक्तः अस्तु) तेरा दाहिना और बायाँ घोडा रथमें जोडा हुआ हो, (तेन अन्धसः मन्दानः) उस रथसे तू अन्नसे तृप्त होकर (प्रियां जायां उप याहि) प्रिय पत्नीके पास जा (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते हरी योज नु) तू अपने घोडोंको शीघ्र जोड ॥ ५ ॥

[९०८] (वज्रिन्) हे वज्रधारी इन्द्र ! (ते केशिना हरी ब्रह्मणा युनज्मि) तेरे केशवाले घोडे मैं अपने स्तोत्रसे रथमें जोडता हूँ । (उप प्र याहि) तू अपने घर जा, (गभस्त्योः दधिषे) तू हाथोंमें घोडोंकी रस्सियाँ धारण करता है । (रभसा सुतासः) वेगसे बहनेवाले सोम-रसोंने (त्वा उत् अमन्दिषुः) तुझे तृप्त किया है (पूषण्-वान्) घरपर पुष्टिसे युक्त हुआ तू (पत्न्या सं उ अमदः) अपनी पत्नीके साथ सोमसे भली-भाँति तृप्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू अपने उत्तम घोडोंको रथमें जोड और उस रथमें अन्न एवं अन्य धन धान्यको भरकर अपने भक्तोंके पास जा और उन्हें अन्न देकर उनकी प्रशंसा प्राप्त कर ॥ ३ ॥

हे वीर ! हरएक मनुष्य तुझे एवं तेरे घोडोंको धान्य एवं जलसे भरे हुए पात्र अर्पित करता है । जो ऐसा करता है, वही तेरी कृपाका पात्र होकर तेरे साथ तेरे सुखदायी रथ पर बैठता है और गौवें प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने रथके द्वारा यज्ञमें आ, उसका अवलोकन कर, उसके बाद अपने घरमें जाकर अपनी प्रिय पत्नीके पास जाकर उससे मीठी मीठी बातें कर और अपने घरमें आनंदसे रह ॥ ५-६ ॥

[८३]

(ऋषिः– गोतमो राहूगणः। देवता– इन्द्रः। छन्दः– जगती।)

९०९ अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १ ॥
९१० आपो न देवीरुप यन्ति होत्रिय—मवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥
९११ अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥
९१२ आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजन—मश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥

[८३]

अर्थ—[९०९] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (तव ऊतिभिः सुप्र-अवीः मर्त्यः) तेरी सुरक्षाओं द्वारा सुरक्षित हुआ भक्त मनुष्य (अश्वावति गोषु प्रथमः गच्छति) बहुत घोडोंवाले और बहुत गौओंसे युक्त स्थान प्रथम प्राप्त करता है। जिस प्रकार (वि-चेतसः आपः अभितः सिन्धुं यथा) चित्तको प्रसन्न करनेवाले जल सब ओरसे जैसे समुद्रको पहुंचते हैं, (तं इत् भवीयसा वसुना पृणक्षि) वैसे ही तू उसी भक्तको श्रेष्ठ धनसे पूर्ण करता है ॥ १ ॥

[९१०] (देवासः देवीः आपः न होत्रियं उप यन्ति) हे इन्द्र ! दिव्य लोग, दिव्य जलोंके पास जानेके समान यज्ञके समीप जाते हैं। (वि-ततं रजः यथा अवः पश्यन्ति) वे फैले हुए विस्तृत यज्ञस्थानको देखते हैं (देव-युं प्राचैः प्र नयन्ति) देवोंकी भक्ति करनेवालेको वे पूर्वकी ओर ले जाते हैं (वराः इव ब्रह्म-प्रियं जोषयन्ते) और श्रेष्ठोंके समान ज्ञानसे प्रिय उपदेशका सेवन करते हैं ॥ २ ॥

[९११] (या मिथुना यत-स्रुचा सपर्यतः) जो दो जुडे हुए अन्नपात्र तेरी पूजाके लिये रखे हुए हैं (द्वयोः अधि उक्थ्यं वचः अदधाः) हे इन्द्र ! तूने उन दोनोंमें रखे अन्नको स्तुतिके वचनके साथ स्वीकार किया। (असं-यत्तः ते व्रते क्षेति पुष्यति) युद्धके लिये उद्यत न होनेवाला मनुष्य भी तेरे नियममें रहनेसे सुरक्षित रहता और पुष्ट भी होता है। (सुन्वते यजमानाय भद्रा शक्तिः) यज्ञ करनेवालेके लिये तेरी ओरसे मङ्गलकारी शक्ति दी जाती है ॥ ३ ॥

[९१२] (आत् ये इद्ध-अग्नयः अङ्गिराः) हे इन्द्र ! तब जिन अग्नि प्रज्वलित करनेवाले अङ्गिरा लोगोंने (सु-कृत्यया शम्या) अपने उत्तम यज्ञकर्मसे (प्रथमं वयः दधिरे) सबसे प्रथम हवि तुझे दी, (पणेः नरः) उन पणिके नेताओंने (सर्वं अश्वा-वन्तं गो-मन्तं भोजनं पशुं आ सं अविन्दन्त) सारे घोडों और गायोंसे युक्त पशुरूप धन प्राप्त किये ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्रकी सुरक्षासे सुरक्षित हुआ मनुष्य घोडों और गायोंके झुण्ड प्रथम प्राप्त करता है। जिस प्रकार नदियोंका सभी जल समुद्रको ओर बहकर अन्तमें उसीमें जाकर मिल जाता है, उसी तरह सब तरहका धन इन्द्रसे सुरक्षित मनुष्यको मिलता है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार उत्तम शुद्ध जलोंके पास लोग प्रेमसे जाते हैं उसी तरह तेजस्वी और दिव्य लोग यज्ञके पास जाते हैं। वे यज्ञ स्थानको जाते हैं, देवोंकी भक्ति करनेवाले हमेशा श्रेष्ठ और उत्तम होकर प्रथम रहते हैं और वे सदा उपदेश सुनकर उनका आचरण करते हैं ॥ २ ॥

जो सदा अन्नादिसे इस वीर इन्द्रकी सेवा करता है, वह युद्ध करनेके लिए उपयुक्त न होने पर भी अर्थात् निर्बल होने पर भी इन्द्रकी सुरक्षामें सुरक्षित रहकर पुष्ट होता जाता है। इस प्रकार यज्ञके द्वारा उसे मंगलकारी शक्ति मिलती है ॥ ३ ॥

अंगिरा ऋषियोंने अग्नि प्रदीप्त करके उत्तम यज्ञ करते हुए उसमें अन्नकी प्रथम आहुतियां दीं। इसके फलस्वरूप इन्द्रने उन्हें प्रसन्न होकर पणि आदि असुरोंसे उनकी गायें एवं धन छीनकर अंगिराओंको प्रदान किया ॥ ४ ॥

९१३ यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥
९१४ बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥

[८४]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- १-६ अनुष्टुप्; ७-९ उष्णिक्; १०-१२ पंक्तिः; १३-१५ गायत्री; १६-१८ त्रिष्टुप्; (प्रगाथः=) १९ बृहती; २० सतोबृहती ।)

९१५ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥
९१६ इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २ ॥

अर्थ—[९१३] (अथर्वा प्रथमः यज्ञैः पथः तते) अथर्वाने सर्व प्रथम यज्ञोंके द्वारा मार्गको फैलाया। (ततः व्रत-पा वेनः सूर्यः आ अजनि) उसके पश्चात् व्रतके पालनकर्ता प्रिय सूर्यका उदय हुआ। (काव्यः उशनाः सचा गाः आ आजत्) तत्पश्चात् कविके पुत्र उशनाने पणिके यहांसे एक साथ ही गौएँ बाहर हाँकीं (यमस्य जातं अमृतं यजामहे) हम उस शासन करनेके लिये उत्पन्न अमर इन्द्रकी पूजा करते हैं ॥ ५ ॥

[९१४] (यत् सु-अपत्याय बर्हिः वा वृज्यते) जिसके घरमें उत्तम कर्मके लिये कुश काटे जाते हैं, (अर्कः वा दिवि श्लोकं आ-घोषते) सूर्यके उदयके बाद उसके प्रकाशमें श्लोक पढे जाते हैं (यत्र उक्थ्यः कारुः ग्रावा वदति) जहां प्रशंसनीय कुशल कारीगर सोमसे कूटनेके पत्थरके शब्द करता है (इन्द्रः तस्य इत् अभि-पित्वेषु रण्यति) इन्द्र उसके ही अन्नोंमें आनन्द मानता है ॥ ६ ॥

[८४]

[९१५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमः ते असावि) यह सोम तेरे लिये निचोडा गया है। (शविष्ठ धृष्णो) हे बलयुक्त शत्रु-नाशक इन्द्र (आ गहि) तू यहां आ। (इन्द्रियं) तेरे लिये बना हुआ (सूर्यः न रश्मिभिः रजः) यह सूर्य जैसे किरणोंसे आकाशको व्यापता है (त्वा आ पृणक्तु) वैसे तुझे यह सोमरस व्याप ले ॥ १ ॥

[९१६] (ऋषीणां च स्तुतीः) ऋषियोंके स्तोत्र (मानुषाणां च यज्ञं) और मनुष्योंके यज्ञके पास (अप्रति-धृष्टशवसं) अटूट बलवाले (इन्द्रं इत् हरी) इन्द्रहीको घोडे (उप वहतः) ले जाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— अथर्वा ऋषिने यज्ञोंके द्वारा सबसे प्रथम धर्मका यज्ञमार्ग फैलाया। अंगिराने अग्नि प्रदीप्त करके उसमें अन्नकी आहुतियां देकर यज्ञ करनेकी विद्या प्रथम सिद्ध की और अथर्वाने इस यज्ञका चारों ओर खूब प्रचार किया। तदनन्तर कवि पुत्र उशनाने यज्ञमें गौओंके घृत आदिका हवन करना, गोदुग्धका सोममें मिलाना आदि पद्धतियोंका प्रचार किया ॥ ५ ॥

यज्ञ करनेवालेके घरमें दर्भ काटकर उनके आसन बनाकर बिछाये जाते हैं। सूर्योदयके पश्चात् वेदमंत्रोंका घोष किया जाता है। वहां प्रशंसनीय कारीगर कुशलतासे यज्ञकर्म करता है, ऋषि मंत्रोंका गान करते हैं और सोम कूटनेके पत्थरोंका शब्द होता है। ॥ ६ ॥

इस इन्द्रको इसके घोडे यज्ञ स्थान पर ले जाते हैं और वहां यह इन्द्र सोम पीता है। तब जिस प्रकार सूर्यकी किरणें आकाशको व्याप्त करती हैं, उसी प्रकार इसके शरीरके प्रत्येक अवयवमें सोमका उत्साह भर जाता है ॥ १-२ ॥

*

९१७ आ तिष्ठ वृत्रहन् रथ युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३ ॥

९१८ इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥

९१९ इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥

९२० नकिष्ट्वद् रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६ ॥

९२१ य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ७ ॥

अर्थ— [९१७] (वृत्र-हन्) हे वृत्र-घातक इन्द्र ! (रथं आ तिष्ठ) तू रथपर चढकर बैठ (ब्रह्मणा ते हरी युक्ता) स्तोत्रके द्वारा तेरे घोडे रथमें जोड दिये गये हैं। (ग्रावा वग्नुना) ये सोम कूटनेके पत्थर अपनी वाणीसे (ते मनः अर्वाचीनं सु कृणोतु) तेरा मन इस ओर आकर्षित करें ॥ ३ ॥

[९१८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इमं सुतं ज्येष्ठं अमर्त्यं मदं पिब) तू इस निचोडे हुए सर्वोत्तम अमर आनन्द-कारक रसको पी। (ऋतस्य सादने) यज्ञके स्थानमें (शुक्रस्य धाराः) बलवर्धक सोमकी धाराएँ (त्वा अभि अक्षरन्) तेरी ओर बह रही हैं ॥ ४ ॥

[९१९] (नूनं इन्द्राय अर्चत) हे ऋत्विक् लोगो ! निश्चयसे तुम इन्द्रकी पूजा करो (उक्थानि च ब्रवीतन) और उसके लिये स्तोत्र पढो (सुताः इन्दवः अमत्सुः) ये निचोडे हुए सोम-रस इस इन्द्रको तृप्त करें (ज्येष्ठं सहः नमस्यत) तुम इस बडे बलधारी इन्द्रको नमस्कार करो ॥ ५ ॥

[९२०] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत् हरी यच्छसे) जिस कारण तू अपने घोडोंको उत्तमतासे चलाता है (त्वत् रथि-तरः नकिः) इस कारण तुझसे बडा रथी कोई नहीं (मज्मना त्वा अनु नकिः) बलद्वारा तेरी समानता करने-वाला कोई नहीं (सु-अश्वः नकिः आनशे) कोई दूसरा उत्तम घुडसवार भी तुझे नहीं पा सकता ॥ ६ ॥

[९२१] (यः ईशानः अप्रति-स्कुतः इन्द्रः) जिस शासकका शत्रु प्रतिकार कर नहीं सकते (अङ्ग) हे प्रिय ! (एकः इत्) वह इन्द्र शीघ्र अकेलाही (दाशुषे मर्ताय) दानी मनुष्यके लिये (वसु वि-दयते) धन देता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे वृत्रके नाश करनेवाले इन्द्र ! तू रथ पर चढकर बैठ। इस रथमें जुडे हुए घोडे तुझे सोम यज्ञकी तरफ ले चलें और सोम कूटनेके पत्थरकी आवाज तुझे अपनी ओर आकर्षित करे। तब यज्ञमें जाकर तू अपनी तरफ बहकर आनेवाली सोमरसकी धाराओंको पी ॥ ३-४ ॥

हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रकी पूजा करो और उसके लिए स्तोत्र पढो, उस बलशाली इन्द्रको नमस्कार करो। क्योंकि यह इन्द्र बडा महारथी है। इसके बलकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है और न कोई घुडसवार ही है ॥ ५-६ ॥

यह इन्द्र अकेला ही शत्रुओंका मुकाबला करता है, पर सब शत्रु मिलकर भी इस एक इन्द्रकी शक्तिका मुकाबला नहीं कर सकते। ऐसा बलशाली यह इन्द्र शत्रुओंके धनको छीनकर वह धन दानशील लोगोंमें बांट देता है ॥ ७ ॥

९२२ कुदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कुदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८ ॥
९२३ यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥
९२४ स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १० ॥
९२५ ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [९२२] (इन्द्रः) यह इन्द्र (अराधसं मर्तं) अदाता कंजूस मनुष्यको (पदा क्षुम्पं इव) पाँवसे सूखे पत्तोंके समान (कदा स्फुरत्) कब नष्ट कर देगा ? (नः गिरः अङ्ग कदा शुश्रवत्) और हमारी बातोंको शीघ्रातिशीघ्र कब सुनेगा ? ॥ ८ ॥

इन्द्रः अराधसं मर्तं पदा स्फुरत्— इन्द्र दानरहित मनुष्यको पैरसे ठुकरा देता है ।

[९२३] हे इन्द्र ! (यः चित् हि सुत-वान्) जो सोम बनानेवाला (बहुभ्यः त्वा आ आ विवासति) बहुत देवोंमेंसे तेरीही विशेष परिचर्या करता है, (इन्द्रः अङ्ग तत् उग्रं शवः पत्यते) वह तू इन्द्र शीघ्र उसके लिये अपना वह तीक्ष्ण बल देता है ॥ ९ ॥

[९२४] (याः स्व-राज्यं अनु वस्वीः) जो अपने राज्यमें ही बसनेवाली (शोभसे इन्द्रेण स-यावरीः) शोभाके लिये इन्द्रके साथ चलनेवाली (वृष्णा मदन्ति) सुखदायी सोमसे आनन्दित होती हैं (गौर्यः) वे गौर वर्णवाली गायें (इत्था स्वादोः विषू-वतः मध्वः पिबन्ति) इस प्रकार साथ मिलकर मीठे और विशेष रीतिसे निचोडे गए सोमरसका पान करती हैं ॥ १० ॥

[९२५] (अस्य इन्द्रस्य) इस इन्द्रकी (ताः पृशना-युवः प्रियाः पृश्नयः धेनवः) वे स्पर्शकी कामनावाली प्रिय नाना वर्णोंवाली गौएँ (सोमं श्रीणन्ति) इन्द्रके लिये अपने दूधको सोममें मिलाती हैं। (स्व-राज्यं अनु वस्वीः) वे अपने राज्यमें बसानेवाली (सायकं वज्रं हिन्वन्ति) शत्रुपर प्राणान्त करनेवाले वज्रको भेजती हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र दान न देनेवालोंका बड़ा कट्टर शत्रु है, और वह उन्हें बहुत शीघ्र समाप्त कर देता है। तथा जो उदार हैं, उनकी प्रार्थना बडे ध्यानसे सुनता है । इसी प्रकार राजा अपने राष्ट्रमें अदानशीलता और कंजूसीको कभी न पनपने दे । प्रजाओंमें उदार मनोवृत्तिका उदय हो, इस बातका ध्यान राजा हमेशा रखे ॥ ८ ॥

यह इन्द्र देवोंमें सर्वतोपरि है, इसलिए यज्ञ करनेवाले देवोंके मध्यमें सदा इसीकी पूजा करते हैं । पूजित होकर यह इन्द्र भी यज्ञ करनेवालोंको सदा बलसे युक्त करता है ॥ ९ ॥

इन्द्रके राज्यमें सोमादिक वनस्पतियोंकी अत्यधिक विपुलता है । इसलिए इन वनस्पतियोंको खाकर गायें हृष्ट पुष्ट होती हैं । इन्द्र इन गायोंसे अत्यधिक सुशोभित होता है । इसी प्रकार राष्ट्रमें गायोंके लिए वनस्पतियोंकी कमी न रहे । राष्ट्रकी गायें हृष्ट पुष्ट हों । राजा इन हृष्ट पुष्ट गायोंके बीचमें अत्यधिक सुशोभित हो अर्थात् राष्ट्रमें सर्वत्र हृष्ट पुष्ट गायोंका संचार हो ॥ १० ॥

गायें इन्द्रका प्रेमपूर्ण स्पर्श पाकर बहुत पुलकित हो जाती हैं और उसे प्रेमसे अपना दूध देती हैं । इस प्रकार वे गायें राष्ट्रके शत्रुओंसे मुकाबला करनेके लिए और उन पर घातक वज्रको चलानेके लिए इन्द्रको तैय्यार करती हैं । अपने स्वामीका प्रेमपूर्ण स्पर्श पाकर गाय प्रसन्न मनसे ज्यादा दूध देती है । प्रसन्न मनसे दिए गए दूधको पीनेवाला अवश्य बलवान् होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ११ ॥

९२६ ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
९२७ इन्द्रो दधीचो अस्थभि-र्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ १३ ॥
९२८ इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥ १४ ॥
९२९ अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ १५ ॥
९३० को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ १६ ॥

अर्थ— [९२६] (ताः स्व-राज्यं अनु वस्वीः प्र-चेतसः) वे अपने राज्यको बसानेवाली और बुद्धिको बढानेवाली गौएँ (पूर्वचित्तये अस्य सहः नमसा सपर्यन्ति) सबसे प्रथम ज्ञानपूर्वक इस इन्द्रके बलकी अपने दूधरूपी अन्नसे सेवा करती हैं (अस्य पुरूणि व्रतानि सश्चिरे) उन्होंने इस इन्द्रके बहुत पराक्रमोंसे लाभ उठाया है ॥ १२ ॥

[९२७] (अप्रति-स्कुतः इन्द्रः) जिसके सामने शत्रु नहीं ठहर सकता, उस इन्द्रने (दधीचः अस्थभिः नव नवतीः वृत्राणि जघान) दध्यङ्की अस्थियोंके वज्रसे निन्यानवेको मार दिया ॥ १३ ॥

[९२८] (पर्वतेषु अप-श्रितं) इन्द्रने पर्वतोंमें पडे हुए (यत् अश्वस्य शिरः इच्छन्) घोडेके शिरको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेके पश्चात् (तत् शर्यणावति विदत्) उस शिरको शर्यणावत् तालाबमें है ऐसा जान लिया ॥ १४ ॥

[९२९] (अत्र अह गोः चन्द्रमसः गृहे) इसी गतिशील चन्द्रमाके घरमें (इत्था त्वष्टुः अपीच्यं नाम अमन्वत) इस प्रकार सबके निर्माताके गुप्त प्रकाशको जाना ॥ १५ ॥

[९३०] (अद्य ऋतस्य धुरि) आज सत्यकी धुरामें (शिमी-वतः भामिनः दुः-हृणायून् आसन्-इषून् हृत्सु-असः मयः-भून् गाः कः युङ्क्ते) कार्यतत्पर, तेजस्वी, अत्यन्त क्रोधी, बाणोंको धारण करनेवाले और शत्रुके हृदयमें उन्हें छोडनेवाले सुखदायी गतिमान् वीरोंको कौन जोडता है ? (यः एषां भृत्यां ऋणधत्) जो इनके भरण-पोषणको करता है, (सः जीवात्) वह सदा जीता रहे ॥ १६ ॥

१ यः एषां भृत्यां ऋणधत्, सः जीवात्— जो इन देवोंकी उत्तम रीतिसे सेवा करता है, वही जीवित रहता है ।

भावार्थ— गायें राज्यको बसानेवाली होती हैं । गायोंके दूध द्वारा राष्ट्रकी प्रजायें बलवान् होती हैं और वे स्वराज्य या स्वातंत्र्यका संरक्षण करती हैं। अतः स्वराज्यके संरक्षणका मूल कारण गायें हैं। इनका दूध बुद्धिको बढानेवाला है, गौ दूध पीनेसे बुद्धि तीक्ष्ण होती है । इस प्रकार गायें प्रेमसे अपना दूध देकर इन्द्रको बलशाली बनाती हैं और इन्द्र भी अपने पराक्रमसे इन गायोंकी रक्षा करता है ॥ १२ ॥

इस इन्द्रने मनुष्योंको धारण करनेवाली शक्तिसे असंख्य शत्रुओंको मारा, और अनेक पर्वोंके मध्यमें रहनेवाली शीघ्रगामी बुद्धिको प्राप्त किया । तब बाहुशक्ति और बौद्धिक शक्तिसे युक्त होकर वह इन्द्र इतना बलशाली हो गया, कि उसका प्रतिकार करनेमें कोई समर्थ नहीं हुआ। इसी तरह बुद्धिबल और बाहुबलमें प्रवीण राजा अत्यधिक शक्तिशाली हो जाता है ॥ १३-१४ ॥

सदा गति करनेवाले चन्द्रमामें रहनेवाला प्रकाश बडा आनंददायी होता है । इसी प्रकार जो मनुष्य हमेशा प्रगति करता रहता है, वह तेजस्वी और प्रकाशमान् होता है ॥ १५ ॥

सदा सत्यमार्गपर चलनेवाले, कार्यमें तत्पर, तेजस्वी, अत्यन्त क्रोधी, तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले पर भक्तोंको सुख देनेवाले प्रगतिशील वीरोंको इन्द्रके सिवाय और कोई दूसरा अपने पास नहीं रख सकता । इसलिए जो इन्द्रकी सेवा करता है, वही जीवित रहता है । इन्द्रसे शत्रुता करनेवाला कभी जीवित नहीं रह सकता ॥ १६ ॥

९३१ क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कस्तोकाय क इभायोत राये ऽधि ब्रवत् तन्वे३ को जनाय ॥ १७ ॥
९३२ को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८ ॥
९३३ त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १९ ॥
९३४ मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसो ऽस्मान् कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २० ॥

अर्थ— [९३१] (कः ईषते तुज्यते) कौन भागता है? कौन मारा जाता है? (कः बिभाय) कौन भय खाता है? (अन्ति सन्तं इन्द्रं कः कः मंसते) पासमें ठहरे हुए इन्द्रको कौन जानता है? (कः तोकाय) कौन पुत्रके लिये, (कः इभाय उत राये) कौन हाथी और ऐश्वर्यके लिये, (तन्वे, कः जनाय अधि ब्रवत्) कौन शरीर-सुखके लिये और कौन मनुष्योंके सुखके लिये वक्तृत्व करता है? ॥ १७ ॥

[९३२] (कः हविषा घृतेन अग्निं ईट्टे) कौन हवि और घीसे अग्निकी पूजा करता है? (ध्रुवेभिः ऋतुभिः स्रुचा यजाते) सदा ऋतु और स्रुचासे कौन यज्ञ करता है? (देवाः कस्मै होम आशु आ वहान्) देव किसके लिये मांगा हुआ धन शीघ्र ला देते हैं? (कः वीति-होत्रः सु-देवः मंसते) कौन दाता तेजस्वी यजमान इन्द्रको जानता है? ॥ १८ ॥

[९३३] (अङ्ग शविष्ठ) हे प्रिय और बहुत बलवाले इन्द्र! (त्वं देवः मर्त्यं प्र शंसिषः) तू तेजस्वी है, अतः मनुष्यकी बात सुन (मघ-वन् इन्द्र) हे धनवाले इन्द्र! (त्वत् अन्यः मर्डिता न अस्ति) तुझसे भिन्न हमारा सुख-दाता दूसरा कोई नहीं है, (ते वचः ब्रवीमि) इसलिये मैं तेरी स्तुति करता हूं ॥ १९ ॥

१ त्वत् अन्यः मर्डिता न अस्ति— तेरे सिवाय कोई दूसरा हमें सुख देनेवाला नहीं है।

[९३४] (वसो) हे सबके निवासक इन्द्र! (ते राधांसि) तेरे धन (ते ऊतयः) और तेरे रक्षासाधन (अस्मान् कदा चन मा मा दभन्) हमें कभी न छोडें (मानुष) हे मनुष्योंके हित करनेवाले इन्द्र! (विश्वा च वसूनि चर्षणिभ्यः नः आ उप-मिमीहि) तू सारे धन दुष्ट लोगोंसे छीनकर हमारे समीप कर ॥ २० ॥

भावार्थ— इन्द्र जब युद्धमें अपनी कुशलता दिखाता है और अपने शस्त्रोंको चलाता है, तब कौन भाग रहा है, कौन कट रहा है, कौन डर रहा है, कुछ भी नहीं जान पडता है। उस समय तो केवल इन्द्र ही चारों ओर दिखाई पडता है। और उस समय सब लोग हाथी, ऐश्वर्य और शरीर सुखकी कामनाको छोडकर इन्द्रकी प्रसन्नताकी ही कामना करते हैं। इतना शक्तिशाली इन्द्र है ॥ १७ ॥

लोग हवि और घीसे इसी अग्रणी इन्द्रकी पूजा करते हैं। ऋतु और स्रुचासे भी इसी इन्द्रको हवि देते हैं। इस प्रकार जो यज्ञादि करते हैं, उन्हींको देव धन देते हैं और वही तेजस्वी इन्द्रको जानता है ॥ १८ ॥

हे सबको प्रिय लगनेवाले, शक्तिशाली ऐश्वर्यवान् इन्द्र! तू तेजस्वी है अतः हमारी प्रार्थना सुन। और हमें हर तरहका सुख दे। क्योंकि तेरे सिवाय और कोई सुख देनेवाला नहीं है ॥ १९ ॥

हे इन्द्र! तेरी रक्षामें हम सदा रहें, क्योंकि तू ही श्रेष्ठ मनुष्योंका रक्षक है। अतः तू दुष्टोंसे धनको छीनकर हमें दे ॥ २० ॥

[८५]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगती ५, १२ त्रिष्टुप् ।)

९३५ प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥

९३६ त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रिय-मधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥ २ ॥

९३७ गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभि-स्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥

---

[८५]

अर्थ—[९३५] (ये) ये जो (सु-दंससः) अच्छे कार्य करनेवाले, (सप्तयः) प्रगतिशील, (रुद्रस्य सूनवः) महावीरके पुत्र वीर मरुत् (यामन्) बाहर जाते हैं, उस समय (जनयः न) महिलाओंके समान (प्र शुम्भन्ते) अपने आपको सुशोभित करते हैं। (मरुतः हि) मरुतोंने ही (वृधे) सबकी अभिवृद्धिके लिए (रोदसी चक्रिरे) द्युलोक एवं भूलोककी स्थापना की, तथा ये वीर (घृष्वयः वीराः) शत्रुदलको तहसनहस करनेवाले शूर पुरुष हैं और (विदथेषु मदन्ति) यज्ञोंमें या रणांगणोंमें हर्षित हो उठते हैं ॥ १ ॥

[९३६] (रुद्रासः) शत्रुदलको रुलानेवाले वीरोंने (दिवि) आकाशमें (सदः अधि चक्रिरे) अच्छा स्थान या घर बना रखा है। (अर्कं अर्चन्तः) पूजनीय देवकी उपासना करते हुए, (इन्द्रियं जनयन्तः) इंद्रियोंमें विद्यमान् शक्तिको प्रकट करते हुए, (पृश्निमातरः) मातृभूमिके सुपुत्र ये वीर (श्रियः अधि दधिरे) अपनी शोभा एवं चारुता बढाते हैं। (ते उक्षितासः) वे अपने स्थानों पर अभिषिक्त होकर (महिमानं आशत) बडप्पनको पा सके ॥ २ ॥

[९३७] (शुभ्राः) तेजस्वी, (गो-मातरः) भूमिको माता समझनेवाले वीर (यत्) जब (अञ्जिभिः शुभयन्ते) अलंकारोंसे अपनेको सुशोभित करते हैं, तब वे (तनूषु) अपने शरीरोंपर (वि-रुक्मतः दधिरे) विशेष ढंगसे सुहानेवाले आभूषण पहनते हैं, वे (विश्वं अभिमातिनं) सभी शत्रुओंको (अप बाधन्ते) दूर हटा देते हैं, उनकी राहमें रुकावटें खडी कर देते हैं, इसलिए (एषां) इनके (वर्त्मानि) मार्गोंपर (घृतं अनु रीयते) घी जैसे पौष्टिक पदार्थ इन्हें पर्याप्त मात्रामें मिल जाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्रगतिशील तथा शुभ कार्य करनेवाले ये पुरोगामी वीर बाहर निकलते समय महिलाओंकी तरह अपने आपको सँवारते हैं और खूब बन-ठनके प्रयाण करते हैं। सबकी प्रगतिके लिए यथेष्ट स्थान मिले, इसलिए पृथ्वी एवं आकाशका सृजन हुआ है। भू-चर शत्रुओंकी धज्जियाँ उडानेवाले ये वीर युद्धका अवसर उपस्थित होते ही अतीव उल्लसित एवं प्रसन्न हो उठते हैं। लडाईका मौका आनेपर इन वीरोंका दिल हराभरा हो जाता है ॥ १ ॥

सचमुच ये वीर युद्धमें विजयी बनकर स्वर्गमें अपना घर तैयार कर देते हैं। वे परमात्माकी उपासना करते हैं और अपनी शक्तिको बढाते हैं, तथा मातृभूमिके कल्याणके लिए धनवैभवकी वृद्धि करते हैं। वे अपनी जगह रहकर तथा उचित कार्य करके बडप्पन प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

गौ एवं भूमिको माता माननेवाले वीर आभूषणों तथा हथियारोंसे निजी शरीरोंको खूब सजाते हैं और चूँकि वे शत्रु-दलोंका संहार करते हैं, अतएव उन्हें पौष्टिक अन्न पर्याप्त रूपसे मिलता है ॥ ३ ॥

९३८ वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥
९३९ प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धारा॒श्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५ ॥
९४० आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ ६ ॥
९४१ तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७ ॥

अर्थ— [९३८] (ये सु-मखासः) जो तुम अच्छे यज्ञ करनेवाले वीर (ऋष्टिभिः) शस्त्रोंके साथ (वि भ्राजन्ते) विशेष रूपसे चमकते हो, तथा हे (मरुतः) मरुतो ! (यत्) जब (मनो-जुवः) मनकी तरह वेगसे जानेवाले और (वृष-व्रातासः) सामर्थ्यशाली संघ बनानेवाले तुम (रथेषु) अपने रथोंमें (पृषतीः आ अयुग्ध्वं) रंगबिरंगी हिरनियाँ जोडते हो, तब (अ-च्युता चित्) न हिलनेवाले सुदृढ शत्रुओंको भी (ओजसा) अपनी शक्तिसे (प्रच्यावयन्तः) हिला देते हो ॥ ४ ॥

[९३९] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वाजे) अन्नके लिए (अद्रिं रंहयन्तः) मेघोंको प्रेरणा देते हुए, (यत्) जिस समय (रथेषु पृषतीः प्र अयुग्ध्वं) रथोंमें धब्बेवाली हिरनियाँ जोडते हो, (उत) उस समय (अ-रुषस्य धाराः) तनिक मटमैले दिखाई देनेवाले मेघकी जलधाराएँ (वि स्यन्ति) वेगपूर्वक नीचे गिरने लगती हैं और वे मेघ उन (उदभिः) जलप्रवाहोंसे (भूम) भूमिको (चर्म इव) चमडीके जैसे (वि उन्दन्ति) भीगी या गीली कर डालते हैं॥५॥

[९४०] (वः) तुम्हें (रघु-स्यदः सप्तयः) वेगसे दौडनेवाले घोडे इधर (आ वहन्तु) ले आयें, (रघु-पत्वानः) शीघ्र जानेवाले तुम (बाहुभिः) अपनी भुजाओंमें विद्यमान शक्तिको पराक्रमद्वारा प्रकट करते हुए इधर (प्र जिगात) आओ। हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारे लिए (उरु सदः) बडा घर, यज्ञस्थान हम (कृतं) तैयार कर चुके हैं, (बर्हिः आ सीदत) यहाँ दर्भमय आसनपर बैठ जाओ और (मध्वः अन्धसः) मिठास भरे अन्नके सेवनसे (मादयध्वं) सन्तुष्ट एवं हर्षित बनो ॥ ६ ॥

[९४१] (ते) वे वीर (स्व-तवसः) अपने बलसे ही (अवर्धन्त) बढते रहते हैं। वे अपने (महित्वना) बडप्पनके फलस्वरूप (नाकं आ तस्थुः) स्वर्गमें जा उपस्थित हुए। उन्होंने अपने निवासके लिए (उरु सदः चक्रिरे) बडा भारी विस्तृत घर तैयार कर रखा है। (यत् वृषणं) जिस बल देनेवाले तथा (मद-च्युतं) आनन्द बढानेवालेका (विष्णुः आवत् ह) व्यापक परमात्मा स्वयं ही रक्षण करता है, उस (प्रिये बर्हिषि अधि) हमारे प्रिय यज्ञमें (वयः न) पंछियोंकी तरह (सीदन्) पधार कर बैठो ॥ ७ ॥

भावार्थ— श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले, मनके समान वेगवान् तथा बलिष्ठ हो संघमय जीवन बितानेवाले वीर शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज बन रथपर चढ जाते हैं और सुदृढ शत्रुओंको भी जडमूलसे उखाड कर फेंक देते हैं ॥ ४ ॥

मरुत् मेघोंको गतिशील बना देते हैं, इसलिए वर्षाका प्रारम्भ हो जलसमूहसे समूची पृथ्वी आर्द्र हो उठती है ॥ ५ ॥

फुर्तीले घोडे तुम्हें इधर लायँ। तुम जैसे शीघ्रगामी अपने बाहुबलसे तेजस्वी बनकर इधर आओ। क्योंकि तुम्हारे लिए बडा विस्तृत स्थान यहाँ पर तैयार कर रखा है। इधर पधारकर तथा आसनोंपर बैठकर मिठाससे पूर्ण अन्न या सोमरसका सेवन कर हर्षित बनो ॥ ६ ॥

वीर अपनी शक्तिसे बडे होते हैं; अपनी कर्तृत्वशक्तिसे स्वर्गतक चढ जाते हैं और अपने बलसे विशाल जगह पर प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं। ऐसे वीर हमारे यज्ञमें शीघ्र ही पधारें ॥ ७ ॥

९४२ शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८ ॥
९४३ त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवे ऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ९ ॥
९४४ ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद् बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १० ॥

अर्थ— [९४२] (शूराः इव इत्) वीरोंके समान लडनेकी इच्छा करनेवाले (युयुधयः न जग्मयः) योद्धाओं की तरह शत्रु पर चढाई करनेवाले तथा (श्रवस्यवः न) यशकी इच्छा करनेवाले वीरोंके जैसे ये वीर (पृतनासु येतिरे) संग्रामोंमें बडा भारी पुरुषार्थ कर दिखलाते हैं। (राजानः इव) राजाओंके समान (त्वेष-संदृशः) तेजस्वी दिखाई देनेवाले ये (नरः) नेता वीर हैं, इसलिए (मरुद्भ्यः) इन मरुतोंसे (विश्वा भुवना भयन्ते) सारे लोक भयभीत हो उठते हैं ॥ ८ ॥

[९४३] (सु-अपाः) अच्छे कौशल्यपूर्ण कार्य करनेवाले (त्वष्टा) कारीगरने (यत् सु-कृतं) जो अच्छी तरह बनाये हुए, (हिरण्ययं) सुवर्णमय, (सहस्र-भृष्टिं वज्रं) सहस्र धाराओंसे युक्त वज्र इन्द्रको (अवर्तयत्) दिया, उस हथियारको (इन्द्रः) इन्द्रने (नरि) मानवोंमें प्रचलित युद्धोंमें (अपांसि कर्तवे) वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलानेके लिए (धत्ते) धारण किया और (अर्ण-वं वृत्रं अहन्) जलको रोकनेवाले शत्रुको मार डाला तथा (अपां निः औब्जत्) जलको जानेके लिए उन्मुक्त कर दिया ॥ ९ ॥

[९४४] (ते) उन वीरोंने (ओजसा) अपनी शक्तिसे (ऊर्ध्वं अवतं) ऊँची जगह विद्यमान तालाब या झीलके पानीको (नुनुद्रे) प्रेरित किया और कार्यके लिए (दृदृहाणं पर्वतं चित्) राहमें रोडे अटकानेवाले पर्वतको भी (वि विभिदुः) छिन्नविच्छिन्न किया। पश्चात् उन (सु-दानवः मरुतः) अच्छे दानी मरुतोंने (सोमस्य मदे) सोमपानसे उद्भूत आनन्दसे (वाणं धमन्तः) वाण बाजा बजा कर (रण्यानि चक्रिरे) रमणीय गानोंका सृजन किया ॥ १० ॥

भावार्थ— ये वीर सच्चे शूरोंकी भाँति लडते हैं, योद्धाओंके समान शत्रुसेनापर आक्रमण कर बैठते हैं, कीर्ति पानेके लिए लडनेवाले वीर पुरुषोंकी भाँति ये रणभूमिमें भारी पराक्रम करते हैं। जैसे राजालोग तेजस्वी दीख पडते हैं, ठीक वैसे ही ये हैं। इसलिए सभी इनसे अतीव प्रभावित होते हैं ॥ ८ ॥

अत्यन्त निपुण कारीगरने एक वज्र नामक शस्त्र तैयार किया, जिसकी सहस्र धाराएँ या नोक विद्यमान थे और जिस पर शोभाके लिए सुनहली पच्चीकारी की थी। इन्द्रने उस श्रेष्ठ आयुधको पाकर मानवजातिमें बारंबार होनेवाली लडाइयोंमें शूरताकी अभिव्यंजना करनेके लिए उसका प्रयोग किया। जलस्रोत पर प्रभुत्व प्रस्थापित करके ढकनेवाले तथा घेरनेवाले शत्रुका वध करके सबके लिए जलको उन्मुक्त कर दिया ॥ ९ ॥

ऊँचे स्थान पर पाये जानेवाले तालाबका पानी मरुतोंने नहर बनाकर दूसरी ओर पहुँचा दिया और नहरकी खुदाई करते समय राहमें जो पहाड रुकावटके रूपमें पाये गये थे, उन्हें काटकर पानीके बहावके लिए मार्ग बना दिया। इतना कार्य कर चुकने पर सोमरसको पीकर बडे आनन्दसे उन्होंने सामगायन किया ॥ १० ॥

९४५ जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशा- सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥ ११ ॥
९४६ या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ ॥

[८६]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

९४७ मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥
९४८ यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥

अर्थ— [९४५] वे वीर (अवतं) झीलका पानी (तया दिशा) उस दिशामें (जिह्मं) टेढी राहसे (नुनुद्रे) ले गये और (तृष्णजे गोतमाय) प्यासके मारे अकुलाते हुए गोतमके लिए (उत्सं असिञ्चन्) जलकुंडमें उस जलका झरना बढने दिया । इस भाँति वे (चित्र-भानवः) अति तेजस्वी वीर (अवसा ई) संरक्षक शक्तियोंके साथ इसके पास (आ गच्छन्ति) आये और (धामभिः) अपनी शक्तियोंसे (विप्रस्य कामं) उस ज्ञानीकी लालसाको (तर्पयन्त) तृप्त किया ॥ ११ ॥

[९४६] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (शशमानाय) शीघ्र गतिसे जानेवालोंको देनेके लिए (त्रि-धातूनि) तीन प्रकारकी धारक शक्तियोंसे मिलनेवाले (वः या शर्म) तुम्हारे जो सुख (सन्ति) विद्यमान हैं और जिन्हें तुम (दाशुषे अधि यच्छत) दानीको दिया करते हो, (तानि) उन्हें (अस्मभ्यं वि यन्त) हमें दो । हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (नः) हमें (सु-वीरं) अच्छे वीरोंसे युक्त (रयिं) धन (धत्त) दे दो ॥ १२ ॥

[८६]

[९४७] हे (वि-महसः मरुतः) विलक्षण ढंगसे तेजस्वी वीर मरुतो ! (दिवः) अन्तरिक्षमेंसे पधारकर (यस्य हि क्षये) जिसके घरमें तुम (पाथ) सोमरस पीते हो, (सः) वह (सु-गो-पातमः जनः) अत्यन्त ही सुरक्षित मानव होता है ॥ १ ॥

[९४८] हे (यज्ञ- वाहसः मरुतः) यज्ञका गुरुतर भार उठानेवाले मरुतो ! (यज्ञैः वा) यज्ञोंके द्वारा या (विप्रस्य मतीनां वा) विद्वान्की बुद्धिकी सहायतासे तुम हमारी (हवं शृणुत) प्रार्थना सुनो ॥ २ ॥

भावार्थ— इन वीरोंने टेढीमेढी राहसे नहर खुदवाकर झीलका पानी अन्य जगह पहुँचा दिया और ऋषिके आश्रममें पीनेके जलका विपुल संचय कर दिया, जिसके फलस्वरूप गोतमकी पानीकी आवश्यकता पूर्ण हुई । इस भाँति ये तेजःपुञ्ज वीर दलबलसमेत तथा शक्तिसामर्थ्यसे परिपूर्ण हो इधर पधारते हैं और अपने भक्तों तथा अनुयायियोंकी लालसाओंको तृप्त करते हैं ॥ ११ ॥

त्रिविध धारक शक्तियोंसे जो कुछ भी सुख पाये जा सकते हैं, उन्हें वे वीर श्रेष्ठ कार्योंको शीघ्रतासे निभानेवालोंके लिए उपभोगार्थ देते हैं । हमारी लालसा है कि, हमें भी वे सुख मिलें तथा उच्च कोटिके वीरोंसे रक्षित धन हमें प्राप्त हो । अभिप्राय इतना ही है कि, धन तो अवश्यमेव कमाना चाहिए और उसकी समुचित रक्षाके लिए आवश्यक वीरता पानेके लिए भी प्रयत्नशील रहना चाहिए ॥ १२ ॥

तेजस्वी वीर लोग जिस मानवके घरमें सोमको ग्रहण करते हैं, वह अवश्यमेव सुरक्षित रहेगा, ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नहीं ॥ १ ॥

यज्ञोंके अर्थात् कर्मोंके द्वारा तथा ज्ञानी लोगोंकी सुमतियों याने अच्छे संकल्पोंके द्वारा जो प्रार्थना होती है, सो तुम सुनो ॥ २ ॥

*

९४९ उत वा यस्यं वाजिनो ऽनु विप्रमतंक्षत । स गन्ता गोमंति व्रजे ॥ ३ ॥
९५० अस्य वीरस्यं बर्हिषिं सुतः सोमो दिविंष्टिषु । उकथं मदंश्च शस्यते ॥ ४ ॥
९५१ अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित् सस्रुषीरिषः ॥ ५ ॥
९५२ पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥
९५३ सुभगः स प्रंयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ ७ ॥
९५४ शशमानस्यं वा नरः स्वेदंस्य सत्यशवसः । विदा कामंस्य वेनंतः ॥ ८ ॥

अर्थ—[९४९] (उत वा) अथवा (यस्य वाजिनः) जिसके बलवान् वीर (विप्रं अनु अतक्षत) ज्ञानीके अनुकूल हों, उसे श्रेष्ठ बना देते हैं, (सः) वह (गो-मति व्रजे) अनेक गौओंसे भरे प्रदेशमें (गन्ता) चला जाता है, अर्थात् वह अनगिनती गौएँ पाता है ॥ ३ ॥

[९५०] (दिविष्टिषु) इष्टिके दिनमें होनेवाले (बर्हिषि) यज्ञमें, (अस्य वीरस्य) इस वीरके लिए, (सोमः सुतः) सोमका रस निचोडा जा चुका है। (उकथं) अब स्तोत्रका गान होता है और सोमरससे उद्भूत (मदः च शस्यते) आनन्दकी प्रशंसा की जाती है ॥ ४ ॥

[९५१] (विश्वाः चर्षणीः) सभी मानवोंको तथा (सूरं चित्) विद्वान्को भी (इषः सश्चुषीः) अन्न मिले, इसलिए (यः अभि-भुवः) जो शत्रुका पराभव करता है, (अस्य) उसका काव्यगायन सभी वीर (आ श्रोषन्तु) सुनें ॥ ५ ॥

[९५२] हे (मरुतः) वीर मरुतो! (चर्षणीनां अवोभिः) कृषकोंकी तथा मानवोंकी समुचित रक्षा करनेकी शक्तियोंसे युक्त (वयं) हम लोग (पूर्वीभिः शरद्भिः) अनेक वर्षोंसे (हि) सचमुच (ददाशिम) दान देते आ रहे हैं ॥ ६ ॥

[९५३] हे (प्र-यज्यवः मरुतः) पूज्य मरुतो! (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-भगः अस्तु) अच्छे भाग्य-वाला रहता है कि, (यस्य प्रयांसि) जिसके अन्नका (पर्षथ) सेवन तुम करते हो ॥ ७ ॥

[९५४] (सत्य-शवसः मरुतः) सत्यसे उत्पन्न बलसे युक्त मरुतो! (शशमानस्य) शीघ्र गतिके कारण (स्वेदस्य) पसीनेसे भीगे हुए, तथा (वेनतः वा) तुम्हारी सेवा करनेवालेकी (कामस्य विद) अभिलाषा पूर्ण करो ॥८॥

भावार्थ— यदि वीर ज्ञानीके अनुकूल बनें, तो उस ज्ञानी पुरुषको बहुतसी गौएँ पानेमें कोई कठिनाई नहीं होती ॥३॥

जिन दिनोंमें यज्ञ प्रचलित रखे जाते हैं, तब सोमरसका सेवन तथा सामगानका श्रवण जारी रहता है ॥ ४ ॥

जो वीर पुरुष समूची मानवजातिको तथा विद्वन्मंडलीको अन्नकी प्राप्ति हो, इस हेतु शत्रुदलका पराभव करनेकी चेष्टा करके सफलता पाता है, उसी वीरके यशका गान लोग करते हैं और उस गुण-गरिमा-गानको सुनकर श्रोताओंमें स्फूर्तिका संचार हो जाता है ॥ ५ ॥

कृषकों तथा सभी मानवजातिकी रक्षा करनेके लिए जो आवश्यक गुण या शक्तियाँ हैं, उनसे युक्त बनकर हम पहलेसे ही दान देते आये हैं। या किसानों तथा अन्य लोगोंकी संरक्षणक्षम शक्तियोंके द्वारा सुरक्षित बन हम प्रथमतः दानी बन चुके हैं ॥ ६ ॥

वीर पुरुष जिसके अन्नका सेवन करते हैं, वह मनुष्य सचमुच भाग्यशाली बनता है ॥ ७ ॥

ये वीर सचाईके भक्त हैं, अतः बलवान् हैं। जो जल्दी चलनेके कारण पसीनेसे तर होते हैं या लगातार काम करनेसे थकेमाँदे होते हैं, उनकी सेवा करनेवालोंकी इच्छाएँ ये वीर पूर्ण कर देते हैं ॥ ८ ॥

९५५ यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥
९५६ गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् । ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥

[८७]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगती ।)

९५७ प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनो ऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभि र्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥ १ ॥
९५८ उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित् पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥

अर्थ—[९५५] हे (सत्य-शवसः) सत्यके बलसे युक्त वीरो ! (यूयं) तुम (तत्) वह अपना बल (आविः कर्त) प्रकट करो । उस अपने (विद्युता महित्वना) तेजस्वी बलसे (रक्षः विध्यत) राक्षसोंको मार डालो ॥ ९ ॥

[९५६] (गुह्यं) गुफामें विद्यमान (तमः) अँधेरा (गूहत) ढक दो, विनष्ट करो । (विश्वं अत्रिणं) सभी पेटू दुरात्माओंको (वि यात) दूर कर दो । (यत् ज्योतिः) जिस तेजको हम (उश्मसि) पानेके लिए लालायित हैं, वह हमें (कर्त) दिला दो ॥ १० ॥

[८७]

[९५७] (प्र-त्वक्षसः) शत्रुदलको क्षीण करनेवाले, (प्र-तवसः) अच्छे बलशाली, (विरप्शिनः) बड़े भारी वक्ता, (अन्-आनताः) किसीके सम्मुख शीश न झुकानेहारे, (अ-विथुराः) न बिछुड़नेवाले अर्थात् एकतापूर्वक जीवन बितानेवाले (ऋजीषिणः) सोमरस पीनेवाले या सीधासादा तथा सरल बर्ताव रखनेवाले, (जुष्ट-तमासः) जनताको अतीव सेव्य प्रतीत होनेवाले तथा (नृ-तमासः) नेताओंमें प्रमुख ये वीर (केचित् उस्राः इव) सूर्यकिरणोंके समान (स्तृभिः) वस्त्र तथा अलंकारोंसे युक्त होकर (वि आनज्रे) प्रकाशमान होते हैं ॥ १ ॥

[९५८] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वयः इव) पक्षीकी तरह (केन चित् पथा) किसी भी मार्गसे आकर (यत्) जब (उपह्वरेषु) हमारे समीप (ययिं) आनेवालोंको तुम (अचिध्वं) इकट्ठे करते हो, तब (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें विद्यमान (कोशाः) भंडार हम पर (उप श्चोतन्तिः) धनकी वर्षा करने लगते हैं और (अर्चते) पूजा करनेवाले उपासकके लिए (मधु-वर्णं) मधुकी भांति स्वच्छ वर्णवाले (घृतं) घी या जलकी तुम (आ उक्षत) वर्षा करते हो ॥ २ ॥

भावार्थ— ये वीर सच्चे बलवान् हैं । इनका वह बल प्रकट हो और उसके फलस्वरूप सदैव कष्ट पहुँचानेवाले दुष्टोंका नाश हो ॥ ९ ॥

तेरा विनष्ट करके तथा कभी तृप्त न होनेवाले स्वार्थी शत्रुओंको हटाकर सभी जगह प्रकाशका विस्तार करना चाहिए ॥ १० ॥

शत्रुओंको हतबल करनेवाले, बलसे पूर्ण, अच्छे वक्ता, सदैव अपना मस्तक ऊँचा करके चलनेहारे, एक ही विचारसे आचरण करनेवाले, सोमका सेवन करनेवाले, सेवनीय और प्रमुख नेता बन जानेकी क्षमता रखनेवाले वीर वस्त्रालंकारोंसे सजाये जाने पर सूर्यकिरणवत् सुहाते हैं ॥ १ ॥

जिस वक्त तुम किसी भी राहसे आकर हमारे निकट आनेवाले लोगोंमें एकता प्रस्थापित करते हो, संगठन करते हो, तब तुम्हारे रथोंमें रखे हुए धनभंडार हमें संपत्तिसे निहाल कर देते हैं, हम पर मानों धनकी सतत वृष्टिसी करते हैं । तुम लोग भी भक्त एवं उपासकको स्वच्छ जल एवं निर्दोष अन्न पर्याप्त मात्रामें देते हो ॥ २ ॥

९५९ प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३ ॥

९६० स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणो३ ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्यो ऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४ ॥

९६१ पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशता ऽऽदिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥

अर्थ— [९५९] (यत् ह) जब सचमुच ये वीर (शुभे) अच्छे कर्म करनेके लिए (युञ्जते) कटिबद्ध हो उठते हैं, तब (एषां अज्मेषु यामेषु) उनके वेगवान् हमलोंमें (भूमिः) पृथ्वी तक (विथुरा इव) अनाथ नारीके समान (प्र रेजते) बहुतही काँपने लगती है। (ते क्रीळयः) वे खिलाडीपनके भावसे प्रेरित, (धुनयः) गतिशील, चपल (भ्राजत्-ऋष्टयः) चमकीले हथियारोंसे युक्त, (धूतयः) शत्रुको विचलित कर देनेवाले वीर (स्वयं) अपना (महित्वं) महत्त्व या बडप्पन (पनयन्त) विख्यात कर डालते हैं ॥ ३ ॥

[९६०] (सः हि गणः) वह वीरोंका संघ सचमुचही (युवा) यौवनपूर्ण, (स्व-सृत्) स्वयंप्रेरक (पृषत्-अश्वः) रथमें धब्बेवाले घोडे जोडनेवाला (तविषीभिः आवृतः) और भाँतिभाँतिके बलोंसे युक्त रहनेके कारण (अया ईशानः) इस संसारका प्रभु एवं स्वामी बननेके लिए उचित एवं सुयोग्य है। (अथ) और वह (सत्यः ऋणयावा) सचाईसे बर्ताव करनेवाला तथा ऋण दूर करनेवाला, (अनेद्यः) अनिंदनीय और (वृषा) बलवान् दीख पडनेवाला (गणः) यह संघ (अस्याः धियः) इस हमारे कर्म तथा ज्ञानकी (प्र अविता असि) रक्षा करनेवाला है ॥ ४ ॥

[९६१] (प्रत्नस्य पितुः जन्मना) पुरातन पितासे जन्म पाये हुए हम (वदामसि) कहते हैं कि, (सोमस्य चक्षसा) सोमके दर्शनसे (जिह्वा प्र जिगाति) जीभ-वाणी प्रगति करती है, अर्थात् वीरोंके काव्यका गायन करती है। (यत्) जब ये वीर (शमि) शत्रुको शान्त करनेवाले युद्धमें (ईं इन्द्रं) उस इन्द्रको (ऋक्वाणः) स्फूर्ति देकर (आशत) सहायता करते हैं, (आत् इत्) तभी वे (यज्ञियानि नामानि) प्रशंसनीय नाम- यश (दधिरे) धारण करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिस समय ये वीर जनताका कल्याण करनेके लिए सुसज्ज हो जाते हैं, उस समय इनके शत्रुओं पर टूट पडनेसे मारे डरके समूची पृथ्वी थर थर काँप उठती है। ऐसे अवसर पर खिलाडी, चपल, तेजस्वी शस्त्रास्त्र धारण करनेवाले तथा शत्रुको विकंपित करनेवाले वीरोंकी महनीयता प्रकट हो जाती है ॥ ३ ॥

यह वीरोंका संघ युवा, स्वयंप्रेरक, बलिष्ठ, सत्यनिष्ठ, उऋण होनेकी चेष्टा करनेवाला, प्रशंसनीय तथा सामर्थ्यवान् है, इस कारणसे इस संसार पर प्रभुत्व प्रस्थापित करनेकी क्षमता पूर्ण रूपेण रखता है। हमारी इच्छा है कि, इस भाँतिका यह समुदाय हमारे कर्मों तथा संकल्पोंमें हमारी रक्षा करनेवाला बने। अगर विश्वमें विजयी बननेकी एवं जगत् पर स्वामित्व प्रस्थापित करनेकी लालसा हो, तो उपर्युक्त गुणोंकी ओर ध्यान देना अतीव आवश्यक है ॥ ४ ॥

श्रेष्ठ परिवारमें उत्पन्न हुए हम इस बातकी घोषणा करना चाहते हैं कि, सोमकी आहुति देते समय मुँहसे अर्थात् जिह्वासे भी देवताओंकी सराहना करनी चाहिए। शत्रुदलको विनष्ट करनेके लिए जो युद्ध छेडने पडते हैं, उनमें इन्द्रको स्फूर्ति प्रदान करते हुए ये वीर सराहनीय कीर्ति पाते हैं। उन नामोंसे उनकी कर्तृत्वशक्ति प्रकट हुआ करती है ॥ ५ ॥

९६२ श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ६ ॥

[८८]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप्; १, ६ प्रस्तारपंक्तिः; ५ विराड्रूपा)

९६३ आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥

९६४ तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ २ ॥

अर्थ— [९६२] (ते) वे वीर मरुत् (कं श्रियसे) सबको सुख मिले इसलिए (भानुभिः रश्मिभिः) तेजस्वी किरणोंसे (सं मिमिक्षिरे) सब मिलकर वर्षा करना चाहते हैं। (ते) वे (ऋक्वभिः) कवियोंके साथ (सु-खादयः) उत्तम अन्नका सेवन करनेहारे या अच्छे आभूषण धारण करनेवाले, (वाशी-मन्तः) कुल्हाडी धारण करनेवाले (इष्मिणः) वेगसे जानेवाले तथा (अ-भीरवः) न डरनेवाले (ते) वे वीर (प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः) प्रिय मरुतोंके स्थानको (विद्रे) पाते हैं ॥ ६ ॥

[८८]

[९६३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (विद्युन्मद्भिः) बिजलीसे युक्त या बिजलीकी भांति अतितेजस्वी, (सु-अर्कैः) अतिशय पूज्य, (ऋष्टि-मद्भिः) हथियारोंसे सजे हुए तथा (अश्व-पर्णैः) घोडोंसे युक्त होनेके कारण वेगसे जानेवाले (रथेभिः) रथोंसे (आ यात) इधर आओ । हे (सु-मायाः) अच्छे कुशल वीरो ! तुम (वर्षिष्ठया इषा) श्रेष्ठ अन्नके साथ (वयः न) पंछियोंके समान वेगपूर्वक (नः आ पतत) हमारे निकट चले आओ ॥ १ ॥

[९६४] (ते) वे वीर (अरुणेभिः) रक्तिम दीख पडनेवाले तथा (पिशङ्गैः) भूरे बदामी वर्णवाले और (रथ-तूर्भिः) त्वरापूर्वक रथ खींचनेवाले (अश्वैः) घोडोंके साथ (शुभे) शुभकार्य करनेके लिए और (वरं कं) उच्च कोटिका कल्याण संपादन करनेके लिए, सुख देनेके लिए (आ यान्ति) आते हैं। वह वीरोंका संघ (रुक्मः न) सुवर्णकी भाँति (चित्रः) प्रेक्षणीय तथा (स्वधिति-वान्) शस्त्रोंसे युक्त है। ये वीर (रथस्य पव्या) वाहनके पहियोंकी लौहपट्टिकाओंसे (भूम) समूची पृथ्वीपर (जंघनन्त) गति करते हैं, गतिशील बनते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— ये वीर जनता सुखी बने इसलिए भूमिमें, पृथ्वी-मंडल पर बडा भारी यत्न करते हैं और यज्ञमें हविष्यान्नका भोजन करनेवाले, सुन्दर वीरोचित आभूषण पहननेवाले, कुठार हाथमें उठाकर शत्रुदल पर टूट पडनेवाले, निर्भयतासे पूर्ण वीर अपने प्रिय देशको पाकर उसकी सेवामें लगे रहते हैं ॥ ६ ॥

अपने शस्त्रास्त्र, रथ रण-चातुरीके द्वारा वीर पुरुष अच्छा अन्न प्राप्त करें और ऐसी आयोजना ढूँढ निकालें कि वह सबको यथावत् मिलें ॥ १ ॥

वीर पुरुष समूची जनताका श्रेष्ठ कल्याण करनेके लिए अपने रथोंको हथियारों तथा अन्य विशेष आयुधोंसे भलीभांति सज्ज करके सभी स्थानमें संचार करें ॥ २ ॥

९६५ श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशी॒र्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजाता॒स्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ ३ ॥

९६६ अहानि गृध्राः पर्या व आगु॒रिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कै॒रूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥ ४ ॥

९६७ एतत् त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥

अर्थ— [९६५] (श्रिये कं) विजयश्री तथा सुख पानेके लिए (वः तनूषु अधि) तुम्हारे शरीरोंपर (वाशीः) आयुध लटकते रहते हैं; (वना न) वनके वृक्षोंके समान अर्थात् वनोंमें पेड जैसे ऊँचे बढते हैं, उसी तरह तुम्हारे उपासक तथा भक्त अपनी (मेधा) बुद्धिको (उर्ध्वा) उच्च कोटिकी (कृणवन्ते) बना देते हैं। हे (सु-जाताः मरुतः !) अच्छे परिवारमें उत्पन्न वीर मरुतो ! (तुवि-द्युम्नासः) अत्यंत दिव्यमनसे युक्त तुम्हारे भक्त (युष्मभ्यं कं) तुम्हें सुख देनेके लिए (अद्रिं) पर्वतसे भी (धनयन्ते) धनका सृजन करते हैं, पर्वतोंपरसे सोमसदृश वनस्पति लाकर तुम्हारे लिए अन्न तैयार करते हैं ॥ ३ ॥

[९६६] हे (गोतमासः) गौतमो ! (गृध्राः वः) जलकी इच्छा करनेवाले तुम्हें अब (अहानि) अच्छे दिन (परि आ आ अगुः) प्राप्त हो चुके हैं। अब तुम (वार्-कार्यां च) जलसे करनेयोग्य (इमां देवीं धियं) इन दिव्य कर्मोंको (अर्कैः) पूज्य मन्त्रोंसे (ब्रह्म) ज्ञानसे पवित्र (कृणवन्त) करो। (पिबध्यै) पानी पानीके लिए मिले, सुगमता हो, इसलिए अब (ऊर्ध्वं) ऊपर रखे हुए (उत्सधिं) कुंडके जलको तुम्हारी ओर (ननुद्रे) नहरद्वारा पहुंचाया गया है ॥ ४ ॥

[९६७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (हिरण्य-चक्रान्) स्वर्णविभूषित पहिये की आकृतिके हथियार धारण करनेवाले (अयो-दंष्ट्रान्) फौलादकी तेज दाढोंसे धाराओंसे युक्त हथियार लेकर (वि-धावतः) भाँतिभाँतिके प्रकारोंसे शत्रुओंपर दौडकर टूट पडनेवाले और (वर-आ-हून) बलिष्ठ शत्रुओंका विनाश करनेवाले (वः) तुम्हें (पश्यन्) देखनेवाले (गोतमः) ऋषि गोतमने (यत् एतत्) जो यह तुम्हारी (योजनं) आयोजना-छन्दोबद्ध स्तुति (सस्वः ह) गुप्तरूपसे वर्णित की है, (त्यत्) वह सचमुच (न अचेति) अवर्णनीय है ॥ ५ ॥

भावार्थ— समरमें विजयी बननेके लिए और जनताका सुख बढानेके लिए भी वीर पुरुष अपने समीप सदैव शस्त्र रखें। अपनी विचारप्रणालीको भी हमेशा परिमार्जित तथा परिष्कृत रखें। मनमें दिव्य विचारोंका संग्रह बनाकर पर्वतीय एवं पार्थिव धनवैभवका उपयोग समूची जनताका सुख बढानेके लिए करें ॥ ३ ॥

निवासस्थलोंमें यथेष्ट जल मिले, तो बहुत सारी सुविधाएँ प्राप्त हुआ करती हैं, इसमें क्या संशय ? इस कारणसे इन वीरोंने गोतमके आश्रमके लिए जलकी सुविधा कर डाली। पश्चात् उस स्थानमें मानवी बुद्धि ज्ञानके कारण पवित्र हो, इस ख्यालसे प्रभावित होकर ब्रह्मयज्ञसदृश कर्मोंकी पूर्ति कराई ॥ ४ ॥

वीरोंको चाहिए कि वे अपने तीक्ष्ण शस्त्र साथ लेकर शत्रुदलपर विभिन्न प्रकारोंसे हमला करें और उन्हें तितरबितर कर डालें। इस तरह शत्रुओंको जडमूलसे विनष्ट करना चाहिए। ऐसे वीरोंका समुचित बखान करनेके लिए कवि वीर गाथाओंका सृजन करें और चतुर्दिक् इन वीर गीतों तथा काव्योंका गायन शुरू हो ॥ ५ ॥

९६८ एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥

[८९]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- विश्वेदेवाः । (१-२, ८-९, देवाः, १० अदितिः ।)
छन्दः- जगती; ६ विराट्-स्थाना; ८-१० त्रिष्टुप् ।)

९६९ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो ऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥
९७० देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥

अर्थ— [९६८] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! तुम्हारे (गभस्त्योः) बाहुओंकी (स्व-धां अनु) धारक शक्तिको शूरताको ध्यानमें रख कर (स्या एषा) वही यह (अनु-भर्त्री) तुम्हारे यशका पोषण करनेवाली (वाघतः वाणी) हम जैसे स्तोताओंकी वाणी (न) अब (वः प्रति स्तोभाति) तुममेंसे प्रत्येकका वर्णन करती है। पहले भी (आसां) इन वाणियोंने (वृथा) किसी विशेष हेतुके सिवा इसी भांति (अस्तोभयत्) सराहना की थी ॥ ६ ॥

[८९]

[९६९] (भद्राः) कल्याणकारक (अदब्धासः) न दबनेवाले, (अपरीतासः) पराभूत न होनेवाले (उद्भिदः क्रतवः विश्वतः नः आ यन्तु) उच्चताको पहुंचानेवाले शुभ कर्म चारों ओरसे हमारे पास आयँ । (अप्रायुवः) प्रगतिको न रोकनेवाले, (दिवेदिवे रक्षितारः देवाः) प्रतिदिन सुरक्षा करनेवाले देव (सदं इत् यथा वृधे असन्) हमारा सदा संवर्धन करनेवाले हों ॥ १ ॥

१ अ-प्रायुवः रक्षितारः देवाः सदं इत् वृधे असन्— प्रगतिको न रोकनेवाले तथा सुरक्षा करनेवाले देव हमारा सदा संवर्धन करें ।

[९७०] (ऋजूयतां देवानां भद्रा सुमतिः) सरल मार्गसे जानेवाले देवोंकी कल्याणकारक सुबुद्धि (देवानां रातिः) तथा देवोंकी उदारता (नः अभि नि वर्तताम्) हमें प्राप्त होती रहे । (वयं देवानां सख्यं उप सेदिम) हम देवोंकी मित्रता प्राप्त करें (देवाः नः आयुः जीवसे प्र तिरन्तु) देव हमें दीर्घ आयु हमारे दीर्घ जीवनके लिये देवें ॥२॥

१ ऋजूयतां सुमतिः भद्रा— सरल और सत्यके मार्ग पर चलनेवालोंकी उत्तम बुद्धि सबका कल्याण करनेवाली होती है ।
२ देवानां रातिः नः— देवोंका दान हमें सदा मिलता रहे ।
३ देवानां सख्यं उपसेदिम— देवोंकी मित्रतामें हम सदा रहें ।
४ जीवसे नः आयुः प्रतिरन्तु— उत्तम जीवन जीनेके लिए देव हमारी आयु दीर्घ करें ।

भावार्थ— वीर पुरुष जब युद्धभूमिमें असीम शूरता प्रकट करते हैं, तब अनेक काव्योंका सृजन बडी आसानीसे हो जाता है और ध्यानमें रखनेयोग्य बात है कि, सभी कवि उन काव्योंकी रचनामें स्वयंस्फूर्तिसे भाग लेते हैं । इसीलिए उन काव्योंके गायन एवं परिशीलनसे जनतामें बडी आसानीसे जोशीले भाव पैदा हो जाते हैं ॥ ६ ॥

कर्म ऐसे हों, जो निस्सन्देह कल्याण करनेवाले हों, उन्नतर अवस्थाको पहुंचानेवाले हों । पर ये कर्म किसीके दबावमें आकर न किए जायें अपितु स्वयंस्फूर्तिसे किए जाएं । इन उत्तम कर्मोंके द्वारा मनुष्य अपनी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त करे । प्रगतिके मार्गमें किसी तरहकी रुकावट उत्पन्न न हो । प्रति समय सुरक्षा रहे । इसके अलावा दिव्य ज्ञानीजन उन्नतिके कार्य में सहायक हों ॥ १ ॥

सत्य और सरल मार्गसे जानेवाले सज्जनोंकी सुबुद्धिकी सहायता मनुष्यको सदा मिलती रहे । सरल स्वभाववाले कभी भी प्रतिकूल न हों । मनुष्य भी ऐसा कर्म करे कि देवगण स्वयं भी उसकी सहायता करनेके लिए उत्सुक रहें । देव मित्र बनें और दीर्घ जीवनके लिए स्वास्थ्यपूर्ण दीर्घायु प्रदान करें ॥ २ ॥

९७१ तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥
९७२ तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुव स्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४ ॥
९७३ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥
९७४ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥
९७५ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७ ॥

अर्थ— [९७१] (तान् पूर्वया निविदा वयं हूमहे) उन देवोंको प्राचीन मंत्रोंसे हम बुलाते हैं। (भगं, मित्र, अदितिं, दक्षं, अस्रिधं, अर्यमणं, वरुणं, सोमं, अश्विना, सुभगा सरस्वती नः मयः करत्) भग, मित्र, अदिति, दक्ष, विश्वासयोग्य मरुतोंके गण, अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनीकुमार, भाग्ययुक्त सरस्वती हमें सुख देवे ॥ ३ ॥

[९७२] (वातः तत् मयोभु भेषजं नः वातु) वायु उस सुखदायी औषधको हमारे पास बहावे। (माता पृथिवी तत्) माता–भूमि उसको (पिता द्यौः तत्) पिता द्युलोक उस औषधको हमें देवे (सोमसुतः मयोभुवः ग्रावाणः तत्) सोमरस निकालनेवाले सुखकारी पत्थर वह औषध हमें देवें, (धिष्ण्या अश्विना) हे बुद्धिमान् अश्विदेवो ! (युवं तत् शृणुतं) तुम वह हमारा भाषण सुनो ॥ ४ ॥

[९७३] (जगतः तस्थुषः पतिं स्थावर और जंगमके अधिपति (धियंजिन्वं तं ईशानं) बुद्धिको प्रेरणा देनेवाले उस ईश्वरको (वयं अवसे हूमहे) हम अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं। (पूषा नः वेदसां वृधे रक्षिता यथा असत्) इससे वह पोषणकर्ता देव हमारे ऐश्वर्यकी समृद्धि करनेवाला और सुरक्षा करनेवाला हो (अदब्धः स्वस्तये पायुः) वह अपराजित देव हमारा कल्याण करे और संरक्षक होवे ॥ ५ ॥

[९७४] (वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति) बहुत यशस्वी इन्द्र हमारा कल्याण करे (विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति) सर्वज्ञ पूषा हमारा कल्याण करे अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः नः स्वस्ति) जिसका रथचक्र अप्रतिहत चलता है, वह तार्क्ष्य हमारा कल्याण करे, (बृहस्पतिः नः स्वस्ति दधातु) बृहस्पति हमारा कल्याण करे ॥ ६ ॥

[९७५] (पृषदश्वा) धब्बोंवाले घोडोंसे युक्त, (पृश्निमातरः) भूमिको माता माननेवाले, (शुभंयावानः) शुभ कर्म करनेके लिये जानेवाले (विदथेषु जग्मयः) युद्धोंमें पहुंचनेवाले (अग्निजिह्वा) अग्निके समान तेजस्वी जिह्वा (भाषण करने) वाले, (मनवः सूरचक्षसः मरुतः विश्वे देवाः) मननशील, सूर्यके समान तेजस्वी मरुत्‌रूपी सब देव (नः इह अवसा आ गमन्) हमारे यहां अपनी सुरक्षाकी शक्तिके साथ आवें ॥ ७ ॥

भावार्थ— प्राचीन कालसे चले आनेवाले वेदमंत्रोंकी पद्धतिके अनुसार मनुष्य देवोंकी सहायता मांगे और देव भी प्रसन्न होकर मनुष्योंकी सहायता करें। वायु औषधियोंका गुण अपने साथ लावे, पृथ्वी अन्न देवे, द्युलोकसे सूर्य प्रकाश मिले, सोमसे रस सिद्ध होकर हमें पीनेके लिए मिले। अश्विदेव चिकित्सा द्वारा हमारे रोग दूर करें। इसी प्रकार भग, अदिति, मित्र, अर्यमा, मरुत्, वरुण आदि देवगण भी हमारी सहायता करें ॥ ३-४ ॥

स्थावर जंगम जगत्‌का वही एक ईश्वर है। वही सबका पालन पोषण करता है। हम उसीकी उपासना करें। वह हमारी रक्षा करे, हमारा पोषण करे, कल्याण करे। वह बुद्धिको तृप्त करनेवाला है। जो उसकी उपासना करता है, उसकी बुद्धि सदा उत्तम मार्ग पर चलती है ॥ ५ ॥

अत्यन्त यशस्वी इन्द्र, समस्त विश्वको जाननेवाला पूषा, अप्रतिहत गतिसे युक्त रथवाला तार्क्ष्य, बृहस्पति तथा मातृ-भूमिकी सतत सेवा करनेवाले, शुभकर्म करनेवाले, अग्निके समान तेजस्वी, मननशील मरुद्गण भी हमारी रक्षा करें ॥ ६-७ ॥

९७६ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-र्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥
९७७ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥
९७८ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्ष-मदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १० ॥

[९०]

(ऋषिः- गोतमा राहूगणः । देवता- विश्वेदेवाः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

९७९ ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १ ॥

अर्थ— [९७६] (देवाः) हे देवो ! (कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम) कानोंसे हम कल्याणकारक भाषण सुनें ! (यजत्राः) हे यज्ञके योग्य देवो ! (अक्षभिः भद्रं पश्येम) आंखोंसे हम कल्याणकारक वस्तु देखें । (स्थिरः अङ्गैः तनूभिः तुष्टुवांसः) स्थिर सुदृढ अवयवोंसे युक्त शरीरोंसे युक्त हम तुम्हारी स्तुति करते हुए, (यत् आयुः देवहितं वि अशेम) जितनी हमारी आयु है, वहांतक हम देवोंका हित ही करें ॥ ८ ॥

[९७७] (देवाः) हे देवो ! (शरदः शतं अन्ति इत् नु सौ वर्षतक ही हमारे आयुष्यकी मर्यादा है (नः तनूनां जरसं यत्र चक्र) उसमें भी हमारे शरीरोंका बुढापा तुमने किया है, (यत्र पुत्रासः पितरः भवन्ति) तथा आज जो पुत्र हैं वेही आगे पिता होनेवाले हैं, (नः आयुः गन्तोः मध्या मा रीरिषत) इसलिये हमारी आयु बीचमें ही न टूट जाय ऐसा करो ॥ ९ ॥

[९७८] (अदितिः द्यौः) अदिति ही द्युलोक है, (अदितिः अन्तरिक्षं, अदितिः माता, सः पिता, सः पुत्रः, अदितिः विश्वे देवाः, अदितिः पञ्चजनाः, अदितिः जातं जनित्वं) अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सब देव, पञ्चजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद), जो बन चुका है और जो बननेवाला है, वह सब अदिति ही है ॥ १० ॥

[९०]

[९७९] (विद्वान् मित्रः वरुणः च) ज्ञानी मित्र और वरुण (नः ऋजुनीती नयतु) हमें सरल नीतिके मार्गसे ले जावें (देवैः सजोषाः अर्यमा च) देवोंके साथ उत्साही अर्यमा भी हमें वैसे ही सरल मार्गसे ले जावे ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य अपने कानोंसे अच्छे विचार सुने, आंखोंसे अच्छे दृश्य ही देखे, अवयव और शरीर सुदृढ रखे और उनके द्वारा अपनी सम्पूर्ण आयु तक देवों और विद्वानोंके लिए हितकारी कार्य ही करे । वह कभी कुकर्म न करे ॥ ८ ॥

मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी वेदोंमें प्रतिपादित है पर इसमें बालपन और कुमारपनके १६ वर्ष सम्मिलित नहीं हैं । ये १०० वर्ष पुरुषार्थ करनेके हैं । हम अनेक प्रशस्ततम कर्म करते हुए सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करें । इन वर्षोंमें हमारे शरीरका बुढापा भी शामिल है । इसमें हमारे पुत्र भी पिता बनते हैं अर्थात् पौत्र, प्रपौत्र होने तक हम स्वस्थ एवं जीवित रहें । बीचमें ही हमारी आयु समाप्त न हो ॥ ९ ॥

द्यु, अन्तरिक्ष, माता-पिता, सूर्यचन्द्रादि, देव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद आदि, जो भूतकालमें हो चुका, जो हो रहा है और जो होगा वह सब अदिति अर्थात् एक अखण्डित सत्य है । यह एक तत्त्वदर्शन द्वारा सर्वत्र समभाव देखनेसे शान्ति मिलती है और परम कल्याण होता है ॥ १० ॥

मित्र, वरुण, अर्यमा आदि देव हमें सरल नीतिके मार्ग पर ले चलें । टेढे मार्गसे हमें कभी न ले जावें ॥ १ ॥

*

९८० ते हि वस्वो वसवाना—स्ते अप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥ २ ॥
९८१ ते अस्मभ्यं शर्म यंस—न्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ॥ ३ ॥
९८२ वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ॥ ४ ॥
९८३ उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः । कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥ ५ ॥
९८४ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ६ ॥
९८५ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ ७ ॥
९८६ मधुमान्नो वनस्पति—र्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ८ ॥

अर्थ—[९८०] (ते हि वस्वः वसवानाः) वे धनके स्वामी, (ते अप्रमूराः) वे विशेष ज्ञानी, (महोभिः विश्वाहा व्रता रक्षन्ते) अपने सामर्थ्योंसे सर्वदा अपने नियमोंकी सुरक्षा करते हैं ॥ २ ॥

[९८१] (द्विषः अपबाधमानाः अमृताः ते) दुष्टोंका नाश करनेवाले वे अमर देव (अस्मभ्यं मर्त्येभ्यः) हम मानवोंके लिये (शर्म यंसन्) शान्तिसुख देते हैं ॥ ३ ॥

[९८२] (वन्द्यासः इन्द्रः मरुतः पूषा भगः) वन्दनके योग्य इन्द्र, मरुत, पूषा, भग (सुविताय नः पथः वि चियन्तु) कल्याण करनेके हेतु हमारे लिये मार्ग निश्चित करें ॥ ४ ॥

[९८३] (पूषन्) हे पूषा ! (विष्णो) हे विष्णो ! (एवयावः) हे गतिमान् मरुतो ! (नः धियः गोअग्राः कर्त) तुम हमारी बुद्धियोंको मुख्यतः गौओंका विचार करनेवाली बनाओ । (उत नः स्वस्तिमतः) और हमें कल्याणसे युक्त करो ॥ ५ ॥

[९८४] (ऋतायते वाताः मधु क्षरन्ति) सरल आचरण करनेवालेके लिये वायु माधुर्यको बहा कर लावें, (सिन्धवः मधु) नदियां मीठा रस बहाकर लावें, (ओषधीः नः माध्वीः सन्तु) औषधियां हमारे लिये मीठी हों ॥ ६ ॥

[९८५] (नक्तं नः मधु) रात्रि मधुरता देवे, (उत उषसः) उषाएं मधुरता लावें, (पार्थिवं रजः मधुमत्) पृथ्वी और अन्तरिक्ष मधुरता लावे, (पिता द्यौः मधु अस्तु) पिता द्युलोक मधुर होवे ॥ ७ ॥

[९८६] (वनस्पतिः नः मधुमान्) वनस्पतियां हमारे लिये मधुर हों, (सूर्यः मधुमान् अस्तु) सूर्य मधुरता देवे (गावः नः माध्वीः भवन्तु) गौवें हमारे लिये मधुर हों ॥ ८ ॥

भावार्थ— देव अपनी शक्तियोंसे व्रतोंको सुरक्षित रखते हैं । कभी भी नियमोंको नहीं तोडते, इसलिए नियमोंकी रक्षा करनेके कारण ही वे शक्तिशाली हैं । जो सुनीतिके नियमोंका पालन करेंगे, उनकी भी शक्ति बढेगी और वे श्रेष्ठ बनेंगे ॥ २ ॥

दुष्ट शत्रुओंको दूर करके राज्य व्यवस्थाको ठीक रखना चाहिए । ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि कोई भी दुष्ट कुकर्मोंको न कर सके । स्वयं अमर बनकर दूसरोंको भी अमर बनानेका मार्ग बताना चाहिए । स्वयं ज्ञानी बनकर दूसरोंको भी ज्ञानी बनाना चाहिए । शक्तिमान् बनकर निर्बलोंकी सुरक्षा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

वन्दनके योग्य देव हमारी सुविधाका मार्ग हमें बतावें । हम देवोंके द्वारा बनाये गए मार्गसे चलकर उन्नत हों ॥ ४ ॥

तुम्हारी बुद्धिमें गौओंका अग्रस्थान प्राप्त हो । मानवी जीवनमें गौओंका स्थान मुख्य हो । गौको मानवी जीवनमें अग्रस्थान देनेसे मानवोंका कल्याण होगा ॥ ५ ॥

हमारे लिए हवायें मधुरता पूर्ण रस बहाकर लावें, नदियोंका पानी हमारे लिए मीठा तथा सारी वनस्पतियां भी हमारे लिए मधुरता प्रदान करें ॥ ६ ॥

दिन, रात्री, उषा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, वनस्पति, सूर्य, गायें ये सभी हमें मधुरता प्रदान करें ॥ ७–८ ॥

९८७ शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं नो॑ भवत्वर्य॒मा । ॥ ९ ॥
शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒ः शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः

[९१]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः। देवता- सोमः। छन्दः- त्रिष्टुप्; ५-१६ गायत्री; १७ उष्णिक्।)

९८८ त्वं सो॑म॒ प्र चि॑कितो म॒नीषा त्वं रजि॑ष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म् । ॥ १ ॥
तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ न इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीरा॑ः

९८९ त्वं सो॑म॒ क्रतु॑भिः सु॒क्रतु॑र्भू॒स्त्वं दक्षैः॑ सु॒दक्षो॑ वि॒श्ववे॑दाः । ॥ २ ॥
त्वं वृषा॑ वृष॒त्वेभि॑र्महि॒त्वा द्यु॒म्नेभि॑र्द्यु॒म्न्य॑भवो नृ॒चक्षा॑ः

९९० राज्ञो॒ नु ते॒ वरु॑णस्य व्र॒तानि॑ बृ॒हद् ग॑भी॒रं तव॑ सोम॒ धाम॑ । ॥ ३ ॥
शुचि॒ष्ट्वम॑सि प्रि॒यो न मि॒त्रो द॒क्षाय्यो॑ अर्य॒मेवा॑सि सोम

अर्थ— [९८७] (मित्रः नः शं) मित्र हमारे लिये शान्ति देवे (वरुणः शं, अर्यमा नः शं भवतु) वरुण और अर्यमा हमें शान्ति देनेवाले हों (बृहस्पतिः इन्द्रः नः शं) बृहस्पति और इन्द्र हमें शान्ति देवें, (उरुक्रमः विष्णुः नः शं) विशेष प्रगति करनेवाला विष्णु हमें शान्ति देवे ॥ ९ ॥

[९१]

[९८८] (सोम) हे सोम! (त्वं मनीषा प्र चिकितः) तू बुद्धिमान् और विशेष ज्ञानीके रूपमें प्रसिद्ध है (त्वं रजिष्ठं पंथां अनुनेषि) तू सबको भूलोकपर सरल मार्गसे ले जाता है। (इन्दो) हे सोम! (तव प्रणीती नः धीराः पितरः देवेषु रत्नं अभजन्त) तेरे मार्गदर्शनसे हमारे बुद्धिमान् पितरोंको देवोंमें भी रमणीय भोग प्राप्त हुए थे ॥ १ ॥

[९८९] (सोम) हे सोम! (त्वं क्रतुभिः सुक्रतुः भूः) तू अनेक कर्म करनेसे उत्तम कर्मकर्ताके रूपमें प्रसिद्ध है (विश्ववेदाः त्वं दक्षैः सुदक्षः) तू सब जाननेवाला अनेक चतुरताओंसे युक्त होनेसे बडा चतुर कहा जाता है (त्वं वृषत्वेभिः महित्वा वृषा) तू अनेक शक्तियोंसे युक्त होनेसे बडा बलवान् है (नृचक्षाः द्युम्नेभिः द्युम्नी अभवः) तथा मानवोंका निरीक्षक तू अनेक धन पास रखनेके कारण धनी है ॥ २ ॥

[९९०] (सोम) हे सोम! (राज्ञः वरुणस्य ते नु व्रतानि) राजा वरुणके ये सब नियम हैं (तव धाम बृहत् गभीरं) तेरा स्थान बडा विशाल और भव्य है। (सोम) हे सोम! (त्वं शुचिः असि) तू शुद्ध है (प्रियः न मित्रः अर्यमा इव दक्षाय्यः असि) तू हमारा प्रिय मित्र और अर्यमाके समान चतुर कुशल है ॥ ३ ॥

भावार्थ— मित्र, वरुण, अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, विष्णु आदि सभी देवगण हमें सब ओरसे कल्याण और सुख प्रदान करें। इसलिए ऋतका मार्ग मनुष्य अपने आचरणमें लावें। ऋतका अर्थ "सत्य, सरल, यज्ञ, अटल नियम" आदि हैं। सभी मानवी जीवनको सुखमय बनानेकी शक्ति इस ऋतमें है ॥ ९ ॥

सोमरस मस्तिष्कको उत्तेजित करनेवाला है, इसलिए उस रसको बुद्धिका ज्ञान बढानेवाला कहा है। यज्ञ कर्ममें सहायक होनेसे सन्मार्गसे चलाता है। सोम यागकी पद्धति धैर्यवानों तथा बुद्धिमानोंको रमणीय ऐश्वर्य प्रदान करती है ॥ १ ॥

यह सोम उत्तम रीतिसे यज्ञ सिद्ध करनेवाला, उत्तम चातुर्य बढानेवाला, बल बढानेवाला और तेज बढानेवाला है ॥ २ ॥

यह सोम पवित्र है, और सर्वत्र पवित्रता करनेवाला है। हितकारी और चातुर्यका बल अथवा कर्तृत्वशक्ति बढानेवाला है। यह सोम जहां उत्पन्न होता है, वह स्थान बहुत ऊंचा और बडा भव्य होता है ॥ ३ ॥

९९१ या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ४ ॥
९९२ त्वं सोमासि सत्पति—स्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ५ ॥
९९३ त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥
९९४ त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७ ॥
९९५ त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥ ८ ॥
९९६ सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥ ९ ॥

अर्थ— [९९१] (ते दिवि या धामानि, या पृथिव्यां, या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु) तेरे निवासस्थान जो आकाशमें, पृथ्वीमें, पर्वतमें, ओषधि तथा जो जलोंमें हैं। (सोम राजन्) हे राजा सोम ! (तेभिः विश्वैः सुमनाः अहेळन्) उन सब स्थानोंसे तू आनन्द प्रसन्न तथा विद्वेष न करता हुआ (नः हव्या प्रति गृभाय) हमारे हविष्यान्नोंको स्वीकार कर ॥ ४ ॥

[९९२] (सोम) हे सोम ! (त्वं सत्पतिः असि) तू उत्तम पालक है (उत त्वं राजा) तू राजा है, (वृत्रहा) तू वृत्रका नाश करता है, (त्वं भद्रः क्रतुः असि) तू सबका हित करनेवाला है ॥ ५ ॥

[९९३] (सोम) हे सोम ! (नः जीवातुं) हमारे दीर्घ जीवनके लिये (प्रियस्तोत्रः वनस्पतिः) तू प्रशंसनीय औषधि है, (त्वं च वशः) तेरे अनुकूल होनेपर (न मरामहे) हम नहीं मरेंगे ॥ ६ ॥

[९९४] (सोम) हे सोम ! (त्वं महे ऋतायते) तू सत्यपालक बडे (यूने) तरुण भक्तको (जीवसे दक्षं भगं दधासि) दीर्घजीवनके लिये बल और भाग्य देता है ॥ ७ ॥

[९९५] (सोम राजन् !) हे राजा सोम ! (त्वं अघायतः विश्वतः नः रक्ष) तू हमारा पापियोंसे चारों ओरसे रक्षण कर (त्वावतः सखा न रिष्येत्) तेरे से सुरक्षित हुआ भक्त नाशको नहीं प्राप्त होगा ॥ ८ ॥

[९९६] (सोम) हे सोम ! (ते दाशुषे मयोभुवः याः ऊतयः सन्ति) दाताके लिये जो सुखदायक संरक्षण तेरे पास हैं, (ताभिः नः अविता भव) उनसे हमारी सुरक्षा कर ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह सोम हिमालयके शिखर पर जलस्थानोंमें तथा पृथ्वी पर रहता है। हिमशिखर पर मिलनेवाला उत्तम और अन्यत्र मिलनेवाला मध्यम होता है। इसे जो पीता है, वह बहुत आनंद प्रसन्न होता है ॥ ४ ॥

सोम राजा अर्थात् औषधियोंका राजा है, उसका रस पीकर इन्द्र वृत्रका वध करता है। सोमसे होनेवाला यज्ञ उत्तम यज्ञ है ॥ ५ ॥

यह सोमरस दीर्घ जीवन देनेवाला है। इससे अपमृत्यु दूर किया जा सकता है। अपनी इसी योग्यताके कारण यह सोम बहुत प्रशंसित होता है ॥ ६ ॥

यह सोम सत्य नियमों और संयमादि व्रतोंमें चलनेवाले तरुणको तो दीर्घ जीवन और बल प्रदान करता ही है, पर वृद्धोंको भी दीर्घ जीवन और बल प्रदान करे ॥ ७ ॥

जिसे यह सोमरस मिलता है, वह क्षीण नहीं होता। यज्ञ होनेके कारण पापसे भी मनुष्यको यह बचाता है ॥ ८ ॥

यह सोमरस सुखदायी और संरक्षण करनेवाला तथा रोगादि आपत्तियोंसे बचानेवाला है ॥ ९ ॥

९९७ इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० ॥
९९८ सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ॥ ११ ॥
९९९ गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥ १२ ॥
१००० सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये ॥ १३ ॥
१००१ यः सोम सख्ये तव रारणद् देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः ॥ १४ ॥
१००२ उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः । सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ ॥
१००३ आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ॥ १६ ॥

अर्थ— [९९७] (सोम) हे सोम! (त्वं इमं यज्ञं इदं वचः जुजुषाणः) तू इस यज्ञको और इस स्तोत्रको स्वीकार करके (उप आगहि) हमारे पास आ (नः वृधे भव) और हमारा संवर्धन कर ॥ १० ॥

[९९८] (सोम) हे सोम! (वचोविदः वयं गीर्भिः त्वा वर्धयामः) स्तोत्र जाननेवाले हम अपनी वाणियोंसे तुझे बढाते हैं (नः सुमृळीकः आ विश) इसलिये हमारे पास सुखदायी होकर आ ॥ ११ ॥

[९९९] (सोम) हे सोम! (नः गयस्फानः) तू हमारी वृद्धि करनेवाला (अमीवहा) रोग दूर करनेवाला (वसुवित् पुष्टिवर्धनः सुमित्रः भव) धन-दाता, पोषणकर्ता और उत्तम मित्र बन ॥ १२ ॥

[१०००] (सोम) हे सोम! (गावः न यवसेषु आ) गौवें जैसी जौके खेतमें (मर्यः इव स्वे ओक्ये) और मनुष्य जैसा अपने घरमें संतुष्ट होता है, (नः हृदि रारन्धि) उसी तरह हमारे हृदयमें संतोष उत्पन्न कर ॥ १३ ॥

[१००१] (देव सोम) हे सोम देव ! (तव सख्ये यः मर्त्यः रारणत्) तेरी मित्रतामें जो भक्त रमता है, (तं कविः दक्षः सचते) उसीको कवि और कुशल लोग चाहते हैं ॥ १४ ॥

[१००२] (सोम) हे सोम ! (नः अभिशस्तेः उरुष्यः) दुष्ट भाषणसे हमारा बचाव कर, (अंहसः नि पाहि) पापसे हमारी सुरक्षा कर (नः सुशेवः सखा एधि) और हमारा सेवा करनेयोग्य मित्र बन ॥ १५ ॥

[१००३] (सोम) हे सोम (आ प्यायस्व) तू बढ (ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु) तेरा बल चारों ओरसे बढे (वाजस्य संगथे भव) जहां बलोंका संमेलन हो, वहां तू रह ॥ १६ ॥

भावार्थ— हे सोम ! तू यज्ञको और हमारे स्तोत्रको स्वीकार कर और हमें उत्तम रीतिसे बढा ॥ १० ॥

हे सोम ! तू रोग दूर करनेवाला, पुष्टि बढानेवाला, उत्तम मित्रके समान सहायक है । इसीलिए हम तेरी स्तुति करते हैं, तू हमारे पास आ और हमें बढा ॥ ११-१२ ॥

जिस प्रकार गायें जौके खेतमें प्रविष्ट होकर आनंदित होती हैं अथवा जिसप्रकार मनुष्य घरमें प्रविष्ट होकर आनंदित होता है, उसी तरह यह सोमरस मनुष्यके हृदयको आनन्दसे भर देता है ॥ १३ ॥

हे सोम ! हमें तू पापोंसे बचा, हम कभी बुरे शब्द अपने मुंहसे न निकालें, इस प्रकार हमारा मित्र बनकर सब प्रकारसे हमारी रक्षा कर । क्योंकि हम यह जानते हैं कि जो तेरी मित्रतामें रहता है, वही सब लोगोंका प्रिय होता है ॥ १४-१५ ॥

यह रस जल, दूध या दही मिलाकर बढाया जाता है। इस प्रकार यह सोम स्वयं बढकर दूसरोंके बलोंको भी बढाता है ॥ १६ ॥

१००४ आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥

१००५ सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ १८ ॥

१००६ या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥ १९ ॥

१००७ सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २० ॥

अर्थ— [१००४] (मदिन्तम सोम) हे आनन्द देनेवाले सोम (विश्वेभिः अंशुभिः आ प्यायस्व) सब अंशोंसे बढता रह (सुश्रवस्तमः नः वृधे सखा भव) तू अत्यंत कीर्तिमान् हमारी वृद्धि करनेवाला मित्र हो ॥ १७ ॥

[१००५] (सोम) हे सोम (अभिमातिषाहः ते पयांसि सं यन्तु) शत्रुओंको परास्त करनेवाले तेरे पास सब दूध आयें (वाजाः उ सं) सब अन्न तेरे पास आयें (वृष्ण्यानि सं) सब सामर्थ्य तेरे पास पहुंचें (अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व) हे सोम ! सब अमरपनोंका धारण पोषण करता हुआ तू द्युलोकमें उत्तम यश संपादन कर ॥ १८ ॥

[१००६] (सोम) हे सोम (ते या धामानि हविषा यजन्ति) तेरे जिन स्थानोंकी पूजा हवनसे की जाती है, (ता ते विश्वा यज्ञं परिभूः अस्तु) वे तेरे सब धाम यज्ञके चारों ओरही हों (गयस्फानः प्रतरणः सुवीरः) हमारा विस्तार करनेवाला, तारण करनेवाला, उत्तम वीर (अवीरहा दुर्यान् प्र चर) और शत्रुवीरोंका नाश करनेवाला हमारे घरोंके पास आ ॥ १९ ॥

[१००७] (यः ददाशत्) जो दान देता है, (अस्मै सोमः धेनुं ददाति) उसके लिये सोम गाय देता है, (सोमः आशुं अर्वन्तं) उसी तरह सोम वेगवान् घोडा भी देता है, (कर्मण्यं विदथ्यं सादन्यं सभेयं पितृश्रवणं वीरं ददाशत्) तथा कर्मकुशल, युद्धमें प्रवीण, घरकी दक्षता रखनेवाला, सभामें प्रमुख, पिताका यश बढानेवाला वीर पुत्र सोमकी कृपासे मिलता है ॥ २० ॥

भावार्थ— हे सोम ! तू हरतरहसे बढता रह और हमें भी बढाता रह । तू हमारा मित्र होकर हमारी वृद्धि करता हुआ हमारा मित्र बनकर रह ॥ १७ ॥

यह सोम शत्रुका पराभव करनेवाला है । इसके पीने पर शक्ति बढती है और शत्रुका पराभव आसानीसे ही हो जाता है । इसमें दूध मिलाते हैं, उसमें अन्न भी मिलाया जाता है, जिससे यह उत्तम बल बढानेवाला अन्न होता है । अप-मृत्युको दूर करनेके लिए इसमें दूध भी मिलाया जाता है ॥ १८ ॥

यह इस मनुष्यको रोगादिकोंसे पार कराता है, उत्तम वीरता पैदा करता है और शत्रुओंका नाश करता है । जिस जगह सोमका यज्ञ किया जाता है, उस स्थानके चारों ओरका वातावरण स्वच्छ एवं पवित्र हो जाता है और वहां रोगादि उत्पन्न नहीं होते ॥ १९ ॥

यह सोम दानियोंकी हरतरहसे रक्षा करता है, उन्हें वह गायें देता है, घोडे देता है, युद्धमें भी उनकी हरतरहसे रक्षा करता है । और ऐसे उत्तम वीर पुत्र प्रदान करता है कि जो अपने पिताका यश बढाता है ॥ २० ॥

१००८ अषा॑ळ्हं यु॒त्सु पृत॑नासु॒ पप्रिं॑ स्व॒र्षाम॒प्सां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम् ।
भ॒रे॒षु॒जां सु॑क्षि॒तिं सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम ॥ २१ ॥

१००९ त्वमि॒मा ओष॑धीः सोम॒ विश्वा॒स्त्वम॒पो अ॑जनय॒स्त्वं गाः ।
त्वमा त॑तन्थो॒र्व१॒॑न्तरि॑क्षं॒ त्वं ज्योति॑षा॒ वि तमो॑ ववर्थ ॥ २२ ॥

१०१० दे॒वेन॑ नो॒ मन॑सा देव सोम रा॒यो भा॒गं स॑हसावन्न॒भि यु॑ध्य ।
मा त्वा त॑न॒दीशि॑षे वी॒र्य॑स्यो॒भये॑भ्यः॒ प्र चि॑कित्सा॒ गवि॑ष्टौ ॥ २३ ॥

[९२]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- उषाः, १६-१८ अश्विनौ । छन्दः- १-४ जगती; ५-१२ त्रिष्टुप्; १३-१८ उष्णिक् ।)

१०११ ए॒ता उ॒ त्या उ॒षस॑: के॒तुम॑क्रत॒ पूर्वे॒ अर्धे॒ रज॑सो भा॒नुम॑ञ्जते ।
नि॒ष्कृ॒ण्वा॒ना आयु॑धानीव धृ॒ष्णव॒: प्रति॒ गावोऽरु॑षीर्यन्ति मा॒तर॑: ॥ १ ॥

अर्थ— [१००८] (सोम !) हे सोम ! (युत्सु अषाळ्हं,) युद्धोंमें अपराजित, (पृतनासु पप्रिं अप्सां, स्वर्षां) सेनाओंमें बल बढानेवाला, उदकोंकी वृष्टि करनेवाला (वृजनस्य गोपां) संकटके समय सुरक्षा करनेवाला, (भरेषु-जां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं,) ऐश्वर्योंमें प्रकट होनेवाला, उत्तम स्थानमें रहनेवाला, कीर्तिमान् और विजयी (त्वां मदेम) तुझको देखकर हम आनंदित होते हैं ॥ २१ ॥

[१००९] (सोम) हे सोम ! (त्वं इमाः विश्वाः ओषधीः) तूने ये सब औषधियाँ (त्वं अपः) तूने जल और (त्वं गाः अजनयः) तूने गायें उत्पन्न की हैं (उरु अन्तरिक्षं त्वं आ ततन्थ) तूने यह विशाल अन्तरिक्ष फैलाया है (त्वं ज्योतिषा तमः वि ववर्थ) और प्रकाशसे अन्धकारको दूर किया है ॥ २२ ॥

[१०१०] (देव सहसावन् सोम) हे शत्रुका दमन करनेवाले सोम देव ! (देवेन मनसा रायः भागं नः अभि युध्य) दिव्य मनसे धनका भाग हमें युद्ध करके भी दे (त्वा मा आ तनत्) तेरा प्रतिबंध कोई भी नहीं करेगा (उभयेभ्यः वीर्यस्य ईशिषे) दोनों प्रकारके सामर्थ्योंका तूही स्वामी है (गविष्टौ प्र चिकित्स) युद्धमें अपना प्रभाव बता ॥ २३ ॥

[९२]

[१०११] (एताः उ त्याः उषसः) ये वे उषाएं (केतुं अक्रत) प्रकाश प्रकट कर रही हैं। (रजसः पूर्वे अर्धे) अन्तरिक्षके पूर्व दिशाके अर्धभागमें (भानुं अञ्जते) ये प्रकाश प्रकट कर रही हैं। जिसप्रकार (धृष्णवः आयुधानि निष्कृण्वाना इव) प्रतापी वीर अपने शस्त्रोंको चमकदार बनाते हैं, उसी तरह (अरुषीः मातरः गावः प्रति यन्ति) सब विश्वको प्रकाशित करनेवाली लाल गोमाताएं-लाल सूर्यकिरणें प्रतिदिन आती हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— यह सोम युद्धोंमें पराजित न होनेवाला, सेनाओंमें बल बढानेवाला, पानी बरसानेवाला, संकटके समय सुरक्षा करनेवाला, ऐश्वर्योंमें प्रकट होनेवाला और अत्यन्त उत्तम कीर्तिवाला है ॥ २१ ॥

इसी सोमके कारण सब औषधियां एवं लोक रसयुक्त और बलयुक्त होते हैं। इसीने अन्तरिक्षका विस्तार किया और प्रकाश फैलाकर अन्धकारको दूर किया ॥ २२ ॥

हे सोम ! तू प्रसन्न मनवाला होकर हमें धन दे। हम पर कभी भी अप्रसन्न न हो। तू अत्यधिक बलशाली है, इसलिए तेरा कोई प्रतिबंध नहीं कर सकता। शारीरिक और मानसिक दोनों तरहके सामर्थ्योंका तू ही स्वामी है। इसलिए तू बडा प्रभावशाली है ॥ २३ ॥

जिस प्रकार ध्वजायें आकाशमें फहरती हैं, उसी प्रकार उषाकी किरणें आकाशमें फैल रही हैं। इसीके कारण सर्वप्रथम पूर्व दिशामें लाली फैलती है। जिस प्रकार शूरवीर युद्धके समय अपने शस्त्रास्त्र तीक्ष्ण करते हैं, उसी तरह यह उषा सूर्यकी किरणोंको तीक्ष्ण करती है और पूर्व दिशाको तेजस्विनी बनाती है। जिस प्रकार उषःकाल होते ही गायें चरनेके लिए खोल दी जाती हैं, उसी प्रकार उषा आकर सूर्यकी किरणोंको प्रकट करती है ॥ १ ॥

१०१२ उदंपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥

१०१३ अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

१०१४ अधि पेशांसि वपते नृतूरिवा—पोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥ ४ ॥

अर्थ—[१०१२] (अरुणाः भानवः वृथा उदपप्तन्) लाल रंगकी तेजस्वी किरणें सहजहीसे ऊपर आने लगी हैं। (सु-आयुजः अरुषीः गाः अयुक्षत) सहजहीसे इस ज्योतिको ऊपर लानेवाली लाल गौवें अथवा बैल रथमें जोते गये हैं। (उषासः पूर्वथा वयुनानि अक्रन्) ये उषाएँ पहलेके समान लोगोंसे कर्मोंको करवाती हैं और अब (अरुषीः रुशन्तं भानुं अशिश्रयुः) लाल रंगवाली उषाओंने अधिक तेजस्वी प्रकाश धारण किया है ॥ २ ॥

[१०१३] (अपसः नारीः न) कर्ममें कुशल स्त्रियोंके समान ये उषाएँ (समानेन योजनेन) एक ही आयोजनासे (आ परावतः) दूर प्रदेशतकके भागको (विष्टिभिः) किरणोंसे (अर्चन्ति) अलंकृत करती हैं। और (सुकृते सुदानवे) सदाचारी उत्तम दाता (सुन्वते यजमानाय) सोमयाजी यजमानके लिये (विश्वा इत् अह) प्रतिदिन सब प्रकारका (इषं वहन्तीः) अन्न लाती हैं ॥ ३ ॥

१ सुकृते सुदानवे विश्वा अह इषः वहन्तीः— उत्तम कर्म करनेवालेको तथा उत्तम दानीको यह उषा प्रतिदिन भरपूर अन्न देती है।

[१०१४] यह उषा (नृतूः इव) नर्तकीके समान (पेशांसि अधि वपते) विविध रूपोंको धारण करती है। यह उषा (उस्रा इव) गौके समान (बर्जहं वक्षः अप ऊर्णुते) दूधसे भरे अपने वक्षःस्थलको खुला करती है। (विश्वस्मै भुवनाय ज्योतिः कृण्वती) सब जगत्के लिये प्रकाश कर देती है, जिस तरह (गावः व्रजं न) गौवें व्रजको व्यापती हैं उसी तरह यह (उषाः तमः वि आवः) उषा अन्धकारको घेरकर प्रकाशको प्रकट करती है ॥ ४ ॥

भावार्थ— लाल रंगकी किरणें ऊपर आकाशमें प्रकट हो रही हैं, उनके कारण आकाश सुशोभित हुआ हुआ दीख रहा है। उषाके आते ही कृषक बैलोंको जोतने लगते हैं। इस मंत्रमें आया हुआ 'गाः' पद बैलका वाचक है, गायका नहीं। उषाके उदय होते ही लोग अपने कर्म करने लग जाते हैं ॥ २ ॥

उषा कर्म करनेमें कुशल है। इसलिए कर्म करनेमें कुशल स्त्रियोंके समान यह उषा स्वयं भी कर्म करती है और दूसरोंको भी प्रेरित करती है। बडे बडे आयोजन करके लोगोंको सम्मानित करती है, उत्तम कर्म करनेवालेको तथा उत्तम दानी कर्म कर्ताको भरपूर अन्न देती है। दान करनेमें कभी भी कंजूसी नहीं करती। इसी प्रकार स्त्रीमें भी योग्यता हो कि वह स्वयं भी उत्तम उत्तम कर्म करे तथा दूसरोंको भी प्रेरित करे। कर्म करनेवालोंको धन देनेमें कंजूसी न करे ॥ ३ ॥

यह उषा एक नर्तकीके समान बार बार अपने कपडे बदलती है। जैसे एक नर्तकी अपना भेष बदल कर अधिकाधिक सुन्दर दीखती है, उसी तरह यह उषा प्रतिक्षण अपने रंग बदल कर अधिकाधिक सुन्दर प्रतीत होती है। इस प्रकार सुन्दर बनकर वह सब भुवनोंको प्रकाशित करती है और अन्धकारको दूर करती है। इसी तरह स्त्रियां भी सुन्दर बनकर चारों ओर अपना तेज फैलायें। सौभाग्यवती स्त्रियां कभी भी मलिन न रहें ॥ ४ ॥

१०१५ प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ् चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥ ५ ॥
१०१६ अतारिष्म तमसस्पारमस्यो—षा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६ ॥
१०१७ भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्या—नुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ ७ ॥
१०१८ उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८ ॥

अर्थ—[१०१५] (अस्याः रुशत् आर्चिः) इस उषाका तेजस्वी प्रकाश (प्रति अदर्शि) प्रतिदिन पूर्व दिशामें दीखता है। यह प्रकाश (वि तिष्ठते) सर्वत्र व्यापता है और (अभ्वं कृष्णं बाधते) महान् काले अन्धकारको दूर करता है (विदथेषु स्वरुं न पेशः अञ्जन्) यज्ञोंमें जैसे यूपको घीसे लीपकर सुशोभित करते हैं, उसी तरह (दिवः दुहिता) द्युलोककी पुत्री उषा (चित्रं भानुं अश्रेत्) विलक्षण प्रकाशको धारण करती है और अधिक सुंदर बनती है ॥ ५ ॥

[१०१६] (अस्य तमसः पारं अतारिष्म) हम इस अन्धकारके पार हो गये हैं। (उच्छन्ती वयुना कृणोति) प्रकाशनेवाली उषा सबसे कर्मोंको करवाती है । (श्रिये छन्दः न) संपत्तिकी प्राप्तिके लिये धनीके साथ उसका छन्दानुवर्ती पुरुष जैसे हंसता है अथवा जिस तरह (विभाती) प्रकाशनेवाली (सुप्रतीका) सुन्दर स्त्री (सौमनसाय) पतिका मन प्रसन्न करनेके लिये हंसती है, वैसी यह उषा (स्मयते) हंसती है । उसने हम सबको (अजीगः) जगाया ॥६॥

[१०१७] (भास्वती) तेजस्विनी (सूनृतानां नेत्री) सत्य भाषणोंको प्रेरित करनेवाली (दिवः दुहिता) द्युलोककी पुत्री उषा (गोतमेभिः स्तवे) श्रेष्ठ गोतम ऋषियों द्वारा प्रशंसित हुई है। हे (उषः) उषा देवि ! तू (प्रजावतः नृवतः) सन्तानोंसे और वीरोंसे युक्त (अश्वबुध्यान् गो-अग्रान्) घोडों और गौवोंसे युक्त, ऐसे (वाजान् उप मासि) अन्नों, बलों और ऐश्वर्योंको हमें देती है ॥ ७ ॥

[१०१८] हे (उषः) उषा देवि ! (तं यशसं सुवीरं) उस यशस्वी वीरोंके साथ रहनेवाले (दासप्रवर्गं अश्वबुध्यं रयिं) सेवक वर्गसे और घोडोंसे युक्त धनको (अश्यां) हम प्राप्त करें । हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवाली उषा देवी ! (सुदंससा श्रवसा) उत्तम कर्मसे कीर्तिवाली (वाजप्रसूता) तथा अन्नकी वृद्धि करनेवाली होकर (या बृहन्तं विभासि) जिस बडे ऐश्वर्यको प्रकाशित करती है, वह धन भी हमें मिले ॥ ८ ॥

भावार्थ— इस उषाकी तेजस्वी ज्योति दीखने लगी है, उसका प्रकाश चारों ओर फैलने लगा है और काले विशाल अन्धकारको दूर करने लगा है । यह तरुणी उषा अपने घरमें प्रकाश करती है, अन्धकार दूर करती है, अपना रूप सुन्दर बनाकर दिखाती है और सबको ऐश्वर्यकी प्राप्तिका मार्ग दिखाती है । इसी तरह गृहस्वामिनी सर्वप्रथम उठकर घरमें प्रकाश करे, और घरको साफ सुथरा करके दर्शनीय बनाये ॥ ५ ॥

इस उषाकी सहायतासे लोग अन्धकारसे प्रकाशमें आते हैं। इसके आते ही सब उठकर अपने कामोंमें लग जाते हैं, इस प्रकार मानों उषाही लोगोंको कर्म करनेके लिए प्रेरणा देती है । इसी तरह तरुण स्त्री घरके लोगोंको जाग्रत कर उन्हें कर्मोंमें प्रेरित करे । अथवा जिस तरह एक धनीसे ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिए उसके मतके अनुसार लोग कार्य करते हैं, उसी-तरह तेजस्वी तरुण सुन्दर स्त्री अपने पतिके मनको प्रसन्न करनेके लिए उषाके समान सदा खिलती और प्रसन्न रहे ॥ ६ ॥

जिस तरह यह उषा तेजस्विनी और सत्कर्मोंकी प्रेरिका होनेसे ऋषियों द्वारा प्रशंसित होती है, उसी तरह गृहिणी भी अपने शील स्वभावके कारण विद्वानोंसे प्रशंसित होवे । घर सदा हंसतासा नजर आवे । वह हमेशा उत्तम सन्तानों एवं पशुओं से भरपूर हो ॥ ७ ॥

हे उषे ! हमें यशस्वी पुत्रपौत्रोंवाला, सेवकवर्गसे युक्त एवं घोडोंसे युक्त धन प्राप्त हो । हीनता, दीनता और दरिद्रता हमारे पास कभी न फटके । उत्तम कर्म जिससे किए जा सकते हैं, जिससे यश मिलता है, जिससे पर्याप्त अन्न मिल सकता है, ऐसा विशाल धन हमारे लिए प्रकाशित कर ॥ ८ ॥

*

१०१९ विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९ ॥
१०२० पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १० ॥
१०२१ व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥ ११ ॥
१०२२ पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२ ॥

अर्थ— [१०१९] (**देवी**) यह प्रकाशमान उषा (**विश्वानि भुवना अभिचक्ष्य**) सब भुवनोंको देखकर, (**प्रतीची चक्षुः उर्विया विभाति**) पश्चिम दिशामें विशेष प्रकाशसे प्रकाशती है । (**विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती**) सब जीवोंको कार्य करनेके लिये जगाती है । और (**विश्वस्य मनायोः**) सब मननपूर्वक कार्य करनेवाले मानवोंके (**वाचं अविदत्**) वाणीको प्राप्त होती है अर्थात् कवियोंको वर्णनकी स्फूर्ति देती है ॥ ९ ॥

[१०२०] (**पुनः पुनः जायमाना**) पुनः पुनः प्रतिदिन होनेवाली (**पुराणी**) प्राचीन होती हुई भी नवीन जैसी (**समानं वर्णं अभि शुंभमाना**) एक ही रूपको प्राप्त करके अत्यंत शोभनेवाली (**देवी**) यह उषा देवी (**विजः कृत्नुः श्वघ्नी इव**) पांसोंको फेंकनेवाले कुशल जुआरीकी तरह (**मर्तस्य आयुः जरयन्ती आमिनाना**) मनुष्यकी आयुको क्षीण करती जाती है ॥ १० ॥

[१०२१] (**दिवः अन्तान्**) द्युलोकके अन्तभागोंको (**वि ऊर्ण्वती**) प्रकाशित करनेवाली उषा (**अबोधि**) जाग उठी है । वह (**स्वसारं**) अपनी रात्रीरूपी बहिनको (**सनुतः अप युयोति**) गुप्त प्रदेशोंमें प्रेरित करती है । (**मनुष्या युगानि प्रमिनती**) मानवी आयुष्यके युगोंको विनष्ट करती हुई (**योषा जारस्य चक्षसा**) यह उषारूपी स्त्री जाररूपी सूर्यके प्रकाशसे (**वि भाति**) विशेष प्रकाशती है ॥ ११ ॥

[१०२२] (**चित्रा सुभगा**) विलक्षण शोभासे शोभनेवाली यह उषा (**पशून् न प्रथाना**) पशुओंके समान चारों ओर फैलती है । वह (**उर्विया व्यश्वैत्**) बडी होकर विश्व भरमें उसी तरह व्यापती है, (**सिन्धुः न क्षोदः**) जिस तरह नदीकी बाढसे आया हुआ उदक सर्वत्र व्यापता है । (**दैव्यानि व्रतानि अमिनती**) देवताओंके कर्मोंका नाश वह कदापि नहीं करती और (**सूर्यस्य रश्मिभिः दृशाना चेति**) सूर्यकी किरणोंसे दीखती हुई यह सबको ज्ञात होती है ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह प्रकाशमान उषा सब भुवनोंको देखती हुई पश्चिमकी ओर अपनी नजर लगाये रहती है । सब जीवोंको अपने अपने कार्य करनेके लिए यह उषा जगाती है उसी तरह घरकी गृहिणी अपने घरके लोगोंको जगाए । इस प्रकार अपने कर्तव्य तत्परतासे करनेवाली स्त्री सबसे प्रशंसित होती है ॥ ९ ॥

इस उषाके उदय होनेके साथ ही मनुष्यकी आयुके एक एक दिन घटते जाते हैं । इसलिए उषाको मनुष्यकी आयु क्षीण करनेवाली कहा है । जिस प्रकार पांसे फेंकनेवाले जुआरीके धनको जुआ क्षीण कर कर देता है, उसीप्रकार उषा मनुष्यों की आयुको क्षीण करती है ॥ १० ॥

आकाश सभी छोरोंको अपने प्रकाशसे प्रकाशित करनेवाली उषा अब जाग उठी है । वह जागते ही अपनी रात्रीरूपी बाहनको शीघ्र ही दूर कर देती है । इस प्रकार अपने आनेके साथ ही प्रतिदिन मनुष्यकी आयुके दिन रातको क्षीण करती है ॥ ११ ॥

जिस प्रकार बाढके आनेपर चारों ओर पानी ही पानी हो जाता है, अथवा जिस प्रकार सुबह होते ही पशु चारों ओर विचरने लगते हैं, उसी तरह उषाके आते ही उसका प्रकाश चारों ओर फैल जाता है । यह उषा दिव्य कर्मोंका नाश कभी नहीं करती । इसी प्रकार स्त्रियां उत्तम कर्मोंका नाश कभी न करें, इसके विपरीत उत्तम कर्मोंको वे बढावा देती रहें ॥१२॥

१०२३ उष॒स्तच्चि॒त्रमा भ॑रा॒स्मभ्यं॑ वाजिनीवति । येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं च॒ धाम॑हे ॥ १३ ॥
१०२४ उषो॑ अ॒द्येह गो॑म॒त्यश्वा॑वति विभावरि । रे॒वद॒स्मे व्यु॑च्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥
१०२५ यु॒ङ्क्ष्वा हि वा॑जिनीव॒त्यश्वाँ॑ अ॒द्यारु॒णाँ उ॑षः । अथा॑ नो॒ विश्वा॒ सौभ॑गा॒न्या व॑ह ॥ १५ ॥
१०२६ अश्वि॑ना व॒र्तिर॒स्मदा गोम॑द् दस्रा॒ हिर॑ण्यवत् । अ॒र्वाग्रथं॒ सम॑नसा॒ नि य॑च्छतम् ॥ १६ ॥
१०२७ यावि॒त्था श्लोक॒मा दि॒वो ज्योति॒र्जना॑य च॒क्रथुः॑ । आ न॒ ऊर्जं॑ वहतमश्विना यु॒वम् ॥ १७ ॥
१०२८ एह दे॒वा म॑यो॒भुवा॑ द॒स्रा हिर॑ण्यवर्तनी । उ॒ष॒र्बुधो॑ वहन्तु॒ सोम॑पीतये ॥ १८ ॥

अर्थ— [१०२३] हे (वाजिनीवति उषः) समृद्धियुक्त उषा देवि ! (अस्मभ्यं तत् चित्रं आ भर) हमारे लिये वह उत्तम वैभव भरपूर दे, (येन) जिससे हम (तोकं तनयं च धामहे) पुत्रपौत्रोंको धारण करनेमें समर्थ हों ॥ १३ ॥

[१०२४] हे (गोमति अश्वावति) गौओं और घोडोंवाली (विभावरि) तेजस्विनी (सूनृतावति) प्रिय तथा सत्य भाषण बोलनेवाली (उषः) उषा देवि ! (अद्य इह अस्मे) आज यहां हमारे लिये (रेवत् वि उच्छ) धनसे युक्त प्रकाश दे ॥ १४ ॥

[१०२५] हे (वाजिनीवति उषः) अन्नवाली उषा देवि ! (अद्य अरुणान् अश्वान् युक्ष्व हि) आज तू लाल रंगवाले घोडे अपने रथमें जोड । (अथ) और (नः) हमारे लिये (विश्वा सौभगानि) सब प्रकारके भाग्ययुक्त ऐश्वर्य (आ वह) ले आ ॥ १५ ॥

[१०२६] हे (दस्रा समनसा) शत्रुनाशक और समान विचारवाले अश्विदेवो ! (गोमत् हिरण्यवत्) गोधन एवं सुवर्णसे युक्त होकर तुम (अस्मत् वर्तिः आ) हमारे घर आओ, (रथं अर्वाक्) रथको हमारी ओर (नि यच्छतं) रोककर रखो ॥ १६ ॥

[१०२७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इत्था यौ) इस भाँति जो तुम दोनों (श्लोकं ज्योतिः) वर्णनीय प्रकाशको (दिवः जनाय चक्रथुः) द्युलोकसे जनताके लिए प्रकट कर चुके हो, ऐसे (युवं नः) तुम दोनों हमारे लिए (ऊर्जं आवहतं) बलप्रद अन्न ढोकर लाओ ॥ १७ ॥

[१०२८] (उषर्बुधः) प्रातःकाल जागनेवाले देवगण (इह सोमपीतये) यहांपर सोमपान करनेके लिए (दस्रा देवा) शत्रु विनाशकर्ता, देवतारूपी (मयोभुवा हिरण्यवर्तनी) आरोग्य देनेवाले और सुवर्णमय रथवाले अश्विदेवोंको (आवहन्तु) पहुँचा दें ॥ १८ ॥

भावार्थ— हे वैभवयुक्त उषा ! जिससे पुत्रपौत्रोंका तारण कर सकें, इसलिए उत्तम वैभव हमें भरपूर दे ॥ १३ ॥

उषा गौओं और घोडोंसे युक्त है, वैभवशाली और उत्तम भाषणवाली है । हमारा हित करनेके लिए वह धनके साथ प्रकाशित हो ॥ १४ ॥

हे उषे ! आज लाल रंगके घोडोंको अपने रथमें जोडो और हमें सब प्रकारके उत्तम भाग्य प्रदान करो ॥ १५ ॥

अश्विदेव शत्रुका नाश करते और दोनों मिलकर एक मनसे कार्य करते हैं । वे गौवें और सुवर्णादि धन हमें दें । अपने रथमें बैठकर हमारे घर पर आयें । उसी तरह मनुष्य अपने शत्रुको दूर करें । सब मिलकर एक विचारसे अपना कर्तव्य करें । गौवें और धन अनुयायियोंको बांट दें । रथमें बैठकर अनुयायियोंके घर जाकर उनकी परिस्थितिका निरीक्षण करें ॥ १६ ॥

अश्विदेव द्युलोकसे उत्तम वर्णनीय प्रकाशको मनुष्योंके लिये यहां लाते हैं । वे हमें बलवर्धक अन्न पहुँचावें । नेता अपने अनुयायियोंको प्रकाशका मार्ग बतावें । बलवर्धक अन्न देकर अपने अनुयायियोंको हृष्टपुष्ट और बलिष्ठ करें ॥ १७ ॥

अश्विदेव शत्रुको दूर करते, प्रकाश देते, आरोग्य देते और अपने सुवर्णके रथपरसे वे आते हैं । प्रातःकाल जागनेवाले उनको यहां पहुंचा दें । शत्रुको दूर करें । अपने अनुयायियोंको सरल मार्ग बतावें, उनको नीरोग रखें, और सुखी रखें । प्रातःकाल ही उठकर अनुयायी लोग ऐसे नेताका स्वागत करें ॥ १८ ॥

[९३]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- अग्नीषोमौ । छन्दः १-३ अनुष्टुप्; ४-७, १२ त्रिष्टुप्; ८ जगती त्रिष्टुब्वा; ९-११ गायत्री ।

१०२९ अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥
१०३० अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥
१०३१ अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥
१०३२ अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषो ऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥
१०३३ युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥

---

[९३]

अर्थ— [१०२९] (वृषणा अग्नीषोमौ) हे सामर्थ्यवान् अग्नि-सोमो ! (इमं मे हवं सु शृणुतं) यह मेरी पुकार सुनो (सूक्तानि प्रति हर्यतं) इन स्तोत्रोंको स्वीकार करो (दाशुषे मयः भवतं) और दाताके लिये सुख देनेवाले होओ ॥ १ ॥

[१०३०] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (यः अद्य वां इदं वचः सपर्यति) जो आज तुमको यह स्तोत्र अर्पण करता है (तस्मै सुवीर्यं स्वश्व्यं गवां पोषं धत्तं) उसके लिये उत्तम वीर्य, उत्तम घोडे और उत्तम पुष्ट गौवें प्रदान करो ॥ २ ॥

[१०३१] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (यः आहुतिं वां दाशात्) जो आपको आहुति अर्पण करता है, (यः हविष्कृतिं) जो आपके लिये हवन करता है, (सः प्रजया सुवीर्यं विश्वं आयुः व्यश्नवत्) वह प्रजाके साथ उत्तम वीर्य और पूर्ण आयु प्राप्त करे ॥ ३ ॥

[१०३२] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (वां तत् वीर्यं चेति) आपका वह पराक्रम उस समय प्रकट हुआ (यत् गाः अवसं पणिं अमुष्णीतं) कि जिस समय गौओंको रखनेवाले पणिसे सब गौओंका तुमने हरण किया। (बृसयस्य शेषः अवातिरतं) बृसयके शेष अनुचरोंको तितरबितर किया (ज्योतिः एकं बहुभ्यः अविन्दतं) और सूर्यकी एक ज्योति सबके लिये प्राप्त की ॥ ४ ॥

[१०३३] (सोम) हे सोम ! (अग्निः च सक्रतू) तू और अग्नि एक ही कर्म करनेवाले हैं। हे (अग्निसोमौ) अग्नि सोमो ! (युवं रोचनानि एतानि दिवि अधत्तं) तुमने ये नक्षत्रज्योतियाँ आकाशमें स्थापित की हैं (गृभीतान् सिन्धून्, अभिशस्तेः अवद्यात् अमुञ्चतं) हे अग्निसोमो ! प्रतिबंधित नदियोंको अमंगल निन्दासे मुक्त किया ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे सामर्थ्यशाली अग्नि और सोम ! तुम दोनों मेरी इस प्रार्थनाको सुनो और जो तुम्हें उत्तम स्तोत्र अर्पण करता है, उसके लिए तुम सुख, उत्तम वीर्य, पराक्रम करनेका सामर्थ्य, पुष्ट गौवें, चपल घोडे, विपुल धन और पूर्ण आयु प्रदान करो, साथ ही उत्तम सन्तान और वीर पुत्र भी प्रदान करो ॥ १-३ ॥

इन्द्र सोम पीता है, अग्नि सब देवोंको पिलाता है, उससे सब देव बलवान् बनते हैं। इन्द्रके द्वारा पणियोंका पराभव होता है और वह हरी गई गायोंको वापस लाता है। अर्थात् पणि=अन्धकारका पराभव सूर्य करता है और रात्रीमें गायब हुई हुई गायों अर्थात् किरणोंको वापस लाता है, और तब शीतके कारण जमी हुई नदियाँ बहने लगती हैं ॥ ४-५ ॥

१०३४ आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारा-मथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानो-रुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६ ॥
१०३५ अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूत-मथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥
१०३६ यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
१०३७ अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ९ ॥
१०३८ अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् ॥ १० ॥

अर्थ—[१०३४] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो! (अन्यं मातरिश्वा दिवः आ जभार) तुममेंसे एक अग्निको वायु आकाशसे यहां लाया (अन्यं श्येनः अद्रेः परि अमथ्नात्) और दूसरे सोमको श्येन पर्वत-शिखरपरसे उखाडकर लाया है। (ब्रह्मणा वावृधानौ यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथुः) स्तोत्रोंसे बढाते हुए तुम दोनोंने यज्ञके लिये बडा ही विस्तृत क्षेत्र बनाया है ॥ ६ ॥

[१०३५] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो! (प्रस्थितस्य हविषः वीतं) यहां रखे हविरन्नका स्वाद लो। (हर्यतं) और स्वीकार करो। (वृषा) हे बलवान् देवो! (जुषेथां) इसका भक्षण करो (सुशर्माणा स्ववसा हि भूतं) तुम हमारा कल्याण करनेहारे और हमारी सुरक्षा करनेवाले होओ (अथ यजमानाय शं योः धत्तं) और यज्ञकर्ताको सुख देकर उसका दुःख दूर करो ॥ ७ ॥

[१०३६] (यः देवद्रीचा मनसा अग्नीषोमा हविषा सपर्यात्) जो देवोंकी भक्ति करनेवाले मनसे अग्निसोमोंको हवि अर्पण करता है, (यः घृतेन) और घीका हवन करता है (तस्य व्रतं रक्षतं) उसके जीवनव्रतको सुरक्षित रखो (अंहसः पातं) और उसे पापसे बचाओ (विशे जनाय महि शर्म यच्छतं) सब मानवोंके लिये बहुत सुख देवो ॥ ८ ॥

[१०३७] हे (अग्नीषोमौ) अग्निसोमो! (सवेदसा) तुम एकसाथ सब जानते हो, इसलिए (सहूती गिरः वनतं) एक साथ की हुई हमारी प्रार्थना सुनो। (देवत्रा संबभूवथुः) यहां देवो तुम एकदम प्रकट हुए हो ॥ ९ ॥

[१०३८] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो! (वां यः अनेन घृतेन वां दाशति) जो तुम्हें इस घीका अर्पण करता है, (तस्मै बृहत् दीदयतं) उसे भरपूर धन दो ॥ १० ॥

भावार्थ— वायु आकाशसे अग्निको लाया। विद्युत् और वायु साथ साथ रहते हैं। आकाशसे अग्नि विद्युत्में आई और बिजलीके गिरनेसे वह पृथ्वीपर उत्पन्न हुई। सोमको पर्वतशिखरपरसे उखाडकर लाया गया। हिमालयके उच्च शिखरोंपर सोम होता है, जहांसे उखाडकर लाया जाता है। इस अग्नि और सोमने यज्ञका क्षेत्र विस्तृत बनाया, क्योंकि सभी यज्ञ अग्नि और सोमरससे ही बनते हैं ॥ ६ ॥

जो प्रीतिपूर्वक इन दोनों देवोंको हवि अर्पण करता है, और जिसकी हविको ये दोनों स्वीकार करते हैं, उसके जीवनव्रत सुरक्षित रहते हैं और वह पापोंसे बचा रहता है। तब वह अनन्त सुख प्राप्त करता है ॥ ७–८ ॥

ये दोनों देव सर्वज्ञ हैं, इसलिए हर एकके मनोभावोंको जानते हैं, अतः जो इनकी शुद्ध मनसे प्रार्थना करता है, उसे ये दोनों भरपूर धन देते हैं ॥ ९–१० ॥

१०३९ अग्नींषोमाविमानि नो युवं हव्या जुंजोषतम् । आ यातुमुप नः सचा ॥ ११
१०४० अग्नींषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १२ ॥

[९४]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- अग्निः (जातवेदाः); ८ (त्रयः पादाः) देवाः, १६ उत्तरार्धस्य अग्निः, मित्रवरुणादितिसिन्धुपृथिवीद्यावो वा । छन्दः- जगती; १५-१६ त्रिष्टुप् ।)

१०४१ इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥
१०४२ यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूंताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥

अर्थ— [१०३९] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (युवं नः इमानि हव्या जुजोषतं) तुम दोनों हमारे इन हवनोंको स्वीकार करो, (नः सचा उप आ यातं) तथा मिलकर हमारे पास आओ ॥ ११ ॥

[१०४०] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (नः अर्वतः पिपृतं) हमारे घोडोंको पुष्ट करो । (हव्यसूदः उस्रियाः आ प्यायन्तां) हमारी दूध देनेवाली गौओंको पुष्ट करो । (मघवत्सु अस्मै बलानि धत्तं) हमारे धनवान् याजकोंको अनेक प्रकारके बल प्रदान करो । (नः अध्वरं श्रुष्टिमन्तं कृणुतं) हमारे यज्ञको यशस्वी बनाओ ॥ १२ ॥

[९४]

[१०४१] इम (अर्हते जातवेदसे रथं इव) पूजनीय, धनोत्पादक अग्निके लिये रथके समान (मनीषया इमं स्तोमं सं महेम) बुद्धिसे इस स्तोत्रको अर्पण करते हैं । (अस्य संसदि) इस अग्निके साथ रहनेसे (नः प्रमतिः भद्रा हि) हमारी बुद्धि कल्याणकारिणी होती है । (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम) हे अग्ने ! तेरी मित्रतामें हम कभी दुःखी न हों ॥ १ ॥

१ अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा— इस अग्रणीकी संगतिमें रहनेसे मनुष्योंकी बुद्धि कल्याणकारिणी बनती है ।

२ अग्ने सख्ये मा रिषाम— इस अग्रणीसे मित्रता करनेवाला कभी भी दुःखी नहीं होता ।

[१०४२] हे (अग्ने) अग्ने ! (यस्मै त्वं आयजसे, सः साधति) जिसके लिये तू यज्ञ करता है वह अपनी सिद्धिको प्राप्त करता है । वह (अनर्वा क्षेति सुवीर्यं दधते) शत्रुसे हिंसित न होकर निवास करता है; और महान् शक्तिको धारण करता है । (सः तूताव, एनं अंहतिः न अश्नोति) वह वृद्धिको प्राप्त होता है और इसको दरिद्रता नहीं प्राप्त होती है । (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रतामें हम कभी भी दुःखी न हों ॥ २ ॥

१ यस्मै त्वं आयजसे सः साधति— जिसकी यह अग्रणी अपने ज्ञानसे सहायता करता है, वह सिद्धिको प्राप्त करता है ।

२ सः तूताव अंहतिः न अश्नोति— वह बढता है और दरिद्र नहीं होता ।

भावार्थ— हे अग्नि सोमो ! तुम दोनों हमारे पास मिलकर आवो, तथा हमारी दी हुई हवि स्वीकार करो । तथा प्रसन्न होकर हमारे पशुओंको पुष्ट करो, हमारे मनुष्योंको बलशाली बनाओ और हमारे कर्मोंको यशस्वी करो ॥ ११-१२ ॥

जो पूजनीय और उत्तम ज्ञानी है, उसका सत्कार करना चाहिए और उसकी संगतिमें रहना चाहिए, क्योंकि उससे मनुष्यकी बुद्धि उत्तम होती है और वह कभी दुःखी नहीं होता ॥ १ ॥

जिसकी यह अग्रणी ज्ञानसे सहायता करता है वही सिद्धिको पाता है, हिंसित नहीं होता हुआ बढता है और उत्तम सामर्थ्यवान् होता है, अतः उसकी मित्रता प्राप्त करनी चाहिए ॥ २ ॥

१०४३ शकेमं त्वा समिधं साधया धियु—स्त्वे देवा हविरंदन्त्याहुतम् ।
त्वमांदित्याँ आ वंह तान् ह्यु१श्म—स्यग्ने सख्ये मा रिंषामा वयं तवं ॥ ३ ॥
१०४४ भरांमेध्मं कृणवांमा हवींषि ते चितयंन्तः पर्वंणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियो ऽग्ने सख्ये मा रिंषामा वयं तवं ॥ ४ ॥
१०४५ विशां गोपा अंस्य चरन्ति जन्तवों द्विपच्च यदुत चतुंष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसों महाँ अ—स्यग्ने सख्ये मा रिंषामा वयं तवं ॥ ५ ॥
१०४६ त्वमंध्वर्युरुत होतांसि पूर्व्यः प्रशास्ता पोतां जनुषां पुरोहितः ।
विश्वां विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्य—स्यग्ने सख्ये मा रिंषामा वयं तवं ॥ ६ ॥

अर्थ— [१०४३] क्योंकि (त्वे आहुतं हविः देवाः अदन्ति) तुझमें डाली हुई आहुतिको देवता लोग खाते हैं, इसलिए (अग्ने त्वा समिधं शकेम) हे अग्ने ! हम तुझे अच्छी तरह प्रदीप्त करनेमें समर्थ हों और तू हमारे (धियः साधय) कार्यको सिद्ध कर । (त्वं आदित्यान् आवह) तू आदित्योंको यहां ले आ, (तान् हि उश्मसि) उनकी ही हम इस समय कामना करते हैं । (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ३ ॥

१ धियः साधय— यह ज्ञानी अग्रणी मनुष्योंकी बुद्धिशक्ति और कर्मशक्ति दोनोंको बढाता है ।

[१०४४] हे (अग्ने) अग्ने ! तुझे चैतन्य करनेके लिये हम (इध्मं भराम) समिधाओंको इकट्ठा करें उसके पश्चात् (पर्वणा पर्वणा चितयन्तः) प्रत्येक पर्वमें तुझे प्रदीप्त करते हुए (ते हवींषि वयं कृणवाम) तेरे लिये हवियोंको हम दें । तू (जीवातवे धियः प्रतरं साधय) हमारी आयु वृद्धिके लिये हमारी बुद्धियोंको उत्तम बना । (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ४ ॥

१ जीवातवे धियः प्रतरं साधय— दीर्घजीवनके लिये बुद्धिशक्तिको और कर्मशक्तिको उत्तम बनाना चाहिये ।

[१०४५] (अस्य जन्तवः विशां गोपाः चरन्ति) इस अग्निसे उत्पन्न किरणें सब प्राणियोंकी रक्षा करती हुई विचरण करती हैं (अक्तुभिः यत् च द्विपत् उत् चतुष्पत्) इसकी किरणोंसे दो पैरवाले और चार पैरवाले प्राणी चलते फिरते हैं । हे (अग्ने) अग्ने ! (चित्रः प्रकेतः उषसः महान् असि) विचित्र तेजसे युक्त तू उषासे भी बडा है । (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ५ ॥

१ अस्य विशां गोपाः जन्तवः द्विपत् चतुष्पत् अक्तुभिः चरन्ति— इस अग्निकी प्रजाकी रक्षा करनेवाली किरणें दुपायों और चौपायोंकी रातमें भी रक्षा करती हैं ।

[१०४६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं अध्वर्युः उत पूर्व्यः होता) तू अध्वर्यु, प्राचीन होता, (प्रशास्ता, पोता, जनुषा पुरोहितः असि) शासन करनेवाला, पवित्र करनेवाला एवं जन्मजात पुरोहित है । तू (विश्वा आर्त्विज्या विद्वान्) सम्पूर्ण ऋत्विजोंके कर्मोंको जानता है । हे (धीर अग्ने) प्रज्ञावान् अग्ने ! तू हमें (पुष्यसि) पुष्ट करता है, अतः (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ६ ॥

१ अ-ध्वर-युः, प्रशास्ता, पोता, जनुषा पुरः हितः विश्वा आर्त्विज्या विद्वान्— यह अग्रणी हिंसा रहित कर्मोंका संयोजक, शासक, पवित्र करनेवाला, जन्मसे ही नगरका हित करनेवाला तथा सब ऋतुओंके अनुसार कर्मोंको करनेवाला है ।

भावार्थ— यह अग्रणी सब देवताओंको हवि पहुंचानेवाला तथा सभी अमर देवोंको बुलाकर लानेवाला है । अतः हम इसे अच्छी तरह प्रज्ज्वलित करें और इसके संरक्षणमें रहते हुए हम कभी भी दुःखी न हों ॥ ३ ॥

इस अग्निको अच्छी तरह प्रज्ज्वलित करनेके लिए मनुष्य समिधाओंको तैयार करे और प्रत्येक पर्वमें अग्नि प्रज्ज्वलित करे इससे बुद्धि बढेगी और आयु दीर्घ होगी तथा वह कभी भी दुःखी नहीं होगा ॥ ४ ॥

इस अग्निकी किरणें सभी प्राणियोंकी दिनरात रक्षा करती हैं । किरणोंके कारण अग्नि उषासे भी अधिक तेजस्वी दीखता है । ऐसे तेजस्वी अग्निके संरक्षणमें रहनेवाला कभी भी दुःखी नहीं होता ॥ ५ ॥

१०४७ यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित् सन्तळिदिवाति रोचसे ।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्य॒स्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ७ ॥

१०४८ पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथो ऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ८ ॥

१०४९ वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृ॒ध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ९ ॥

अर्थ—[१०४७] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः सुप्रतीकः विश्वतः सदृङ्ङसि) जो तू सुन्दर आदर्श है और सब ओरसे दर्शनीय है । तथा (दूरे चित् सन् तळित् इव अतिरोचसे) दूरस्थ होते हुये भी बिजलीके समान अति देदीप्यमान होता है । हे (देव) दिव्यगुणयुक्त अग्ने ! तू (राज्याः चित् अन्धः अतिपश्यसि) रात्रीके भी अन्धकारको भी नष्ट करके अत्यधिक प्रकाशित होता है । अतः (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ७ ॥

१ राज्याः चित् अन्धः अति पश्यति— यह अग्रणी रात्रीके अन्धकारमें भी बहुत प्रकाशता है ।
२ तळित्— पास, बिजली ।

[१०४८] हे (देवाः) देव गण ! (सुन्वतः रथः पूर्वः भवतु) सोमरस निकालनेवालेका रथ सबसे आगे रहे। (अस्माकं शंसः दूढयः अभि अस्तु) हमारा भाषण पाप-बुद्धिवालेको हरानेवाला हो । (तत् आजानीत उत वचः पुष्यत) तुम यह बात जान लो और हमारी वाक् शक्तिको बढाओ । हे (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम) अग्ने ! तेरे मित्र होकर हम कभी दुःख न पावें ॥ ८ ॥

१ सुन्वतः रथः पूर्वः— सोम (स-उमा=ज्ञानी) की (रथः-रंहतेर्गतिकर्मणः) गति सबसे तेज होती है ।

[१०४९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (दुःशंसान् दूढयः वा अत्रिणः) दुष्टों, बुद्धिविहीनों और भक्षक शत्रुओंको (ये के चित् दूरे वा अन्तिके) जो दूर हैं अथवा पास हैं, उनको (वधैः अपजहि) शस्त्रों द्वारा मार दे (अथ यज्ञाय गृणते सुगं कृधि) उसके अनन्तर यज्ञ करनेवाले उपासकके लिए मार्गको सरल कर, (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरे मित्र होकर हम कभी दुःख न पावें ॥ ९ ॥

१ ये के चित् दूरे अन्तिके अत्रिणः दुःशंसान् दूढयः वधैः अप जहि— दूर या पास जो भी भक्षक शत्रु हैं उन्हें समाजमेंसे नष्ट कर देना चाहिये ।

भावार्थ— यह अग्रणी शासन करनेमें कुशल, शुद्ध करनेवाला, शासन करनेवाला, जन्मसे ही नेता और ऋतु परिवर्तनके कारण होनेवाले रोगोंका नाश करके पुष्ट करनेवाला है, अतः हम उसकी मित्रतामें कभी भी दुःखी न हों ॥ ६ ॥

यह सब प्रकारसे दर्शनीय और आदर्श नेता है, यह बिजलीके समान तेजस्वी है, तथा आगे होनेवाली बातको भी यह अपने ज्ञानसे पहले जान लेता है ॥ ७ ॥

यज्ञ कर्ताका रथ सबसे आगे हो, उसका मान सबसे अधिक होना चाहिए । हमारा भी तेज ऐसा हो कि हमारे वचनोंसे ही शत्रुओंका पराभव हो जाए । तथा हम इस अग्निकी सेवा करते हुए सदा सुखी रहें ॥ ८ ॥

स्वार्थी, हिंसक और भक्षकोंका शस्त्रोंसे नाश कर देना चाहिए । इस कार्यमें यह अग्नि कुशल है, वह शत्रुओंको नष्ट करके उपासकोंके लिए मार्ग श्रेष्ठ करता है, इसलिए ऐसे अग्निका भक्त कभी दुःखी नहीं होता ॥ ९ ॥

१०५० यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुना ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १० ॥
१०५१ अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत् ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्यो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ११ ॥
१०५२ अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे ऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुन रग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १२ ॥
१०५३ देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १३ ॥

अर्थ—[१०५०] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् अरुषा रोहिता, वातजूता रथे अयुक्थाः) जिस समय तू तेजस्वी, लोहितवर्ण और वायुके समान गतिवाले घोडोंको रथमें संयुक्त करता है उस समय (ते रवः वृषभस्य इव) तेरा शब्द बैलके समान गंभीर होता है। (आत् वनिनः धूमकेतुना इन्वसि) अनन्तर वनके सारे वृक्षोंको धुएंकी 'पताका' द्वारा व्याप्त करता है। (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरे मित्र होकर हम कभी दुःख न पावें ॥ १० ॥

[१०५१] हे (अग्ने) अग्ने ! (अध स्वनात्, पतत्रिणः बिभ्युः) जलानेके लिये वनमें प्रवेश करनेके अनन्तर तेरे शब्द सुनकर पक्षी भी भयभीत हो जाते हैं। (यत् ते द्रप्सा यवसादः व्यस्थिरन्) जिस समय तेरी ज्वालायें तिनकोंके समूहोंको जलाकर विस्तृत हो जाती हैं, (तत् ते तावकेभ्यः रथेभ्यः सुगं) उस समय वे सारे वन तेरे रथके लिये सुखपूर्वक जाने योग्य हो जाते हैं। (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरे मित्र होकर हम कभी हिंसित न हों ॥ ११ ॥

१ स्वनात् पतत्रिणः बिभ्युः— इस अग्रणीके गर्जनसे सारे पक्षी भी घबडाते हैं।

[१०५२] (अयं मित्रस्य, वरुणस्य धायसे) यह अग्नि मित्र और वरुणको धारण करनेमें सशक्त है (अवयातां मरुतां हेळः अद्भुतः) हमला करनेवाले मरुतोंका क्रोध भयानक है। (एषां मनः पुनः भूत्) इन मरुतोंका मन हमारे लिये प्रसन्न हो। हे (अग्ने नः सुमृळ, तव सख्ये वयं मा रिषाम) अग्ने ! हमें सुखी कर, तेरे मित्र होकर हम कभी पीडित न हों ॥ १२ ॥

१ अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे— यह अग्रणी मित्र और वरणीय श्रेष्ठोंके भरणपोषणमें समर्थ है। नेता ऐसा हो कि जो श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषोंका पोषण कर सके।

२ अवयातां मरुतां हेळः अद्भुतः— शत्रुपर हमला करनेवाले वीरोंका क्रोध भयानक है।

[१०५३] (अग्ने देवः देवानां अद्भुतः मित्रः असि) हे अग्ने ! दिव्यगुण युक्त तू सम्पूर्ण देवोंका अद्भुत मित्र है। तथा (अध्वरे चारुः वसूनां वसुः असि) यज्ञमें शोभायमान तू सब धनोंका निवासस्थान है। (तव सप्रथस्तमे शर्मन् स्याम) तेरे विस्तृत गृहमें हम रहनेवाले हों तथा (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरे मित्र होकर हम कभी पीडित न हों ॥ १३ ॥

१ देवः देवानां अद्भुतः मित्रः— यह उत्तम गुणोंसे युक्त अग्रणी उत्तम गुणवालोंसे ही मित्रता करता है।

२ अध्वरे चारुः वसूनां वसुः— यह प्रत्येक हिंसारहित कर्ममें उपस्थित होकर शोभित होता है तथा धनोंका स्थान है।

भावार्थ— यह अग्नि अपने तेजस्वी घोडोंको अपने रथमें जोडकर बडी गंभीर गर्जनाके साथ वनोंमें संचार करता है ॥ १० ॥

यह अग्रणी इतना तेजस्वी है कि इससे सारे प्राणी डरते हैं। यह स्वयं अपने लिए मार्ग बनाता है, ऐसा यह स्वावलम्बी है ॥ ११ ॥

यह अग्नि सभी श्रेष्ठ विद्वानोंको धारण करता है। इस अग्रणीके साथी मरुतोंका क्रोध बडा भयानक होता है, अतः मनुष्योंको ऐसा यत्न करना चाहिए कि उनका मन सदा प्रसन्न रहे ॥ १२ ॥

यह अग्रणी उत्तम गुणवालोंपर स्नेह करता है और उनका हर प्रकारसे हित करता है। अतः हम भी उसके आश्रयमें रहकर उसके मित्र बनें और कभी दुःखी न हों ॥ १३ ॥

१०५४ तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १४ ॥
१०५५ यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशो ऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥ १५ ॥
१०५६ स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वा नस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १६ ॥

[९५]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- अग्निः औषसोऽग्निर्वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०५७ द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावा ञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ १ ॥

अर्थ— [१०५४] हे (अग्ने) अग्ने ! (स्वे दमे समिद्धः) अपने स्थान पर प्रज्वलित होकर (सोमाहुतः) तथा सोमकी आहुतियां प्राप्त करनेपर तू (जरसे मृळयत्तमः) उपासकको अत्यधिक सुख देता है, (ते तत् भद्रं) वह तेरा काम बहुत उत्तम है। तू (दाशुषे द्रविणं रत्नं च दधासि) दानशीलको धन और रत्न देता है, ऐसे (ते सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रतामें रहकर हम कभी भी दुःखी न हों ॥ १४ ॥

१ समिद्धः जरसे मृळयत्तमः— तेजस्वी होकर यह अग्नि उपासकको अत्यधिक सुख देता है।

[१०५५] हे (सुद्रविणः अदिते) सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त और अखण्डनीय अग्ने ! (सर्वताता यस्मै) सब यज्ञोंमें वर्तमान जिस यजमानको (अनागास्त्वं त्वं ददाशः) पापसे रहित तू करता है तथा (यं भद्रेण शवसा चोदयासि) जिसको कल्याणकारी बलसे संयुक्त करता है, वह (प्रजावता) पुत्र पौत्रादिसे युक्त होता है। (ते राधसा स्याम) तेरे दिये हुये धनसे हम भी संयुक्त हों ॥ १५ ॥

१ सर्वताता अनागाः, भद्रेण शवसा— सभी हिंसारहित यज्ञोंको करनेवाला उपासक पापरहित और कल्याणकारी बलसे युक्त होता है।

[१०५६] हे (देव अग्ने) दिव्यगुण युक्त अग्ने ! (सौभगत्वस्य विद्वान् सः त्वं, इह अस्माकं आयु प्रतिर) सर्व सौभाग्योंका ज्ञाता वह तू इस यज्ञकार्यमें हमारी आयुको बढा। (नः तत्) हमारी उस आयुकी (मित्रः वरुणः, अदितिः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और आकाश ये पूज्य देवता रक्षा करें ॥ १६ ॥

[९५]

[१०५७] (सु-अर्थे) उत्तम प्रयोजन सिद्ध करनेवाली (विरूपे द्वे) विरुद्ध रूपवाली दिन और रात ये दो स्त्रियां अपने मार्गसे (चरतः) चल रही हैं। इनके (वत्सं) बच्चेको (अन्या अन्या उप धापयेते) एक दूसरी अपना दूध पिलाती है। (अन्यस्यां हरिः) इनमेंसे एकका बच्चा सूर्य हरण कर्ता होनेसे (स्वधावान् भवति) अन्नयुक्त होता है, (अन्यस्यां) और दूसरीका बच्चा (शुक्रः सुवर्चाः ददृशे) वीर्यवान् और उत्तम तेजस्वी देखा जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यह अग्रणी तेजस्वी होकर अपने उपासकोंका हित करता है और उन्हें ऐश्वर्य प्रदान करता है, ऐसे अग्निके उपासक होकर हम कभी भी दुःखी न हों ॥ १४ ॥

हिंसा रहित कर्मोंमें सदा तत्पर रहनेवाला मनुष्य पापरहित और श्रेष्ठ बलसे युक्त होता है। अतः हम भी उस अग्निके उपासक होकर प्रजासे युक्त धनको प्राप्त करें ॥ १५ ॥

यह अग्रणी ऐश्वर्य-प्राप्तिके मार्गको जनता है, वह आयु भी बढाता है। उस बढाई गई हमारी आयुकी सभी देवता रक्षा करें ॥ १६ ॥

१०५८ दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भ॒मत॑न्द्रासो युव॒तयो॒ विभृ॑त्रम् ।
ति॒ग्मानी॑कं॒ स्वय॑शसं॒ जने॑षु वि॒रोच॑मानं॒ परि॑ षीं नयन्ति ॥ २ ॥
१०५९ त्रीणि॒ जाना॒ परि॑ भूषन्त्यस्य समु॒द्र एकं॑ दि॒व्येक॑म॒प्सु ।
पूर्वा॒मनु॒ प्र दिशं॒ पार्थि॑वाना॒मृतून् प्र॒शास॒द् वि द॑धावनु॒ष्ठु ॥ ३ ॥
१०६० क इ॒मं वो॑ नि॒ण्यमा चि॑केत व॒त्सो मा॒तॄर्ज॑नयत स्व॒धाभिः॑ ।
ब॒ह्वी॒नां गर्भो॑ अ॒पसा॑मु॒पस्था॑न्म॒हान् क॒विर्निश्च॑रति स्व॒धावा॑न् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१०५८] (अतन्द्रासः दश युवतयः) आलस्य छोडकर दस स्त्रियाँ-अंगुलियाँ (त्वष्टुः गर्भं जनयन्ति) दीप्तिके गर्भरूप अग्निको उत्पन्न करती हैं । (इमं विभृत्रं) इस भरण पोषण करनेवाले, (तिग्मानीकं) तीक्ष्ण तेजसे युक्त (स्वयशसं जनेषु विरोचमानं) अपने यशसे शोभित तथा जनोंमें प्रकाशमान अग्निको (सीं परि नयन्ति) लोग चारों ओर घुमाते हैं ॥ २ ॥

[१०५९] (अस्य) इस अग्निके (त्रीणि जाना परि भूषन्ति) तीन जन्म सजाये जाते हैं । (समुद्रे एकं) समुद्रमें वडवाग्निके रूपमें एक, (दिवि एकं) द्युलोकमें सूर्यके रूपमें एक और (अप्सु) अन्तरिक्षमें विद्युद्रूपमें एक। (ऋतून् अनु प्रशासत्) ऋतुओंकी व्यवस्था इसीने की है । (पार्थिवानां पूर्वां प्रदिशं) पृथ्वीपरके प्राणियोंकी व्यवस्थाके लिए पूर्वादि दिशाओंको भी (अनुष्ठु वि दधौ) सम्यक् रीतिसे इसीने निर्माण किया ॥ ३ ॥

[१०६०] (निण्यं इमं) गुप्त रहनेवाले इस अग्निको (वः कः आ चिकेत) तुममेंसे कौन जानता है ? (वत्सः) पुत्र होते हुए भी इस अग्निने (मातॄः) माताओंको (स्वधाभिः जनयत) अपनी धारक शक्तियोंसे प्रकट किया। (महान् कविः) बडा ज्ञानी (स्वधावान्) निज धारक शक्तिसे युक्त, (गर्भः) सबके अन्दर रहनेवाला सूर्य (बह्वीनां अपसां उपस्थात् चरति) बडे बडे जल प्रवाहोंके पाससे निकलकर संचार करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— सर्वथा विरुद्ध रूपोंवाली दिन और रातरूपी दो स्त्रियाँ प्राणियोंको प्रकाश देने और विश्राम देने रूप अपने नियत कर्म करनेके लिए हमेशा भ्रमण करती रहती हैं। इनमेंसे एक स्त्री (दिन) गौरवर्ण है और दूसरी (रात्रि) कृष्णवर्ण है । ये दोनों प्राणियोंके कार्यको सिद्ध करनेवाली हैं। दिनका कार्य प्रकाश देना है और रात्रिका कार्य विश्राम देना है। इनमेंसे एक स्त्री दूसरीके बच्चेका पालन पोषण करती है । दिनका बालक अग्नि और रात्रीका बालक सूर्य है । रात्रीके गर्भसे सूर्य उत्पन्न होता है पर उसका पोषण दिन करता है, इसी तरह दिनके गर्भसे अग्निका जन्म होता है, पर उसका पोषण रात्री करती है । हरि सूर्यका नाम है, क्योंकि वह रसोंका हरण करता है । दिनका पुत्र अग्नि अत्यन्त तेजस्वी है । इसी प्रकार सभी स्त्रियें परस्पर प्यारसे रहें । वे गृहस्थधर्मका पालन करती हुई भी जनताकी सेवा करें ॥ १ ॥

आलस्य छोडकर दस स्त्रियाँ अथवा दस अंगुलियाँ अरणियोंमेंसे इस अग्निको उत्पन्न करती हैं । उत्पन्न करनेके बाद सबका भरण पोषण करनेवाले, तीक्ष्ण शक्तिवाले अथवा तीक्ष्ण प्रकाशवाले यशस्वी लोग जनतामें तेजस्वी अग्निको चारों ओर घुमाते हैं । दोनों अरणियोंसे अग्निके सिद्ध हो जानेपर उसे अनेक यज्ञस्थानोंमें या स्थण्डिलोंमें ले जाकर उसे स्थापित करते हैं ॥ २ ॥

इस अग्निके तीन जन्म होते हैं । इसका एक जन्म समुद्रमें वडवानलके रूपमें है, दूसरा जन्म द्युलोकमें सूर्यके रूपमें है, तीसरा जन्म अन्तरिक्ष स्थानमें मेघोंमें बिजलीके रूपमें है । आकाशमें सूर्य, अन्तरिक्षमें विद्युत् और पृथ्वी पर अग्नि ये तीन रूप एक ही अग्निके हैं । ये सब पृथक् नहीं हैं, एक ही अग्निके विभिन्न रूप हैं, यह एकत्ववादका सिद्धान्त इस अग्निके वर्णनसे बताया है ॥ ३ ॥

इस गुप्त अग्निको कौन जानता है ? अग्नि सभी पदार्थोंमें रहता है, पर दीखता नहीं । केवल ज्ञानी ही उसे जान सकता है । पुत्र होता हुआ भी यह अपनी माताओंको अपनी शक्तियोंसे प्रकट करता है । अग्निसे पृथ्वी प्रदीप्त होती है, विद्युत्से अन्तरिक्ष प्रकाशित होता है और सूर्यसे द्युलोक तेजस्वी होता है । पुत्र ऐसा श्रेष्ठ और सामर्थ्यशाली बने कि जिससे उसकी माताका नाम प्रसिद्ध हो । विद्युत् जलप्रवाहोंसे युक्त मेघसे निकलकर संचार करती है ॥ ४ ॥

१०६१ आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानांमूर्ध्वः स्वयंशा उपस्थें ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥ ५ ॥

१०६२ उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६ ॥

१०६३ उद् यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥ ७ ॥

अर्थ— [१०६१] (आसु चारुः आविष्ट्यः वर्धते) इन पदार्थोंमें सुचारु रूपसे प्रविष्ट होकर यह बढता है। (जिह्मानां उपस्थे) कुटिल निम्न गतिसे जानेवाले जलोंके मध्यमें भी यह उपस्थित रहकर (स्वयशाः ऊर्ध्वः) अपने यशसे ऊर्ध्वगतिसे ऊपर चढता है। (उभे त्वष्टुः जायमानात् बिभ्यतुः) दोनों लोग इस तेजस्वी देवके उत्पन्न होनेसे डरते हैं। तथापि (सिंहं) सिंहके समान (प्रतीची प्रति जोषयेते) तेजस्वी देवकी फिरसे आकर सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

[१०६२] (उभे भद्रे) दोनों कल्याण करनेवाली (मेने) माननीय स्त्रियां (जोषयेते) सेवा करती हैं। (वाश्राः गावः न) रंभानेवाली गायोंकी तरह (एवैः उप तस्थुः) अपनी गतियोंसे वे इसीके पास आती हैं। (यं दक्षिणतः) जिसकी दक्षिण भागमें रहकर (हविर्भिः अंजन्ति) हवि द्वारा याजक पूजा करते हैं, (सः दक्षाणां दक्षपतिः बभूव) वही अग्नि अब बलवानोंमें भी अधिक बलिष्ठ है ॥ ६ ॥

[१०६३] (सविता इव बाहू उत् यंयमीति) सविताके समान यह अग्नि अपनी बाहुरूपी किरणोंको ऊपर उठाता है। और (भीमः उभे सिचौ ऋंजन् यतते) भयंकर होकर दोनों पिलानेवाली बाहुओंको अलंकृत करनेका यत्न करता है। (सिमस्मात् शुक्रं अत्कं उत् अजते) सबसे प्रकाशका कवच ऊपर उठाता है, और (मातृभ्यः नवा वसना जहाति) माताओंके लिए नये वस्त्र देता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— जलप्रवाहोंसे युक्त मेघोंके अन्दर विद्युत् रूपसे प्रविष्ट होकर यह अग्नि बढता है। नदियोंके किनारों पर होनेवाले यज्ञोंमें यह अग्नि प्रदीप्त होकर बढता है। टेढी चालसे चलनेवाले शत्रुओंके समीप भी अपने यशसे उच्च बनकर यह ज्ञानी बढता रहता है। कुटिल गतिसे नीचेकी ओर जानेवाले नदियोंके पास यज्ञ स्थानमें रहनेवाला यह अग्नि अपने यशसे उच्च गतिसे बढता है। जलोंकी गति नीचेकी ओर और अग्निकी गति ऊपरकी ओर होती है, इसी प्रकार दुष्टोंकी गति भी नीचेकी ओर और सज्जनोंकी गति ऊपरकी ओर होती है। अग्निके प्रकट होनेपर पृथ्वी और द्युलोक दोनों भयभीत होते हैं ॥ ५ ॥

दिन और रात रूपी दोनों स्त्रियां लोगोंका कल्याण करनेवाली होनेके कारण सबके लिए माननीय हैं। इसी तरह स्त्रियें सबका कल्याण करनेवाली हों। जिस प्रकार गायें रंभाती हुई अपने बच्चोंके पास भाग जाती हैं, उसी प्रकार मातायें अपने बच्चोंसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करें ॥ ६ ॥

अग्नि अपनी किरणोंको चारों ओर फेंकता है और भयंकर सामर्थ्यवाला हो जाता है, पश्चात् यह अग्नि दोनों द्यावा-पृथिवीको अलंकृत करता है। अग्नि प्रदीप्त होता है और उससे यज्ञादि सिद्ध होनेके कारण यह सबके लिए भूषण बनता है। सबको अपने तेजरूपी कवचसे ढक देता है अर्थात् सबको अपने प्रकाशसे घेर लेता है, यही मानों उसका सबको वस्त्र पहनाना है ॥ ७ ॥

१०६४ त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८ ॥
१०६५ उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धो ऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥ ९ ॥
१०६६ धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते ऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥ १० ॥
१०६७ एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

अर्थ—[१०६४] (सदने) अपने घरमें यह (गोभिः अद्भिः संपृञ्चानः) गौओं और जलोंको मिलकर (त्वेषं उत्तरं रूपं) तेजस्वी उन्नतर रूप (यत् कृणुते) जब धारण करता है, तब (कविः धीः) यह ज्ञानी और बुद्धिमान् अग्नि (बुध्नं परि मर्मृज्यते) अपने मूल स्थानको शुद्ध करता है। (सा देवताता समितिः बभूव) वही दिव्यताका फैलाव करनेवाली यज्ञसमिति होती है ॥ ८ ॥

[१०६५] (महिषस्य ते) महा बलवान् तुझ अग्निका (ज्रयः विरोचमानं उरु धाम) शत्रुका पराभव करनेवाला तेजस्वी विस्तृत स्थान (बुध्नं परि एति) आकाशमें फैला हुआ है। (अग्ने) हे अग्ने! (इद्धः) प्रदीप्त होकर तू (विश्वेभिः स्व यशोभिः) सब यशस्वी और (अदब्धेभिः पायुभिः) न दबाये जानेवाले सुरक्षाके साधनोंसे (अस्मान् पाहि) हमारी रक्षा कर ॥ ९ ॥

[१०६६] (धन्वन् गातुं स्रोतः ऊर्मिः कृणुते) निर्जल स्थानमें यह मार्ग बनाता है, जलप्रवाह और पानीके स्रोत उत्पन्न करता है। (शुक्रैः ऊर्मिभिः क्षां अभि नक्षति) फिर वह जोरदार पानीकी तरंगोंसे पृथ्वीको भर देता है। (विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते) सब अन्नोंको प्राणियोंके पेटमें स्थापित करता है। (नवासु प्रसूषु अन्तः चरति) यह नूतन वृक्ष लताओंके अन्दर संचार करता है ॥ १० ॥

[१०६७] (पावक अग्ने) हे पवित्र करनेवाले अग्ने! (समिधा एव वृधानः) समिधाओंसे बढता हुआ (रेवत् नः श्रवसे विभाहि) धन देनेवाला होकर हमारे यशके लिए प्रकाशित हो। (नः तत्) हमारे इस मन्तव्यका (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक ये देव अनुमोदन करें ॥ ११ ॥

भावार्थ— घरमें बहुतसी गायें रहें, उनके गोबरसे और जलसे घरको लीपा पोता जाए, ताकि घरका रूप सुन्दर दीखे। उसी तरह इस शरीररूपी घरकी इन्द्रियांरूपी गौओंको स्नानादिसे पवित्र किया जाए, उससे शरीर सुन्दर और निर्दोष होता है। ज्ञानी मनुष्य अपनी बुद्धिसे अपना आधार स्थान शुद्ध करता है, जिसपर रहकर वह आनन्दित एवं उन्नत होता है। इस तरह पवित्र व्यक्तियोंका संघठन ही सच्ची समिति होती है, क्योंकि ऐसी समिति ही दिव्यभावोंका सब जगह विस्तार करती है ॥ ८ ॥

हे अग्ने! बलवान् होनेपर शत्रुको हरानेका तेरा सामर्थ्य सब तरफ फैल जाता है। सब जनतामें तेरा बल भर जाता है, तेरे सामर्थ्यसे सब राष्ट्र बलवान् हो जाता है। तू स्वयं तेजस्वी बनकर सब यशस्वी तथा न दबनेवाली रक्षाशक्तियोंसे हमारी सुरक्षा कर ॥ ९ ॥

रेतीले निर्जल स्थानमें भी पुरुषार्थी वीर उत्तम मार्ग बना सकता है, तथा जल प्रवाह और जलकी नहरें या स्रोत निर्माण कर सकता है। बलवान् बनकर मनुष्य जलके प्रवाहोंसे निर्जल भूमिको भी जलसे भर सकता है और प्राणियोंके पेटके लिए हर तरहके अन्न भरपूर प्रमाणमें पैदा कर सकता है ॥ १० ॥

हे पवित्र करनेवाले अग्ने! तू समिधाओंसे प्रदीप्त होकर हमारे यशके लिए प्रकाशित हो और तेरे इस पुण्य कार्यमें मित्र, वरुण आदि देवता भी सहायक हों ॥ ११ ॥

[९६]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः। देवता- अग्निः, द्रविणोदा अग्निर्वा। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

१०६८ स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ १ ॥
१०६९ स पूर्वया निविदा कव्यतायो- रिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ २ ॥
१०७० तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥
१०७१ स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टि- र्विदद् गातुं तनयाय स्वर्वित्।
विशां गोपा जनिता रोदस्यो- र्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ४ ॥

[९६]

अर्थ— [१०६८] (सहसा जायमानः सः) बलके साथ उत्पन्न होनेवाला वह अग्नि (सद्यः प्रत्नथा) तत्काल ही पूर्वकी तरह (काव्यानि बट् अधत) सब काव्योंको ठीक रीतिसे धारण करता है (आपः च धिषणा च मित्रं साधन्) जीवन-जल और बुद्धिके द्वारा वह सबका मित्र होता है (देवाः) देवोंने (द्रविणोदां अग्निं) ऐसे धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ १ ॥

[१०६९] (सः) उस अग्निने (आयोः पूर्वया निविदा कव्यता) आयुके स्तोत्ररूप काव्यसे सन्तुष्ट होकर (मनूनां इमाः प्रजाः अजनयत्) मनूकी इस सब प्रजाको उत्पन्न किया (विवस्वता चक्षसा) तेजस्वी प्रकाशसे (द्यां अपः च) द्युलोक और जलोंको व्याप्त किया। (द्रविणोदां अग्निं) ऐसे धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है॥२॥

[१०७०] (आरीः विशः) हे प्रगतिशील प्रजाओ ! (तं प्रथमं यज्ञसाधं) उस पहिले यज्ञके साधक (आहुते) हवनसे संतुष्ट (ऋञ्जसानं उर्जः पुत्रं भरतं) प्रगतिशील, बलसे उत्पन्न हुए, सबका भरण-पोषण करनेवाले (सुप्रदानुं ईळत) दानशील अग्निदेवकी स्तुति करो। (देवाः) देवोंने (द्रविणोदां अग्निं) ऐसे धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ ३ ॥

[१०७१] (सः मातरिश्वा) वह अन्तरिक्षमें रहनेवाला (पुरुवारपुष्टिः) अनेकबार सबका पोषण करनेवाला (स्वर्वित्) आत्मप्रकाशका ज्ञाता (विशां गोपाः) प्रजाओंका संरक्षक (रोदस्योः जनिता) पृथिवीका उत्पादक है (तनयाय गातुं विदत्) उसने हमारे संतानोंके लिये उन्नतिका मार्ग ढूंढ निकाला है (देवाः) देवोंने (द्रविणोदां अग्निं) ऐसे धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि बलके साथ प्रकट होता है, अर्थात् बलके कार्य करनेके लिए प्रकट होता है। इसी कारण यह सब तरहसे प्रशंसा प्राप्त करता है। वह जल बरसाकर सबका मित्रके समान हित करता है, इसलिए विद्वान् इस अग्निका पोषण करते हैं ॥ १ ॥

अग्नि स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर मननशील प्रजाको उत्पन्न करता है। तथा अपने तेजस्वी प्रकाशसे सूर्यके रूपमें द्युलोकको व्याप्त करता है और विद्युत्के रूपमें मेघोंमें रहनेवाले जलोंको व्याप्त करता है। ऐसे धनदाता अग्निका देवगण पालन करते हैं ॥२॥

प्रजा प्रगति करनेवाली हो, अपनी उन्नतिके लिए सदा उन्नतिशील रहे। प्रजाजनोंमें जो पहला, यज्ञको सम्पन्न करनेवाला, प्रगतिशील, सबका पोषणकर्ता और दाता हो, उसीकी प्रशंसा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

जो प्रजाका पोषण करता हो, आत्मज्ञानी हो, बाल-बच्चोंके सुधारका मार्ग जानता हो, प्रजाओंका संरक्षण करता हो, वही श्रेष्ठ है। सुप्रजा निर्माण करना प्रत्येक विवाहित स्त्रीपुरुषका कर्तव्य है ॥ ४ ॥

१०७२ नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् । ॥ ५ ॥
१०७३ रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥
१०७४ नू चं पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरे॑र्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥
१०७५ द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥

अर्थ—[१०७२] (नक्तोषासा) रात्री और उषा (वर्ण आमेम्याने) ये दो परस्परकी कान्ति बदलनेवाली स्त्रियां (समीची एकं शिशुं धापयेते) एक स्थानपर रहकर एक ही अग्निरूपी बालकको दूध पिलाती हैं (रुक्मः द्यावाक्षामा अन्तः वि भाति) यह तेजस्वी अग्निदेव द्युलोक और पृथ्वीके मध्यमें विशेष प्रकाशता है (देवाः) देवोंने (द्रविणोदां अग्निं) ऐसे धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ ५ ॥

[१०७३] (रायः बुध्नः) यह अग्नि धनका आधार, (वसूनां संगमनः) ऐश्वर्योंकी प्राप्ति करानेवाला (यज्ञस्य केतुः) यज्ञका ध्वज जैसा सूचक (वेः मन्म-साधनः) और प्रगतिशील मानवके लिये इष्ट सिद्धि देनेवाला है (अमृतत्वं रक्षमाणासः देवाः) अमृतत्वकी सुरक्षा करनेवाले (देवाः) देवोंने (एनं द्रविणोदां अग्निं) ऐसे इस धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ ६ ॥

[१०७४] (नू च पुरा च रयीणां सदनं) इस समय और पहिले भी जो संपत्तिका घर है (जातस्य च जायमानस्य च क्षां) जो उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होगा उसका निवास करता है (सतः च भवतः च भूरेः गोपां) जो है और होगा उन अनेक पदार्थोंका जो संरक्षक है, (देवाः द्रविणोदां अग्निं धारयन्) देवोंने ऐसे धनदाता अग्निको धारण किया है ॥ ॥ ७ ॥

[१०७५] (द्रविणोदाः) धनदाता अग्नि (तुरस्य द्रविणसः) जंगम ऐश्वयका (प्र यंसत्) हमें दान करे (द्रविणोदाः) ऐश्वर्यदाता अग्नि (सनरस्य) सेवन करनेयोग्य स्थावर ऐश्वर्यको हमें प्रदान करे (द्रविणोदाः) वैभव दाता अग्नि (वीरवतीं इषं नः) वीरोंसे युक्त अन्न हमें देवे (द्रविणोदाः) संपत्तिदाता अग्नि (दीर्घं आयुः रासते) हमें दीर्घ आयु देता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— रात्री और उषा ये दोनों स्त्रियां अत्यन्त तेजस्वी हैं। दोनों विरुद्ध वर्णवाली एवं विरुद्ध स्वभाववाली होनेपर भी मिलजुलकर रहती हैं और अग्निका पालन करती हैं। सूर्यके रूपमें उषा अग्निका पालन करती है और रात्री पार्थिव अग्निका पोषण करती है और अन्तरिक्ष स्थानीय विद्युत् अग्नि द्यु और पृथ्वी दोनों लोकोंके बीचमें प्रकाशित होता है। इसी तरह सभी स्त्रियां मिलजुलकर रहें और बच्चोंका पालन पोषण करें ॥ ५ ॥

इसी अग्निके समान मनुष्य भी धनका आधार अर्थात् अपने पास धनको रखनेवाला, धनोंको मिलकर प्राप्त करनेवाला, प्रगतिशील मानवके लिए मनन करनेयोग्य साधनोंको प्रस्तुत करनेवाला और अमरत्वकी सुरक्षा करनेवाला हो। वह सदा ऐश्वर्यकी प्राप्ति, मननयोग्य विचारोंका संग्रह और मोक्ष अथवा बंधन निवृत्तिके लिए प्रयत्नशील रहे ॥ ६ ॥

वह अग्नि संपत्तिका घर, उत्पन्न हुए और आगे भी उत्पन्न होनेवालेका निवास कर्ता, सबका आश्रय और भूतकालमें उत्पन्न हुए और भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले समस्त विश्वका संरक्षक है ॥ ७ ॥

वीरोंके पास जो धन रहता है, वह वीरता देनेवाला धन हमें मिले। जिससे निर्बलताका निर्माण हो ऐसा धन हमें नहीं चाहिए। वह अग्नि भी हमें वीरता उत्पन्न करनेवाला धन ही देवे ॥ ८ ॥

१०७६ एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

[९७]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- अग्निः, शुचिरग्निर्वा । छन्दः- गायत्री ।)

१०७७ अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥ १ ॥
१०७८ सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥ २ ॥
१०७९ प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ॥ ३ ॥
१०८० प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१०७६] (पावक अग्ने) हे पवित्रता करनेवाले अग्निदेव (समिधा एव वृधानः) समिधाओंसे बढता हुआ (रेवत्) और धन देनेवाला होकर (नः श्रवसे वि भाहि) हमारे यशके लिये प्रकाशित होओ (नः तत्) हमारे इस अभीष्टका (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु देव अनुमोदन करें ॥ ९ ॥

[९७]

[१०७७] (अग्ने) हे अग्ने ! (नः अघं अप शोशुचत्) हमारा पाप दूर कर (आ रयिं शुशुग्धि) और धनका प्रकाश हमारे ऊपर हो (नः अघं अप शोशुचत्) हमारा पाप दूर हो ॥ १ ॥

[१०७८] (सुक्षेत्रिया) उत्तम देशमें रहनेकी इच्छा (सुगातुया) उत्तम मार्गसे जानेकी इच्छा (वसूया च) और उत्तम धन प्राप्त करनेकी इच्छा धारण करके हम (यजामहे) तुम्हारी पूजा कर रहे हैं, (नः अघं अप शोशुचत्) हमारा पाप दूर हो ॥ २ ॥

[१०७९] (यत् एषां प्र भन्दिष्ठ) जो इनमें यह भक्त तुम्हारा वर्णन करता है (अस्माकासः च सूरयः) और हमारे सब विद्वान् तुम्हारी ही भक्ति करते हैं (नः अघं अप शोशुचत्) अतः हमारा पाप दूर करो ॥ ३ ॥

[१०८०] (अग्ने) हे अग्ने ! (यत् ते सूरयः वयं) हम सब विद्वान् तुम्हारे भक्त हुए हैं (ते प्र जायेमहि) और हम तुम्हारे ही हो गये हैं (नः अघं अप शोशुचत्) अतः हमारे पाप दूर करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि समिधाओंसे बढता हुआ हमें धन देनेवाला होकर हमें यशस्वी करे, और हमारी सहायतासे वह स्वयं भी प्रकाशित होता रहे । इस मेरी इच्छाका मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि सभी देवता अनुमोदन करें ॥ ९ ॥

पाप न करना, पापकी वासना दूर करना और शुभ कर्म करना ही उन्नतिका सत्य मार्ग है । अशुद्ध मार्गसे जाना बुरे कर्म करना ही पाप है । अतः मनुष्य कभी भी बुरे कर्म न करे । इस प्रकार पाप दुःखी होता हुआ हमसे दूर हो जावे ॥ १ ॥

मनुष्यमें तीन शुभेच्छायें स्थिर रूपसे रहें । (१) उत्तम देशमें रहना, (२) उत्तम मार्गसे जाना और (३) उत्तम धन प्राप्त करना । ये तीन इच्छायें मनुष्यके मनमें रहें । इनके साथ यज्ञ करनेकी इच्छा भी चाहिए, क्योंकि यज्ञ मनुष्यकी उन्नति करनेवाला है ॥ २ ॥

हमारे सभी विद्वान् ज्ञानी एवं सुविचारी हों । हमारे सम्बन्धियोंमें एक भी ऐसा न हो कि जो निर्बुद्ध और अनाडी हो ॥ ३-४ ॥

१०८१ प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ॥ ५ ॥
१०८२ त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥
१०८३ द्विषो नो विश्वतोमुखाऽति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥ ७ ॥
१०८४ स नः सिन्धुमिव नावयाऽति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ ॥

[९८]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- अग्निः, वैश्वानरोऽग्निर्वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०८५ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥

अर्थ— [१०८१] (यत् सहस्वतः अग्नेः) इस बलवान् अग्निकी (भानवः) किरणें (विश्वतः प्रयन्ति) चारों ओर फैल रही हैं (नः अघं अप शोशुचत्) ऐसा वह अग्नि हमारे पाप दूर करे ॥ ५ ॥

[१०८२] (विश्वतोमुख) हे सब ओर मुखवाले अग्निदेव ! (त्वं हि विश्वतः) तू निःसंदेह चारों ओर (परिभूः असि) सब पर प्रभाव डालनेवाला है (नः अघं अप शोशुचत्) ऐसा तू हमारे पाप दूर कर ॥ ६ ॥

[१०८३] (विश्वतोमुख) हे सब ओर मुखवाले अग्निदेव ! (नावा इव) नौकासे समुद्रके पार होनेके समान (द्विषः नः अति पारय) सब शत्रुओंसे हमें पार ले जाओ (नः अघं अप शोशुचत्) और हमारे पाप दूर करो ॥ ७ ॥

[१०८४] (सः) वह तुम (नावया सिन्धुं इव) नौकासे समुद्रके या नदीके पार जानेके समान (स्वस्तये नः अति पर्ष) हमारे कल्याणके लिये हमें सब दुर्गतिसे पार ले जाओ (नः अघं अप शोशुचत्) हमारा पाप दूर हो ॥ ८ ॥

[९८]

[१०८५] (वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम) सब जनताका हित करनेवालेकी उत्तम मनोभावनामें सदा रहें (हि भुवनानां कं) निःसन्देह मानवोंको सुख देनेवाला (राजा अभिश्रीः) राजा ही बडा सामर्थ्यवान् होता है । (इतः जातः वैश्वानरः) यहां जन्मा हुआ सबका यह नेता (इदं वि चष्टे) सबको देखता है (सूर्येण यतते) वह सूर्यके साथ साथ यत्न करता रहता है ॥ १ ॥

भावार्थ— जो बलवान् होता है, उसका तेज चारों ओर फैलता है । यह अग्नि अत्यन्त बलवान् है, इसलिए इसके तेजका विस्तार बहुत ज्यादा होता है । इसलिए उन्नति चाहनेवालोंको चाहिए कि वे बल प्राप्त करें और उसे बढावें । यह 'सहस्वत्' पद दूसरे पर आक्रमणके लिए उपयोग किए जानेवाले बलका वाचक नहीं है, प्रत्युत शत्रुके हमले होनेपर स्वस्थान पर स्थिर रहनेका वाचक है ॥ ५ ॥

अग्रणीको विश्वतो मुख होना चाहिए अर्थात् उसकी नजर चारों ओर रहनी चाहिए । शत्रुओंपर अपनी नजर रखकर उन्हें अपने आधीन करना चाहिए । ईश्वर जैसे सब ओर मुखवाला होनेके कारण सबका योग्य निरीक्षण करता है, उसी तरह विजयी वीर चारों ओर दूतों द्वारा शत्रुके चारों ओर निरीक्षण करे और विजय सम्पादन करे ॥ ६ ॥

जिस तरह लोग नौका द्वारा समुद्रके पार जाते हैं, उसी तरह अपने बलकी नौका बनाकर वीर शत्रुरूपी समुद्रको पार करें । अन्तःकरणके शत्रु पापभाव हैं, समाजके शत्रु सामाजिक द्वेषभाव हैं, और राष्ट्रके शत्रु राष्ट्रमें द्वेषभाव फैलानेवाले शत्रु हैं, इन सबको दूर करना चाहिए ॥ ७-८ ॥

सब मानवोंके हित करनेके कार्यमें जो दत्तचित्त रहता है, उस नेताका शुभाशिर्वाद हमें प्राप्त हो । जो नेताके आदेशानुसार अपना नियत कर्तव्य करते जाते हैं और अपने नेताकी योजना सफल करते हैं, तो उस सफलताको देखकर नेता उस अनुयायीपर प्रसन्न होता है । मानवोंको सब प्रकारका सुख देनेवाला सब प्रकारसे शोभायमान होता है । मानवोंका सुख बढानेवाला ही सच्चा राजा होता है और वही शक्तिमान् और प्रभावशाली होता है । जैसे सूर्य निरलस होकर सबको प्रकाश देता है, वैसे ही नेता आलस्य छोडकर उन्नतिके कार्यमें दत्तचित्त रहे । जैसे सूर्य विश्वका मार्गदर्शक है, उसी तरह नेता मानवोंको मार्ग बताये ॥ १ ॥

*

१०८६ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २ ॥
१०८७ वैश्वानर तव तत् सत्यमस्त्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥

[९९]

(ऋषिः– कश्यपो मारीचः । देवता– अग्निः जातवेदा अग्निर्वा । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

१०८८ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥

अर्थ— [१०८६] (वैश्वानरः अग्निः) सब जनताका हित करनेवाला (दिवि पृष्टः) स्वर्गधाममें वर्णन करने योग्य है (पृथिव्यां पृष्टः) भूमिमें वर्णन करनेयोग्य है (विश्वाः ओषधीः पृष्टः आ विवेश) सब औषधियोंको वर्णनीय नेता प्राप्त हुआ है (सहसा पृष्टः) बलके कारण वर्णनीय माना हुआ (सः अग्निः) वह अग्नि (नः दिवा स नक्तं रिषः पातु) हम सबको दिनमें तथा रात्रिमें दुष्टोंसे बचावे ॥ २ ॥

[१०८७] (वैश्वानर) हे सब जनोंका हित करनेवाले नेता ! (तव तत् सत्यं अस्तु) तुम्हारा वह कार्य सफल हो (अस्मान् मघवानः रायः सचन्ताम्) हम सबको धनीलोग पर्याप्त धन देवें (नः तत्) हमारा यह मन्तव्य है (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम्) इसका अनुमोदन मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देव करें ॥ ३ ॥

[९९]

[१०८८] जो अग्नि (वेदः) सब कुछ जानता हुआ (अरातीयतः नि दहाति) शत्रुके समान आचरण करनेवाले सब द्वेष्टाओंको जला डालता है, उस (जातवेदसे) उत्पन्न हुए हुए सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्निके लिए हम (सोमं सुनवाम) सोमरस तैयार करें । (सः) वह अग्नि (नः विश्वा दुर्गाणि पर्षदति) हमारे कठिनसे कठिन दुःखोंको नष्ट करे और (नावा सिन्धुं इव) जिसप्रकार लोग नावसे समुद्रको पार करते हैं, उसी प्रकार (अग्निः) अग्नि हमें (दुरिता अति) पापोंसे पार करे ॥ १ ॥

भावार्थ— सब मानवोंका सच्चा हित करनेवाला नेता सचमुच अग्नि है, वह नेता अग्निके समान जनतामें नव चैतन्यकी आग उत्पन्न करता है । जिस प्रकार अग्निके संसर्गमें आया हुआ पदार्थ अग्निवत् ही हो जाता है, उसी प्रकार इस नेताके संपर्कमें आकर हर मनुष्य उत्साही हो जाता है । अथवा जिस तरह रोग दूर करनेके कारण सब औषधियोंकी प्रशंसा होती है, उसी तरह यह नेता सभी राष्ट्रीय रोगोंकी चिकित्सा करता है और राष्ट्रको रोगमुक्त करता है । ऐसा प्रशंसनीय नेता राष्ट्रमें आवेश उत्पन्न करता है । ऐसा नेता दिनरात शत्रुओंसे हमारी रक्षा करे ॥ २ ॥

जनताके नेताका जो यह सामर्थ्य है, वह सदा सत्य रहे, कभी कम न हो, सत्य मार्गका ही यह अवलंब करे, कभी असत्य मार्गपर न जावे । वह हमें पर्याप्त धन दे और हमारी सभी योजना प्रभुकी कृपासे सफल होती रहे, इसमें कभी त्रुटि न हो ॥ ३ ॥

यह अग्नि सर्वव्यापक होनेसे सर्वज्ञ है, अर्थात् यह लोगोंके मनकी बातोंको भी अच्छी तरह जानता है, अतः यह मन से भी शत्रुके समान आचरण करनेवाले लोगोंको नष्ट कर डालता है और जिसप्रकार लोग नावोंकी सहायतासे बडे बडे समुद्रोंको भी लांघ जाते हैं, उसी प्रकार भक्तगण इस अग्निकी सहायतासे बडेसे बडे दुःखोंको भी पार कर जाते हैं और पाप रहित हो जाते हैं ॥ १ ॥

[१००]

(ऋषिः- वार्षागिराः ऋज्राश्वाऽम्बरीष-सहदेव-भयमान-सुराधसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०८९ स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥

१०९० यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥

१०९१ दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः ।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥

१०९२ सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद् वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४ ॥

[१००]

अर्थ—[१०८९] (यः) जो (वृषा) बलवान् इन्द्र (वृष्ण्येभिः) बल बढानेवाले धनोंके साथ (सं-ओकाः) निवास करता है, वह (महः) बडे (दिवः) द्युलोक (पृथिव्याः च) और पृथिवीका (सं-राट्) बडा राजा है, वह (सतीन-सत्वा) जलोंका प्रेरक और (भरेषु) युद्धोंमें (हव्यः) सहायार्थ प्रार्थना करने योग्य है, (सः) वह (मरुत्वान्) मरुत् वीरोंसे युक्त (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) होवे ॥ १ ॥

[१०९०] (यस्य) जिस इन्द्रकी (यामः) गति (सूर्यस्य इव) सूर्यकी गतिके समान सबके लिए (अनाप्तः) अप्राप्त है, अर्थात् उससे अधिक कोई नहीं चल सकता । जो (वृत्र-हा) वृत्रनाशक इन्द्र (भरे-भरे) प्रत्येक युद्धमें असुरोंको भयसे (शुष्मः) सुखानेवाला (अस्ति) है । जो (स्वेभिः) अपने साथ (एवैः) आक्रमण करनेमें कुशल मरुत् रूपी (सखि-भिः) मित्रोंके साथ मिलकर (वृषन्-तमः) बडा बलिष्ठ होता है स (मरुत्वान्) मरुतोंवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ २ ॥

(१) वृत्र-हा भरे शुष्मः— वृत्रनाशक इन्द्रको देखकर बडे बडे युद्धमें भी शत्रुओंके प्राण सूख जाते हैं।

[१०९१] (यस्य) जिस इन्द्रके (अपरि-इता) स्वाधीन (पन्थासः) मार्ग (दिवः न) सूर्यकी किरणोंके समान (रेतसः) जलको (दुघानाः) देनेवाले हैं और (शवसा) बलपूर्वक आगे (यन्ति) बढनेवाले हैं, वह अपने (पौंस्येभिः) पराक्रमोंसे (तरत्-द्वेषाः) द्वेषका नाश करनेवाला और (सासहिः) शत्रुका पराभव करनेवाला है वह (मरुत्वान्) मरुतोंसे युक्त (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) होवे ॥ ३ ॥

[१०९२] (सः) वह इन्द्र (अङ्गिरोभिः) अङ्गिरा आदि ऋषियोंमें (अङ्गिरस्तमः) पूज्यतम (भूत्) हुआ है (सखिभिः) मित्रोंमें श्रेष्ठ (सखा) मित्र (सन्) होता हुआ (वृषभिः) बलवानोंमें अधिक (वृषा) बलवान् और (ऋग्मिभिः) प्रशंसनीयोंमें (ऋग्मी) अधिक प्रशंसाके योग्य और (गातुभिः) गमन करनेवालोंमें (ज्येष्ठः) श्रेष्ठ है । ऐसा (मरुत्वान्) मरुत् वीरोंके साथ रहनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्र बहुत बडा धनी है । वह धनके घरमें रहता है, उसमें ही सब ऐश्वर्य रहते हैं । वह द्यु और पृथिवी लोगोंका राजा और वृत्रके बन्धनसे जलको छुडानेवाला है । यह इन्द्र सदा वीर मरुतोंको अपने साथ रखता है, इसीलिए लोग इसे युद्धोंमें सहायतार्थ बुलाते हैं ॥ १ ॥

इन्द्रसे अधिक कोई भी नहीं चल सकता । उसको देखते ही शत्रुओंके प्राण सूखने लगते हैं । वह बडा बलिष्ठ और उत्तम रक्षक है इसी तरह जिस वीरके रणक्षेत्रमें जाते ही शत्रुओंका रक्त सूखने लगे वही विजयी होता है ॥ २ ॥

इन्द्र अपने जाने-आनेका मार्ग शत्रुओंके अधीन नहीं होने देता। उसीतरह राजा युद्धके समय यातायातका मार्ग शत्रुके हाथमें पडनेसे बचाये और उसके मार्ग पर अधिकार करके शत्रुको भोजन और युद्ध-सामग्री पहुँचाना रोक दे तब वह द्वेषियों पर विजय पा सकता है ॥ ३ ॥

इन्द्र ऋषियोंका पूज्य देव, बडा मित्र, श्रेष्ठ बलिष्ठ, स्तुतिके योग्य और चलनेमें अधिक वेगवान् है ॥ ४ ॥

१०९३ स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान् ।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन् मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥
१०९४ स मन्युमीः समदनस्य कर्ता ऽस्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥
१०९५ तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥
१०९६ तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्धे चित् तमसि ज्योतिर्विदन् मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०९३] (सः) उस (सूनुभिः न) पुत्रोंके समान प्रिय और (रुद्रेभिः) मरुतोंसे युक्त (ऋभ्वा) महान् इन्द्रने (नृसाह्ये) वीरोंके द्वारा सहन करनेयोग्य युद्धमें (अमित्रान्) शत्रुओंको (सासह्वान्) पराजित किया (सनीळेभिः) एक ही घरमें रहनेवाले मरुतोंके साथ मिलकर (श्रवस्यानि) अन्नके बढानेवाले जलोंको (तूर्वन्) नीचे गिराता हुआ (मरुत्वान्) मरुतोंवाला वह (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ५ ॥

[१०९४] (सः) वह शत्रुओंके ऊपर (मन्युमीः) क्रोध करनेवाला, (स-मदनस्य) जहाँ मिलकर साथ विजयका आनन्द मनाते हैं ऐसे युद्धका (कर्ता) करनेवाला, (सत्-पतिः) सज्जनोंका पालक (पुरु-हूतः) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र (अस्मिन् अहन्) आजहीके दिन (अस्माकेभिः) हमारे (नृ-भिः) वीरोंके साथ मिलकर असुरसे छिपाये हुए (सूर्यम्) सूर्यको (सनत्) प्राप्त करे। वह (मरुत्वान्) मरुतोंको साथ रखनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र इस प्रकार (नः) हमारी (ऊती) रक्षाका करनेवाला (भवतु) हो ॥ ६ ॥

[१०९५] (ऊतयः) रक्षकोंने (शूर-सातौ) शूर जहाँ धन प्राप्त करते हैं ऐसे युद्धमें (तं) उस इन्द्रको (रणयन्) हर्षित किया। (क्षितयः) प्रजाओंने (तं) उसे (क्षेमस्य) रक्षा-योग्य धनका (त्रां) रक्षक (कृण्वत) बनाया। (सः) वह इन्द्र (एकः) अकेला ही (विश्वस्य) सम्पूर्ण (करुणस्य) उत्तम कर्मोंका (ईशो) शासक, संचालक है ऐसा वह (मरुत्वान्) मरुतोंवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ७ ॥

१ सः एकः विश्वस्य करुणस्य ईशो— वह इन्द्र अकेला ही सब उत्तम कर्मोंका स्वामी है।

[१०९६] (शवसः) बलशाली (नरः) वीरोंने (उत् सवेषु) उत्सवों वा युद्धोंमें (तं) उस (नरं) वीर इन्द्रको (अवसे) रक्षा और (तं धनाय) धनके निमित्त (अप्सन्त) प्राप्त किया। (सः) उस वीर इन्द्रने (अन्धे) घोर (तमसि चित्) अन्धकारमें भी (ज्योतिः) प्रकाशको (विदत्) प्राप्त किया, ऐसा वह (मरुत्वान्) मरुत्-युक्त (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ८ ॥

भावार्थ— रुद्रके पुत्र मरुत्, इन्द्रके साथ इस प्रकार फिरते रहते हैं, जिस प्रकार पिताके साथ पुत्र। वे इन्द्रकी ही सहायतासे जलको नीचे गिराते हैं, जिससे अन्न बढता है और उस अन्नसे मनुष्योंकी रक्षा होती है ॥ ५ ॥

यह इन्द्र युद्ध करता है और उसमें विजय प्राप्त कर आनंदित होता है और सज्जनोंका पालन करता है तथा सूर्यको पुनः प्रकाशित कर अपनी सृष्टिकी रक्षा करता है ॥ ६ ॥

मरुत्वीर अपने शब्दोंसे इन्द्रका उत्साह बढाते हैं और प्रजाएं उसे अपने अन्न-धनका रक्षक मानती हैं ॥ ७ ॥

यह इन्द्र इतना बलशाली है कि श्रेष्ठसे श्रेष्ठ वीर भी युद्धमें अपनी सहायताके लिए इन्द्रको बुलाते हैं। इस इन्द्रने घोर अन्धकारमें भी प्रकाशको प्राप्त किया अर्थात् रात्रीके बाद सूर्यको उत्पन्न करके सर्वत्र प्रकाश किया ॥ ८ ॥

१०९७ स सव्येन यमति व्राधतश्चित् स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
स कीरिणा चित् सनिता धनानि मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥
१०९८ स ग्रामेभिः सनिता स रथेभि- र्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्व१द्य ।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्ती- र्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० ॥
१०९९ स जामिभिर्यत् समजाति मीळ्हे ऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥
११०० स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १२ ॥

अर्थ—[१०९७] (सः) वह इन्द्र (सव्येन) बायें हाथसे (व्राधतः चित्) बडे शत्रुओंको भी (यमति) वशमें करता है। (सः) वह (दक्षिणे) दायें हाथमें (कृतानि) किये कर्मोंको (सं-गृभीता) ग्रहण करता है। (सः) वह (कीरिणा चित्) स्तुति मात्रसे प्रसन्न होकर उन्हें (धनानि) धन (सनिता) बाँटता है, ऐसा वह (मरुत्वान्) मरुतोंका साथी (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ९ ॥

[१०९८] (सः) वह इन्द्र मरुतोंके (ग्रामेभिः) संघोंसे और (सः) वह (रथेभिः) रथों द्वारा धनका (सनिता) दाता है। वह (विश्वाभिः) सम्पूर्ण (कृष्टिभिः) प्रजाओंद्वारा (अद्य) आज (नु) ही (विदे) जाना जाता है अर्थात् आज उसे सारी प्रजायें जानती हैं। (सः) वह (पौंस्येभिः) बलोंसे (अशस्तीः) निन्द्य शत्रुओंको (अभि-भूः) पराभूत करनेवाला है ऐसा वह (मरुत्वान्) मरुतोंवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ १० ॥

[१०९९] (सः) वह (पुरु-हूतः) बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाया गया इन्द्र (यत्) जिस समय (जामिभिः) बन्धु (अजामिभिः वा) अथवा अबन्धु (एवैः) सैनिकोंके साथ (मीळ्हे) युद्धमें (सं-अजाति) जाता है, तब उन (अपां) बन्धुतुल्य वीरोंके (तोकस्य) पुत्र और (तनयस्य) पौत्रके (जेषे) विजयके लिये प्रयत्न करता है, ऐसा वह (मरुत्वान्) मरुत् वीरोंवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ११ ॥

[११००] (सः) वह (वज्र-भृत्) वज्रधारी, (दस्यु-हा) दुष्टनाशक, (भीमः) भयङ्कर, (उग्रः) वीर, (सहस्र-चेताः) बहुत ज्ञानी, (शत-नीथः) सैकडों नीतियोंवाला (ऋभ्वा) महान्, (चम्रीषः न) पात्रमें एकत्रित हुएके समान (शवसा) बलसे (पाञ्च-जन्यः) पाँच प्रकारके मनुष्योंका हितकारी, (मरुत्वान्) मरुत्-युक्त (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ १२ ॥

१ पञ्च-जन— देव, असुर, गन्धर्व, राक्षस और अप्सरा; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद; मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प और कृमि; राजा, प्रजा, सेनापति, सेना और पुरोहित।

भावार्थ— शत्रुको वशमें करना इन्द्रके बायें हाथका खेल है। वह पुरुषार्थीके कर्म दायें हाथमें रखता और उनका यथायोग्य प्रतिफल देता है ॥ ९ ॥

प्रजाएँ इन्द्रके रथ और सेनाको देखकर उसके आनेका अनुमान करती हैं। क्योंकि वह रथपर बैठकर लोगोंको धन देने आता है, और बलसे अपने शत्रुओंको हटाता है ॥ १० ॥

इन्द्र अपने सैनिकोंके पुत्र-पौत्रोंतकका ध्यान रखता है चाहे वे सैनिक उसके वंशके हों या अन्य ॥ ११ ॥

शस्त्रधारी शत्रुनाशक, भयंकर वीर, ज्ञानी, अनेक प्रकारकी नीतियां काममें लानेवाला, बलवान्, पंचजनोंका हित करनेवाला है वह हमारी रक्षा करे ॥ १२ ॥

११०१ तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत् स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १३ ॥
११०२ यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद् रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत् क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४ ॥
११०३ न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १५ ॥
११०४ रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामी-र्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥ १६ ॥

अर्थ— [११०१] (तस्य) उस इन्द्रका (वज्रः) वज्र (स्मत्) बहुत (क्रन्दति) शब्द करता है, गर्जता है। वह इन्द्र (स्वः-सा) स्वर्गका हित करनेवाला, (दिवः न) द्युमें रहनेवाले सूर्यके समान (त्वेषः) तेजस्वी (रवथः) व्याख्यान देनेवाला और (शिमीवान्) कर्ममें कुशल है। सर्वप्रकारके (सनयः) दान और सब प्रकारके (धनानि) धन (तं तं) उसके (सचन्ते) पास रहते हैं। ऐसा (मरुत्वान्) मरुतोंका साथी (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ १३ ॥

[११०२] (यस्य) जिस इन्द्रका (उक्थं) प्रशंसनीय (मानं) बल अपनी (शवसा) शक्तिसे (रोदसी) दोनों लोकोंका (विश्वतः सीं) सब ओरसे (अजस्रं) निरन्तर (परि-भुजत्) पालन कर रहा है, (सः) वह (क्रतु-भिः) पुरुषार्थोंसे (मन्दसानः) हर्षित होनेवाला इन्द्र हमें दुःखसे (पारिषत्) पार करे और वह (मरुत्वान्) मरुतोंको साथ रखनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ १४ ॥

[११०३] (यस्य) जिस इन्द्रके (शवसः) बलका (अन्तं) अन्त (देवता देवाः) दानशील एवं तेजस्वी देव, (मर्ताः) मनुष्य (आपः चन) और जल (न न आपुः) नहीं पा सके, (सः) वह इन्द्र अपनी (त्वक्षसा) सूक्ष्म शक्तिसे (क्ष्मः) पृथिवी (दिवः च) और द्युलोकसे (प्र-रिक्वा) आगे बढा हुआ है। ऐसा (मरुत्वान्) मरुतोंकी सेनावाला वह (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ १५ ॥

[११०४] (रोहित्) लाल और (श्यावा) काले रंगवाली (सुमत्-अंशुः) उत्तम तेजस्वी (ललामीः) आभूषणोंसे युक्त (द्युक्षा) द्युलोकमें स्थित इन्द्रकी (मन्द्रा) आनन्ददायिनी अश्वशक्ति (ऋज्र-अश्वस्य) ऋज्राश्व ऋषिके (राये) ऐश्वर्यवर्धनके लिये (वृषण्वन्तं) बलवान् इन्द्रसे युक्त (रथं) रथको (धूः-सु) धुरोंमें लगकर (बिभ्रति) खींचती हुई (नाहुषीषु) मानुषी (विक्षु) प्रजाओंमें (चिकेत) प्रकट हो रही है, दिखाई दे रही है ॥ १६ ॥

भावार्थ— इन्द्रके पास धन बहुत हैं और दान भी उसीका विशेष गुण है। वह सबका हित करता है। वह उत्तम भाषण करता है ॥ १३ ॥

इन्द्र अपनी शक्तिसे दोनों लोकोंको पालता और प्रजाका कष्ट दूर करता है। ऐसा इन्द्र मरुत् वीरोंके साथ हमारी रक्षा करे और हमें सब दुःखोंसे पार करे ॥ १४ ॥

इन्द्रमें अनन्त शक्ति है। वह अपनी शक्तिसे पृथ्वी और द्युलोकसे इतना आगे बढ गया है कि मनुष्य क्या, उसका अन्त तेजस्वी देव भी नहीं पा सकते ॥ १५ ॥

जब इन्द्रके चित्र-विचित्र घोडे उसके रथको गर्दनपर संभाले द्युसे पृथिवीकी ओर उतरते हैं तब लोग दूरसे ही देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ १६ ॥

११०५ एतत् त्यत् तं इन्द्र वृष्णं उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥

११०६ दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत् सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥ १८ ॥

११०७ विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥

अर्थ— [११०५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (प्रष्टि-भिः) समीप रहनेवाले ऋषियोंके साथ (ऋज्र अश्वः) ऋज्राश्व, (अम्बरीषः) अम्बरीष, (सहदेवः) सहदेव (भयमानः) भयमान और (सु-राधाः) सुराधस् ये सारे (वार्षागिराः) वृषागिरके पुत्र (ते) तुझ (वृष्णे) सामर्थ्यवान्के लिये (त्यत्) वह (एतत्) यह (राधः) निर्दोष (उक्थं) स्तोत्र (अभि गृणन्ति) गाते हैं ॥ १७ ॥

[११०६] (पुरु-हूतः) जिसे सभी लोग अपने यहां सहायार्थ बुलाते हैं ऐसे इन्द्रने (एवैः) सैनिकोंके साथ मिलकर (पृथिव्यां) पृथिवीपर रहनेवाले (दस्यून्) दुष्ट (शिम्यून् च) और हिंसकोंपर (हत्वा) प्रहार करके (शर्वा) हिंसक वज्रसे उनकी (नि बर्हीत्) जड उखाड दी । तब उस (सु-वज्रः) उत्तम वज्रवालेने (श्वित्न्येभिः) श्वेत वस्त्राभूषणवाले (सखिभिः) मित्रोंके साथ मिलकर (क्षेत्रं) भूमि (सनत्) प्राप्त की, (सूर्यं) सूर्य (सनत्) प्राप्त किया और (अपः) जल (सनत्) प्राप्त किये ॥ १८ ॥

[११०७] (इन्द्रः) इन्द्र (विश्वाहा) सब दिन (नः) हमें (अधि-वक्ता) उत्तम सलाह देनेवाला (अस्तु) हो । हम भी (अपरि-ह्वृताः) कुटिलता छोडकर उसे (वाजं) अन्न (सनुयाम) दें । (मित्रः) मित्र (वरुणः) वरुण (अदितिः) अदिति (सिन्धुः) सिन्धु (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) द्यौ (नः) हमारी (तत्) इस बातको (मामहन्ताम्) बडी प्रेरणा दें ॥ १९ ॥

भावार्थ— सरल मार्गसे चलनेवाले घोडोंवाले, आकाशतक जिनका यश पहुंचा हुआ है, जो हमेशा देवोंके साथ रहते हैं, जो युद्धोंमें शत्रुओंको कंपाते हैं, जो उत्तम ऐश्वर्यवान् हैं, जो अपनी वाणीसे आनन्द बरसाते हैं, ऐसे श्रेष्ठ जन इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ १७ ॥

इन्द्रने जब युद्धमें विजय प्राप्त की और शत्रुओंको जडमूलसे नष्ट कर दिया, तब उसे अपना राज्य मिला, सूर्यप्रकाश मिला और जल प्रवाहित हुए ॥ १८ ॥

इन्द्र हमसे रुष्ट न हो, वह प्रसन्न होकर हमें उत्तम संमति देता रहे यही हमारी इच्छा है। इस प्रार्थनामें मित्र, वरुणादि देव भी हमारी पुष्टि करें ॥ १९ ॥

[१०१]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः। देवता- इन्द्रः (गर्भस्राविण्युपनिषद्)। छन्दः- जगती ८-११ त्रिष्टुप्।)

११०८ प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

११०९ यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥

१११० यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद् यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥

[१०१]

अर्थ— [११०८] हे मनुष्यो ! तुम (मन्दिने) उत्साह युक्त इन्द्रकी (पितुमत् वचः) अन्नादिसे युक्त वाणियोंसे (अर्चत) स्तुति करो, (यः) जिसने (ऋजिश्वना) ऋजिश्व राजाके साथ वृत्रकी (कृष्णगर्भाः) अन्धेरेमें छिपी नगरियोंको (निरहन्) नष्ट किया। (अवस्यवः) संरक्षणकी इच्छावाले हम (वृषणं) बलवान् (वज्रदक्षिणं) दाहिने हाथमें वज्रको धारण करनेवाले (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥१॥

[११०९] (यः) जिस इन्द्रने (जाहृषाणेन मन्युना) अत्यधिक क्रोधसे (वि-अंसं) कटे हुए कंधोंवाले असुरको (अहन्) मारा, (यः) जिसने (शम्बरं) शम्बरको मारा, तथा (यः) जिसने (अ-व्रतं, पिप्रुं) व्रतहीन पिप्रु असुरको मारा, तथा (यः इन्द्रः) जिस इन्द्रने (अशुषं शुष्णं नि अवृणक्) सर्व भक्षक शुष्ण असुरको मारा, उस (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ २ ॥

१ यः जाहृषाणेन मन्युना वि अंसं अहन्— इस इन्द्रने अत्यधिक क्रोधसे कंधोंसे रहित असुरको मारा।

[१११०] (यस्य महद् पौंस्यं) जिसके महान् बलका (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक अनुसरण करते हैं (वरुणः यस्य व्रते) वरुण जिस इन्द्रके व्रतमें रहता है, (सूर्यः यस्य) सूर्य जिसके नियममें रहता है, तथा (सिन्धवः) नदियां भी (यस्य इन्द्रस्य) जिस इन्द्रके (व्रतं सश्चति) नियममें चलती हैं, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

१ अस्य व्रते द्यावापृथिवी, वरुणः सूर्यः सिन्धवः सश्चति— इसके नियममें द्युलोक और पृथ्वीलोक, वरुण, सूर्य और नदियां रहती हैं।

भावार्थ— वृत्र इन्द्रका शत्रु है। वह अपनी नगरीको सुरक्षित रखनेके लिए उसमें अंधेरा करता है। इस अन्धेरेके कारण उस नगरीपर इन्द्रका हमला नहीं हो सकता। आजकल भी युद्ध कालमें नगरियोंको अन्धेरेमें रखा जाता है, जिससे उनकी रक्षा होती है। इन्द्र हर तरहकी नीतिमें कुशल है, इसलिए वह असुरोंको तो मारता ही है, पर उनका वंश आगे न चल सके, उनका वंश निर्मूल हो जाए, इसलिए वह (कृष्णगर्भाः) असुरोंकी गर्भवती स्त्रियोंका भी नाश करता है। ऐसे इन्द्रको अपनी सुरक्षाके लिए सब लोग बुलाते हैं ॥ १ ॥

इन्द्रने पहले वृत्रके कंधोंको काट डाला, फिर धर्म और नियमोंका पालन न करनेवाले पिप्रुको भी इन्द्रने मारा, इनके अलावा जनताका शोषण करनेवाले शंबर और शुष्ण इन दोनों असुरोंका भी नाश किया, इस प्रकार सभी असुरोंका इन्द्रने नाश किया ॥ २ ॥

इसी बलशाली देव इन्द्र भगवान्के भयसे द्युलोक, पृथ्वीलोक, वरुण, सूर्य और नदियां अपने अपने नियममें रहते हैं और अपना अपना काम करते हैं। सभी देव अपने नियममें रहते हैं, कोई भी अपने नियमका उल्लंघन नहीं करता। इसी तरह सभी मनुष्य अपने अपने नियमोंमें रहें और अपना कार्य करते जाएं ॥ ३ ॥

१११९ यो अश्वा॑नां॒ यो ग॒वां गोप॑तिर्व॒शी य आ॑रि॒तः कर्म॑णिकर्मणि स्थि॒रः ।
वी॒ळोश्चि॒दिन्द्रो॒ यो असु॑न्वतो व॒धो म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे ॥ ४ ॥

१११२ यो विश्व॑स्य॒ जग॑तः प्राण॒तस्पति॒र्यो ब्र॒ह्मणे॑ प्र॒थमो गा अवि॑न्दत् ।
इन्द्रो॒ यो दस्यूँ॒रध॑राँ अ॒वाति॑रन् म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे ॥ ५ ॥

१११३ यः शूरे॑भि॒र्हव्यो॒ यश्च॑ भी॒रुभि॒र्यो धाव॑द्भिर्हू॒यते॒ यश्च॑ जि॒ग्युभिः॑ ।
इन्द्रं॒ यं विश्वा॒ भुव॑ना॒भि सं॑द॒धुर्म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे ॥ ६ ॥

अर्थ— [११११] (यः अश्वानां) जो इन्द्र घोडोंका स्वामी है, (यः गवां गोपतिः) जो गौवोंका स्वामी है, (य वशी) जो सबको वशमें रखता तथा जो (कर्मणि कर्मणि) प्रत्येक कर्ममें (स्थिरः) अचल रहता हुआ (आरितः) प्रशंसित होता है, (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (वीळोः चित् असुन्वतः) नियमपूर्वक सोमयाग न करनेवाले शत्रुका (वधः) मारनेवाला है, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ४ ॥

१ वशी— वह इन्द्र सबको वशमें करनेवाला है, किसीके आधीन नहीं रहता ।

२ कर्मणि कर्मणि स्थिरः— वह प्रत्येक कर्ममें अचल रहता है ।

[१११२] (यः विश्वस्य प्राणतः) जो सारे प्राण लेनेवाले (जगतः) संसारका (पतिः) स्वामी है, (यः ब्रह्मणे प्रथमः गाः अविन्दत्) जिस इन्द्रने ब्राह्मणोंके लिए सबसे पहले गायोंको प्राप्त किया, (यः इन्द्रः) जिस इन्द्रने (दस्यून्) शत्रुओंको (अधरान्) नीचे करके (अवातिरन्) मारा, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंवाले इन्द्रको हम (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ५ ॥

१ यः विश्वस्य प्राणतः जगतः पतिः— वह इन्द्र सारे प्राण लेनेवाले जगत्का स्वामी है ।

२ दस्यून् अधरान् अवातिरन्— शत्रुओंको नीचे किया ।

[१११३] (यः शूरेभिः हव्यः) जो शूरवीरोंके द्वारा बुलानेयोग्य, (यः च भीरुभिः) और जो भीरुओं द्वारा भी बुलाने योग्य है, (यः धावद्भिः हूयते) जो युद्धमें भागते हुओंके द्वारा बुलाया जाता है (यः च) और जो (जिग्युभिः) जीतनेवालोंके द्वारा बुलाया जाता है, (यं इन्द्रं विश्वा भुवना) जिस इन्द्रको सारे भुवन (अभि संदधुः) आगे रखते हैं, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको हम (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ यं इन्द्रं विश्वा भुवना अभि संदधुः— इस इन्द्रको सारा संसार आगे रखता है ।

२ यः शूरेभिः भीरुभिः धावद्भिः जिग्युभिः हव्यः— जो इन्द्र शूरोंके द्वारा, भयभीतोंके द्वारा, युद्धमें भागनेवालोंके द्वारा तथा विजयी वीरोंके द्वारा सहाय्यार्थ बुलाने योग्य है ।

भावार्थ— इन्द्र गौओंका पालन करता है, गौओंको अपने वशमें रखता है, घोडोंका पालन भी उत्तम रीतिसे करता है; घोडोंको उत्तम शिक्षा देकर सुशिक्षित करता है । इन्द्र यज्ञ न करनेवालोंका वध करता है । यज्ञ प्रजाको संगठित करनेका बडा उपयोगी कार्य है, जो इसे नहीं करता, उसे मारना ही चाहिए । यज्ञ द्वारा प्रजाको संगठित करना एक पवित्र कार्य है । इसी लिए इन्द्र इसका प्रचार करता है । इसी तरह राजा अपनी गौओं अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें रखे अर्थात् संयमी बने और प्रजाको संगठित करनेवाले उत्तम कार्योंको प्रोत्साहित करे ॥ ४ ॥

इन्द्र भगवान् चलनेवाले और प्राणधारी संपूर्ण विश्वका अधिपति है । सब विश्व इसके अधीन है । इन्द्र शत्रुओंको नीचे गिराकर परास्त करता है । इन्द्र ब्राह्मणके लिए गौवें देता है । ब्राह्मणके घर अनेक विद्यार्थी पढते हैं । ब्राह्मणका घर पाठशाला होता है, वहां बिना मूल्य पढाई होती है, इसलिए विद्यार्थियोंके परवरिशके लिए इन्द्र ब्राह्मणोंको गौवें प्रदान करता है ॥५॥

यह इन्द्र शूरोंद्वारा और भीरुओंद्वारा साहाय्यार्थ बुलाया जाता है, यही युद्धसे भागनेवालोंके द्वारा तथा विजय पानेवालोंके द्वारा भी रक्षा करनेके लिए बुलाया जाता है । इसी वीरताके कारण सब लोग इन्द्रके साथ अपना संबंध जोडते हैं । इसे सब अपना मित्र बनाना चाहते हैं । ऐसे मरुतोंसे युक्त इन्द्रको हम भी अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१११४ रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु जर्यः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥

१११५ यद् वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद् वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥

१११६ त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भि—रस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥

१११७ मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तू—शन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥

अर्थ– [१११४] जो (विचक्षणः) बुद्धिमान् इन्द्र (रुद्राणां प्रदिशा एति) मरुतोंकी दिशामें जाता है, तथा (रुद्रेभिः योषा) मरुतों और उषाके संयोगसे (पृथु जयः तनुते) महान् तेजको फैलाता है, जिस (श्रुतं इन्द्रं) प्रसिद्ध इन्द्रकी (मनीषा अभि अर्चति) मनुष्योंकी मननीय वाणी स्तुति करती है, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ७ ॥

१ विचक्षणः पृथु जयः तनुते— बुद्धिमान् इन्द्र महान् तेजको फैलाता है ।

[१११५] हे (मरुत्वः) मरुतोंसे युक्त इन्द्र ! तू (यद् वा) यदि (परमे सधस्थे) उत्तम घरमें (मादयासे) आनन्दित होता है, (यद् वा) अथवा (अवमे वृजने) छोटे घरमें आनन्दित होता है; (अतः) उस स्थानसे (नः अध्वरं अच्छ आ याहि) हमारे यज्ञमें सीधे आ, हे (सत्यराधः) स्थिर ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (त्वाया) तुझे चाहनेवाले हम तेरे लिए (हविः चकृमा) यज्ञमें हवि देते हैं ॥ ८ ॥

[१११६] हे (सु-दक्ष इन्द्र) उत्तम बलवाले इन्द्र ! (त्वाया) तेरी कामनासे ही हम (सोमं सुषुम) सोमको तैय्यार करते हैं, हे (ब्रह्मवाहः) स्तोत्रोंसे प्राप्त होने योग्य इन्द्र ! (त्वाया) तेरी ही कामनासे हम (हविः चकृम) हवि देते हैं, (अध) अनन्तर हे (नियुत्वः) घोडोंवाले इन्द्र ! (स-गणः मरुद्भिः) मरुद्गणोंके साथ (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (बर्हिषि) आसन पर बैठ और (मादयस्व) आनन्दित हो ॥ ९ ॥

[१११७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (हरिभिः मादयस्व) घोडोंके साथ आनंदित हो, तथा (ये ते शिप्रे) जो तेरे जबडे हैं, उन्हें (विष्यस्व) खोल और (धेने वि सृजस्व) वाणीको प्रकट कर (सु-शिप्र) सुन्दर शिरस्त्राणवाले इन्द्र ! (त्वा) तुझे (हरयः) घोडे (आवहन्तु) हमारे पास ले आवें, हे (उशन्) कामना करनेवाले इन्द्र ! (नः हव्यानि) हमारी हवियोंका (प्रति जुषस्व) प्रेमसे सेवन कर ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्र सदा मरुतोंकी सहायता करता है और इस प्रकार अपने यशको फैलाता है। तब इसके यशको देखकर मनुष्योंके हृदयोंसे निकली हुई स्तुति उस इन्द्रके यशका गान करती है। ऐसे मरुतोंकी सहायतासे युक्त इन्द्रकी हम मित्रता चाहते हैं ॥ ७ ॥

इस इन्द्रको निश्चित रूपसे सिद्धि मिलती है, और इसका पराभव कभी नहीं होता। यह सबको समान दृष्टिसे देखता है, अतः जिस प्रकार बडे बडे श्रीमन्त लोगोंके यहां बुलानेपर जाता है, उसी प्रकार यह बुलानेपर छोटे लोगोंके यहां भी जाता है और वहां जाकर बडे प्रेमसे सोमरसका पान करता है ॥ ८ ॥

यह इन्द्र उत्तम बलवान् तथा दक्षता अर्थात् कुशलताके साथ काम करनेवाला सदा सावधानीसे रहनेवाला है, इसलिये यह विजय पाता है। यह ज्ञानका वाहक है, सब जगह ज्ञानको फैलाता है। यह सदा अपने अनुयायियोंके साथ रहता है। इसी प्रकार राजा भी अपने राष्ट्रमें सब जगह शिक्षाका प्रसार करे और सदा सावधानीसे कुशलता पूर्वक कर्म करते हुए विजय प्राप्त करे ॥ ९ ॥

यह इन्द्र उत्तम शिरस्त्राण धारण करता है तथा तेजस्वी होनेके कारण इसका मुख भी बहुत सुन्दर दीखता है। इन्द्रके रथमें जुडे हुए घोडे हमारे पास इन्द्रको ले आयें, क्योंकि हम इन्द्रको बहुत चाहते हैं ॥ १० ॥

१११८ मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

[१०२]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; ११ त्रिष्टुप् ।)

१११९ इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत् त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥

११२० अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥

अर्थ— [१११८] (मरुत् स्तोत्रस्य) मरुतों द्वारा स्तुतिके योग्य तथा (वृजनस्य) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रसे (गोपाः) संरक्षित (वयं) हम (इन्द्रेण वाजं सनुयाम) इन्द्रकी सहायतासे अन्नको प्राप्त करें, (तत्) इसलिये (मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक (नः) हमें (मामहन्तां) सहायता देवें ॥ ११ ॥

[१०२]

[१११९] हे इन्द्र ! (यत्) जिस कारण (ते धिषणा) तेरी बुद्धि (अस्य) इस मेरे (स्तोत्रे) स्तुतिमें (आनजे) युक्त होती है, इसलिए (महः ते) महान् तेरे लिए (इमां महीं धियं) इस उत्तम स्तुतिको मैं (प्र भरे) करता हूँ । (देवासः) देव गण (प्र सवे उत् सवे च) धनोंको उत्पन्न करने और बढानेके लिए (सासहिं तं इन्द्रं) शत्रुको मारनेवाले उस इन्द्रको (शवसा ननु अमदन्) अपने उत्साहसे आनन्दित करते है ॥ १ ॥

[११२०] (अस्य श्रवः) इस इन्द्रके यशको (सप्त नद्यः बिभ्रति) सातों नदियां धारण करती हैं तथा इसके (दर्शतं वपुः) सुन्दर रूपको (द्यावाक्षामा पृथिवी) द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष लोक धारण करते हैं, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे अभिचक्षे) हमें प्रकाश देनेके लिए तथा (श्रद्धे) श्रद्धाके लिए (सूर्याचन्द्रमसा) सूर्य और चन्द्रमा दोनों (कं वितर्तुरं चरतः) सुखपूर्वक आने जानेकी गति करते हैं ॥ २ ॥

१ अस्य श्रवः सप्त नद्यः बिभ्रति— इस इन्द्रके यशको सातों नदियां धारण करती हैं ।

२ दर्शतं वपुः द्यावा क्षामा पृथिवी— इस इन्द्रके सुन्दर शरीरको तीनों लोक धारण करते हैं ।

३ श्रद्धे सूर्याचन्द्रमसा कं चरतः— सत्य ज्ञान देनेके लिए सूर्य और चन्द्रमा सुखपूर्वक विचरते हैं ।

भावार्थ— यह इन्द्र पाप, दुर्भाग्य और दुर्गतिका नाश करनेवाला है । इन्द्र संरक्षण करनेवाला है । ये इन्द्रके गुण हैं और ये ही एक वीरके गुण होने चाहिए । वीरकी इन गुणोंसे शोभा बढती है ॥ ११ ॥

इस इन्द्रकी महिमा बहुत बडी है । यह इन्द्र शत्रुको हराकर उत्कर्ष और प्रकर्षको प्राप्त होता है । देव गण भी धनोंको प्राप्त करनेके लिए और प्राप्त किए धनको बढानेके लिए इस इन्द्रको आनंदित करते हैं ॥ १ ॥

सात नदियां इस इन्द्रके यशको धारण करती हैं । इसके सुन्दर तेजको तीनों लोक धारण करते हैं, इसी इन्द्रके तेजसे प्रकाशित होकर सूर्य और चन्द्रमा प्राणिमात्रको ज्ञान एवं प्रकाश देनेके लिए नियम पूर्वक गति करते हैं । इनकी गति इतनी नियमित होती है कि अत्यन्त वेगसे चलने पर भी वे कभी आपसमें टकराते नहीं । इसी तरह सभी मनुष्योंको चाहिए कि वे नियममें रहकर सुखपूर्वक गति करते रहें ॥ २ ॥

११२१ तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा स इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥ ३ ॥

११२२ वयं जयेम त्वया युजा वृत—मस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥

११२३ नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥

अर्थ— [११२१] हे (नः मनसा पुरुस्तुत मघवन् इन्द्र) हमारी स्तुतिसे अनेक प्रकारसे प्रशंसित और ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! लोग (ते) तेरे (यं जैत्रं) जिस जयशील रथको (संगमे आजौ) सैनिकोंसे होनेवाले युद्धमें (अनुमदाम) उत्साहित करते हैं, (तं स्म रथं) उसी रथको (सातये) हमारी विजयके लिए (अव) प्रेरित कर और हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (त्वायद्भ्यः नः) तेरी कामना करनेवाले हमें (शर्म यच्छ) सुख दे ॥ ३ ॥

[११२२] हे (मघवन् इन्द्र) धनवान् इन्द्र ! (त्वया युजा) तेरी सहायतासे (वयं) हम (वृतं जयेम) घेरनेवाले शत्रुको जीतें, तू (भरे भरे) हर संग्राममें (अस्माकं अंशं उत् अव) हमारे भागकी रक्षा कर (अस्मभ्यं) हमारे लिए (वरिवः) धनोंको (सु-गं कृधि) आसानीसे प्राप्त हो जानेवाला बना, (शत्रूणां वृष्ण्या रुज) तथा शत्रुओंके बलोंका नाश कर ॥ ४ ॥

१ इन्द्र ! त्वया युजा वयं वृतं जयेम— तेरी सहायतासे हम घेरनेवाले शत्रुको जीतें ।
२ भरे भरे अस्माकं अंशं उत् अव— हर संग्राममें हमारे भागकी रक्षा कर ।
३ शत्रूणां वृष्ण्या रुज— शत्रुओंके बलोंका नाश कर ।
४ वरिवः सुगं कृधि— धन सुखसे मिले ऐसा कर ।

[११२३] हे (धनानां धर्तः इन्द्र) धनोंको धारण करनेवाले इन्द्र ! (त्वा हवमानाः) तुझे बुलानेवाले (इमे विपन्यवः जनाः) ये स्तुति करनेवाले मनुष्य (नाना हि) अनेक हैं, इसलिए (सातये) धन प्राप्तिके लिए तू (अस्माकं स्म रथं आ तिष्ठ) हमारे ही रथ पर आकर बैठ, क्योंकि (तव निभृतं मनः) तेरा शांत मन (जैत्रं) जयशील है ॥ ५ ॥

भावार्थ— इस प्रशंसित इन्द्रका रथ जयशील है, अर्थात् यह जिस संग्राममें जाता है, वहां यह विजय प्राप्त करता ही है, कभी पराभूत नहीं होता । इसी कारण और भी सब सैनिक इस रथको प्रेरित करते हैं, उसी रथको हे इन्द्र ! हमारी ओर प्रेरित कर, और अपनी कृपा हम पर करके हमें सुख दे ॥ ३ ॥

हम घेरनेवाले शत्रुओंको जीतें अर्थात् कोई शत्रु हमें घेर कर परास्त न करे । हम इन्द्रकी सहायतासे हर संग्राममें विजय प्राप्त करें और अपने धनकी रक्षा करें । और इस प्रकार अपने शत्रुओंकी शक्तिका नाश करें, तथा अपने प्राप्त किए हुए धनका हम शत्रुरहित होकर सुखपूर्वक उपभोग करें ॥ ४ ॥

हे धनोंको धारण करनेवाले इन्द्र ! तुझे बुलानेवाले तथा तेरी स्तुति करनेवाले मनुष्य अनेक हैं, अतः तू किन किनकी प्रार्थना सुनेगा और धन देगा । इसलिए तू अपने शान्त और जयशील मनसे विचार कर और अच्छी तरह सोच विचार कर हमारे रथपर आकर बैठ और हमें धन दे ॥ ५ ॥

११२४ गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसा—था जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥
११२५ उत ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत सहस्राद् रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे म—ह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ॥ ७ ॥
११२६ त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजस—स्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथा—शत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥

अर्थ—[११२४] इस इन्द्रकी (बाहु) भुजायें (गोजिता) गायोंको जीतनेवाली हैं, वह (इन्द्रः) इन्द्र स्वयं भी
(अमितक्रतुः) अपरिमित बलवाला, (सिमः) श्रेष्ठ (कर्मन् कर्मन्) प्रत्येक कर्ममें (शतं ऊतिः) सैंकडों प्रकारके
संरक्षणके साधनोंको पास रखनेवाला (खजंकरः) संग्राम करनेवाला, (अकल्पः) अद्वितीय (ओजसा प्रतिमानं)
बलकी मूर्ति है, (अथ) इसलिए (सिषासवः जनाः) धनकी इच्छावाले मनुष्य उसे (ह्वयन्ते) बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ (अस्य) बाहू गोजिता— इसकी भुजायें गायोंको जीतनेवाली हैं ।

२ इन्द्रः अमितक्रतुः खजंकरः अकल्पः— वह इन्द्र अपरिमित बलवाला, संग्राम करनेवाला और
अद्वितीय वीर है ।

३ कर्मन् कर्मन् शतं ऊतिः— प्रत्येक कर्ममें सैंकडों संरक्षणके साधन अपने पास रखनेवाला है ।

[११२५] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (कृष्टिषु) मनुष्योंमें जो (ते श्रवः) तेरा यश है, वह (शतात्
उत्) सैंकडों रूपोंसे अधिक है, (भूयसः उत् च) और भी अधिक है और (सहस्राद् उत् रिरिचे) सहस्रोंसे भी
अधिक बढ गया है, (अमात्रं त्वा) अपरिमित बलवाले तुझे (मही धिषणा) हमारी बडी स्तुति (तित्विषे) प्रका-
शित करती है, हे (पुरंदर) शत्रुके नगरको तोडनेवाले इन्द्र ! (अधा) इसके बाद तू (वृत्राणि जिघ्नसे) शत्रुओंको
मारता है ॥ ७ ॥

१ (अस्य) कृष्टिषु श्रवः शतात् उत् सहस्रात् उत् रिरिचे— इसका मनुष्योंमें यश सैंकडों तथा
हजारों प्रकारोंसे भी अधिक है ।

[११२६] हे (नृपते इन्द्र) मनुष्योंके पालक इन्द्र ! तेरे (ओजसः) बलका (प्रतिमानं) परिमाण
(त्रिविष्टिधातु) तीन गुना है, तू (तिस्रः भूमीः त्रीणि रोचना) तीन भूमियों और तीन तेजोंको तथा (इदं विश्वं
भुवनं) इस सारे भुवनोंको (अति ववक्षिथ) संचालित कर रहा है, तू (सनात् जनुषा) प्राचीन कालसे जन्मसे ही
(अ-शत्रुः असि) शत्रुरहित है ॥ ८ ॥

१ जनुषा अ-शत्रुः असि— वह इन्द्र जन्मसे ही शत्रुरहित है ।

२ ओजसः प्रतिमानं त्रिविष्टिधातु— उसके बलका प्रमाण तीन गुना है ।

भावार्थ— इस इन्द्रकी भुजायें गायोंको जीतनेवाली हैं । वह इन्द्र स्वयं भी अपरिमित बलवाला और श्रेष्ठ है । प्रत्येक
कर्ममें वह अनेक तरहके सुरक्षाके साधन रखता है तथा सदैव कर्म करनेके कारण ही वह श्रेष्ठ है । जो सदैव उत्तम कर्म करता
है, वह श्रेष्ठ होता है । इसी अपनी अतुलशक्तिके कारण वह किसी दूसरेको अपने बराबर भी माननेको तैय्यार नहीं ॥ ६ ॥

मनुष्योंमें इस इन्द्रका यश सैंकडों और हजारों रूपोंसे भी अधिक है अर्थात् अनेकों तरहसे इसका यश मनुष्योंमें
बढ रहा है । इसके अतिरिक्त भी मनुष्योंकी स्तुति इस अपरिमित बलवाले इन्द्रका बल बढाती है तब यह शत्रुओंके किलों-
को तोडकर वृत्रोंको मारता है ॥ ७ ॥

इन्द्रके बलका प्रमाण तीन गुना अधिक है । अर्थात् वह अपने बलसे तीन गुने अधिक बलवाले शत्रुका बडी वीरतासे
सामना करता है । इसी अपने बलके सहारे वह इन्द्र तीनों लोकोंका संचालन करता है । यह जन्मसे ही शत्रुरहित है । जबसे
यह जन्मा तभीसे इसने सारे शत्रुओंका विनाश करना शुरु किया, इसलिए इसका कोई शत्रु नहीं बचा ॥ ८ ॥

११२७ त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिद — मिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥
११२८ त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथा — र्भेष्वाजा मघवन् महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीम — स्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥
११२९ विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अ — स्त्वपरिहृवृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता — मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

अर्थ— [११२७] हे इन्द्र ! हम (देवेषु प्रथमं त्वां) देवोंमें मुख्य तुझे (हवामहे) बुलाते हैं, (त्वं) तू (पृतनासु सासहिः) युद्धोंमें शत्रुको मारनेवाला (बभूव) हो (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (नः प्रसवे) हमारे युद्धमें (इमं कारुं उपमन्युं उद् भिदं रथं) इस कलापूर्ण, अत्यन्त क्रोधयुक्त, शत्रुओंको खदेडनेवाले रथको (पुरः कृणोतु) आगे करे ॥ ९ ॥

१ देवेषु प्रथमः— सब देवोंमें यह इन्द्र पहिला है ।
२ पृतनासु सासहिः— युद्धोंमें शत्रुको पराजित करनेवाला है ।
३ कारुं रथं पुरः कृणोतु— कलापूर्ण रथको वह आगे करे

[११२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं जिगेथ) तू शत्रुओंको जीतता है, (धना न रुरोधिथ) और धनोंको रोकता नहीं, हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! हम (अर्भेषु महत्सु च आजौ) छोटे और बडे संग्राममें (अवसे) संरक्षणके लिए (उग्रं त्वां) शूरवीर तुझे (सं शिशीमसि) अधिक शक्तिशाली बनाते हैं, (अथ) इसलिए तू (नः) हमें (हवनेषु) युद्धोंमें (चोदय) प्रेरित कर ॥ १० ॥

१ त्वं जिगेथ, धना न रुरोधिथ— तू युद्धोंको जीतता है, पर धनोंको नहीं रोकता। वह युद्धोंको जीतता तो है, पर उसमें प्राप्त हुए धनोंको अपने पास नहीं रखता, अपितु अपने भक्तोंमें बांट देता है ।
२ अर्भेषु महत्सु आजौ अवसे उग्रं त्वां सं शिशीमसि— छोटे और बडे युद्धोंमें अपने संरक्षणके लिए तुझ उग्र वीरको बुलाते हैं ।

[११२९] (इन्द्रः) यह इन्द्र (विश्वाहा) सदा (नः अधिवक्ता अस्तु) हमारे पक्षमें बोलनेवाला हो, हम (अ-परिहृवृताः) कुटिलतासे रहित होकर (वाजं सनुयाम) अन्नादि प्राप्त करें, (तत्) इसलिए (मित्रः, वरुणः अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक (नः) हमें (मामहन्तां) सम्पत्ति दें ॥ ११ ॥

१ अ-परिहृवृताः वाजं सनुयाम— हम कुटिलतासे रहित होकर अन्नको प्राप्त करें ।

भावार्थ— यह इन्द्र देवोंमें सबसे श्रेष्ठ और मुख्य है, वह युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाला वीर है। यह सदा अपने उत्साहपूर्ण रथको आगे रखता है अर्थात् भयंकरसे भयंकर युद्धमें भी यह इन्द्र सदा आगे ही रहता है। इतना वीर और निडर यह इन्द्र है । इसी प्रकार राजा युद्धोंमें सबसे आगे रहे और अपने रथको प्रेरित करता रहे । इस प्रकार करनेसे उसकी सेना भी उत्साहित होकर शत्रुको हरानेमें समर्थ होगी ॥ ९ ॥

यह इन्द्र अनेक युद्धोंको करता है और उनमें प्राप्त हुए धनको अपने भक्तोंमें बांट देता है । यह कभी भी अपने पास धन जोडकर नहीं रखता । यह कभी कंजूसी नहीं करता । यह जो कुछ भी संग्रह करता है, वह स्वयंके उपभोगके लिए नहीं, अपितु दूसरोंकी उन्नति एवं हितके लिए धनादिका संग्रह करता है । इसी प्रकार राजा युद्धादिमें प्राप्त धनका कुछ अंश राज्यकोषमें रखकर बाकी धन सैनिकोंमें बांट दे। यह इन्द्र बहुत उदार चित्तवाला है, इसीलिए सब लोग इसे चाहते हैं ॥१०॥

यह इन्द्र जिसके पक्षमें होता है, वह पक्ष हमेशा विजयशील होता है, यह बात हम जानते हैं, इसलिए हम उससे यही प्रार्थना करते हैं कि वह सदा हमारे पक्षमें ही रहे, हमसे कभी क्रोधित न हो । हम भी इससे कुटिलतापूर्ण व्यवहार न करें । कुटिलतापूर्ण व्यवहारसे यह इन्द्र निश्चयसे क्रोधित होता है, अतः हम इसे कभी भी क्रोधित न करें । इस प्रकार यदि इन्द्र हमारे पक्षमें होगा, तो निश्चयसे मित्र, वरुण, सिन्धु आदि अन्य देवता भी हमारे पक्षमें रहकर हमारी सहायता करेंगे ॥ ११ ॥

[१०३]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११३० तत् त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद् दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥
११३१ स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन् व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥
११३२ स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः ।
विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्याऽऽर्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥

[१०३]

अर्थ— [११३०] हे इन्द्र ! (ते तत् इदं परमं इन्द्रियं) तेरे उस उत्तम बलको (कवयः) दूरदर्शी विद्वानोंने (पुरा) पहले (पराचैः) शत्रुको मारनेवाले कर्मोंके रूपमें (अधारयन्त) धारण किया था, (क्षमा अस्य इदं अन्यत्) पृथ्वी पर इस इन्द्रका यह बल और प्रकारका है और (दिवि अन्यत्) द्युलोकमें और तरहका है, (ईं) इसके ये दोनों बल (समना केतुः इव) जैसे संग्राममें ध्वज परस्पर मिलते हैं, उसी प्रकार (सं पृच्यते) परस्पर संयुक्त होते हैं ॥ १ ॥

[११३१] (सः) उस इन्द्रने (पृथिवीं धारयत्) पृथिवीको धारण किया (च पप्रथत्) और फैलाया, तथा वृत्रको (वज्रेण हत्वा) वज्रसे मार कर (अपः निः ससर्ज) जलोंको बहाया (अहिं अहन्) अहि असुरको मारा (रौहिणं अभिनत्) रोहिण असुरका वध किया तथा (मघवा) इस धनवान् इन्द्रने (शचीभिः) शक्तियोंसे (व्यंसं अहन्) व्यंस असुरको मारा ॥ २ ॥

१ सः पृथिवीं धारयत् पप्रथत् च— उस इन्द्रने पृथिवीको धारण किया और फैलाया ।

[११३२] (जातू-भर्मा) बिजलीके अस्त्रको धारण करनेवाला तथा (ओजः श्रद्धधानः) बल पर श्रद्धा रखनेवाला (सः) वह इन्द्र (दासीः पुरः विभिन्दन्) दस्युओंके नगरोंको तोडते हुए (वि अ चरत्) विचरण करता है, हे (विद्वान् वज्रिन् इन्द्र) ज्ञानवान् तथा वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (अस्य दस्यवे) इस स्तोताके शत्रु पर (हेतिं) आयुध फेंक तथा (आर्यं सहः द्युम्नं वर्धय) श्रेष्ठ पुरुषके बल तथा यशको बढा ॥ ३ ॥

१ आर्यं सहः द्युम्नं वर्धय— आर्योंका बल और तेज बढाओ ।

२ दासीः पुरः विभिन्दन्— शत्रुकी नगरियां तोडता है ।

३ अस्य दस्यवे हेतिं— इसके शत्रुपर शस्त्र फेंक ।

भावार्थ— इस इन्द्रके दो तरहके बल हैं, एक तो इस पृथ्वी पर प्रकाशित होता है और दूसरा द्युलोकमें सूर्यके रूपमें प्रकाशित होता है । ये दोनों बल यद्यपि अलग अलग स्थानों पर प्रकाशित होते हैं, परन्तु ये दोनों मिलते एक ही स्थान पर हैं । जिस प्रकार संग्राममें दो विरुद्ध दिशाओंसे आती हुई दो पताकायें एक निश्चित स्थान पर आकर मिल जाती हैं, उसी प्रकार द्युलोकसे आता हुआ और पृथ्वीपरसे जाता हुआ इन्द्रका बल अन्तरिक्षमें जाकर मिल जाते हैं । तब इस महान् बलका दूरदर्शी वीरगण शत्रुको मारनेके कार्यमें उपयोग करते हैं ॥ १ ॥

उस शूरवीर इन्द्रने अपनी शक्तिसे पृथ्वीका धारण पोषण किया और उसे समृद्धियुक्त करके उसका विस्तार भी किया । पृथ्वीका विस्तार करनेसे पहले वह इन्द्र, अहि, रोहिण, व्यंस आदि असुरोंको, जो नदी आदि पानीके मार्ग रोक कर इन्द्रकी प्रजाओंको कष्ट देते हैं, अपने वज्रसे मार देता है । इसी प्रकार जो अपने राज्यका विस्तार करना चाहे, उसे चाहिए कि वह सर्व प्रथम बाहरी और अन्दरके शत्रुओंका नाश करे । तभी उसका राज्य समृद्धिशाली और विस्तृत हो सकता है ॥ २ ॥

१९३३ तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
१९३४ तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत् सो अविन्ददश्वान् त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥
१९३५ भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम्
य आदृत्या परिपन्थीव शूरो ऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१९३३] (सूनुः) बलके पुत्र (वज्री) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रने (श्रवसे) यशके लिए (दस्युहत्याय उप प्रयन्) शत्रुको मारनेके लिए उसके समीप जाते हुए (यत् नाम दधे) जिस यशको धारण किया था, (तत् कीर्तेन्यं नाम) उस प्रशंसाके योग्य यशको (मघवा) इन्द्रने (ऊचुषे) स्तोताके लिए (इमा मानुषा युगानि) इन मनुष्योंके युगोंतक (बिभ्रत्) धारण किया ॥ ४ ॥

[१९३४] (सः गाः अविन्दत्) उस इन्द्रने गायें प्राप्त कीं, (सः अश्वान् अविन्दत्) उसने घोडोंको प्राप्त किया, (सः ओषधीः) उसने औषधी, (सः अपः) उसने जल, (सः वनानि) उसने धनोंको प्राप्त किया, अतः हे मनुष्यो ! (अस्य इन्द्रस्य) उस इन्द्रके (इदं भूरि पुष्टं पश्यत) इस अत्यधिक बलको देखो, और इसके (वीर्याय) पराक्रम पर (श्रद् धत्तन) श्रद्धा करो ॥ ५ ॥

१ अस्य इन्द्रस्य इदं भूरि पुष्टं पश्यत, वीर्याय श्रद् धत्तन— इस इन्द्रके इस अत्यधिक बलको देखो और इसके बल पर श्रद्धा करो ।

[१९३५] (यः शूरः) जो शूर इन्द्र (आदृत्य) ज्ञानियोंका आदर करके (परिपन्थी इव अयज्वनः) लुटेरे के समान अपने पास धन जोडकर रखनेवाले तथा यज्ञ न करनेवाले असुरका (वेदः) धन छीनकर उसे ज्ञानियोंमें (विभजन्) बांटता हुआ (एति) जाता है, उस (भूरिकर्मणे) बहुतसे उत्तम कर्मोंको करनेवाले, (वृषभाय वृष्णे) बलवान् दाता और (सत्यशुष्माय) सत्य बलवाले इन्द्रके लिए (सोमं सुनवाम) हम सोम निचोडें ॥ ६ ॥

१ यः शूरः आदृत्य अयज्वनः वेदः विभजन् एति, सोमं सुनवाम— जो शूरवीर ज्ञानियोंका आदर करके यज्ञ न करनेवालोंके धनको छीनकर ज्ञानियोंमें बांट देता है, उसका लोग सत्कार करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— इन्द्रके पास रहनेवाले हथियारोंमें कुछ हथियार ऐसे भी हैं, जो बिजलीसे चलते हैं अथवा बिजलीके समान तीक्ष्ण वार करते हैं, ऐसे आयुधोंसे युक्त होकर इन्द्र अपने बलपर विश्वास रखकर अर्थात् आत्मविश्वासके साथ अपने शत्रुओंपर आक्रमण करता है और उनके नगरोंको तोडता है । और इस प्रकार अनार्योंके बलका नाश करते हुए आर्योंके बल और शक्तिको बढाता है । राष्ट्रमें आर्योंका बल बढे और अनार्योंकी शक्ति घटे ॥ ३ ॥

" यह इन्द्र बलका पुत्र है, शत्रुओंका विनाशक है, सज्जनोंका रक्षक है " इस प्रकारके यशको यह इन्द्र अनन्तकालसे धारण करता आ रहा है । इसका यह यश कभी भी नष्ट नहीं होता । अपने इस यशकी रक्षा वह इन्द्र हर तरहसे करता है । इसी कारण उसका यश आजतक चला आ रहा है ॥ ४ ॥

इस इन्द्रने अपने स्वयं अर्जित पराक्रमसे गायें प्राप्त कीं, घोडे प्राप्त किए तथा अन्य भी अनेकों तरहके ऐश्वर्य प्राप्त किए । हे लोगो ! इसके इन पराक्रमोंकी ओर देखो और इस इन्द्रके पराक्रम पर श्रद्धा रखो । अपने उपास्य पर हमेशा श्रद्धा रखनी चाहिए, तथा जिस प्रकार उसने अपने पराक्रमसे यशका सम्पादन किया है, उसी प्रकार स्वयं भी प्रयत्न करके पराक्रमका सम्पादन करना चाहिए ॥ ५ ॥

यह इन्द्र ज्ञानियोंका बहुत आदर करता है और लुटेरोंके समान अपने पास ही धनको इकट्ठा करके रखनेवाले और यज्ञ आदि उत्तम कर्मोंमें कभी भी धनका उपयोग न करनेवाले असुरोंका शत्रु है । इसीलिए वह ऐसे असुरोंसे धन छीनकर उस धनको ज्ञानियोंमें बांट देता है । इस प्रकार वह अपने राज्यमें हमेशा ज्ञानियोंको बढावा देता है । इसीलिए सब लोग इसका सम्मान करते हैं । इसी प्रकार राजाको चाहिए कि वह अपने राज्यमें ज्ञानियोंको अच्छी प्रकार उन्नत करे, तथा सब जगह समाजवादकी उन्नति हो, पूंजीवाद न बढने पाए ॥ ६ ॥

११३६ तदिन्द्र प्रेवं वीर्यं चकर्थ यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥
११३७ शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

[१०४]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११३८ योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥
११३९ ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित् तान् त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन् ते न आ वक्षन् त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥

अर्थ— [११३६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (वज्रेण) वज्रसे (ससन्तं अहिं) सोते हुए अहिको (अबोधयः) जगाया, तथा (हृषितं) हर्षित हुए (त्वा) तुझे (पत्नीः) पत्नियोंने (अनु अमदन्) आनन्दित किया, तथा (वयः च विश्वे देवासः त्वा अनु अमदन्) गतिशील मरुतोंने तथा सभी देवोंने आनन्दित किया, (तत्) तब अपने (वीर्यं) बलको तूने (प्र इव चकर्थ) प्रकट किया ॥ ७ ॥

१ वीर्यं प्रचकर्थ— अपने बलको प्रकट किया ।

[११३७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रं अवधीः) शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्रको मारा, तब (शम्बरस्य पुरः वि) शम्बरासुरके नगरोंको भी तोडा। (तत्) इसलिए (मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक (नः) हमें (मामहन्तां) बढावें ॥ ८ ॥

[१०४]

[११३८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हमने इस (योनिः) स्थानको (ते निषदे अकारि) तेरे बैठनेके लिए बनाया है, इसलिए (प्रपित्वे) यज्ञ कालकी प्राप्ति पर (दोषावस्तोः वहीयसः) रात दिन ढोनेवाले (अश्वान्) घोडोंको (अवसाय) खोलकर तथा उनके (वयः) बन्धनोंको (विमुच्य) खोलकर (तं) उस स्थान पर (स्वानः अर्वा न) हिनहिनाते हुए घोडेके समान (आ निषीद) आकर बैठ ॥ १ ॥

[११३९] (त्ये नरः) वे मनुष्य (ऊतये) संरक्षणके लिए (इन्द्रं आ उ गुः) इन्द्रके पास आये, इन्द्रने (तान्) उन्हें (नु चित्) शीघ्र ही (सद्यः) उसी समय (अध्वनः जगम्यात्) उत्तम मार्गों पर चलाया, (देवासः दासस्य मन्युं श्चम्नन्) देव गण असुरके क्रोधको नष्ट करें, तथा (ते) वे देव (सुविताय) यज्ञके लिए (वर्णं) वरणीय इन्द्रको (नः आ वक्षन्) हमारे पास ले आवें ॥ २ ॥

१ नरः ऊतये इन्द्रं आ गुः— मनुष्य संरक्षणके लिए इन्द्रके पास आते हैं ।

२ तान् नु चित् सद्यः अध्वनः जगम्यात्— उन्हें शीघ्र ही वह अच्छे मार्गसे चलाता है ।

भावार्थ— जब इन्द्रने सोते हुए अहि नामक असुर पर वज्रका प्रहार कर उसे जगाया अर्थात् उसका पराभव किया; तब सब देव और उनका पालन करनेवाली उनकी सब शक्तियां बहुत प्रसन्न हुईं और सबने इन्द्रकी स्तुति की ॥ ७ ॥

मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देवोंने जिस प्रकार शुष्ण आदि असुरोंको मारते और शम्बरासुरके नगरोंको तोडते समय इन्द्रकी सहायता कर उसका उत्साह बढाया था, उसी प्रकार हमें भी शत्रुके पराभवके लिए बढावें और उत्साहित करें ॥ ८ ॥

११४० अव॒ त्मना॑ भरते॒ केत॑वेदा॒ अव॑ त्मना॑ भरते॒ फेन॑मु॒दन् ।
क्षी॒रेण॑ स्नातः॒ कुय॑वस्य॒ योषे॑ ह॒ते ते स्या॑तां प्रव॒णे शिफा॑याः ॥ ३ ॥
११४१ यु॒योप॒ नाभि॒रुप॑रस्या॒योः प्र पूर्वा॑भिस्तिरते॒ राष्टि॒ शूरः॑ ।
अ॒ञ्ज॒सी कु॑लि॒शी वी॒रप॑त्नी॒ पयो॑ हिन्वा॒ना उ॒दभि॑र्भरन्ते ॥ ४ ॥
११४२ प्रति॒ यत् स्या नीथाद॑र्शि॒ दस्यो॒रोको॒ नाच्छा॒ सद॑नं जान॒ती गा॑त् ।
अध॑ स्मा नो मघवञ्चर्कृ॒तादि॒न्मा नो॑ म॒घेव॑ निष्ष॒पी परा॑ दाः ॥ ५ ॥

अर्थ— [११४०] (केतवेदाः) धनको जाननेवाला कुयव असुर (त्मना) स्वयं ही दूसरोंके धनका (अव भरते) अपहरण करता है, तथा (उदन्) उदय होते हुए वह (फेनं) झागयुक्त जलका (त्मना अव भरते) स्वयं अपहरण करता है, तब (कुयवस्य योषे) कुयवकी स्त्रियें (क्षीरेण स्नातः) उस पानीसे स्नान करती हैं (ते) वे दोनों स्त्रियें (शिफायाः प्रवणे) शिफा नदीके प्रवाहमें (हते स्यातां) डूबकर मर जायें ॥ ३ ॥

[११४१] (उपरस्य आयोः नाभिः) मेघमें रहनेवाले असुरका केन्द्र स्थान (युयोप) छुपा हुआ था, वह (पूर्वाभिः तिरते) जलोंसे बढता है, तथा (शूरः) शूरवीर होकर (राष्टि) तेजस्वी होता है उसे (पयः हिन्वानाः) जलको बहाती हुई (अञ्जसी, कुलिशी, वीरपत्नी) अञ्जसी, कुलिशी, वीर पत्नी नदियां (उदभिः भरन्ते) जलोंसे भर देती हैं ॥ ४ ॥

[११४२] हे इन्द्र ! (यत्) क्योंकि हमने (स्या नीथा अदर्शि) उस मार्गको देख लिया है, जो (दस्योः ओकः) दस्युके घरको (जानती सदनं न) जैसे जानती हुई गाय अपने स्थानको जाती है, उसी प्रकार (अच्छ गात्) सीधा जाता है, (अध स्म) इसलिए हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! असुरोंके (चर्कृतात्) उपद्रवसे (नः इत्) हमारी रक्षा कर, (निष्षपी मघा इव) जैसे स्त्री-व्यसनी पुरुष धनोंको फेंकता है, उस प्रकार (नः मा परा दाः) हमें दूर मत फेंक ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिस समय यज्ञका समय होता है और जगह जगह यज्ञ शुरु होते हैं, उस समय इन्द्र अपने रथसे उतर कर यज्ञमें आकर बैठता है, तब मनुष्य इन्द्रके पास आकर रक्षा करनेकी प्रार्थना करते हैं। इसके उत्तरमें इन्द्र उन मनुष्यों-को उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है। इसका आशय यह है कि जब मनुष्य उत्तम मार्गसे चलता है, देवगण स्वयं ही उसकी हर तरहसे रक्षा करते हैं। फिर आत्मरक्षाके लिए उनकी प्रार्थना करनेकी जरूरत नहीं रहती। उसके कर्मोंसे आकर्षित होकर इन्द्र आदि देव उसकी रक्षाके लिए आते हैं और वे देवगण उस मनुष्यके शत्रुओंको उत्साहहीन कर देते हैं ॥ १–२ ॥

असुर या शत्रुगण दूसरोंके धनोंका अपहरण करते हैं। तथा दूसरोंके राज्यमें जानेवाली नदियोंको बांध आदि बांध कर रोक लेते हैं। इस प्रकार झागसे भरे हुए पानीका अपहरण करते हैं। और तब शत्रुकी स्त्रियां उस पानीमें खुश होकर नहातीं हैं। पर जब शत्रुका यह मद बहुत अधिक हो जाता है, तब सारे शत्रुगणका विनाश होता है और उनकी स्त्रियां भी उन्हीं नदियोंमें डूब जाती हैं ॥ ३–४ ॥

हे इन्द्र ! जैसे एक गाय अपने मार्गको जानती हुई अपने निवास स्थान पर पहुंच जाती है, उसी प्रकार हमने दस्युके घरको सीधा जानेवाला मार्ग जान लिया, अतः अब तू असुरोंके स्थान पर जाकर उन्हें नष्ट कर और उन असुरोंके कारण बार बार होनेवाले कष्टोंसे हमारी रक्षा कर। जिस प्रकार एक स्त्रीव्यसनी मनमाने रूपसे धन लुटाता है, उसी प्रकार तू हमें कभी भी अपनेसे दूर मत कर अपितु हमें सदा अपनी ही रक्षामें रख ॥ ५ ॥

११४३ स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्व१नागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
११४४ अधा मन्ये श्रत् ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योना१विन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥ ७ ॥
११४५ मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भे१न्मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि ॥ ८ ॥
११४६ अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहु१रयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ ९ ॥

अर्थ— [११४३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (सूर्ये) सूर्य प्रकाशमें (आ भज) संयुक्त कर (सः) वह तू हमें (अप्सु) जलोंसे संयुक्त कर, तथा (जीवशंसे) जीवोंके द्वारा प्रशंसित (अनागाः त्वे) पापरहित कार्यमें संयुक्त कर (नः अन्तरां भुजं) अन्दर स्थित पालनके योग्य प्रजाकी (मा रीरिषः) हिंसा मत कर, क्योंकि हमने (ते महते इन्द्रियाय) तेरे महान् बलपर (श्रत् हितं) श्रद्धा की है ॥ ६ ॥

१ नः जीवशंसे अनागास्त्वे— हे इन्द्र ! हमें जीवोंके द्वारा प्रशंसित पापरहित कार्यसे संयुक्त कर ।

[११४४] हे (वृषा पुरुहूत इन्द्र) बलवान् और बहुतों द्वारा प्रार्थना जिसकी होती है ऐसे इन्द्र ! मैं (अद्य) अब तेरा (मन्ये) सम्मान करता हूँ, (ते अस्मै श्रत् आधायि) तेरे इस बलके लिए मैं श्रद्धा रखता हूँ, हमें (महते धनाय चोदय) महान् ऐश्वर्यके लिए प्रेरित कर, (नः) हमें (अ-कृते योनौ) धन शून्य घरमें (मा) स्थापित मत कर, तथा (क्षुध्यद्भ्यः) भूखोंको (वयः आसुतिं दाः) अन्न और पीनेकी सामग्री दे ॥ ७ ॥

१ अ-कृते योनौ मा— हे इन्द्र ! हमें धन शून्य घरमें स्थापित मत कर ।

२ महते धनाय चोदय— बहुत धन प्राप्त करनेके लिए हमें प्रेरित कर ।

[११४५] हे (मघवन् शक्र इन्द्र) ऐश्वर्यवान् सामर्थ्यवान् इन्द्र ! (नः मा वधीः) हमें मत मार, (मा परा दाः) हमारा त्याग न कर (नः प्रिया भोजनानि मा प्रमोषीः) हमारे प्रिय भोजनोंका नाश न कर, (नः आण्डाः मा निर्भेः) हमारे गर्भोंको विनष्ट मत कर, तथा (न सह-जानुषाणि पात्रा मा भेत्) घुटनोंसे चलनेवाले हमारे सन्तानोंका नाश न कर ॥ ८ ॥

[११४६] हे इन्द्र ! (त्वा) तुझे लोग (सोमकामं आहुः) सोमका इच्छुक कहते हैं, अतः तू (अर्वाङ् एहि) सामने आ । (अयं सुतः) यह सोम तेरे लिए निचोडा गया है, (मदाय) आनन्दके लिए (तस्य पिब) उसको पी, (ऊरुव्यचा) बहुत विशाल होकर (जठरे) अपने पेटको (आ वृषस्व) सोमसे भर ले, तथा (हूयमानः) बुलाया हुआ तू (नः) हमारी प्रार्थनाओंको (पिता इव) पिताके समान (शृणुहि) सुन ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमें सूर्यप्रकाश एवं जलसे संयुक्त कर। हम इन दोनों पदार्थोंसे कभी दूर न रहें। हम सभीके द्वारा प्रशंसित पापरहित मार्गमें हमेशा चलें। हमारे वर्तनसे प्रसन्न होकर तू हमारी और हमारी प्रजाओंकी रक्षा कर। हमें तेरे बलमें पूरी श्रद्धा है, हमने अपना सर्वस्व तुझे समर्पित कर दिया है अतः हमारी पूरी तरहसे रक्षा कर ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हमें तेरे बल पर पूरी पूरी श्रद्धा है। हमें पूरा विश्वास है कि तू हमारी हर तरहसे रक्षा करेगा। इसीलिए मैं तेरा सम्मान करता हूँ। तू हमें महान् ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिए प्रेरित कर। हमें कभी भी ऐसे स्थानमें मत रख, जो धनसे शून्य हो। हम सदा धन सम्पन्न रहें और धन सम्पन्न होकर भूखे प्यासे लोगोंकी सेवा करें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तू सोम पीनेका बडा अभिलाषी है। इसीलिए हम तेरे लिए सोम तैयार करते हैं। तू सोम पीकर हमपर प्रसन्न हो, तथा हमारी प्रजा, गर्भ एवं घुटनोंसे चलनेवाली सन्तानोंकी रक्षा कर साथ ही हमारा भी संरक्षण कर ॥ ८–९ ॥

[१०५]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- पंक्तिः; ८ यवमध्या महाबृहती, १९ त्रिष्टुप् ।)

११४७ चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १ ॥
११४८ अर्थमिद् वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥
११४९ मो षु देवा अदः स्व१रव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३ ॥

[१०५]

अर्थ— [११४७] (अप्सु अन्तः चन्द्रमाः) अन्तरिक्षमें चन्द्रमा दौडता है (दिवि सुपर्णः आ धावते) द्युलोकमें सूर्य दौडता है, (हिरण्यनेमयः विद्युतः) सुवर्णके समान चमकनेवाली बिजलियां (वः पदं न विन्दन्ति) तुम्हारे स्थानको नहीं जानतीं । (रोदसी) हे द्युलोक और भूलोक (मे अस्य वित्तं) मेरी प्रार्थनाका भाव जानो ॥ १ ॥

[११४८] (अर्थिनः अर्थं इत् वै उ) इच्छा करनेवाले निस्सन्देह अपने प्राप्तव्यको प्राप्त करते हैं, (जाया पतिं आ युवते) पत्नी पतिके साथ मिलती है, तब वे दोनों पतिपत्नी मिलकर (वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते) बलवान वीर्यको प्रेरित करते हैं, और वह पत्नी (रसं परिदाय) रसरूपी वीर्यको प्राप्त करके (दुहे) पुत्र प्रसव करती है। (रोदसी) हे द्युलोक और भूलोक ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थनाके आशयको जानो ॥ २ ॥

१ अर्थिनः अर्थं इत्— इच्छा करनेवाले अपने प्राप्तव्यको निस्सन्देह प्राप्त कर ही लेते हैं ।

[११४९] (देवाः) हे देवो ! (स्वः अदः दिवः परि) हमारा तेज द्युलोकके ऊपरसे (मो सु अव पादि) कभी न गिरे । (शं-भुवः सोम्यस्य शूने) आनन्द देनेवाले सोमसे रहित स्थानमें हम (कदाचन मा भूम) कभी भी न रहें (रोदसी) हे द्युलोक और भूलोक ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थनाके आशयको जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ— अन्तरिक्षमें चन्द्रमा और द्युलोकमें सूर्य विचरण करते हैं। पर बीचमें चमकनेवाली बिजलियोंका स्थान कोई नहीं जानता । यद्यपि सूर्य और चन्द्र दोनों गतिमान् हैं, तथापि इनका स्थान ज्ञानी जानते हैं, पर विद्युत् कहांसे चमकेगी, यह कोई नहीं जानता । यह सदा गुप्त रहती और एकदम अचानक चमक उठती है । इस विश्वमें सर्वत्र अग्नि व्याप्त है, पर वह सूर्य, चन्द्रमा अग्निके रूपोंमें प्रकट है और विद्युत्के रूपमें गुप्त है । मैं इसी तेजकी उपासना करता हूँ, आकाश और पृथ्वी रूप प्रभु मेरी इस प्रार्थनाके आशयको जानें ॥ १ ॥

इच्छा ही मानवमें एक मुख्य प्रेरकशक्ति है । यदि मानवमें किसी चीजको पानेकी बलवती हो, तो वह उसे प्राप्त कर ही लेता है । इच्छाशक्तिसे ही उन्नति होनेकी संभावना है । प्रबल इच्छा होनेसे तदनुकूल प्रयत्न होंगे और पुरुषार्थ तथा प्रयत्न योग्य रीतिसे होनेसे सिद्धि भी प्राप्त होगी । उदाहरणार्थ- पत्नी पति दोनों एक दूसरेके साथ मिलनेकी इच्छा करते हैं, फिर मिलते भी हैं, तब बलवर्धक वीर्यको प्रेरित करते हैं, तब पत्नी पुत्रको उत्पन्न करती है । यह गृहस्थाश्रमका कार्य पतिपत्नीकी प्रबल इच्छाशक्तिके कारण ही होता है । इसलिए मनमें सदा शुभ इच्छा ही धारण करनी चाहिए ॥ २ ॥

हमारा तेज स्वर्गसे नीचे न गिरे अर्थात् हमारा तेज सदा ऊंचा रहे । उच्च मार्गसे जाकर उच्च स्थान पर ही विराजे । हम उन्नत हों कदापि अवनत न हों तथा सुख उत्पन्न करनेके साधन जहां न हों, वहां हम कदापि न रहें । अपने पास सब तरहके सुखके साधन जमा करके हम आनंद प्रसन्न रहें ॥ ३ ॥

११५० यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति ।
कं ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद् बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ४ ॥
११५१ अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद् व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुति- र्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ ॥
११५२ कद् व ऋतस्य धर्णसि कद् वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथा- ति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६ ॥

अर्थ— [११५०] (अवमं यज्ञं पृच्छामि) मैं समीपके यज्ञसे प्रश्न पूछता हूँ (तत् सः दूतः विवोचति) उसका उत्तर वह दूत अग्नि देगा ही, (पूर्व्यं ऋतं क्व गतं) तुम्हारा वह प्राचीनकालसे चला आया सरल भाव कहां गया ? (कः नूतनः तत् बिभर्ति) किस नवीनने उसे धारण किया है ? (रोदसी) हे पृथ्वी और द्युलोक ! (मे अस्य वित्त) मेरी इस जिज्ञासाको समझो ॥ ४ ॥

[११५१] हे (देवाः) देवो ! (ये अमी त्रिषु स्थन) जो ये देव तीनों स्थानोंमें हैं (दिवः आ रोचने) वे द्युलोकके प्रकाशमें रहते हैं। (वः ऋतं कत्) आपकी सरलता कहां है ? (अनृतं कत्) आपका असत् कहां है ? (वः प्रत्ना आहुतिः क्व) आपको दी हुई पुरातन आहुति कहां है ? (रोदसी) हे द्युलोक एवं पृथ्वीलोक ! (मे अस्यँ वित्तं) मेरी इस जिज्ञासाको समझो ॥ ५ ॥

[११५२] (वः ऋतस्य धर्णसि कत्) आपका सत्यका धारण करना कहां है ? (वरुणस्य चक्षणं कत्) वरुणकी अमरदृष्टि कहां है ? (महः अर्यम्णः पथा कत्) बडे श्रेष्ठ अर्यमाका मार्ग कौनसा है (दूढ्यः अति क्रामेम) जिससे हम दुष्टोंका अतिक्रमण कर सकें ? (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तम्) इस हमारी जिज्ञासाको समझो ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो कुछ पूछना हो समीपस्थ ज्ञानी पुरुषसे ही पूछना चाहिए, क्योंकि शंकासमाधान ज्ञानी ही उत्तम शक्तिसे कर सकता है, वही प्रश्नोंका उत्तर उत्तम रीतिसे दे सकता है। प्राचीन वृद्ध किसतरहका आचरण करते थे और आजकलके तरुण किस तरहका आचरण कर रहे हैं, यह विचारणीय है। प्राचीन वृद्धोंके आचरणमें कितनी सरलता थी और आजके युवकोंमें कितनी सरलता है, यह भी द्रष्टव्य है। प्राचीन लोगोंकी सरलता, सचाई, सादगी हमारे व्यवहारमें भी आनी चाहिए। ये सद्गुण ही सबके मार्गदर्शक हों ॥ ४ ॥

तुम्हारा सत्य मार्ग और असत्य मार्ग कौन कौनसा है, यह विचारणीय है। जो लोग तीनों स्थानोंमें रहते हैं, वे द्युलोकके पवित्र प्रकाशमें रह सकते हैं। यदि वे सन्मार्गसे चलेंगे तो अवश्य ही वे पवित्र प्रकाशमें भी परमोच्च स्थानमें रहेंगे। प्रत्येक मनुष्यको ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए कि उसकी योग्यता उच्च हो। मनुष्यने भूतकालमें जो भी कुछ किया हो, उस पर विचार अवश्य करना चाहिए। अर्थात् भूतकालमें जो भी किया उससे जनताका हित हुआ या अहित, इसका विचार मनुष्य अवश्य करे। इसप्रकार पूर्वके आचरणके परिणाम पर विचार करके ही आगेके आचरण करने चाहिए ॥ ५ ॥

दुष्ट बुद्धिवालोंका अतिक्रमण करके हम सुबुद्धिवालोंकी संगतिमें रहें। हम दुष्टोंका दमन करते हुए आगे बढें। दुष्ट मानव सब समाजको कष्ट देते हैं, अतः उनका दमन करना चाहिए। वे समाजमें उपद्रव न कर सकें, ऐसी स्थितिमें उन्हें रखना चाहिए। सत्यका समर्थ आधार, वरिष्ठ द्रष्टाका निरीक्षण और उत्तम आर्यमनवालेके मार्गसे गमन ये तीन साधन हैं जिनसे दुष्टोंको दूर करके सज्जनोंका मार्ग निरुपद्रवी हो। अपना पक्ष सत्यके आश्रय पर स्थित हो। कार्यकर्ताओंपर भद्र और श्रेष्ठ पुरुषका निरीक्षण हो। मनुष्य सदा आर्य मार्गसे चले। इन तीन साधनोंसे मनुष्यकी उन्नति हो सकती है ॥ ६ ॥

११५३ अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ७ ॥
११५४ सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८॥
११५५ अमी ये सप्त रश्मय—स्तत्रा मे नाभिराततां ।
त्रितस्तद् वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥
११५६ अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतु—र्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १० ॥

अर्थ— [११५३] (पुरा सुते) पुरातन समयमें सोमयागमें (यः अहं) जिस मैंने (कानि चित् वदामि) कई सूक्त पढे थे (सः अहं अस्मि) वही मैं हूँ (तं मा आध्यः व्यन्ति) उसी मुझको मानसिक व्यथाएं उसी प्रकार खा रहीं हैं (तृष्णजं मृगं वृकः न) जैसे तृषित मृगको भेडिया खाता है । (रोदसी !) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तम्) मेरी इन व्यथाओंको समझो और दूर करो ॥ ७ ॥

[११५४] (पर्शवः मा अभितः) पसलियाँ मुझे चारों ओरसे (सपत्नीः इव संतपन्ति) पत्नियोंके समान संतप्त करती हैं (शतक्रतो) हे शतक्रतु (मूषः शिश्ना न) जिस तरह चूहे कांजी लगे तन्तुओंको खाते हैं, वैसीही (ते स्तोतारं मा) तेरी उपासना करनेवाले मुझे (आध्यः वि अदन्ति) ये व्यथाएँ खा रही हैं (रोदसी) हे द्यावा-पृथिवी (मे अस्य वित्तं) मेरी इन व्यथाओंको समझो और दूर करो ॥ ८ ॥

[११५५] (ये अमी सप्त रश्मयः) जो ये सात किरणें हैं (तत्र मे नाभिः आतता) वहांतक मेरा घर फैला हुआ है (आप्त्यः त्रितः तत् वेद) आप्त्य त्रितको इसका ज्ञान है । (सः जामित्वाय रेभति) इसलिये वह प्रेममय बन्धुभावके लिये प्रार्थना करता है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ ९ ॥

[११५६] (अमी ये पञ्च उक्षणः) ये वे पांच प्रबल बैल हैं (महः दिवः मध्ये तस्थुः) जो बडे द्युलोकके मध्यमें रहते हैं, (देवत्रा नु प्रवाच्यं) देवोंके संबंधके स्तोत्र पढते ही (सध्रीचीनाः नि वावृतुः) वे साथ ही निवृत्त हुए हैं (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १० ॥

भावार्थ— मनुष्य भले ही कितना ही बडा विद्वान् हो, तथापि प्यासे हिरनको जैसे भेडिया कष्ट देता है, उसी प्रकार मानसिक व्यथायें उसे कष्ट देती ही हैं । विद्वत्ता प्राप्त करने पर भी उसका मन शान्त नहीं होता, भोगतृष्णा उसे सताती है, क्रोध उसे अशान्त करता है ॥ ७ ॥

स्तुति, प्रार्थना, उपासना और भजन करनेवालेको भी मानसिक शान्ति नहीं मिलती । उसे भी मनोव्यथायें उसी तरह खाती हैं, जिस तरह कांजी लगे हुए वस्त्रको चूहा खा जाता है । जिस तरह धागे पर कांजी लगानेसे उसे चूहे काट डालते हैं, उसी प्रकार मनुष्य पर प्रबल भोगेच्छाका लेप लगनेसे उसे कामक्रोधादि चूहे काटने लगते हैं । अथवा जैसी अनेक सौतें एक पतिको कष्ट देती हैं, उसी प्रकार अनेकों मनोव्यथायें मनुष्यको तंग करती हैं ॥ ८ ॥

जहां तक सूर्यकी किरणें फैलती हैं, वहां तक मनुष्यका कुटुम्ब हो और सारा विश्व मनुष्यका कुटुम्ब हो । आप्त पुरुषोंकी यही इच्छा होती है कि सर्वत्र बन्धुभावकी स्थापना हो, इसी भावनाका वह सर्वत्र उपदेश भी करता है । सभी मनुष्य संपूर्ण बन्धुभाव स्थापित करनेका प्रयत्न करें । विश्वमें सब जगह प्रेमका प्रसार करें ॥ ९ ॥

द्युलोकमें पांच बैल हैं । शरीरमें सिर द्युलोक है । इसमें आंख, नाक, कान, मुख और रसना ये पांच बहुत शक्तिशाली इन्द्रियें हैं । इन्हींको पंचवृषभ, पंचप्राण, पंच अग्नि आदि कहा जाता है । देवताओंकी उपासना प्रारंभ होते ही ये पांचों एकदम विषयोंसे निवृत्त होते हैं । मनके साथ साथ ये इन्द्रियें भी उपासनामें तल्लीन हो जाती हैं ॥ १० ॥

११५७ सुपर्णा एत आसते मध्यं आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ११ ॥
११५८ नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १२ ॥
११५९ अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान् यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १३ ॥
११६० सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १४ ॥
११६१ ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १५ ॥

अर्थ— [११५७] (एते सुपर्णाः) ये सुन्दर पक्षी (आरोधने दिवः मध्ये) द्युलोकके मध्यभागमें (आसते) रहते हैं, (ते यह्वतीः अपः तरन्तं वृकं पथः) वे विस्तृत जलमें तैरनेवाले भेडियेको मार्गसे (सेधन्ति) हटा देते हैं (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ ११ ॥

[११५८] (देवासः) हे देवो ! (नव्यं उक्थ्यं सुप्रवाचनं तत् हितं) यह नवीन गाने योग्य उत्कृष्ट स्तोत्र हितकारक है (सिन्धवः ऋतं अर्षन्ति) नदियाँ जलको ला रही हैं (सूर्यः सत्यं तातान) और सूर्यने यज्ञ फैलाया है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १२ ॥

[११५९] (अग्ने) हे अग्ने ! (तव त्यत् उक्थ्यं आप्यं) तेरा वह प्रशंसनीय बन्धुभाव (देवेषु अस्ति) देवोंके साथ है (सः विदुष्टरः) वह तू विशेष ज्ञानी (नः सत्तः) हमारे यज्ञमें (मनुष्वत्) मनुष्यके समान बैठकर (देवान् आ यक्षि) देवोंको यज्ञमें ला। (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १३ ॥

[११६०] (मनुष्वत् सत्तः होता) मनुष्यके समान यज्ञमें बैठनेवाला (विदुष्टरः देवः) ज्ञानी होता (देवेषु मेधिरः अग्निः) और देवोंमें अधिक बुद्धिमान् यह अग्निदेव (देवान् अच्छ हव्या सुषूदति) देवोंके प्रति हव्य पदार्थोंको पहुंचाता है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १४ ॥

[११६१] (वरुणः ब्रह्म कृणोति) वरुण स्तोत्र करता है (तं गातुविदं ईमहे) उस मार्गदर्शक प्रभुकी हम प्रशंसा करते हैं (हृदा मतिं वि ऊर्णोति) हृदयसे बुद्धिको वही खोल देता है (नव्यः ऋतं जायताम्) इससे नवीन सत्य प्रकट होता है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १५ ॥

भावार्थ— उत्तम पंखवाले पक्षी द्युलोकमें स्थित हैं, वे पक्षी वेगसे तैरनेवाले प्रवाहोंके मार्गमें आनेवाले भेडियेको दूर कर देते हैं। यहां ये पक्षी सूर्य किरणें हैं और भेडिया अन्धकार है। ये सूर्यकिरण अन्धकारको दूर करके प्रकाशका मार्ग खोल देते हैं। अज्ञानरूप अन्धकारको दूर करके प्रकाशके मार्गको प्राप्त करना दुःखसे मुक्त होनेका साधन है ॥ ११ ॥

नवीन स्तोत्र बार बार पढकर मनन करने योग्य और हितकारक है। जिस तरह नदियोंमें जल बहता है और जैसे सूर्यप्रकाश फैलता है, उसी प्रकार विद्यारूपी जल शान्ति और प्रकाश देकर सबका हित करता है ॥ १२ ॥

दैवी सम्पत्तिवाले विबुधोंके साथ जो बंधुभाव होता है वही प्रशंसनीय होता है अर्थात् दुष्टोंके साथ अपना सम्बन्ध रखना उचित नहीं है। मनुष्यको चाहिए कि वह अत्यन्त ज्ञानी बनकर देवोंका-विद्वानोंका अपने घरमें सम्मान करे ॥ १३ ॥

अत्यन्त ज्ञानी बुद्धिमान् अग्नि जैसा तेजस्वी पुरुष दिव्य विबुधोंका अन्नपानादि द्वारा सत्कार करता है ॥ १४ ॥

वरिष्ठ ज्ञानी ही उत्तम काव्य बनाता है। बिना ज्ञानके मार्गदर्शन असंभव है। अतः जो मार्गदर्शन कर सकता है, उसीको प्राप्त करना चाहिए। उसके मार्गदर्शनसे उन्नतिको प्राप्त करना चाहिए। वह ज्ञानी अपने हृदयसे सद्बुद्धिको प्रकट करके जनताका मार्गदर्शन करता है। नयी रीतिसे सत्यका मार्ग बताता है। इसीलिए सज्जनोंकी संगतिमें ही रहना चाहिए ॥ १५ ॥

११६२ असौ यः पन्थां आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स दे॑वा अतिक्रमे तं म॑र्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १६ ॥
११६३ त्रितः कूपेऽवहितो देवान् ह॑वत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १७ ॥
११६४ अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ठामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १८ ॥
११६५ एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तो ऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥

अर्थ— [११६२] (यः असौ आदित्यः पन्थाः) यह जो आदित्यरूपी मार्ग (दिवि प्रवाच्यं कृतः) द्युलोकमें स्तुतिके लिये योग्य किया गया है (देवाः) हे देवो ! (सः न अतिक्रमे) उसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिये। (मर्तासः) हे मानवो ! (तत् न पश्यथ) वह मार्ग तुम देख भी नहीं सकते (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १६ ॥

१ आदित्यः पन्थाः न अतिक्रमे— आदित्य मार्गका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए ।

२ मर्तासः तत् न पश्यथ— साधारण मनुष्य उस मार्गको देख भी नहीं सकते ।

[११६३] (कूपे अवहितः त्रितः) कुएमें पडे हुए त्रितने (ऊतये देवान् हवते) अपनी सुरक्षाके लिये देवोंकी प्रार्थना की । (बृहस्पतिः तत् शुश्राव) बृहस्पतिने वह सुनी (अंहूरणात् उरु कृण्वन्) और कष्टोंसे छूटनेके लिये विस्तृत मार्ग बना दिया । (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तम्) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १७ ॥

[११६४] (अरुणः वृकः) लाल रंगके भेडियेने (मा सकृत् पथा यन्तं ददर्श हि) एक बार मुझे मार्गसे जाते हुए देखा । (पृष्ठ्यामयी तष्टा इव) पीठमें दर्द होनेवाले बढईके समान (निचाय्य उत् जिहीते) उठकर वह मुझे चलाने लगा । (रोदसी) हे भूलोक और द्युलोको ! (मे अस्य वित्तम्) यह मेरी प्रार्थना जान लो ॥ १८ ॥

[११६५] (एना आंगूषेण) इस स्तोत्रसे (इन्द्रवन्तः सर्ववीराः) इन्द्रके सामर्थ्यसे युक्त होकर (वयं वृजने अभि ष्याम) हम सब वीर बनकर युद्धमें शत्रुको परास्त करें । (तत् नः) इस मेरी इच्छाका (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम्) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ सब देव अनुमोदन करें ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह जो सूर्यका प्रकाश मार्ग द्युलोकमें प्रशंसित हुआ है, उसका उल्लंघन करना योग्य नहीं है । इस सूर्यके प्रकाश मार्गको सिर्फ ज्ञानी ही देख सकते हैं, सर्व साधारण मनुष्य इसे देख नहीं सकते । इस मार्गकी बहुत स्तुति गाई गई है । मनुष्योंको इसी सूर्य मार्गसे जाना चाहिए । इस मार्गसे जाकर वह सभी तरहके बंधनोंसे मुक्त हो जाता है ॥१६॥

कूपमें पडे हुए त्रितने अपने उद्धारके लिए देवोंकी प्रार्थना की । बृहस्पतिने उसकी पुकार सुनी और उसे अधोगतिसे ऊपर उठाकर उन्नत किया । दुःखके अन्दर पडा हुआ मनुष्य दुःखसे मुक्त होनेके लिए ज्ञानियोंकी प्रार्थना करता है। तब ज्ञानी उसके आर्तनादको सुनकर उसके पास जाते हैं और उसका उद्धार करते हैं ॥ १७ ॥

लाल रंगका उदय होता हुआ सूर्य सब लोगोंका निरीक्षण करता चलता है । उदय होनेके साथ ही वह सबको अपने अपने कामोंमें प्रेरित करता है साथ ही यह भी देखता है कि मनुष्य अपने ठीक ठीक मार्ग पर चल रहे हैं या नहीं । तब वह अधोगतिकी ओर जानेवालोंका उद्धार करता है, उन्हें उन्नत करता है और दुःखसे मुक्त करता है ॥ १८ ॥

इस सूक्तके मननसे हम सब वीर बन कर युद्धमें सब शत्रुओंको परास्त करें और विजयी बनें । मित्र, वरुण आदि सब देव हमारे इस प्रस्तावका अनुमोदन करें और हमारी सहायता करें ॥ १९ ॥

[१०६]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- जगती; ७ त्रिष्टुप् ।)

११६६ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ १ ॥
११६७ त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ २ ॥
११६८ अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ३ ॥
११६९ नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ४ ॥

[१०६]

अर्थ— [११६६] (ऊतये इन्द्रं, मित्रं, वरुणं, अग्निं) हम सब अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि (मारुतं शर्धः) मरुतोंके संघ, (अदितिं हवामहे) तथा अदितिकी प्रार्थना करते हैं (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे, (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ १ ॥

[११६७] (आदित्याः देवाः) हे आदित्य देवो ! (ते) वे आप सब यहां हमारे (सर्वतातये) यज्ञके लिये (आ गत) आओ (वृत्रतूर्येषु) असुरोंके नाश करनेके कार्योंमें (शंभुवः भूत) सुख देनेवाले बनो । (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ २ ॥

[११६८] (सुप्रवाचनाः पितरः) उत्तम प्रशंसाके योग्य सब पितर (नः अवन्तु) हमारी सुरक्षा करें (उत देवपुत्रे) और देवकन्याएँ (ऋतावृधा देवी) सत्यका संवर्धन करनेवाली देवियाँ हम सबकी सुरक्षा करें । (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ ३ ॥

[११६९] (नराशंसं वाजिनं) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित बलिष्ठ वीरका (वाजयन् इह) बल हम यहां बढाते (क्षयद्वीरं) जिसके पास वीर रहते हैं (पूषणं सुम्नैः ईमहे) ऐसे पूषाकी शुभ मनोभावनाओंसे हम प्रशंसा करते हैं । (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— हम अपनी सुरक्षाके लिए इन्द्र आदि देवोंकी प्रार्थना करते हैं । ये सब हमारे यज्ञमें आवें और असुरोंके नाश करनेके कार्यमें हमारी सहायता करें । तथा जिस प्रकार कठिन रास्तोंसे रथको सम्हालकर चलाते हैं, उसी प्रकार हमें सब सकटोंसे पार करायें ॥ १-२ ॥

हम बलिष्ठ वीरकी स्तुति करते हैं, और सदा वीरोंको अपने पास रखनेवाले पूषाकी भी हम प्रार्थना करते हैं, वे सब देवता, देवकन्या और अन्य देवियां मिलकर हमारी रक्षा करें ॥ ३-४ ॥

*

११७० बृह॑स्पते॒ सद॒मिन्नः सु॒गं कृ॑धि॒ शं योर्यत् ते॒ मनु॑र्हितं॒ तदी॑महे ।
रथं॒ न दु॒र्गाद् व॑सवः सुदानवो॒ विश्व॑स्मान्नो॒ अंह॑सो॒ निष्पि॑पर्तन ॥ ५ ॥
११७१ इन्द्रं॒ कुत्सो॑ वृत्र॒हणं॒ शची॒पतिं॑ का॒टे निबा॑ळ्ह॒ ऋषि॑रह्वदू॒तये॑ ।
रथं॒ न दु॒र्गाद् व॑सवः सुदानवो॒ विश्व॑स्मान्नो॒ अंह॑सो॒ निष्पि॑पर्तन ॥ ६ ॥
११७२ दे॒वैर्नो॑ दे॒व्यदि॑ति॒र्नि पा॑तु दे॒वस्त्रा॒ता त्रा॑यता॒मप्र॑युच्छन् ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ ७ ॥

[१०७]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११७३ य॒ज्ञो दे॒वानां॒ प्रत्ये॑ति सु॒म्नमादि॑त्यासो॒ भव॑ता मृळ॒यन्तः॑ ।
आ वो॒ऽर्वाची॑ सुम॒तिर्व॑वृत्याद॒ꣳहोश्चि॒द्या व॑रिवो॒वित्त॒रास॑त् ॥ १ ॥

अर्थ— [११७०] (बृहस्पते) हे बृहस्पते ! (सदं इत् नः सुगं कृधि) सदा ही हमारे मार्ग सुगम कर (यत् ते मनुः हितं) जो तेरे पास मानवोंका हित करनेवाला (तत् शं योः ईमहे) सच्चा सुख और दुःख दूर करनेका साधन है, वही हम चाहते हैं। (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे, (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं, (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ ५ ॥

[११७१] (काटे निबाळ्हः कुत्सः ऋषिः) कुवेंमें पडा हुआ कुत्स ऋषि (ऊतये) अपनी सुरक्षाके लिये (वृत्रहणं शचीपतिं इन्द्रं अह्वत्) शत्रुनाशक तथा शक्तिशाली इन्द्रकी प्रार्थना करता रहा (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान देनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्माद् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जैसे कठिन मार्गसे रथ चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) वैसे हम सबको पार करो ॥ ६ ॥

[११७२] (देवी अदितिः) देवी अदिति (देवैः) देवोंके साथ (नः नि पातु) हमारी सुरक्षा करे (त्राता देवः) संरक्षक देव (अप्रयुच्छन्) दुर्लक्ष्य न करता हुआ (त्रायतां) हमारी सुरक्षा करे (नः) हमारा (तत्) यह ध्येय (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्यौ आदि देव सिद्ध करनेमें सहायक हों ॥ ७ ॥

[१०७]

[११७३] (यज्ञः देवानां सुम्नं प्रति एति) यज्ञ देवोंको शुभबुद्धि प्राप्त करता है (आदित्यासः) हे आदित्यो ! (मृळयन्तः भवत) तुम हमें सुख देनेवाले बनो। (वः सुमतिः अर्वाची आ ववृत्यात्) आपकी शुभ बुद्धि हमारे पास आवे (या अंहोः चित् वरिवो-वित्तरा असत्) जो संकटोंसे बचाती और उत्तम धन देती है ॥ १ ॥

भावार्थ— संकटोंके गर्तमें गिरे हुए कुत्सने सुरक्षाके लिए शक्तिशाली इन्द्रकी प्रार्थना की, तब इन्द्रने आकर उसकी सहायता की । बृहस्पति भी मानवोंका सच्चा हित करनेवाला है तथा सच्चा सुख देनेवाला है, वह हमारी सहायता करे ॥५–६॥

देवी और अखण्डनीय देवी हमारी रक्षा करे । तथा अन्य देव भी दुर्लक्ष्य न करते हुए हमारी सहायता करें, इसके साथ ही वरुण, अदिति आदि देव भी हमारी हरतरहसे सहायता करें ॥ ७ ॥

यज्ञसे सुबुद्धि प्राप्त होती है । यज्ञ अर्थात् सज्जनोंके साथ संगति करनेसे बुद्धि पवित्र एवं शुद्ध होती है । सुबुद्धिसे उत्तम सुख मिलता है । वह संकटोंसे बचाती है और उत्तम यश देती है ॥ १ ॥

११७४ उप॑ नो दे॒वा अव॒सा ग॑म॒न्त्वङ्गि॑रसां॒ साम॑भिः स्तू॒यमा॑नाः ।
इन्द्र॑ इन्द्रि॒यैर्म॒रुतो॑ म॒रुद्भि॑रादि॒त्यैर्नो॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत् ॥ २ ॥

११७५ तन्न॒ इन्द्र॒स्तद् वरु॑ण॒स्तद॒ग्नि॒स्तद॑र्य॒मा तत् स॑वि॒ता चनो॑ धात् ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ ३ ॥

[१०८]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११७६ य इ॑न्द्राग्नी चि॒त्रत॑मो॒ रथो॑ वा॒मभि विश्वा॑नि॒ भुव॑नानि॒ चष्टे॑ ।
तेना या॑तं स॒रथं॑ तस्थि॒वांसा॒था सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ १ ॥

११७७ याव॑दि॒दं भुव॑नं॒ विश्व॒मस्त्यु॑रु॒व्यचा॑ वरि॒मता॑ गभी॒रम् ।
ताव॑ाँ अ॒यं पात॑वे॒ सोमो॑ अ॒स्त्वर॒मिन्द्रा॑ग्नी॒ मन॑से यु॒वभ्या॑म् ॥ २ ॥

अर्थ— [११७४] (अङ्गिरसां सामभिः स्तूयमाना देवाः) अङ्गिरसोंके सामोंसे प्रशंसित हुए देव (अवसा) सुरक्षाके साधनोंसे युक्त होकर (नः उप आ गमन्तु) हमारे पास आवें। (इन्द्रः इन्द्रियैः) इन्द्र अपनी शक्तियोंके (मरुतः मरुद्भिः) मरुत् वीरोंके (अदितिः आदित्यैः) तथा अदिति आदित्योंके साथ (नः शर्म यंसत्) हम सबको सुख देवे ॥ २ ॥

[११७५] (तत् चनः नः) वह मधुर अन्न हम सबको (इन्द्रः, तत् वरुणः, तत् अग्निः, तत् अर्यमा, तत् सविता धात्) इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा, सविता देवे (तत् नः) और इस हमारी इच्छाका अनुमोदन (मित्रः वरुणः अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देव करें ॥ ३ ॥

[१०८]

[११७६] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (वां चित्रतमः यः रथः) आपका जो विलक्षण रथ है (विश्वानि भुवनानि अभि चष्टे) वह सब भुवनोंको देखता है । (तेन सरथं तस्थिवांसा) उस रथमें इकट्ठे बैठकर (आ यातं) तुम दोनों यहां आओ । (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और सोमका निचोडा हुआ रस पीओ ॥ १ ॥

[११७७] (इदं विश्वं भुवनं) यह सब विश्व (यावत् उरुव्यचा वरिमता गभीरं अस्ति) जितना विस्तृत और उत्तम गंभीर है (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (युवभ्यां पातवे) तुम्हारे पीनेके लिए तैयार किया हुआ यह (सोमः) सोमरस (तावन्) वैसा ही है। (मनसे अरं अस्तु) यह तुम्हारी इच्छाके लिये यह पर्याप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ— अंगिरसोंके सामगानोंसे आकृष्ट होकर देव सुरक्षाके साधनोंके साथ, इन्द्र अपनी शक्तियों सहित, मरुत् अपने वीरोंके साथ और अदिति अपने आदित्योंके साथ आकर हमें सुख देवें, तथा वरुण, अग्नि, सिन्धु, पृथिवी आदि देव भी हमारी हर तरहसे सहायता करें ॥ २-३ ॥

हे वीर और ज्ञानी ! तुम दोनोंका रथ बहुत सुन्दर है, उस पर बैठनेवाला सब लोकोंका निरीक्षण करता है । उसी रथपर बैठकर तुम दोनों इधर आओ । इसी प्रकार वीर और ज्ञानी अपने राष्ट्रके सब देशों और प्रान्तोंका निरीक्षण करें । देशमें ज्ञान प्रसार और उसकी सुरक्षापर ध्यान दें ॥ १ ॥

११७८ चक्राथे हि सध्र्य१ङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥ ३ ॥

११७९ समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥

११८० यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ५ ॥

११८१ यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ६ ॥

अर्थ— [११७८] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि! (नाम) तुम दोनोंका नाम (सध्र्यक् भद्रं चक्राथे) साथ साथ ही कल्याण करनेवाला है। (उत) और (वृत्रहणौ) हे वृत्रका वध करनेवालो! (सध्रीचीना स्थः) तुम दोनों साथ रहते हो (हि वृषणा) हे बलवान् वीरो! (तौ सध्र्यञ्चा निषद्य) वे तुम दोनों साथ बैठकर (वृष्णः सोमस्य आ वृषेथां) बलवर्धक सोमरससे बल बढाओ ॥ ३ ॥

[११७९] (अग्निषु समिद्धेषु) अग्नि प्रदीप्त होनेपर (आनजाना) जिनके लिये हवन हो रहे हैं, (यतस्रुचा) जिनके लिये चमस भरकर रखे हैं (बर्हिः उ तिस्तिराणा) आसन जिनके लिये फैलाये जा रहे हैं (इन्द्राग्नी) ऐसे हे इन्द्र और अग्नि! (तीव्रैः परिषिक्तेभिः सोमैः) तीव्र सोमरस पानी मिलाकर तैयार होते ही (अर्वाक् सौमनसाय आयातं) आप हमारे पास सोमपानके लिये आईये ॥ ४ ॥

[११८०] (हे इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि! (यानि वीर्याणि चक्रथुः) जो वीरताके कर्म तुमने किये थे (यानि रूपाणि वृष्ण्यानि) और जो रूप बलके साथ तुमने प्रकट किये (वां प्रत्नानि शिवानि या सख्या) तथा तुम्हारे जो पुरातन कालसे चले आये कल्याण करनेवाले मित्रताके कर्म हैं (तेभिः सुतस्य सोमस्य पिबतं) उनका स्मरण करते हुए, इस सोमरसका पान करो ॥ ५ ॥

[११८१] (प्रथमं वां वृणानः) सबसे प्रथम तुम दोनोंकी प्राप्तिकी इच्छासे (यत् अब्रवं) मैंने कहा था (असुरैः अयं नः सोमः विहव्यः) कि, 'ऋत्विजोंने यह हमारा सोमरस आपको देनेके लिये ही तैयार किया है' (सत्यां तां श्रद्धां अभि आ यातं) अतः इस मेरी सच्ची श्रद्धाके अनुसार तुम दोनों मेरे पास आओ (हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और निचोडे सोमरसका पान करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह विश्व इतना विस्तृत और गम्भीर है कि इसका अन्त पाना असंभव है। वीर गण इस विश्वकी गम्भीरता पर विचार करें और जहांतक हो सके सबका कल्याण करें। वीरोंको चाहिए कि वे घेरनेवाले शत्रुओंका नाश करें और अपना नाम जनताके कल्याणके कार्यमें यशस्वी करें ॥ २–३ ॥

प्रदीप्त अग्निमें हवन करें। यह आत्मसमर्पणका पाठ है। जिस तरह अग्निमें हवि अर्पित की जाती है, उसी प्रकार वीर जनताके कल्याणके कामोंमें अपना जीवन समर्पित करें। ये वीर यथाशक्ति पराक्रम करें। क्योंकि पराक्रम करना ही वीरोंका स्वभाव है। ये वीर अपने शरीर सुदृढ और बलिष्ठ बनाते हैं। ऐसे बलवान् वीरोंकी मित्रता स्थायी और कल्याण करनेवाली होती है ॥ ४–५ ॥

११८२ यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यात-मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥
११८३ यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यात-मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ८ ॥
११८४ यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यात-मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९ ॥
११८५ यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यात-मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १० ॥
११८६ यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत् पृथिव्यां यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यात-मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—[११८२] (यजत्रा इन्द्राग्नी) हे यज्ञके योग्य इन्द्र और अग्नि ! (स्वे दुरोणे यत्) जो तुम अपने घरमें (यत् वा ब्रह्मणि) ज्ञानी भक्तके प्रवचनमें (राजनि) अथवा राजाके घरमें (मदथः) आनन्द मनाते होंगे (अतः परि) तो भी वहांसे (वृषणौ) हे बलवान् देवो ! (आयातं हि) इधर आजावो, (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और इस निचोडे सोमरसका पान करो ॥ ७ ॥

[११८३] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् यदुषु, तुर्वशेषु, यत् द्रुह्युषु, अनुषु, पूरुषु स्थः) तुम दोनों यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु अथवा पुरुके यज्ञोंमें हो (अतः) तो वहांसे (वृषणौ) हे बलवान् देवो ! (परि आ यातं हि) इधर आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और सोमरस पीओ ॥ ८ ॥

[११८४] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् अवमस्यां) तुम निचले (मध्यमस्यां) बीचके (उत परमस्यां पृथिव्यां स्थः) और ऊपरले भूविभागमें हो (वृषणौ) तो हे बलवान् देवो ! (अतः परि आ यातं हि) वहांसे इधर आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और यह सोमरस पीओ ॥ ९ ॥

[११८५] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् परमस्यां) तुम ऊपरके (मध्यमस्यां) बीचके (अवमस्यां पृथिव्यां स्थः) और नीचेके भूविभागमें हो (वृषणौ) तो हे बलवान् देवो ! (अतः परि आ यातं हि) वहांसे इधर आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और इस सोमरसका पान करो ॥ १० ॥

[११८६] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् दिवि) जो तुम दोनों द्युलोकमें (यत् पृथिव्यां) पृथ्वीपर (यत् पर्वतेषु) पर्वतोंमें (ओषधिषु) ओषधियोंमें (अप्सु स्थः) अथवा जलोंमें हो (वृषणौ) तो हे बलवान् देवो ! (अतः परि आ यातं हि) वहांसे यहां आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और इस सोमरसका पान करो ॥ ११ ॥

भावार्थ— वीरके मनमें श्रद्धा हो और वह श्रद्धा भक्तिसे देवोंकी उपासना करे । अश्रद्धासे दी गई हवि व्यर्थ होती है । इसलिए सदा श्रद्धासे ही अग्नि प्रज्वलित करें और श्रद्धापूर्वक ही उसमें हवि देवे । ये वीर अपने देशमें ज्ञानका प्रसार करके और उत्तम राज्यप्रबन्ध करके आनंदित होते हैं । प्रजाओंके आनन्दमें ही इनका आनन्द है ॥ ६–७ ॥

राष्ट्रके वीर अहिंसक, हिंसक शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले, देशद्रोहियोंको दूर करनेवाले, प्राणोंके बलसे युक्त और नगरोंमें रहनेवाले नागरिक इन पांच प्रकारके लोगोंकी रक्षा करते हैं और उनकी उन्नतिके लिए यत्न करते हैं । अथवा ये वीर पांचों वर्णोंके मानवोंका हित करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

पृथ्वीके निम्न, मध्य और ऊंचे प्रदेशमें ये वीर जाते हैं और वहांके जनोंका उद्धार करते हैं । ये सभी प्रदेशोंमें रहनेवाले मानवोंकी सेवा करते हैं ॥ ९–१० ॥

आकाश, पर्वत, पृथिवी, औषधि और जलस्थान आदिमें ये वीर जाते हैं । आकाशमें संचार विमानोंसे होता है । इन सब स्थानोंमें ये वीर जाते हैं और सब स्थानोंकी सुरक्षा करते हैं ॥ ११ ॥

११८७ यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यात—मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १२ ॥
११८८ एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १३ ॥

[१०९]

(ऋषिः– कुत्स आङ्गिरसः । देवता– इन्द्राग्नी । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

११८९ वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छ—न्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १ ॥
११९० अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्या—मिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २ ॥

अर्थ— [११८७] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (उदिता सूर्यस्य) सूर्यके उदय होनेपर (दिवः मध्ये) द्युलोकके मध्यमें (यत् स्वधया मादयेथे) अन्नसेवनका आनन्द लेते हों (अतः) तो भी (वृषणौ) हे बलवान् देवो ! (परि आ यातं हि) यहां आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और सोमके रसका पान करो ॥ १२ ॥

[११८८] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (सुतस्य एव पपिवांसा) सोमरसका पान करके (अस्मभ्यं विश्वा धनानि सं जयतं) हमें सब प्रकारके धन जीत कर दो (नः तत्) हमारी इस इच्छाको (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ आदि देव सहायक हों ॥ १३ ॥

[१०९]

[११८९] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (वस्यः इच्छन्) अभीष्ट–प्राप्तिकी इच्छा करता हुआ मैं (ज्ञासः उत वा सजातान्) कोई ज्ञानी और जातिबांधव मिलेंगे ऐसा (मनसा वि हि अख्यं) मनसे विचार करके देख रहा हूं (मह्यं युवत् अन्या प्रमतिः न अस्ति) मेरे विषयमें तुम्हारी विभिन्न बुद्धि नहीं है (सः) वह मैं (वां वाजयन्तीं धियं अतक्षतं) तुम्हारे सामर्थ्यका वर्णन करनेवाला स्तोत्र बनाता हूं ॥ १ ॥

[११९०] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (विजामातुः उत वा स्यालात्) आप दामाद अथवा सालेसे भी (घ वां भूरिदावत्तरा अश्रवं हि) अधिक दान करनेवाले हैं ऐसा मैं सुनता हूं (अथ युवभ्यां सोमस्य प्रयती) तुम दोनोंके लिये सोमरसका अर्पण करके (नव्यं स्तोमं जनयामि) नवीन स्तोत्र निर्माण करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ— सूर्यके उदय होनेपर सब वीर मिलकर सूर्यप्रकाशमें खाते पीते और आनन्द मनाते है। वीरोंका यह स्वभाव ही होता है कि जो भी आनंद वे मनाते हैं, सब मिलकर मनाते हैं। संघटन करनेका यह एक उत्तम मार्ग है। ये जो भी काम करते हैं, मिलकर करते हैं। ये सभी वीर मिलकर शत्रुओंपर चढाई करते हैं, मिलकर धन जीतते हैं और आपसमें बांटते हैं। सभी स्वयंसेवक इस प्रकार जनताकी सेवा करते हुए अपना जीवन यशस्वी बनाते हैं ॥ १२–१३ ॥

धनकी इच्छा करता हुआ मनुष्य ज्ञानी और सजातियोंकी सहायताकी अपेक्षा करे। यह सब वीरोंकी सुरक्षामें रहते हुए ही हो सकता है। यदि धन प्राप्त करनेकी इच्छा हो, तो प्रथम ज्ञानियोंकी संगतिसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और सजातियोंकी सहानुभू[illegible] करनी चाहिए। बल बढानेवाली बुद्धि निर्माण करनी चाहिए। बुद्धि ऐसी चाहिए कि जिससे व्यक्ति और संघका बल [illegible]हे ॥ १ ॥

जामाता और सालेसे भी अधिक धन ये वीर देते हैं। जामाता जिस प्रकार अपनी पत्नीके लिए अथवा साला जिस प्रकार अपनी बहिनके लिए आनंददायी पदार्थ बहुत ज्यादा देता है, उससे भी अधिक धन ये वीर देते हैं। ऐसे दानियोंका सर्वत्र सत्कार होना चाहिए ॥ २ ॥

११९१ मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥ ३ ॥
११९२ युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४ ॥
११९३ युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥
११९४ प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥

अर्थ— [११९१] (रश्मीन् मा छेद्म) ' हमारे संतानरूपी किरणोंका विच्छेद न हो ' (इति नाधमानाः) ऐसी प्रार्थना करनेवाले (पितॄणां शक्तीः अनुयच्छमानाः) तथा ' पितरोंकी शक्ति वंशजोंमें अनुकूलतासे रहे, ऐसी इच्छा करनेवाले (वृषणः) बलवान् (इन्द्राग्निभ्यां) इन्द्र और अग्निकी कृपासे (कं मदन्ति) सुख आनन्दसे प्राप्त करते हैं, (हि अद्री धिषणायाः उपस्थे) इसलिये इन देवोंको सोमरस देनेके लिये ये दो पत्थर सोमपात्रोंके समीप ही रखे हैं ॥ ३ ॥

[११९२] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (युवाभ्यां मदाय) तुम्हारे संतोषके लिये (देवी उशती धिषणा) ये दिव्य सोमपात्र (सोमं सुनोति) सोमरस निकालकर भरकर रखे हुए हैं। (अश्विना) हे अश्विनौ ! (भद्रहस्ता) उत्तम हाथवाले (सुपाणी तौ) कल्याण करनेवाले तुम दोनों (आ धावतं) दौडते हुए इधर आओ (अप्सु मधुना पृङ्क्तं) और जलोंमें इस मधुर रसको मिला दो ॥ ४ ॥

[११९३] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (वसुनः विभागे) धनका बंटवारा करनेके समय (वृत्रहत्ये) तथा वृत्रका वध करनेके कार्यके समय (तवस्तमा युवां) आप दोनों सबसे अधिक वेग दर्शाते हैं (शुश्रव) ऐसा हम सुनते हैं, (चर्षणी) हे फूर्तीवाले देवो ! (तौ) वे आप दोनों (अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आसद्य) इस यज्ञमें आसनपर बैठकर (सुतस्य प्र मादयेथां) सोमरससे आनन्द प्राप्त करो ॥ ५ ॥

[११९४] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (पृतनाहवेषु चर्षणिभ्यः) युद्धार्थ आह्वान करनेवाले वीरोंकी अपेक्षा (महित्वा प्र रिरिचाथे) महत्त्वसे तुम अधिक श्रेष्ठ हो । (पृथिव्याः प्र) तथा पृथिवी (दिवः च, सिन्धुभ्यः प्र, गिरिभ्यः) द्युलोक, नदियाँ, पर्वत (प्र, अन्या विश्वा भुवना) तथा जो अन्य भुवन होंगे, उनसे भी तुम प्रभावमें अधिक हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे वीरो ! किरणोंका विच्छेद न करो प्रकाशको मत हटाओ । सन्ततिका विच्छेद न करो। परम्पराको छिन्न भिन्न न करो । पितरोंकी जो शक्तियां हैं, वे शक्तियां सन्तानोंमें उतरें, वे बीचमें विच्छिन्न न हों। पितरोंकी अपेक्षा सन्तानोंमें अधिक शक्तियां हों । वंशमें उत्तरोत्तर शक्तियोंकी वृद्धि होती जाए, कभी शक्ति कम न हो ॥ ३ ॥

घुडसवार कल्याणके कर्म करनेवाले हों । वीर सदा ऐसे ही कर्म करें, जिनसे जनताका कल्याण ही हो । धनका दान करते समय तथा शत्रुपर आक्रमण करनेके समय वीरोंका वेग बढे । दान और शत्रुनाश ये दोनों कार्य अत्यन्त उत्साहसे करें ॥ ४–५ ॥

इन्द्र और अग्नि ये दोनों देव युद्धोंके समय जनताका हित करनेके लिए उत्साहसे भरपूर रहते हैं। युद्धके अवसर पर ये वीर कभी भी पीछे नहीं हटते । ऐसे जनहित करनेवाले वीरोंका महत्त्व द्युलोक, नदियां, पर्वत तथा अन्य भुवनोंसे भी अधिक है । क्योंकि इनसे मिलनेवाली सहायताकी अपेक्षा वीरोंकी सहायता अधिक महत्त्वपूर्ण है ॥ ६ ॥

११९५ आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥
११९६ पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ता—स्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

[११०]

(ऋषिः– कुत्स आङ्गिरसः । देवता– ऋभवः । छन्दः– जगती; ५, ९ त्रिष्टुप् ।)

११९७ ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥ १ ॥

अर्थ— [११९५] (वज्रबाहू इन्द्राग्नी) वज्रके समान जिनके बाहु बलवान् हैं, ऐसे हे इन्द्र और अग्नि ! (आ भरतं) धन हमारे घरोंमें भर दो, (शिक्षतं) हमें सिखा दो (अस्मान् शचीभिः अवतं) और हमें सामर्थ्यसे सुरक्षित करो (येभिः नः पितरः सपित्वं आसन्) जिनके साथ हमारे पितर मिले रहे, (ते सूर्यस्य रश्मयः इमे नु) वेही सूर्यकी किरणें ये हैं ॥ ७ ॥

[११९६] (वज्रहस्ता पुरंदरा इन्द्राग्नी) हे हाथमें वज्र धारण करनेवाले, शत्रुके नगर तोडनेवाले इन्द्र और अग्नि ! (शिक्षतं) हमें शिक्षित करो (भरेषु अस्मान् अवतं) युद्धोंमें हमें सुरक्षित करो (नः तत्) इस हमारी इच्छाको (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देव सहायता करें ॥ ८ ॥

[११०]

[११९७] (ऋभवः) हे ऋभुदेवो ! (मे अपः ततं) मेरा कर्तव्य कर्म समाप्त हुआ है, (तत् उ पुनः तायते) वही फिरसे करूंगा (स्वादिष्ठा धीतिः) यह मीठी स्तुति (उचथाय शस्यते) देवोंका वर्णन करनेके लिये कही जाती है (अयं समुद्रः) यह सोमरसका समुद्र (इह विश्वदेव्यः) यहां सब देवोंके लिये रखा है (स्वाहाकृतस्य) स्वाहा कहनेपर (सं उ तृप्णुत) उससे तृप्त हो जाओ ॥ १ ॥

भावार्थ— धन भरपूर देना चाहिए, अनपढोंको ज्ञान देना चाहिए, शक्तियोंको बढाकर सबकी सुरक्षा करनी चाहिए । ज्ञान, धन और शक्ति इन तीनसे ही सुरक्षा होती है । इन वीरोंके संरक्षणका कार्य सूर्यकी किरणोंके समान है । जैसे सूर्यकिरणें अपने प्रकाश द्वारा रोग दूर करके सबकी सुरक्षा करती हैं, वैसे ही यह वीर सब शत्रुओंको दूर करके सबकी सुरक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले, वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले, बलवान् बाहुवाले वीर प्रजाको युद्ध विद्याकी शिक्षा देवें और युद्धोंके समय सबकी सुरक्षा करें ॥ ८ ॥

मेरा यह व्यापक कर्म फैल गया है, वही कर्म मैं पुनः फैलाऊँगा । " अपस् " का अर्थ सार्वदेशिक हितका कर्म है । वह कर्म कि जिसका परिणाम सब मनुष्य जातितक अच्छी तरह पहुंचता है, जिससे जनताका हित होता है, ऐसा यज्ञकर्म । देवपूजा, राष्ट्रमें प्रजाओंका संगठन और निर्बलोंको दान देकर सबल बनानेका काम मनुष्य बार बार करें ॥ १ ॥

११९८ आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥

११९९ तत् सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥

१२०० विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥

अर्थ— [११९८] (अपाकाः प्राञ्चः मम आपयः) अत्यंत प्राचीन मेरे आप्त जैसे आप (के चित् आभोगयं इच्छन्तः) जब भोग करनेकी इच्छासे (यत् प्र ऐतन) आगे बढने लगे (सौधन्वनासः) तब हे सुधन्वाके पुत्रो । (चरितस्य भूमना) अपने सुचरित्रके महत्त्वसे (दाशुषः सवितुः गृहं) उदार दानवीर सविताके घरपर (अगच्छत) आप पहुंच गये ॥ २ ॥

[११९९] (यत् अगोह्यं श्रवयन्तः ऐतन) जब गुप्त न रहनेवाले सविताका यशगान करते हुए आप वहां गये (तत् सविता वः अमृतत्वं आसुवत्) तब उस सविताने उसी समय आपको अमरत्व दिया (असुरस्य) जीवन-शक्तिका प्रदान करनेवाल उस देवका (भक्षणं तं चमसं) भक्षण करनेका एकही चमस था (एकं चित् सन्तं चतुर्वयं अकृणुत) उस एक हीके आपने चार बना दिये ॥ ३ ॥

[१२००] (वाघतः शमी तरणित्वेन विष्ट्वी) उपासनाका कर्म शीघ्र कुशलतासे करनेवाले (मर्तासः सन्तः) ये मर्त्य होते हुए भी (अमृतत्वं आनशुः) अमरत्वको प्राप्त हुए । (सौधन्वनाः) ये सुधन्वाके पुत्र (सूरचक्षसः ऋभवः) सूर्यके समान तेजस्वी ऋभु (संवत्सरे धीतिभिः सं अपृच्यन्त) एकही वर्षके अन्दर स्तुतिस्तोत्रोंको भी प्राप्त हुए ॥ ४ ॥

१ मर्तासः अमृतत्वं आनशुः— मर्त्य मनुष्य भी देवत्व प्राप्त कर सकते हैं ।

भावार्थ— सभी मनुष्य उत्तम धनुषवाले हों, सभी वीर हों। युद्धके समय सभी शत्रुओंका मुकाबला करनेमें समर्थ हों। सभी प्राचीन पुरुषोंकी तरह आप्त अर्थात् श्रेष्ठ हों । सभी धार्मिक हों । सभीका चरित्र उत्तम और उदार हो। गरीबोंकी सहायता करनेवाले हों और दानवीर हों । इस प्रकार स्वयं उन्नत और श्रेष्ठ होकर दूसरोंको भी प्रेरणा देनेवाले हों ॥ २ ॥

ये ऋभुगण कुशल हैं । ये प्रथम मनुष्य थे, पर जब इन्होंने सबको प्रेरणा देनेवाले सविताकी प्रार्थना की, तो ये अमर हो गए । इसी प्रकार मनुष्य भी अपने प्रयत्नों और कुशलतासे अमर देव बन सकता है । अमर देव बननेके बाद ये सोमपानके अधिकारी बने और जीवनशक्ति प्राप्त की । यह सोम असुर अर्थात् प्राणशक्तिका दाता है । सोमरसमें जीवन सत्व अत्यधिक है इसलिए उसे असु-र कहा गया है । सोम यह ब्रह्मज्ञान है । ब्रह्मज्ञानी सर्वाधिक जीवनशक्तिवाला होता है। पर मनुष्य ब्रह्मज्ञानी तभी बन सकता है, जब वह देव बन जाए ॥ ३ ॥

ये ऋभु मर्त्य अर्थात् मरणशील होते हुए भी उपासना और अपनी कर्मकुशलताके द्वारा अमरत्वको प्राप्त हुए और अमरत्वको प्राप्त करके सूर्यके समान तेजस्वी होकर एक ही वर्षके अन्दर सबके द्वारा पूजे जाने लगे । इसी तरह मनुष्य मरणधर्म होनेपर भी भगवान्‌की उपासनासे अमरत्व प्राप्त कर सकता है और सूर्यके समान तेजस्वी होकर थोडे ही समयमें सबका पूज्य हो सकता है ॥ ४ ॥

१२०१ क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥ ५ ॥
१२०२ आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन् दिवो रजः ॥ ६ ॥
१२०३ ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ ७ ॥

अर्थ—[१२०१] (उपमं नाधमानाः) उपमा देनेयोग्य यशकी इच्छा करनेवाले (अमर्त्येषु श्रवः इच्छमानाः) देवोंमें भी कीर्तिकी इच्छा करनेवाले (उपस्तुताः ऋभवः) प्रशंसाको प्राप्त हुए ऋभुओंने (जेहमानं एकं पात्रं) वारंवार बर्ते जानेवाले एक पात्रको, (क्षेत्रमिव) क्षेत्रके समान (तेजनेनं वि ममुः) तीक्ष्ण धारवाले शस्त्रसे नापा और बन दिया ॥ ५ ॥

[१२०२] (अन्तरिक्षस्य नृभ्यः) अन्तरिक्षमें रहनेवाले इन मानवरूपधारी ऋभुओंके लिये (स्रुचा इव घृतं) चमससे घृतकी आहुति (मनीषां विद्मना) मनःपूर्वककी स्तुतिके साथ (आ जुहवाम) हम अर्पण करेंगे। (ये ऋभवः) ये ऋभु (अस्य पितुः) इस विश्वक पिताके साथ (तरणित्वा सश्चिरे) सत्वर कार्य करनेके कारण रहने लगे (दिवो रजः वाजं अरुहन्) द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकपर बलके साथ आरोहण करने लगे ॥ ६ ॥

[१२०३] (शवसा नवीयान् ऋभुः नः इन्द्रः) बलसे युक्त होनेके कारण नवीन जैसा तरुण ऋभु हमारे लिये इन्द्र ही है (वाजेभिः वसुभिः ऋभुः वसुः ददिः) बलों और धनोंके साथ रहनेवाले ये ऋभु हमें धनोंके दाता ही हैं (देवाः) हे देवो ! (युष्माकं अवसा) तुम्हारी सुरक्षासे सुरक्षित हुए हम (प्रिये अहनि) किसी प्रिय दिनमें (असुन्वतां पृत्सुतीः अभि तिष्ठेम) अयज्ञशील शत्रुओंकी सेनापर विजय प्राप्त करें ॥ ७ ॥

१ असुन्वतां पृत्सुतीः अभितिष्ठेम— यज्ञ न करनेवालोंकी सेनाका हम पराभव करें ।

भावार्थ— ऋभुओंने कुशलतासे पात्रको खेतके समान नाप कर उत्तम बनाया । ऋभु जो भी काम करते हैं, उत्तम रीतिसे करते हैं, इसीलिए वे देवोंमें भी यशके भागी होते हैं । प्रथम तो देव ही बनना मुश्किल, ऊपरसे देवोंमें भी यशस्वी होना तो और भी मुश्किल । पर जो मनुष्य ऋभुओंके समान कुशल होगा, वह अवश्य देवोंमें भी यशस्वी होगा । इस मंत्रमें खेतको मापनेकी उपमा दी है । वैदिक राज्यपद्धतिमें भी खेतोंकी लम्बाई चौडाईका परिमाण नापा जाता था । फिर नापकर उसपर कर आदि लगाये जाते थे ॥ ५ ॥

ये ऋभु मानवका रूप धारण कर अन्तरिक्षमें विचरते हैं । तथा अपने कार्य शीघ्रता एवं कुशलतासे करनेके कारण इस विश्वके पिता प्रजापतिके साथ रहते हैं तथा अपने बलसे बलशाली होकर द्युलोक और अन्तरिक्ष पर आरोहण करते हैं । जो मनुष्य अपने कार्योंको शीघ्रता एवं कुशलतासे करता है, तथा अपने बलसे बलशाली होता है, वह सभीके द्वारा प्रशंसित और पूज्य होता है ॥ ६ ॥

बलसे युक्त होनेके कारण ऋभु सदा नवीन तरुण जैसे दीखते हैं, इसलिए ये सदा इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यसम्पन्न होते हैं। ऐश्वर्यसम्पन्न होनेके साथ ही ये धन और बलका दान करके लोगोंकी सहायता करते हैं । उन ऋभुओंकी सहायता पाकर हम यज्ञ कार्य न करनेवाले अथवा यज्ञकार्यमें विघ्न डालनेवालोंका पराभव करें । राष्ट्रमें प्रजाओंके संगठनका कार्य अत्यन्त आवश्यक है, अतः इस पवित्र कार्यमें जो विघ्न डालते हैं, उनका पराभव अवश्य करना चाहिए ॥ ७ ॥

१२०४ निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥ ८ ॥
१२०५ वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृ-भुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता-मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

[१११]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- ऋभवः । छन्दः- जगती; ५ त्रिष्टुप् ।)

१२०६ तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापस-स्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद् वय-स्तक्षन् वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १ ॥
१२०७ आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥ २ ॥

अर्थ—[१२०४] (ऋभवः) हे ऋभुदेवो ! (चर्मणः गां निः अपिंशत) चर्मवाली अति कृश गौ तुमने सुंदर-रूपवाली बना दी (मातरं पुनः वत्सेन सं असृजत) तब उस गोमाताके साथ बछडेका संबंध भी तुमने करा दिया (सौधन्वनासः) हे सुधन्वाके पुत्रो ! (नरः) हे नेता वीरो ! (स्वपस्यया जिव्री पितरा) अपने प्रयत्नसे अति वृद्ध मातापिताओंको (युवाना अकृणोतन) तरुण बना दिया ॥ ८ ॥

[१२०५] (ऋभुमान् इन्द्र !) हे ऋभुओंके साथ इन्द्र ! (वाजसातौ वाजेभिः अविड्ढि) बलसे पराक्रम करनेके युद्धमें अपने सामर्थ्योंके साथ घुस जाओ (चित्रं राधः आदर्षि) विलक्षण धन हमें दो (नः तत्) यह हमारा प्रिय कार्य (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देवोंसे अनुमोदित होवे ॥ ९ ॥

[१११]

[१२०६] (विद्मनापसः) ज्ञानसे कुशल बने ऋभुदेवोंने (रथं सुवृतं तक्षन्) सुंदर रथ निर्माण किया । (इन्द्रवाहाः हरी वृषण्वसू तक्षन्) इन्द्रके रथमें जोडनेयोग्य घोडे भी बनाये (पितृभ्यां युवत् वयः ऋभवः तक्षन्) मातापिताओंके लिये तारुण्यकी आयु दी (वत्साय मातरं सचाभुवं तक्षन्) और बछडेके लिये माताको उसके साथ रहनेयोग्य बनाया ॥ १ ॥

[१२०७] (नः यज्ञाय) हमें यज्ञ करनेके लिये (ऋभुमत् वयः आ तक्षत) ऋभुओंके समान तेजस्वी आयु दो । (क्रत्वे दक्षाय) सत्कर्म करनेके लिये और बल बढानेके लिये (सुप्रजावतीं इषं) प्रजा बढानेवाला अन्न ही हमें दो (सर्ववीरया विशा) सब वीरोंके साथ और प्रजाके साथ (यथा क्षयाम) जिस तरह हम निवास कर सकें, (तत् इन्द्रियं) वैसा इन्द्रियसंबंधी बल (नः शर्धाय) हमारी संघटनाके लिये (सु धासथ) हममें उत्पन्न करो ॥ २ ॥

भावार्थ— ऋभुओंने ऐसी गौको, जिसपर केवल चर्म ही रह गया था और मांस पूरी तरहसे नष्ट हो चुका था, फिरसे सुन्दर अवयववाली और हृष्टपुष्ट बनाया । दुधारु बनाया, पश्चात् बछडेके साथ उसे संयुक्त किया । अपने प्रयत्नोंसे अत्यन्त वृद्ध मातापिताको भी तरुण बनाया । ऋभु कारीगरीमें तो कुशल हैं ही, पर चिकित्सामें भी पूरी तरह कुशल हैं ॥ ८ ॥

हे ऋभुओंके साथ रहनेवाले इन्द्र ! बलपूर्वक जिसमें पराक्रम किया जाता है, ऐसे युद्धमें अपने सामर्थ्यसे घुस जाओ और उसमें धनोंको जीतकर हमें दो । तुम्हारे साथ ही मित्र, वरुण आदि देवगण भी हमें धन प्रदान करें ॥ ९ ॥

अपने विज्ञान और कुशल कर्मसे सुन्दर रथ अच्छी तरह आच्छादित करके बनाया । ' विद्मना ' पद विज्ञानका सूचक और ' अपस् ' पद कुशल कर्मका द्योतक है । विज्ञान और कुशलतासे ही सब कर्म सिद्ध होते हैं । इन्होंने इन्द्रके रथके घोडे उत्तम रीतिसे सिखाकर तैय्यार किए, बलिष्ठ और हृष्टपुष्ट बनाये, तथा अपने पितरोंको तरुण बनाया ॥ १ ॥

१२०८ आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३ ॥
१२०९ ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून् वाजान् मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥ ४ ॥
१२१० ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१२०८] (नरः ऋभवः) हे नेता ऋभुवीरो ! (अस्मभ्यं सातिं आ तक्षत) हमें योग्य धन दो (रथाय सातिं) रथके लिये शोभा दो (अर्वते सातिं) घोडेके लिये बल दो (विश्वहा नः जैत्रीं सातिं सं महेत) सदा हमें विजय देनेवाला धन दो (पृतनासु जामिं अजामिं) युद्धोंमें हमारे संबंधी अथवा अपरिचित कोई भी सामने हो (सक्षणिं) हम उनका पराभव करें ॥ ३ ॥

[१२०९] (ऋभुक्षणं इन्द्रं ऊतये आ हुवे) ऋभुओंके साथ रहनेवाले इन्द्रको सुरक्षाके लिये बुलाते हैं। (ऋभून् वाजान् मरुतः उभा मित्रावरुणा अश्विना नूनं सोमपीतये) ऋभु, वाज, मरुत, दोनों मित्र और वरुण, दोनों अश्विदेव इन सबको सोमपानके लिये हम बुलाते हैं (नः सातये) हमें वे धनलाभके लिए (धिये जिषे हिन्वन्तु) बुद्धि और विजय प्रदान करें ॥ ४ ॥

[१२१०] (ऋभुः सातिं भराय सं शिशातु) ऋभु हमें धनदान भरपूर देवें (समर्यजित् वाजः) समरमें विजयी वाज (अस्मान् अविष्टु) हमें उत्साह देवे । (नः तत्) यह हमारी आकांक्षा (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आदि देव परिपूर्ण करें ॥ ५ ॥

१ समर्यजित् वाजः अस्मान् अविष्टु— सब शत्रुओंपर विजय प्राप्त करानेवाला बल हममें बढे ।

भावार्थ— ऋभुओंका तेजस्वी जीवन यज्ञ कार्यमें ही व्यतीत होता है । देवपूजा, संगठन और दानरूप शुभकर्मोंमें ही मनुष्यका सारा जीवन व्यतीत हो । सत्कर्म करने और बल बढानेके लिए ही मनुष्यका जीवन हो । मनुष्योंके संगठनके लिए ही इन्द्रियोंका बल हो । इस प्रकार संगठन शक्तिसे ही हम सब प्रजाओंके साथ रहें । ये ऋभु ऐसा अन्न तैय्यार करते थे जो बल बढानेवाला और सुसन्तानोत्पादक होता था । जिसका सेवन करनेसे निर्बल भी बलवान् और निस्सन्तान भी सन्तानवाले हो जाते थे । ये ऋभुओंकी कुशलताके कार्य थे ॥२॥

हमारे विजय देनेवाले वैभवका सदा सम्मान होता रहे । युद्धोंमें सदा, चाहे कोई हमारा सम्बन्धी हो या पराया हो, उन सबका हम पराभव करें और इस प्रकार हम नित्य विजय प्राप्त करें । ऋभुगण भी हमें शत्रुको हरानेके कार्यमें निपुण घोडे आदि धन देवें ॥ ३ ॥

स्तुति करनेवाले ऋभु मनुष्य होते हुए भी वे अमरत्व-देवत्वको प्राप्त हुए और एक ही वर्षमें उनकी स्तुतियां भी होने लगीं । इस तरह मनुष्य देवत्व प्राप्त करते थे । देवजाति तिब्बतमें रहती थी और मानवजाति आर्यावर्तमें रहती थी । आवश्यकतानुसार वीर तथा कुशल मानवोंको देवराष्ट्रमें रहनेका अधिकार मिलता था । इसी तरह ऋभु और मरुत् मानव होते हुए भी देवराष्ट्रमें रहनेके अधिकारी बने । इसी प्रकार सभी मनुष्य प्रयत्न करके देव बन सकते हैं । देव बनकर शत्रुओंको हरानेवाला बल प्राप्त कर सकते हैं । ऐसे प्रयत्नशील मनुष्यकी मित्र, वरुण आदि देवगण भी सहायता करते हैं ॥ ४-५ ॥

[११२]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- १ (आद्यपादस्य) द्यावापृथिव्यौ, १ (द्वितीयपादस्य), अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अश्विनौ, २-२५ अश्विनौ । छन्दः- जगती; २४-२५ त्रिष्टुप् ।)

१२११ ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये ऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथ स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥
१२१२ युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥

---

[११२]

अर्थ— [१२११] (यामन् इष्टये) पहिले ही समयमें यज्ञ करनेके लिए और (पूर्वचित्तये) प्रथम ही अपना चित्त लगानेके लिये (सुरुचं घर्मं) अच्छी दीप्तिवाले और गर्म (अग्निं द्यावा-पृथिवी ईळे) अग्नि और द्यावापृथिवीकी स्तुति मैं करता हूँ; हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (याभिः) जिनसे (कारं) कार्य कुशल पुरुषको (भरे अंशाय जिन्वथः) संग्राममें अपना हिस्सा पानेके लिये प्रेरित करते हो (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओंके साथ (सु आगतं) तुम दोनों भली भाँति हमारे पास आओ ॥ १ ॥

[१२१२] हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (सुभराः असश्चतः) उत्तम ढंगसे भरण पोषण करनेके इच्छुक अतएव इधर उधर भ्रमण न करनेवाले लोग (वचसं मन्तवे न) विद्वान्के पास उसकी सलाह पूछनेके लिये जैसे जाते हैं, वैसे (रथं युवोः दानाय आतस्थुः) तुम्हारे रथके पास तुम्हारा दान प्राप्त करनेके लिये खडे रहते हैं, (कर्मन् इष्टये) कर्म करनेके लिए और इष्टकी प्राप्तिके लिए (याभिः धियः अवथः) जिनसे उनकी बुद्धियोंका संरक्षण तुम दोनों करते हो, (ताभिः ऊतिभिः सु आगतं) उन्हीं रक्षाओंसे तुम दोनों ठीक तरह इधर आओ ॥ २ ॥

भावार्थ— मेरा यह यज्ञ सफल हो और इसमें मेरा चित्त लगे, इसलिये मैं द्युलोक, पृथ्वी लोक तथा उसमें रहनेवाले अग्निकी स्तुति सबसे प्रथम करता हूँ । अश्विदेवो ! कुशल शूर पुरुषको युद्धमें अपना भाग प्राप्त कर लेनेके लिये जिन रक्षक शक्तियोंके साथ उसे तुम दोनों प्रेरित करते हो, उन संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आओ और हमारी सुरक्षा करो । अपना सत्कर्म सफल बनानेकी इच्छासे मनुष्य देवताकी प्रार्थना करे । अपना न्याय्य भाग प्राप्त करनेके लिये आवश्यक हुए युद्धमें जानेके लिये कुशलतासे युद्ध करनेवाले शूर पुरुषको नेता लोग प्रेरणा दें । नेता उनकी हर प्रकारकी सुरक्षा और सहायताका प्रबंध करे ॥ १ ॥

जो लोग अपना भरण पोषण उत्तम प्रकारसे करना चाहते हैं, वे किसी अन्यके पास इधर उधर भ्रमण नहीं करते, वे सीधे अश्विदेवोंके रथके पास उसी प्रकार आते हैं और उनसे दान प्राप्त करते हैं; जिस तरह विद्वान्से संमति मांगनेके लिए उनके पास लोग जाते हैं । जिन संरक्षक शक्तियोंसे अश्विदेव उनकी बुद्धियों और कर्मोंकी रक्षा करते हैं, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आवें और हमारी रक्षा करें । अनुयायी लोग अपने नेताके पास जायें, उनकी सलाह लें और उनसे आवश्यक सहायता माँगें । नेता लोग उनकी हर प्रकारसे सहायता करें । नेता अनुयायियोंकी बुद्धि विकसित करें और उनके शुभ कर्मोंकी रक्षा करके उनकी वृद्धि करें ॥ २ ॥

१२१३ युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३ ॥
१२१४ याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षण- स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥
१२१५ याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१२१३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (नरा) हे नेताओ ! (युवं दिव्यस्य अमृतस्य मज्मना) तुम दोनों, द्युलोकमें उत्पन्न सोमरस रूपी अमृतके बलसे, (तासां विशां प्रशासने क्षयथः) उन प्रजाओंका राज्य शासन चलानेके लिए उनमें निवास करते हो (याभिः) जिनसे (अस्वं धेनुं) प्रसूत न हुई गौको (पिन्वथः) पुष्ट करके अधिक दुधारू बना दिया, (ताभिः) उन (ऊतिभिः) रक्षाओंसे युक्त होकर (उ) निश्चयसे हमारे पास (सु आगतं) अच्छी तरह आओ ॥ ३ ॥

[१२१४] (परिज्मा द्विमाता) चारों ओर आनेवाला दोनों माताओंसे युक्त (तनयस्य मज्मना) अपने पुत्रके बलसे (याभिः) जिनकी सहायतासे (तूर्षु तरणिः विभूषति) दौडनेवालोंमें आगे निकलनेवाला होकर अलंकृत होता है तथा (त्रिमन्तुः याभिः) तीन मनन साधनोंवाला जिनसे (विचक्षणः अभवत्) महा विद्वान् हो गया, (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओंसे युक्त होकर (अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! तुम दोनों (सु उ आगतं) ठीक प्रकारसे हमारे पास आओ ॥ ४ ॥

[१२१५] हे (अश्विनौ) अश्विदेवौ ! (निवृतं) पूर्णरूपसे जलमें डुबोये हुए और (सितं रेभं वन्दनं च) बँधे हुए रेभ और वन्दनको (याभिः) जिन साधनोंसे (अद्भ्यः) जलोंसे (स्वः दृशे उत् ऐरयतं) प्रकाशको दिखानेके लिए तुम दोनोंने ऊपर उठाया तथा (सिषासन्तं कण्वं) भक्ति करनेकी इच्छा करनेवाले कण्वको (याभिः प्र आवतं) जिन साधनोंसे तुम दोनोंने भलीभाँति सुरक्षित रखा था, (ताभिः ऊतिभिः उ) उन्हीं रक्षाओंके साधनोंसे युक्त होकर तुम दोनों (सु आगतं) अच्छे प्रकारसे हमारे पास आओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे नेता अश्विदेवो ! तुम दोनों सोमरसका पान करनेसे बलवान् बने हो और उस बलके कारण इन सब प्रजाजनोंका राज्य शासन चलानेके लिये उनमें ही रहते हो । तुमने जिन चिकित्सा प्रयोगोंसे प्रसूत न होनेवाली गौको भी प्रसूत होने योग्य बनाकर दुधारूभी बना दिया, उन चिकित्साकी शक्तियोंसे सुसज्ज होकर हमारे पास आओ । नेता लोग औषधि रसोंका सेवन बलवान् बनें प्रजाजनोंका राज्य शासन चलानेके लिये प्रजाओंमें ही रहें, कभी प्रजाको छोड कर अन्य देशमें जा कर न रहें । गौको गर्भवती होने योग्य पुष्ट बनाने और दुधारू बनानेके चिकित्साके प्रयोग करके गौओंके दूधकी वृद्धि करनी चाहिये ॥ ३ ॥

सर्वत्र गमन करनेवाला वायु, दो अरणीरूपी दो माताओंसे उत्पन्न हुए अपने पुत्रस्थानीय अग्निके बलसे युक्त होकर, जिन शक्तियोंसे गतिमानोंमें भी विशेष गतिमान होकर सर्वोपरि विराजता है, तथा त्रिमन्तु (कक्षीवान ऋषि) जिन साधनों-से बडा विद्वान् बना, उन संरक्षणकी शक्तियोंसे सज्जित बनकर, हे अश्विदेवो ! तुम दोनों यहां हमारे पास आओ (और उनसे हमें लाभ पहुंचाओ) जिस तरह अग्नि और वायु परस्पर सहाय्यक होते हैं और परस्परके बलसे परस्परकी उन्नति करते हैं, इसी तरह द्विजन्मा ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्परकी सहायता करके समूची जनताकी उन्नति करें । जिस तरह त्रिमन्तु विद्वान् हुआ, उसी तरह व्यक्ति, समाज, जनता इन तीनोंकी उन्नतिका मनन करनेवाले सभी युवक विद्वान् बनें । नेता लोग सब प्रकारकी संरक्षक शक्तियां अपने अनुयायियोंकी सहायतार्थ उपयोगमें लायें और उससे जनताकी उन्नति करें ॥ ४ ॥

अश्विदेवोंने जलमें डूबनेवाले और बँधे हुए रेभ और वन्दनको जलसे ऊपर उठाया और प्रकाशमें घूमने योग्य बनाया । इसी तरह उपासक कण्वको सुरक्षित किया । यह सब जिन साधनोंसे किया उन साधनोंके साथ वे देव हमारे पास आवें और उन शक्तियोंसे हमारी सहायता करें । कोई अनुयायी जलमें डूबता हो किसी शत्रुने उसे बंधनमें डाला हो अथवा डर बताया हो, तो उनको सुरक्षाके साधनोंसे तत्काल सहायता पहुंचानी चाहिये और अनुयायियोंको निर्भय बनाना चाहिये ॥५॥

१२१६ याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथ—स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ६ ॥
१२१७ याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ७ ॥
१२१८ याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—[१२१६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (आरणे जसमानं) गड्ढेमें पीडित (अन्तकं याभिः) अन्तकको जिनसे तुमने छुडाया था, (अव्यथिभिः याभिः) जिन अथक रक्षाओंसे (भुज्युं जिजिन्वथुः) तुम दोनोंने भुज्युको सुरक्षित किया था, (कर्कन्धुं वय्यं च) और कर्कन्धु तथा वय्यका (याभिः जिन्वथः) जिन रक्षाओंसे तुम दोनोंने संभाल किया, (ताभिः सु ऊतिभिः) उन सुन्दर रक्षाओंसे युक्त होकर (आ गतं) तुम दोनों हमारे पास आओ ॥६॥

[१२१७] हे (अश्विनौ !) अश्विदेवो ! (याभिः) जिन साधनोंसे (धनसां शुचन्तिं सुसंसदं) धन बांटनेवाले शुचन्तिको उत्तम रहने योग्य घर दिया और (तप्तं घर्मं) गर्म और तपे हुए कारागृहको (अत्रये ओम्यावन्तं) अत्रि ऋषिके लिए शान्त बना दिया, (पृश्निगुं पुरुकुत्सं) पृश्निगु और पुरुकुत्सको (याभिः आवतं) जिन रक्षाओंसे तुम दोनोंने बचाया, (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओंसे युक्त होकर (सु आगतं उ) तुम दोनों भलीभाँति इधर हमारे पास अवश्य ही आओ ॥ ७ ॥

[१२१८] हे (वृषणा अश्विना) बलवान् अश्विदेवो ! (याभिः शचीभिः) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने (परावृजं) ऋषि परावृक्को (अन्धं) अन्धेको (चक्षसे) दृष्टिसंपन्न किया और (श्रोणं एतवे) लंगडे लूलेको चलने फिरने योग्य (प्रकृथः) बना दिया, तथा (ग्रसितां वर्तिकां) भेडियेके द्वारा मुखमें पकडी हुई चिडियाको (याभिः अमुञ्चतं) जिन शक्तियोंकी सहायतासे तुम दोनोंने छुडाया; (ताभिः ऊतिभिः उ) उन संरक्षणकी आयोजनाओंके साथ अवश्य (सु आगतं) तुम दोनों ठीक तरह हमारे पास आओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—गड्ढेमें पडे और बहुत पीडित हुए अन्तकको अश्विदेवोंने गड्ढेसे बाहर निकाला, अथक परिश्रम करके भुज्युको सुरक्षित करनेके कारण प्रसन्न किया और कर्कन्धु तथा वय्यको संतुष्ट किया । यह जिन साधनोंसे किया उन साधनोंके साथ वे हमारे पास आयँ और हमारी सहायता करें । शत्रुने अपने अनुयायियोंको खाईमें गिरा दिया, अनेक प्रकारकी पीडा दी, समुद्रमें हमला किया अथवा अन्य प्रकारके दुःख दिये, तो नेता त्वरासे अनुयायियोंकी सहायता करें और उनके कष्ट दूर करें ॥ ६ ॥

[अत्रि ऋषिको स्वराज्यका आन्दोलन करनेके कारण असुरोंने कारावासमें रखा था और वहां अग्नि जला दी थी। अत्रिको उस गर्मीके कारण बडे क्लेश हो रहे थे, अतः] अत्रिको आराम देनेके लिए अश्विदेवोंने उस अग्निको शान्त किया। धन बांटनेवाले शुचन्तिको घर दिया, पृश्निगु और पुरुकुत्सको सुरक्षित किया । यह जिन साधनोंसे किया उनके साथ वे हमारे पास पधारें और हमारी सहायता करें । जनताके हितके लिये हलचल करनेके कारण जो कारावासमें पडे होते हैं, उनको आराम पहुंचानेके लिये नेताका प्रयत्न होना चाहिये । ज्ञानियोंकी ज्ञानवृद्धिके कार्यके लिये उनको धन और घर देना चाहिये, तथा गोपालकोंको सुरक्षित रखना चाहिये ॥ ७ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! परावृक् ऋषि अन्धा और लूला था, उसको तुम दोनोंने अच्छी दृष्टि दी और घूमने फिरने योग्य बना दिया । भेडियेने चिडियाको मुखमें पकडा था, उसके दांतोंसे वह घायल हुई थी, उसको उसके मुखसे छुडवाया और चिडियाको आरोग्ययुक्त किया । यह सब जिन शक्तियोंसे किया, उन शक्तियोंसे तुम दोनों हमारे पास आओ और हमारी सहायता करो । चिकित्साशास्त्रकी इतनी उन्नति करनी चाहिये कि, जिससे अन्धोंकी दृष्टि अच्छी हो सके, दृष्टि ठीक की जाय, लंगडे लूलोंके पांव अच्छे कर उन्हें चलने फिरने योग्य बनाया जाय और घायलको ठीक आरोग्यसंपन्न बनाया जाय । यह चिकित्सा जैसी मानवोंकी वैसी ही पशुपंछियोंकी भी होवे ॥ ८ ॥

१२१९ याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसंश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ९ ॥
१२२० याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १० ॥
१२२१ याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [१२१९] हे (अजरौ अश्विना) जराहीन अश्विनौ ! (मधुमन्तं सिन्धुं) मीठे रससे युक्त नदीको (याभिः असश्चतं) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने प्रवाहित किया, (याभिः वसिष्ठं अजिन्वतं) जिनसे वसिष्ठको तृप्त किया, (याभिः कुत्सं, श्रुतर्यं नर्यं आवतं) जिनसे कुत्स, श्रुतर्य तथा नर्यका संरक्षण किया (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षणकी शक्तियोंसे युक्त होकर (सु आगतं) तुम दोनों ठीक प्रकारसे हमारे पास आओ ॥ ९ ॥

[१२२०] हे (अश्विना) अश्विनौ ! (सहस्रमीळ्हे आजौ) सहस्रों लोग मिलकर जहाँ लडते हैं ऐसे युद्धमें (याभिः) जिन शक्तियोंसे (धनसां अथर्व्यं विश्पलां) धनका दान करनेहारी और स्थिर रूपसे युद्धमें खडी हुई अथवा अथर्व कुलमें उत्पन्न विश्पलाको (अजिन्वतं) तुम दोनोंने सहायता की, (याभिः) जिन शक्तियोंसे (प्रेणिं अश्व्यं वशं) प्रेरणकर्ता तथा अश्वके पुत्र वश नामक ऋषिको (आवतं) तुम दोनोंने सुरक्षित रखा, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षणकी शक्तियोंके साथ (सु आगतं) तुम दोनों ठीक तरह हमारे पास आओ ॥ १० ॥

[१२२१] हे (सुदानू अश्विना) अच्छे दान देनेहारे अश्विदेवो ! (औशिजाय दीर्घश्रवसे वणिजे) उशिक् पुत्र दीर्घश्रवा नामक व्यापारीके लिए (याभिः) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने (कोशः मधु अक्षरत्) शहदका भण्डार दिया और (स्तोतारं कक्षीवन्तं) स्तुति करनेहारे कक्षीवान्‌को (याभिः आवतं) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने सुरक्षित किया (ताभिः ऊतिभिः उ) उन्हीं रक्षाओंके साथ (सुआगतं) तुम दोनों ठीक प्रकार हमारे पास आओ ॥ ११ ॥

भावार्थ— अश्विदेव जराहीन हैं, नित्य तरुण हैं, इन्होंने मीठे जलवाली नदियोंको जलसे भरपूर करके बहाया। वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य और नर्यको शत्रुओंसे सुरक्षित रखा। जिन शक्तियोंसे यह किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आकर हमारी सहायता करें। जरावस्थाको दूर करना चाहिये, वृद्धावस्थामें भी तारुण्यका उत्साह रहना चाहिये। नदियोंको बन्ध आदि द्वारा ठीक तरह बहानेका प्रबन्ध करना चाहिये, जिससे उनका खेती आदिमें उपयोग अधिकसे अधिक हो और प्रजाको किसी तरह क्लेश न पहुंचे। तथा ज्ञान प्रचार करनेवाले ऋषियोंको सुरक्षित रखना चाहिये, जिससे उनके ज्ञान प्रसारके कार्यमें कोई विघ्न न हो सके। अश्विदेव नदियोंसे नहर आदि निकाल देनेकी विद्या अच्छीतरह जानते थे ऐसा इस मन्त्रसे प्रतीत होता है ॥ ९ ॥

अश्विदेवोंने युद्धमें जाकर लडनेवाली विश्पलाकी सहायता की और अश्व पुत्र वशको संकटोंसे बचाया। यह जिन शक्तियोंसे उन्होंने किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आयें और हमारी सहायता करें। नेता लोग युद्धमें लडनेवाले वीर नारियों और पुरुषोंकी सब प्रकारसे सहायता करें। अपने अनुयायियोंको संकटोंसे बचावें ॥ १० ॥

अश्विदेव उत्तम दान देते हैं। इन्होंने उशिक्‌पुत्र दीर्घश्रवाको मधुके भण्डार दानमें दिये और उपासक कक्षीवान्‌को शत्रुसे बचाया। यह जिन शक्तियोंसे इन्होंने किया उन शक्तियोंके साथ ये हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें। नेता उदार और दाता होने चाहिये वे अपने अनुयायियोंको मधु जैसा पौष्टिक अन्न दें और अन्य प्रकारसे अपने अनुयायियोंको सुरक्षित रखें ॥ ११ ॥

१२२२ याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथु--रनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १२ ॥
१२२३ याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १३ ॥
१२२४ याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १४ ॥

अर्थ— [१२२२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम दोनोंने (रसां) नदीको (याभिः) जिन शक्तियोंसे (क्षोदसा उद्नः) तटोंको कुचलनेवाले जलसमूहसे (पिपिन्वथुः) परिपूर्ण कर डाला, (याभिः अनश्वं रथं) जिन शक्तियोंकी सहायतासे घोडेसे रहित रथको (जिषे आवतं) जय पानेके लिए तुम दोनोंने सुरक्षित रीतिसे चलाया और (त्रिशोकः याभिः) त्रिशोक जिन शक्तियोंकी सहायतासे (उस्रियाः उदाजत) गौएँ पा सका, (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षा शक्तियोंको साथ लेकर (सु आगतं) अच्छी तरह हमारे पास आओ ॥ १२ ॥

[१२२३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (परावति सूर्यं) दूरस्थानमें अवस्थित सूर्यके (याभिः परियाथः) चारों ओर तुम दोनों जिन शक्तियोंसे जाते हो, (क्षेत्रपत्येषु मन्धातारं आवतं) क्षेत्रपतिके सम्बन्धमें करने योग्य कर्मोंमें मन्धाताकी रक्षा तुम दोनोंने की; और (याभिः) जिन शक्तियोंकी सहायता पाकर (विप्रं भरद्वाजं प्र आवतं) तुम दोनोंने ज्ञानी भरद्वाजकी उत्कृष्ट रक्षा की, (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंको साथ लिए हुए तुम दोनों (सु आगतं) अच्छी प्रकारसे हमारे पास आओ ॥ १३ ॥

[१२२४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (शम्बर-हत्ये) शम्बरका वध करनेके युद्धमें (याभिः) जिन रक्षाओंसे (अतिथिग्वं) अतिथिग्व (कशो-जुवं) कशो-जुव और (महां दिवोदासं) बडे दिवोदासकी (आवतं) तुम दोनोंने रक्षा की थी, (याभिः) जिनसे (त्रसदस्युं) दस्युओंको डरानेवाले नरेशको (पूर्भिद्ये आवतं) शत्रु नगरियोंको तोडनेके युद्धमें तुम दोनोंने सुरक्षित बना दिया था, (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त बनकर (सु आगतं) तुम दोनों भली प्रकार हमारे पास आओ ॥ १४ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने अपनी शक्तियोंसे रसा नदीको जलसे भरपूर भर दिया, विना घोडेके रथको वेगसे चला कर शत्रुको परास्त करके जय प्राप्त की और त्रिशोकको दुधारू गौवें दीं । जिन शक्तियोंसे यह हुआ, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आएँ और हमारी सहायता करें । राष्ट्रमें नेता लोग जलके प्रवाहोंको इकट्ठा करके भरपूर जलके साथ नहरोंको बहावें, घोडे आदि प्राणियोंके जोतनेके विना ही यंत्रकी शक्तिसे ही रथोंको वेगसे चलावें । तथा गौओंकी दुग्ध देनेकी क्षमता बढा कर वैसी गौवें अपने अनुयायियोंको प्रदान करें ॥ १२ ॥

अश्विदेव सूर्यके चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं, इन दोनों देवोंने मन्धाताको क्षेत्रपतिके कर्तव्योंको निभानेमें बडी सहायता की, तथा विप्र भरद्वाजकी रक्षा भी की, यह जिन शक्तियोंसे किया गया था, उन शक्तियोंको साथ लेकर वे हमारे पास आयें और हमारी सहायता करें । नेता लोग देश पालन करनेके विषयमें जो जो आवश्यक कर्तव्य होते हैं, उनके निभानेमें सब प्रकारकी सहायता कार्यकर्ताओंको दें, ज्ञानियोंकी रक्षा करें और उनके ज्ञानप्रसारका कार्य चलाते रहें । सबको भरपूर सूर्य प्रकाशमें विचरनेका अवसर दें, क्योंकि सूर्य ही जीवनका आदिस्रोत है, उसके प्रकाशसे जीवनशक्ति मिलती है ॥ १३ ॥

अश्विदेवोंने शम्बरका वध करनेके लिये किये गये युद्धमें अतिथिग्व, कशोयुज और दिवोदासकी रक्षा की और त्रसदस्युकी भी शत्रुके किले तोडनेके काममें सहायता की थी । यह काम जिन शक्तियोंसे किया था, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें । नेता लोग अपने वीरोंकी उचित सहायता युद्धके समय अवश्य करें । युद्धके समय किसी चीजकी न्यूनता सैनिकोंको न रहें । विजयके लिये इस तरहके प्रबंध करनेकी अत्यंत आवश्यकता है ॥ १४ ॥

*

१२२५ याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १५ ॥

१२२६ याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥

१२२७ याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १७ ॥

अर्थ-- [१२२५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (विपिपानं उपस्तुतं) सोमरसका विशेष पान करनेवाले, समीपस्थों द्वारा प्रशंसित (वम्रं) वम्र नामक ऋषिकी तुम दोनोंने सुरक्षित किया, (याभिः वित्तजानिं कलिं दुवस्यथः) जिन शक्तियोंसे विवाहित कलिकी सुरक्षा तुम दोनों करते हो, (उत) और (याभिः) जिनसे (व्यश्वं पृथिं आवतं) घोडेसे बिछुडे हुए पृथिकी रक्षा तुम दोनोंने की थी (ताभिः ऊतिभिः सु आगतं) उन रक्षाओंसे तुम दोनों ठीक प्रकारसे इधर हमारे पास आओ ॥ १५ ॥

[१२२६] हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (याभिः शयवे) जिन शक्तियोंसे युक्त होकर शयुको मदद देनेके लिए, (याभिः अत्रये) जिन शक्तियोंसे युक्त होकर अत्रि ऋषिको कारावाससे छुडानेके लिए, (याभिः मनवे) जिन शक्तियोंसे युक्त होकर मनुके लिए (पुरा गातुं ईषथुः) प्राचीन कालमें दुःखसे छूट जानेका मार्ग तुम दोनोंने बतानेकी इच्छा की थी, तथा (स्यूमरश्मये) स्यूमरश्मिको सहायता देनेके लिए (याभिः शारीः आजतं) जिन शक्तियोंसे बाणोंको शत्रुदलपर तुम दोनोंने प्रेरित किया था, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षणकी आयोजनाओंको साथ लिए हुए तुम दोनों (सु आगतं) भलीभाँति इधर हमारे पास आओ ॥ १६ ॥

[१२२७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इद्धः चितः) प्रज्वलित और समिधाओंके डालनेसे बढते हुए (अग्निः न) अग्निके तुल्य, (पठर्वा) पठर्वा नरेश (याभिः अज्मन्) जिस रक्षाओंसे मदद पाकर युद्धमें (जठरस्य मज्मना) अपने शारीरिक बलसे (आ अदीदेत्) पूर्णतया प्रदीप्त हो उठा था; (महाधने याभिः) अधिक संपत्ति पानेके लिए किये जानेवाले युद्धमें जिनसे (शर्यातं अवथः) तुम दोनोंने शर्यातकी रक्षा की थी, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे सुसज्ज होकर (सु आगतं) तुम दोनों हमारे समीप आओ ॥ १७ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने बहुत सोमरस पीनेवाले, प्रशंसित वम्र नामक ऋषिकी रक्षा की, कलिको उत्तम धर्मपत्नी देकर उसकी रक्षा की, पृथिके घोडे दूर होनेपर भी उसकी रक्षा की, वे अपनी सब शक्तियोंसे हमारे पास आ जाएँ और हमारी रक्षा करें। नेता लोग अपने अनुयायियोंकी सुरक्षा सदा करते रहें, किसीको अन्नपान अधिक लगता हो तो उसे वह दें, किसीको धर्मपत्नी चाहिये तो उसके ब्याहका प्रबंध करें, घोडे बिछुडे जानेपर उसको वे पुनः मिलें ऐसा प्रबंध करें। अर्थात् अपनी शक्तियोंसे अनुयायियोंको असुरक्षित न रहने दें ॥ १५ ॥

जिन शक्तियोंसे अश्विदेवोंने शयु, अत्रि, मनु और स्यूम रश्मिकी सहायता की, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आवें और हमारी सहायता करें। नेतालोग साधुओंका परित्राण करें और दुर्जनोंका नाश करें और सज्जनोंकी रक्षा करें ॥ १६ ॥

अश्विदेवोंकी शक्तियोंकी सहायतासे पठर्वा नरेश अपना सामर्थ्य बढानेके कारण युद्धमें बडा तेजस्वी सिद्ध हुआ, इसी तरह शर्यातकी भी अश्विदेवोंने महायुद्धमें रक्षा की, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आवें और हमारी रक्षा करें। नेता लोग अपने वीरोंकी युद्धके समय पूर्ण रूपसे सहायता करें और शत्रुका पराभव होनेतक मदद करते रहें ॥ १७ ॥

१२२८ याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १८ ॥
१२२९ याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १९ ॥
१२३० याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २० ॥

अर्थ— [१२२८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम दोनोंने (मनसा) मनःपूर्वक किये (आङ्गिरः) अंगिरसोंके स्तोत्रसे संतुष्ट होकर (याभिः) जिन शक्तियोंसे उनको (निरण्यथः) सन्तुष्ट किया, तथा (गोअर्णसः विवरे) बन्द रखे हुए गौओंके झुंडको पानेके लिए गुहाके मुँहमें जानेके लिए (अग्रं गच्छथः) आगे चले जाते हो; और (शूरं मनुं) पराक्रमी मनुको (याभिः इषा सं आवतं) जिन शक्तियोंसे अन्न प्राप्त कराके तुम दोनोंने सुरक्षित किया, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त होकर तुम दोनों (सु आगतं) भलीभाँति इधर आओ ॥ १८ ॥

[१२२९] (अश्विना) हे अश्विदेवो (विमदाय) विमदके लिए उसके घर (याभिः) जिन शक्तियोंसे (पत्नीः नि ऊहथुः) उसकी धर्मपत्नीको तुम दोनोंने ठीक तरह पहुँचा दिया था, (याभिः वा) जिन शक्तियोंसे (अरुणीः घ) अरुण रंगकी घोडियोंको (आ अशिक्षतं) पूर्णतया सिखाया था और (याभिः सुदासे) जिनसे सुदासके घरमें (सुदेव्यं ऊहथुः) अच्छा देने योग्य धन तुम दोनोंने दिया था, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंके साथ तुम दोनों (सु आगतं) ठीक प्रकार हमारे पास आओ ॥ १९ ॥

[१२३०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (ददाशुषे याभिः) दानी पुरुषके लिये जिन शक्तियोंसे तुम दोनों (शन्ताती भवथः) सुखदायक बनते हो, (याभिः भुज्युं) जिनसे भुज्युकी तथा (याभिः अध्रिगुं अवथः) जिनसे अध्रिगुकी रक्षा करते हो, उसी प्रकार जिनसे (सुभरां ओम्यावतीं) अच्छी पुष्टिकारक तथा सुखदायक अन्न सामग्री (ऋतस्तुभं) ऋतस्तुभको दे डालते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त तुम दोनों (सु आगतं) इधर अच्छी तरह हमारे पास आओ ॥ २० ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंकी स्तुति अंगिरसोंने की, उससे प्रसन्न होकर अश्विदेवोंने उनको सन्तुष्ट किया; जब गौओंको ढूंढनेके लिए गुहामें जानेका अवसर आया, उस समय अश्विदेव आगे बढे, शूर मनुको युद्धमें पर्याप्त अन्न सामग्री पहुंचाई । यह सब जिन शक्तियोंसे किया उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आजायँ और हमारी सहायता करें। नेता लोग अपने अनुयायियोंको आवश्यक सामग्री देकर संतुष्ट करें, शूरवीरताके कार्यमें सबसे आगे बढें । इस तरह अपने अनुयायियोंकी सुरक्षाके उत्तम प्रबंध रखें ॥ १८ ॥

अश्विदेवोंने जिन शक्तियोंसे विमदकी धर्मपत्नीको उसके घर पहुंचाया, लाल रंगकी घोडियोंको अच्छी तरह सिखाया और सुदासको बहुत धन दिया, उन शक्तियोंसे वे यहां हमारे पास आयें और हमारी सहायता करें । नेता लोग अपने अनुयायियोंकी पत्नियोंको शत्रुसे सुरक्षित रखें, घोडियोंको शिक्षित करें और दानमें धन दें और सब प्रकारसे जनताको प्रसन्न रखें ॥ १९ ॥

अश्विदेवोंने अपनी शक्तियोंसे दाताको सुख दिया, भुज्यु और अध्रिगुकी रक्षा की और ऋतस्तुभको पुष्टिकारक और सुखदायक अन्न दिया । जिन शक्तियोंसे उन्होंने यह किया है उन शक्तियोंसे वे यहां हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें । नेता लोग उदार दाताओंको सुख दें, जिनको आवश्यक है उनको पौष्टिक और आरोग्यवर्धक अन्न दें और अन्य अनुयायियोंकी उत्तम रक्षा करें ॥ २० ॥

१२३१ याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत् सरड्भ्य—स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २१ ॥

१२३२ याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वत—स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २२ ॥

१२३३ याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २३ ॥

अर्थ— [१२३१] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (असने) युद्धमें (कृशानुं) कृशानुकी (याभिः दुवस्यथः) जिन शक्तियोंसे तुम दोनों सहायता करते हो, (याभिः) जिनसे (यूनः अर्वन्तं) युवकके घोडेको (जवे आवतं) वेगपूर्वक दौडनेमें तुम दोनों बचा सके, और (यत् प्रियं मधु) जो प्यारा मधु (सरड्भ्यः भरथः) मधुमक्षिकाओंके लिए तुम दोनों उत्पन्न करते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतं) उन्हीं रक्षाओंके साथ तुम दोनों इधर हमारे पास आओ ॥२१॥

[१२३२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (गोषुयुधं नरं) गौओंके लिए लडनेवाले नेताको (नृषाह्ये) युद्धमें तथा (क्षेत्रस्य तनयस्य साता) खेतकी उपजका बँटवारा करते समय (जिन्वथः) तुम दोनों सुरक्षित करके सन्तुष्ट करते हो; (याभिः रथान्) जिनसे रथोंको, (याभिः अर्वतः अवथः) जिनसे घोडों को सुरक्षित रखते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त होकर (सु आगतं) सुन्दर प्रकारसे आओ ॥२२॥

[१२३३] (शतक्रतू अश्विना) हे सैंकडों कार्य करनेवाले अश्विदेवो ! (याभिः) जिनसे (आर्जुनेयं कुत्सं) अर्जुनीके पुत्र कुत्स, (तुर्वीतिं दभीतिं च) और तुर्वीति तथा दभीतिको तुम दोनों (प्र आवतं) प्रकर्षसे बचा चुके, (याभिः ध्वसन्तिं पुरुषन्तिं आवतं) जिनसे ध्वसन्ति और पुरुषन्तिको तुम दोनों बचा सके हो (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त होकर (सु आगतं) तुम दोनों इधर हमारे पास आओ ॥ २३ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने युद्धमें कृशानुकी रक्षा की, दौडनेवाले घोडेको बचाया और मधुमक्षिकाओंको मधु दिया। यह जिन शक्तियोंसे किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायँ और हमारी रक्षा करें। नेता लोग युद्धमें अपने वीरोंकी सुरक्षाका प्रबंध करें, घोडोंको उत्तम शिक्षित करें, जिससे वे बडी दौडमें भी बचे रहें। मधुका भी प्रदान करें क्योंकि मधु पुष्टिकारक अन्न है ॥ २१ ॥

गौओंकी सुरक्षा करनेके लिए होनेवाले युद्धोंमें लडनेवाले वीरोंको अश्विदेव सुरक्षित रखते हैं, खेतकी उपजका बँटवारा करनेके समय विरोध होने नहीं देते और रथों और घोडोंकी सुरक्षा करते हैं। ये देव जिन शक्तियोंसे यह करते हैं उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें। नेता लोग गौओंको सुरक्षित रखें, गौओंपर हमला करनेवाले शत्रुके साथ लडें, ऐसे युद्धोंमें लडनेवाले वीरोंके सुरक्षित रखनेका प्रबंध करें, खेतकी उपजका बंटवारा करनेके समय अनुयायियोंमें झगडा होने न दें, तथा अपने वीरोंके घोडो और रथोंको सुरक्षित रखें ॥ २२ ॥

अश्विदेव सैंकडों कर्म करनेवाले हैं, उन्होंने अर्जुनीके पुत्र कुत्सकी, तथा तुर्वीति, दभीति, ध्वसन्ति और पुरुषन्तिकी सुरक्षा की। जिन शक्तियोंसे यह किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आयँ और हमारी रक्षा करें। नेता लोग सैंकडों कर्म करनेमें कुशल बनें। अपने अनुयायियोंको वे अपनी आयोजनाओंसे बचावें ॥ २३ ॥

१२३४ अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २४ ॥
१२३५ द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मा- नरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता- मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २५ ॥

[११३]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- १ उषाः (उत्तरार्धस्य) रात्रिश्च; २-२० उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१२३६ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागा- च्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

अर्थ— [१२३४] हे (दस्रा) शत्रुविनाशकर्ता ! (वृषणा अश्विना !) बलवान् अश्विदेवो ! (नः मनीषां) हमारी इच्छाको पूर्ण करो, (अस्मे) हमारी (अप्नस्वतीं वाचं कृतं) वाणीको कर्मयुक्त बनावो, (वां) तुम दोनोंको (अद्यूत्ये) अँधेरेमें (अवसे निह्वये) रक्षाके निमित्त बुलाता हूं, (वाजसातौ च) और अन्नका दान करते समय (नः वृधे भवतं) हमारी वृद्धिके लिए प्रयत्नशील बनो ॥ २४ ॥

[१२३५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (द्युभिः अक्तुभिः) दिन और रात (अरिष्टेभिः सौभगेभिः) अक्षुण्ण अच्छे ऐश्वर्योंसे (अस्मान् परि पातं) हमारी पूर्णतया रक्षा करो, (तत्) इसका (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, भूलोक तथा द्युलोक (नः मामहन्तां) हमारे लिए अनुमोदन करें अर्थात् इनकी सहायतासे हमारी वह पूर्वोक्त इच्छा सफल हो ॥ २५ ॥

[११३]

[१२३६] (ज्योतिषां श्रेष्ठं इदं ज्योतिः) तेजस्वी पदार्थोंके तेजसे भी अधिक श्रेष्ठ उषाका यह तेज (आगात्) पूर्व दिशामें प्रकट हो रहा है, (चित्रः प्रकेतः विभ्वा अजनिष्ट) यह विलक्षण रमणीय प्रकाश फैलता हुआ प्रकट हो रहा है । (यथा रात्रिः सवितुः सवायं प्रसूता) जिस तरह रात्री सूर्यकी उत्पत्तिके लिये उत्पन्न हुई, (एवा) वैसी ही यह रात्री (उषसे योनिं आरैक्) उषाके जन्मके लिये भी स्थान खुला कर रही है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे शत्रुके नाशकर्ता शक्तिमान् अश्विदेवो ! हमारी यही एक इच्छा है । वह यह कि हमारे भाषण शुभ कर्मोंको बढानेवाले हों । अंधेरी रात्रीमें आपको रक्षा करनेके लिए बुलाते हैं । तुम दोनों हमारे पास आओ, इस अन्नके दान करनेके कार्यमें हमारी सहायता करो । इससे हमारी वृद्धि होती रहे । मनुष्य शत्रुका नाश करे, सामर्थ्यवान् बने । ऐसे भाषण करे कि जिनसे सत्कर्मोंकी समृद्धि हो । अन्धकारके समय सब अनुयायियोंको पर्याप्त अन्न दिया जाय । उनकी वृद्धि होती रहे ऐसा प्रबंध सर्वदा करना योग्य है ॥ २४ ॥

दिन रात हमें अटूट ऐश्वर्य मिलता रहे और उससे हमारी रक्षा होती रहे । सब देव इस हमारी इच्छाकी सफलता होनेमें सहायक बनें । मनुष्य दिन रात ऐसे शुभ कर्म करे कि जिनसे उसको अपरिमित ऐश्वर्य मिले और उससे उसकी सुरक्षा हो । सब उसकी सहायता करें ॥ २५ ॥

हे मनुष्यो ! ज्योतियोंमें भी श्रेष्ठ ज्योतिरूप यह तेज उषाके रूपमें आकाशमें छा रहा है । यह तेज विलक्षण है, ज्ञान देनेवाला है । यह रात्री प्रसूत होकर सूर्यको उत्पन्न करती है । रात्रीके पेटसे सूर्यका जन्म होता है अर्थात् यह काली रात्री तेजस्वी सूर्यकी माता है । यह रात्री उषाके आनेके समय उसके लिए अपना स्थान खाली कर देती है । अर्थात् रात्रीसे ही उषा और सूर्य दोनों उत्पन्न होते हैं । ऐसी यह तेजस्वी उषा अपने साथ दिव्य ज्योति ला रही है । मनुष्यो ! इस उषाका दिव्य और आनंददायक तेज देखो; यह तेज सबको जगा रहा है ॥ १ ॥

१२३७ रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागा॒दारै॑गु कृ॒ष्णा सद॑नान्यस्याः ।
स॒मा॒नब॑न्धू अ॒मृते॑ अनू॒ची द्यावा॒ वर्णं॑ चरत आमिना॒ने ॥ २ ॥

१२३८ स॒मा॒नो अध्वा॒ स्वस्रो॑रन॒न्त॒स्तम॒न्यान्या॑ चरतो दे॒वशि॑ष्टे ।
न मे॑थेते॒ न त॑स्थतुः सु॒मेके॒ नक्तो॒षासा॒ सम॑नसा॒ विरू॑पे ॥ ३ ॥

१२३९ भास्व॑ती ने॒त्री सू॒नृता॑ना॒मचे॑ति चि॒त्रा वि दुरो॑ न आवः ।
प्रार्प्या॒ जग॒द्व्यु॑ नो रा॒यो अ॑ख्य॒दुषा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ४ ॥

अर्थ— [१२३७] (रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्या) तेजस्वी बालकवाली तथा स्वयं भी तेजस्विनी गौरवर्ण उषा (आ गात्) आगई है। (अस्याः) इस उषाके लिये (कृष्णा) काली रात्रीने (सदनानि अरैक् उ) रहनेके स्थान खुले करके रखे हैं। (समानबन्धू अमृते) जिनका बन्धु एक ही है ऐसी ये रात्री और उषा अमर हैं और (अनूची) क्रमसे आती हैं। ये दोनों (द्यावा) प्रकाशमान (वर्णं आमिनाने) और विश्वके रंगको बदलती हुई (चरतः) भ्रमण करती हैं ॥२॥

[१२३८] (स्वस्रोः अध्वा समानः) रात्री और उषा इन दोनों बहिनोंका मार्ग एक ही है और वह (अनन्तः) अन्तरहित है। (देवशिष्टे) ईश्वरकी आज्ञानुसार चलनेवाली ये दो बहिनें (अन्या अन्या तं चरतः) क्रमसे एकके पीछे दूसरी इस मार्गसे चलती हैं। ये दोनों (नक्तोषासा सुमेके) रात्री और उषा उत्तम स्नेह धारण करनेवाली (विरूपे समनसा) परस्पर विरुद्ध रंग रूपवाली होनेपर भी एक मतसे सब कार्य करनेवाली हैं (न तस्थतुः) ये दोनों कभी एक स्थानपर नहीं ठहरतीं, अथवा (न मेथेते) परस्परका कार्य भी नहीं बिगाडती ॥ ३ ॥

[१२३९] (भास्वती) प्रकाशमयी (सूनृतानां नेत्री) सत्कर्मोंकी संचालिका यह उषा (अचेति) दीखने लगी है। (चित्रा नः दुरः वि आवः) यह विलक्षण सुंदर उषा हमारे द्वारोंको खोलती है। (जगत् प्रार्प्य) जगत्को प्रकाशित करके यह उषा (रायः नः अख्यत् उ) धनोंको हमारे लिये प्रकाशित करती है, और यह (उषाः विश्वा भुवनानि अजीगः) उषा अपने प्रकाशसे सब भुवनोंको निगल लेती है, अर्थात् सबको प्रकाशित करती है ॥ ४ ॥

भावार्थ— तेजस्वी बालक सूर्यको अपनी गोदमें लेकर यह उषा प्रकट हो रही है। इसको आता देखकर रात्री उसके लिए जगह खाली कर रही है। उषा एक आदर्श माता है, इसका पुत्र सूर्य है जो बहुत तेजस्वी है, जिसका पालन पोषण उषा बडे प्रेमसे करती है। ऐसी आदर्श माताका सम्मान समाजमें होना ही चाहिए। रात्री और उषा ये दोनों बहनें अमर धर्मवाली और एक ही बन्धुवाली हैं। इनका भाई दिन है। ये तीनों भाईबहिन क्रमशः एक दूसरेके पीछे चलते हैं। यह क्रम कभी बंद नहीं होता। ये सदा चलते रहते हैं, कभी विश्राम नहीं लेते। इसी तरह राष्ट्रकी स्त्रियोंको भी सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए। वे हमेशा समाजके हितके काम करती रहें ॥ २ ॥

रात्री और उषाके संचार करनेका मार्ग अनन्त है, अतः इनका परिभ्रमण कभी समाप्त नहीं होता। ईश्वरके नियमानुसार ये दोनों एक दूसरीके पीछे अपना संचार करती रहती हैं। ये दोनों बहनें परस्पर विरुद्ध रंगरूपवाली होनेपर भी परस्पर स्नेहभावसे रहती हैं और एक मनसे कार्य करती हैं। उषा अपने सौन्दर्यपर घमण्ड नहीं करती और नाहीं कुरूप होनेके कारण रात्री उषासे द्वेष ही करती है। इसके विपरीत दोनों परस्पर प्रेमसे रहकर जगत्का हित करती हैं। इसी तरह समाज और राष्ट्रमें सब स्त्रियां हिलमिलकर रहें और सामाजिक हितके कार्य करें ॥ ३ ॥

तेजस्विनी, अपने तेजसे लोगोंको सन्मार्गमें प्रेरित करनेवाली उषा जाग उठी है, अपने घरके द्वार खोल रही है। यह उषा जगत्को प्रकाश देती है और प्रकट होकर सब लोगों एवं प्राणियोंको जगाती है। इसी तरह आदर्श स्त्री सर्व प्रथम उठकर घरके दरवाजों को खोले, घरको प्रकाशित करे तथा अन्योंको जागृत कर उन्हें अपने अपने कामोंमें प्रयुक्त करें ॥ ४ ॥

१२४० जिह्मश्ये॑ चरि॑तवे म॒घोन्या॑भो॒गय॑ इ॒ष्टये॑ रा॒य उ॑ त्वम् ।
दु॒भ्रं पश्य॑द्भ्य उर्वि॒या वि॒चक्ष॑ उ॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ५ ॥
१२४१ क्ष॒त्राय॑ त्वं॒ श्रव॑से त्वं मही॒या इ॒ष्टये॑ त्व॒मर्थ॑मिव त्व॒मि॒त्यै ।
विस॑दृशा जीवि॒ताभि॑प्र॒चक्ष॑ उ॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ६ ॥
१२४२ ए॒षा दि॒वो दु॑हि॒ता प्रत्य॑दर्शि व्यु॒च्छन्ती॑ यु॒व॒तिः शु॒क्रवा॑साः ।
विश्व॒स्येशा॑ना॒ पार्थि॑वस्य॒ वस्व॒ उषो॑ अ॒द्येह सु॑भगे॒ व्यु॑च्छ ॥ ७ ॥
१२४३ प॒राय॒ती॒नामन्वे॑ति॒ पाथ॑ आय॒ती॒नां प्र॑थ॒मा शश्व॑तीनाम् ।
व्यु॒च्छन्ती॑ जी॒वमु॑दी॒रय॑न्त्यु॒षा मृ॒तं कं च॒न बो॒धय॑न्ती ॥ ८ ॥

अर्थ— [१२४०] (जिह्मश्ये चरितवे) सोनेवालेको घुमानेके लिये (आभोगये) भोगोंको प्राप्त करनेके लिये (इष्टये राये) यज्ञ करनेके लिये तथा धन प्राप्त करनेके लिये (त्वं उ मघोनी) तू धनवाली उषा प्रकाशती है। (दभ्रं पश्यद्भ्यः विचक्षे) जिनको कम दीखता है उनको अधिक दिखानेके लिये (उर्विया उषाः) विशाल उषा (विश्वा भुवनानि अजीगः) सब भुवनोंको प्रकाशित करती है ॥ ५ ॥

[१२४१] (क्षत्राय त्वं) क्षत्रियके युद्धादि कर्मके लिये (श्रवसे त्वं) अन्नादिके अथवा कीर्तिके लिये (महीयै इष्टये त्वं) बडे यज्ञके लिये (अर्थं इव इत्यै त्वं) अपेक्षित अर्थके पास पहुंचनेके लिये (विसदृशा जीविता अभि-प्रचक्षे) विविध प्रकारके जीवन साधन देखनेके लिये (उषाः विश्वा भुवनानि अजीगः) तू उषा सब भुवनोंको जगाती अर्थात् प्रकाशित करती है ॥ ६ ॥

[१२४२] (एषा दिवः दुहिता) यह द्युलोककी पुत्री उषा (व्युच्छन्ती) अन्धकारको दूर करती हुई (प्रत्यदर्शि) दीखने लग गई है। (युवतिः) तरुणी (शुक्रवासाः) शुभ्र वस्त्र पहननेवाली (विश्वस्य पार्थिवस्य वस्य ईशाना) सब पृथ्वीपरके धनकी स्वामिनी है। हे (सुभगे, उषः) उत्तम भाग्यवाली उषा ! (अद्य इह व्युच्छ) आज यहां प्रकाश कर ॥ ७ ॥

[१२४३] यह उषा (परायतीनां पाथः अनु एति) भूतकालमें गई हुई उषाओंके मार्गसे आती है तथा (आय-तीनां शश्वतीनां प्रथमा) आनेवाली अनेक उषाओंमें यह प्रथम उषा है। यह (उषाः) उषा (व्युच्छन्ती) प्रका-शती और (जीवं उदीरयन्ती) जीवितोंको उठाती है और (कं चन मृतं बोधयन्ती) किसी मृत जैसे सोनेवालेको भी जगाती है। ॥ ८ ॥

भावार्थ— सोनेवालोंको उठानेके लिए, भोगप्राप्तिकी इच्छा करनेवालोंको धन देनेके लिए, अल्पदृष्टिवालोंको उत्तम दृष्टि देनेके लिए यह विशाल उषा सब भुवनोंके पास आकर अपने प्रकाशसे सबको जगाती है। लोग सोते न रहें, उठें, और अपने कार्य करें, प्रयत्न करके भोग प्राप्त करें। अन्धेरेमें न पडे रहें, प्रकाशमें आकर अपना अभ्युदय सिद्ध करें ॥ ५ ॥

शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिए, यश प्राप्त करनेके लिए, अन्न प्राप्त करनेके लिए, महान् इष्ट करनेके लिए, पर्याप्त धन प्राप्त करनेके लिए तथा विविध प्रकारके जीवन साधन देखनेके लिए यह उषा प्रकाशती है और सब भुवनोंको जगाती है। शौर्य, कीर्ति, धन तथा भोग प्राप्त करनेके लिए मनुष्य उषःकालमें उठें ॥ ६ ॥

यह स्वर्गकन्या उषा अन्धकार दूर करती है। शुभ्र वस्त्र पहनकर यह तरुणी स्त्री उषा पृथ्वी परके समस्त धनोंकी स्वामिनी है। इस उषाके अधीन सब धन हैं। वह सर्वत्र प्रकाशित होकर अन्धकार दूर करती है। इसी प्रकार राष्ट्रकी सभी तरुणियां शुभ्र वस्त्र पहन कर सदा आनन्दमग्न रहें और सर्वत्र आनंद फैलायें ॥ ७ ॥

आजकी उषासे भी पहले अनेकों उषायें आकर चली गईं। जिस मार्गसे पूर्वकी उषायें आईं थीं, उसी मार्गसे आजकी उषा भी आई है। आगे आनेवाली उषाओंमें आजकी उषा प्रथम है। यह आकर मरे हुओंके समान सोये हुए लोगोंको उठाती है, आलसियोंमें उत्साह भरती है। प्राचीन मार्ग उत्तम होता है। इस मार्ग पर चल कर अन्धकार दूर किया जा सकता है ॥ ८ ॥

१२४४ उषो यदुग्निं सुमिधें चुकर्थ वि यदावुश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान् युक्ष्यमाणाँ अजीगु- स्तद् देवेषु चकृषे भुद्रमप्नः ॥ ९ ॥
१२४५ कियात्या यत् सुमया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥ १० ॥
१२४६ ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभू- दो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११ ॥
१२४७ यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीति- मिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥

अर्थ— [१२४४] हे (उषः) उषा ! तूने (आग्निं समिधे यत् चकर्थ) अग्निको प्रज्वलित करनेके लिये जो किया और (सूर्यस्य चक्षसा यत् वि आवः) सूर्यके प्रकाशसे जो तूने प्रकाश किया, और (यक्ष्यमाणान् मानुषान् यत् अजीगः) यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको जगाया, (तत् अप्नः भद्रं) यह कल्याणकारक कर्म और (देवेषु चकृषे) देवोंके लिये प्रिय कर्म तूने किया है ॥ ९ ॥

[१२४५] (कियति समया यत् आ भवाति) कितने समयतक यह उषा यहां रहती है ? (याः व्यूषुः) जो प्रकाशित हो चुकी थीं, (याः च नूनं व्युच्छान्) और जो आनेवाली उषाएं हैं वे भी भला कितनी देर रहेंगी ? (पूर्वाः वावशानाः अनुकृपते) पूर्वकालमें गयी हुई उषाओंका स्मरण करानेवाली वर्तमान उषा प्रकाशनेमें समर्थ होती है, यह (प्रदीध्याना अन्याभिः) प्रकाशमान होनेवाली उषा अन्य उषाओंके (जोषं एति) साथ आती है ॥ १० ॥

[१२४६] (ये मर्तासः) जो मानव (व्युच्छन्तीं पूर्वतरां उषसं) प्रकाशनेवाली पूर्व समयकी उषाको (अपश्यन्) देख चुके (ते ईयुः) वे चले गये । (अस्माभिः नु प्रतिचक्ष्या अभूत्) हमारे द्वारा यह उषा देखी जा रही है, तथा (ये अपरीषु पश्यान्) जो आनेवाली उषाको देखेंगे, (ते यन्ति) वे सब जानेवाले हैं ॥ ११ ॥

[१२४७] (यावयत्-द्वेषाः) शत्रुओंको दूर करनेवाली, (ऋतपाः) सत्यका पालन करनेवाली, (ऋते-जाः) सत्यके लिये उत्पन्न हुई, (सुम्नावरी) सुख देनेवाली, (सूनृता ईरयन्ती) वाणीको प्रेरित करनेवाली (सुमंगलीः) उत्तम मंगल करनेवाली (देववीतिं बिभ्रती) देवोंके लिये यज्ञको धारण करनेवाली (श्रेष्ठतमा) अत्यंत श्रेष्ठ ऐसी तू, हे (उषः) उषा ! (इह अद्य व्युच्छ) यहां आज प्रकाशित हो ॥ १२ ॥

भावार्थ— हे उषे ! तूने उदय होनेके साथ ही अग्निको प्रज्वलित किया, सूर्यका प्रकाश फैलाया और यज्ञ करनेवालोंको सोनेकी अवस्थासे जगाया । अर्थात् उषाके उदय होते ही यज्ञ करनेवाले उठकर यज्ञ करने लगे और यज्ञके लिए उन्होंने अग्नि प्रज्वलित की । यह सब कार्य मानों उषा ही करती है। उषाका यह काम कल्याण करनेवाला है । क्योंकि उषाके उदय होनेपर याजक यज्ञ करेंगे और उससे विश्वका कल्याण होगा ॥ ९ ॥

जो पहले आचुकीं या आ रहीं हैं और आगे आनेवाली हैं, वे सब उषायें कबतक आती रहेंगी ? आनेवाली हर उषा पूर्व उषाका स्मरण कराती है और स्वयं भी प्रकाशती है । यह वर्णन बीचमें दिन होनेका वर्णन है । उत्तरीय ध्रुवमें एक उषाके पश्चात् ही दूसरी उषा आती है । तीस उषःकालोंके पश्चात् दिन दीखता है ॥ १० ॥

जो मनुष्य पूर्वकालमें प्रकाशित होनेवाली उषाको देखते थे, वे चले गए । हम आज इस उषाको देख रहे हैं, तो हम भी चले जाएंगे । जो भविष्यमें आनेवाली उषाको देखेंगे, वे भी चले जायेंगे अर्थात् यहां कोई स्थायी रहनेवाला नहीं है । केवल उषा ही एक जैसी बार बार आती है ॥ ११ ॥

शत्रुको दूर करनेवाली, सत्यका पालन करनेवाली, सत्यके प्रचारके लिए प्रसिद्ध, सुख बढानेवाली, मीठी वाणी बोलनेवाली, मंगल कामनावाली, देवोंकी प्रीतिके लिए यज्ञ करनेवाली श्रेष्ठ उषा आज प्रकाशित हो रही है । प्रकाश होनेके कारण शत्रु तथा डाकू भाग जाते हैं । प्रकाश होनेसे सत्य दीखता है अन्धेरेमें छल, कपट और असत्यका व्यवहार चलता है । सूर्य प्रकाशसे सबका कल्याण होता है, दिनमें ही यज्ञ होते हैं, यह सब उषासे ही होता है । इस कारण उषा श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

१२४८ शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्य१थो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यू१नजरामृता चरति स्वधाभिः ॥ १३ ॥
१२४९ व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौ१दप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वै१रोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४ ॥
१२५० आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥ १५ ॥
१२५१ उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगा१दप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्याया१गन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१२४८] (देवी उषाः पुरा शश्वत् वि उवास) दिव्य उषा पूर्व समयसे सदा प्रकाशती आयी है। (अथो अद्य मघोनी इदं व्यावः) और आज धनवाली यह उषा इस जगत्‌को प्रकाशित कर रही है। (अथो उत्तरान् द्यून् अनुव्युच्छात्) और आगेके भी दिनोंमें यह ऐसी ही प्रकाशती रहेगी। ऐसी यह (अजरा अमृता स्वधाभिः चरति) जरारहित और मरणरहित उषा अपनी धारक शक्तियोंके साथ चलती रहती है ॥ १३ ॥

[१२४९] (दिवः आतासु) द्युलोककी सब दिशाओंमें (अंजिभिः वि अद्यौत्) प्रकाश किरणोंसे यह प्रकाशती है। (देवी कृष्णां निर्णिजं अप आवः) यह दिव्य उषा काले अन्धकारको दूर करती है। (अरुणेभिः अश्वैः सयुजा रथेन) उत्तम रीतिसे लाल रंगवाले घोडोंके साथ जोते हुए रथसे (आ याति) यह आती है और (एषा प्रबोधयन्ती) यह उषा सबको जगाती है ॥ १४ ॥

[१२५०] (पोष्या वार्याणि आवहन्ती) पोषणके लिये आवश्यक धनोंको लानेवाली (चेकिताना) सबको प्रकाश दिखानेवाली यह उषा (चित्रं केतुं कृणुते) विलक्षण सुंदर प्रकाश फैलाती है। (ईयुषीणां शश्वतीनां उपमा) गत उषाओंमें अन्तिम तथा (विभातीनां प्रथमा) आनेवाली उषाओंमें पहिली (उषाः) यह उषा (वि अश्वैत्) विशेष चमक रही है ॥ १५ ॥

[१२५१] हे मानवो ! (उदीर्ध्वं) उठो, (नः असुः जीवः आगात्) हमारा यह प्राण रूप प्रकाश आ गया है। (तमः अप प्रागात्) अन्धकार दूर हो गया है, (ज्योतिः आ एति) ज्योति आ रही है। (सूर्याय यातवे पन्थां आरैक्) सूर्यके गमनके लिये मार्ग खुला हो रहा है, (यत्र आयुः प्रतिरन्त अगन्म) जहां आयु बढती है वहां हम पहुंचें ॥ १६ ॥

भावार्थ— उषा पूर्व समयमें प्रकाशती रही, इस समय प्रकाश रही है और भविष्यमें भी प्रकाश देती रहेगी। ऐसी यह उषा तीनों कालोंमें प्रकाशनेके कारण अजर अमर है। यह अपनी धारकशक्तिसे प्रकाशित होती रहे ॥ १३ ॥

आकाशमें यह उषा चारों ओरसे प्रकाश रही है। इस दिव्य उषाने काले अन्धकारको दूर किया है। लाल घोडोंको अपने रथमें जोडे हैं। उस रथसे उषा आती है और सबको जगाती है ॥ १४ ॥

पोषण करनेवाले तथा स्वीकार करने योग्य धनोंको यह उषा लाती है, यह उषा सबको प्रकाश देती है और सुन्दर तेज फैला रही है। यह आजकी उषा गत उषाओंमें अन्तिम है और आनेवाली उषाओंमें पहली है। यह उत्तमतासे चमकती है ॥ १५ ॥

*

१२५२ स्यूमना वाच उदियर्ति वन्हिः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघो न्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७ ॥
१२५३ या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत् सोमसुत्वा ॥ १८ ॥
१२५४ माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९ ॥
१२५५ यच्चित्रमप्न उषसो वहन्ती जानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २० ॥

अर्थ— [१२५२] (वह्निः रेभः) स्तोत्र पाठ करनेवाला कवि (विभातीः उषसः स्तवानः) प्रकाशनेवाली उषाओंकी स्तुति करता हुआ, (स्यूमना वाचः उदियर्ति) जिसमें मन रमता है ऐसी स्तोत्रोंकी वाणी बोलता है । हे (मघोनि) धनवाली उषा ! (अद्य गृणते तत् उच्छ) आज स्तोताके लिये वह प्रकाश दे और (अस्मे प्रजावत् आयुः नि दिदीहि) इसके लिये पुत्र पौत्रोंके साथ रहनेवाला आयु रूपी धन दे ॥ १७ ॥

[१२५३] (दाशुषे मर्त्याय) दाता मनुष्यके लिये (गोमतीः सर्ववीराः या उषसः) गौवोंवाली और वीरोंसे युक्त ये उषायें (व्युच्छन्ति) प्रकाश रही हैं । (वायोः इव सूनृतानां उदर्के) वायुके समान शीघ्रगामी स्तुतिरूपी सत्यभाषणोंके प्रकाशित होनेपर (अश्वदाः ताः) घोडोंको देनेवाली वे उषायें (सोमसुत्वा अश्नवत्) सोमयाग करनेवालोंको प्राप्त होती हैं ॥ १८ ॥

[१२५४] हे उषा ! तू (देवानां माता) देवोंकी माता है, तू (अदितेः अनीकं) अदितिका मुख है । तू (यज्ञस्य केतुः) यज्ञका ध्वज होकर (बृहती विभाहि) विशेष रीतिसे प्रकाशित हो । (नः ब्रह्मणे प्रशस्तिकृत् व्युच्छ) हमारे ज्ञानकी प्रशंसा करती हुई प्रकाशित हो । हे (विश्ववारे) सबके द्वारा आदरणीय उषा ! (नः जने जनय) हमें अपने लोकोंमें सम्मानके स्थानमें पहुंचा ॥ १९ ॥

[१२५५] (यत् चित्रं अप्नः उषसः वहन्ति) जो विलक्षण धन उषाएं धारण करती हैं । वह धन (इजानाय शशमानाय भद्रं) यज्ञ करनेवाले याजकके लिये कल्याण करनेवाला होता है । (तत्) यह प्रार्थना (मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ ये देव (नः मामहन्तां) हमारे लिये सफल करें ॥ २० ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! उठो, जागो, प्राणके समान यह जीवन प्रकाश आ गया है । अन्धेरा दूर हो गया है । सूर्यके प्रकाशके लिए मार्ग खुल गया है । यहां हम अपनी आयुको बढाते हुए प्रगति करें । हे शोभावाली उषे ! आज तू प्रकाशित हो और हमें पुत्र पौत्रादिसे युक्त दीर्घायु दे । हमारी सन्तानें उत्तम हों और हमें दीर्घायु प्राप्त हो ॥ १६-१७ ॥

दाता मानवोंको गौवें, घोडे और वीर पुत्र देनेवाली उषायें प्रकशित हो रही हैं । तब सभी याजक स्तुति करते हैं, उन स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर उषा सोमयज्ञ करनेवालोंके पास जाती है और उन्हें हर तरहके धन प्रदान करती है ॥ १८ ॥

देवोंकी माता, अदितिके मुखके समान तेजस्विनी तथा यज्ञके ध्वज जैसी यह विशाल उषा चमक रही है । हमारे ज्ञानकी चारों ओर प्रशंसा हो । इसी तरह यह उषा प्रकाशती रहे अर्थात् हम चिरकाल तक जीवित रहकर उषाको देखते रहें । हे उषे ! हमें उन्नतिके मार्गसे ले चलो ॥ १९ ॥

जो धन उषाके पास है, वे यज्ञ करनेवालोंको ही प्राप्त होता है, जो अयज्ञशील हैं, उन्हें नहीं मिलाता, न उषा ही उनका कल्याण करती है । अर्थात् उषःकालमें उठकर यज्ञ करनेवालोंका यह उषा कल्याण करती है । यह उषा विलक्षण और कल्याणकारी धन हमारे पास लावे, तथा इस धनको मित्रादि देव बढावें ॥ २० ॥

[११४]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- रुद्रः । छन्दः- जगती; १०-११ त्रिष्टुप् ।)

१२५६ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ १ ॥
१२५७ मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ २ ॥
१२५८ अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमा चरा—रिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ३ ॥

---

[११४]

अर्थ— [१२५६] (यथा अस्मिन् ग्रामे) जिस प्रकार इस गांवमें (विश्वं पुष्टं अनातुरं असत्) सब प्राणिमात्र हृष्टपुष्ट और नीरोगी रहें (तथा द्विपदे चतुष्पदे शं) तथा द्विपद और चतुष्पादके लिये शान्ति प्राप्त हो (तवसे) उस प्रकार बलवान् (कपर्दिने) जटाधारी (क्षयद्वीराय रुद्राय) वीरोंको आश्रय देनेवाले रुद्रके लिये (इमाः मतीः प्रभरामहे) ये मंत्र हम गाते हैं ॥ १ ॥

[१२५७] (रुद्र) हे रुद्र ! (नः मृळ) हम सबको सुखी कर, (उत नः मयः कृधि) और हम सबको नीरोग कर (क्षयद्वीराय ते) वीरोंको आश्रय देनेवाले तेरा (नमसा विधेम) हम सब नमस्कारसे सत्कार करते हैं (मनुः पिता) मनुष्योंका पालक यह वीर (यत् शं च योः च आयेजे) शांति और रोगनिवारक शक्ति देता है (रुद्र) हे रुद्र ! (तव प्रणीतिषु) तेरी विशेष नीतिसे (यत् अश्याम) उसको हम सब प्राप्त करें ॥ २ ॥

[१२५८] (मीढ्वः रुद्र) हे सुखदायक रुद्रदेव ! (क्षयद्वीरस्य ते) वीरोंको आश्रय देनेवाले तेरी (सुमतिं अश्याम) उत्तम बुद्धिको हम सब प्राप्त हों । (अस्माकं विशः) हमारी प्रजाओंको (ते देवयज्यया सुम्नायन्) अपने देव-यजनसे सुख देता हुआ तू (इत् आचर) हमारे लिये अनुकूल आचरण कर (अरिष्टवीराः) हमारे वीरोंका नाश न हो (ते हविः जुहवाम) और हम सब तुम्हारे लिये अन्न अथवा दान अर्पण करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— रुद्र वैद्योंका नाम है। ग्राम, नगर आदिमें रहनेवाले मनुष्यों तथा इतर प्राणियोंको आरोग्यसम्पन्न रखकर हृष्टपुष्ट, सुदृढ और उत्साही रखना राज्यके आरोग्यविभागका कर्तव्य है। जो इस प्रकार नागरिक-आरोग्यकी व्यवस्था उत्तम प्रकारसे करता है अथवा नागरिक-आरोग्य ठीक करनेके प्रबन्धोंका उपदेश नगरवासियोंको देता है, उसीकी प्रशंसा करनी चाहिए। वैद्य अनुभवी और धैर्यशाली हो। औषधियों द्वारा बीमारीको दूर फेंकनेवाला हो, वीरोंको आश्रय देनेवाला हो अर्थात् हर नागरिकको वीर एवं हृष्टपुष्ट बनानेवाला हो ॥ १ ॥

(शं) नागरिकोंमें स्वास्थ्य, निरोगिता और मानसिक शान्ति हो, (योः) और वे बाहरसे आनेवाली आपत्तियोंको रोकनेमें समर्थ हों। मनुष्यको अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करनी चाहिए और आगे रोगोंका उपद्रव न होने पाए, इसका भी प्रबन्ध करना चाहिए। शान्ति और रोगप्रतिरोधकशक्ति हरएकको प्राप्त करनी चाहिए। जो स्वयं अपनी रक्षा करता है और विचारपूर्वक अपना व्यवहार करता है, वह मनुष्य अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकता है। वैद्योंको भी चाहिए कि वे सबको स्वास्थ्य नीतिका उपदेश करें और मनुष्योंको भी चाहिए कि वे स्वास्थ्य नीतिके अनुसार अपना आचार व्यवहार करें ॥२॥

उदार वैद्योंकी सम्मतिके अनुसार सब लोग आचरण करें, क्योंकि स्वार्थी वैद्य अपने स्वार्थके कारण उचित परामर्श नहीं देगा। इस प्रकार उत्तम आचरण करता हुआ मनुष्य इन्द्रियों, विद्वानों और वातावरणको प्रसन्न रखे। क्योंकि मनुष्यों-का कल्याण इन्द्रियों, विद्वानों तथा जलवायुकी प्रसन्नता पर ही निर्भर है। इस प्रकार उत्तमरूपसे स्वास्थ्य प्राप्त करके मनुष्य शत्रुओंका विनाशक हो और वैद्योंकी हर तरहसे सहायता करे ॥ ३ ॥

१२५९ त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥
१२६० दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥
१२६१ इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥ ६ ॥
१२६२ मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१२५९] (त्वेषं) तेजस्वी (यज्ञसाधं) सत्कर्म साधक (वङ्कुं) चपल, स्फूर्तियुक्त (कविं रुद्रं) ज्ञानी रुद्रकी (वयं अवसे नि ह्वयामहे) हम सब संरक्षणके लिये प्रार्थना करते हैं (दैव्यं हेळः अस्मत् आरे अस्यतु) देवोंके संबंधी क्रोध हम सबसे दूर हों (अस्य सुमतिं इत् वृणीमहे) हम इसकी उत्तम मतिको प्राप्त करें ॥ ४ ॥

[१२६०] (वराहं) उत्तम आहार लेनेवाले (अरुषं त्वेषं रूपं) तेजस्वी, सुंदर रूपयुक्त (कपर्दिनं) जटाधारी वीरको (दिवः नमसा नि ह्वयामहे) द्युलोकसे सत्कारपूर्वक हम सब बुलाते हैं (हस्ते वार्याणि भेषजा बिभ्रत्) वह अपने हाथोंमें रोगनिवारक औषधियां धारण करता है (अस्मभ्यं शर्म वर्म छर्दिः यंसत्) और हम सबको आंतरिक स्वास्थ्य, बाह्य दोषोंका प्रतिबंध तथा वमन विरेचन आदि देता है ॥ ५ ॥

[१२६१] (मरुतां पित्रे रुद्राय) मरणके लिये सिद्ध हुए वीरोंके संरक्षक महावीरके लिये (स्वादोः स्वादीयः) मीठेसे मीठा (वर्धनं) और बधाई देनेवाला (इदं वचः उच्यते) यह स्तोत्र गाया जाता है (अमृत) कि, हे अमर! (नः मर्तभोजनं रास्व) तू हम सबके लिये मनुष्योंका भोजन दे, (त्मने तोकाय तनयाय मृळ) तथा मुझे तथा बालबच्चोंको सुखी रख ॥ ६ ॥

[१२६२] (रुद्र) हे रुद्रः ! (नः महान्तं मा वधीः) हमारेमें बडोंका वध न कर (नः अर्भकं मा) हमारे छोटोंका वध न कर (नः उक्षन्तं मा) हमारे बढनेवालेका वध न कर (उत नः उक्षितं मा) और हमारे बडे हुएका वध न कर (नः पितरं मा) हमारे पिताका वध न कर (उत नः मातरं मा) और हमारी माताका वध न कर (नः प्रियाः तन्वः मा रीरिषः) हम सबके प्रिय शरीरोंको कृश मत कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— आरोग्यके लिए क्रोध, द्वेष आदि विकारोंको दूर करना चाहिए। क्रोध आदि दुष्ट मनोविकार आरोग्यका सर्वथा घात करते हैं। क्रोधके कारण शीघ्र ही मनुष्य वृद्ध हो जाता है। अतः इन मनोविकारोंको दूर करना आवश्यक है। अनादर, अपमान, निर्बलता आदि सब बुरे भाव हैं अतः इन बुरे भावोंको त्याग कर सुमतिको मनमें स्थापित करनेसे आरोग्य प्राप्त होता है। वैद्य सत्कर्म करनेवाला, फुर्तीला और ज्ञानी हो ॥ ४ ॥

हर मनुष्य उत्तम भोजन प्राप्त करे। और सुअरके समान सुदृढ अंगोंवाला हो। वैद्य सुन्दर और सुस्वभावी हो, क्योंकि ऐसे वैद्यके दर्शनसे ही रोगी पर उत्तम प्रभाव पडता है। वैद्य भी अपने हाथमें रोगनिवारक औषधियां लेकर आए। मनको शांत रखना, बाहरसे आनेवाले विषोंको रोकना और शरीरमें समाये हुए विषोंको बाहर निकालना इन तीन प्रकारोंसे प्राणिमात्रका स्वास्थ्य ठीक रखना वैद्यका कर्तव्य है ॥ ५ ॥

वैद्य मरणशील मनुष्योंका पिता है। वह मनुष्योंका संरक्षण और पालन करता है। वैद्य रोगियोंको मनुष्योंके योग्य अन्न दे। मनुष्य फलभोजी, शाकाहारी तथा धान्यभोजी प्राणी है अतः उसको ऐसा ही पथ्य देना चाहिए, जो उसके लिए योग्य हो और इस प्रकारके योग्य अन्न द्वारा बालबच्चों और बडे मनुष्योंको भी आरोग्य प्राप्त करा कर सुखी करना चाहिए। मनुष्यको मृत्युसे दूर रखनेका कार्य वैद्यका है ॥ ६ ॥

१२६३ मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधी- र्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ ८ ॥
१२६४ उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमा- था वयमव इत् ते वृणीमहे ॥ ९ ॥
१२६५ आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवा- धा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥ १० ॥
१२६६ अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता- मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

अर्थ—[१२६३] (रुद्र) हे रुद्र! (नः तोके तनये) हम सबके बालबच्चोंमें (आयौ गोषु अश्वेषु) मनुष्य, गाय और घोडोंमें (मा रीरिषः) कृशता उत्पन्न न कर (भामितः नः वीरान् मा वधीः) क्रोधके कारण हमारे वीरोंका वध न कर (त्वा हविष्मन्तः सदं इत् हवामहे) तुझे अन्नदान करनेके लिए हम अपने घरमें बुलाते हैं ॥ ८ ॥

[१२६४] (मरुतां पितः) हे मरनेके लिये सिद्ध हुए वीरोंके संरक्षक वीर! (पशुपा इव) पशुओंके पालक ग्वालियेके समान (अस्मे सुम्नं रास्व) हम सबके लिये उत्तम सुख दे। (ते स्तोमान् उप अकरं) हम सब तेरी प्रशंसा करते हैं। (हि ते सुमतिः मृळयत्तमा) क्योंकि तेरी उत्तम सम्मति अत्यंत सुख देनेवाली है। (अथ वयं ते अवः इत् वृणीमहे) इसलिये हम सब तुझसे संरक्षण प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

[१२६५] (क्षयद्वीर) हे वीरोंको आश्रय देनेवाले! (ते गोघ्नं उत पुरुषघ्नं आरे) तेरा गायका घातक और मनुष्यका घातक शस्त्र हमसे दूर रहे। (अस्मे ते सुम्नं अस्तु) हम सबके लिये तेरा उत्तम मन प्राप्त हो। (नः मृळः च) और हम सबको सुखी कर। (देव) हे देव! (च अधि ब्रूहि) हमें और उपदेश कर (द्विबर्हाः शर्म यच्छ) तथा दो तरहकी शक्तियोंवाला तू हम सबके लिये शांति प्रदान कर ॥ १० ॥

[१२६६] (अवस्यवः अवोचाम) रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम सब कहते हैं (अस्मै नमः) कि इस प्रकारके वीरके लिये हमारा नमस्कार है। (मरुत्वान् रुद्रः) मरनेतक लडनेवाले वीरोंके साथ रहनेवाला यह महावीर (नः हवं शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने। (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक (नः तत्) इस प्रकार हमारी इस इच्छाका (मामहन्तां) अनुमोदन करें ॥ ११ ॥

भावार्थ— वैद्यके भूल, दोष, आलस्य, क्रोध और अज्ञानसे रोगी मर जाते हैं, इसलिए वैद्योंको हमेशा सावधान रहना चाहिए। वैद्य अपनी असावधानीसे किसीको कृश न करें और न किसीका घात करे। वैद्योंकी थोडीसी भूलसे रोगीका मृत्युमुखमें चला जाना सम्भव है अतः वैद्योंको सदा सावधान रहना चाहिए। वैद्य कभी मनके दोषोंके कारण दूसरोंका वध न करे। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, क्षोभ आदिके वशीभूत होकर वैद्य रोगीका घात न करे ॥ ७–८ ॥

गौवोंकी रक्षा करता हुआ ग्वाला जिस तरह गौवोंको बुरे मार्गसे बचाता है, उसी प्रकार योग्य वैद्य सब जनताको बीमारियोंसे योग्य उपदेश द्वारा बचावे। वैद्योंकी सम्मति ही सच्चा कल्याण करनेवाली है और वैद्योंकी सम्मतिके अनुसार चलकर ही मनुष्य रोगोंसे बच सकते हैं। अतः वैद्योंको चाहिए कि वे सबको आरोग्यके मार्गका उपदेश करें और लोगोंको भी चाहिए कि वे वैद्योंके उपदेशके अनुसार अपना व्यवहार करें ॥ ९–१० ॥

शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, आरोग्य आयुष्यके सम्बन्धमें मनुष्यमात्रकी उन्नति होनी चाहिए। उत्तम आचरण करके मैं हरतरहकी उन्नति अवश्य प्राप्त करूंगा ऐसे ही विचार हरएकको अपने मनमें धारण करने चाहिए ॥ ११ ॥

[११५]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- सूर्यः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१२६७ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥
१२६८ सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २ ॥
१२६९ भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥ ३ ॥

---

[११५]

अर्थ— [१२६७] (देवानां अनीकं) देवोंका मुख्य तेज (मित्रस्य, वरुणस्य अग्नेः चित्रं चक्षुः) मित्र, वरुण और अग्निका विलक्षण नेत्ररूप सूर्य (उत् अगात्) उदय हो गया है। उसने (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं) द्युलोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्षलोकको (आ अप्राः) व्याप लिया है। (सूर्यः) सूर्य (जगतः तस्थुषः च आत्मा) सूर्य जंगम और स्थावरका आत्मा है ॥ १ ॥

१ देवानां अनीकं चित्रं चक्षुः— यह सूर्य देवोंका तेज और विलक्षण आंख है।
२ सूर्यः जगतः तस्थुषः आत्मा— सूर्य चराचर जगत्की आत्मा है।

[१२६८] (सूर्यः) सूर्य (देवीं रोचमानां उषसं) प्रकाशमान् और तेजयुक्त उषादेवीके (पश्चात् अभि एति) पीछे उसी प्रकार जाता है, जिस प्रकार (मर्यः योषां न) युवान पुरुष युवती स्त्रीके पीछे जाता है। (यत्र) जहां (देवयन्तः नराः) देवत्व प्राप्तिके इच्छुक मनुष्य (युगानि) योग्य कर्म करते हैं, वहां (भद्रं प्रति भद्राय) उस कल्याणकारी पुरुषका कल्याण करनेके लिए यह सूर्य (वितन्वते) अपना प्रकाश फैलाता है ॥ २ ॥

१ भद्रं प्रति भद्राय— यह सूर्य कल्याणकारियोंका कल्याण करता है।

[१२६९] (सूर्यस्य अश्वाः भद्राः) सूर्यके अश्व अर्थात् किरणें कल्याण करनेवाली, (हरितः) जल हरण करनेवालीं, (चित्राः) विलक्षण (अनुमाद्यासः) आनन्द देनेवालीं (एतग्वाः) और सतत गतिमान् हैं। (नमस्यन्तः) पूजित होती हुई ,वे किरणें (दिवः पृष्ठं आ अस्थुः) द्युलोकके पृष्ठपर फैलती हैं। (द्यावापृथिवी) ये द्युलोक और पृथ्वीलोकपर (सद्यः परि यन्ति) तत्काल ही फैलती हैं ॥ ३ ॥

१ सूर्यस्य अश्वाः भद्राः अनुमाद्यासः— सूर्यकी किरणें कल्याण करनेवाली और आनंद देनेवाली हैं।

भावार्थ— उषाके पश्चात् सूर्यका उदय होता है। यह सूर्य देवोंकी आंख है, मानों देवगण इस आंखके द्वारा ही जगत्का सारा व्यवहार देखते हैं। इसके उदय होते ही सब प्राणियोंकी आंखोंको प्रकाशका मार्ग दीखने लगता है। सूर्य सब चराचर जगत्की आत्मा है। सूर्य न हो तो कुछ भी न रहे। सब प्रकारका जीवन सूर्यसे ही मिलता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, औषधि, तृण आदि सबका जीवन सूर्यके प्रकाशपर ही अवलम्बित है ॥ १ ॥

प्रथम उषा आती है, और उसके बाद सूर्य उदय होता है, इसलिए कविने रूपक दिया है कि मानों एक तरुण तरुणीके पीछे भाग रहा है। सूर्यप्रकाशसे ही सबका कल्याण होता है और उत्तम उत्तम कल्याणकारी यज्ञ सिद्ध होते हैं। जो मनुष्य दूसरे मनुष्योंका कल्याण करते हैं, उनका कल्याण सूर्य करता है। अहितकारियोंका कभी हित नहीं होता ॥ २ ॥

सूर्यकी किरणें रोगबीजोंका नाश करके मानवोंको आरोग्य देती हैं, इसलिए कल्याणकारी हैं। जलका हरण करके अन्तरिक्षमें बादलोंका निर्माण करती और वृष्टि भी करती हैं। वे ही सब शुभ कर्मोंकी प्रेरणा देती हैं ॥ ३ ॥

१२७० तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्था—दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥

१२७१ तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥

१२७२ अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१२७०] (सूर्यस्य तत् देवत्वं) सूर्यका वही देवपन और (तत् महित्वं) वही महत्त्व है कि वह (कर्तोः मध्या) मनुष्यके कामके बीचसे ही (विततं सं जभार) अपनी फैली हुई किरणोंको समेट लेता है अर्थात् अस्त हो जाता है । (यदा यत्) जब भी यह सूर्य (हरितः सधस्थात् अयुक्त) अपनी हरणशील किरणोंको भूलोकसे अपने रथमें जोडता है, (आत्) इसके बाद (रात्रीः वासः सिमस्मै तनुते) रात्री अपना काला वस्त्र सब विश्वपर फैलाती है ॥ ४ ॥

१ कर्तोः मध्या विततं सं जभार तत् सूर्यस्य देवत्वं महित्वं— काम करनेवालेका काम पूरा भी नहीं हो पाता कि यह सूर्य बीचमें ही अपनी किरणोंको समेट लेता है, यही इस सूर्यका देवत्व और महत्त्व है।

[१२७१] (तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे) वह मित्र और वरुणका रूप दीखे, इसलिए (द्योः उपस्थे सूर्यः रूपं कृणुते) द्युलोकके समीप सूर्य अपना रूप प्रकट करता है। (अस्य हरितः) इसकी किरणें (अनन्तं रुशत् अन्यत् पाजः सं भरन्ति) अनन्त तेजस्वी ऐसा एक प्रकारका रूप धारण करती हैं, (कृष्णं अन्यत्) और दूसरा काला रूप रात्रीके समय धारण करती हैं ॥ ५ ॥

[१२७२] (देवाः) हे देवो ! (अद्य सूर्यस्य उदिता) आज सूर्यके उदयके समय ही (अवद्यात् अंहसः नः निः पिपृत) तुम संकटसे और पापोंसे हमारी रक्षा करो । (नः तत्) हमारी इस इच्छाका (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ (मामहन्तां) अनुमोदन करें ॥ ६ ॥

भावार्थ— सूर्य प्रकाशमें मनुष्य सब अच्छे कर्म करते हैं, पर यह सूर्य किसीके लिए ठहरता नहीं है। समयपर अपनी किरणें समेट लेता है और चला जाता है । सूर्यके अस्त हो जानेपर लोगोंको अपने कर्म बंद करने पडते हैं । इसलिए वे सूर्योदयतक विश्राम करते हैं । यह अपनी किरणोंको भूलोकसे समेट लेता है, तब रात्री अपने काले वस्त्रको सब विश्वपर ढक देती है । तब सर्वत्र अन्धकार छा जाता है ॥ ४ ॥

द्युलोकपर आकर सूर्य सर्वत्र प्रकाश करता है अतः अस्त होकर सर्वत्र अन्धकार फैलाता है । प्रकाशमय दिन और अन्धकारमयी रात्री ये दोनों रूप एक ही सूर्यके हैं । सूर्यसे होनेवाले ये कालखण्ड हैं ॥ ५ ॥

यह सूर्य मानवोंका संरक्षक है । वह संकटों आपत्तियों और रोगोंसे मानवोंकी सुरक्षा करता है, इसलिए वह सबका उपास्य है । सूर्य जैसे सबको प्रकाशका मार्ग दिखाता है, उसी तरह विद्वान् सबको सच्ची उन्नतिका मार्ग दिखावे । मानवके सम्मुख सूर्यका आदर्श वेदने रखा है । सावित्रीकी उपासनाका यही तत्त्व है ॥ ६ ॥

[११६]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१२७३ नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥

१२७४ वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद् रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥

१२७५ तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभि रन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः । ॥ ३ ॥

---

[११६]

अर्थ—[१२७३] (यौ) जो दोनों अश्विदेव (सेनाजुवा रथेन) सेनाके साथ चलनेवाले रथपरसे, (अर्भगाय विमदाय) नवयुवक विमदके लिए (जायां नि ऊहतुः) पत्नीको पहुँचा आये, उन (नासत्याभ्यां) असत्यसे रहित अश्विदेवोंके लिए मैं (स्तोमान्) स्तोत्रोंको, (वातः अभ्रिया इव) पवन मेघमण्डलमें स्थित होकर जलोंको जैसे प्रेरित करता है, या आगे फैला देता है, वैसे (इयर्मि) मैं प्रेरित करता हूं, तथा (बर्हिः इव) कुशासनोंकी तरह (प्रवृञ्जे) विस्तारित करता हूं ॥ १ ॥

[१२७४] हे (नासत्या) असत्यसे दूर रहनेवाले अश्विदेवो ! (वीळुपत्मभिः वा) आकाशमें वेगसे उडनेवाले, और (आशु हेमभिः) शीघ्रगतिसे जानेवाले, (देवानां जूतिभिः वा) देवोंकी गतिसे संचालित होनेवाले यानोंसे (शाशदाना) शीघ्र गतिसे जानेवाले तुम दोनों हो; तुम्हारे यानोंमें जोता हुआ (रासभः) रासभ (तत् सहस्रं) उस सहस्र संख्यावाले शत्रुदलको (यमस्य प्रधने आजा) यमके लिये ही प्रिय होनेवाले युद्धमें शत्रुको (जिगाय) जीत चुका ॥ २ ॥

[१२७५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (कश्चित् ममृवान्) कोई मरनेवाला (रयिं न) जिस प्रकार अपनी धनसंपदाको छोड देता है, उसी प्रकार (उदमेघे) जलोंसे भरे प्रचण्ड समुद्रमें (तुग्रः भुज्युं ह) तुग्र नरेशने अपने पुत्र भुज्युको शत्रुपर हमला करनेके लिए (अवाहाः) छोड दिया; (तं) उसे (आत्मन्वतीभिः) निजशक्तियोंसे युक्त (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) अन्तरिक्षमेंसे जानेवाली तथा (अपोदकाभिः) जलोंको दूर करके जलमें भी जानेवाली (नौभिः ऊहथुः) नौकाओंसे तुम दोनों ऊपरसे ढोकर आगे ले चले ॥ ३ ॥

भावार्थ— दोनों अश्विदेव अपनी सेनाके साथ शत्रुपर हमला करनेवाले रथमें बिठलाकर नवयुवक विमदकी पत्नीको उसके घर पहुंचा आये थे, उनके स्तोत्रोंको मैं फैलाता हूं, जैसे मेघोंको वायु और आसनोंको यज्ञकर्ता फैलाता है। जो वीर अपने वीरोंकी और उनके घरवालोंकी सुरक्षा करेंगे, उनकी प्रशंसा करना योग्य है ॥ १ ॥

सत्यका पालन करनेवाले दोनों अश्विदेव अतिवेगसे आकाशमें उडनेवाले, अति शीघ्र गतिसे जानेवाले और (विद्युत् आदि) देवताओंकी गतिसे दौडनेवाले यानोंसे अति शीघ्र गतिसे जाते हैं। इनके यानोंमें जुते हुए रासभने यमको आनन्द देनेवाले भयंकर युद्धमें सहस्रोंकी संख्यामें शत्रु सैनिकोंको जीत लिया था। जल, अग्नि, वायु, विद्युत आदि देवताओंकी शक्तिसे आकाश यान तथा अन्यान्य यान अतिशीघ्र गतिसे चलाना योग्य है। भयानक युद्धमें वीर ऐसा पराक्रम करें कि, जिससे शत्रुके सैनिक सहस्रोंकी संख्यामें मर जायँ ॥ २ ॥

जैसे मरनेवाला मनुष्य अपने धनकी आशा छोड देता है, उसी तरह अपने पुत्रकी आशा छोडकर तुग्र नरेशने अपने भुज्यु नामक पुत्रको शत्रुपर हमला करनेके लिए बडे गहरे महासागरमें जानेकी आज्ञा दी। भुज्यु गया और उसका बेडा टूट गया तब उसे तुम दोनोंने अपनी अद्भुत शक्तिवाली, आकाशमें संचार करनेवाली और जलको तोडकर जलमें भी जानेवाली नौकाओंसे, उठाकर उसको पिताके पास पहुंचाया। राजा अपने सागरके परे रहनेवाले शत्रुका पराभव करनेके लिए अपने वीरोंको विशेष तैयारीके साथ भेजे। इन वीरोंकी सुरक्षाके लिये ऐसे यान रखे कि जो भूमिपर, जलमें तथा आकाशमें भी उत्तम गतिसे चल सकें ॥ ३ ॥

१२७६ तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भि—र्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥ ४ ॥
१२७७ अनारम्भणे तदवीरयेथा—मनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥
१२७८ यमश्विना ददथुः श्वेतमश्व—मघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति ।
तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६ ॥
१२७९ युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥ ७ ॥

अर्थ — [१२७६] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (आर्द्रस्य समुद्रस्य) जलमय अगाध समुद्रके (पारे धन्वन्) परे रेताले मरुदेशसे (तिस्रः क्षपः) तीन रातें और (त्रिः अहा) तीन दिन न ठहरते हुए (अतिव्रजद्भिः) बराबर वेगसे जानेवाले, (शतपद्भिः) सौ पहियोंसे युक्त और (षड् अश्वैः) छहः अश्वशक्तिवाले यंत्रोंसे युक्त (पतङ्गैः) पक्षी जैसे उडते हुए जानेवाले (त्रिभिः रथैः) तीन यानोंसे (भुज्युं ऊहथुः) भुज्युको तुम दोनों साथ ले चले ॥ ४ ॥

[१२७७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अनास्थाने) स्थान रहित, (अनारम्भणे) आलम्बनशून्य (अग्रभणे समुद्रे) हाथसे जहां किसीको पकडना असंभव है, ऐसे अथाह समुद्रमें (शतारित्रां नावं) सौ बल्लियोंसे चलायी जाने-वाली नौकापर (आतस्थिवांसं भुज्युं) चढे हुए भुज्युको (यत् अस्तं ऊहथुः) जो तुम दोनोंने घर पहुंचाया, (तत्) वह कार्य (अवीरयेथां) सचमुच बडी ही वीरतासे पूर्ण था ॥ ५ ॥

[१२७८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अघाश्वाय) अघाश्व नरेशको (यं श्वेतं अश्वं ददथुः) जिस सफेद घोडेका दान तुम दोनोंने दिया (शश्वत् इत्) वह हमेशा ही (स्वस्ति) कल्याणकारक है; (वां तत् दात्रं) तुम दोनोंका वह दान (महि कीर्तेन्यं भूत्) बडा भारी वर्णन करने योग्य हुआ है (पैद्वः अर्यः वाजी) वह पेदुको दिया हुआ, शत्रु सेनापर चढाई करनेवाला घोडा भी (सदमित् हव्यः) सदैव समीप बुलानेयोग्य है ॥ ६ ॥

[१२७९] हे (नरा) नेतृत्वगुणसे युक्त अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (पज्रियाय कक्षीवते) उच्च कुलोत्पन्न कक्षीवान्को (पुरंधिं अरदतं) नगरका संरक्षण करनेकी क्षमता बढानेवाली बुद्धि दी (वृष्णः अश्वस्य शफात्) बलिष्ठ घोडेके खुरके समान (कारोतरात्) विशिष्ट बर्तनसे (सुरायाः शतं कुम्भान्) जलके सौ घडे (असिञ्चतं) तुम दोनोंने भरकर रखे ॥ ७ ॥

भावार्थ— अगाध समुद्रके परे जहां रेतीला प्रदेश है, वहांसे तीन दिन और तीन रात बराबर बीचमें किसी जगह न ठहरते हुए अतिवेगसे जानेवाले, सौ पहियोंसे युक्त, छः चालक कला यन्त्रोंसे युक्त पक्षी जैसे उडनेवाले तीन यानोंसे तुम दोनोंने भुज्युको उसके घर पहुंचाया। तीन अहोरात्र न ठहरते हुए चलनेवाले, पक्षी जैसे आकाशमें उडनेवाले सौ पहियों और छः वाहक यन्त्रोंसे चलाये जानेवाले आकाशयान बनाना योग्य है। इनका उपयोग दूर देशमें गये सैनिकोंकी सहायतार्थ करना उचित है ॥ ४

जहां ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं है, जहां कोई आश्रय नहीं है और जहां पकडनेके लिये कोई पदार्थ ही नहीं है ऐसे अथाह महासागरमेंसे जो तुम दोनोंने सौ बल्लियोंसे चलायी जानेवाली नौकापर बिठलाकर भुज्युको उसके घर पहुंचाया वह सचमुच बडा ही वीरताका कार्य है। असीम महासागरसे भी अपने वीरोंको बचानेका कार्य शूर पुरुषोंको करना चाहिये। यह कार्य नौकासे किया जाय अथवा आकाश यानसे किया जाय ॥ ५ ॥

अश्विदेवोंने अघाश्वको श्वेत घोडा दिया, और पेदुको चढाई करनेके कार्यमें निपुण घोडा दिया। ये दान प्रशंसाके योग्य हैं। घोडोंको विविध कार्योंमें उत्तम शिक्षित करके वीरोंको दानमें देना योग्य है ॥ ६ ॥

*

१२८० हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीत—मुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥
१२८१ परावतं नासत्यानुदेथा—मुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥
१२८२ जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रा—दित् पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१२८०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (घ्रंसं अग्निं) धधकते हुए अग्निको (हिमेन अवारयेथां) तुम दोनोंने बर्फसे हटाया, (ऋबीसे अवनीतं अत्रिं) अँधेरे कारागृहमें औंधे मुँह पडे हुए ऋषि अत्रिको (सर्वगणं) उनके सभी अनुयायियोंके साथ (स्वस्ति उत् निन्यथुः) उत्तम रीतिसे ऊपर उठाया और (अस्मै) इसे (पितुमतीं ऊर्जं अधत्तं) पुष्टिकारक तथा बलप्रद अन्न दिया ॥ ८ ॥

[१२८१] हे (नासत्या) सत्यको न छोडनेवाले अश्विदेवो ! (अवतं परा अनुदेथां) कुंवेके जल प्रवाहको तुम दोनोंने बहुत दूरतक लेजाकर उसके (उच्चा बुध्नं जिह्मबारं चक्रथुः) तल भागको ऊंचा करके कुटिलमार्ग बनाये और (तृष्यते गोतमस्य पायनाय) प्यासे गोतमके पीनेके लिए (सहस्राय राये न) और सहस्र संख्याक धान्यरूप धन मिलानेके लिए उससे (आपः क्षरन्) जल धाराएँ बहा दीं ॥ ९ ॥

[१२८२] हे (दस्रा नासत्या) शत्रुनाशक तथा असत्यसे रहित अश्विदेवो ! (जुजुरुषः च्यवानात्) जराजीर्ण च्यवानसे (द्रापिं इव) कवचके तुल्य (वव्रिं प्र अमुंचतं) बुढापेकी चमडीको तुम दोनोंने उतार कर दूर किया, (उत) और उस (जहितस्य आयुः) परित्यक्तकी आयु (प्र अतिरतं) तुम दोनोंने दीर्घ बना दी, (आत् इत्) तदुपरान्त (कनीनां पतिं अकृणुतं) उसे तुम दोनोंने कमनीय नारियोंका पति भी बना दिया ॥ १० ॥

भावार्थ— उच्च कुलमें उत्पन्न कक्षीवानको, उनके द्वारा की तुम्हारी स्तुति समाप्त होते ही, तुम दोनों नेताओंने, नगरके संरक्षण करनेमें समर्थ बुद्धि और शक्तिको प्रदान किया। इसी तरह बलिष्ठ घोडेके खुरके समान आकारवाले विशेष बडे बर्तनसे शुद्ध जलके सौ घडे तुम दोनोंने भरकर रखे । नेता लोग नागरिकोंको ऐसी शिक्षा दें कि जिससे उनको अपने नगरका शत्रुके हमलेसे उत्तम संरक्षण करनेकी बुद्धि तथा शक्ति प्राप्त हो। तथा वे उत्तम शुद्ध वृष्टिजल बडे बडे पात्रोंमें भरकर रखें ॥ ७ ॥

स्वराज्यकी प्राप्तिकी हलचल करनेवाले अत्रि ऋषिको असुरोंने अन्धेरे कारागारमें अनुयायियोंके साथ बन्द करके रखा था और चारों ओर आग जला दी थी जिससे उनको बडे कष्ट हो रहे थे । अश्विदेवोंने जलसे उस अग्निको शान्त किया और कारागारको तोड कर अनुयायियोंके साथ अत्रिको मुक्त किया, तथा उस कृश बने ऋषिको पुष्टिकारक और बलवर्धक अन्न देकर हृष्टपुष्ट कर दिया । नेताओंको उचित है कि वे प्रजाहितके लिए हलचल करनेवाले कार्यकर्ताओंको कारावास आदि कष्ट होनेके समय, अनेक उपायों द्वारा उनको आराम देनेका यत्न करें और कार्यकर्ताओंके अनुयायियोंकी भी हरतरह सहायता करें ॥ ८ ॥

सत्यका पालन करनेवाले अश्विदेव एक स्थानसे कुंवेका जल बहुत दूरतक नहरके द्वारा ले गये, इसके लिये उन्होंने कुएँका जल ऊंचा बनाया और टेढे मार्गसे उससे जल प्रवाह बहा दिये और उस जलको गौतमके आश्रममें पहुंचाया, तब आश्रमवासियोंको पीनेके लिये जल मिला और सहस्रों प्रकारसे धान्यादिकी संपदा भी प्राप्त हुई । जहां पानी न हो वहां भी दूरसे पानी नहर आदि द्वारा ला कर, उत्तम रमणीय आश्रमस्थान बनाना चाहिये । इस कार्यके लिये नहर टेढे या वक्र मार्गसे लाना आवश्यक हो, तो भी वैसा लाना चाहिये । इससे न केवल आश्रमवासियोंको पीनेके लिये पानी ही मिले, बल्कि खेती, फलोंके वृक्ष तथा उद्यान भी अच्छी तरह बन सकें ॥ ९ ॥

शत्रुनाशक और सत्यपालक अश्विदेवोंने अतिवृद्ध अतएव सब संबंधियोंके द्वारा परित्यक्त च्यवन ऋषिके शरीरसे कवच उतार देनेके समान बुढापेकी चमडी या झुर्री उतार कर उसे तरुण बनाया और दीर्घायु बनाकर, अनेक सुन्दर स्त्रियोंका पति भी बना दिया ॥ १० ॥

१२८३ तद् वां नरा शंस्यं राध्यं चा–भिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद् विद्वांसा निधिमिवापगूह्ळ–मुद् दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥

१२८४ तद् वां नरा सनये दंस उग्र–माविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वा–मश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥ १२ ॥

१२८५ अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरंधिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [१२८३] हे (नरा नासत्या) नेता सत्यके पालक अश्विदेवो ! (वां तत्) तुम दोनोंका वह (अभिष्टिमत्) वाञ्छनीय (वरूथं) स्वीकार करनेयोग्य कार्य (शंस्यं राध्यं च) प्रशंसनीय और आराधनीय है, (विद्वांसा) हे ज्ञानी अश्विदेवो ! (यत्) जो (अपगूळ्हं निधिं इव) छिपाये हुए खजानेके समान, (दर्शतात्) देखनेयोग्य गढेसे (वन्दनाय उत् ऊपथुः) वन्दनको तुम दोनोंने ऊपर उठाया ॥ ११ ॥

[१२८४] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (यत् आथर्वणः दध्यङ्) जो अथर्व कुलोत्पन्न दधीची ऋषिने (अश्वस्य शीर्ष्णा ह) घोडेके सिरसे ही (वां) तुम दोनोंको (यत् ईं मधु) इस मधुविद्याका (प्र उवाच) प्रवचन करके उपदेश किया, (तत् वां उग्रं दंसः) तुम दोनोंके उस भीषण कार्यको, (तन्यतुः वृष्टिं न) गरजनेवाला मेघ जैसे वर्षाका आविष्कार करता है, वैसे ही (सनये आविः कृणोमि) जनसेवा हो जाए इसलिये मैं प्रकट करता हूँ ॥ १२ ॥

[१२८५] हे (पुरु भुजा) बहुतोंको भोजन देनेवालो (करा) कार्यशील और (नासत्या अश्विनौ) सत्यसे कभी न बिछडनेवाले अश्विदेवो ! (महे यामन्) बडी भारी यात्रा करते समय (वां) तुम दोनोंको (पुरन्धिः अजोहवीत्) बहुत बुद्धिवाली नारीने बुलाया था; (तत् शासुः इव श्रुतं) उस पुकारको मानों शासकके कथनकी तरह तत्परतासे तुमने सुन लिया और पश्चात् (हिरण्यहस्तं) हिरण्यहस्त नामक पुत्र उस (वध्रिमत्ये अदत्तं) वध्रीमती नामक नारीको तुम दोनोंने दिया ॥ १३ ॥

भावार्थ— वन्दन ऋषि गहरे गढेमें पडा था, उसको अश्विदेवोंने, गुप्त स्थानसे धनको ऊपर उठानेके समान, ऊपर उठाया, यह अश्विदेवोंका कार्य बहुत ही प्रशंसा करने योग्य है ॥ ११ ॥

अथर्वकुलमें उत्पन्न दधीची ऋषिने घोडेका सिर धारण करके तुम दोनोंको मधुविद्या पढायी ! इस विषयमें जो तुमने कार्य किया वह सचमुच भयानक ही कार्य था। जिस तरह मेघ गर्जना करके वृष्टीकी सूचना देता है, उस तरह घोषणा करके मैं उस तुम्हारे कर्मका प्रचार करता हूं । इससे मुझसे जनसेवा हो यही मेरी इच्छा है। पृथ्वी, आप्, तेज, वायु, आदित्य, दिशा, चन्द्रमा, विद्युत, मेघ, आकाश, धर्म, सत्य, आत्मा (जीव) इनमें जो तेजस्विता है वही अमृत पुरुष है, और वही सब कुछ है ऐसा कहा है । एक ही आत्मतत्वका ज्ञान 'मधुविद्या' नामसे प्रसिद्ध है। दधीची ऋषिने यह विद्या अश्विदेवोंको पढायी, इस विद्याके जाननेसे वैदिक तत्वज्ञान विदित हो सकता है । इस विद्याका साक्षात्कार दधीची ऋषिने स्वयं किया और उस ऋषिने अश्विदेवोंको यह विद्या सिखाई ॥ १२ ॥

अश्विदेव अपने भिषकार्यमें प्रवीण अनेकोंका पालन पोषण करनेवाले और सत्यके पालक हैं । ये बडी यात्रामें गये थे, उन समय एक बुद्धिमति स्त्रीने इनकी प्रार्थना की, वह प्रार्थना इन्होंने राजाकी आज्ञा जैसी मानी और उस वन्ध्या स्त्रीको उत्तम पुत्र होने योग्य गर्भधारण समर्थ बनाया और उससे उसको उत्तम पुत्र हुआ ॥ १३ ॥

१२८६ आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥
१२८७ चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥
१२८८ शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६ ॥
१२८९ आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥ १७ ॥

अर्थ— [१२८६] हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेता अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (अभीके) योग्य समयपर (वृकस्य आस्नः) भेडियेके मुँहसे (वर्तिकां अमुमुक्तं) चिडियाको छुडाया; हे (पुरु भुजा) बहुतोंको भोजन देनेवालो ! (उत) और (युवं ह) तुम दोनोंने निश्चयपूर्वक (कृपमाणं कविं) कृपापूर्वक प्रार्थना करते हुए कविको (विचक्षे अकृणुतं) देखनेके लिए दृष्टिसे युक्त किया ॥ १४ ॥

[१२८७] (वेः पर्णं इव) पंछीका पंख जैसे गिर जाता है उसी प्रकार (आजा) युद्धमें (खेलस्य चरित्रं) खेल नरेशकी संबंधिनी स्त्रीका पैर (अच्छेदि हि) टूट गया तब (परितक्म्यायां) रात्रीके समयमें ही उस (विश्पलायै) विश्पलाके लिए (हिते धने सर्तवे) युद्ध शुरु होनेके बाद चढाई करनेके लिए (आयसीं जङ्घां) लोहेकी टाँग (सद्यः) तुरन्त ही (प्रत्यधत्तं) तुम दोनोंने बिठला दी ॥ १५ ॥

[१२८८] (वृक्ये) वृकीको (शतं मेषान्) सौ भेडोंको (चक्षदानं तं ऋज्राश्वं) खानेके लिए देनेके अपराधके कारण उस ऋज्राश्वको (पिता अन्धं चकार) उसके पिताने दृष्टिहीन बना डाला; (भिषजौ) वैद्यो ! हे (दस्रा नासत्या) शत्रु नाशक एवं सत्यको न छोडनेवाले अश्विदेवो ! (तस्मै) उस अँधेको (अनर्वन् अक्षी) प्रतिबंध रहित आँखे (विचक्षे आधत्तं) विशेष रूपसे देखनेके लिए तुम दोनोंने दीं ॥ १६ ॥

[१२८९] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (वां रथं) तुम दोनोंके रथपर, (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या, (अर्वता कार्ष्म जयन्ती इव) घोडेकी दौडसे अपने लक्ष्यको जीतती हुई सी, (आ अतिष्ठत्) आकर बैठ गई (विश्वे देवाः) सभी देवोंने (हृद्भिः अन्वमन्यन्त) अन्तःकरणसे उसे अनुमोदित किया, पश्चात् (श्रिया सं सचेथे उ) तुम दोनों शोभासे युक्त बने ॥ १७ ॥

भावार्थ— नेता अश्विदेवोंने भेडियेके मुखसे चिडियाको निकालकर बचाया और बहुतोंको भोजन देनेवाले उन देवोंने प्रार्थना करनेवाले एक अन्धे कविको उत्तम देखनेके लिये दृष्टि दी ॥ १४ ॥

जिस तरह पक्षीका पर गिर जाता है उस तरह खेल राजाकी संबंधिनी विश्पला नामक स्त्रीका पैर युद्धमें कट गया और गिर गया था, आप दोनोंने उसके लोहेकी जांघ बिठलाई और युद्ध शुरु होनेपर शत्रुपर हमला करनेके लिए उसे चलने चलने फिरने योग्य बना दिया ॥ १५ ॥

ऋज्राश्वने अपने पिताकी सौ भेडोंको भेडियेके खानेके लिए सौंप दिया, इस अपराधके कारण उसके पिताने उसे अन्धा बनाया । वैद्य अश्विदेवोंने उसे कभी न बिगडनेवाली आँखें लगा दीं और दृष्टिवान् कर दिया ॥ १६ ॥

सूर्यकी पुत्री, घुड दौडसे अन्तिम मर्यादाको पहुंचनेके समान, अश्विदेवोंके रथतक पहुंची और रथपर चढ बैठ गई । सब देवोंने इसका अनुमोदन किया । तब सूर्यकी पुत्रीसे अश्विदेव बडे शोभायुक्त दीखने लगे । प्रजापति सूर्यने राजा सोमको अपनी पुत्री देनेका संकल्प किया । सब देवोंने कहा कि जो घुड दौडमें पहिला होगा, उसे पुत्रीका प्रदान करना । अश्विदेव पहिले आये अतः उनके रथपर सूर्यकी कन्या चढकर बैठ गयी । सब देवोंने इनका अभिनंदन किया और अश्विदेव उस कन्याको प्राप्त करनेसे शोभायमान हुए । इस कथाका सूचक यह मन्त्र है । यह आलंकारिक कथा है । सूर्यकी पुत्री उषाका यह रूपक है । अश्वि तारकाएं पहिले उगती हैं, पश्चात् उषा आती है । अश्वि उषाका इस तरह सम्बन्ध होता है ॥ १७ ॥

१२९० यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥
१२९१ रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥ १९ ॥
१२९२ परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥ २० ॥
१२९३ एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥

अर्थ— [१२९०] हे (हयन्ता) बुलाने योग्य अश्विदेवो ! (यत्) जब तुम (भरद्वाजाय दिवोदासाय) अन्न देनेवाले दिवोदासके (वर्तिः अयातं) घरपर गये, तब (सचनः) सेवनीय (रेवत् रथः) धनसे भरा हुआ रथ (वां उवाह) तुम दोनोंको ले गया और (वृषभः च शिंशुमारः च) बलवान् तथा शत्रुनाशक घोडे उस रथमें (युक्ता) जुते हुए थे ॥ १८ ॥

[१२९१] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (सुक्षत्रं) अच्छी क्षत्रियोचित वीरता (स्वपत्यं रयिं) अच्छी सन्तान युक्त धनसंपदा और (सुवीर्यं आयुः) अच्छी वीरतासे पूर्ण जीवनको (वहन्त) तुम दोनों अपने साथ लेकर (वाजैः) अन्नोंसे (अह्नः त्रिः भागं आदधतीं) दिनके तीनों विभागोंमें यजन करनेवाली (जह्नावीं) जन्हुकी प्रजाके समीप (समनसा) एक विचारसे (उप अयातं) गये थे ॥ १९ ॥

[१२९२] हे (अजरयू नासत्या) जराहीन तथा सत्यके पालक अश्विदेवो ! (विश्वतः परिविष्टं) सभी ओरसे शत्रुद्वारा घेरे हुए (जाहुषं) जाहुष नरेशको (सुगेभिः रजोभिः) सुगम रीतिसे गमन करने योग्य मार्गोंसे (नक्तं ऊहथुः) रात्रीके अवसरपर तुम दोनों दूरके स्थानपर ले गए; और अपने (विभिन्दुना रथेन) विशेष रीतिसे शत्रुका भेदन करनेवाले रथपर चढकर (पर्वतान् वि अयातं) पर्वतोंको भी पार कर तुम दोनों दूर चले गये ॥ २० ॥

[१२९३] हे (वृषणौ अश्विना) बलवान् अश्विदेवो ! (सहस्रा सनये) सहस्रों प्रकारके धनका लाभ करनेके लिए (वशं रणाय) वश नरेशको युद्धके लिए (एकस्या वस्तो आवतं) एक ही दिनमें तुम दोनोंने सुरक्षित बनाया और (पृथु श्रवसः) पृथुश्रवाके (दुच्छुनाः अरातीः) दुःख देनेवाले शत्रुओंको (इन्द्रवन्ता) तुम दोनोंने इन्द्रकी सहायता पाकर (निः अहतं) पूर्ण रूपसे विनष्ट किया ॥ २१ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! अन्नदाता दिवोदासके घरपर तुम दोनों गये थे, तब तुम्हारे रथमें बहुत ही धन भरकर रखा था और उस समय तुम्हारे रथको बलवान् और शत्रुनाशक घोडे जोडे गए थे । यह तुम्हारा ही विलक्षण सामर्थ्य है ॥ १८ ॥

जन्हुकी प्रजा दिनमें तीन बार अन्नोंका प्रदान करती है, तीनों सवनोंमें हविसे यजन करती है, इसलिए तुम दोनों उस प्रजाको उत्तम क्षात्र बल, उत्तम संतति, उत्तम ऐश्वर्य, और उत्तम पराक्रममय दीर्घ जीवन उनके पास जाकर देते हो नेता लोग ऐसा प्रबन्ध करें कि जिससे उनके अनुयायियोंको उत्तम वीरता, उत्तम संतान, श्रेष्ठ ऐश्वर्य और अनुपम शौर्यके कर्म करनेमें समर्थ दीर्घ जीवन प्राप्त होकर वे विश्व विजयी हों ॥ १९ ॥

अश्विदेव सत्यके पालक और तरुणोंके समान कार्य करनेवाले हैं। जहुष राजा शत्रु सेनासे घेरा गया था उस समय अश्विदेवोंने रात्रीके समय उस राजाको उस घेरेमेंसे चुपचाप उठाया और गुप्त परन्तु सुगम मार्गसे उसको दूरके स्थानपर पहुंचाया । स्वयं अपने शत्रुके घेरेको तोड देनेवाले रथपर चढकर, शत्रुका घेरा तोडकर, वेगसे पर्वतोंके भी पार चले गये । शत्रुके द्वारा घेरे जानेके पश्चात् युक्ति विशेष करके, शत्रुका घेरा तोड कर, अथवा रात्रीके समय पूर्ण रीतिसे गुप्ततापूर्वक चुपचाप, शत्रुके घेरेसे बाहर निकल पडना योग्य है ॥ २० ॥

१२९४ शरस्यं चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभि- र्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥
१२९५ अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥
१२९६ दश रात्रीरशिवेना नव द्यू- नवनद्धं श्नथितमप्स्व१न्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्त- मुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥

अर्थ— [१२९४] हे (नासत्या) सत्य युक्त अश्विदेवो ! (आर्चत्कस्य शरस्य) ऋचत्कके पुत्र शर नामवाले उपासकके (पातवे) पीनेके लिए (नीचात् अवतात् चित्) गहरे गढे या कूपमेंसे (वाः) जलको तुम दोनों (उच्चा आचक्रथुः) उपर लाये और (जसुरये शयवे) थके माँदे शयु ऋषिके लिए (स्तर्यं गा चित्) वन्ध्या गायको भी (शचिभिः पिप्यथुः) अपनी शक्तियोंसे तुम दोनोंने दुधारू बनाया ॥ २२ ॥

[१२९५] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (स्तुवते अवस्यते) स्तुति करनेवाले और अपनी रक्षाकी चाह करनेवाले (कृष्णियाय ऋजूयते विश्वकाय) कृष्णके पुत्र, सरल मार्गपरसे चलनेवाले विश्वकको (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे उसके विनष्ट हुए (विष्णाप्वं) विष्णाप्व नामक पुत्रको (नष्टं पशुं इव) मानों खोये हुए पशुकी भांति (दर्शनाय ददथुः) दर्शनके लिए तुम दोनोंने दिया ॥ २३ ॥

[१२९६] (अप्सु अन्तः) जलोंके भीतर (दश रात्रीः) दस रातों और (नव द्यून्) नौ दिन तक (अशिवेन अवनद्धं) अमंगलकारी शत्रु द्वारा जकडे हुए अतएव बडे (श्नथितं) पीडित, हुए (उदनि विप्रुतं) जलसे भीगे हुए, तथा (प्रवृक्तं रेभं) व्यथासे भरे हुए ऋषि रेभको, (स्रुवेण सोमं इव) जैसे स्रुवासे सोमरसको ऊपर उठा लेते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों (उत् निन्यथुः) ऊपर लिवा लाये ॥ २४ ॥

भावार्थ— बलवान् अश्विदेवोंने वश नामक नरेशको सहस्रों प्रकारके धन प्राप्त हो इसलिए एक ही दिनमें सुरक्षित भी किया, तथा पृथुश्रवा नरेशके दुष्ट शत्रुओंको भी इन्द्रकी सहायता पाकर पूर्ण रूपसे नष्ट किया। नरेशोंको शत्रुके साथ युद्ध करनेकी उत्तम तैयारी करनी चाहिए और आवश्यकता होनेपर मित्र राजाओंसे सहायता भी प्राप्त करनी चाहिए। शत्रुका नाश करना ही सदा मुख्य ध्येय रहना चाहिये ॥ २१ ॥

सत्यके पालक अश्विदेव ऋचत्कके प्यासे पुत्र शरके पीनेके लिए गहरे कूवेसे पानी ऊपर लाये और उसे पीनेके लिये दिया। तथा शयु ऋषि अत्यन्त क्षीण हो गया था, उसको दूध पीनेके लिये मिले इसलिये प्रसूत न होनेवाली गौको प्रसूत होने योग्य बनाया और दुधारू भी बना दिया। गहरे कूवेसे पानी ऊपर निकालनेके लिए विशेष आयोजना करनी चाहिए। क्षीण पुरुषोंको परिपुष्ट करनेके लिए गौका यथेष्ट दूध पीनेके लिए देना चाहिये और गौओंको दुधारू बनाना चाहिये। गौके वंशका सुधार करना चाहिये। तथा जो गौ गर्भ धारण नहीं करती उसको गर्भधारणक्षम बनाना चाहिये ॥ २२ ॥

हे सत्य पालक अश्विदेवो ! सरल मार्गसे जानेवाले कृष्णपुत्र विश्वकका विष्णाप्व नामवाला पुत्र गुम हो गया था, उस पुत्रको ढूंढकर तुमने अपनी शक्तियोंसे प्राप्त किया और उसके पिताके पास पहुंचाया। राष्ट्रमें या नगरोंमें रक्षाक प्रबंध ऐसा उत्तम करना चाहिये कि किसीका पुत्र या कोई संबंधी खो जाय, तो वहांके विभागके प्रबंध कर्ताको खबर देनेसे वे उसकी खोज करके प्राप्त करें और उसको सुरक्षित घर पहुंचा दें। लापता हुआ पशु भी इस तरह प्राप्त होवे ॥ २३ ॥

रेभ नामक ऋषिको दुष्ट असुरोंने पाशरज्जूसे बांधकर जलमें फेंक दिया था। दस रात्री और नौ दिन व्यतीत होनेपर अश्विदेवोंको इसका पता लगा, तब उन्होंने तत्काल ही उस भीगे, त्रस्त हुए और पीडित बने ऋषिको ऊपर निकाल दिया और आरोग्य संपन्न बना दिया ॥ २४ ॥

१२९७ प्र वां दंसांस्यश्विनाववोच—मस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन् दीर्घमायु—रस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २५ ॥

[११७]

(ऋषिः– कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- अश्विनौ । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

१२९८ मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गी—रिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥
१२९९ यो वामश्विना मनसो जवीयान् रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥

अर्थ— [१२९७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां दंसांसि) तुम दोनोंके कार्योंके बारेमें इस प्रकार मैं (प्र अवोचं) उत्कृष्ट ढंगसे वर्णन कर चुका हूँ इससे (सुगवः सुवीरः) अच्छी गायों एवं सुन्दर वीर पुत्रोंसे युक्त होकर मैं (अस्य पतिः स्यां) इस राष्ट्रका अधिपति बनूँ (उत) और (दीर्घं आयुः अश्नुवन्) दीर्घ जीवनका उपभोग लेता हुआ (पश्यन्) दर्शन आदि सभी शक्तियोंसे युक्त बनकर (अस्तं इव इत्) मानों निश्चयपूर्वक अपने ही घरमें प्रवेश करने के समान मैं (जरिमाणं जगम्यां) बुढापेको प्राप्त होऊं ॥ २५ ॥

[११७]

[१२९८] (प्रत्नः होता) पुराने समयसे दान देनेवाला यह पुरुष (मध्वः सोमस्य मदाय) मीठे सोमरसके पीनेसे उत्पन्न हर्षका उपभोग तुम्हें देनेके लिए, हे (नासत्या आश्विना) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (वां आ विवासते) तुम दोनोंकी पूर्ण सेवा करना चाहता है; (गीः विश्रिता) मेरी स्तुतियां तुम्हारे पास पहुंची हैं और (रातिः बर्हिष्मती) तुम्हें देनेका दान यहाँ कुशासनपर रख दिया है, अतएव (वाजैः इषा उपयातं) अपने बलों तथा अन्नोंके साथ तुम दोनों हमारे समीप आओ ॥ १ ॥

[१२९९] हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंका (यः रथः स्वश्वः, मनसः जवीयान्) जो रथ अच्छे घोडोंसे युक्त, तथा मनसे भी वेगवान् है, और जो (विशः आ जिगाति) प्रजाजनोंके पास तुम्हें ले जाता है, (येन) जिस रथ पर चढकर (सुकृतः दुरोणं गच्छथः) शुभ कार्यकर्ताके घर तुम दोनों जाते हो, (तेन) उस रथपर बैठकर (अस्मभ्यं वर्तिः यातं) हमारे घर आओ ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! आपके किये कर्मोंका मैंने इस तरह वर्णन किया है । इससे मैं उत्तम गायों और शूर पुत्रोंसे युक्त तथा इस राष्ट्रका अधिपति भी बनना चाहता हूं तथा दीर्घायु होकर, जिस तरह अपने निज घरमें प्रवेश करते हैं, उस तरह मैं बुढापेमें प्रवेश करना चाहता हूं अर्थात् अतिदीर्घ आयुतक जीवित रहना चाहता हूं । शूरवीर और कर्म कुशल पुरुषोंके श्रेष्ठ कर्मोंका इतिहास सुनते हुए, गौ आदि धनों और शूर पुत्रोंको प्राप्त करके, राष्ट्रका शासक बनकर, दीर्घ आयु प्राप्त करनी चाहिये ॥ २५ ॥

हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! मैं पुरातन समयसे तुम्हारी सेवा करनेवाला तुम्हारा भक्त यहाँ सोमरस तुम्हें देनेके लिए तैयार करके ले आया हूं । मैंने जो स्तुति की वह तुमने सुनी है । इस आसनपर तुम्हें देनेके लिये यह सोमपात्र भरकर रखा है । अतः तुम दोनों अपने बलों और अन्नोंके साथ मेरे स्थानपर आओ और मेरी सहायता करो ॥ १ ॥

अश्विदेवोंका रथ मनसे भी वेगवान् है उसमें उत्तम शिक्षित घोडे जुडे रहते हैं, वह रथ उन्हें प्रजाजनोंके पास ले जाता है और उसमें बैठकर ही वे सत्कर्म कर्ताके घर जाते रहते हैं, उस रथपर चढकर वे हमारे घर आ जायँ ॥ २ ॥

१३०० ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्य-मृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥
१३०१ अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवै-ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभि-र्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥ ४ ॥
१३०२ सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखात-मुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥
१३०३ तद् वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१३००] हे (वृषणा नरौ) बलिष्ठ एवं नेता अश्विदेवो ! (पाञ्चजन्यं ऋषिं अत्रिं) पंचविध मानव समाजके हितकर्ता अत्रि ऋषिको (अंहसः ऋबीसात्) कष्टदायक अँधेरे कारागृहसे उसके (गणेन मुञ्चथः) अनुयायियोंके समेत तुम दोनोंने छुडाया, तथा (मिनन्ता) तुम दोनों शत्रुका विनाश करनेवाले हो और (अशिवस्य दस्योः) अहितकारी शत्रुकी (मायाः) कुटिल चालबाजियोंको (अनुपूर्वं चोदयन्ता) एकके पीछे एक हटाते जाते हो ॥ ३ ॥

[१३०१] हे (वृषणा) बलवान् (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (दुरेवैः) दुष्ट कर्मकर्ताओंके द्वारा (अप्सु) जलोंमें (गूळ्हं) फेंके हुए (तं रेभं ऋषिं) उस ऋषि रेभको, जो (विप्रुतं) विशेष शिथिलसा दुर्बल बन चुका था, (दंसोभिः) अपने भैषजके कार्योंसे भलीभाँति (अश्वं न) घोडे जैसा (संरिणीथः) सुदृढ शरीरवाला बना दिया था, (वां) तुम दोनोंके ये (पूर्व्या कृतानि) पहले समयके कार्य (न जूर्यन्ति) कभी जीर्ण नहीं होते हैं। कभी भूले नहीं जाते ॥ ४ ॥

[१३०२] हे (दस्रा अश्विना) शत्रु विनाशक अश्विदेवो ! (तमसि क्षियन्तं) अँधेरेमें छिपे पडे हुए (सूर्यं न) सूर्यके तुल्य (निर्ऋतेः उपस्थे) भूमिपर (सुषुप्वांसं न) सोये हुएके समान, (निखातं शुभे दर्शतं रुक्मं न) जमीनके अन्दर गाडे हुए शोभाके लिये दर्शनीय सुवर्ण भूषणके समान (वन्दनाय) वन्दनके हितके लिये उसे (उत् ऊपथुः) तुम दोनोंने ऊपर उठाया ॥ ५ ॥

[१३०३] हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेताओ ! (वां तत्) तुम दोनोंका वह (परिज्मन्) चारों ओर विख्यात हुआ कार्य है जो (पज्रियेण कक्षीवता) पज्र कुलमें उत्पन्न कक्षीवान्‌को (शंस्यं) प्रशंसित करना चाहिये। (यत् वाजिनः अश्वस्य) जो बलिष्ठ घोडेके (शफात्) खुर जैसे बडे पात्रसे (मधूनां शतं कुम्भान्) शहदके सौ घडोंको (जनाय असिञ्चतं) जनताके हितके लिए तुम दोनोंने भरे थे ॥ ६ ॥

भावार्थ— अश्विदेव बलिष्ठ हैं, नेता हैं और शत्रुका नाश करनेवाले हैं। उन्होंने पंचजनोंके हितके लिये प्रयत्न करनेवाले अत्रि ऋषिको, कष्टदायक कारागृहसे, उसके अनुयायियोंके समेत, छुडा दिया था और शत्रुकी सब चालबाजियोंको पहिलेसे ही जानकर उनको दूर किया था। नेता लोग बलवान् हों एवं शत्रुका नाश करते रहें। पञ्चजनोंका हित करनेवाले राष्ट्र-सेवकोंको कारावासादि कष्टोंसे छुडाते रहें, अर्थात् उस कष्टके समय उनको यथोचित सहायता देते रहें। शत्रुके कपटोंको और चालबाजियोंको पहचान लें और उनकी युक्तिको असफल बना दें ॥ ३ ॥

दुष्ट असुरोंने रेभ ऋषिको बांधकर जल प्रवाहमें फेंक दिया था, इस कारण वह अत्यंत दुर्बल बन गया था। उसको औषधादि उपचारोंसे आपने हृष्टपुष्ट बलिष्ठ बना दिया था। ये जो आपके पूर्व समयके कार्य हैं वे कभी भूले नहीं जाते ॥४॥

शत्रु विनाशक अश्विदेव कुवेमें पडे वन्दनको उसका कल्याण करनेके लिये ऊपर लाये, जिस तरह अन्धेरेमें पडे हुए उदयके पूर्व सूर्यको ऊपर लाते हैं, भूमि पर सोये पुरुषको ऊपर उठाते हैं अथवा सुन्दर सुवर्णके आभूषणको जिस तरह ऊपर धारण करते हैं, इसी तरह वन्दनको गढेसे बाहर निकाला ॥ ५ ॥

अंगिरस गोत्रमें उत्पन्न पज्र कुलके कक्षीवान् ऋषिके लिये वह तुम्हारा कर्म बडा ही प्रशंसा करने योग्य होता है कि जो तुम दोनों अश्विदेवोंने अपने बलिष्ठ घोडेके खुरके आकारके समान बडे आकारके पात्रसे मधुके सौ घडे सब लोगोंके पीनेके लिये भरकर रखे थे ॥ ६ ॥

१३०४ युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७ ॥
१३०५ युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥
१३०६ पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं१ तरुत्रम् ॥ ९ ॥
१३०७ एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद् वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१३०४) हे (नरा आश्विनौ) नेता अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (कृष्णियाय विश्वकाय) कृष्णके पुत्र विश्वकको (विष्णाप्वं) उसका विष्णाप्व नामक पुत्र (ददथुः) तुम दोनोंने दिया तथा (पितृषदे) पिताके (दुरोणे जूर्यन्त्यै) घरपर ही बूढी होनेवाली (घोषायै चित्) घोषाको भी तुम दोनोंने (पतिंअदत्तं) पति दिया ॥ ७ ॥

[१३०५] हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अश्विदेवो ! (श्यावाय युवं) श्यावको तुम दोनोंने (रुशतीं अदत्तं) तेजस्विनी सुन्दर नारी दी, (क्षोणस्य कण्वाय महः) दृष्टिविहीन कण्वको नेत्र ज्योतिका दान किया, (यत्) जो (नार्षदाय श्रवः आधि अधत्तं) नृषद पुत्रको श्रवण शक्तिका दान तुम दोनोंने दिया था (तत् वां) वह तुम दोनोंका (कृतं प्रवाच्यं) कार्य अत्यन्त वर्णन करने योग्य है ॥ ८ ॥

[१३०६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम दोनों (पुरु वर्पांसि दधाना) अनेक रूप धारण करते हो, तुमने (पेदवे) पेदुको (अप्रतीतं) अजेय, (अहिहनं) शत्रुके वधकर्ता, (सहस्रसां श्रवस्यं) हजारों धनोंके दाता और यशस्वी, (तरुत्रं वाजिनं) संरक्षक बलिष्ठ और (आशुं अश्वं) शीघ्रगामी घोडेको (नि ऊहथुः) दिया था ॥ ९ ॥

[१३०७] हे (सुदानू) अच्छे दान देनेवाले अश्विदेवो ! (वां एतानि) तुम दोनोंके ये कार्य (श्रवस्या) सुनने योग्य हैं । (आंगूषं ब्रह्म) तुम्हारे लिए घोषणीय स्तोत्र बना है, तथा (रोदस्योः सदनं) तुम दोनों द्युलोक एवं भूलोकमें दोनों स्थानोंपर रहते हो । हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यत् पज्रासः) चूँकि अंगिरस लोग (वां हवन्ते) तुम दोनोंको बुलाते हैं, अतः (इषा आ यातं च) अन्न साथ लिए हुए आओ और (विदुषे वाजं च) विद्वान्को अन्न-का दान करो ॥ १० ॥

भावार्थ— कृष्ण पुत्र विश्वकका पुत्र विष्णाप्व गुम हो गया था, उसकी खोज अश्विदेवोंने की और उस पुत्रको पिताके पास पहुंचाया । तथा पिताके घर रोगी और वृद्ध होनेवाली घोषाको रोग मुक्त करके उसको तरुणी युवती बनाकर उसको सुयोग्य पति भी अश्विदेवोंने दिया ॥ ७ ॥

अश्विदेवोंने श्याव ऋषिको सुन्दर स्त्री दी, अन्धे कण्वको उत्तम दृष्टि दी और नृषदपुत्र वधिर था उसको श्रवण करने-की शक्ति दी । ये कार्य बडे प्रशंसा करने योग्य हैं ॥ ८ ॥

अश्विदेव नाना प्रकारके रूप धारण करके भ्रमण करते हैं । इन्होंने पेदुको ऐसा घोडा दिया कि जो कभी युद्धसे पीछे नहीं हटता, शत्रुका वध करता, हजारों धनोंको प्राप्त करता, संरक्षण करता, बलिष्ठ तथा शीघ्र गतिसे दौडनेवाला था । नाना प्रकारके रूप धारण करके सब खबरें उचित रीतिसे प्राप्त करनी चाहिये । घोडोंको उत्तम शिक्षा देनी चाहिये । घोडा युद्धसे डरके मारे पीछे न हटे, शत्रुका वध अपनी लातोंसे करता जाय, युद्धमें विजय प्राप्त करके धनोंको लूट ले आवे, बलवान् हो, शीघ्रगामी हो । ॥ ९ ॥

*

१३०८ सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥ ११ ॥
१३०९ कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥
१३१० युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥ १३ ॥

अर्थ— [१३०८] हे (भुरणा) सबके पोषणकर्ता ! (नासत्या अश्विना) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (सूनोः मानेन गृणाना) पुत्रकी प्राप्तिके लिए मानसे स्तुति होनेपर उस (विप्राय वाजं रदन्ता) ज्ञानीके लिये तुमने वह बल दिया और (अगस्त्ये) अगस्त्यके (ब्रह्मणा वावृधानाः) स्तोत्रसे वृद्धिंगत होकर तुम दोनोंने (विश्पलां सं अरिणीतं) विश्पलाको भली भाँति चंगा बना दिया ॥ ११ ॥

[१३०९] (दिवः नपाता) द्युको न गिरने देनेवाले (वृषणा) बलवान् ! (शयुत्रा अश्विना) शयुको बचानेवाले अश्विदेवो ! (काव्यस्य सुष्टुतिं) शुक्रकी स्तुति सुनकर तुम दोनों भला (कुह यान्ता) किधर जाते हो ? (दशमे अहन्) दसवें दिन (निखातं हिरण्यस्य कलशं इव) गडे हुए सुवर्ण कुम्भकी तरह (उत् ऊहथुः) उस रेभको तुम दोनोंने उपर उठाया । वह भी कहां रहता था ? ॥ १२ ॥

१ दिवः नपाताः = (दिवः न-पाता) द्युलोकको न गिरानेवाले, द्युलोकके आधार (दिवः नपाता) द्युके पडपोते, द्युका पुत्र सूर्य और सूर्यके पुत्र अश्विनौ ।

[१३१०] हे (नासत्या अश्विना) सत्य पालक अश्विदेवो ! (युवं शचीभिः) तुम दोनोंने अपनी शक्तियोंसे (जरन्तं च्यवानं) बूढे च्यवानको (पुनः युवानं चक्रथुः) फिरसे तरुण बनाया । तथा (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्याने (श्रिया सह) अपनी शोभाके साथ (युवोः रथं अवृणीत) तुम दोनोंके रथको चुना ॥ १३ ॥

भावार्थ— अश्विदेव दान देनेवाले हैं । उनके इन दानोंका यह बडा स्तोत्र बन गया है । वे द्युलोकमें तथा भूलोकमें भी रहते हैं । आंगिरस कुलमें उत्पन्न पज्र लोग अश्विदेवोंकी उपासना करते हैं । अतः जब वे आपको बुलावें तब अन्नोंके साथ आना और उनको वह अन्न दे देना । नेता लोग अनुयायियोंको अन्नादि देकर उचित सहायता करें और अनुयायी उनके कार्योंकी योग्य प्रशंसा करें, उनके कृतज्ञ बनें ॥ १० ॥

अश्विदेव सबका पोषण करते और सत्यपर स्थिर रहते हैं । मानने पुत्र प्राप्तिके लिये उनकी प्रार्थना की, उस ज्ञानीको पुत्र उत्पन्न होनेका बल दिया, अगस्तिके प्रार्थना करनेपर विश्पलाका टूटा पांव ठीक किया । नेता अपने अनुयायियोंका पोषण करें और सत्य मार्गपर स्थिर रहें । अपने पास ऐसे वैद्य रखें कि जो निर्बलको सबल बनाना और टांग टूटनेपर उसको ठीक करना जानते हों ॥ ११ ॥

अश्विदेव द्युको न गिरानेवाले हैं । उन्होंने शुक्रकी स्तुति कहां रहकर सुनी और पश्चात् वे कहां गये ? कुंवेमें पडे रेभको दसवें दिन ऊपर उठाया और पश्चात् वे कहां गये ? ॥ १२ ॥

अश्विदेवोंने अतिवृद्ध च्यवन ऋषिको फिर तरुण बना दिया था और सूर्यकी पुत्री इनके ही रथपर चढ बैठी थी । आयुर्वेदमें इतनी उन्नति करनी चाहिए कि या तो बुढापा ही न आवे और आये तो उसको दूर करके पुनः तरुण बनानेके प्रयोग सिद्ध स्थितिमें रहें । स्त्रियां स्वयंवरमें अपने पतिको चुन लिया करें ॥ १३ ॥

१३११ युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद् विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४ ॥
१३१२ अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥ १५ ॥
१३१३ अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत् सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६ ॥
१३१४ शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥ १७ ॥

अर्थ— [१३११] (युवानां युवं) तुम दोनों तरुण (तुग्राय) तुग्रके लिए तो (पूर्व्येभिः एवैः) पहले किये कर्मोंसे मान्य थे ही पर (पुनः मन्यौ अभवतं) फिर एक बार सम्माननीय बन गये, क्योंकि (युवं) तुम दोनोंने उसके पुत्र (भुज्युं) भुज्युको (अर्णसः समुद्रात्) अथाह समुद्रमेंसे, (विभिः) पक्षी जैसे उडनेवाले यानोंसे तथा (ऋज्रेभिः-अश्वैः) शीघ्रगामी अश्वोंसे (निः ऊहथुः) पूर्ण रीतिसे उठा कर पहुंचाया था ॥ १४ ॥

[१३१२] हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (समुद्रं प्रोळ्हः तौग्र्यः) समुद्र यात्रा करनेके लिए भेजा हुआ तुग्रका पुत्र (अव्यथिः जगन्वान्) किसी प्रकारकी पीडाको न प्राप्त होकर चला गया; (वां अजोहवीत्) जब उसने तुम दोनोंको सहायतार्थ बुलाया, तब (तं) उसे (मनोजवसा सुयुजा रथेन) मनके तुल्य वेगवान् तथा अच्छी तरह जोते हुए रथसे (स्वस्ति निः ऊहथुः) सकुशल तुम दोनोंने पिताके घर पहुंचा दिया ॥ १५ ॥

[१३१३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वर्तिका वां अजोहवीत्) वर्तिकाने तुम दोनोंको बुलाया, (यत्) जब (सीं) उसे (वृकस्य आस्नः) भेडियाके मुँहमेंसे (अमुञ्चतं) तुम दोनोंने छुडाया, (अद्रेः सानु) पहाडके शिखरको (जयुषा वि ययथुः) विजयी रथसे तुम दोनों लाँघकर आगे निकल गए और (विषेण) विषकी सहायतासे (विष्वाचः जातं अहतं) सभी ओर संचार करनेवाले शत्रुके सैनिकोंको तुम दोनोंने मार डाला ॥ १६ ॥

[१३१४] (वृक्ये शतं मेषान्) वृकीको सौ भेडे (मामहानं) प्रदान करनेवाले पुत्रको (अशिवेन पित्रा) अहितकारी पिताने (तमः प्रणीतं) अन्धा बना दिया; हे (अश्विना) अश्विदेवो ! उस (तस्मै ऋज्राश्वे अक्षी) ऋज्राश्वमें दोनों आँखोंको तुम दोनोंने (आ अधत्तं) धर दिया, अर्थात् उस (अन्धाय विचक्षे) अँधेको विशेष दृष्टि मिल जाये इसलिए तुम दोनोंने (ज्योतिः चक्रथुः) उसकी आंखोंका निर्माण किया ॥ १७ ॥

भावार्थ— अश्विदेव तो तुग्र नरेशके द्वारा पूर्व समयमें किये शुभ कर्मोंसे सम्मान देने योग्य थे ही, परन्तु अब जो उन्होंने उसके पुत्र भुज्युको अथाह महासागरसे बचा कर पक्षी जैसे उडनेवाले यानोंसे तथा वेगवान् अश्वोंसे उसके पिताके पास पहुंचाया, इससे तुग्रके लिए अधिक संमानके योग्य बन गये ॥ १४ ॥

तुग्र नरेशके पुत्र भुज्युको समुद्र पारके रेतीले प्रदेशमें रहनेवाले शत्रुपर हमला करनेके लिये भेजा था। वह वहां बिना कष्ट पहुंच गया, परन्तु वहां पहुंचनेपर उसका बेडा टूट गया, उसने अश्विदेवोंको संदेश भेजा। वे मनके समान वेगवाले उत्तम यानोंसे वहां पहुंचे और उस भुज्युको वहांसे उठाकर उसके पिताके घर पहुंचा दिया ॥ १५ ॥

अश्विदेवोंने भेडियेके मुखसे बटेरको छुडाया। वे अपने विजयी रथपर बैठकर पर्वतके शिखरको लांघकर परे पहुंचे, और उसको घेरनेवाले शत्रुके सैनिकोंको विषदिग्ध बाणोंसे मारा। राज प्रबन्धद्वारा केवल मानवोंकी ही नहीं अपितु पशु-पक्षियोंकी भी सुरक्षा करनी चाहिए। रथ ऐसे बनाने चाहिए कि जो पर्वतके शिखरोंको भी लांघकर परे जा सकें। शस्त्र विषसे भरे हों, जो शत्रुपर घाव होनेसे, शत्रु यदि घावसे न मरे, तो विषसे तो अवश्य ही मर जाय ॥ १६ ॥

ऋज्राश्वने वृकीको सौ भेडें खानेके लिये दीं, इसलिए क्रुद्ध होकर पिताने उसको अन्धा बना दिया। अश्विदेवोंने उसकी दोनों आखें ठीक कीं और उनमें अच्छी दृष्टि रख दी ॥ १७ ॥

१३१५ शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥
१३१६ ही वामूतिरश्विना मयोभू—रुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत् पुरंधि—रागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥
१३१७ अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्ता—मपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥ २० ॥
१३१८ यवं वृकेणाश्विना वपन्ते—षं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तो—रु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥

अर्थ— [१३१५] (सा वृकीः) वह वृकी इस (अन्धाय शुनं भरं) अन्धेको सुख मिले इसलिए (इति अह्वयत्) ऐसा पुकारने लगी कि, (वृषणा नरा अश्विना) हे बलिष्ठ नेता अश्विदेवो ! (कनीनः जारः इव) तरुण जार जिस तरह तरुणीको सर्वस्व दे देता है उसी तरह ऋज्राश्वने (शतं एकं च मेषान् चक्षदानः) एकसौ एक भेडें मुझे खानेके लिये दी हैं ॥ १८ ॥

[१३१६] हे (धिष्ण्या) बुद्धिमान् और (वृषणौ अश्विना) बलवान् अश्विदेवो ! (वां ऊतिः) तुम दोनों- की योजना (मही मयोभूः) बडी सुखकारक है, (उत) और (स्रामं संरिणीथः) लंगडे लूलेको तुम दोनों भली- भाँति ठीक कर देते हो; (अथ युवां इत्) अब तुम दोनोंको ही (पुरंधिः अह्वयत्) एक बुद्धिमती महिलाने पुकारा था कि (अवोभिः आ गच्छतं) अपनी संरक्षण शक्तियोंके साथ तुम दोनों आओ ॥ १९ ॥

[१३१७] हे (दस्रा) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (स्तर्यं) गर्भवती न होनेवाली (विषक्तां अधेनुं गां) दुबली, दूध न देनेवाली गायको (शयवे) शयुका हित करनेके लिए (अपिन्वतं) तुम दोनोंने पुष्ट बना दिया । (युवं) तुम दोनोंने (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे (पुरुमित्रस्य योषां) पुरुमित्रकी कन्याको (विमदाय जायां) विमदके लिए पत्नीके रूपमें (नि ऊहथुः) पहुंचा दिया ॥ २० ॥

[१३१८] हे (दस्रा) शत्रु विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (यवं वृकेण वपन्ता) जौको हलसे बोते हुए, (मनुषाय इषं दुहन्ता) मानवके लिए अन्न रसका दोहन करते हुए और (दस्युं बकुरेण धमन्ता) शत्रुको तीक्ष्ण हथियारसे विनष्ट करते हुए (आर्याय उरु ज्योतिः चक्रथुः) तुम दोनों आर्योंके लिए विशाल प्रकाशका स्थान बनाते आये हो ॥२१॥

भावार्थ— जब ऋज्राश्व अन्धा हुआ, तब वह वृकी प्रार्थना करने लगी कि हे बलिष्ठ अश्विदेवो ! जिस तरह तरुण कामुक जार किसी स्त्रीको अपना सब धन देता है उस तरह इसने एक सौ एक भेडें मुझे खानेके लिये दीं जिससे यह अब अन्धा होकर पडा है ॥ १८ ॥

अश्विदेव बडे बुद्धिमान् और बलवान् हैं; उनकी संरक्षक शक्ति बडी सुखदायिनी है । वे लंगडे लूलेको भी ठीक कर देते हैं । रोगग्रस्ता स्त्री भी उनके उपचारोंसे नीरोग होती है । मनुष्य बुद्धिमान् और बलवान् बनें । अपना उत्तम संरक्षण करके अपना सुख बढावें । लंगडे लूलोंको ठीक करने और स्त्रियोंके रोगोंसे उनकी मुक्तता करनेकी विद्यामें वैद्य अपनी अधिकसे अधिक क्षमता प्राप्त करें ॥ १९ ॥

अश्विदेवोंने गर्भ धारण करनेमें असमर्थ दुर्बल, दूध न देनेवाली गौको, शयुको पुष्ट करनेके लिए, दुधारू बना दिया । पुरुमित्रकी कुमारिकाको विमदके लिए पत्नी रूपसे दिलवा दिया । दुर्बल गौको पुष्ट करने और दुधारू बनानेकी विद्या सिद्ध करनी चाहिए । उत्तम कुमारीका उत्तम पतिके साथ विवाह होवे । पुत्र और पुत्रीमें कुछ दोष हो तो उनको दूर करना योग्य है । निर्दोष स्त्री पुरुषोंका ही समागम होवे ॥ २० ॥

अश्विदेव जौ आदि धानको हलसे बोते हैं; मनुष्योंके लिए अन्नरस देते हैं, शत्रुका तीक्ष्ण शस्त्रसे वध करते हैं और आर्योंके लिए विस्तृत प्रकाश दिखाते हैं । नेता लोग भूमिपर अच्छी तरह हल चलाकर सब प्रकारका धान्य बो दें, जल तथा अन्नरस पर्याप्त प्रमाणमें मिलें ऐसा करें; शत्रुका नाश करनेके लिए तीक्ष्ण शस्त्रके प्रयोग करें और आर्योंको उन्नतिका मार्ग बतानेके लिये विस्तृत प्रकाश बतावें ॥ २१ ॥

१३१९ आथर्वणायाश्विना दधीचे ऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥
१३२० सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्त मपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥ २३ ॥
१३२१ हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्त मुज्जीवसे एरयतं सुदानू ॥ २४ ॥
१३२२ एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २५ ॥

अर्थ—[१३१९] हे (दस्रौ) शत्रु विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (आथर्वणाय दधीचे) अथर्ववंशोद्भव दधीची ऋषिके लिए (अश्व्यं शिरः) घोडेका शिर (प्रति ऐरयतं) तुम दोनोंने लगा दिया था, तब (स ऋतायन्) उस ऋषिने यज्ञ मार्गका प्रचार करते हुए (वां मधु प्रवोचत्) तुम दोनोंको इस मधु विद्याका उपदेश किया (यत्) और वैसी ही (वां) तुम दोनोंको (अपि कक्ष्यं त्वाष्ट्रं) अवयवोंको जोडनेकी विद्या, जो कि इन्द्रसे प्राप्त हुई थी वह भी, उसने तुमसे कह डाली ॥ २२ ॥

[१३२०] हे (नासत्या कवी अश्विना) सत्य पालक कवी अश्विदेवो ! (सदा) हमेशा (वां) तुम दोनोंसे (सुमतिं आचके) अच्छी बुद्धिकी प्राप्तिकी कामना करता हूँ, (मे) मेरी (विश्वाः धियः) सारी क्रियाओं तथा बुद्धियोंको (प्र अवतं) अच्छी तरह सुरक्षित रखो; (बृहन्तं) बडे भारी (अपत्यसाचं) सन्तान युक्त तथा (श्रुत्यं-रयिं) वर्णनीय धनसंपदाको तुम (अस्मे रराथां) हमें दो ॥ २३ ॥

[१३२१] (सुदानू) हे अच्छे दानी (रराणा) बहुत उदार (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! वध्रीमत्यै-हिरण्यहस्तं पुत्रं अदत्तं) वध्रीमतीको हाथमें सुवर्ण धारण करनेवाले पुत्रका दान तुम दोनोंने किया, (श्यावं त्रिधा-विकस्तं ह) श्याव, जो तीन स्थानोंमें खंडित हो चुका था, उसे (जीवसे) जीवित रहनेके लिए (उत् ऐरयतं) तुम दोनोंने उत्तम रीतिसे उपर उठाया ॥ २४ ॥

[१३२२] हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अश्विदेवो ! (वां एतानि) तुम दोनोंके ये (पूर्व्याणि वीर्याणि) पूर्वकालमें किये हुए पराक्रमके कार्य (आयवः प्र अवोचन्) सब मानव वर्णन करते आये हैं, (युवभ्यां ब्रह्म कृण्वन्तः) तुम दोनोंके लिए इस स्तोत्रकी रचना करते हुए (सुवीरासः) अच्छे वीर बनकर हम (विदथं आ वदेम) सभाओंमें उसका खूब प्रवचन करें ॥ २५ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने अथर्वकुलमें उत्पन्न दधीची ऋषिके घोडेका सिर लगा दिया, तब उसने उनको, यज्ञ मार्गके प्रचारके उद्देश्यसे, मधु विद्याका उपदेश दिया और टूटे अवयवोंको जोडनेकी विद्या भी सिखाई ॥ २२ ॥

हे सत्यके रक्षक कवी अश्विदेवो ! हमें उत्तम बुद्धि तथा उत्तम कर्म करनेकी शक्ति प्रदान करो, हमें उत्तम संतान और श्रेष्ठ प्रकारका धन मिलता रहे । मनुष्यको उत्तम रीतिसे निभानेकी शक्ति, उत्तम संतति तथा श्रेष्ठ धन संपदा प्राप्त करनी चाहिये ॥ २३ ॥

अश्विदेव उत्तम दान देनेवाले और उत्तम नेता हैं । उन्होंने गर्भवती न होनेवाली स्त्रीको गर्भधारणक्षम बनाया, पश्चात् उसके उत्तम पुत्र हुआ और उस पुत्रके हाथमें सुवर्णालंकार धारण करने योग्य संपदा भी दी । श्याव तीन स्थान पर जखमी होकर पडा था उसको ठीक किया और उसे दीर्घायु भी बना दिया । वैद्यक शास्त्रकी इतनी उन्नती करनी चाहिए कि जिससे वन्ध्या स्त्रीको गर्भधारण करनेमें समर्थ, नपुंसकको वाजीकरण द्वारा पुरुषत्व शक्तिसे युक्त, और उनको सुसंतान प्राप्त करने तथा किसीके घायल होने और अवयवोंके टूटनेपर उनको ठीक करनेमें उत्तम सिद्धि प्राप्त हो ॥ २४ ॥

अश्विदेव बलवान् हैं । इस सूक्तमें वर्णन किये सब उनके पराक्रमके कर्म प्राचीन कालसे सब मानव वर्णन करते आये हैं। हमने यह स्तोत्र उनकी प्रसन्नताके लिए किया है। इससे हम उत्तम वीर बनें, हमें उत्तम वीर संतानें हों और हम युद्धोंमें यशस्वी और सभाओंमें उत्तम प्रभावी वक्ता बनें ॥ २५ ॥

[११८]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१३२३ आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥

१३२४ त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥

१३२५ प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥

[११८]

अर्थ—[१३२३] हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अश्विदेवो! (वां यः) तुम दोनोंका जो (सुमृळीकः) बहुत सुख देनेवाला (स्ववान्) अपनी शक्तिसे युक्त (मर्त्यस्य मनसः जवीयान्) मानवके मनसे भी अति वेगवान् (वातरंहाः) वायुके तुल्य वेगवाला (श्येनपत्वा) बाज पंछीके समान वेगसे उडनेवाला (त्रिवन्धुरः रथः) तीन स्थानोंमें सुदृढतया बना हुआ रथ है, यह (अर्वाङ् आयातु) हमारे अभिमुख आ जाए ॥ १ ॥

[१३२४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (त्रिचक्रेण) तीन पहियोंसे युक्त, (त्रिवंधुरेण) तीन बंधनोंसे युक्त, (त्रिवृता सुवृता रथेन) तीन बाजूवाले तथा उत्तम रीतिसे जानेवाले रथपर चढकर (अर्वाक् आयातं) हमारे पास आओ। (नः गाः पिन्वतं) हमारी गौएँ दुधारु बनाओ, हमारे (अर्वतः जिन्वतं) घोडोंको गतिमान् करो, तथा (अस्मे वीरं वर्धयतं) हमारे लिए वीर संतानकी वृद्धि करो ॥ २ ॥

[१३२५] हे (दस्रौ) शत्रु विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (सुवृता) सुन्दर ढंगसे बनाये हुए (प्रवत् यामना रथेन) बहुत वेगसे जानेवाले रथसे आकर यहाँ (अद्रेः इमं श्लोकं शृणुतं) सोम कूटनेके पत्थरोंके इस काव्यको तुम दोनों सुनो। (अंग किं) भला क्या (पुराजाः विप्राः) पूर्वकालके ब्राह्मण (वां) तुम दोनोंको (अवर्तिं प्रति) दरिद्रताके मिटानेके लिये (गमिष्ठा आहुः) जानेवाले ही कहते थे न ? ॥ ३ ॥

भावार्थ— बलवान् अश्विदेवोंका रथ बैठनेके लिए सुखकारक; अपनी बनावटके कारण सुदृढ, मनसे और वायुसे भी वेगवान्, पक्षीके समान आकाशमें उडनेवाला, तीन स्थानोंमें बंधा हुआ है, वह हमारे समीप आ जाय अर्थात् उस रथमें बैठकर वे हमारे पास आयें, कारीगर ऐसे यान बनावें कि जो अन्दर बैठनेके लिए सुख दें, सुदृढांग हों अर्थात् न टूटनेवाले हों, अतिवेगसे चलनेवाले हों, वे पक्षीके समान आकाशमें भी उड सकते हों। ऐसे यानोंमें बैठ कर लोग भ्रमण करें ॥ १ ॥

हे अश्विदेवो ! अपने तीन पहियोंवाले, तीन आसनोंवाले त्रिकोणाकृति उत्तम गतिवाले रथपर चढकर हमारे पास आओ, और हमारी गौओंको दुधारू बनानेकी तथा हमारे घोडोंको सुशिक्षासे शिक्षित करके उत्तम ढंगसे चलनेवाले बनाने की आयोजनाको बताओ तथा हम वीर संतानसे युक्त हों ऐसा भी मार्ग हमें बताओ। विद्वान् नेता अपने अनुयायियोंके घरपर जायें, उनकी गौओंको विशेष दुधारू बनानेके तथा घोडोंको उत्तम शिक्षित करके उत्तम गतिसे चलनेमें समर्थ बनाने के उपाय बतावें, तथा घरके बालबच्चोंको उत्तम वीर बनानेकी सुशिक्षा दें। (राजप्रबन्ध द्वारा ही यह सब होना चाहिए) ॥ २ ॥

शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेव अपने सुन्दर रथमें बैठकर यज्ञके स्थानपर जाते हैं और वहां सोमरस निकालनेके समयके मन्त्र गान सुनते हैं। ये वही अश्विदेव हैं कि, जिनके विषयमें प्राचीन कालके ज्ञानी बार बार कहते आये हैं कि, 'ये दारिद्र्य और दुःखका नाश करनेके लिये ही भ्रमण करते हैं।' नेता शत्रुओंका नाश करें। शुभ कर्मोंके स्थानोंमें जायँ और उन कर्मोंके करनेवालोंको सहायता दें। अनुयायियोंके दारिद्र्य, दुःख, कष्ट, रोग, तथा न्यूनताको दूर करनेका उचित प्रबंध करें ॥ ३ ॥

१३२६ आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥
१३२७ आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥ ५ ॥
१३२८ उद् वन्दनमैरतं दंसनाभि रुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात् पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥
१३२९ युवमत्रयेऽवनीताय तप्त मूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

अर्थ— [१३२६] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (ये) जो (गृध्राः न) गिद्धोंकी तरह (दिव्यासः) आकाशमें संचार करनेवाले (अप्तुराः) वेगसे जानेहारे पक्षी (प्रयः अभि) यज्ञ स्थानके प्रति तुम दोनोंको (वहन्ति) पहुंचाते हैं । (रथे युक्तासः) वे यानमें जोते हुए (आशवः) शीघ्रगामी, (श्येनासः पतङ्गाः वां) श्येन पक्षी तुम दोनोंको इधर (आवहन्तु) ले आवें ॥ ४ ॥

[१३२७] हे (नरा) नेताओ ! (जुष्ट्वी युवतिः) आनन्दित हुई युवती (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या (वां अत्र रथं) तुम दोनोंके इस रथपर (आतिष्ठत्) चढी । इस रथमें जोडे हुए (अश्वाः) घोडे (अरुषाः) लाल रंगवाले (वपुषः) शरीरके आकारसे (वयः पतङ्गाः) पक्षी जैसे उडनेवाले (वां अभीके परिवहन्तु) तुम दोनोंको यज्ञस्थानके समीप ले आयें ॥ ५ ॥

[१३२८] हे (वृषणा दस्रा) बलिष्ठ तथा शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (दंसनाभिः) अपने कौशल्यपूर्ण कर्मोंसे (वन्दनं उत् ऐरतं) वन्दनको तुम दोनोंने ऊपर उठाया था; (रेभं शचीभिः उत्) रेभको अपनी शक्तियोंसे तुमने ऊपर उठा लिया था; (तोग्र्यं) तुग्रके पुत्रको (समुद्रात् निः पारयथः) समुद्रमेंसे ठीक प्रकारसे पार कराया था; तथा (च्यवानं पुनः) च्यवानको फिरसे (युवानं चक्रथुः) युवा बना डाला था ॥ ६ ॥

[१३२९] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अवनीताय अत्रये) कारावासमें नीचे रखे गए अत्रिके लिए (युवं तप्तं) तुम दोनोंने गर्म कारागृहको शान्त किया और उसको (ओमानं ऊर्जं अधत्तं) सुखदायक बलवर्धक अन्न दिया (सुष्टुतिं जुजुषाणा) अच्छी स्तुतिको आदरपूर्वक ग्रहण करते हुए (युवं) तुम दोनोंने (कण्वाय अपिरिताय) कण्वके लिए जो देखनेमें असमर्थ हो गया था, उसकी (चक्षुः प्रति अधत्तं) आँखोंके लिए प्रकाश बताया ॥ ७ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंके यानको अतिवेगसे जानेवाले श्येन पक्षी जोडे जाते थे। ये त्वरासे जानेवाले, गीधके समान पक्षी इनको यज्ञ स्थानमें ले जाते थे ॥ ४ ॥

अश्विदेव धर्मके नेता हैं, उनपर प्रीति करनेवाली सूर्यकी तरुणी कन्या उनके रथपर चढकर बैठी है । इस रथको जो घोडे जोते हैं, वे शरीरके आकारसे पक्षी जैसे आकाशमें उडनेवाले हैं, वे उस रथको इस यज्ञके समीप ले आवे ॥ ५ ॥

अश्विदेव बलिष्ठ हैं और शत्रुका नाश करनेवाले हैं । उन्होंने अपने अद्भुत सामर्थ्यसे वन्दनको तथा रेभको कुंवेसे निकाला, तुग्रके पुत्र भुज्युको समुद्रमेंसे उठाकर घर पहुंचाया था और वृद्ध च्यवानको पुनः तरुण बनाया था ॥ ६ ॥

अश्विदेवोंने कारागृहके तलघरमें रखे अत्रि ऋषिको सुख देनेके लिए जलसे आगको शान्त किया, और उसको पुष्टिकारक तथा शक्तिवर्धक अन्न दिया । इसी तरह अन्धेरेमें रखे कण्वकी आंखोंको मार्ग बतानेके लिए उन्होंने प्रकाश दिखाया । इस कारण अश्विदेवोंकी सब प्रकारसे प्रशंसा होती है ॥ ७ ॥

१३३० युवं धेनुं शयवे नाधितायाऽपिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुंचतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥ ८ ॥

१३३१ युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥

१३३२ ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥ १० ॥

१३३३ आ श्येनस्य जवसा नूतनेनाऽस्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥ ११ ॥

अर्थ— [१३३०) हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (पूर्व्याय नाधिताय शयवे) पूर्व समयमें याचना करनेवाले शयुके लिए (धेनुं अपिन्वतं) गायको पुष्ट किया, (वर्तिकां अंहसः) बटेरको कष्टसे (निः अमुंचतं) पूर्णतया छुडाया और (विष्पलाया जङ्घां प्रति अधत्तं) विश्पलाकी टाँग ठीक प्रकारसे बिठला दी ॥ ८ ॥

[१३३१] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (अहिहनं) अहिका नाश करनेहारे; (श्वेतं इन्द्रजूतं) सफेद रँगवाले, इन्द्रके द्वारा प्रेरित, (वीडु अंगं उग्रं) दृढ एवं बलिष्ठ अंगवाले, (अर्यः अभिभूतिं) शत्रुके पराभवकर्ता (जोहूत्रं) बार बार संग्राममें बुलाये जाने योग्य (सहस्रसां) हजार प्रकारका दान देनेवाले (वृषणं अश्वं) बलवान् घोडेको (पेदवे अदत्तं) पेदुके लिये दिया था ॥ ९ ॥

[१३३२] हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (सुजाता ता वां) अच्छे कुलमें उत्पन्न विख्यात तुम दोनोंकी (नाधमानाः) सहायतार्थ प्रार्थना करते हुए हम (सु-अवसे हवामहे) अच्छी रक्षाके लिये तुम्हें बुलाते हैं । (गिरः जुषाणा) हमारे भाषणोंको आदरपूर्वक सुनते हुए तुम दोनों (वसुमता रथेन) धन दौलतसे भरे हुए अपने रथपरसे (नः) हमारे समीप हमारी (सुविताय उप आयातं) भलाईके लिए आओ ॥ १० ॥

[१३३३] हे (नासत्या) सत्यके पालक देवो ! (सजोषाः) एक साथ कार्य करनेवाले तुम दोनों (श्येनस्य नूतनेन जवसा) श्येन पक्षीके नये वेगसे (अस्मे आयातं) हमारे पास आओ, हे (अश्विनो) अश्विदेवो ! (शश्वत्तमायाः उषसः व्युष्टौ) शाश्वत रहनेवाली उषाके प्रादुर्भाव हो चुकनेपर (रातहव्यः) हविर्भागको देकर मैं (वां हवे हि) तुम दोनोंको बुला रहा हूँ ॥ ११ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने प्रार्थना करनेवाले शयुके लिये गौको दुधारू बना दिया, बटेरको भेडियेके मुखसे छुडाया और विश्पलाकी टूटी टाँगके स्थानपर लोहे की टाँग लगा दी ॥ ८ ॥

अश्विदेवोंने पेदुके लिए एक सफेद घोडा दिया था, जो शत्रुका वध करता था, इन्द्रने उसको सिखाया था, बडा सुदृढ अंगवाला था, देखनेमें उग्र था, शत्रुका पराभव करता था, युद्धमें बडा उपयोगी था और सहस्रों प्रकारके धन जीतता था ॥ ९ ॥

अश्विदेव उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं । वे हमारी सहयता करें, इसलिये हम उनकी प्रार्थना करते हैं, हमारा भाषण सुनते ही वे अपने रथमें उत्तम धन रखकर हमारे पास आयँ, और हमारी सहायता तथा सुरक्षा करें ॥ १० ॥

हे सत्यके पालनकर्ता अश्विदेवो ! तुम दोनों एक विचारसे अपने श्येन पक्षीको अधिक वेगसे दौडाते हुए मेरे पास आओ । बहुत देरतक टिकनेवाली उषाका उदय होते ही मैं हवि तैयार करके तुम दोनोंको बुला रहा हूं । तुम आओ और हवि लो ॥ ११ ॥

[११९]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- जगती ।)

१३३४ आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १ ॥

१३३५ ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥ २ ॥

१३३६ सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥ ३ ॥

---

[११९]

अर्थ— [१३३४] (वां) तुम दोनोंके (पुरुमायं मनोजुवं) अनेक कुशल कारीगरीसे पूर्ण, मनके तुल्य वेगवान, (यज्ञियं जीराश्वं) पूजनीय तथा वेगवान घोडोंसे युक्त, (सहस्र-केतुं) अनेक झंडेवाले (वरिवोधां) धनको धारण करनेवाले (शतद्वसुं) सौ ढंगके धन रखनेवाले, (श्रुष्टीवानं रथं) शीघ्र गतिसे युक्त रथको (प्रयः अभि) हविष्यान्नके प्रति (जीवसे आहुवे) जीवनको दीर्घ बनानेके लिए मैं बुलाता हूं ॥ १ ॥

[१३३५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अस्य प्रयामनि) इस रथके आगे बढनेपर (धीतिः ऊर्ध्वा शस्मन् अधायि) हमारी बुद्धि स्तुति कार्यके उच्चपदपर अधिष्ठित हो चुकी है, स्तुति करने लगी है (दिशः आ समयन्ते) चारों दिशाओंके लोग इकट्ठे होते हैं, (घर्मं स्वदामि) घृत आदि हविको स्वादु बना देता हूँ (ऊतयः प्रतियन्ति) रक्षाकी आयोजनाएँ फैल रही हैं, (वां रथं) तुम दोनोंके रथपर (ऊर्जानी आरुहत्) सूर्यकी तेजस्वी कन्या चढकर बैठी है ॥ २ ॥

[१३३६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यत् शुभे रणे) जब लोककल्याणके लिए किये जानेवाले युद्धमें (अमिताः जायवः) असंख्य जयिष्णु (मखाः) महनीय वीरलोग (मिथः पस्पृधानासः) परस्पर स्पर्धा करते हुए (सं अग्मत) इकट्ठे हो जाते हैं, तब (युवोः रथः अह) तुम दोनोंका रथ भी (प्रवणे चेकिते) निम्न भागसे उतरता हुआ दीखता है, (यत्) जिसमें तुम (वरं सूरिं आवहथः) श्रेष्ठ धन ज्ञानीके पास ले आते हो ॥ ३ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंके कौशल्य युक्त विविध कर्मोंसे निर्माण हुए, वेगवान्, पवित्र, चपल घोडोंसे युक्त, अनेक ध्वजवाले, सुख देनेवाले, धनको धारण करनेवाले शीघ्रगामी रथको अपने यज्ञके प्रति मैं बुलाता हूं। वे यहां आये और हमें दीर्घआयु दें ॥ १ ॥

प्रभात होते ही हमारी बुद्धि अश्विदेवोंकी प्रशंसा करने लगी है, सब दिशाओंके लोग इसमें शामिल हुए हैं। अब मैं घृतादि पदार्थ स्वादु बनाकर यज्ञके लिए तैयार रखता हूं। यज्ञसे होनेवाली सब प्रकारकी संरक्षण शक्तियाँ चारों ओर अपना प्रभाव दिखा रही हैं। अश्विदेवोंके रथपर सूर्यकी पुत्री चढकर बैठी है। प्रभात समयमें सब लोग तैयार रहें। चारों ओरके लोग भी आकर शामिल हों। घृतादि पदार्थ तैयार किये जायँ। सब लोग शुभ कर्ममें दत्तचित्त हों। हरएक सबकी सुरक्षा करनेके लिये कटिबद्ध हो। सब सुरक्षित रहें ॥ २ ॥

जनताका हित करनेके लिये आवश्यक हुए युद्धमें जब अनेक जयिष्णु वीर परस्पर स्पर्धा करते हुए इकट्ठे होते हैं और लडने लगते हैं तब अश्विदेवोंका रथ शनैः शनैः नीचे आता हुआ दीखता है। इस रथमें वे विद्वान् याजकोंको देनेके लिये उत्तम प्रकारके धन अपने साथ ले आते हैं ॥ ३ ॥

*

१३३७ युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥ ४ ॥
१३३८ युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥ ५ ॥
१३३९ युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥
१३४० युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१३३७] हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (स्वयुक्तिभिः) अपनी निजी युक्तियोंसे (विभिः) पक्षीसदृश उडनेवाले यानोंसे (भुरमाणं गतं) भ्रान्तिकी अवस्थाको पहुंचे (भुज्युं) तुग्रके पुत्र भुज्युको (पितृभ्यः निवहन्ता) मातापिताओंके निकट पहुँचाते समय (विजेन्यं वर्तिः आयासिष्टं) सुदूरवर्ती स्थानमें विद्यमान उसके घरतक तुम दोनों चले गये थे । (वां अवः) तुम दोनोंका वह संरक्षण (दिवोदासाय महि चेति) दिवोदासके लिये भी बडा ही महत्त्वपूर्ण था ॥ ४ ॥

[१३३८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवोः वपुषे) तुम दोनोंकी शोभा बढानेके लिए (युवायुजं रथं) तुम दोनोंके द्वारा जोते हुए रथको तथा, (अस्य शर्ध्यं) इसके बलको तुम्हारी (वाणी येमतुः) वाणी नियंत्रित कर-चुकी है (सख्याय जग्मुषी) मित्रताकी इच्छा करनेवाली (जेन्या योषा) विजयसे प्राप्त करनेयोग्य स्त्री (वां पतित्वं आ) तुम दोनोंसे पतित्वकी कामना करनेवाली (युवां पती अवृणीत) तुम दोनोंको पतिके रूपमें स्वीकार कर चुकी है ॥५॥

[१३३९] (युवं) तुम दोनोंने (परिषूतेः) संकटसे (रेभं उरुष्यथः) रेभको बचाया, (अत्रये) अत्रिके लिए (परितप्तं घर्मं) अत्यन्त गर्म स्थानको (हिमेन) बर्फसे ठंडा बनाया, (शयोः गवि) शयुकी गौमें (युवं अवसं पिप्यथुः) तुम दोनोंने संरक्षणोपयोगी दूध पर्याप्त मात्रामें बढाया और (दीर्घेण आयुषा) दीर्घ जीवन देकर (वन्दनः तारि) वन्दनका तुमने तारण किया ॥ ६ ॥

[१३४०] हे (दस्रा करणा) शत्रुविनाशकर्ता एवं कार्य कुशल अश्विदेवो ! (जरण्यया निर्ऋतं वन्दनं) बुढापेसे पूर्णतया ग्रस्त वन्दनको (युवं) तुम दोनोंने (रथं न, समिन्वथः) जिस तरह पुराना रथ दुरुस्त करके नया सा बना देते हैं, उसीतरह, तरुण बना दिया । (विपन्यया) स्तुतिसे प्रसन्न होकर (विप्रं क्षेत्रात् आ जनथः) ज्ञानीको क्षेत्रसे उत्पन्न किया, अतः (वा दंसना) तुम दोनोंके ये कार्य (अत्र विधते) यहां कार्यकर्ताके लिए (प्र भुवत्) बडे प्रभावशाली हुए हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने अपनी निजी विलक्षण आयोजनाओंसे परिपूर्ण पक्षी जैसे उडनेवाले अपने यानोंमें, जीवितके विषयमें संदेहकी अवस्थामें पहुंचे तुग्रपुत्र भुज्युको बिठलाकर उसके मातापिताके अतिदूरवर्ती घर पहुंचा दिया, इसी तरह दिवोदास राजाको जो सहायता दी वह सारी उनके बडे ही महनीय कार्योंमें गिनने योग्य है ॥ ४ ॥

अश्विदेवोंने स्वयं अपना रथ जोता था, उस पर चढकर बैठनेसे वे बडे सुशोभित दीखने लगे, केवल शब्दोंके इशारेसे ही वे रथको चलाने लगे । पहुंचनेके स्थान पर सब देवोंसे पहिले वे पहुंचे । इसलिये सूर्यकी पुत्रीने स्वयंवरमें उनको पति रूपसे स्वीकार किया ॥ ५ ॥

अश्विदेवोंने रेभको संकटसे बचाया, अत्रिके कारावासकी गर्मीको हिम वृष्टिसे शान्त किया, शयुके लिये उसकी गौको दुधारू बना दिया और वन्दनको दीर्घायु किया ॥ ६ ॥

शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवोंने, जिस तरह बढई पुराना रथ दुरुस्त कर नया सा बना देता है, उसी तरह अत्यंत जीर्ण वन्दनको तरुण बनाया स्तुतिसे प्रसन्न होकर उस विप्रको, जैसे भूमिसे वृक्ष नया उगता है वैसे ही तरुण सा बना दिया । ये उनके कार्य यहांके कार्यकर्ताओंको बडे प्रभावशाली प्रतीत हुए हैं ॥ ७ ॥

१३४१ अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥
१३४२ उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥ ९ ॥
१३४३ युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥ १० ॥

[१२०]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- अश्विनौ (१२ दुःस्वप्ननाशनम्) ।
छन्दः- १ गायत्री, २ ककुप्, ३ का-विराट्, ४ नष्टरूपी, ५ तनुशिरा, ६ उष्णिक्, ७ विष्टार-बृहती,
८ कृतिः, ९ विराट्, १०-१२ गायत्री ।)

१३४४ का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः । कथा विधात्यप्रचेताः ॥ १ ॥

अर्थ— [१३४१] (स्वस्य पितुः त्यजसा) अपने ही तुग्र नामक पिताके त्याग देनेसे (नि बाधितं) पीडित हुए अतः (कृपमाणं) प्रार्थना करनेवाले भुज्युके समीप (परावति अगच्छतं) दूरवर्ती देशमें भी तुम दोनों चले गये थे (युवोः अह) तुम दोनोंकी ही ये (ऊतीः) संरक्षण योजनाएँ (इतः स्वर्वतीः) इस तरह तेजसे युक्त और (अभीके) तुरन्त (चित्राः अभिष्टयः अभवन्) अद्भुत अभिलषणीय हो चुकी हैं ॥ ८ ॥

[१३४२] जिस तरह (स्या मक्षिका) वह मधुमक्खी (वां मधुमत् अरपत्) तुम दोनोंके लिए मधुरस्वरसे कूजन करती है; (उत) उसी तरह (सोमस्य मदे) सोमके आनन्दमें (औशिजः हुवन्यति) उशिक्का पुत्र कक्षीवान तुम्हें बुलाता है । जब (दधीचः मनः) दध्यङ्का मन (युवं आ विवासथः) तुम दोनोंने सेवासे अपनी ओर आकर्षित कर लिया (अथ) तब (अश्व्यं शिरः वां प्रति अवदत्) घोडेके बनाये हुए सिरने तुम दोनोंको उपदेश दिया ॥ ९ ॥

[१३४३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (पुरुवारं अभिद्युं) बहुतों द्वारा स्वीकार करने योग्य, दीप्तिमान् (स्पृधां तरुतारं) स्पर्धा करनेवालोंको पार ले चलनेवाले, (शर्यैः पृतनासु दुस्तरं) योद्धाओंसे लडाइयोंमें अजेय, (इन्द्रं इव चर्षणीसहं) इन्द्रके समान शत्रुओंके पराभवकर्ता; (चर्कृत्यं श्वेतं) अत्यन्त कार्यशील और सफेद रँगवाले घोडेको (पेदवे दुवस्यथः) पेदु नरेशके लिए समर्पित करते हो ॥ १० ॥

[१२०]

[१३४४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंको (का होत्रा राधत्) किस तरहकी स्तुति प्रसन्न कर सकती है ? (उभयोः वां जोषे कः) तुम दोनोंको संतुष्ट करनेमें कौन सफल होगा ? (अप्रचेताः कथा विधाति) अज्ञानी तुम्हारी उपासना किस तरह करे ? ॥ १ ॥

भावार्थ— तुग्र नरेशने अपने पुत्र भुज्युको समुद्रमें नौकाओंमें बिठलाकर दूर देशमें भेज दिया था । वहां उसको कष्ट होने लगे, तब उसने प्रार्थना की, उसे सुनकर दोनों अश्विदेव वहां गये और उसको बचाया । ऐसी तुम्हारी संरक्षणकी आयोजनाएँ बडी अद्भुत तेजस्वी और सबके लिए वाञ्छनीय हैं ॥ ८ ॥

मधुमक्षिका जैसे मीठे स्वरसे गुंजन करती है, उसी तरह सोमपानके आनन्दमें उशिक्का पुत्र कक्षीवान मधुर स्वरसे तुम्हें अपनी सुरक्षाके लिये बुलाता है । दधीची ऋषिका मन तुमने अपनी सेवासे अपनी ओर आकर्षित किया था, पश्चात् तुमने उनके घोडेका सिर लगाया और उसके बाद उन्होंने तुम्हें मधुविद्याका उपदेश किया ॥ ९ ॥

अश्विदेवोंने प्रशंसनीय, तेजस्वी, युद्धमें विजयी, शत्रु वीरोंसे अजिंक्य, इन्द्र जैसे युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला, चपळ श्वेत घोडा पेदु नरेशको दिया था ॥ १० ॥

इन अश्विनौको किस तरहकी स्तुति प्रसन्न कर सकती है, इन्हें सन्तुष्ट करनेमें कौन सफल होता है और जो कोई भी विधि नहीं जानता है, ऐसा अज्ञानी मनुष्य इन अश्विनौकी किस तरह उपासना करे, यह सब जाननेका प्रयत्न करना चाहिए ॥ १ ॥

१३४५ विद्वांसाविद् दुरः पृच्छे॒दविद्वानित्थाप॑रो अचेताः । नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥ २ ॥

१३४६ ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद् दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥

१३४७ वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान् वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥

१३४८ प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् । प्रैषयुर्न विद्वान् ॥५॥

१३४९ श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् । आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥

अर्थ—[१३४५] (अविद्वान्) अज्ञानी और (अपरः अप्रचेताः) दूसरा अप्रबुद्ध ये दोनों (इत्था) इस तरह (विद्वांसौ इत्) विद्वान् अश्विदेवोंसे ही (दुरः पृच्छेत्) मार्ग पूछ लिया करें । क्या कभी (मर्ते) मानवके विषयमें (अ-क्रौ) न करनेकी बात (नु चित् नु) वे कभी करेंगे ? [कभी नहीं ।] ॥ २ ॥

[१३४६] (ता वां) उन विख्यात तुम दोनों (विद्वांसा हवामहे) विद्वानोंको हम बुलाते हैं, (अद्य नः) आज हमें (ता विद्वांसा) वे दोनों विद्वान् अश्विदेव (मन्म वोचेतं) मननके योग्य उपदेश दें; (युवाकुः) तुम दोनोंके संपर्ककी इच्छा करता हुआ यह मानव (दयमानः प्र अर्चत्) हवि अर्पण करता हुआ तुम्हारी पूजा करता है ॥ ३ ॥

[१३४७] हे (दस्रा) शत्रुके विनाशकर्ता अश्विदेवो ! तुम दोनोंसे (वि पृच्छामि) मैं विशेष रूपसे पूछना चाहता हूं । (अद्भुतस्य वषट्कृतस्य सह्यसः च) विचित्र बल देनेहारे, वषट्कारपूर्वक किये हुए तथा बलके उत्पादक इस सोमरसका (युवं पातं) तुम दोनों सेवन करो, (नः रभ्यसः च) और हमें बडे कार्य करनेमें समर्थ बनाओ ॥ ४ ॥

[१३४८] (या) जो वाणी (घोषे भृगवाणे न) घोषाके पुत्र तथा भृगवाणऋषिमें (प्र शोभे) अत्यन्त सुशोभित हो रही है, और (विद्वान् इषयुः) ज्ञानी और अन्नको चाहनेवाले (पज्रियः न) अंगिरस कुलमें उत्पन्न ऋषिके समान (यया वाचा) जिस वाणीसे यह (वां यजति) तुम दोनोंकी पूजा करता है, वह वाणी मुझमें रहे ॥ ५ ॥

[१३४९] हे (शुभस्पती) शुभके अधिपति अश्विदेवो ! (तकवानस्य गायत्रं श्रुतं) प्रगति करनेवाले ऋषिका स्तोत्र तुम दोनोंने सुन लिया, (अक्षी आदन्) तुम दोनोंकी दी हुई नेत्र शक्तिका ग्रहण करता हुआ (अहं) मैं ही (वां चित् हि) तुम दोनोंकी यह (रिरेभ) प्रशंसा कर रहा हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—अज्ञानी अथवा अप्रबुद्ध ये दोनों अश्विदेवोंसे अपनी उन्नतिका मार्ग पूछ लिया करें, क्योंकि वे मनुष्यके लिये कुछ नहीं करेंगे ऐसा कुछ भी नहीं है अर्थात् मनुष्यके हितके लिए जितना भी कुछ हो सकता है, ये अश्विनौ अवश्य करते हैं ॥ २ ॥

हम सहायतार्थ विद्वान् अश्विदेवोंको बुलाते हैं । वे आकर हमें योग्य उपदेश दें । उनकी मित्रताकी इच्छा करनेवाला, मैं अन्नको प्रदान करता हुआ, उनकी पूजा करता हूँ । मनुष्य विद्वानोंकी सहायता लेवे । वे उनको योग्य मार्गका उपदेश करें । उसके बदले मनुष्य उन विद्वानोंका बडा आदर करे । इस तरह दोनों परस्परकी सहायता करके उन्नतिको प्राप्त करें ॥ ३ ॥

हे शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो । मेरी प्रार्थना तुमसे ही है, किसी अन्यसे नहीं । तुम्हीं इस मेरे तैयार किये सोमरसको स्वीकार करो और मुझे बडे कार्य करनेमें समर्थ बनाओ । राष्ट्रमें शिक्षाका ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि जिससे बडे बडे कार्य करनेवाले महापुरुष निर्माण हों ॥ ४ ॥

घोषा ऋषिका पुत्र, भृगु ऋषि और पज्र कुलमें उत्पन्न अंगिरा ऋषि जिस तरहकी स्तुति करते रहे, उस तरहकी वर्णन शैली मेरी वाणीमें हो ॥ ५ ॥

हे शुभकारी अश्विदेवो ! प्रगति करनेकी इच्छा करनेवाले ऋषिने यह गायत्र छन्दका सामगान किया था, वह आपने सुन लिया है । तुमने उसको दृष्टी दी, इसी तरह मैं भी तुम्हारा गुणगान करता हूं, मुझे भी शक्तिसंपन्न करो ॥ ६ ॥

१३५० युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥ ७ ॥
१३५१ मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८ ॥
१३५२ दुहीयन् मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥
१३५३ अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः । तेनाहं भूरि चाकन ॥ १० ॥
१३५४ अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु । सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१३५०] हे (वसू) सबको बसानेवाले अश्विदेवो! (युवं हि) तुम दोनों सचमुच (महः रन् आस्तं) बडा भारी दान देते रहते हो और (यद्) जिसे (युवं) तुम दोनों (निः अततंसतं वा) चाहे तब पूर्णतया हटा भी लेते हो; (ता) ऐसे प्रसिद्ध तुम दोनों (नः सुगोपा स्यातं) हमारी अच्छी रक्षा करनेवाले बनो, (नः अघायोः वृकात् पातं) हमें पापी और भेडियेके तुल्य क्रोधीसे बचाओ ॥ ७ ॥

[१३५१] (कस्मै अमित्रिणे) किसी भी शत्रुके (अभि नः मा धातं) सम्मुख हमें न रखो, (नः) हमारी (स्तनाभुजः धेनवः) स्तनके दूधसे भरण पोषण करने हारी गौएँ (अशिश्वीः) बछडोंसे वियुक्त होकर (गृहेभ्यः मा कुत्र गुः) घरोंसे कहीं न निकल जाएँ ॥ ८ ॥

[१३५२] (युवाकु) तुमसे संपर्क रखनेकी इच्छा करनेवाले लोग (मित्रधितये दुहीयन्) मित्रोंके भरण पोषणार्थ तुम दोनोंसे पर्याप्त संपत्तिका दोहन करते हैं, इसलिए (वाजवत्यै राये च धेनुमत्यै इषे च) बल युक्त धन और गोधन युक्त अन्न (नः मिमीतं) हमें दो ॥ ९ ॥

[१३५३] (वाजिनीवतोः) सेनासे युक्त अश्विदेवोंके (अनश्वं रथं) घोडोंके विना चलनेवाले रथको (असनं) मैं प्राप्त कर चुका हूं, (अहं) मैं (तेन भूरि चाकन) उससे बहुतसा यश प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं ॥ १० ॥

[१३५४] (अयं सुखः रथः) यह सुखप्रद रथ (समहः) धनसे युक्त है, (सोमपेयं) सोम पीनेके स्थानको (जनान् अनु ऊह्याते) याजक लोगोंके पास अश्विदेव इसपर बैठकर जाते हैं (मा तनु) वह मेरी वृद्धि करे। वह मेरा यश फैलावे ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम दोनों किसीको बडा दान देते भी हो और किसीसे धन हटा भी लेते हो। ऐसे आप दोनों हमारे रक्षक बनो और पापी तथा क्रोधीसे हमें बचाओ। योग्य मनुष्योंको दान देना चाहिए, तथा दुष्टोंको दण्ड भी देना चाहिए। लोगोंकी सुरक्षा करनी चाहिए। पापी और क्रोधियोंसे जनताको बचाना चाहिए ॥ ७ ॥

किसी भी प्रकारके शत्रुके सामने हमें न रखो। गौएँ हमारा पोषण अपने दूधसे करती हैं, अतः वे हमारे घरोंसे दूर न जायँ। सदा हमारे घरमें ही रहें ॥ ८ ॥

हम तुम्हारे साथ अनुयायी होकर रहनेकी इच्छा करते हैं, अतः जिस तरह मित्रकी सहायता करते हैं, उसी तरह हमें बलवर्धक धन और गौओंसे प्राप्त होनेवाला दूध पर्याप्त परिमाणमें मिलता रहे ऐसा प्रबन्ध करो। राष्ट्रमें प्रजाओंको उत्तम धन और बलवर्धक और पोषक अन्न अर्थात् गायका दूध मिलता रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये ॥ ९ ॥

अश्विदेवोंसे घोडोंके विना चलनेवाला रथ मुझे मिला है, इससे बहुतसा यश मिलनेकी मुझे आशा है ॥ १० ॥

अश्विदेव सोमपानके स्थानके पास अपने सुखदायी रथमें बैठकर जाते हैं। उस रथमें बडा धन रहता है। वह रथ मेरा यश बढानेवाला हो ॥ ११ ॥

१३५५ अध स्वप्नस्य निर्विदे ऽभुञ्जतश्च रेवतः । उभा ता बस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥

[१२१]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- इन्द्रो विश्वे देवा वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१३५६ कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद् गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥ १ ॥

१३५७ स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २ ॥

अर्थ—[१३५५] (स्वप्नस्य) स्वप्नशीलको (अध) और (अभुञ्जतः रेवतः च) भोजन न देनेवाले धनिकको देखकर (निर्विदे) मुझे खिन्नता होती है । क्योंकि (ता उभा) वे दोनोंही (बस्रि नश्यतः) शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

१ स्वप्नस्य अभुंजतः उभा नश्यतः— सुस्तीमें पडे रहनेवाले आलसी और भोजन न देनेवाले मनुष्य नष्ट हो जाते हैं ।

[१२१]

[१३५६] (नॄन् पात्रं) मनुष्योंकी रक्षा करनेवाला इन्द्र (तुरण्यन्) शीघ्रता करते हुए (देवयतां अंगिरसां) देव बननेकी इच्छा करनेवाले अंगिरसोंकी (गिरः) स्तुतियोंको (इत्था कत् श्रवत्) इस प्रकार कब सुनेगा ? (यत्) जब सुन लेता है, तब (हर्म्यस्य विशः) घरमें रहनेवाली प्रजाओंके (अध्वरे उरु क्रंसते) यज्ञमें शीघ्रतासे जाता है और (यजत्रः आनट्) पूज्य होकर वह इन्द्र यज्ञको व्याप्त कर लेता है ॥ १ ॥

[१३५७] (स द्यां स्तम्भीत् ह) निश्चयसे उसी सूर्यरूपी इन्द्रने द्युलोकको थाम रखा है । (गोः नरः ऋभुः) किरणोंको प्रकाशित करनेवाले तेजस्वी यह इन्द्र (वाजाय) अन्नको उत्पन्न करनेके लिए (द्रविणं धरुणं) बहनेवाले जलको (प्रुषायत्) बरसाता है । (महिषः) वह महान् सूर्य (स्वजां व्रां अनुचक्षत्) अपनी पुत्री उषाके बाद प्रकाशित होता है और (अश्वस्य मेनां) शीघ्र गतिसे दौडनेवाले चन्द्रमाकी स्त्री रात्रिको (गोः मातरं परि) प्रकाश किरणोंकी माता बनाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— गरीबोंको भोजन न देनेवाले धनिकोंको देख कर तथा सुस्तीसे पडे रहनेवालोंको देखकर मुझे बडा खेद होता है, क्योंकि ये निःसन्देह शीघ्र नाशको प्राप्त होनेवाले हैं । सुस्तीसे नाश होता है, अतः मनुष्य उद्यमी बने । धनका उपयोग गरीबोंकी सहायतार्थ करना चाहिये, जो वैसा नहीं करते वे नष्ट होते हैं अतः मनुष्य अपने पासके धनसे असहायोंकी सहायता करें ॥ १२ ॥

देव बननेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंकी स्तुतियोंको यह कब सुनाता है, यह कुछ पता नहीं चलता । पर जब सुन लेता है, तब उनके यज्ञमें शीघ्रतासे जाता है और उनके कर्मोंको पूर्ण करवाता है तथा उन्हें हर तरहके ऐश्वर्य देता है ॥ १ ॥

सूर्य द्युलोकमें रहकर उसे स्थिर करता है और सर्वत्र अन्न उत्पन्न करनेके लिए पानीको बरसाता है । इस सूर्यसे उषा उत्पन्न होती है अतः यह सूर्यकी पुत्री है । लोकमें प्रथम पिता प्रकाशित होता है और पश्चात् पुत्री । पर यहां प्रथम पुत्री उषा प्रकाशित होती है तत्पश्चात् पिता सूर्य । यह सूर्य चन्द्रमाकी स्त्री रात्रीको किरणोंकी माता बनाता है । चन्द्रमा और रात्री दोनों सहचर होनेके कारण दोनों पतिपत्नी हैं । रात्रीके बाद सूर्यकिरणें प्रकाशित होती हैं, अतः रात्री सूर्यकिरणोंकी माता है ॥ २ ॥

१३५८ नक्षद्धवंमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद् वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥
१३५९ अस्य मदे स्वर्यं दा ऋताया—पीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्त—दप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥
१३६० तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत् ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ५ ॥

अर्थ—[१३५८] (अनु द्यून्) प्रतिदिन (अंगिरसां विशां) अंगरसोंको जाननेवाले मनुष्योंको (तुरः) उत्तम कर्मोंमें प्रेरित करनेवाला सूर्य (अरुणीः राट्) उषाओंको प्रकाशित करता हुआ (पूर्व्यं हवं नक्षत्) उत्तम प्रशंसाओंको प्राप्त होता है । (नियुतं वज्रं तक्षत्) शत्रुओंके विनाश करनेवाले वज्रको तीक्ष्ण करता है, तथा (नर्याय, द्विपदे, चतुष्पदे) मनुष्य, दोपाये और चौपायोंके लिए वह (द्यां तस्तम्भ) द्युलोकको थामता है ॥ ३ ॥

[१३५९] हे इन्द्र ! (अस्य मदेः) इन स्तुतियोंसे हर्षित होकर तूने (ऋताय) यज्ञके लिए (स्वर्यं) प्रकाश को देनेवाले (अपीवृतं) छिपे हुए (उस्रियाणां अनीकं) किरणोंके समूहको (दाः) दिया (यत्) जब यह (त्रिककुप्) तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ इन्द्र (प्रसर्गे नि वर्तत्) युद्धमें स्थिर हो जाता है, तब (द्रुहः मानुषस्य) द्रोह करनेवाले मनुष्यके (दुरः अपवः) द्वारोंको खोल देता है ॥ ४ ॥

[१३६०] (यत्) जब मनुष्य (रेक्णः) देनेवाले (सबर्दुघायाः उस्रियायाः) अत्यन्त दुधारु गायके (शुचि पयः) पवित्र दूधसे (ते अयजन्त) तेरी पूजा करते हैं, तब हे इन्द्र ! (तुरणे तुभ्यं) शीघ्रतासे कार्य करनेवाले तेरे लिए (भुरण्यू पितरौ) धारण पोषण करनेवाले, तथा पालन करनेवाले दोनों द्यावापृथिवी (राधः सुरेतः पयः) ऐश्वर्यदायक और उत्तम उत्पादक शक्तिसे युक्त पानीको (आनीतं) लाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— श्रेष्ठ पुरुषोंको सूर्य उत्तम कर्ममें प्रेरित करता है। जैसे ही सूर्योदय होता है, वैसे ही श्रेष्ठ पुरुष उत्तम कर्म करने लग जाते हैं, इसप्रकार मानों सूर्य ही उन्हें उत्तम कर्म करनेके लिए प्रेरणा देता है। उषाओंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके उदय होते ही लोग उसकी स्तुतियां करने लग जाते हैं । उदय होनेके बाद सूर्य अपनी किरणोंको तेज करता है और समस्त प्राणिमात्रके हितके लिए द्युलोकको प्रकाशित करता है ॥ ३ ॥

प्रातःकालमें लोगोंके द्वारा की जानेवाली स्तुतियोंके बाद यह सूर्य रात्रिमें छिपी हुई प्रकाशमय किरणोंको प्रकट करता है और तब यज्ञ शुरु होते हैं । सज्जनोंकी रक्षा करता है, पर जो द्रोह करते हैं उनके लिए अवनतिके द्वार खोल देता है । अर्थात् जो सूर्यकिरणोंका उत्तम उपयोग किरणस्नान आदिके द्वारा करते हैं, उनको स्वास्थ्य प्रदान करके यह उनकी रक्षा करता है, पर जो इन किरणोंसे द्रोह करता है, कभी इनका लाभ नहीं उठाता है, उसके लिए रोगोंके द्वार हमेशा खुले रहते हैं । रोगोंसे दूर रहनेके लिए सूर्यकिरण चिकित्सा एक उत्तम साधन है ॥ ४ ॥

जब मनुष्य अग्निमें उत्तम दुधारु गायके पवित्र घृत दूध आदिका हवन करते हैं, तब वह सूर्यकी किरणोंके सहारे द्युलोकमें जाता है, तब उन्हीं किरणोंके द्वारा पृथ्वी परका पानी ऊपर आकाशमें ले जाया जाता है, जहां वे बादल बनते हैं । ये बादल द्यावापृथिवीके बीचमें फैले और पानीसे भरपूर रहते हैं। ये पानी बरसाकर अन्न उत्पन्न करते हैं अतः इन पानियोंमें उत्पादनशक्ति भी भरपूर रहती है । इनसे उत्पन्न अन्नोंको प्राप्त कर प्राणिमात्र ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ५ ॥

१३६१ अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६ ॥

१३६२ स्विध्मा यद् वनधितिरपस्यात् सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यू-ननर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥

१३६३ अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम् ।
हरिं यत् ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१३६१] (तरणिः) दुःखोंसे तारनेवाला वह इन्द्र (अध प्र जज्ञे) प्रकट हो गया है वह (अस्याः उषसः) इस उषाके पास (सूरः न) सूर्यके समान (प्र रोचि) प्रकाशित हो रहा है । (स्वेदुहव्यैः यैः) उत्तम मधुर पदार्थकी आहुति देनेवाले जिन हम लोगोंके द्वारा (जरणा इन्दुः) स्तुतिके योग्य सोम (स्रुवेण) स्रुवाके द्वारा (धाम) यज्ञस्थानमें (आष्ट) इस इन्द्रको खिलाया जाता है, उस सोमसे (सिंचन्) सिंचित होता हुआ यह इन्द्र (ममत्तु) आनन्दित हो ॥ ६ ॥

[१३६२] यह (सूरः) सूर्य (यत्) जब (स्विध्मा वनधितिः) चमकनेवाली मेघमालाओंको (अपस्यात्) बरसाता है, तब (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञमें (गोः परि रोधनाः) गायें आकर इकट्ठी हो जाती हैं । तब (अनर्विशे) अन्नरहित (पश्विषे) पशुओंकी इच्छा करनेवाले तथा (तुराय) प्रयत्नशील पुरुषके लिए (अनुद्यून्) प्रतिदिन (कृत्व्यान् प्रभासि) उत्तम कर्मोंको प्रकाशित करता है ॥ ७ ॥

[१३६३] हे इन्द्र ! यज्ञशील मनुष्य (यत्) जब (ते वृधे) तेरी वृद्धिके लिए (हरिं मन्दिनं) स्वादिष्ट, आनन्ददायक (गोरभसं वाताप्यं) गायके दूधसे युक्त और वीर्यशाली सोमको (अद्रिभिः धुक्षन्) पत्थरोंसे कूट पीस कर तैय्यार करते हैं, तब (महः दिवः अष्टा) महान् द्युलोकको व्याप्त करनेवाले (हरी) तेरे अश्व (इह) यहां आकर (आदः) भक्षण करें और तू (योधानः) युद्ध करते हुए (द्युम्नासाहं उत्सं) तेजस्वी जलकी धाराको (अभि) चारों ओरसे बरसा ॥ ८ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार सूर्य प्रकाशित होता है, उसी तरह यह इन्द्र भी उषाओंके समीप प्रकाशित होता है । इस इन्द्रके प्रकाशित होते ही सभी यज्ञशील इसके लिए सोम प्रदान करते हैं, उस सोमसे सिंचित होता हुआ वह इन्द्र आनंदित होता है ॥ ६ ॥

इस सूर्यकी किरणोंसे जब पानी बरसता है, तब वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं । उन्हें खाकर गायें हृष्टपुष्ट होती हैं, तब उनकी सन्ततियोंका विस्तार होता है । फिर उनके दुग्ध घृतादिका उपयोग हिंसारहित यज्ञमें होता है, अतः सब गायें यज्ञस्थानपर लाई जाती हैं । वर्षाके अभावमें जो अन्नरहित, पशुरहित और प्रयत्नरहित हो गए थे, पानीके बरसने पर वे पुनः अन्न और पशुओंकी प्राप्तिके लिये प्रतिदिन कर्म करने लग जाते हैं । इस प्रकार मानों सूर्य ही जल बरसा कर उन्हें काममें नियुक्त करता है ॥ ७ ॥

जब यज्ञशील मनुष्य उत्तम आनन्ददायक और शक्तिदायक सोमरसका यज्ञ करते हैं, तब सूर्यकी किरणें इस पृथ्वीपर आकर अग्निके साथ मिलती हैं और उस सोम हविका भक्षण करती हैं । हवि सूक्ष्म होकर सूर्य किरणों द्वारा द्युलोकमें जाती है और उन किरणोंकी सहायतासे वह सूक्ष्म हवि बादलोंमें जाकर पानीमें मिल जाती है । फिर सूर्यकिरणें जब बादलोंको प्रेरित करती हैं, तब वही हवि वर्षाके द्वारा इस पृथ्वीपर आती है और चारों ओर पानी हो जाता है ॥ ८ ॥

१३६४ त्वमा॑य॒सं प्रति॑ वर्तयो॒ गो-र्दि॒वो अश्मा॑नमुप॑नीत॒मृभ्वा॑ ।
कुत्सा॑य॒ यत्र॑ पुरुहूत व॒न्व-ञ्छुष्ण॑मन॒न्तैः प॑रि॒यासि॑ व॒धैः ॥ ९ ॥

१३६५ पु॒रा यत् सूर॒स्तम॑सो॒ अपी॑ते॒-स्तम॑द्रिवः फलि॒गं हे॒तिम॑स्य ।
शुष्ण॑स्य चि॒त् परि॑हितं॒ यदोजो॑ दि॒वस्परि॒ सुग्र॑थितं॒ तदादः॑ ॥ १० ॥

१३६६ अनु॑ त्वा म॒ही पाज॑सी अच॒क्रे द्यावा॒क्षामा॑ मदतामिन्द्र॒ कर्म॑न् ।
त्वं वृ॒त्रमा॒शया॑नं सि॒रासु॑ म॒हो वज्रे॑ण सिष्वपो व॒राहु॑म् ॥ ११ ॥

अर्थ— [१३६४] (यत्र) जब हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र! तू (कुत्साय) कुत्सकी रक्षा करनेके लिए (शुष्णं) शुष्ण असुरको (अनन्तैः वधैः) अनेकों शस्त्रोंसे (वन्वन्) मारता हुआ (परियासि) चारों ओर घूमता है, तब (गोः) उस आक्रमणकारीको मारनेके लिए (त्वं) तू (ऋभ्वा दिवः आनीतं) ऋभुके द्वारा द्युलोकसे लाए गए (अश्मानं आयसं) पत्थर और लोहेसे बने हुए अस्त्रको (प्रतिवर्तयः) फेंकता है ॥ ९ ॥

[१३६५] हे (अद्रिवः) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (पुरा) पहले (यत्) जब (फलिगं हेतिं) बादलोंको विदीर्ण करनेवाले शस्त्रको (अस्य तमसः) इस अन्धकारपर फेंका, तब (सूरः अपीतेः) सूर्य इस अन्धकारसे मुक्त हुआ । (शुष्णस्य) शोषण करनेवाले असुरका (यत् ओजः) जो तेज (दिवः परि परिहितं सुग्रथितं) द्युलोकतक फैला हुआ तथा अत्यन्त सुदृढ था, (तत् चित् आ अदः) उसको भी नष्ट किया ॥ १० ॥

[१३६६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा) विशाल, बलसे युक्त, सर्वत्र व्याप्त द्युलोक और पृथ्वीलोकने (कर्मन् त्वा अनु मदतां) तेरे कार्यका अनुमोदन किया, तब उत्साहित होकर (महः वज्रेण) महान् वज्रके द्वारा (त्वं) तूने (वराहुं आशयानं) पानीको घेरकर सोनेवाले (वृत्रं) वृत्रको (सिरासु) जलोंमें ही (सिस्वपः) सुला दिया ॥ ११ ॥

भावार्थ— बुराइयोंको दूर करके उत्तमताको फैलानेवाले सज्जनकी रक्षाके लिए इन्द्र प्रजाओंका शोषण करनेवाले दुष्टोंका नाश करता है । वह अपने लोहेके अस्त्रोंसे आक्रमणकारियोंका नाश करता है । इसी तरह राजा राष्ट्रमें बुराइयोंको दूर करनेवाले सज्जनोंकी रक्षा करे और प्रजाका शोषण करनेवाले दुष्टोंका नाश करे, तथा वह हमेशा अपने पास सुदृढ शस्त्रास्त्रोंको रखे ॥ ९ ॥

बादलोंको फाडकर जलको बरसानेवाली किरणें जब अन्धकारपर प्रहार करती हैं, तब वह अन्धकार नष्ट हो जाता है, और सूर्य उदय हो जाता है । अर्थात् किरणोंके द्वारा अन्धकारके नष्ट होनेपर सूर्य प्रकट होता है । वर्षाके न होनेपर उसका प्रभाव द्युलोकपर पडता है । अकाल या अवर्षण प्राणिमात्रका शोषण करता है । सूर्य पानी बरसाकर शोषण करनेवाले इस अवर्षणरूपी असुरको नष्ट करता है ॥ १० ॥

अवर्षणके कारण सन्तप्त द्युलोक और पृथ्वीने जब सूर्यको चमकते देखा, तो बहुत प्रकाशित हुए । तब सूर्यने पानीको रोककर सोनेवाले बादलोंको अपनी तीक्ष्ण किरणोंसे शिथिल किया और उन्हें जलमें सुला दिया अर्थात् बादल जब सब पानी रोककर बैठ गया, तब सूर्यकिरणोंसे तप्त होकर बादल पानी बनकर बरस पडा । ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य बहुत चमकता है, पर वर्षामें वह अपनी किरणोंके द्वारा जल बरसाता है, उससे द्यु और पृथ्वी दोनों लोक प्रसन्न होते हैं ॥ ११ ॥

*

१३६७ त्वमिन्द्र नर्यों याँ अवो नॄन् तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद् वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥ १२ ॥

१३६८ त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्याना-मपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥ १३ ॥

१३६९ त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।
प्र नो वाजान् रथ्यो३ अश्वबुध्या-निषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै ॥ १४ ॥

अर्थ— [१३६७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (काव्यः उशना) कविके पुत्र उशनाने (ते) तुझे (मन्दिनं वृत्रहणं पार्यं वज्रं) आनन्ददायी, वृत्रको मारनेवाले तथा शत्रु पर आक्रमण करनेवाले वज्रको (दात्) दिया और उसे (ततक्ष) तीक्ष्ण किया तब (नर्यः त्वं) मनुष्योंका हित करनेवाला तू (वहिष्ठान्) ढोनेमें अत्यन्त कुशल (सुयुजः) रथमें अच्छी तरहसे जुड जानेवाले (वातस्य) वायुके समान गतिशील (यान्) जो घोडे हैं उनपर (आ तिष्ठ) बैठ और (नॄन् अवः) मनुष्योंका हित करनेवालेकी रक्षा कर ॥ १२ ॥

[१३६८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं एतशः सूरः न) इस तेजस्वी सूर्यके समान (त्वं) तू (नॄन्) मनुष्योंके हित करनेवाली (हरितः) रसोंका हरण करनेवाली किरणोंको (रामयः) प्रकट करता है । (चक्रं) तेरे रथका चक्र (भरत्) हमेशा चलता रहता है । (नाव्यानां नवतिं) नावोंसे पार करने योग्य नब्बे नदियोंके (पारं) पार (अयज्यून् प्रास्य) यज्ञ न करनेवालोंको फेंक कर (कर्तं अपि अवर्तयः) तूने बहुत बडा काम किया है ॥ १३ ॥

१ नवतिं पारं अयज्यून् प्रास्य कर्तं अपि अवर्तयः— नब्बे नदियोंके पार यज्ञ न करनेवालोंको फेंककर इस इन्द्रने बडा काम किया ।

[१३६९] हे (वज्रिवः इन्द्र) वज्रधारण करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तू (नः) हमारी (दुर्हणायाः अस्याः) कठिनाईसे नष्ट करने योग्य इस दुर्गतिसे (पाहि) सुरक्षा कर। (दुरितात्) पापसे हमें बचा । (अभीके) संग्राममें हमारी रक्षा कर । तथा (नः) हमें (रथ्यः अश्वबुध्यान् वाजान्) रथ और घोडोंसे युक्त धनोंको (इषे श्रवसे सूनृतायै) बल, यश और उत्तम सत्यपूर्ण व्यवहारके लिए (प्र यंधि) प्रदान कर ॥ १४ ॥

भावार्थ— ज्ञानीके पुत्र और ऐश्वर्यकी कामना करनेवालेने इस इन्द्रको जो शत्रुनाशक वज्र दिया है, उसे यह इन्द्र तीक्ष्ण करता है । फिर रथमें अच्छी तरह जुडनेवाले तथा वायुके समान गतिशील घोडोंवाले रथमें बैठकर वह मनुष्योंका हित करनेवालेकी रक्षा करता है ॥ १२ ॥

प्रकाशमान् सूर्यकी तरह यह इन्द्र भी मनुष्योंका हित करनेवाली और रसोंका हरण करनेवाली किरणोंसे प्रकाशित होता है । इन्द्रके रथका चक्र हमेशा चलता रहता है । यह यज्ञ न करनेवालोंका कट्टर शत्रु है, अतः वह ऐसे अयज्ञशीलोंको बहुत दूर कर देता है अर्थात् अपने पास नहीं रखता ॥ १३ ॥

हे वज्रधारण करनेवाले इन्द्र ! कठिनाईसे नष्ट करने योग्य इस दुर्गति एवं पापसे हमें बचा; हमारी रक्षा कर, तथा यश, बल और सत्ययुक्त व्यवहारके लिए हमें हर तरहका ऐश्वर्य दे । तुझसे ऐश्वर्य प्राप्त करके हम सदा सत्ययुक्त व्यवहार ही करें, कभी किसीसे छल कपट न करें ॥ १४ ॥

१३७० मा सा ते॑ अ॒स्मत् सु॑म॒तिर्वि द॑स॒द् वाज॑प्रमहः॒ समिषो॑ वरन्त ।
आ नो॑ भज मघव॒न् गोष्व॒र्यो मंहि॑ष्ठास्ते सध॒माद॑ः स्याम ॥ १५ ॥

[१२२]

(ऋषिः– कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता– विश्वे देवाः । छन्दः– त्रिष्टुप्, ५–६ विराड्रूपा ।)

१३७१ प्र व॒ः पान्तं॑ रघुमन्य॒वोऽन्धो॑ य॒ज्ञं रु॒द्राय॑ मी॒ळ्हुषे॑ भरध्वम् ।
दि॒वो अ॑स्तो॒ष्यसु॑रस्य वी॒रै॑रिषु॒ध्येव॑ म॒रुतो॒ रोद॑स्योः ॥ १ ॥

१३७२ पत्नी॑व पू॒र्वहू॑तिं वावृ॒धध्या॑ उ॒षासा॒नक्ता॑ पु॒रुधा॒ विदा॑ने ।
स्त॒रीर्नात्कं॒ व्यु॑तं॒ वसा॑ना॒ सूर्य॑स्य श्रि॒या सु॒दृशी॒ हिर॑ण्यैः ॥ २ ॥

अर्थ— [१३७०] हे (वाजप्रमहः) बलोंके द्वारा प्रशंसनीय इन्द्र ! (सा ते सुमतिः) वह तेरी उत्तम बुद्धि (अस्मत् मा वि दसत्) हमारे अन्दर नष्ट न हो। इसके विपरीत (इषः) सब तरहके अन्न (सं वरन्त) हमें वरण करें। हे (मघवन् अर्यः) ऐश्वर्यशालिन् श्रेष्ठ इन्द्र ! (नः गोषु आ भज) हमें गायोंसे संयुक्त कर, (ते मंहिष्ठाः) तुझे बहुत बढानेवाले हम (सधमादः स्याम) एक साथ रहकर आनंदित हों ॥ १५ ॥

१ सुमतिः अस्मत् मा वि दसत्— उत्तम बुद्धि हमारे अन्दरसे कभी नष्ट न हो ।

२ सधमादः स्याम— एक साथ रहकर आनंदित हों ।

[१२२]

[१३७१] हे (रघुमन्यवः) शत्रुओंपर क्रोध करनेवाले मनुष्यो ! (वः) तुम (मीळ्हुषे रुद्राय) आनन्द देनेवाले रुद्रके लिए (पान्तं यज्ञं अन्धः) पालन करनेवाले, प्रशंसनीय हविको (भरध्वं) दो । (इषुध्या इव) जिस प्रकार धनुर्धारी बाणोंसे शत्रुओंको नष्ट करता है, उसी प्रकार (दिवः असुरस्य) द्युलोकसे असुरोंको नष्ट करनेवाले (रोदस्योः वीरैः) द्युलोक और पृथ्वीलोकके बीचमें वीरोंके साथ रहनेवाले (मरुतः अस्तोषि) मरुतोंकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१३७२] (पत्नी इव) पत्नी जिस प्रकार अपने पतिकी हर तरहसे वृद्धि करती है, उसी तरह (पुरुधा विदाने) उन्नतिके अनेक मार्गोंको जाननेवाली (उषासानक्ता) उषा और रात्री (पूर्वहूतिं) हमारी पहलेकी प्रार्थनाओंको सुनकर (वावृधाध्यै) हमें उन्नत करने एवं बढानेके लिए आवें। (स्तरीः न) अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्यकी तरह (हिरण्यै व्युतं अत्कं वसाना) सुनहरे कपडोंको पहने हुई (सूर्यस्य श्रिया) सूर्यकी शोभासे युक्त हुई हुई तथा (सुदृशी) दीखनेमें अत्यन्त रूपवती उषा हमें उन्नत करनेके लिए हमारे पास आवे ॥ २ ॥

१ पत्नी हिरण्यैः व्युतं अत्कं वसाना सुदृशी वावृधाध्यै— पत्नी सोनेके कपडोंको पहनकर तथा रूपवती होकर अपने पतिको उन्नत करे ।

भावार्थ— हम इन्द्रके विषयमें सदा अच्छे विचार ही रखें। उसके विषयमें कभी भी हमारे बुरे विचार न हों। हमारी उत्तम बुद्धि हमें न छोडे । उत्तम बुद्धिसे युक्त होकर हम अन्न और धनोंको प्राप्त करें । गायें आदि ऐश्वर्य प्राप्त करके हम एक साथ रहकर आनन्दित हों । संगठित समाजमें रहनेसे मनुष्यकी सुरक्षा होती है और सबके साथ रहनेसे आनन्द आता है ॥ १५ ॥

शत्रुओंको रुलानेके कारण देवका नाम रुद्र है । यह वीर मरुतोंके साथ रहता हुआ असुरोंका नाश करता है । मरुत् वे देव हैं, जो मरनेतक शत्रुओंसे लडते हैं । रुद्र राजा है और मरुत् सैनिक हैं। राजा स्वयं भी शूर हो, तभी उसके सैनिक भी शूरवीर हो सकते हैं । राजा और उसके सैनिक मिलकर असुरों और दुष्टोंका नाश करें । इस प्रकार शत्रुओंका नाश करके राजा प्रजाओंको आनंद देनेवाला हो ॥ १ ॥

१३७३ म॒मत्तु॑ नः॒ परि॑ज्मा वस॒र्हा म॒मत्तु॒ वातो॑ अ॒पां वृष॑ण्वान् ।
शि॒शी॒तमि॑न्द्रापर्वता यु॒वं न॒स्तन्नो॒ विश्वे॑ वरिवस्यन्तु दे॒वाः ॥ ३ ॥
१३७४ उ॒त त्या मे॑ य॒शसा॑ श्वे॒तना॒यै व्यन्ता॒ पान्तौ॑शि॒जो हु॒वध्यै॑ ।
प्र वो॒ नपा॑तम॒पां कृ॑णुध्वं॒ प्र मा॒तरा॑ रा॒स्पिन॒स्या॒योः ॥ ४ ॥
१३७५ आ वो॑ रु॒वण्यु॑मौशि॒जो हु॒वध्यै॒ घोषे॑व॒ शंस॒मर्जु॑नस्य॒ नंशे॑ ।
प्र वः॑ पू॒ष्णे दा॒वन॒ आँ अच्छा॑ वोचेय व॒सुता॑तिम॒ग्नेः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१३७३] (वसर्हा) अन्धकारका नाश करके दिनका उदय करानेवाला तथा (परिज्मा) चारों ओर जानेवाला सूर्य (नः ममत्तु) हमें आनंदित करे। (अपां वृषण्वान् वातः) जलोंको बरसानेवाला वायु (ममत्तु) हमें आनंद देवे। (इन्द्रापर्वता) इन्द्र और मेघ (युवं नः) तुम्हें और हमें (शिशीतं) उन्नत करें, (तत्) इसी प्रकार (विश्वे देवाः) सभी देव (नः वरिवस्यन्तु) हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ ३ ॥

[१३७४] (औशिजः) उशिक्‌का पुत्र मैं (मे यशसा) अपनी कीर्ति और अन्नको बढानेके लिए तथा (श्वेतनायै) तेज प्राप्त करनेके लिए (व्यन्ता) सर्वत्र गमन करनेवाले (पान्ता) पालन करनेवाले अश्विनौकी (हुवध्यै) प्रार्थना करता हूँ। हे मनुष्यो ! (वः) तुम (अपां नपातं) कर्मोंको नष्ट न करनेवाले अग्निके लिए (प्र कृणुध्वं) उत्तम स्तुति करो तथा (रास्पिनस्य आयोः) कलकल शब्द करते हुए बहनेवाले जलोंके (मातरा) मातापितारूप द्यावपृथिवीकी भी (प्र) स्तुति करो ॥ ४ ॥

[१३७५] हे देवो ! (घोषा इव) जैसे बिजली गरजती है, उसी प्रकार (अर्जुनस्य नंशे) अपने दुःखोंके नाशके लिए (औशिजः) उशिक्‌का पुत्र मैं (वः हुवध्यै) तुम्हें बुलानेके लिए (रुवण्युं शंसं) शब्दसे युक्त स्तोत्रोंको (आ वोचेय) बोलता हूँ। (वः) तुम्हारे साथ रहनेवाले तथा (दावने) धन देनेवाले (पूष्णे) पूषा देवकी भी (आ) स्तुति करता हूँ। तथा (अग्नेः वसुतातिं आ) अग्निके धनसंग्रहका भी वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ— पत्नी जिस प्रकार अपने पतिको सदा उन्नतिशील देखना चाहती है और उन्नतिके कार्यमें उसकी सहायता सदा किया करती है, उसी प्रकार उन्नतिके अनेक मार्गोंको जाननेवाली उषा और रात्री हमें उन्नत करें। उषा और रात्रीमें उषा सदा सोनेके कलाबतूवाले कपडे धारण करती है और सूर्यकी शोभासे युक्त रहती है। उषाकी सुनहली किरणें ही उसके कपडे हैं और उसके बाद उदय होनेवाला सूर्य उषाको अपनी शोभा प्रदान करता है। इसी तरह पत्नी अपने पतिकी सदा सहायता करे तथा स्वयं भी उत्तम वस्त्र पहन कर शोभासे युक्त बनी रहे और पतिके साथ संयुक्त होकर पतिकी शोभासे सुशोभित हो ॥ २ ॥

अन्धकारका नाश करने और दिन लानेवाला सर्वत्र संचारी सूर्य हमें सब सुख प्रदान करे। वायु जल बरसाकर हमें आनंद देवे। इन्द्र और मेघ हमें उन्नत करें तथा सभी देवगण हमें हर तरहसे सुखी रखें। मनुष्योंको अपने जीवन सुखमय बनानेके लिए देवोंकी सहायता अवश्य प्राप्त करनी चाहिए ॥ ३ ॥

अनेक प्रकारकी कामना करनेवाले मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी इच्छाओंको प्राप्त करनेके लिए सब देवोंके शरणमें जाए और उनकी प्रार्थना करे। अश्विनौ सब जगह जाकर लोगोंका पालन करनेवाले हैं। अग्नि कर्मोंका प्रेरक है। द्युलोक और पृथिवी जल बरसाते हैं, इस प्रकार सभी देव मनुष्योंकी सहायता करते और उसे यश एवं अन्नादि ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥४॥

देवोंकी श्रद्धापूर्वक स्तुति करनेसे हर प्रकारका दुःख दूर होता है। ये देव धन देनेवाले और पोषण करनेवाले हैं। इनके पास धनका बहुत बडा संग्रह है। पर इनका धन संग्रह दान करनेके लिए ही है। इसी तरह मनुष्य धन संग्रह अवश्य करे, पर उनका धन संग्रह अपने स्वार्थके लिए न होकर निर्धनोंको दान करनेके लिए हो। धनकी उत्तम उपयोगिता दानमें ही है ॥ ५ ॥

१३७६ श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६ ॥
१३७७ स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥ ७ ॥
१३७८ अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥ ८ ॥

अर्थ—[१३७६] (मे हवं, मित्रावरुणा श्रुतं) मेरी प्रार्थनाको हे मित्रावरुणो ! तुम दोनों सुनो, (उत) और (सदने) गृहमें भी (विश्वतः सीं श्रुतं) चारों ओरसे होनेवाली इस स्तुतिको सुनो । (श्रोतुरातिः) जिसका दान सुप्रसिद्ध है, ऐसा (सुश्रोतुः सिन्धुः) प्रार्थनाओंको ध्यान देकर सुननेवाला सिन्धु (अद्भिः सुक्षेत्रा) जलोंसे उत्तम खेतोंको सींचता हुआ (नः श्रोतु) हमारी प्रार्थना सुने ॥ ६ ॥

[१३७७] (वरुण मित्र) हे वरुण और मित्र ! (वां स्तुषे) मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं । (पृक्षया मेषु) जहां घोडे बहुत तेज दौडाये जाते हैं, ऐसे संग्रामोंमें (पज्रे) शक्तिशालीको ही (गवां शता) अनेक गायोंका (सा रातिः) वह दान प्राप्त होता है । मित्रादि देव भी (श्रुतरथे प्रियरथे) उस प्रसिद्ध एवं उत्तम रथवाले शूरमें (सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासः) शीघ्र ही पुष्टि स्थापित करते हुए (अग्मन्) जाते हैं ॥ ७ ॥

१ पृक्षयामेषु पज्रः शता गवां— जहां घोडे बहुत दौडाये जाते हैं, ऐसे संग्रामोंमें शूरवीर ही गौओंको प्राप्त कर सकता है ।

[१३७८] (यः वाजिनीवान् जनः) जो बलवान् मनुष्य (अश्वावतः रथिनः पज्रेभ्यः) घोडों और रथोंवाले शूरवीरोंको (मह्यं सूरिः) मेरी सुरक्षाके लिए प्रेरित करता है, (अस्य महिमघस्य राधः स्तुषे) ऐसे इस महिमा युक्त ऐश्वर्यवालेके धनकी मैं प्रशंसा करता हूँ । (सुवीराः नहुषः) उत्तम वीरतासे युक्त हम सब मनुष्य (सचा सनेम) एक साथ संगठित हों ॥ ८ ॥

१ यः वाजिनीवान् जनः अस्य महिमघस्य राधः स्तुषे— जो बलवान् होता है, उस महान् ऐश्वर्यवाले मनुष्यके धनकी सब प्रशंसा करते हैं ।

२ सुवीराः नहुषः सचा सनेम— उत्तम वीरतासे युक्त मनुष्य संगठित हों ।

भावार्थ—मित्रके समान हितकारी और वरणीय देव हमारी प्रार्थना सुनें तथा यज्ञगृहमें चारों ओरसे होनेवाली स्तुति भी सुनें । जलके देवता सिन्धुका दान सर्वत्र सुप्रसिद्ध है । वह जल बरसाकर जलदान द्वारा लोगोंपर जो उपकार करता है, वह सर्वत्र सुप्रसिद्ध है । वह हमारी प्रार्थना सुने और खेतोंको यथासमय जलसे सींचकर हमारे खेतोंको उपजाऊ बनावे ॥६॥

भयानक संग्रामोंमें केवल वहीं विजय प्राप्त कर सकता है, जो वीर हो और देवोंका भक्त हो । वही जय प्राप्तकर अनेकों ऐश्वर्य प्राप्तकर सकता है । तथा देव भी उन्हींकी सहायता करते हैं जो श्रुतरथ और प्रियरथ हो, अर्थात् जिसका रथ प्रसिद्ध हो और जो अपने रथको प्यार करते हो अर्थात् जो बहुत संग्रामशील और वीर हो, उसीकी देवगण भी सहायता करते हैं और उसीको बलशाली तथा पुष्ट बनाते हैं ॥ ७ ॥

जो बलवान् वीर अपने अनुयायियोंकी रक्षा करता है, उसके बलकी सर्वत्र सब लोग प्रशंसा करते हैं । बलका उपयोग कमजोरोंकी और अनुयायियोंकी सुरक्षाके लिए ही हो । तभी उसका बल सर्वत्र प्रशंसित होता है । सभी मनुष्य संगठित होकर अपना बल बढावें । संगठनमें रहनेसे मनुष्योंपर कोई भी शत्रु सहसा आक्रमण नहीं कर सकता । यदि कोई करता भी है तो संगठनशक्तिके द्वारा उसका मुकाबला किया जा सकता है । अतः सभी मनुष्य संगठित होकर अपनी शक्ति बढावें ॥ ८ ॥

१३७९ जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥ ९ ॥
१३८० स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥ १० ॥
१३८१ अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥

अर्थ— [१३७९] हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण ! (यः जनः) जो मनुष्य (अभिध्रुक्) तुमसे द्रोह करता है, (अक्ष्णयाध्रुक्) टेढे मार्ग पर चलता हुआ तुमसे द्रोह करता है । अथवा (वां) तुम दोनोंके लिए (अपः न सुनोति) सोमरस नहीं निचोडता, (सः) वह (हृदये स्वयं यक्ष्मं नि धत्ते) अपने हृदयमें अनेक तरहके रोगोंको धारण करता है । पर (यत् ऋतावा) जो सत्यमार्ग पर चलने वाला मनुष्य (होत्राभिः ईं) मंत्रों द्वारा यज्ञको करता है, वह (आप) आपकी कृपा प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

१ यः जनः अभि ध्रुक्, अक्ष्णयाध्रुक्, अपः न सुनोति, हृदये यक्ष्मं नि धत्ते— जो मनुष्य देवोंसे द्रोह करता है, टेढेमार्गसे चलता है और यज्ञ नहीं करता, वह अनेक तरहके रोगोंको अपने हृदयमें धारण करता है ।

२ यत् ऋतावा होत्राभिः ईं आप— जो सत्य मार्ग पर चलता हुआ मंत्रोंसे यज्ञ करता है, वह देवोंकी कृपा प्राप्त करता है ।

[१३८०] हे देवो ! जो तुम्हारी भक्ति करता है (सः) वह (दंसुजूतः) उत्तम अश्वोंसे प्रेरित होकर (नरां शर्धतरः) शत्रुओंको बहुत मारनेवाला (गूर्तश्रवाः) अत्यन्त तेजस्वी (विसृष्टरातिः) याचकोंको दान देनेवाला, और (शूरः) शूरवीर होकर (विश्वासु पृत्सु) सभी संग्रामोंमें (व्राधतः नहुषः) बडेसे बडे शत्रुओंको भी (बाळ्हसृत्वा) बुरी तरह विनष्ट करता हुआ (सदं इत् याति) हमेशा आगे बढता है ॥ १० ॥

[१३८१] (नभोजुवः) आकाशको व्यापनेवाले देवो ! (यत्) जब तुम (महिना) अपनी शक्तिसे (निरवस्य राधः) लोगोंका अहित करनेवाले दुष्टका धन (प्रशस्तये रथवते) प्रशंसनीय और उत्तम रथवाले वीरको देते हो, तब हे (राजानः मन्द्राः) तेजस्वी और आनन्दमय देवो ! तुम (अमृतस्य सूरेः नहुषः) अमृतरूपी यज्ञको प्रेरणा देनेवाले मनुष्यकी (हवं श्रोत) प्रार्थना सुनो (अध) इसके बाद (ग्मन्त) जाओ ॥ ११ ॥

१ निरवस्य राधः प्रशस्तये रथवते— प्रजाका अहित करनेवाले दुष्टका धन छीनकर प्रशंसनीय और उत्तम रथवाले वीरको देना चाहिए ।

भावार्थ— ये देव सबका हित करते हैं, फिर भी जो इनसे निष्कारण द्वेष करता है, टेढे मार्गसे चलता है और यज्ञ नहीं करता, वह अनेक मानसिक रोगोंसे ग्रस्त होता है । ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि मानसिक चिन्ताओंसे वह सदा पीडित रहता है । वह अपनेसे बडोंसे ईर्ष्या करता है, अपने समानस्तरवालोंसे द्वेष करता है और अपने निम्नस्तरके लोगों पर क्रोध करता है । पर जो भगवान्का भजन करते हैं और हमेशा सत्यमार्ग पर चलते हैं, वे हमेशा आनंद और प्रसन्नतामें रहता हुआ मानसिक चिन्ताओं और रोगोंसे परे रहता है ॥ ९ ॥

जो देवोंकी भक्ति करता है वह अश्वादियोंसे युक्त होकर भयंकर शत्रुओंका भी विनाशक होता है । वह याचकोंकी उदारतापूर्वक सहायता करता है तथा सभी संग्रामोंमें शत्रुओंका नाश करता हुआ आगे बढता जाता है । देवोंका भक्त कभी भी डरपोक और पीछे हटनेवाला नहीं होता । क्योंकि देव सदा उसकी सहायता करते हैं । इसलिए बडेसे बडे और भयंकरसे भयंकर शत्रु भी उसके सामने नहीं ठहर सकते ॥ १० ॥

आकाशको भी अपने सामर्थ्यसे ढक देनेवाले अर्थात् अत्यन्त सामर्थ्यशाली, तेजस्वी तथा आनन्द फैलानेवाले वीरोंको चाहिए कि वे अपने धनके घमंडमें आकर प्रजाका अहित और उन पर अत्याचार करनेवाले दुष्टोंका सारा धन छीनकर प्रजाओंके हित करनेवाले तथा उनकी रक्षा करने वीरको देवें । तथा यज्ञ करनेवालोंकी प्रार्थना सुनकर उनकी रक्षा करनेके लिए जाएं ॥ ११ ॥

१३८२ एतं शर्धं धाम यस्य सूरे रित्यवोचन् दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥ १२ ॥
१३८३ मन्दामहे दशतयस्य धासे र्द्विर्यत् पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥ १३ ॥
१३८४ हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्ण स्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरो स्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥
१३८५ चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्व स्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥ १५ ॥

अर्थ— [१३८२] (यस्य सूरेः) जिस विद्वान्‌के द्वारा (दशतयस्य नंशे) अन्नको खानेके लिए हम बुलाये गए हैं, (एतं शर्धं धाम) उसे हम बलवान् बनायें (इति अवोचन्) इस प्रकार देवोंने कहा। (येषु) जिन देवोंमें (द्युम्नानि वसुतातिः रारन्) तेजस्वी ऐश्वर्य रमते हैं, (विश्वे) वे सब देव (प्रभृथेषु) यज्ञोंमें (वाजं सन्वन्तु) अन्न प्रदान करें ॥ १२ ॥

[१३८३] (यत्) क्योंकि (द्विपंच अन्ना बिभ्रतः) दस तरहके अन्न लेकर (यन्ति) मनुष्य आते हैं, अतः (दशतयस्य धासेः मन्दामहे) उन दस प्रकारके अन्नोंकी हम प्रशंसा करते हैं। (इष्टाश्वः इष्टरश्मिः एते ईशानासः) जो इच्छानुसार घोडोंको काबूमें रख सकते हैं, ऐसे (तरुषः नॄन्) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले नेताओंका (किं ऋंजते) कोई क्या अहित कर सकता है ? ॥ १३ ॥

[१३८४] (विश्वे देवाः) सभी देव (नः) हमें (हिरण्यकर्णं मणिग्रीवं अर्णः) कानोंमें सोनेके आभूषण पहने हुए तथा गलेमें मणियोंको पहने हुए सुन्दर रूपवाले पुत्रको (वरिवस्यन्तु) देवें। (अर्यः) ये श्रेष्ठ देव (जग्मुषीः गिरः) मुखसे निकलनेवाली स्तुतियोंकी तथा (उस्राः) घृतादि हवियोंकी (अस्मे उभयेषु) हमारे दोनों यज्ञोंमें (सद्यः चाकन्तु) शीघ्र ही इच्छा करें ॥ १४ ॥

[१३८५] (जिष्णोः मशर्शारस्य) विजयशील तथा शत्रुओंको मच्छरके समान मारनेवाले वीरके (चत्वारः) चार (शिश्वः) पुत्र तथा (आयवसस्य राज्ञः त्रयः) अन्नके स्वामी राजाके तीन पुत्र (मा) मुझे कष्ट देते हैं, इसलिए (मित्रावरुणा) हे मित्रावरुणो ! (वां) तुम दोनोंका (दीर्घ अप्साः स्यूमगभस्तिः रथः) विस्तृत रूपवाला तथा सुखकारक किरणोंवाला रथ (सूरः न) सूर्यके समान (अद्यौत्) प्रकाशित हो ॥ १५ ॥

भावार्थ— देव जिसके यहां रमते हैं और आनंदित होते हैं, उसे ये देव बलवान् और ऐश्वर्यवान् बनाते हैं। इन्हीं देवोंमें सब तरहके तेजस्वी ऐश्वर्य रहते हैं। ये देव प्रत्युपकारी हैं। इनका जो हित करता है, उसका भी हित ये देव अवश्य करते हैं ॥ १२ ॥

मनुष्य अपने सामने जो भी अन्न आए, उसे प्रशंसा करते हुए खाए। मनुष्य कभी भी अन्नकी निंदा न करे, क्योंकि अन्न मुख्य देव है और वही जीवनका आधार है। अतः सदा प्रसन्न चित्तसे प्रशंसा करता हुआ अन्नका भक्षण करे। जो घोडों और लगामोंपर अच्छी तरह नियंत्रण करना जानते हैं, ऐसे शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले नेताओंका कोई क्या अहित कर सकता है ? अर्थात् जो शत्रुओंकी हिंसा करते हैं, उनकी सभी वीर सहायता करते हैं, कभी भी उनका अहित नहीं करते ॥ १३ ॥

सभी देव हमें उत्तम रूपवान् और सभी अलंकारोंसे युक्त सन्तानोंको देवें। तथा ये देव हमारे द्वारा बोली जानेवाली स्तुतियों और घृतादि हवियोंको स्वीकार करें ॥ १४ ॥

[१२३]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज । देवता- उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१३८६ पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यै-नं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादुर्या३ विहाया-श्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥

१३८७ पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद् युवतिः पुनर्भू-रोषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥

१३८८ यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥

---

[१२३]

अर्थ— [१३८६] (दक्षिणायाः पृथुः रथः अयोजि) इस दक्ष उषाका विस्तीर्ण रथ जोतकर तैयार हो चुका है। (एनं अमृतासः देवासः आ अस्थुः) इस रथपर अमर देव बैठ गये हैं। (विहायाः अर्या) विशेष श्रेष्ठ यह उषा (मानुषाय क्षयाय चिकित्सन्ती) मनुष्योंके सुखपूर्वक निवासके लिये यत्न करती हुई (कृष्णात् उत् अस्थात्) अत्यंत काले अन्धकारसे ऊपर उठी है, प्रकाशित हुई है ॥ १ ॥

[१३८७] (विश्वस्मात् भुवनात् पूर्वा अबोधि) सब प्राणियोंके पहिले यह उषा जागृत होती है, यह उषा (बृहती सनुत्री वाजं जयन्ती) बडा दान करनेवाली तथा धन जीतनेवाली है। वह (युवति) तरुणी (पुनः भूः) पुनः पुनः होनेवाली (पूर्वहूतौ प्रथमा उषाः) प्रथम हवन करनेके समय प्रथम यजनीय उषा (आ अगन्) आयी और (उच्चा व्यख्यत्) उच्च स्थानसे देखने लगी है ॥ २ ॥

[१३८८] हे (सुजाते देवि उषः) उत्तम कुलीन दिव्य उषा ! (मर्त्यत्रा) मनुष्योंका पालन करनेवाली तू (अद्य यत् भागं नृभ्यः विभजासि) आज जो धनका भाग मनुष्योंको देती है (अत्र) उस समय (दमूना सविता देवः) दान देनेवाला जगत्का उत्पन्न करनेवाला देव (नः सूर्याय अनागसः वोचाति) हम निष्पाप हैं ऐसा सूर्यके सामने कहे ॥ ३ ॥

भावार्थ— विजयशील तथा शत्रुओंको मच्छरोंके समान मारनेवाला वीर तथा अन्नका स्वामी राजा एवं उनके पुत्र प्रजाओंको कष्ट न दें। यदि कभी ये राजा एवं उनकी सन्तानें प्रजाओंपर अत्याचार करने लगें, तो मित्रवत् प्रजाओंका हित करनेवाला तथा लोगों द्वारा वरणीय राजाका सुन्दर और सुखकारक रथ इन अत्याचारी राजाओंको कुचलता जाए, तथा सूर्यके समान प्रकाशित हो। यह प्रजातंत्र है। वैदिककालीन प्रजातंत्रीय शासनमें अत्याचारी राजाको पदच्युत करके उसकी जगह उत्तम और श्रेष्ठ राजाको बिठानेका प्रजाको पूरा अधिकार था ॥ १५ ॥

सब कार्य दक्षतासे करनेवाली उषाका विस्तृत और विशाल रथ तैय्यार हो गया है, और उस पर अमर देव आकर बैठ गए हैं। यह श्रेष्ठ उषा मानवोंके सुखदायी निवासके लिए ज्ञानपूर्वक यत्न करती है। उसने अपने आपको अन्धकारसे ऊपर उठाया है। यही मनुष्योंका कर्तव्य है, वे अज्ञानान्धकारसे अपने आपको ऊपर उठावें। विपत्तिसे ऊपर उठकर सम्पत्तिको प्राप्त करें और दूसरोंका निवास सुखपूर्वक हो ऐसा प्रयत्न करें ॥ १ ॥

यह उषा सब प्राणियोंसे पूर्व उठती है। यह बहुत दान करनेवाली उषा अन्न, बल तथा धनको जीत लेती है। सबसे पूर्व उठकर अपने कार्यमें लगनेसे अन्न प्राप्त होता है, बल बढता है और प्रयत्न करनेसे धन मिलता है। यह बारबार आनेवाली तरुणी स्त्री उषा सबसे प्रथम स्थानमें विराजमान होती है और उच्च स्थानसे सबको देखती है ॥ २ ॥

हे कुलीन उषा देवी ! मनुष्योंका तारण करती हुई तू मनुष्योंके लिए जिस समय धनका भाग देती है, उस समय देव सूर्यके सामने हमें निष्पाप बतावें। मनुष्योंका तारण करनेके लिए उन्हें धनका योग्य भाग देना चाहिए। आवश्यक भोग साधनोंके अभावमें मनुष्य सुखसे नहीं रह सकेंगे इस प्रकार धनका बंटवारा ही मनुष्योंको सुखी और निष्पाप बना सकता है। आवश्यक भोगके न मिलने पर मनुष्य पापमें प्रवृत्त होता है ॥ ३ ॥

१३८९ गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागा दग्रमग्रमिद् भजते वसूनाम् ॥ ४ ॥
१३९० भगस्य स्वसा वरुणस्य जामि रुषः सूनृते प्रथमा जरस्व।
पश्चा स दध्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥ ५ ॥
१३९१ उदीरतां सूनृता उत् पुरन्धी रुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हा विष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥ ६ ॥
१२९२ अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाक रद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥ ७ ॥

अर्थ—[१३८९] (अहना दिवे दिवे) उषा प्रतिदिन (गृहं गृहं अच्छ याति) घर घर जाती है और (नाम अधिदधाना) यश अधिक धारण करती है। (सिषासन्ती द्योतना शश्वत् आगात्) हविर्भागका सेवन करनेवाली यह प्रकाशती हुई उषा प्रतिदिन आती है और (वसूनां अग्रं अग्रं इत् भजते) धनोंमें श्रेष्ठ भागका सेवन करती है ॥ ४ ॥

[१३९०] (सूनृते उषः) उत्तम भाषण करनेवाली उषा ! तू (भगस्य स्वसा) भग देवताकी बहिन और (वरुणस्य जामिः) वरुणकी बहिन है ऐसी तू (प्रथमा जरस्व) पहिले स्तुत होनेवाली हो। (पश्चा) इसके नंतर (यः अघस्य धाता) जो पापका धारण करनेवाला पापी शत्रु है (स दध्या) वह पकडा जाये और (तं दक्षिणया रथेन जयेम) उसे तेरी दक्षतासे तथा रथसे हम पराजित करें ॥ ५ ॥

[१३९१] (सूनृता उदीरतां) स्तोत्र कहे जायें, (पुरंधीः उत्) विशाल बुद्धियां कार्यमें लगें, (अग्नयः शुशुचानासः) अग्नि प्रदीप्त होकर (उत् अस्थुः) जलती जायें। (विभातीः उषसः) प्रकाशती उषाएँ (तमसा अप गूळ्हा) अन्धकारसे ढंके (स्पार्हा वसूनि) स्पृहणीय धन (आविष्कृण्वन्ति) प्रकट करती रहें ॥ ६ ॥

[१३९२] (विषुरूपे अहनी संचरेते) विरुद्ध रूपवाली रात्री और उषा क्रमसे संचार कर रही हैं। (अन्यत् अप एति) रात्रीका अन्धकार चला जाता है और (अन्यत् अभि एति) दिनका प्रकाश आ जाता है। (परिक्षितोः अन्या) इन घूमनेवालोंमेंसे एक रात्री (तमः गुहा अकः) अन्धकारसे सबको आच्छादित करती है, और दूसरी उषा (शोशुचता रथेन अद्यौत्) तेजस्वी रथसे प्रकाशती है ॥ ७ ॥

भावार्थ— हविर्भाग लेने उषा प्रतिदिन आती है। कीर्तिको धारण करती है, स्तुति सुनती है और घर घर पहुंचती है, घर घरमें प्रकाश करती है। धनोंमें श्रेष्ठ धन प्राप्त करती है स्त्री भी प्रतिदिन हवन करे, यश कमावे, घरमें प्रकाश करे ॥ ४ ॥

हे उत्तम भाषण करनेवाली उषा ! तू भगकी और वरुणकी बहिन है। तू सब देवोंमें पहिली है, तू स्तुति प्रारंभ कर। बादमें जो पापी हैं उसे दक्षतापूर्वक चलनेवाले रथसे उसे पकडें। स्त्री उत्तम और मीठा भाषण करे, सौभाग्यवाली हो, दिव्य भाववालोंमें पहिली हो, ईश्वरकी भक्ति करे, जो पापी हो उसे पकड कर दण्ड दिया जाए ॥ ५ ॥

मनुष्य सदा सत्यवाणी ही बोलें। अग्नि प्रदीप्त करें। हवन करें। तब उनके लिए तेजस्वी उषा अन्धकारमें छिपे हुए धन प्रकट करेगी। उषःकाल स्वास्थ्यदायक है। अतः इस समय उठकर हवन करना चाहिए ॥ ६ ॥

विरुद्ध रूपरंगवाली रात्री और उषा क्रमसे संचार करती हैं एक चली जाती है, तब दूसरी आती है। इन दोनोंमेंसे एक अन्धकारसे सबको ढक देती है और दूसरी अपने तेजसे सबको प्रकाशित करती है ॥ ७ ॥

*

१३९३ सदृशीर॒द्य सदृशी॒रिदु॒ श्वो दी॒र्घं स॑चन्ते॒ वरु॑णस्य॒ धाम॑ ।
अ॒न॒व॒द्यास्त्रिं॒शतं॒ योज॑ना॒न्येकै॑का॒ क्रतुं॒ परि॑ यन्ति स॒द्यः ॥ ८ ॥
१३९४ जा॒न॒त्यह्नः॑ प्रथ॒मस्य॒ नाम॑ शु॒क्रा कृ॒ष्णाद॑जनिष्ट श्वि॒तीची॑ ।
ऋ॒तस्य॒ योषा॒ न मि॑नाति॒ धामा॒हर॑हर्निष्कृ॒तमा॒चर॑न्ती ॥ ९ ॥
१३९५ क॒न्ये॑व त॒न्वा॒३ शाश॑दानाँ॒ एषि॑ देवि दे॒वमिय॑क्षमाणम् ।
सं॒स्मय॑माना युव॒तिः पु॒रस्ता॑दा॒विर्वक्षां॑सि कृणुषे विभा॒ती ॥ १० ॥
१३९६ सु॒सं॒का॒शा मा॒तृमृ॑ष्टेव॒ योषा॒विस्त॒न्वं॑ कृणुषे दृ॒शे कम् ।
भ॒द्रा त्वमु॑षो वित॒रं व्यु॑च्छ॒ न तत् ते॑ अ॒न्या उ॒षसो॑ नशन्त ॥ ११ ॥

अर्थ— [१३९३] (अद्य सदृशीः) आज भी ये समान हैं और (श्वः उ सदृशीः इत्) कल भी ये उषाएं समान ही होंगी । (वरुणस्य दीर्घं धाम) वरुणके विस्तीर्ण स्थानकी (अनवद्याः सचन्ते) ये शुद्ध उषायें सदा सेवा करती हैं । (एका एका) एक एक उषा (त्रिंशतं योजनानि) तीस योजन (सद्यः क्रतुं परियन्ति) तत्काल ही कर्म प्रवर्तक सूर्यके आगे चलती हैं ॥ ८ ॥

[१३९४] (अह्नः प्रथमस्य नाम जानती) दिनके प्रथम भागका यश जाननेवाली (शुक्रा श्वितीची) शुद्ध और तेजस्विनी उषा (कृष्णात् अजनिष्ट) रात्रीके काले अन्धकारमेंसे प्रकट होती है । यह (योषा) स्त्री उषा (ऋतस्य धाम न मिनाति) सत्यके व्रतको तोडती नहीं और (अहः अहः निष्कृतं आचरन्ती) प्रतिदिन नियत स्थानपर आती और नियमपूर्वक रहती है ॥ ९ ॥

[१३९५] हे (देवी) उषा देवी ! (तन्वा शाशदाना कन्या इव) शरीरको स्पष्ट दिखानेवाली कन्याके समान (इयक्षमाणं देवं एषि) इष्ट सुख देनेवाले पति देवके पास तू जाती है । (युवतिः संस्मयमाना) तरुणी स्त्री हंसती हुई और (पुरस्तात्) पतिके सन्मुख (विभाति) चमकती हुई (वक्षांसि आविः कृणुसे) अपनी छाती प्रकटरूपसे दिखाती है ॥ १० ॥

[१३९६] (मातृमृष्टा योषा इव) माता द्वारा पवित्र बनी तरुणी स्त्रीके समान (सुसंकाशा) तेजस्विनी तू (कं तन्वं दृशे आविः कृणुषे) अपने सुन्दर शरीरको लोगोंको दिखानेके लिये प्रकट करती है । हे (उषः) उषा ! (त्वं भद्रा वितरं व्युच्छ) तू कल्याण करनेवाली होकर दूरतक प्रकाशती रह । (ते तत् अन्याः उषसः न नशन्त) तेरा वह तेज अन्य उषाएं प्राप्त नहीं कर सकेंगी ॥ ११ ॥

भावार्थ— जैसी उषा आज आई है, वैसी ही कल भी आएगी । यह अनिन्द्य उषा वरुणके दीर्घ स्थानकी सेवा करती है । एक एक उषा तीस योजनोंकी परिक्रमा करती है । ये उषायें सूर्यके आगे आगे चलती हैं ॥ ८ ॥

प्रथम दिनको जाननेवाली गौरवर्णा शुभ्र उषा काली रात्रिके काले अन्धकारसे उत्पन्न हुई है । चूंकि रातके बाद उषा आती है अतः मानों उषा रात्रिमेंसे उत्पन्न होती है । यह उषा नियमानुसार चलती है । सत्यव्रतका यह उषा उल्लंघन नहीं करती और प्रतिदिन निश्चित समयपर आती है ॥ ९ ॥

हे दिव्य उषा ! तू अपने शरीरको सुन्दर बनाकर और सजा धजा कर सुन्दर कन्याके समान अपने पूजनीय पति देवके पास जाती है । हंसती हुई तरुण स्त्री अपने पतिके साथ प्रसन्न रहती है । यह एक तरुण स्त्रीका वर्णन है, जो रंगरूपसे सुंदर है शरीरसे हृष्टपुष्ट है, सजी हुई है, अपने पति पर प्रेम करती है । साथ ही पूज्य भाव भी धारण करती है ॥ १० ॥

मातासे परिशुद्धकी गई तरुणीके समान सुन्दर बनी हुई यह तरुणी उषा अपने शरीरके अवयवोंको बतानेके लिए प्रकट करती है । हे उषा ! तू मनुष्योंका कल्याण करती हुई अधिक प्रकाशित हो । अन्य उषायें तेजस्वितामें इसकी बराबरी नहीं कर सकतीं । रात्री माता है जो अपनी पुत्री उषाको सजा धजाकर उसके प्रिय पति सूर्यके पास भेजती है ॥ ११ ॥

१३९७ अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥ १२ ॥
१३९८ ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ॥

[१२४]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१३९९ उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै ॥ १ ॥
१४०० अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥

अर्थ— [१३९७] (अश्वावतीः गोमतीः) घोडोंसे और गौओंसे युक्त (विश्ववाराः) सबके द्वारा स्वीकारने योग्य (सूर्यस्य रश्मिभिः यतमानाः) सूर्यकी किरणोंसे अन्धकार दूर करनेके लिए यत्न करनेवालीं (भद्रा नाम वहमाना उषासः) कल्याण करनेका यश धारण करनेवाली उषाएं (परा च यन्ति) दूर जाती हैं और (पुनः आयन्ति च) फिर आती हैं ॥ १२ ॥

[१३९८] हे (उषः) उषा ! (ऋतस्य रश्मिं अनुयच्छमाना) सूर्यकी किरणोंके अनुकूल रहनेवाली तू (अस्मासु भद्रं भद्रं क्रतुं धेहि) हमारे अन्दर कल्याणकारक कर्म करनेकी बुद्धि स्थापित कर। तू (सुहवा नः अच्छ व्युच्छ) बुलानेपर हमारे सामने प्रकाशती रह । (अस्मासु मघवत्सु च रायः स्युः) हमारे और धनिकोंमें पर्याप्त धन रख ॥ १३ ॥

[१२४]

[१३९९] (समिधाने अग्नौ) प्रज्वलित अग्नि होनेपर (उषा उच्छन्ती) उषा अन्धकार दूर करती है और (उद्यन् सूर्यः) उदित हुए सूर्यके समान (उर्विया ज्योतिः अश्रेत्) विशाल तेज धारण करती है । (अत्र सविता देवः नः अर्थं) यहां सूर्य देव हमारे लिए आवश्यक धन तथा (द्विपत् चतुष्पद्) द्विपाद और चतुष्पादोंको (इत्यै प्र प्र असावीत्) गमन करनेके लिए मार्ग कर देवे ॥ १ ॥

[१४००] (दैव्यानि व्रतानि अमिनती) दिव्य व्रतोंका नाश न करनेवाली, परंतु (मनुष्या युगानि प्रमिनती) मनुष्योंके आयुका नाश करनेवाली (ईयुषीणां शश्वतीनां उपमा) सदा आती रही उषाओंके अन्तमें आनेवाली तथा (आयतीनां प्रथमा) आनेवाली उषाओंमें पहिली यह (उषा व्यद्यौत्) प्रकाशती है ॥ २ ॥

भावार्थ— घोडोंवाली और गौओंवाली तथा सबके द्वारा आदर करने योग्य यह उषा सूर्य किरणोंके साथ खेलती है, अन्धेरेको दूर करती है । यह कल्याण करनेवाली उषा दूर जाती सी दिखाई देती है, पर फिरसे उसी स्थान पर आ जाती है ॥ १२ ॥

सूर्य किरणोंको देनेवाली, हमारे कल्याणकारी यज्ञका सम्पादन करनेवाली यह उषा प्रकाशित होती रहे और वह हमें धन प्रदान करे ॥ १३ ॥

अग्निके प्रज्वलित होनेपर उषा आती है और अन्धकारको दूर करती है । सूर्य अधिक तेजस्वी होता है । यह सविता देव हमें धन प्राप्त करने और द्विपाद् और चतुष्पादोंको जानेके लिए मार्ग बताये । अर्थात् उषाके आनेके बाद हमारे मनुष्यों, गौओं और घोडोंको आनेजानेका मार्ग खुला हो जाए । बर्फके पडनेसे मार्ग बंद हो जाता है और उषःकालमें सूर्योदयके होने पर वह बर्फ पिघल जाती है और आने जानेके लिए मार्ग साफ हो जाता है ॥ १ ॥

यह उषा प्रतिदिन आकर मनुष्योंकी आयु कम करती है, अर्थात् प्रतिदिन इसके उदयके साथ ही मनुष्यकी आयुके एक एक दिन घटते जाते हैं । इसी लिए उषाको यहां मानवी आयुकी हिंसा करनेवाली बताया है । यह उषा गत उषाओंमें अन्तिम और आनेवाली उषाओंमें प्रथम है ॥ २ ॥

१४०१ एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥
१४०२ उषो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥
१४०३ पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥
१४०४ एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४०१] (एषा दिवः दुहिता) यह द्युलोककी पुत्री (ज्योतिः वसाना समना) ज्योतिरूप वस्त्र पहननेवाली उत्तम मनवाली (पुरस्तात् प्रति अदर्शि) पूर्व दिशामें दीखने लगी है । यह उषा (ऋतस्य पन्थां साधु) सत्यके मार्गसे ठीक तरह जैसी (प्रजानती इव अनु एति) विदुषी स्त्री जाती है वैसी जाती है । तथा (दिशः न मिनाति) दिशाओंमें यह किसी तरह बाधा नहीं डालती ॥ ३ ॥

[१४०२] (शुन्ध्युवः वक्षः न) शुद्ध स्वच्छ छातीके समान (उषो अदर्शि) समीपसे ही उषा दीखती है । उस उषाने (नो-धा इव प्रियाणि आविः अकृत) नवीन वस्तुका धारण करनेवालेके समान अपने प्रिय हेतु प्रकट किये हैं । (अद्मसत् न ससतः बोधयन्ती) घरमें रहनेवाली स्त्री जैसी सोनेवालोंको जगाती है, वैसी वह उषा (आ ईयुषीणां शश्वत्तमा) आनेवालोंमें निश्चयसे प्रथम आनेवाली (पुनः आ अगात्) पुनः आगयी है ॥ ४ ॥

[१४०३] (अप्त्यस्य रजसः पूर्वे अर्धे) व्यापक अन्तरिक्ष लोकके पूर्व अर्धमें (गवां जनित्री केतुं प्र अकृत) किरणोंको प्रकट करनेवाली उषाने प्रकाश किया है । (पित्रोः उपस्था) द्यावा पृथिवीके समीप रहकर (उभा आपृणन्ती) इन दोनों लोकोंको प्रकाशसे भरपूर भरनेवाली उषा (वितरं वरीयः विप्रथते उ) विशेष श्रेष्ठ प्रकाशसे आकाशको भर देती है ॥ ५ ॥

[१४०४] (एषा एव इत्) यह उषा (पुरुतमा) विस्तीर्ण होती हुई (कं दृशे) सुखके अनुभूतिके लिये जिस तरह (अजामिं न परि वृणक्ति) विजातीयको त्यागती नहीं वैसी ही (न जामिं) स्वजातीयको भी नहीं छोडती । दोनोंको प्रकाशित करती है । (अरेपसा तन्वा शाशदाना) निष्पाप शरीरसे प्रकाशित होती हुई यह उषा (न अर्भात् ईषते) न छोटेसे दूर भागती है और (न महः) न बडेको त्यागती है, पर दोनोंको (विभाती) प्रकाशित करती है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह स्वर्गीय कन्या उषा प्रकाशका रंगीन वस्त्र पहनती है और प्रतिदिन पूर्व दिशासे ऊपर आती हुई दिखाई देती है। यह हमेशा सत्यमार्गसे जाती है । जैसे विदुषी स्त्री उत्तम मार्गसे जाती है, उसी तरह दिशाओंमें किसी तरहसे बाधा न पहुंचाती हुई यह उषा आ रही है । जिसप्रकार यह उषा सत्यमार्गसे जाती हुई प्रकाशित होती है, उसी तरह स्त्रियां भी सत्यमार्ग पर चलती हुई तेजसे युक्त हों । सत्यमार्गसे चलने पर तेजकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

शुद्ध और स्वच्छ की हुई छाती जैसी सुन्दर यह उषा दीखती है अथवा जैसे एक सुन्दर गायक अपने आलापोंके सभी अवयवोंको स्पष्ट करता है, उसी तरह यह उषा अपने सुन्दर अवयवोंको प्रकट कर रही है । जैसे एक सुन्दरी तरुणी अपना सौन्दर्य प्रकट कर रही है, उसी तरह यह उषा अपनी प्रभा दिखा रही है । जिस प्रकार घरमें रहनेवाली स्त्री सोते हुए घरवालोंको जगाती है, उसी तरह उषा सबको जगाती है ॥ ४ ॥

व्यापक अन्तरिक्षलोकके पूर्व दिशाके भागमें किरणोंको उत्पन्न करनेवाली उषाने अपना ध्वज फहराया है। द्यावापृथिवी रूपी दोनों मातापिताओंके पास रहकर यह उषा श्रेष्ठ प्रकाशको अन्तरिक्षमें भरपूर भर देती है। अन्तरिक्षका सब स्थान उषाके प्रकाशसे भर जाता है ॥ ५ ॥

विस्तृत होनेवाली उषा स्वकीय या परकीयका भेद नहीं करती, सभी पर अपना प्रकाश समान रूपसे डालती है और सबके सामने अपनी सुन्दरता प्रकट करती है । सब पर अपना प्रकाश डालती है और उसे सुन्दर बनाती है । जो उसके सामने आता है, उसे सुन्दर बनाती है । निर्दोष शरीरसे प्रकाशित होनेवाली उषा छोटे या बडे अर्थात् किसीका भी त्याग नहीं करती । संपूर्ण विश्व बिना किसी भेद भावके प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

१४०५ अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥
१४०६ स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ८ ॥
१४०७ आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१४०५] (अभ्राता इव प्रतीची पुंसः एति) भ्रातृविहीन स्त्री जैसे पीछे हटकर अपने पितादिके पास जाती है, (धनानां सनये गर्तारुक् इव) धनोंकी प्राप्तिके लिये कोई स्त्री जैसे न्यायालयमें जाती है, (उशती सुवासा जाया पत्ये इव) पतिकी इच्छा करनेवाली उत्तम वस्त्र धारण करनेवाली स्त्री जैसे पतिके पास जाती है, यह (उषा) उषा (हस्रा इव अप्सः नि रिणीते) हंसती हुई स्त्रीके समान अपनी सुंदरताको प्रकट करती है ॥ ७ ॥

[१४०६] (स्वसा) एक बहन (ज्यायस्यै स्वस्रे) अपनी श्रेष्ठ बहनके लिये (योनिं आरैक्) स्थान खुला करती है । (अस्याः प्रतिचक्ष्य इव अप एति) इसके देखते ही वह स्वयं हट जाती है । (सूर्यस्य रश्मिभिः व्युच्छन्ती) सूर्यकी किरणोंसे अन्धेरेको दूर करती हुई यह उषा (समनगा इव व्राः अञ्जि अंक्ते) मिलकर जानेवाले विद्युत समूहके समान रूपसे प्रकाशती है ॥ ८ ॥

[१४०७] (आसां पूर्वासां स्वसॄणां) इन पूर्व समयके बहिनोंमें (अहसु अपरा) दिनोंके मध्यमें एक (पश्चात् पूर्वां अभि एति) पीछेसे आकर दूसरीके पीछेसे जाती है । (ताः उषासः प्रत्नवत् नव्यसीः) वे उषाएं पुरातनके समान नवीन भी (नूनं अस्मे रेवत् सुदिना उच्छन्तु) निश्चयपूर्वक हमारे लिये धन युक्त शुभ दिन प्रकाशित करती रहें ॥ ९ ॥

भावार्थ— भ्रातृहीन स्त्री जिस प्रकार निराश्रित होनेपर वापस अपने मातापिताके पास चली जाती है, अथवा जिस प्रकार कोई विधवा धन प्राप्त करनेके लिए न्यायालय चढकर जाती है, उसी तरह सुन्दर वस्त्र पहन कर पतिकी इच्छा करनेवाली यह उषा हंसती हुई अपनी सुन्दरताको प्रकट करती है । दिनके होते ही यह उषा समाप्त हो जाती है, अतः यह कभी दिन रूपी अपने भाईके साथ नहीं रहती । इसलिए दिन रूपी भाईके न होनेसे यह उषा अपने पिता द्युलोकके पास चली जाती है ॥ ७ ॥

छोटी बहिन अपनी बडी बहिनके आनेपर अपनी जगह खाली कर देती है । यहां रात्री छोटी बहिन और उषा बडी बहिन है । उषाके आते ही रात्री जगह खाली कर देती है । इस उषाको देखते ही रात्री दूर चली जाती है । सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशनेवाली यह उषा अच्छीतरह चलनेवाली किरणसमूहोंके समान सुरूपताको समानतया व्यक्त करती है ॥ ८ ॥

जो उषायें इससे पूर्व जा चूकी हैं, उनमेंसे अन्तिम उषाके पीछेसे एक एक नयी उषा क्रमसे आती है । इसलिए पूर्व की तरह ये आनेवाले नये दिन अर्थात् नयी उषायें हमारे लिए पर्याप्त धन ले आयें और उस धनके साथ ये उषायें प्रकाशती रहें ॥ ९ ॥

१४०८ प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० ॥
१४०९ अवेयमश्वैद् युवतिः पुरस्ताद् युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतु-र्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥
१४१० उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन् नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाम-मुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥
१४११ अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे ऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥

अर्थ—[१४०८] हे (मघोनि उषः) धनवती उषा ! तू (पृणतः प्रबोधय) दाताओंको जगा । (अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु) अज्ञानी दान न देनेवाले कंजूस बनिये सो जांये । हे (मघोनि) धनवाली उषा ! (मघवद्भ्यः रेवत् उच्छ) धनवानोंके लिये धनके साथ प्रकाश दे । हे (सूनृते) उत्तम रीतिसे बोलनेवाली उषा ! (जारयन्ती) सब प्राणियोंकी आयु कम करती हुई तू (स्तोत्रे रेवत् उच्छ) स्तोताके लिये धनके साथ प्रकाशित हो ॥ १० ॥

[१४०९] (इयं युवतिः पुरस्तात् अव अश्वैत्) यह तरुण स्त्री उषा पूर्व दिशामें बढ रही है । यह (अरुणानां गवां अनीकं युंक्ते) लाल रंगके घोडोंके समूहको अपने रथमें जोतती है । यह उषा (नूनं वि उच्छात्) निश्चयसे प्रकाशती है और (असति प्र केतुः) अन्धेरेमें प्रकाश करती है । (अग्निः गृहं गृहं उपतिष्ठाते) अग्नि घर घरमें प्रदीप्त होता है ॥ ११ ॥

[१४१०] (ते व्युष्टौ) तेरा प्रकाश होनेपर (वयः चित् वसतेः उत् अपप्तन्) पक्षिगण ऊपर भी उड जाते हैं । (ये नरः च पितुभाजः) जो मनुष्य हैं वे अन्नकी इच्छासे भ्रमण करते हैं । हे (देवि उषः) उषा देवी ! (अमा सते) घरमें रहनेवाले (दाशुषे मर्त्याय) दाता मनुष्यके लिये (भूरि वामं वहसि) तू बहुत धन देती है ॥ १२ ॥

[१४११] हे (स्तोम्याः) प्रशंसनीय उषाओ ! (मे ब्रह्मणा अस्तोढ्वं) मेरे स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति हो रही है । हे (उषासः) उषाओ ! (उशतीः अवीवृधध्वं) उन्नतिकी इच्छा करनेवाली हम सब प्रजाजनोंकी वृद्धि करें । हे (देवीः) दिव्य उषाओ ! (युष्माकं अवसा) तुम्हारे संरक्षणसे (सहस्रिणं च शतिनं च वाजं सनेम) सहस्रों और सेकडों प्रकारके धन अन्न और बलको हम प्राप्त करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे धनवाली उषे ! दाताओंको जगाओ । न जागनेवाले, सोते रहनेवाले कंजूस बनिये सोते रहें, उन्हें लाभ न मिले, क्योंकि वे दान नहीं करते । हे धनवाली उषा ! जो धनका दान करते हैं, जो अपने धनका यज्ञ करते हैं । उनके लिए धनके साथ प्रकाश दो । हे शुभ भाषण करनेवाली उषा ! प्राणियोंकी आयु कम करनेवाली तू स्तोत्रपाठ करनेवालेके लिए धनके साथ प्रकाश दे ॥ १० ॥

यह तरुणी स्त्री उषा पूर्व दिशासे प्रकाशित हो रही है । इसने लालरंगके घोडे अपने रथमें जोडे हुए हैं । यह उषा अब विशेष रूपसे प्रकाशित होती हुई जाएगी । और तब उसके प्रकाशका ध्वज फहरेगा । और इसका ध्वज फहरनेके साथ ही घर घरमें यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित होगी ॥ ११ ॥

उषाके प्रकाशके प्रकट होते ही पक्षी अपने घोंसलोंसे बाहर उडने लगते हैं । जिनके पास अन्न है, वे भी यज्ञ करने लगते हैं । यह सब कार्य उषाके उदयके पश्चात् ही होता है । हे उषा ! अपने घरमें रहकर यज्ञ और दान करनेवाले मनुष्य के लिए तू बहुतसा धन लाकर दे ॥ १२ ॥

हे प्रशंसनीय उषाओ ! मेरे इस स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति हो रही है, क्योंकि तुम स्तुतिके योग्य हो । हे उषाओ ! तुम हमारी उन्नति करनेकी इच्छासे हमारी उन्नति करो । तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित होकर हम सैंकडों और हजारों तरहके धन और अन्न प्राप्त करें ॥ १३ ॥

[१२५]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। देवता- स्वनयस्य दानस्तुतिः। छन्दः- त्रिष्टुप्, ४-५ जगती।)

१४१२ प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥

१४१३ सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥

१४१४ आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥

[१२५]

अर्थ— [१४१२] सूर्य (प्रातः प्रातः इत्वा) सबेरे सबेरे आकर लोगोंको (रत्नं दधाति) रत्न देता है। बुद्धिमान् (तं चिकित्वान्) उस रत्नकी महत्ताको जानकर (प्रतिगृह्य नि धत्ते) उसे लेकर अपने पास रख लेता है। तब (तेन) उससे मनुष्य (आयुः प्रजां वर्धयमानः) अपनी आयु और सन्तानोंको बढाता हुआ (रायःपोषेण सचते) धन और पुष्टिसे संयुक्त होता है ॥ १ ॥

१ प्रातः इत्वा रत्नं दधाति— सूर्य सबेरे आकर लोगोंको रत्न देता है।

२ चिकित्वान् तं प्रतिगृह्य नि धत्ते— पर केवल बुद्धिमान् ही उस रत्नको लेकर अपने पास रखता है।

[१४१३] (यः प्रातः इत्वः) जो मनुष्य सबेरे उठकर (आयन्तं त्वा) आते हुए किसी याचकको (वसुना) धनसे (मुक्षिजया पदं इव) रस्सीसे पैरको बांधनेके समान (उत् सिनाति) बांध देता है, वह दानी पुरुष (सुगुः सुहिरण्यः सुअश्वः) उत्तम गौओं, उत्तम सोने और उत्तम घोडेसे युक्त (असत्) होता है, तथा (अस्मै इन्द्रः बृहत् वयः दधाति) इसे इन्द्र अत्यन्त उत्तम अन्न देता है ॥ २ ॥

१ यः प्रातः आयन्तं वसुना उत् सिनाति, सुगुः सुहिरण्यः, सुअश्वः असत्— जो मनुष्य सबेरे आते हुए याचकको धनसे बांध देता है, वह उत्तम गौ, सोने और घोडेसे युक्त होता है।

[१४१४] हे देव! मैं (अद्य प्रातः) आज सबेरे (वसुमता रथेन) धनयुक्त रथसे (इष्टेः पुत्रं सुकृतं इच्छन्) यज्ञके रक्षक तथा उत्तम कर्म करनेवाले पुत्रको पानेकी इच्छासे तेरे पास (आयं) आया हूँ। तू (मत्सरस्य अंशोः सुतं पायय) आनन्द देनेवाले सोमके निचोड हुए रसको पी और (क्षयद्वीरं सूनृताभिः वर्धय) वीरोंको आश्रय देनेवाले मुझे अपने उत्तम आशीर्वादोंसे बढा ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्रातःकालीन सूर्य अपनी किरणोंमें अनेक स्वास्थ्यप्रद पोषणतत्त्वरूपी तत्त्व लाकर मनुष्योंको प्रदान करता है। पर जो विद्वान् इस बातको जानते हैं वे ही सूर्योदयसे पूर्व उठकर सूर्यप्रकाशमें निहित पोषणतत्त्वोंको प्राप्त करते हैं, पर जो मूर्ख इस बातको नहीं जानते, वे सूर्योदय होनेपर भी सोते रहते हैं और इस कारण वे इन पोषणतत्त्वोंको पानेमें असमर्थ रहते हैं। जो इन पोषणतत्त्वोंसे लाभ उठाता है, उसकी आयु बढती है, वीर्य बढता है और वह पुष्ट होकर समस्त ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥ १ ॥

जो दानी मनुष्य सबेरे उठकर याचकोंको धन दान करता है, उसे उत्तम गौवें, धन और घोडे आदि मिलते हैं और इन्द्र भी इसे उत्तम अन्न प्रदान करता है। जो धनका दान करता है, उसकी सब देव सहायता करते हैं, पर जो इकट्ठा करके रखता है, उसका धन नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

जो सबेरे उठकर देवके पास जाता है उसे हर तरहका धन और उत्तम कर्म करनेवाली सन्तान प्राप्त होती है, तथा देवके उत्तम आशीर्वादसे वह बढता है। दानशील पुरुष धन भी प्राप्त करता है और उत्तम सन्तानें भी प्राप्त करता है और ईश्वरकी कृपासे वह हर तरहसे बढता है ॥ ३ ॥

१४१५ उप॑ क्षरन्ति॒ सिन्ध॑वो मयो॒भुव॑ ईजा॒नं च॑ य॒क्ष्यमा॑णं च धे॒नवः॑ ।
पृ॒णन्तं॑ च॒ पपु॑रिं च श्रव॒स्यवो॑ घृ॒तस्य॒ धारा॒ उप॑ यन्ति वि॒श्वतः॑ ॥ ४ ॥
१४१६ ना॑क॑स्य पृ॒ष्ठे अधि॑ तिष्ठति श्रि॒तो यः पृ॒णाति॒ स ह॑ दे॒वेषु॑ गच्छति ।
तस्मा॒ आपो॑ घृ॒तम॑र्षन्ति॒ सिन्ध॑व॒स्तस्मा॑ इ॒यं दक्षि॑णा पिन्वते॒ सदा॑ ॥ ५ ॥
१४१७ दक्षि॑णावता॒मिदि॒मानि॑ चि॒त्रा दक्षि॑णावतां दि॒वि सूर्या॑सः ।
दक्षि॑णावन्तो अ॒मृतं॑ भजन्ते॒ दक्षि॑णावन्तः॒ प्र ति॑रन्त॒ आयुः॑ ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४१५] (ईजानं च यक्ष्यमाणं च) जो मनुष्य अब यज्ञ कररहे हैं, और जो आगे भी यज्ञ करेंगे, उनके लिए (मयोभुवः सिन्धवः) सुख देनेवाली नदियाँ (क्षरन्ति) बहती हैं। (पृणन्तं पपुरिं च) सबको खुश करने वाले तथा धनसे पूर्ण करनेवालेको (श्रवस्यवः धेनवः) अन्नकी इच्छा करती हुई गायें (घृतस्य धारा उपयन्ति) घीकी धारायें प्राप्त कराती हैं ॥ ४ ॥

१ ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः घृतस्य धाराः उपयन्ति— इस समय यज्ञ करनेवाले तथा आगे भी यज्ञ करनेवालोंको गायें घीकी धारायें प्राप्त कराती हैं।

[१४१६] (श्रितः यः प्रिणाति) अपने आश्रितोंको जो धनधान्यसे पूर्ण करता है, वह (नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति) स्वर्गमें जाकर रहता है, (सह देवेषु गच्छति) वह देवोंमें जाकर विराजमान होता है। (सिन्धवः आपः) बहनेवाले जलप्रवाह (तस्मै) उसके लिए (घृतं क्षरन्ति) तेजस्वी जल बहाते हैं, (तस्मै) उसके लिए (इयं दक्षिणा) यह पृथ्वी (सदा पिन्वते) सदा ही भरपूर अन्न देती है ॥ ५ ॥

१ श्रितः यः प्रिणाति नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति— जो अपने आश्रितोंको तृप्त करता है, वह सदा सुखमें रहता है।

२ सह देवेषु गच्छति— वह देवोंमें जाकर बैठता है।

३ सिन्धवः आपः तस्मै घृतं क्षरन्ति— जलप्रवाह उस दानीके लिए तेजस्वी जल बहाते हैं।

४ दक्षिणा तस्मै सदा पिन्वते— यह पृथ्वी उसके लिए सदा ही अन्नसे भरपूर रहती है।

[१४१७] (इमानि चित्रा) ये सुन्दर सुन्दर समृद्धियाँ (दक्षिणावतां) दक्षिणा देनेवालोंके लिए ही हैं। (दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः) दक्षिणा देनेवालोंके लिए द्युलोकमें ये सूर्य हैं (दक्षिणावन्तः अमृतं भजन्ते) दक्षिणा देनेवाले अमर होते हैं (दक्षिणावन्तः आयुः प्र तिरन्त) दक्षिणावाले ही अपनी आयु बढाते हैं ॥ ६ ॥

१ दक्षिणावन्तः आयुः प्र तिरन्त— दक्षिणावालोंकी आयु बढती है।

भावार्थ— यज्ञ करना एक श्रेष्ठतम कर्म है। जो यज्ञ सदा करते हैं, उनके लिए सभी नदियां सुख देती हैं। जो धनका दान करके सबको पूर्ण करते हैं और सबको सम्पन्न बनाकर प्रसन्न करते हैं, उनके लिए गायें घीकी धारायें प्रदान करती हैं। जो दान करता है, वह हर प्रकारसे ऐश्वर्य सम्पन्न होता है। ऐश्वर्य एवं सुखको प्राप्त करनेका यज्ञ और दान उत्तम साधन हैं ॥ ४ ॥

जो अपने आश्रितों या याचकोंको धनधान्य देकर तृप्त करता है, वह हर तरहके सुख प्राप्त करता है। वह देवके समान होकर उनमें जाकर विराजता है। जलप्रवाह उस दानीके लिए तेजस्वी जल देते हैं और यह पृथ्वी भी उसके लिए सदा धान्यसे भरी रहती है। उसे चारों ओरसे हर तरहके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

जो लोगोंको धनका दान करते हैं, अपने आश्रितोंको धनधान्यसे समृद्ध करते हैं, उन्हें भी सब तरहके ऐश्वर्य मिलते हैं। द्युलोकमें भी सूर्य उन्हींके लिए हर तरहके स्वास्थ्य प्रदान करता है। वे दीर्घकालतक जीवित रहते हुए उस अमरतत्त्व की उपासना करते हैं, तथा अपनी आयु बढाते हैं। धनके दानसे लोग प्रसन्न होकर दानीके प्रति अपनी शुभ कामनायें रखते हैं, इससे उस दानीकी आयु बढती है ॥ ६ ॥

१४१८ मा पृणन्तो दुरितमेन आरन् मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चि-दपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥ ७ ॥

[१२६]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः, ६ स्वनयो भावयव्यः, ७ रोमशा । देवता- १-५ स्वनयो भावयव्यः, ६ रोमशा, ७ स्वनयो भावयव्यः । छन्दः- त्रिष्टुप्; ६-७ अनुष्टुप् ।)

१४१९ अमन्दान् स्तोमान् प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवा-नतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥
१४२० शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्का-ञ्छतमश्वान् प्रयतान् त्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥ २ ॥

अर्थ—[१४१८] (पृणन्तः) मनुष्योंको दानसे तृप्त करनेवाले (दुरितं एनः मा आरन्) दुःख और पापको न प्राप्त हों, (सूरयः सुव्रतासः मा जारिषुः) विद्वान् और उत्तम व्रतोंका आचरण करनेवाले वृद्ध न हों । (तेषां अन्यः) उनसे अलग (कश्चित् परिधिः अस्तु) जो कोई पापोंको धारण करनेवाला हो, उस (अपृणन्तं) देवोंको हवियोंसे तृप्त न करनेवाले अयज्ञशीलको (शोकाः सं यन्तु) शोक प्राप्त हों ॥ ७ ॥

१ पृणन्तः दुरितं एनः मा आरन्— देवों और मनुष्योंको तृप्त करनेवालेको दुःख और पाप नहीं प्राप्त होते ।

२ सूरयः सुव्रतासः मा जारिषुः— विद्वान् और उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले मनुष्य वृद्ध न हों ।

३ अपृणन्तं शोकाः सं यन्तु— देवोंको हवियोंसे तृप्त न करनेवालेको शोक प्राप्त हों ।

[१२६]

[१४१९] (यः अतूर्तः राजा) जिस अहिंसित राजाने (श्रवः इच्छमानः) यशकी इच्छा करते हुए (मे) मेरे लिए (सहस्रं सवान् अमिमीत) हजार यज्ञ किये, उस (सिन्धौ अधिक्षियतः भावयस्य) समुद्र या नदीके किनारे पर रहनेवाले भाव्यके लिए मैं (मनीषा) बुद्धिपूर्वक (अमन्दान् स्तोमान् प्र भरे) ज्ञानसे भरे हुए स्तोत्रोंको कहता हूँ ॥ १ ॥

[१४२०] (नाधमानस्य असुरस्य राज्ञः) प्रार्थना करनेवाले तथा धनोंको देनेवाले राजाके (शतं निष्कान्) सौ सोनेके सिक्कोंको (कक्षीवान् सद्य आदं) मुझ कक्षीवान्ने ग्रहण किया है, (शतं प्रयतान् अश्वान्) सौ वेगवान् घोडे भी उससे मैंने प्राप्त किए हैं (शतं गोनां) सौ उत्कृष्ट बैल भी लिए हैं । इस प्रकार दान करके उस राजाने (दिवि) द्युलोकमें (अजरं श्रवः) अपना कभी न नष्ट न होनेवाला यश (आततान) फैलाया है ॥ २ ॥

भावार्थ— जो अपने धनसे देवोंको हवि देकर और मनुष्योंको दान देकर तृप्त करते हैं, वे कभी दुःखी और पापी नहीं होते । जो विद्वान् सदा उत्तम व्रतोंका आचरण करते हैं, वे शीघ्र वृद्ध नहीं होते । यमनियमादि व्रतोंके आचरण करनेसे मनुष्य शीघ्र वृद्ध नहीं होता । पर जो पापी होता है और जो यज्ञ द्वारा देवोंको तृप्त नहीं करता अथवा लोगोंको दान देकर अपने धनका सदुपयोग नहीं करता, वह सदा ही मानसिक चिन्ताओं और शोकसे पीडित रहता है ॥ ७ ॥

राजा ऐसा वीर और पराक्रमी हो कि कोई भी शत्रु उसकी हिंसा न कर सके । ऐसा शूर राजा अपने यशको बढानेके लिए यज्ञोंको करे । यज्ञोंको करनेसे यश फैलता है । यज्ञोंका विस्तार नदियोंके किनारेपर किया जाए, और उन यज्ञोंमें बुद्धिपूर्वक ज्ञानसे भरे स्तोत्रोंका गायन किया जाए ॥ १ ॥

जो तेजस्वी पुरुष लोगोंके प्राणोंकी रक्षा करता है, देवोंकी प्रार्थना करता है और लोगोंको भरपूर दान देता है, उसका यश कभी नष्ट नहीं होता और वह सर्वत्र फैल जाता है ॥ २ ॥

१४२१ उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात् सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥ ३ ॥
१४२२ चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥ ४ ॥
१४२३ पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन् युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥ ५ ॥
१४२४ आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४२१] (स्वनयेन दत्ताः) स्वनयके द्वारा दिए गए (श्यावाः) उत्तम वर्णोंके घोडोंसे युक्त (वधूमन्तः) उत्तम वधुओंसे युक्त (दश रथासः) दस रथ (मा उप आगात्) मेरे पास आये हैं । (कक्षीवान्) कक्षीवान् (अन्हां अभिपित्वे) दिनके शुरु होनेपर (षष्टि सहस्रं गव्यं अनु सनत्) साठ हजार गायोंको प्राप्त करे ॥३॥

[१४२२] (सहस्रस्य) हजारों सेवकोंसे युक्त (दशरथस्य श्रेणिं) दस रथोंकी पंक्तिको (चत्वारिंशत् शोणाः) चालीस घोडे (अग्रे नयन्ति) आगे ले जाते हैं । (मदच्युतः) शत्रुओंके घमण्डको चूर चूर करनेवाले (कृशनावतः प्रजाः अत्यान्) सोनेके अलंकारोंसे युक्त घास आदि खाकर हृष्टपुष्ट तथा वेगवान् घोडोंको (कक्षीवन्तः) सेवक (उत् अमृक्षन्त) वशमें करें ॥ ४ ॥

[१४२३] हे (सुबन्धवः) उत्तम आचरणवाले बन्धुओ ! (पूर्वां प्रयतिं अनु) पहलेके समान उपासकोंका पोषण करनेवाले (त्रीन् अष्टौ अरिधायसः गाः) तीन और आठकी संख्यामें श्रेष्ठ मनुष्योंका धारण पोषण करनेवाले बैलोंको (वः आ ददे) तुम्हारे लिए मैंने स्वीकार किया है । (ये विश्याः इव व्राः) जो एक घरमें रहनेवाले मनुष्योंकी तरह परस्पर प्रेम करते हैं, ऐसे तुम सब (पज्राः) हृष्टपुष्ट होकर तथा (अनस्वन्तः) रथादियोंसे युक्त होकर (श्रवः ऐषन्त) यशकी इच्छा करो ॥ ५ ॥

[१४२४] (याशूनां यादुरी) प्रयत्नशीलोंको उन्नतिके मार्गमें प्रेरित करनेवाली नीति (आगधिता) अच्छी तरहसे प्रयुक्त होकर (परिगधिता) उत्तम गुणोंसे युक्त होकर (जंगहे) राष्ट्रको धारण करनेमें समर्थ होती है तथा (कशीका इव) शत्रुओंको चाबुकके समान दण्ड देनेमें भी समर्थ होती है । ऐसी नीति (मह्यं भोज्या ददाति) मुझे अनेक तरहके भोग्य पदार्थ देती है ॥ ६ ॥

भावार्थ— राजा सब प्रजाओंको अपनी उत्तम नीतिके अनुसार चलानेवाला हो । उसकी प्रजाओंके पास उत्तम वर्णवाले घोडे, उत्तम और सुन्दर स्त्रियें और सुन्दर सुन्दर रथ हों । उत्तम ज्ञानीके पास अनन्त गायें हों और वह घृत आदिका उपभोग करे ॥ ३ ॥

रथोंमें उत्तम घोडे जोडे जाएँ । घोडे भी शत्रुओंको हरानेवाले, सोनेके अलंकारोंसे सजे हुए तथा घास आदि खाकर हृष्टपुष्ट हों । ऐसे उत्तम घोडोंको वशमें रखकर उन्हें उत्तम रीतिसे शिक्षित किया जाए । आनन्द देनेवाले दस साधनोंका स्वामी आत्मा दशरथ है । मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारोंसे दस इन्द्रियोंको संयुक्त करना ही चालीस अश्व हैं । इन्हींसे सहस्रों तरहके सुख प्राप्त किए जा सकते हैं । विद्वान् ही इन इन्द्रियरूपी अश्वोंको वशमें कर सकते हैं ॥ ४ ॥

सब बन्धुओंके समान परस्पर प्रेमभावसे रहें । सभी मनुष्य हृष्टपुष्ट होकर रथादियोंके स्वामी हों अर्थात् सभी धनवान् बनें तथा यश प्राप्त करनेकी इच्छा करें। यह शरीर जीवनसे युक्त रथ है । उसको धारण करनेवाले " पज्र " प्राण हैं । ये सभी प्राण इस शरीरमें एकत्र होनेसे परस्पर भाई हैं और परस्पर एक दूसरेसे बंधे हुए हैं । आत्मा जैसे श्रेष्ठ तत्व को धारण करनेके कारण ये प्राण " अरिधायस् " हैं । इस देहमें गति प्रदान करनेवाले तत्व गौ हैं । सात प्राण और आठवीं वाक् तथा आत्मा, मन, बुद्धि इन तीन प्रमुख तत्त्वोंको सदा सन्मार्गमें प्रेरित करना चाहिए ॥ ५ ॥

राजाकी नीति प्रयत्न करनेवालोंको उन्नत करनेवाली तथा उत्तम गुणोंसे युक्त हो, ऐसी नीति राष्ट्रको धारण करनेमें समर्थ होती है । ऐसी नीति सज्जनोंका संरक्षण करती है और दुष्टोंको चाबुकके समान दण्ड देनेमें भी समर्थ होती है । ऐसी नीति पर चलनेसे राष्ट्रकी प्रजाओंको सभी तरहके भोग्य पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं ॥ ६ ॥

१४२५ उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥ ७ ॥

[१२७]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः। देवता- अग्निः । छन्दः- अत्यष्टिः, ६ अतिधृतिः ।)

१४२६ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा ऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥
१४२७ यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभि-र्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥

अर्थ— [१४२५] हे पति ! (मे उप उप परा मृश) मेरे पास आकर मेरी सलाह ले, (मे दभ्राणि मा मन्यथाः) तू मेरे कामोंको छोटा मत समझ । (गंधारीणां आविका इव) गांधार देशकी भेडके समान (सर्वा अहं रोमशा अस्मि) मैं सब जगह रोमवाली हूँ अर्थात् मैं छोटी नहीं हूँ प्रौढबुद्धिवाली हूँ ॥ ७ ॥

[१२७]

[१४२६] (यः सुअध्वरः देवः) जो हिंसारहित यज्ञोंको प्रेरणा देनेवाला तेजस्वी देव अग्नि (ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा) अत्यन्त श्रेष्ठ देवकी कृपासे (आजुह्वानस्य सर्पिषः घृतस्य विभ्राष्टिं) चारों ओरसे डाले जानेवाले तेजस्वी घीके तेजको (शोचिषा अनु वष्टि) अपनी ज्वालासे ग्रहण करना चाहता है, ऐसे (होतारं) देवोंको बुलाकर लानेवाले (वसुं दास्वन्तं) धनोंको प्रदान करनेवाले (सहसः सूनुं) बलके पुत्र (जातवेदसं अग्निं) सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थोंको जाननेवाले अग्निका (जातवेदसं विप्रं न) वेदोंको जाननेवाले ब्राह्मणके समान (मन्ये) मैं सम्मान करता हूँ ॥ १ ॥

[१४२७] (द्यां परिज्मानं इव) द्युलोकमें सर्वत्र जानेवाले सूर्यके समान (चर्षणीनां होतारं) मनुष्योंको उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करनेवाले (शोचिष्केशं) तेजस्वी ज्वालाओंवाले (वृषणं यं) बलवान् जिस अग्निको (विशः इमाः विशः) कामना करनेवाली ये प्रजायें (जूतये) अपने इच्छित पदार्थको पानेके लिए (प्रावन्तु) तृप्त करती हैं, ऐसे हे (विप्र शुक्र) ज्ञानी, तेजस्वी अग्ने ! (यजिष्ठं अंगिरसां ज्येष्ठं) अत्यन्त पूज्य और अंगिराओंमें सर्वश्रेष्ठ (त्वा) तुझे (मन्मभिः) साधारण स्तोत्रोंसे तथा (विप्रेभिः मन्मभिः) ज्ञानसे युक्त स्तोत्रोंसे (यजमानाः हुवेम) हम यज्ञ करनेवाले बुलाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— पुरुष जहांतक हो वहांतक गृहकार्योंमें अपनी पत्नीकी सलाह अवश्य ले । अपनी पत्नीके विषयमें पति क्षुद्र विचार न रखे ॥ ७ ॥

यह अग्नि अपनी ज्वालाओंसे घीका भक्षण करके और अधिक तेजस्वी होता है । अग्नि देवोंको बुलाकर लानेवाला, उपासकोंको धन देनेवाला, अरणीसे बलपूर्वक मथने पर उत्पन्न होनेवाला है । ऐसे अग्निका उसी प्रकार सम्मान करना चाहिए, जिस प्रकार एक वेदज्ञ ब्राह्मणका किया जाता है ॥ १ ॥

द्युलोकमें चारों ओर गमन करता हुआ सूर्य सबको स्वास्थ्य प्रदान करता है, उसी प्रकार अग्नि भी अपनी किरणोंसे सबको स्वास्थ्य प्रदान करता है । यह अत्यन्त पूज्य और अंगरसकी विद्या जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ है । इसीलिए सब इसकी ज्ञानयुक्त स्तुतियोंसे उपासना करते हैं ॥ २ ॥

१४२८ स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहंतरः परशुर्न द्रुहंतरः ।
वीळु चिद् यस्य समृतौ श्रुवद् वनेव यत् स्थिरम् ।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

१४२९ दृळ्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसे ऽग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद् वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४२८] (यस्य समृतौ) जिसके पास आकर (वीळु चित् श्रुवत्) दृढसे दृढ पदार्थ भी खण्ड खण्ड हो जाता है (यत् स्थिरं) जो स्थिर है, वह भी (वना इव) जलोंके समान चलायमान हो जाता है जो (निस्सहमानः यमते) शत्रुओंको पराजित करता हुआ उनपर शासन करता है, जो (न अयते) कभी शत्रुके सामनेसे भागता नहीं अपितु (धन्वासहा न) धनुषधारीकी तरह जो (अयते) आगे बढता चला जाता है, ऐसा (विरुक्मता ओजसा) देदीप्यमान ज्वालाओंरूपी बलसे (पुरु दीद्यानाः) अत्यन्त तेजस्वी होता हुआ (सः हि) वह अग्नि (द्रुहन्तरः परशुः न) पेड या लकडीको काटनेवाले फरसेके समान (द्रुहन्तरः भवति) द्रोह करनेवाले शत्रुओंको काटनेवाला होता है ॥३॥

[१४२९] (यथा विदे दुः) जिस प्रकार ज्ञानियोंको धन दिया जाता है, उसी तरह (दृळ्हा चित् अवसे अस्मै अनु दाष्टि) बलवान्से बलवान् पुरुष भी अपने रक्षणके लिए इस अग्निको आहुतियां देते हैं और यह अग्नि भी (तेजिष्ठाभिः अरणिभिः) तेजस्वी अरणियोंसे उत्पन्न होकर उन्हें (दाष्टि) ऐश्वर्यादि प्रदान करता है। (यः पुरूणि वना प्रगाहते तक्षत्) यह अग्नि जिस प्रकार बहुतसे वनोंमें प्रविष्ट होकर उन्हें नष्ट कर देता है, (इव) उसी प्रकार (ओजसा स्थिराणि नि रिणाति) अपने तेजसे स्थिर शत्रुओंको भी नष्ट कर देता है, तथा (ओजसा अन्ना चित्) अपने तेजसे कठिनसे कठिन अन्नको भी पका देता है ॥ ४ ॥

१ दृळ्हा चित् अवसे अस्मै दाष्टि— बलवान्से बलवान् पुरुष भी अपनी रक्षाके लिए इस अग्निकी प्रार्थना करता है।

२ ओजसा स्थिराणि नि रिणाति— अपने तेजसे यह अग्रणी सुदृढ शत्रुओंको भी नष्ट कर देता है।

भावार्थ— प्रजाओंका अग्रणी नेता ऐसा है कि जिसके सामने आकर दृढसे दृढ तथा स्थिर रहनेवाले शत्रु भी विचलित हो जायें और उसी तरह सूख जायें, जिस तरह अग्निके संयोगसे पानी सूख जाता है। वह शत्रुओंको पराजित करके उन पर शासन करनेवाला हो। जो युद्धमेंसे पीठ दिखाकर न भागे, अपितु हाथमें धनुष लेकर आगे बढता चला जाए। ऐसा तेजस्वी वीर पुरुष ही लकडियोंको काटनेवाले फरसेके समान द्रोह करनेवाले शत्रुओंको काटनेवाला होता है ॥ ३ ॥

यह अग्रणी बहुत बलशाली है, इसलिए इसकी निर्बल और बलवान् सभी प्रार्थना करते हैं। अपने उपासकोंको सब ऐश्वर्य प्रदान करता है। तथा शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

१४३० तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरा दप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद् वीळु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥ ५ ॥
१४३१ स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणि रप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।
आदद्धव्यान्याददि र्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥
१४३२ द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः ।
अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४३०] (यः नक्तं दिवातरात् सुदर्शतरः) जो रात्रीमें दिनसे भी अधिक दर्शनीय हो जाता है उस (अस्य उपरासु पृक्षं धीमहि) अग्निके लिये यज्ञोंमें हम हवि स्थापित करते हैं। (दिवातरात् अप्रायुषे) दिनकी अपेक्षा अधिक तेजस्वी रहनेवाले (अस्य आयुः ग्रभणवत्) इस अग्निके लिए उसी प्रकार हवि प्रदान करनी चाहिए जिस प्रकार (सूनवे वीळु शर्म) पुत्रके लिये पिता सुखकर घर देता है। (अग्नयः भक्तं अभक्तं व्यन्तः अवः) अनेक प्रकारके अग्नि भक्त और अभक्त दोनोंका विवेक करके भक्तोंकी रक्षा करते हैं और (व्यन्तः अजराः) ये अग्नि रक्षण करनेवाले और अजर हैं ॥ ५ ॥

१ नक्तं दिवातरात् सुदर्शतरः— यह अग्रणी दिनकी अपेक्षा रातमें सुन्दर दिखाई देता है। अग्रणी नेताकी सच्ची परीक्षा सुख (दिन) की अपेक्षा आपत्ति या दुःख (रात्री या अन्धकार) में होती है।

२ अग्नयः अभक्तं व्यन्तः भक्तं अवः— अग्रणी लोग शत्रुओंको दूर या नष्ट करते हुए उपासकोंकी रक्षा करते हैं।

[१४३१] (इष्टनिः सः) पूजाके योग्य वह अग्नि (अप्नस्वतीसु उर्वरासु आर्तनासु) यज्ञ कर्मोंमें, उपजाऊ भूमियोंमें और युद्धोंमें (शर्धः मारुतं न) बलशाली वायुके समान (तुविष्वणिः) बहुत जोरसे गर्जना करता है। वह (इष्टनिः) पूज्य अग्नि (हव्यानि आदत्) हवियोंको खाता है तथा वह (आददिः) हवियोंको स्वीकार करनेवाला (यज्ञस्य केतुः) यज्ञका चिह्न और (अर्हणा) पूज्यतम है। (हर्षतः हृषीवतः) दूसरोंको हर्षित करनेवाले एवं स्वयं भी हर्षित होनेवाले (अस्य) इस अग्निके (पंथां) मार्ग पर (शुभे) कल्याणकी प्राप्तिके लिए (विश्वे देवाः जुषन्त स्म) सारे देव उसी प्रकार चलते हैं, जिस प्रकार (नरः न पंथां) मनुष्य कल्याणको प्राप्तिके लिए उत्तम मार्ग पर चलते हैं ॥ ६ ॥

[१४३२] (यत् दाशा भृगवः) जब उपासनाके लिए भृगु (मथ्नन्तः) इस अग्निको मथकर उत्पन्न करते हैं, तब (कीस्तासः अभिद्यवः नमस्यन्तः) स्तुति करनेवाले, तेजस्वी तथा विनयशील (भृगवः) वे भृगु (ईं द्विता उप वोचन्त) इसकी दो प्रकारसे स्तुति करते हैं। वह (शुचिः धर्णिः मेधिरः) पवित्र, धारण कर्ता और ज्ञानी अग्नि (एषां वसूनां ईशे) इन धनोंपर शासन करता है और (प्रियान् अपि-धीन्) प्रेमपूर्वक समर्पित की गई स्तुतियोंको (वनिषीष्ट) स्वीकार करता है, (मेधिरः आ वनिषीष्ट) निश्चयसे वह ज्ञानी उन स्तुतियोंको स्वीकार करता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह अग्रणी प्रकाशकी अपेक्षा अन्धकारमें और अधिक तेजस्वी होता है। वह अपने सहायकोंकी रक्षा और शत्रुओंको दूर करता है ॥ ५ ॥

यह पूज्यनीय अग्नि सभी स्थलोंमें वायुके समान गर्जना करता है। कल्याणकी प्राप्तिके लिए सभी देव इसीके बताए हुए मार्गपर चलते हैं ॥ ६ ॥

जब भृगुकुलमें उत्पन्न लोगोंने मथकर इस अग्निको प्रकट किया और इसकी उपासना की, तब इसने प्रेमपूर्वक समर्पित की गई हवियोंको ही स्वीकार किया ॥ ७ ॥

१४३३ विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दंपतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥ ८ ॥
१४३४ त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ९ ॥
१४३५ प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदीं हविष्मान् विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥ १० ॥

अर्थ—[१४३३] (विश्वासां विशां पतिं) सम्पूर्ण प्रजाओंके रक्षक (सर्वासां समानं दम्पतिं) सब मनुष्योंके साथ समानरूपसे व्यवहार करनेवाले, गृहपालक, (सत्यगिर्वाहसं मानुषाणां अतिथिं) सत्यवाणीका व्यवहार करनेवाले मनुष्योंके लिये अतिथिके समान पूज्य अग्निको (भुजे हवामहे) भोग प्राप्तिके लिये हम बुलाते हैं । (यस्य आसया) जिसके समीपमें (अमी विश्वे अमृतासः) यह सारे प्रसिद्ध देवता लोग भी (वयः आ) हवि भक्षण करनेके लिए उसी प्रकार आते हैं (पितुः न वयः) जिस प्रकार पुत्र पिताके पास अन्नके लिए जाते हैं । (देवेषु हव्या आ) मनुष्य भी देवोंके लिए हवियोंका अर्पण करते हैं ॥ ८ ॥

१ सर्वासां समानं— यह अग्रणी सबके साथ समानताका व्यवहार करनेवाला है, यह पक्षपाती नहीं है ।

२ दम्पतिः— (दम-पतिः) 'दम इति गृहनाम तस्य पालकः' दम अर्थात् घरका पालक ।

३ सत्यगिर्वाहसः— वह अग्रणी सदा सत्यवाणीका ही उपयोग करता है ।

[१४३४] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमः जायसे) तू बलसे शत्रुओंको बुरी तरह हरानेवाला और अतिशय तेजस्वी उत्पन्न हुआ है (देवतातये रयिः न देवतातये) जैसे देवोंके यज्ञके लिये धन उत्पन्न होता है उसी प्रकार तेरा जन्म यज्ञोंकी रक्षा करनेके लिए हुआ है । (ते मदः शुष्मिन्तमः उत क्रतुः द्युम्निन्तमः) तेरा आनन्द अत्यन्त बलका देनेवाला और तेरा कर्म अत्यन्त तेजस्वी होता है । हे (अजर) जरारहित अग्ने ! तू (अध ते स्म श्रुष्टीवानः न परिचरन्ति) इस कारणसे तेरी सब लोग दूतकी तरह सेवा करते हैं ॥ ९ ॥

१ सहसा सहन्तमः द्युम्निन्तमः— यह अग्नि अपने बलसे अत्यन्त बलवान् और अत्यन्त तेजस्वी है ।

[१४३५] हे मनुष्यो ! (वः स्तोमः) तुम्हारी स्तुतियां (महे सहसा सहस्वते) महान्, अपने बलसे शत्रुओं-को हरानेवाले (उषर्बुधे अग्नये) उषःकालमें जागनेवाले अग्निको (प्र बभूतु) उसी प्रकार प्रसन्न करें, जिस प्रकार (अग्नये पशुषे न) तेजस्वी तथा पशुओंको देनेवाले मनुष्यकी लेनेवाले मनुष्यों द्वारा की गई स्तुतियां प्रसन्न करती हैं । (हविष्मान्) यज्ञ करनेवाला (विश्वासु क्षासु) सभी स्थानोंमें (ईं प्रति जोगुवे) इसीको लक्ष्य करके स्तुति करता है । (जूर्णिः होता) स्तुति करनेमें कुशल होता (ऋषूणां अग्ने जरत) आनेवाले देवोंमें सर्व प्रथम इस अग्निकी उसी तरह प्रशंसा करता है जिस प्रकार (ऋपूणां रेभः न) धनवानोंकी भाट स्तुति करता है ॥ १० ॥

भावार्थ— यह अग्रणी सबके साथ समान व्यवहार करनेवाला पूज्य, सत्यपालक और घरोंकी रक्षा करनेवाला है । सारे देव हवि भक्षणके लिए इसके पास आकर इकट्ठ होते हैं, देवोंके हवि भक्षणके लिए अग्नि मुख रूप है ॥ ८ ॥

यह अग्रणी अपने बलसे ही बलवान् होकर शत्रुओंको हराता और यश प्राप्त करता है इसे किसी दूसरेकी सहायताकी जरूरत नहीं पडती । यह हमेशा उत्साहसे भरपूर रहता है ! इसीलिए सब इसकी सेवा करते हैं ॥ ९ ॥

यह अग्रणी अत्यन्त बलवान् तेजस्वी तथा पशुओंको देनेवाला है, इसलिए सभी स्थानोंमें उसकी स्तुति सर्वप्रथम की जाती है ॥ १० ॥

१४३६ स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराऽग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन् त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥ ११ ॥

[१२८]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- अग्निः । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१४३७ अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥ १ ॥

अर्थ— [१४३६] हे (अग्ने) अग्रणी! (नः नेदिष्ठं ददृशानः) हमें पाससे भी तेजस्वी दीखनेवाला (सः) वह तू (देवेभिः सचनाः) देवोंके द्वारा सत्कारको प्राप्त होता है। (सुचेतुना महः रायः आभर) तू प्रसन्न मनसे हमें उत्कृष्ट धन भरपूर दे। हे (शविष्ठ) बलवान् अग्ने! (संचक्षे अस्यै भुजे) दीर्घायु प्राप्तिके लिए और इस पृथ्वीका उपभोग करनेके लिए (नः महि कृधि) हमें महान् यशवाला कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् अग्ने! तू (स्तोतृभ्यः महि सुवीर्यं) स्तोताओंको उत्तम बल दे तथा (उग्रः न शवसा मथीः) वीरके समान अपने बलसे शत्रुओंको नष्ट कर ॥ ११ ॥

१ संचक्षे अस्यै भुजे— दीर्घायु प्राप्तिके लिए ही संसारका उपभोग करें, अपना उपभोग सीमातीत न होकर दीर्घायु प्राप्तिमें सहायक हो।

[१२८]

[१४३७] (होता यजिष्ठः अयं अग्निः) देवोंको बुलानेवाला अतीव यज्ञशील यह अग्नि (उशिजां व्रतं स्वव्रतं अनु मनुषः जायत) फलोंकी कामना करनेवालोंके सोमयागादिरूप कर्म और अपने व्रतोंको उद्देश्यमें रखकर मनुष्यसे अरणियों द्वारा उत्पन्न होता है। (सखीयते विश्वश्रुष्टिः श्रवस्यते रयिः इव) यह अपने साथ मैत्रीकी इच्छा करनेवालेको सब कुछ देता है और धनकी इच्छा करनेवालेके लिए यह धनके समुद्रके समान ही है। (अदब्धः होता परिवीतः इळस्पदे धरीमणि इळस्पदे निषदत्) कभी पीडित न होनेवाला, होतारूपसे ऋत्विजोंसे घिरा हुआ यह अग्नि व्यवस्थित वेदीमें विराजता है (इळस्पदे निषीदत्) वह निश्चयसे वेदीमें जाकर विराजता है ॥ १ ॥

१ सखीयते विश्वश्रुष्टिः— अपने साथ मैत्री करनेवालेको यह सब तरहके उपभोगके पदार्थ देता है।

२ श्रवस्यते रायः इव— धनकी इच्छा करनेवालेके लिए यह मानों धनका सागर ही है।

भावार्थ— यह अग्रणी पाससे भी देदीप्यमान दीखता है, अतः सत्कारके योग्य है, यह अग्नि हमें उत्कृष्ट धन दे और हम उस धनका उत्तम उपयोग कर दीर्घायु प्राप्त करें ॥ ११ ॥

अपने कर्मोंको पूरा करनेके लिए यह अग्नि उत्पन्न होता है। यह अन्योंके भी कर्मोंको पूर्ण करता है यह अपने उपासकोंके लिए हर तरहके पदार्थ एवं धन देता है ॥ १ ॥

१४३८ तं यज्ञसाधमपि वातयाम- स्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स नं ऊर्जामुपाभृ- त्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥
१४३९ एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद् दधद् रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभि- र्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानु- ष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥
१४४० स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमे ऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४३८] हम लोग (ऋतस्य पथा हविष्मता नमसा हविष्मता देवताता) सत्यके मार्गसे, आहुतियोंसे नम्रतासे और हव्यवाले यज्ञसे (यज्ञसाधं तं अपि वातयामसि) यज्ञके साधक उस अग्निकी सेवा करते हैं (यं देवं मातरिश्वा मनवे परावतः परावतः भाः) जिस अग्निको मातरिश्वा वायुने मनुके लिये बहुत दूरसे लाकर प्रदीप्त किया था। (सः नः उर्जां उपाभृति अया कृपा न जूर्यति) वह अग्नि हमारे अन्नको स्वीकार करके भी अपने सामर्थ्यसे कभी भी क्षीण नहीं होता ॥ २ ॥

१ ऋतस्य पथा नमसा तं वातयामसि— सत्यके मार्गसे तथा नम्रतासे उस अग्रणीकी हम सेवा करते हैं।

२ देवं मातरिश्वा मनवे परावतः परावतः भाः— इस देवको वायु मनुष्योंके हितके लिए बहुत दूरसे लाया था।

[१४३९] (शतं अक्षभिः वनेषु चक्षाणः) सैंकडों आंखों अर्थात् ज्वालाओंसे वनोंमें प्रकाशित होता हुआ (उपरेषु सानुषु परेषु सानुषु) पासके और दूरके पर्वत शिखरों पर (सदः दधानः) अपना स्थान बनाता हुआ (मुहुः गीः वृषभः रेतः दधत् कनिक्रदत्) सदा प्रशंसित होनेवाला, बलवान्, वीर्यको धारण करनेवाला तथा गर्जना करनेवाला (तुर्वणिः देवः अग्निः) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाला यह देव अग्नि (एवेन सद्यः पार्थिवं परि एति) सरल मार्गसे शीघ्र ही पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है ॥ ३ ॥

[१४४०] (सुक्रतुः पुरोहितः स अग्निः) शोभनकर्मवाला, आगे रहनेवाला वह अग्रणी (दमे दमे अध्वरस्य यज्ञस्य चेतति) घरघरमें नाश रहित यज्ञके कर्ममें प्रज्ज्वलित होता है। (क्रत्वा यज्ञस्य चेतति) शोभन-कर्म द्वारा यज्ञके कर्तव्यमें प्रज्ज्वलित होता है। (क्रत्वा वेधाः इषूयते) प्रकृष्ट कर्मसे यह बुद्धिमान् अग्नि अन्नकी इच्छा करनेवालोंके लिए (विश्वा जातानि पस्पशे) सब तरहके पदार्थोंको प्रदान करता है (यतः घृतश्रीः अतिथिः अजायत) क्योंकि यह घृत खानेवाला अतिथिके रूपमें पूज्य होकर उत्पन्न हुआ है। और (वह्निः वेधाः अजायत) यह हविको वहन करनेवाला तथा बुद्धिमान् भी है ॥ ४ ॥

भावार्थ— सत्यके मार्ग पर चलनेसे और नम्रतापूर्वक व्यवहार करनेसे ही यह अग्रणी प्रसन्न रहता है। यह सदा सामर्थ्ययुक्त रहता है कभी क्षीण नहीं होता ॥ २ ॥

यह सर्वत्र प्रकाशित होता हुआ बलवान् अग्नि सभी जगह अपना निवास स्थान बनाता है ॥ ३ ॥

यह अग्नि घरघरमें प्रज्ज्वलित होता है। इसके जलनेसे यज्ञका ज्ञान होता है। यह बुद्धिमान् तथा उत्तम कर्म करनेवाला है ॥ ४ ॥

१४४१ क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चते ऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्ये- षिराय न भोज्या ।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥ ५ ॥
१४४२ विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथ- च्छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
विश्वस्मा इत् सुकृते वारमृण्व- त्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥ ६ ॥
१४४३ स मानुषे वृजने शंतमो हितो ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः ।
स हव्या मानुषाणा- मिळा कृतानि पत्यते ।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्ते- र्महो देवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४४१] (यत्) जिस कारण उपासक (मरुतां न) मरुतोंको अर्पित करनेके समान (अस्य अग्नेः तविषीषु) इस अग्निकी ज्वालाओंको (क्रत्वा अवेन) बुद्धिपूर्वक और आदरपूर्वक (भोज्या पृंचते) आहुति देते हैं अथवा (इषिराय भोज्या न) याचकको भोजन देनेके समान इस अग्निको हवि देते हैं, इस कारण (स मज्मना वसूनां दानं इन्वति) वह अग्नि अपने बलसे उपासकोंको धनका दान करता है। वह हमें (अभिह्रुतः दुरितात्) पराभव और पापसे (त्रायते) बचाता है तथा वह हमें (शंसात्) शापोंसे (अभिह्रुतः) पराभवसे (अघात्) पापसे बचावे ॥५॥

[१४४२] (विश्वः विहाया अरतिः अग्निः) विश्वव्यापी, महान् और सम्पन्न अग्नि (तरणिः न दक्षिणे हस्ते वसुः दधे) सूर्यकी तरह दाहिने हाथमें यजमानको देने योग्य धन धारण करता है। उसका वह हाथ (श्रवस्यया) यशाभिलाषियोंको धन देनेके लिये (शिश्रथत्) खुला रहता है। (न शिश्रथत्) दुर्जनोंके लिए नहीं खुला रहता है। हे अग्ने! (देवत्रा इषुध्यते विश्वस्मै हव्यं ओहिषे) दिव्यगुणोंसे युक्त तू हविकी कामना करनेवाले सब देवोंके लिए हविका वहन करता है। तथा (विश्वस्मै सुकृते वारं ऋण्वति, द्वारा व्यृण्वति) सब उत्तम और श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये वरण करने योग्य धनको प्रदान करता है और धनके द्वारको उनके लिये खोल देता है ॥ ६ ॥

१ सुकृते वारं ऋण्वति, द्वारा विऋण्वति— उत्तम कर्म करनेवालोंके लिए यह धन देता है, उनके लिए यह धनके द्वार खोल देता है।

[१४४३] (सः अग्निः) वह अग्नि (मानुषे वृजने, यज्ञेषु) मनुष्योंके पाप दूर करनेके निमित्त भूत कार्योंमें और यज्ञोंमें (शंतमः हितः) अत्यन्त सुख देनेवाला और हितकारी है, तथा (जेन्यः न विश्पतिः यज्ञेषु विश्पतिः प्रियः) विजयी राजाकी तरह यज्ञोंमें प्रजाओंका पालक और प्रिय है। यह अग्नि (मानुषाणां हव्या इळा कृतानि) यजमानोंके हविको स्वीकार करनेके उद्देश्यसे आता है। (सः वरुणस्य धूर्तेः नः त्रासते) वह यज्ञमें बाधा पहुंचानेवाले धूर्तोंसे हमारी रक्षा करे; तथा (महः देवस्य धूर्तेः) महान् देवकी हिंसासे हमारा उद्धार करे ॥ ७ ॥

भावार्थ— हम बुद्धिपूर्वक और आदरसे अग्निको आहुतियां देते हैं, अतः वह हमें हर तरहके संकटोंसे बचावे ॥ ५ ॥

यह अपने हाथमें सदा धनको धारण किए रहता है, पर वह धन यशाभिलाषी उत्तम कर्म करनेवालोंको ही देता है, दुष्टों और दुराचारियोंको नहीं ॥ ६ ॥

वह अग्रणी संघटनके कार्योंमें सहायता देकर सुख बढाता है, वह राजाकी तरह प्रजाका पालन करता है, तथा यज्ञोंमें विघ्न करनेवाले धूर्तोंसे बचाता है ॥ ७ ॥

१४४४ अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे ।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ॥ ८ ॥

[१२९]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः, ६ इन्दुः । छन्दः-अत्यष्टिः; ८-९ अतिशक्वर्यौ; ११ अष्टिः ।)

१४४५ यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसा—मिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥

१४४६ स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद् दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभि—रसि प्रतूर्तये नृभिः ।
यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥

अर्थ— [१४४४] (वसुधितिं चेतिष्ठं अरतिं प्रियं होतारं अग्निं) धनधारक सुबुद्धि दाता, प्रेरणा देनेवाले सबके प्रिय होता रूप अग्निकी मनुष्य (ईळते न्येरिरे) स्तुति करते हैं एवं उससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। उन्होंने प्रयत्नसे (हव्य-वाहं, विश्वायुं, विश्ववेदसं होतारं यजतं कविं न्येरिरे) हव्यको ले जानेवाले, सबके प्राणरूप, सब कुछ जाननेवाले, देवोंको बुलानेवाले, पूजाके योग्य और मेधावी अग्निको पूर्णरूपसे प्रदीप्त किया। इस कारण (देवासः वसूयवः अवसे) ऋत्विक् लोग अर्थाभिलाषी होकर अपनी रक्षाके लिये (रण्वं गीर्भिः) उस रमणीय अग्निकी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥८॥

[१२९]

[१४४५] हे (इषिर) प्रेरक (इन्द्र) इन्द्र ! (मेध-सातये) यज्ञकी प्राप्तिके लिये (त्वं) तू (यं) जिस (अपाका) अपरिपक्व (सन्तं) के पास (रथं) रथ (प्र नयसि) ले जाता है, हे (अनवद्य) पाप-रहित ! तू उसे (प्र नयसि) आगे बढाता है। तू (तं) उसे (सद्यः चित्) शीघ्र ही (अभिष्टये) अभीष्ट पदार्थके देनेके योग्य (करः) बना देता है (वाजिनं च) और उस अन्नवालेको तू (वशः) चाहता है। हे (अनवद्य) पाप-रहित और (तूतुजान) शीघ्र कार्य करनेवाले इन्द्र ! (सः) वह तू (वेधसां) विद्वानोंकी (वाचं न) वाणीके समान (अस्माकं) हम (वेधसां) ज्ञाताओंकी (इमां) यह वाणी सुन ॥ १ ॥

१ अपाका सन्तं रथं प्र नयसि, प्र नयसि— जो भक्त अपरिपक्व बुद्धिवाला होता है, उसके पास इन्द्र रथ ले जाता है, और उसे आगे बढाता है।

[१४४६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः स्म) जो तू (कासु चित्) किसी भी (पृतनासु) संग्रामोंमें (नृ-भिः) वीरोंके साथ (भर-हूतये) भरण-पोषण निमित्त हुए युद्ध और उन्हीं (नृ-भिः) वीर मनुष्योंके साथ (प्र-तूर्तये) शत्रु-नाशके काममें (दक्षाय्यः) कुशल (असि) है। (सः) वह तू हमारी बात (श्रुधि) सुन। (यः) जो (शूरः) शूर (स्वः) स्वयं (सनिता) प्राप्त करनेवाला और (यः) जो (विप्रैः) बुद्धिमानोंके साथ मिलकर (वाजं) धन (तरुता) बाँटनेवाला है (वाजिनं अत्यं न) जिस प्रकार वीर बलशाली घोडेका सहारा लेते हैं, उसी प्रकार (ईशानासः) समर्थ लोग (पृक्षं वाजिनं) पूर्ण करनेवाले तथा बलवान् इस इन्द्रका (इरधन्त) आश्रय करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— वह अग्रणी बुद्धिदाता प्रेरणा देनेवाला सबका प्रिय है, उसीसे अब मनुष्य प्रेरणा प्राप्त करते हैं। उसी रमणीय अग्निकी सब स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

जो साधक अपरिपक्व बुद्धिवाला होते हुए भी इन्द्र पर श्रद्धा रखता है, उस साधककी यह इन्द्र सहायता करता है और उसे आगे बढाता है। तथा अभीष्ट पदार्थकी प्राप्तिके लिए इन्द्र उसे आगे बढाता है ॥ १ ॥

१४४७ दुस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद् यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
इन्द्रोत तुभ्यं तद् दिवे तद् रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥
१४४८ अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।
अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥
१४४९ वि षू नमातिमतिं कयस्य चित् तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभि―रुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषि णो यथा पुरा―ऽनेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्नि―रासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥

अर्थ―[१४४७] हे इन्द्र ! तू (दस्मः हि) दर्शनीय है (वृषणं) वर्षा करनेवाले (त्वचं) आवरक मेघको जलसे (पिन्वसि) पूर्ण करता है । हे (शूर) शूर ! तू ही (कंचित्) प्रसिद्ध (अररुं) कष्ट पहुँचानेवाले (मर्त्यं) मरने योग्य, असुरको (यावीः) दूर भगाता और ऐसे (मर्त्यं) शत्रुको (परि-वृणक्षि) काटता है । (उत) और हे (इन्द्र) इन्द्र ! मैं (तुभ्यं) तुझे, (दिवे) तेजके लिये (स्व-यशसे) अपने यशके लिए (रुद्राय) रुद्रके लिए (मित्राय) मित्रके लिए और (सु-मृडीकाय) सुख देनेवाले (वरुणाय) वरुणके लिये (तत् तत्) वह (स-प्रथः स-प्रथः) विस्तारसे युक्त वचन (वोचं) कहता हूँ ॥ ३ ॥

१ शूर ! अररुं मर्त्यं यावीः, परिवृणक्षि― यह शूर इन्द्र कष्ट पहुंचानेवाले, इसीलिए मारने योग्य असुरको दूर करता और काटता है ।

[१४४८] हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (अस्माकं) और हमारे (सखायं) मित्र (विश्व-आयुं) पूरी आयु देनेवाले (प्र-सहं) शत्रु-नाशक (युजं) सहयोगी (इन्द्रं) इन्द्रको हम (इष्टये) यज्ञमें आनेके लिये (उश्मसि) चाहते हैं । हे इन्द्र ! तू हमारी (ऊतये) रक्षाके लिये (कासु चित्) सभी (पृत्सुषु) युद्धोंमें (अस्माकं) हमारे (ब्रह्म) ज्ञानकी (अव) रक्षा कर । (यं यं) जिस (विश्वं शत्रुं) शत्रु-समुदायको तू (स्तृणोषि स्तृणोषि) नष्ट करता है वह (शत्रुः) शत्रु (त्वा) तुझे (नहि) नहीं (स्तरते) मार सकता ॥ ४ ॥

१ यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि शत्रुः त्वा नहि स्तरते― यह इन्द्र सारे शत्रुओंको मारता है, पर सारे शत्रु मिलकर भी इस अकेले इन्द्रको नहीं मार सकते ।

[१४४९] हे (उग्र) वीर इन्द्र ! तू (तेजिष्ठाभिः) प्रज्ज्वलित (अरणि-भिः) समिधाओंके (न) समान तेजस्वी (ऊति-भिः) रक्षा-साधनों और (उग्राभिः) वीर्ययुक्त (ऊति-भिः) रक्षणों द्वारा इस (कयस्य चित्) प्रसिद्ध शत्रुके (अति-मतिं) अभिमानको (वि सु नम) अत्यन्त नीचा कर दे । हे (शूर) शूर ! तू (अनेनाः) निष्पाप (मन्यसे) माना जाता है । (पुरा यथा) पहलेके समान (नः) हमें (नेषि) आगे ले चल । (वह्निः) आगे चलनेवाला तू (पूरोः) मनुष्योंके (विश्वानि) सारे दुर्गुण (अप पर्षि) दूर कर दे । तू (नः) हमारे (अच्छ) सम्मुख (आसा) समीप ही सब साधन (वह्निः) प्राप्त करानेवाला है ॥ ५ ॥

१ उग्राभिः ऊतिभिः कयस्य चित् अति मतिं नम― यह इन्द्र शक्तिशाली रक्षण साधनोंसे भयंकर शत्रुके अभिमानको भी झुका देता है ।

२ अनेनाः मन्यसे― शत्रुओंको मारने पर भी यह इन्द्र निष्पाप माना जाता है ।

भावार्थ― यह इन्द्र बडा सामर्थ्यशाली है । अतः भरणपोषणके साधन अन्नके लिए किए जानेवाले युद्धोंमें यह इन्द्र वीर मरुतोंके साथ मिलकर शत्रुनाशका कार्य बडी ही कुशलतासे करता है । इसीलिए समर्थ लोग भी इस इन्द्रका आश्रय उसी प्रकार लेते हैं, जिस प्रकार वीरगण युद्धमें बलवान् घोडेका आश्रय लेते हैं ॥ २ ॥

यह इन्द्र मेघोंको जलसे पूर्ण करता है । कष्ट देनेवाले असुरको मारता है । यह इन्द्र शत्रुओंके लिए रुद्रके समान भयंकर रूपवाला, भक्तके लिए मित्रके समान हित करनेवाला, उत्तम सुख देनेवाला, तथा सबके द्वारा वरणीय है ॥ ३ ॥

१४५० प्र तद् वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अवं स्रवेदघशंसोऽवतर मवं क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥
१४५१ वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभि रेमिषा पृचीमहि ।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभि र्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४५०] (यः) जो (इष-वान्) गतिमान् (हव्यः न) प्रशंसाके योग्य इन्द्रके समान (मन्म) स्तुतिके योग्य (रेजति) होता है, जो (रक्षः-हा) दुष्टोंका नाशक होनेके कारण (मन्म) स्तुतिके योग्य (रेजति) होता है उस (भव्याय) उत्तम (इन्दवे) सोमके लिए मैं (तत्) वह स्तोत्र (प्रवोचेयं) बोलूं। (सः) वह (निदः) निन्दकों को (स्वयं) स्वयं (अस्यत्) हमसे दूर (आ) करे, (वधैः) मारनेके साधनोंसे (दुः-मतिं) दुष्ट बुद्धिवाले असुरको (अजेत) दूर हटा दे । तब (अघ-शंसः) पापकी कामनावाला असुर (अव-तरं) बहुत नीचे (अवस्रवेत्) गिर जाय, (क्षुद्रं-इव) थोडेसे जलके समान (अव स्रवेत्) नीचेके स्थानमें पडा रहे ॥ ६ ॥

१ इषवान् हव्यः न मन्मः— प्रयत्न और प्रगति करनेवाला मनुष्य प्रशंसाके योग्य इन्द्रके समान स्तुति योग्य होता है ।

[१४५१] हे (रयि-वः) धनवाले इन्द्र ! हम (चितन्त्या) उत्साह बढानेवाली (होत्रया) वाणीसे (तत्) उस धनको (वनेम) प्राप्त करें । हम (सु-वीर्यं) उत्तम बलयुक्त (रयिं) धनको (वनेम) प्राप्त करें। (रण्वं) रमणीय, साथ (सन्तं) रहनेवाले, (सु-वीर्यं) शक्तिसे भरपूर धनका लाभ करें । (सुमन्तु-भिः) उत्तम मननीय विचारोंसे (इषा) अन्नसे (ईं) इस (दुः-मन्मानं) आननेके लिये कठिन तुझ इन्द्रको (आ पृचीमहि) युक्त करें। (सत्याभिः) सच्ची (द्युम्नहूतिभिः) ऐश्वर्यवर्धक स्तुतियोंसे तुझ (इन्द्रं) इन्द्रको (आ) प्रशंसित करें। (द्युम्नहूतिभिः) यशोवर्धक स्तुतियोंसे (यजत्रं) यजनीय इन्द्रको युक्त करें ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सभी मनुष्योंका मित्रके समान हित करनेवाला है । मनुष्यको पूर्ण आयु प्रदान करता है । यह इतना वीर है कि यह अकेला ही अनेक शत्रुओंको मार सकता है, पर सब शत्रु मिलकर भी इसे नहीं मार सकते ॥ ४ ॥

प्रज्वलित समिधाओंके समान तेजस्वी यह इन्द्र अपने शक्तिशाली संरक्षणके साधनोंसे शत्रुके अभिमानको ठंडा कर देता है और अपने भक्तोंको आगे ले चलता है । बहुतसे शत्रुओंको मारने पर भी यह इन्द्र निष्पाप ही बना रहता है। शत्रुओंसे मार खाना पाप है, पर उन्हें मारना पाप नहीं है ॥ ५ ॥

जो मनुष्य अपने प्रयत्नोंसे प्रगति करता है वह इन्द्रकी तरह स्तुतिके योग्य और प्रशंसनीय होता है। वह दुष्टोंका नाशक होनेके कारण भी सबके द्वारा प्रशंसित होता है। वह निन्दकोंको, दुष्ट बुद्धिवालोंको, दुष्टवचन बोलनेवालोंको बहुत नीचे गिरा देवे । जैसे थोडासा जल बहुत जल्दी सूख जाता है, उसी प्रकार शत्रुओंको शीघ्र ही सुखा देवे ॥ ६ ॥

वाणी सदा उत्साह बढानेवाली हो । सभी ऐसी उत्तम वाणी बोलें कि जिससे सुननेवाले और बोलनेवाले दोनोंका उत्साह बढे । धन शक्ति बढानेवाला हो । सदा सुविचारोंसे युक्त रहें ॥ ७ ॥

१४५२ प्रप्रा वो अस्मे स्वयंशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम् ।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥
१४५३ त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥ ९ ॥
१४५४ त्वं न इन्द्र राया तरूषसो—ग्रं चित् त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद् रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥ १० ॥

अर्थ— [१४५२] (इन्द्रः) इन्द्र (स्वयशोभिः) अपने यश बढानेके साधनोंसे (दुः-मतीनां) दुष्टोंके (परिवर्गे) दूर भगाने और उन (दुः-मतीनां) दुर्बुद्धियोंके (दरीमन्) नाश करनेमें (वः) तुम्हारा और (अस्मे) हमारा (प्र प्र) विशेष (ऊती) रक्षक होता है । (नः) हमें (रिषयध्यै) नष्ट करनेके लिये (उप-ईषे) समीप पहुँचनेके लिये (या) जो (जूर्णिः) वेगवती सेना (अत्रैः) भक्षक असुरों द्वारा (क्षिप्ता) भेजी गई है (सा) वह (स्वयं) स्वयं (हता ई) मर ही (असत्) जाये । वह हमारे पास (न) न (वक्षति) पहुँचे, (न) बिल्कुल न (वक्षति) पहुँचे ॥ ८ ॥

[१४५३] हे (इन्द्र) इन्द्र (त्वं) तू (परीणसा) सब ओरसे (राया) धनके साथ (अनेहसा) पाप-रहित (पथा) मार्गसे (नः) हमारे पास (याहि) आ । (अरक्षसा) राक्षस रहित मार्गसे (पुरः) आगे (याहि) जा । (नः) हमें (पराके) दूर स्थानमें (आ सचस्व) प्राप्त हो और (अस्त- ईके) समीपके स्थानमें (आ सचस्व) प्राप्त हो । (दूरात्) दूर और (आरात्) निकटसे (अभिष्टि-भिः) इच्छापूर्ति द्वारा (नः) हमें (पाहि) बचा । (अभिष्टि-भिः) योग्य वस्तुओंके दानसे (सदा) सदा हमें (पाहि) बचा ॥ ९ ॥

१ राया अनेहसा पथा याहि— धन होने पर भी मनुष्य पापरहित मार्गसे ही चले ।

[१४५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (तरूषसा) तारनेवाले (राया) धनसे (नः) हमें दुःखोंसे तार । अपने (महिमा) यशकी (अवसे) रक्षाके लिए हम (त्वा) तुझ (उग्रं चित्) उग्रके ही (सक्षत्) पास रहें । (मित्रं न) सूर्यके समान (महे अवसे) बडी रक्षाके लिए तेरे पास रहें । हे (ओजिष्ठ) ओजसे पूर्ण (त्रातः) पालक (अवितः) रक्षक और (अमर्त्य) अमर देव इन्द्र ! तू (कं चित्) किसी (रथं) रथपर चढकर आ । हे (अद्रिवः) वज्रधारी ! (अस्मत्) हममें (अन्यं) भिन्न (कं चित्) किसीके ऊपर (रिरिषेः) क्रोध कर, हे (अद्रि-वः) वज्रधारी ! (रिरिक्षन्तं चित्) हिंसकके ऊपर क्रोध कर ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्रसे रक्षित मनुष्योंके पास दुष्टोंकी सेना नहीं पहुँच सकती ॥ ८ ॥

मनुष्य धन प्राप्त करके अभिमानी न हो । वह सदा नम्र रहकर पापसे रहित मार्ग पर ही चले । धनके बल पर लोगों पर अत्याचार न करे । उत्तम मार्गसे चलनेवाला व्यक्ति हमेशा उपद्रवोंसे रहित होकर आगे ही बढता जाता है । यह इन्द्र सर्व व्यापक होनेसे पास भी है और दूर भी है इसलिए वह सब जगहसे अपने भक्तोंकी रक्षा करता है ॥ ९ ॥

इन्द्र हिंसक दुष्ट जनपर ही क्रोध करता और उसे ही मारता है । सज्जनको नहीं । वह अपने भक्तोंके यशकी रक्षा करता और मित्रके समान उसका हित करता है ॥ १० ॥

१४५५ पाहि नं इन्द्र सुष्टुत स्रिधो ऽवयाता सदमिद् दुर्मतीनां देवः सन दुर्मतीनाम् ।
हन्ता पापस्यं रक्षस — स्त्राता विप्रस्य मावंतः ।
अधा हि त्वां जनिता जीजंनद् वसो रक्षोहणं त्वा जीजंनद् वसो ॥ ११ ॥

[१३०]

(ऋषिः– परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता– इन्द्रः । छन्दः– अत्यष्टिः; १० त्रिष्टुप् ।)

१४५६ इन्द्रं याह्युपं नः परावतो नायमच्छां विदथानीव सत्पंति — रस्तं राजेव सत्पंतिः ।
हवांमहे त्वा वयं प्रयंस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजंसातये मंहिष्ठं वाजंसातये । ॥ १ ॥
१४५७ पिबा सोमंमिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमंवतं न वंसंग — स्तातृषाणो न वंसंगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टंमाय धायंसे ।
आ त्वां यच्छन्तु हरितो न सूर्य — महा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥

अर्थ— [१४५५] हे (सु–स्तुत) भलीभाँति स्तुतिके योग्य (इन्द्र) इन्द्र ! (स्रिधः) पापसे (नः) हमें (पाहि) बचा । तू (दुः–मतीनां) दुर्बुद्धि जनोंको (सदं इत्) सदा ही (अव–याता) नीचे ले जानेवाला है । (देवः) देव (सन्) होकर (दुः–मतीनां) दुष्ट बुद्धिवालोंको नीचे ले जानेवाला है । तू (पापस्य) पापी (रक्षसः) राक्षसका (हन्ता) घातक और (मा–वतः) मेरे जैसे (विप्रस्य) ज्ञानीका (त्राता) पालक है । (अध हि) इसी लिए हे (वसो) निवास देनेवाले ! (जनिता) उत्पन्न करनेवालेने (त्वा) तुझे (जीजनत्) प्रकट किया, हे (वसो) सबके आश्रय ! जनिताने (रक्षः हनं) दुष्ट विनाशक (त्वा) तुझ इन्द्रको (जजिनत्) प्रकट किया ॥ ११ ॥

१ पापस्य रक्षसः हन्ता विप्रस्य त्राता— यह इन्द्र पापी राक्षसोंका विनाशक और ज्ञानियोंका रक्षक है ।

[१३०]

[१४५६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं न) इस अग्निके समान (सत्–पतिः) श्रेष्ठपालक तू अन्य (विदथानि इव) यज्ञोंके समान (परा–वतः) दूर देशसे (नः उप) हमारे समीप (अच्छ) सामने (आ याहि) आ । (राजा-इव) राजाके समान (सत्–पतिः) श्रेष्ठोंका पालक तू हमारे (अस्तं) घर आ । (पुत्रासः न) पुत्र जैसे (पितरं) पिताको बुलाते हैं वैसे (वाज–सातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये (वयं) हम (प्रयस्वन्तः) अन्नवाले यजमान (सुते) यज्ञमें (सचा) साथ मिलकर (त्वा) तुझे (हवामहे) बुलाते हैं । (वाज–सातये) अन्न–लाभके लिये तुझ (मंहिष्ठं) दानीको बुलाते हैं ॥ १ ॥

[१४५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वंसगः) बैल (अवतं न) जैसे कुएँके जलको पीता है वैसे तू (कोशेन) जलसे (सिक्तं) सिंचे और (अद्रि–भिः) पत्थरोंसे कूट कर (सुवानं) निचोडे हुए (सोमं) सोमको (पिब) पी । (तातृ-षाणः) प्यासे (वंसगः) बैलके (न) समान उसे तू पी । (ते) तेरे (हर्यताय) चाहने योग्य (मदाय) मद और (तुविः–तमाय) बहुत बडे (धायसे) कर्मके लिये, (हरितः न) जैसे किरणें (सूर्यं) सूर्यको और (विश्वा इव) जैसे सारे (अहा) दिन भी (सूर्यं) सूर्यको ले जाते हैं, वैसे घोडे (त्वा) तुझे यज्ञ–स्थानमें (आ यच्छन्तु) ले जायें ॥ २ ॥

भावार्थ — यह इन्द्र अपनी प्रशंसा करनेवालोंकी पापसे रक्षा करता है और दुष्ट बुद्धियोंसे युक्त मनुष्योंका नाश करता है । यह इन्द्र पापी राक्षसोंका घातक और ज्ञानियोंका रक्षक है । इसी कामके लिए उत्पन्न करनेवालेने इस इन्द्रको प्रकट किया है और इसी कारण इन्द्र राक्षसोंके हन्ताके नामसे प्रसिद्ध हुआ है । इसी प्रकार राजा राक्षसोंका नाश और ज्ञानियोंकी रक्षा करे । प्रजा भी इन गुणोंसे युक्त व्यक्तिको ही राजा बनावे ॥ ११ ॥

जैसे पुत्र पिताको बुलाते हैं वैसे यजमान इन्द्र देवको बुलाते हैं । बुलाये जानेपर यह दूर देशसे भी अपने भक्तके घर जाकर उसे बहुत दान देता है ॥ १ ॥

यह इन्द्र श्रेष्ठ कर्मोंको करनेवाला है । इसके घोडे भी इसे उत्तम कर्मोंकी तरफ ही प्रेरित करते हैं । यह अपने घोडोंके द्वारा यज्ञोंमें जाकर सोम पीता है । इसी प्रकार राजा सदा श्रेष्ठ कर्म करे, तथा यज्ञोंमें जाकर सोम अर्थात ब्रह्मज्ञानियोंसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश ले ॥ २ ॥

१४५८ अविन्दद् दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥

१४५९ दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥

१४६० त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१४५८] (आङ्गिरः- तमः) अङ्गिरोंमें श्रेष्ठ (दिवः वज्री) तेजस्वी वज्रधारी इन्द्रने (सिषासन्) बाँटनेकी इच्छा करते हुए, (गवां इव) जैसे गौओंके (व्रजं) स्थानको और (अश्मनि) पहाडमें (परि- वीतं) छिपे (वेः) पक्षीके (गर्भं) बच्चेको, (अनन्ते) अन्तरहित (अश्मनि) पहाडके (अन्तः) भीतर ढूंढनेवाले प्राप्त करते हैं वैसे (गुहा) गुप्त-स्थानमें (नि-हितं) रखे हुए (निधिं) धनको (अविन्दत्) प्राप्त किया। उस (इन्द्रः) इन्द्रने (परी-वृताः) गुप्त (इषः) धन-द्वारोंको (अप अवृणोत्) खोल दिया, (इषः) धनके (परी-वृताः) छिपे हुए (द्वारः) द्वारोंको खोल दिया ॥ ३ ॥

[१४५९] (इन्द्रः) इन्द्र (गभस्त्योः) हाथोंमें (तिग्मं वज्रं) तीक्ष्ण वज्रको (दादृहाणः) दृढतासे पकडते हुए उसे शत्रु पर (असनाय) फेंकनेके लिये (क्षद्म-इव) जलकी तीव्र धाराके समान (सं श्यत्) और तेज करता है (अहि-हत्याय) असुरको मारनेके लिये (सं श्यत्) शस्त्रको तीक्ष्ण बनाता है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (ओजसा) बलसे (सं-विव्यानः) युक्त होता हुआ (शवोभिः) बलसे और (मज्मना) सामर्थ्यसे (तष्टा इव) जैसे बढई (वनिनः) वनके (वृक्षं) वृक्षको काटता है, उसी तरह (निवृश्चसि) शत्रुओंको काटता है, (परश्वा इव) कुल्हाडेके समान शत्रुको (नि वृश्चसि) काटता है ॥ ४ ॥

[१४६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तूने (रथान् इव) रथोंके समान, (नद्यः) नदियोंको (समुद्रं अच्छ) समुद्रकी ओर (सर्तवे) बहनेके लिये (वृथा) सहज ही (असृजः) छोड दिया। (वाज-यतः) बल बढानेवाले (रथान् इव) रथोंके समान प्रवाहोंको चलनेके लिये छोड दिया। (धेनूः इव) गायोंके समान (विश्वदोहसः) सम्पूर्ण कामना दुहनेवाली (ऊतीः) रक्षा करनेवाला नदियोंने (इतः) इस स्थानसे (मनवे) मनुष्यके लिए (अक्षितं) अक्षय, सबको (समानं) समान (अर्थं) इष्ट जलको (अयुञ्जत) जोडा। (विश्व-दोहसः) सब कुछ देनेवाली नदियोंने (जनाय) मनुष्यके लिये जल दिया ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिसप्रकार ढूंढनेवाले गायोंके बाडेको ढूंढ निकालते हैं अथवा बहुत बडे पहाडके अन्दर भी छिपा कर रखे हुए पक्षियोंके बच्चोंको ढूंढ निकालते हैं, उसी प्रकार सूर्यने अन्त रहित बादलोंमें छिपे हुए पानीके संग्रहको खोज निकाला और उसे बरसाकर इन्द्रने मानों मनुष्योंके लिए अन्नके द्वार ही खोल दिए। पानी बरसनेसे अन्न बहुत उत्पन्न होता है, यह स्पष्ट ही है ॥ ३ ॥

इन्द्र अपने वज्रको रगड कर तीक्ष्ण बनाता और जैसे जलकी धारा वृक्षको उखाडती या कुल्हाडेसे वृक्षोंको काटते हैं वैसे शत्रुको काटता है ॥ ४ ॥

इन्द्र नदियोंके (जलप्रवाह) को मुक्त करता और चलाता है तब वे प्रजाके पास पहुँचती हैं। वे जलप्रवाह कामदुघा गायके समान प्रजाओंकी हर कामनाओंको पूर्ण करते हैं। इसी तरह राजा अपने देशमें नहरों द्वारा प्रजाओंके पास पानी पहुंचाकर अन्नके द्वारा उन्हें सुखी और समृद्ध बनाये ॥ ५ ॥

१४६१ इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥
१४६२ भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥
१४६३ इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद् विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥ ८ ॥

अर्थ—[१४६१] हे इन्द्र ! (सु-अपाः) अच्छे कर्म करनेवाले (धीरः) धीर तथा (वसु-यन्तः) धनकी इच्छा करते हुए (आयवः) मनुष्योंने (रथं न) जैसे रथको बनाते हैं वैसे (ते) तेरे लिये (इमां) इस (वाचं) वाणीको (अतक्षिषुः) बनाया, स्तुति की । हे (विप्र) ज्ञानी इन्द्र ! (सुम्नाय) सुख, (शवसे) बल और (धना) धनोंको (सातये) देनेके लिए तुझे (शुम्भन्तः) प्रसन्न करनेवाले स्तोताओंने (अत्यं इव) घोडेके सदृश (वाजेषु) युद्धमें (वाजिनं) बलवान् (त्वां) तुझे (अतक्षिषुः) बनाया । (विश्वा) सम्पूर्ण (धनानि) धनोंको (सातये) देनेके लिये तुझे बनाया ॥ ६ ॥

[१४६२] हे (नृतो) नाचनेवाले, आनन्दसे उछलनेवाले (इन्द्र) इन्द्र ! (पूरवे) प्रजारूप (महि) महान् (दाशुषे) दानी (दिवः-दासाय) दिवोदासके लिए तूने (नवतिं) नव्वे (पुरः) नगर (भिनत्) तोडे । हे (नृतो) नृत्य करनेवाले ! तूने (दाशुषे) दानी वीरके लिए (वज्रेण) वज्रसे शत्रुके नगर तोडे । (उग्रः) उग्र वीर तूने (ओजसा) बलसे (महः) बडे (धनानि) धन (दयमानः) देते हुए (गिरेः) मेघके पास (अतिथिग्वाय) अतिथिग्वके लिए (शम्बरं) शम्बरका (अव अभरत्) नाश किया । (ओजसा) बलसे (विश्वा) सब (धनानि) धन देते हुए शत्रुका नाश किया ॥ ७ ॥

१ दिवः दासः— तेजस्वी धनोंका दान करनेवाला ' दाश्ट दाने । '
२ आतिथिग्व— अतिथियोंके पास जाकर उनका सत्कार करनेवाला ।

[१४६३] (शतं-ऊतिः) सैकडों रक्षाओंसे युक्त (इन्द्रः) इन्द्रने (समत्-सु) मिलकर लडे जानेवाले (विश्वेषु) सारे (आजिषु) युद्धोंमें (आर्यं) श्रेष्ठ (यजमानं) यजमानकी (प्र आवत्) रक्षा की । (स्वः-मीळ्हषु) सुखको प्राप्त करानेवाले (आजिषु) युद्धोंमें रक्षा की । (मनवे) ज्ञानी मनुष्यके लिये (अव्रतान्) नियम तोडनेवालेको (शासत्) दण्ड दिया और (कृष्णां त्वचं) काले वर्णवालोंको (अरन्धयत्) विनष्ट किया । वह (दक्षत् न) जलाते हुए अग्निके समान (विश्वं) सारे (ततृषाणं) हिंसकोंको (ओषति) जला देता है (अर्शसानं) हिंसा करनेवालोंको (नि ओषति) सर्वथा जला देता है ॥ ८ ॥

१ विश्वेषु आजिषु आर्यं आवत्— इन्द्र सब युद्धोंमें केवल श्रेष्ठ मनुष्यको ही रक्षा करता है ।
२ मनवे अव्रतान् शासत्— मननशील पुरुषके लिए नियम तोडनेवालोंपर शासन करता है ।
३ दक्षत् न विश्वं ततृषाणं ओषति— इन्द्र जलनेवाली अग्निके समान सारे हिंसकोंको जला देता है ।

भावार्थ— जैसे विद्वान् लोग रथको उत्तम कार्यके योग्य बनाते हैं वैसे स्तोता लोग इन्द्रके योग्य स्तोत्र कहते हैं । जैसे सारथि बलवान् घोडेको और अधिक बलवान् और विजयके योग्य बनाते हैं वैसे स्तोता धन पानेके लिये इन्द्रमें अधिक उत्साह भरते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्र युद्धमें उत्साहसे जाता है और तेजस्वी धनोंका दान करनेवाले तथा अतिथिका सत्कार करनेवालोंके जयके लिए शम्बर आदिका नाश करता है तथा उन्हें अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ७ ॥

१४६४ सूर॑श्च॒क्रं प्र वृ॑हज्जा॒त ओज॑सा प्र॒पि॒त्वे वाच॑मरु॒णो मु॑षायती॒—शा॒न आ मु॑षायति ।
उ॒शना॒ यत् प॑रा॒वतो॒ऽज॑ग॒न्नू॒तये॑ कवे ।
सु॒म्नानि॒ विश्वा॒ मनु॑षेव तु॒र्वणि॒—रहा॒ विश्वे॑व तु॒र्वणिः ॥ ९ ॥

१४६५ स नो॒ नव्ये॑भिर्वृषकर्मन्नु॒क्थैः पुरां॑ दर्तः पा॒युभिः॑ पाहि श॒ग्मैः ।
दि॒वो॒दा॒सेभि॑रिन्द्र॒ स्तवा॑नो वावृधी॒था अहो॑भिरिव॒ द्यौः ॥ १० ॥

[१३१]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१४६६ इन्द्रा॑य॒ हि द्यौरसु॑रो॒ अन॑म्नते॒—न्द्रा॑य म॒ही पृ॑थि॒वी वरी॑मभि॒—र्द्यु॒म्नसा॑ता॒ वरी॑मभिः ।
इन्द्रं॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सो दे॒वासो॑ दधिरे पु॒रः ।
इन्द्रा॑य॒ विश्वा॒ सव॑नानि॒ मानु॑षा रा॒तानि॑ सन्तु॒ मानु॑षा ॥ १ ॥

अर्थ— [१४६४] यह (सूरः) प्रेरक इन्द्र (जातः) प्रकट होकर अपने (ओजसा) बलसे अपना (चक्रं) चक्र (प्र बृहत्) ऊपर उठाता है। वह (अरुणः) तेजस्वी इन्द्र (प्रपित्वे) पास जाकर शत्रुकी (वाचं) वाणीको (मुषायति) छीन लेता है अर्थात् समीप जानेपर शत्रु चुप हो जाते हैं। वह (ईशानः) सबका स्वामी उनकी वाणीको मानो (आ मुषायति) चुरा लेता है। हे (कवे) मेधावी इन्द्र ! (यत्) जब तू (उशना) उशनाकी (ऊतये) रक्षाके लिए (परा वतः) दूरसे (अजगन्) पास पहुँचता है तब (मनुषाः इव) मनुष्यके समान उसे (विश्वा) सब (सुम्नानि) सुख (तुर्वाणिः) बाँटनेवाला बन। (विश्वा इव अहा) सारा ही दिन दान करनेके समान सदा (तुर्वणिः) दाना बन ॥ ९ ॥

[१४६५] हे (वृषकर्मन्) बलके कर्म करनेवाले और (पुरां) नगरोंके (दर्तः) तोडनेवाले इन्द्र ! (सः) वह तू हमारे (नव्येभिः) नये (उक्थैः) स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर (पायुभिः) रक्षक, (शग्मैः) सुखकारक साधनोंसे (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कर। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दिवोदासेभिः) दिवोदासके पुत्रोंसे (स्तवानः) प्रशंसित होकर (अहोभिः इव) जैसे दिनोंसे (द्यौः) सूर्य, वैसे ही तू भी (वावृधीथाः) बढ ॥ १० ॥

[१३१]

[१४६६] (असुरः) शक्तिशाली असुर (द्यौः) द्यौ (इन्द्राय हि) इन्द्रके सामने (अनम्नत) नम्र हो गई। (मही) बडी (पृथिवी) पृथिवी अपने (वरीमभिः) श्रेष्ठ वस्तुओंके साथ (इन्द्राय) इन्द्रके सामने नम्र हो गई (द्युम्नसाता) अन्नकी प्राप्तिके युद्धमें (वरीमभिः) उत्तम साधनोंसे युक्त शत्रु भी नम्र हो गए। (विश्वे) सारे (सजोषसः) समान उत्साहवाले (देवासः) देवोंने (इन्द्रं) इन्द्रको सबसे (पुरः) आगे (दधिरे) स्थापित किया। (विश्वा) सारे (मानुषा) मनुष्यसम्बन्धी (सवनानि) सवन और (मानुषा) मनुष्योंके दिये हुए (रातानि) दान (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (सन्तु) हों ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र सब युद्धोंमें केवल श्रेष्ठ मनुष्यकी ही रक्षा करता है, तथा ऐसे मननशील श्रेष्ठ मनुष्योंको तंग करनेवाले दुष्ट पुरुषोंको दण्ड देकर अपने शासनमें रखता है। पर जब हिंसक बहुत ज्यादा उपद्रव करने लग जाते हैं, तब यह इन्द्र उन्हें उसी प्रकार भस्म कर देता है, जिस प्रकार अग्नि पदार्थोंको भस्म कर देती है। राजा भी सदा श्रेष्ठ मनुष्योंकी ही सहायता करे, तथा इसका ध्यान रखे कि उपद्रवकारी हिंसक ऐसे मननशील ज्ञानियोंको कभी तंग न करें। यदि तंग करें तो उन्हें दण्ड देकर नियंत्रणमें रखे, या फिर विनष्ट कर दे ॥ ८ ॥

यह शूरवीर तथा अन्य वीरोंको प्रेरणा देनेवाला इन्द्र शस्त्र हाथमें लेकर शत्रुओंके पास जाता है, तब वह शत्रुओंको चुप करा देता है। उसके भयसे शत्रु-दलमें सन्नाटा छा जाता है। तब वह इन्द्र अपने चाहनेवाले भक्तोंकी रक्षा करता है और ऋषि और मनुष्योंमें सुखोंका विभाग करता है ॥ ९ ॥

बलके कर्म करनेवाला यह इन्द्र स्तुतिसे प्रसन्न होकर सुखदायी पदार्थ देता है और दिन जैसे सूर्यका प्रकाश बढाते हैं वैसे स्तोत्र इन्द्रकी शक्ति बढाते हैं ॥ १० ॥

१४६७ विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ २ ॥
१४६८ वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३ ॥
१४६९ विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४६७] तुझे (वृष-मन्यवः) दानी माननेवाले (पृथक्) पृथक् पृथक् (विश्वेषु हि) सारे ही (सवनेषु) यज्ञोंमें (त्वा) तुझ (एकं) एक (समानं) समानरूपसे पूज्य इन्द्रको अन्नादि (तुञ्जते) देते हैं । (स्वः) स्वर्गकी (सनिष्यवः) प्राप्तिके अभिलाषी (पृथक्) पृथक् पृथक तुझे देते हैं । (यज्ञैः) यज्ञोंसे तुझे (चितयन्तः) जगानेवाले हम (आयवः) मनुष्य (पर्षणिं) सागरसे पार करानेवाली (नावं न) नावके समान (तं) उस (त्वा) तुझ (इन्द्रं न) इन्द्रको ही (शूषस्य) बलके (धुरि) धुरेमें (धीमहि) स्थापित करते हैं । हम (आयवः) स्तोता लोग (स्तोमेभिः) स्तोत्रोंसे तुझ (इन्द्रं) इन्द्रको धारण करते हैं ॥ २ ॥

[१४६८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तू (वृषणं) बलयुक्त तथा (सचा-भुवं सचा-भुवं) सदा साथ रहनेवाले (वज्रं) वज्रको (आविः करिक्रत्) प्रकट करते हुए (स्वः) स्वर्ग जाने और (गव्यन्ता) गाय प्राप्त करनेकी इच्छावाले (द्वा) दोनों (जना) पति-पत्नियोंको वहां (सं-ऊहसि) ले जाता है तब हे (इन्द्र) इन्द्र ! (गव्यस्य) गायोंके (व्रजस्य) समूहकी (साता) प्राप्तिके युद्धमें तुझे (निः सृजः) प्रेरित करनेवाले, स्वयं (सक्षन्तः) जानेवाले और तुझे (निः-सृजः) ले जानेवाले (अवस्यवः) रक्षाके अभिलाषी (मिथुनाः) पत्नी सहित यजमान (त्वा) तेरे निमित्त यज्ञका (वि ततस्रे) विस्तार करते हैं ॥ ३ ॥

[१४६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने शत्रुके (शारदीः) शरद्में निवास करने योग्य (पुरः) नगरोंको अव अतिरः) नष्ट किया, उन्हें (सासहानः) दबाते हुए (अव अतिरः) नष्ट किया, तब (पूरवः) प्रजाओंने (ते) तेरे (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रमको (विदुः) जाना । हे (शवसः पते) बलके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (तं) उस (अयज्युं) यज्ञरहित (मर्त्यं) मनुष्यको (शासः) दण्डित किया और उससे (महीं) विशाल (पृथिवीं) पृथिवी और (इमाः) इन (अपः) जलोंको (अमुष्णाः) छीना । (मन्दसानः) हर्षके साथ (इमाः) इन (अपः) जलोंको छीना ॥ ४ ॥

भावार्थ— द्यौ और पृथिवी युद्धमें इन्द्रकी सहायता करते हैं और देव इसे अपना नेता चुनकर उसे अन्न पहुँचाते हैं । सभी समान उत्साहवाले देव इस इन्द्रको आगे स्थापित करते हैं, अर्थात् इन्द्र युद्धोंमें सबसे आगे रहता है । इसीलिए इस इन्द्रकी शक्तिका कोई मुकाबला नहीं कर सकता ॥ १ ॥

इन्द्र सबका समान पूज्य है । स्तोता लोग बलके कार्योंमें उसे ही लगाते हैं । सुखकी अभिलाषा करनेवाले उस इन्द्रकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥

पत्नी और पति मिलकर इन्द्रके लिये यज्ञ रचाते हैं । वे दोनों जन स्वर्ग जाने और गौ आदि पशु प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इन्द्रको हर तरहसे प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

असुर जल और पृथिवीको घेर कर अपने अधीन रखते हैं । इन्द्र उनका घेरा तोडकर पृथिवी और जलको मुक्त करता है यह इन्द्रका बडा पराक्रम है । यह यज्ञ न करनेवालेको दण्ड देता है ॥ ४ ॥

१४७० आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन् मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥
१४७१ उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥
१४७२ त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयु–रमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मति–र्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४७०] हे (वृषन्) बलवान इन्द्र ! (यत्) जिस कारण (मदेषु) उत्साहके समय तूने (उशिजः) भक्तोंकी (आविथ) रक्षा की, (यत्) जिस कारण (सखीयतः) मित्रता चाहनेवालोंकी (आविथ) रक्षा की (आत् इत्) इस कारण (ते) तेरे (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रमको उन्होंने (चर्किरन्) चारों ओर फैलाया । तूने (पृतनासु) युद्धोंमें धन (प्र वन्तवे) बाँटनेके लिये (एभ्यः) इनको प्रसन्न करनेवाला (कारं) कार्य (चकर्थ) किया । (ते) उन्होंने (अन्यां-अन्यां) एक दूसरेके (नद्यं) धनको (सनिष्णत) प्राप्त कराया, (श्रवस्यन्तः) धनकी इच्छा करते हुए (सनिष्णत) प्राप्त कराया ॥ ५ ॥

[१४७१] (उतो) और वह इन्द्र (नः) हमारे (अस्याः) इस (उषसः) उषःकालका (जुषेत हि) सेवन करे । । हे इन्द्र ! तू हमारी (हवीमभिः) पुकारों द्वारा इस (अर्कस्य) स्तुति और (हविषः) हविको (बोधि) जान, (स्वः-साता) सुख प्राप्तिके युद्धमें (हवीमभिः) स्तुतिओं द्वारा जान । हे (वज्रिन्) वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जिस कारण (वृषा) दाता तू (मृधः) हिंसकोंको (हन्तवे) मारनेके लिये (चिकेतसि) जागता रहता है अतः (अस्य) इस (नवीयसः) नये (वेधसः) ज्ञानी, (नवीयसः) नये ज्ञान रखनेवाले (मे) मुझ स्तोताकी (मन्म) स्तुति (आ श्रुधि) सुन ॥ ६ ॥

१ वृषा मृधः हन्तवे चिकेतति— यह बलवान् इन्द्र हिंसकोंको मारनेके लिए हमेशा सावधान रहता है ।

[१४७२] हे (तुवि-जात) बहुत प्रसिद्ध (शूर) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (यः) जो (नः) हमारे साथ (अघायति) पाप करना चाहता है, (त्वं) तू (वावृधानः) बढते और (अस्मयुः) हमें चाहते हुए (तं) उस (अमित्र-यन्तं) अमित्रसा व्यवहार करनेवाले (मर्त्यं मर्त्यं) प्रत्येक मनुष्यको (वज्रेण) वज्रसे (जहि) मार । (सुश्रवः तमः) सुननेमें श्रेष्ठ तू हमारी पुकार (शृणुष्व) सुन । (दुः-मतिः) दुष्ट बुद्धिवाला शत्रु (रिष्टं न) टूटे हुए वस्तुके समान हमारे (यामन्) मार्गमेंसे (अप भूतु) दूर हो । (विश्वा) सारी (दुः-मतिः) दुष्ट बुद्धि (अप भूतु) दूर हो ॥ ७ ॥

१ अमित्रयन्तं मर्त्यं जहि— अमित्र या दुश्मनकासा व्यवहार करनेवाले मनुष्यको यह इन्द्र मारता है ।

भावार्थ— जो इन्द्रको चाहता और उससे मित्रता जोडता है वह उसकी रक्षा करता और उसके लिये आनन्दसे लडता है । वह हमेशा अपने मित्रोंके अनुकूल ही कार्य करता है, और उन्हें पर्याप्त धन देता है ॥ ५ ॥

जब यज्ञोंमें स्तोत्र द्वारा इन्द्रको पुकारते हैं तब वह आकर स्तुति और हवि प्राप्त करता है और शत्रुओंको मारनेके लिये नवीन स्तोताओंकी पुकार भी सुनता है । यह शत्रुओंको मारनेके कार्यमें हमेशा सजग रहता है, कभी भी वह शत्रु-दलनके काममें असावधान नहीं रहता । इसी तरह राजा भी शत्रुदलनके कार्यमें सदा सावधान रहे ॥ ६ ॥

इन्द्र दुर्बुद्धि और दुष्ट विचारवालेको प्रजाके बीच नहीं रहने देता । वह अपने भक्तोंसे दुश्मनकासा व्यवहार करने-वालोंको मारता है । तथा उन्हें मार्गसे दूर करता है ॥ ७ ॥

[१३२]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः, ६ (१ अर्धर्चस्य) इन्द्रापर्वतौ । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१४७३ त्वया वयं मघवन् पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नह—न्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन् यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥ १ ॥

१४७४ स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्म—न्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥ २ ॥

१४७५ तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन् यज्ञे वारमकृण्वत क्षय—मृतस्य वारसि क्षयम् ।
वि तद् वोचेरध द्विता—ऽन्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥

[१३२]

अर्थ— [१४७३] हे (मघ-वन्) धनसम्पन्न इन्द्र ! (त्वया) तुझ (इन्द्रत्वा-ऊताः) इन्द्रसे रक्षित (वयं) हम लोग (पूर्व्ये) पहले (धने) युद्धमें ही (पृतन्यतः) युद्धकी इच्छावाले शत्रुओंको (सासह्याम) दबा दें। (वनुष्यतः) हिंसाकी इच्छावालोंको (वनुयाम) मार दें। (अस्मिन्) इस (नेदिष्ठे) समीपके ही (अहनि) दिन में तू (सुन्वते) सवनकर्ताको (अधिवोच नु) कह। हम (भरे) युद्धमें उत्तम कार्य (कृतं) करनेवाले तुझे (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञमें (वि चयेम) चुनें। हम (वाज-यन्तः) बलवान् बनते हुए (भरे कृतं) युद्धके नेताको ग्रहण करें ॥ १ ॥

[१४७४] (स्वः-जेषे) सुखको प्राप्त करानेवाले (भरे) युद्धमें (आप्रस्य) श्रेष्ठ मनुष्यके (वक्मनि) रास्तेमें (उषः-बुधः) प्रातः जागनेवालेके (स्वस्मिन्) अपने (अञ्जसि) प्रत्यक्ष व्यवहारमें तथा (क्राणस्य) उत्तम कर्म करनेवालेके (स्वस्मिन्) अपने (अञ्जसि) नित्य कर्ममें विघ्न डालनेवाले शत्रुको (इन्द्रः) इन्द्रने (यथा विदे) ज्ञानके अनुसार (अहन्) मारा और वह (शीर्ष्णा-शीर्ष्णा) प्रत्येक शिरसे, मनुष्यसे (उप-वाच्यः) स्तुतिके योग्य हुआ। हे इन्द्र ! (ते) तेरे (रातयः) दान (अस्म-त्रा) हमारी (सध्र्यक्) ओर आनेवाले (सन्तु) हों, तुझ (भद्रस्य) मङ्गलमय स्वामीके (रातयः) दान हमारे लिये (भद्राः) मङ्गलकारी हों ॥ २ ॥

[१४७५] (यस्मिन्) जिस (यज्ञे) यज्ञमें (वारं) उत्तम (क्षयं) स्थान (अकृण्वत) बनाया गया है, वहाँ (प्रत्न-था) पूर्वके समान (ते) तेरे लिये (तत् तु) वही (शुशुक्वनं) तेजस्वी (प्रयः) अन्न प्राप्त हो। तू (ऋतस्य) सत्यका (क्षयं) स्थान (वाः) प्राप्त करानेवाला (असि) है। तू (तत्) उस स्थानका (वि वोचेः) वर्णन कर। (अध) और (रश्मिभिः) किरणोंसे (द्विता अन्तः) दोनों लोकोंके बीच सारे लोग उसे ही (पश्यन्ति) देखते हैं। (सः घ) वही (गो-एषणः) गौवें प्राप्त करानेवाला (इन्द्रः) इन्द्र सत्यका स्थान (अनुविदे) जानता है। (गो-एषणः) गायोंका ढूँढनेवाला इन्द्र (बन्धुक्षिद्भ्यः) बन्धुके साथ रहनेवालोंके लिये गाय आदि प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

१ ऋतस्य क्षयं वाः असि— यह इन्द्र सत्यका स्थान प्राप्त करानेवाला है।

भावार्थ स्तोता इन्द्रके सहायसे शत्रुको पहले आक्रमणमें ही जीत लेना चाहते हैं और थोडे दिनोंमें अपनी अभीष्ट सिद्धि करना चाहते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र प्रत्येक व्यवहारमें बाधक शत्रुको मारता और अपना दान यजमानोंकी ओर प्रेरित करता है। उसके दान सदा कल्याण करनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

केवल इन्द्र ही उस सत्यके स्थानको जानता है और वही विद्वानोंके सामने उस सत्य स्थानका वर्णन करता है। तब ज्ञानीजन उस स्थानको देखते हैं, उसका साक्षात्कार करते हैं। अतः इन्द्रको उस सत्य स्थानका प्राप्त करानेवाला कहा है ॥ ३ ॥

१४७६ नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रज-मिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।
ऐभ्यः समान्या दिशा ऽस्मभ्यं जेषि योत्सि च ।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४ ॥

१४७७ सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षय-द्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजावदिद् बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥

१४७८ युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय च्छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥

अर्थ—[१४७६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जो तूने (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गिरा लोगोंके लिये (व्रजं) गायोंके समूहको (अप अवृणोः) खुला किया, उन्हें (शिक्षन्) देते हुए (व्रजं) गायोंके निकलनेके मार्गको (अप) खोला। (एभ्यः) इन्हींके (समान्या) समान (दिशा) ढंगसे तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये भी धनादि (आ जेषि) जीतता (योत्सि च) और लडता है । तू (कंचित्) किसी भी (अव्रतं) व्रत रहितको (सुन्वद्भ्यः) यज्ञ करनेवालेके लिए (रन्धय) नष्ट कर, (हृणायन्तं चित्) क्रोध करनेवाले (अव्रतं) पापीको वशमें कर। (नु) शीघ (इत्था) इसप्रकार (पूर्व-था च) पहलेके समान ही (ते) तेरा कार्य (प्र-वाच्यं) कहने योग्य, सुनाने योग्य हो ॥ ४ ॥

[१४७७] (यत्) जब (शूरः) शूर इन्द्रने अपने (क्रतु-भिः) कामोंके साथ (जनान्) भक्त मनुष्योंकी (सं) ओर (ईक्षयत्) देखा, तब उन (श्रवस्यवः) अन्नके अभिलाषी लोगोंने (धने) युद्धके (हिते) छिड जाने पर शत्रुओंको (तरुषन्त) मारा, (श्रवस्यवः) यशके अभिलाषी जनोंने उस इन्द्रकी (प्र यक्षन्त) विशेष पूजा की। उन्होंने (ओजसा) बलसे शत्रुओंको (बाधे) नष्ट करनेके लिये (तस्मै) उसको (प्रजावत्) प्रजायुक्त (एव) ही (आयुः) अन्न (अर्चन्ति) समर्पित किया । वे (धीतयः धीतयः) कर्म-कुशल मनुष्य (देवान् अच्छ न) देवोंके समान (इन्द्रे) इन्द्रमें अपना (ओक्यं) निवास (दिधिषन्त) धरते हैं, बनाते हैं ॥ ५ ॥

[१४७८] हे (पुरः युधा) आगे होकर लडनेवाले (इन्द्रा-पर्वता) इन्द्र और पर्वत ! (यः) जो (नः) हमारे साथ (पृतन्यात्) युद्ध करे। (युवं) तुम दोनों (तं) उसे मारो। (तं-तं इत्) उन सबको ही (अप-हतं) मारो। (वज्रेण) वज्रसे (तं-तं इत्) उन सबको ही (हतं) मारो। (यः) जो शत्रुओंको (दूरे) दूर (चत्ताय) फेंकनेकी (छन्त्सत्) इच्छा करता है वह (यत्) जो (गहनं) गुप्त स्थान है उसे भी (इनक्षत्) प्राप्त कर लेता है। हे (शूर) शूर इन्द्र ! (अस्माकं) हमारे (शत्रून्) शत्रुओंको (विश्वतः) सब ओरसे (परि) दबा दे। शत्रुओंको (दर्मा) फाड देनेवाला तू उन्हें (विश्वतः) सब ओरसे (दर्षीष्ट) चीर फाड दे ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्र शत्रुओंको जीत कर अङ्गिरा लोगोंकी गायें छुडा लाता है। व्रतहीनोंको व्रती लोगोंके अधीन रखता है। उनके क्रोधको भी दूर करता है ॥ ४ ॥

इन्द्रके पराक्रमसे ही उसके भक्तोंमें बल आ जाता है। वे इन्द्रसे रक्षित उसीकी आज्ञामें रहना चाहते हैं। इन्द्रके देखने मात्रसे लोगोंमें बलका संचार होने लगता है और वे हिंसकोंको विनष्ट करने लग जाते हैं। उत्तम कर्म करनेवाले जन इन्द्रको ही अपना आश्रय स्थान बनाना चाहते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र वज्रसे शत्रुको मारता है। वह इस कार्यमें पर्वतको साथी बनाता है। वज्रमें कई पर्व होनेके कारण उसे पर्वत कहा जाता है। यह इन्द्रका शस्त्र है। इन्द्र और उसका वज्र ये दोनों मिलकर शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ ६ ॥

[१३३]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- १ त्रिष्टुप, २-४ अनुष्टुप, ५ गायत्री, ६ धृतिः, ७ अष्टिः ।)

१४७९ उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् ॥ १ ॥

१४८० अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥

१४८१ अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥

१४८२ यासां तिस्रः पञ्चाशतो ऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत् सु ते मनायति तकत् सु ते मनायति ॥ ४ ॥

---

[१३३]

अर्थ—[१४७९] मैं (ऋतेन) यज्ञके बलसे (उभे) दोनों (रोदसी) लोकोंको (पुनामि) पवित्र करता हूँ। (सं दहामि) जलाता हूँ। (यत्र) जहाँ (अनिन्द्राः) इन्द्रके विरोधी सारे (महीः) बडे (द्रुहः) शत्रुओंको (अमित्राः) शत्रु (अभि-व्लग्य) लडते हुए (हताः) मारे गये, (तृळ्हाः) मरे हुए वे सब (वैल-स्थानं परि) श्मशान स्थानपर (अशेरन्) सो गये ॥ १ ॥

[१४८०] हे (अद्रि-वः) वज्रवाले इन्द्र ! तू (यातुमतीनां) हिंसावाले शत्रुओंके (शीर्षा) शिर पर (अभि-व्लग्य चित्) पहुँच कर अपने (वटूरिणा) विशाल (पदा) पाँवसे (महा-वटूरिणा) अपने अत्यधिक विशाल (पदा) पाँवसे उन्हें (छिन्धि) नष्ट कर दे ॥ २ ॥

[१४८१] हे (मघ-वन्) धनवाले इन्द्र ! तू (अर्मके) कुत्सित (वैल-स्थानके) मरे लोगोंके स्थानमें एवं (अर्मके) घृणित (महा-वैलस्थे) बडे श्मशानोंमें (आसां) इन (यातुमतीनां) हिंसा करनेवाली सेनाओंका (शर्धः) बल (अव जहि) नष्ट कर ॥ ३ ॥

[१४८२] हे इन्द्र ! (यासां) जिन शत्रुकी सेनाओंके (तिस्रः) तीन (पञ्चाशतः) पचास अर्थात् डेढसौ लोगोंको अपने (अभि-व्लङ्गैः) घेरनेवाली चालोंसे तूने (अप-अवपः) मार दिया, भक्त-वर्ग (ते) तेरे (तत्) उस कर्मकी (सु) बहुत (मनायति) प्रशंसा करता है, (ते) तेरे (तकत्) उस कर्मकी (सु मनायति) बडी प्रशंसा करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्रके सभी विरोधी मारे जाते हैं। जब शत्रु अधिक मारे जाते हैं तब उनके मृत देहोंसे युद्ध-क्षेत्र श्मशान दिखाई पडता है ॥ १ ॥

इन्द्रके पांव बहुत बडे हैं अर्थात् इन्द्रमें आक्रमण करनेकी शक्ति बहुत है, अतः यह इन्द्र अपनी शक्तिसे शत्रुओंको चूर-चूर कर देता है ॥ २ ॥

युद्धमें मृतकोंका ढेर लग जाता है और वह स्थान भयानक और बहुत बुरा दिखाई देता है इन्द्र ऐसे श्मशानके समान भयानक स्थानोंमें शत्रुओंको बडी संख्यामें मारता है ॥ ३ ॥

इन्द्रने इस युद्धमें डेढ सौ असुरोंको मारा, उसका यह कर्म प्रशंसाके योग्य है। इन्द्र शत्रुओंको किस प्रकार घेरा जाए, इस विद्यामें बहुत प्रवीण है इसलिए वह शत्रुओंको आसानीसे मार देता है ॥ ४ ॥

१४८३ पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥

१४८४ अवमंह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभि-र्वधैरुग्रेभिरीयसे ।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभि-स्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

१४८५ वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पिशङ्गभृष्टि) कुछ लाल रंगके शस्त्र धारण करनेवाले (अम्भृणं) महान्, विशाल शरीरधारी (पिशाचि) दुष्टको (सं मृण) मार दे । तू (सर्वं) सारे (रक्षः) राक्षसोंको (नि बर्हय) नष्ट कर दे ॥ ५ ॥

[१४८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू उस (महः) बडे असुरको (अवः) नीचा करके (दादृहि) नष्ट कर दे । तू (नः) हमारी पुकार (श्रुधि) सुन । हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (द्यौः) द्यौ (क्षाः न) पृथिवीके समान (भीषा) भयसे (शुशोच हि) शोक करने लगी । हे (अद्रिवः) वज्रधारी ! (घृणात् न) जैसे अग्निसे पदार्थ जलने लगते हैं, वैसे (भीषा) भयसे जलने लगी । (शुष्मिभिः) बलवान् पुरुषोंसे युक्त (शुष्मिन्तमः हि) श्रेष्ठ वीरों वाला तू (उग्रेभिः) कठोर (वधैः) शस्त्रोंसे युक्त होकर शत्रुओंके पास (ईयसे) जाता है । हे (अप्रति-इतः) पीछे न लौटनेवाले (शूर) शूर ! (अपुरुष-घ्नः) अपने वीरोंको नाशसे बचानेवाला तू (सत्व-भिः) वीरोंके साथ जाता है । हे (शूर) वीर इन्द्र ! तू (त्रि-सप्तैः) इक्कीस (सत्वभिः) वीरोंके साथ जाता है ॥ ६ ॥

[१४८५] यजमान (सुन्वन्) सवन करता हुआ (क्षयं) घर (वनोति हि) प्राप्त करता है । वह (सुन्वानः हि स्म) यज्ञ कराते हुए ही (परीणसः) सब ओर फैले हुए (द्विषः) द्वेषियोंको (अव यजति) दूर करता है । (देवानां) देवोंके (द्विषः) द्वेषियोंको (अव) दूर भगाता है । वह शत्रुके (अवृतः) घेरेमें न आनेवाला (वाजी) बलवान् इन्द्र (सुन्वानः इत्) याजकोंको ही (सहस्रा) सहस्रों धन (सिषासति) देना चाहता है, तब (इन्द्रः) इन्द्र (सुन्वानाय) सवन करनेवालेके लिये (आ भुवं) धन (ददाति) देता है । वह यजमानको (आ-भुवं) भक्तके योग्य (रयिं) धन (ददाति) देता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन्द्रके शत्रु भयंकर और रंग-बिरंगे शस्त्रास्त्रवाले होते हैं । उनको वह मारता है ॥ ५ ॥

जब राक्षस और दुष्ट बहुत बढ जाते हैं और वे सर्वत्र अत्याचार करने लगते हैं, तब उनके अत्याचारोंको देखकर पृथ्वी कांपने लगती है और उसी तरह द्युलोक भी कांपने लगता है, तब इन्द्र इन अत्याचारियोंपर आक्रमण करता है और अपने शस्त्रास्त्रोंसे उन्हें मारता है ॥ ६ ॥

इन्द्रका भक्त द्वेष नहीं करता और दूसरोंके द्वेषको भी दूर हटा देता है । जो इन्द्रको सहस्रों धनतक दे सकता है वही उसका सच्चा भक्त है और उसे ही स्थिर धन प्राप्त होता है । जो इन्द्रको हवि देता है, उसे ही इन्द्र धन प्रदान करता है ॥ ७ ॥

[१३४]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- वायुः । छन्दः- अत्यष्टिः, ६ अष्टिः ।)

१४८६ आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये ।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

१०८७ मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवो ऽस्मत् क्राणासः सुकृता अभिद्यवो
गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।
यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः ।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥ २ ॥

[१३४]

अर्थ— [१४८६] हे (वायो) विद्वान्! (इह सोमस्य) इस संसारमें औषधी आदि पदार्थोंको (पूर्वपीतये) अगले सज्जनोंके पीनेके समान (पूर्वपीतये) जो पीना है, उसके लिए (जुवः) वेगवान् (रारहाणाः) दौडनेवाले पवन (त्वा) तुझे (प्रयः) प्रीतिपूर्वक (अभि-आ-वहन्तु) चारों ओरसे पहुंचावें, हे (वायो) ज्ञानवान् पुरुष! जिस (ते) आपकी (ऊर्ध्वा) उन्नतियुक्त अति उत्तम (सूनृता) प्रियवाणी (जानती) और ज्ञानवती हुई स्त्री (मनः अनुतिष्ठतु) मनके अनुकूल स्थित हो। सो आप (मखस्य) यज्ञके सम्बन्धमें (दावने) दान करनेवालेके लिए, जैसे वैसे (दावने) दान देनेके लिए (नियुत्वता) जिसमें बहुत घोडे विद्यमान हैं, उस (रथेन) रमण करने योग्य यानसे (आ याहि) आओ ॥१॥

१ रारहाणाः— अतिशय गतिवाले, चपल। (रहि गतौ)
२ प्रयः— अन्न, यज्ञ, आनन्द।
३ सूनृता— सत्यनिष्ठ, वाणी।

[१४८७] हे (वायो) वायो! (त्वा) तुमको (अस्मत्) हमारे द्वारा (सुकृताः) अच्छी तरहसे तैयार किए (क्राणासः) उत्साह बढानेवाले (अभिद्यवः) देदीप्यमान तथा (गोभिः) गौके दूधसे मिलाये गए (इन्दवः) प्रसन्नताको देनेवाले ये सोमरस (मन्दन्तु) आनन्दित करें। (क्राणाः) कर्मशील पुरुषार्थी (ऊतयः) रक्षाके इच्छुक मनुष्य (दक्षं) बलको (इरध्यै) प्राप्त करनेके लिए (सचन्ते) उद्योग करते हैं। तथा (धियः) सभी बुद्धिमान् पुरुष (सध्रीचीनाः) एक साथ प्रयत्नशील तथा (नियुताः) संघटित होकर (धियः) अपनी बुद्धिके द्वारा (दावने) दानके लिए तुम्हारा ही (उपब्रुवत ईं) स्तवन करते हैं ॥ २ ॥

१ क्राणासः— क्रियाशील। "क्राणाः कुर्वाणाः" (नि. ३।५।५)
२ इरध्यै— प्राप्तिके लिए, "इर गतौ"
३ क्राणाः ऊतयः दक्षं इरध्यै सचन्ते— कर्मशील पुरुषार्थी, रक्षाके इच्छुक मनुष्य बलको प्राप्त करनेके लिए उद्योग करते हैं।
४ धियः सध्रीचीनाः नियुतः धियः दावने उपब्रुवत— बुद्धिमान् पुरुष एक साथ प्रयत्नशील तथा संघटित होकर अपनी बुद्धिके द्वारा दानके लिए तुम्हारा ही स्तवन करते हैं।

भावार्थ— विद्वानोंकी सलाहके अनुसार लोग औषधिरसोंका पान करके उत्तम हृष्टपुष्ट हों। वे हमेशा उत्तम और सत्यसे युक्त वाणी ही बोलें। उनकी पत्नी सदा उनके अनुकूल बर्ताव करे तथा वे ऐश्वर्यशाली होकर दान करते रहें। संसारके चार सुख इस मंत्रमें बताये हैं- [१] हृष्टपुष्ट होकर स्वस्थ रहना, [२] इन्द्रियोंसे उत्तम व्यवहार करना, [३] पत्नीकी अनुकूलता, [४] ऐश्वर्यशाली होकर दानमें तत्पर होना ॥ १ ॥

१४८८ वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।
प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥ ३ ॥

१४८९ तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

अर्थ—[१४८८] (वायुः) वायु (वोळ्हवे) भार ढोनेके लिये (वहिष्ठा) भार ढोनेमें समर्थ (अजिरा) तरुण (रोहिता अरुणा) लाल तथा अरुण वर्णवाले दो घोडोंको (रथे धुरि) अपने रथकी धुरामें (युंक्ते) जोडता है । हे वायो ! (जारः आ ससतीं पुरंधिं इव) जैसे जार पुरुष सोती हुई स्त्रीको जगाता है, उसी प्रकार तुम भी मनुष्योंको (प्रबोधय) जगाओ, तथा (रोदसी) इस द्यावा पृथिवीको (प्रचक्षय) प्रकाशित करो, तथा (श्रवसे) ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए (उषसः वासय) उषाको प्रकाशित करो (उषसः वासय) निश्चयसे उषाको प्रकाशित करो ॥ ३ ॥

[१४८९] हे वायो ! (शुचयः) शुद्ध (उषासः) उषाएँ (तुभ्यं) तुम्हारे लिए (परावति) दूर देशोंमें (दंसु) दर्शनीय (नव्येषु) नवीन (रश्मिषु) किरणोंपर (चित्रा) अनेक प्रकारके (भद्रा) कल्याणकारी (वस्त्रा) वस्त्रोंको (तन्वते) बुनती हैं । तथा (सबर्दुघा) दूधरूपी अमृतको देनेवाली (धेनुः) गाय (तुभ्यं) तुम्हारे लिए (विश्वा) सम्पूर्ण (वसूनि) दूधरूपी धनोंको (दोहते) दुहती है, प्रदान करती है तथा (अ-जनयः) न उत्पन्न होनेवाले (मरुतः) ये वायु (वक्षणाभ्यः) नदियोंसे जल खींचकर (दिवः) अन्तरिक्षसे फिर (वक्षणाभ्यः) नदियोंको जल मिले इसलिए जलका (आ) चारों ओर वृष्टिसे फैलाव करते हैं ॥ ४ ॥

१ सबर्दुघा— अमृतको दुहनेवाली, दूध देनेवाली गौ । "सबरिति अमृतनाम, तस्य दोग्ध्री "

२ उषासः भद्रा वस्त्रा तन्वते— उषाएँ हितकारी वस्त्र बुनती हैं ।

३ सबर्दुघा धेनुः विश्वा वसूनि दोहते— दूधरूपी अमृत देनेवाली गौ सब धन देती है ।

४ वक्षणाभ्यः दिवः वक्षणाभ्यः आ— नदियोंसे जल आकाशमें जाता है, और आकाशसे जल फिर नदियोंमें आता है ।

भावार्थ— कर्मशील और पुरुषार्थी मनुष्य अपनी रक्षाके लिए तथा बल प्राप्त करनेके लिए उद्योग करते हैं । सतत पुरुषार्थ करनेसे हर तरहकी शक्ति प्राप्त होती है और उन शक्तियोंसे मनुष्यकी रक्षा होती है । ऐसे शक्तिशाली मनुष्य प्रयत्नशील और संघटित होकर बुद्धिपूर्वक वायुका स्तवन करते हैं । वायु देव सतत पुरुषार्थ और शक्तिका प्रतीक है । वह सदा गति करता रहता है, इसीलिए वह शक्तिमान् है ॥ २ ॥

वायु अपने रथमें उत्तम घोडोंको जोडता है और गति करता हुआ मनुष्योंको जगाता है । वही द्युलोक और उषाको प्रकाशित करता है । वायुके समान मनुष्य सदा प्रयत्नशील होकर दूसरोंको भी जाग्रत करे तथा उन्हें प्रयत्नशील बनाए ॥३॥

यह वायु सदा कर्म करता है, इसीलिए उषायें इसके लिए वस्त्र बुनती हैं अर्थात् अपनी किरणों द्वारा इस वायुमें जीवनशक्ति स्थापित करती हैं । उषःकालकी वायु जीवनशक्तिसे भरपूर होती है । इस समय गायें जो दूध दुहती हैं, वह मानों अमृत ही होता है । इन्हीं हवाओंके कारण नदियोंमें पानी ऊपर आकाशमें जाता है और बरसकर फिर नदियोंमें आता है, अर्थात् वृष्टिका कारण भी यह वायु ही है ॥ ४ ॥

१४९० तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्य१पामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद् भुवनात् पासि धर्मणा ऽसुर्यात् पासि धर्मणा ॥ ५ ॥
१४९१ त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत् ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥

[१३५]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- १-३, ९ वायुः; ४-८ इन्द्रवायू । छन्द- अत्यष्टिः; ७-८ अष्टिः ।)

१४९२ स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन् मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

अर्थ— [१४९०] हे वायो ! (तुभ्यं) तुमको (शुक्रासः) कान्तिमान (शुचयः) शुद्ध (तुरण्यवः) अत्यन्त त्वराशील (उग्राः) तीव्र सोमरस (भुर्वाणि) ऐश्वर्यदायक (मदेषु) यज्ञादि शुभ अवसरोंमें (इषणन्तः) चाहते हैं । तथा (अपां भुर्वणि) जलोंके धारण तथा आहरण करनेके कार्यके लिये भी तुमको (इषन्त) चाहते हैं । तथा हे वायो ! (भगं) भक्ति करनेके योग्य (त्वां) तुम्हारी (त्सारी) अत्यन्त भयभीत तथा (दसमानः) निर्बल मनुष्य (तक्ववीये) कष्ट तथा आपत्तियोंके नाशके लिए (ईट्टे) स्तुति करता है । क्योंकि (त्वं) तुम ही (धर्मणा) धर्मसे (विश्वस्मात्) संपूर्ण (आसुर्यात्) आसुरी (भुवनात्) जगत्से (पासि) रक्षा करते हो ॥ ५ ॥

१ शुक्रासः शुचयः तुरण्यवः उग्रा भुर्वणि मदेषु इषणन्त— बलवान, शुद्ध त्वरासे कार्य करनेवाले उग्रवीर भरणपोषण करनेवाले आनन्दके समय तुमको चाहते हैं ।

२ भगं त्सारी दसमानः तक्वीये ईट्टे— भाग्यवान्की भयभीत और निर्बल मनुष्य दुःख निवारणके लिए प्रशंसा करता है ।

३ धर्मणा विश्वस्मात् असुर्यात् भुवनात् पासि— धर्मसे सब दुष्ट मनुष्योंसे तुम रक्षण करते हो ।

[१४९१] (अपूर्व्यः) अपूर्व गुणवाले वायो ! (त्वं) तुम (नः) हमारे द्वारा (सुतानां) निचोडे गए (एषां सोमानां) इन सोमके रसको (प्रथमः) सबसे पहले (पीतिं अर्हसि) पीनेके योग्य हो । जैसे (विश्वाः) समस्त (धेनवः) गाएँ (आशिरं) दूध और (घृतं) घीको (ते) तुम्हारे लिए (दुह्रते) दुहतीं हैं, उसी प्रकार तुम भी (आशिरं) दूधको (दुह्र) दुहो । (उत उ) तथा (ववर्जुषीणां) पापोंसे रहित तथा (विहुत्मतीनां) यज्ञशील (विशां) मनुष्योंकी हविको स्वीकार करो ॥ ६ ॥

[१३५]

[१४९२] हे वायो ! (नः) हमारे द्वारा (बर्हिः) दर्भासन (स्तीर्णं) बिछाया है । अतः तुम (सहस्रेण) सहस्रों (नियुता) घोडोंसे (वीतये) हविका ग्रहण करनेके लिए (उप याहि) पास आओ । (शतिनीभिः) सैंकडों (नियुत्वते तुभ्यं) घोडोंवाले तुझ (देवाय) देवके लिए (देवाः) देवोंने ये सोम (येमिरे) नियुक्त किये हैं । (क्रत्वे यज्ञमें (सुतासः निचोडे गए (मधुमन्तः) मीठे सोमरस (ते) तुम्हारी (मदाय) प्रसन्नताके लिए (अस्थिरन्) सामने रखे हुए हैं ॥ १ ॥

१ नियुत— घोडे 'नियुत' ये वायुके घोडोंके नाम हैं । (नियुतः वायोः' नि. १।१५।१०) ।

भावार्थ— बलवान्, शुद्ध पवित्र भावनाओंवाले तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाले जन इस वायुकी स्तुति करते हैं । जो भयभीत और निर्बल हैं, वे भी इस वायुको शरणमें जाते हैं । क्योंकि वे जानते हैं कि यह वायु दुष्टोंसे धार्मिकोंका संरक्षण करता है ॥ ५ ॥

१४९३ तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति ।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयु—र्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥
१४९४ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥
१४९५ आ वां रथो नियुत्वान् वक्षदवसे ऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गत—मिन्द्रश्च राधसा गतम् । ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४९३] हे (वायो) वायो! (तुभ्यं) तुम्हारे लिए (अद्रिभिः) पहाडोंपरके पत्थरोंसे निचोडकर (परिपूतः) शुद्ध किया हुआ तथा (स्पार्हा) स्पृहणीय तेजोंको (वसानः) धारण करता हुआ (अयं सोमः) यह सोम (कोशं) पात्रमें (परि अर्षति) भरा हुआ है । ऐसा (शुक्राः वसानः) निर्मल दीप्तिवाला यह सोम (तव भागः) तुम्हारा भाग है। (आयुषु) मनुष्योंमें तुम ही (देवेषु) सब देवताओंसे प्रथम (हूयते) बुलाये जाते हो। हे वायो । तुम (नियुतः) घोडोंसे (याहि) जाओ तथा (वह) अन्योंको भी ले आओ । तथा स्वयं भी (जुषाणः) इच्छा करते हुए (अस्मयुः) हमारे पास आनेकी इच्छा करते हुए (याहि) जाओ ॥ २ ॥

[१४९४] हे (वायो) वायो ! तुम (नः अध्वरं) हमारे यज्ञमें (वीतये) हवि ग्रहण करनेके लिए तथा (हव्यानि वीतये) हविको स्वीकार करनेके लिए (शतिनीभिः सहस्रिणीभिः नियुद्भिः) सैंकडों तथा हजारों घोडियोंसे (उप आ याहि) आओ । (तव) तुम्हारे लिए (अयं भागः) यह सोमका भाग (ऋत्वियः) ऋतुके योग्य ही है । ये सोमरस (सरश्मिः) किरणोंसे तप्त होकर (सूर्ये सचा) सूर्यके समान तेजस्वी हुए हैं । हे वायो ! ये सोम रस (अध्वर्युभिः) अध्वर्यु आदि ऋत्विजोंके द्वारा (भरमाणाः) भरे गए (अयंसत) हैं तथा (शुक्राः अयंसत) ये सोमरस अत्यन्त वीर्यवान् हैं ॥ ३ ॥

[१४९५] हे (वायो) वायु ! (नियुत्वान् रथः) घोडोंसे युक्त रथ (सुधितानि प्रयांसि वीतये) उत्तम प्रकारसे तैय्यार किए गए अन्नोंको खानेके लिए तथा (हव्यानि वीतये) हवियोंको खानेके लिए तथा (अवसे) हमारी रक्षाके लिए (वां वक्षत्) तुम्हें और इन्द्रको ले आवे । तथा (वां हितं) तुम दोनोंके लिए रखे हुए (पूर्वपेयं) सबसे पहले पीने योग्य (मध्वः अन्धसः पिबतं) मीठे सोमरसको पीओ । (वायो) हे वायो ! (चन्द्रेण राधसा आ गतं) आनन्ददायक धनसे युक्त होकर आओ, (इन्द्रः च राधसा आ गतं) इन्द्र भी ऐश्वर्यसे युक्त होकर आवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह वायु अत्यन्त श्रेष्ठ होनेके कारण सोमरसोंको पीनेके लिए प्रथम अधिकारी है । समस्त गौवें इसके लिए अपने दूधको देती हैं । पापोंसे रहित तथा यज्ञशील मनुष्यकी हविको ही वायु स्वीकार करता है ॥ ६ ॥

हे वायु ! तुम्हारे लिए यह यज्ञ चल रहा है, इसलिए अपने रथ पर बैठकर तुम आओ और यहां आकर तुम सोमरस पिओ ॥ १ ॥

सोमरस पत्थरोंसे कूटकर शुद्ध करके तैय्यार किया जाता है । यह रस निर्मल दीप्तिवाला और अनेक तेजोंको धारण करता है । वायु इस सोमरसका भाग सबसे प्रथम ग्रहण करता है ॥ २ ॥

हे वायो ! तुम हमारे यहां सोमरसको पीनेके लिए अनेकों घोडोंसे आओ । यह ऋतुके अनुसार सोमरस तैय्यार किया गया है । ये सोमरस सूर्यके सम्पर्कमें आनेके कारण सूर्यके समान तेजस्वी हो गया है । इसलिए यह वीर्यवान् है ॥ ३ ॥

इन्द्र और वायु दोनों हमारी रक्षा करनेके लिए आवें और हमारे पास आकर हमारे द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसको पीवें और प्रसन्न होकर आनन्ददायक ऐश्वर्य हमें प्रदान करें ॥ ४ ॥

१४९६ आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपे — ममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनं — माशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥

१४९७ इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहा — ध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

१४९८ अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
वि सूनृता ददृशे रीयते घृत — मा पूर्णया नियुता याथो अध्वर — मिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ७

अर्थ— [१४९६] हे इन्द्र और वायु ! (वां धियः) तुम दोनोंकी बुद्धियां (अध्वरान् उप ववृत्युः) सदा यज्ञोंके पास रहें । (आशुमत्यं वाजिनं न) जिसप्रकार वेगवान् घोडेको साफ करते हैं, उसी प्रकार (वाजिनं इमं इन्दुं) बलदायक इस सोमरसको हम तुम्हारे लिए (मर्मृजन्त) तैय्यार करते हैं । हे (इन्द्रवायू) इन्द्र वायु ! तुम दोनों (ऊत्या) रक्षणके साधनों सहित (इह नः आगन्तं) यहां हमारे पास आओ और (तेषां पिबतं) उन सोमरसोंको पीओ । (युवं) तुम दोनों (अद्रिभिः सुतानां) पत्थरोंसे कूटकर निचोडे गए सोमरसोंको (मदाय) आनंदके लिए पीओ क्योंकि (युवं वाजदा) तुम दोनों शक्तियोंको देनेवाले हो ॥ ५ ॥

[१४९७] (अप्सु सुताः) यज्ञोंमें निचोडे गए (अध्वर्युभिः भरमाणाः) अध्वर्युओंके द्वारा ले जाए जाते हुए (इमे सोमाः) ये सोम (वां अयंसत) तुम दोनोंके पास पहुंचे । हे (वायो) वायु ! (शुक्राः अयंसत) ये तेजस्वी सोमरस तुम्हारे पास पहुंचे । (एते आशवः) ये बहनेवाले सोमरस (वां) तुम्हारे लिए (तिरः पवित्रं) तिरछे होकर बर्तनमें (अभि असृक्षत) भरे जाते हैं । (युवायवः सोमासः) तुम दोनोंकी इच्छा करनेवाले सोमरस (अव्यया रोमाणि अति) न टूटे हुए बालोंमेंसे होकर छनते हैं, और (अति अव्यया) ये सोमरस अत्यन्त रक्षक हैं ॥ ६ ॥

[१४९८] हे (वायो) वायु ! (ससतः शश्वतः अति याहि) तू सोते हुए मनुष्योंको पार कर जा, उनके पास मत ठहर । तुम दोनों (यत्र ग्रावा वदति) जहां सोम कूटनेके पत्थरोंका शब्द हो रहा है, (तत्र गच्छतं) वहां जाओ (इन्द्रः च) इन्द्र और तुम (गृहं गच्छतं) यज्ञगृहको जाओ । जहां (सूनृता ददृशे) वेदमंत्र सुनाई दे रहे हों, (घृतं आ रीयते) घी बह रहा हो, वहां (पूर्णया नियुता) पुष्ट घोडोंके द्वारा (अध्वरं याथः) यज्ञको जाओ, (इन्द्रः च अध्वरं याथः) इन्द्र और तुम दोनों यज्ञको जाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन इन्द्र और वायुकी बुद्धियां यज्ञोंको प्रेरित करें, ताकि हम इन दोनोंके लिए सोमरस तैय्यार करें । उन सोमरसोंको ये दोनों देव हमारे पास आकर पीवें ॥ ५ ॥

ये तेजस्वी सोमरस कूटपीस कर निकाले जाते हैं और छानकर उत्तम बर्तनोंमें भरे जाते हैं । इन रसोंको छाननेकी छलनी भेडके बालोंकी बनी हुई होती है । इन बालोंमें छनकर यह रस शुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥

जो मनुष्य सोते रहते हैं, उनके पास यह वायु नहीं जाता । अर्थात् जो सोते हैं, वे वायुसे लाभ नहीं उठा सकते । इन्द्र और वायु दोनों हमेशा ऐसी जगह ही जाते हैं, जहां सोम कूटनेके पत्थरोंकी आवाज हो रही हो, जहां वेदमंत्र बोले जा रहे हों और यज्ञ चल रहा हो । जो सबेरे उठकर यज्ञ करते हैं, वे ही वायुसे जीवनशक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

१४९९ अत्राह तद् वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ८
१५०० इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः ।
धन्वञ्चिद् ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥

[१३६]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- १-५ मित्रावरुणौ, ६-७ लिङ्गोक्ताः । छन्दः- अत्यष्टिः; ७ त्रिष्टुप् ।)

१५०१ प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

अर्थ— [१४९९] हे इन्द्र और वायु ! (अत्र अह) यहीं पर (मध्वः तत् आहुतिं) मिठाससे भरपूर उस हवि द्रव्य सोमको (वहेथे) ले आओ, (यं) जिस (अश्वत्थं) पर्वतोंमें मिलनेवाले सोमको (जायवः उपतिष्ठन्त) जयशील लोग प्राप्त करते हैं । (अस्मे ते जायवः सन्तु) इस सोमको पानेमें वे जयशील लोग समर्थ हों । (गावः साकं सुवते) ये गायें एक साथ तुम्हारे लिए दूध देती हैं, (यवः पच्यते) तुम्हारे लिए जौ आदि अन्न पकाया जाता है, हे (वायो) वायु ! (ते धेनवः न उप दस्यन्ति) तेरी वे गायें क्षीण न हों, (धेनवः न अप दस्यन्ति) गायें चुराई न जायें ॥८॥

[१५००] हे (सु-वायो) शोभन वायो ! (ते इमे बाहु ओजसः) तुम्हारे ये बलशाली बाहुओंवाले तथा (उक्षणः) युवा घोडे (ते नदी अन्तः) इन द्यावापृथिवीके बीचमें (पतयन्ति) जाते हैं, तथा (ते) तुम्हारे (उक्षणः) बलवान् घोडे (महि व्राधन्तः) सहज ही ले जाते हैं । तथा (ये) जो (धन्वन् चित्) मरुभूमिमें भी (अ-नाशवः) नाशरहित हैं, (जीराः चित्) अत्यन्त वेगवाले है (अ-गिरा-ओकसः) वाणीसे इनके स्थानका वर्णन नहीं किया जा सकता, तथा (सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्यकी किरणोंके समान (दु-र्नियन्तवः) नियन्त्रित नहीं हो सकते, तथा (हस्तयोः दु-नियन्तवः) हाथोंसे भी नहीं रोके जा सकते ॥ ९ ॥

[१३६]

[१५०१] हे मनुष्यो ! (निचिराभ्यां) नित्य, (मृळयद्भ्यां) सुख देनेवाले, (स्वादिष्ठं मृळयद्भ्यां) अत्यन्त सुख देनेवाले इन मित्रावरुणोंको (ज्येष्ठं बृहत् नमः) उत्तम और श्रद्धायुक्त नमस्कार करो, हव्यं मतिं भरत) प्रशंसनीय बुद्धिसे उनकी स्तुति करो । (ता) वे दोनों मित्र और वरुण (सम्राजा) अत्यन्त तेजस्वी (घृतासुती) घृतका भक्षण करनेवाले, (यज्ञे यज्ञे उपस्तुता) प्रत्येक यज्ञमें स्तुतिके योग्य हैं । (अथ) इसलिए (एनोः क्षत्रं कुतः चन न आधृषे) इन दोनोंकी क्षात्रशक्तिको कोई भी कहींसे भी कम नहीं कर सकता, (देवत्वं नु चित् आधृषे) देवत्वको भी कम नहीं कर सकता ॥ १ ॥

भावार्थ— इस सोमको जयशील लोग ही पानेमें सफल होते हैं। यह सोम पर्वतोंमें बहुत ऊंचे स्थलोंपर प्राप्त होता है, अतः इतनी ऊंचाई पर सर्वसाधारण जन नहीं जा सकते, जो अत्यधिक साहसी और उद्योगशील ही प्राप्त कर पाते हैं । इस सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है । तब देवोंको दिया जाता है ॥ ८ ॥

वायुके घोडे बहुत तेज और शक्तिशाली हैं कहीं भी इनकी गति रुकती नहीं । मरुभूमिमें भी ये उतने ही वेगसे भागते हैं । जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंको कोई नियंत्रित नहीं कर सकता, उसी तरह वायुकी गतिको भी कोई रोक नहीं सकता । वायु सदा बहता रहता है । इसी तरह वीरोंकी गति ऐसी हो कि जिसे कोई रोक न सके ॥ ९ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव अत्यन्त तेजस्वी और प्रत्येक यज्ञमें उपासना करनेके योग्य हैं । सभी श्रद्धा और भक्ति-पूर्वक इन दोनोंकी स्तुति करते हैं, इसलिए इनका देवत्व और शक्ति इतनी बढ जाती है कि उसे कोई भी शत्रु कहींसे भी कम नहीं कर पाता ॥ १ ॥

१५०२ अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभि-श्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।
द्युक्षं मित्रस्य सादन-मर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद् वयः ॥ २ ॥

१५०३ ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे ।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनो ऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

१५०४ अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५०२] (गातुः वरीयसी) अत्यन्त गति करनेवाली उषा (उरवे) यज्ञका विस्तार करनेके लिए (अदर्शि) प्रकट हुई है। (ऋतस्य पन्थाः) सूर्यका मार्ग (रश्मिभिः सं अयंस्त) किरणोंसे युक्त हो गया है, (भगस्य रश्मिभिः) ऐश्वर्यवान् सूर्यकी किरणोंसे (चक्षुः) आंखें संयुक्त हो गई हैं। (मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य च सदनं द्युक्षं) मित्र, अर्यमा और वरुणका घर तेजस्वी हो गया है, (अथ) इसीलिए वे सब देव (बृहदुकथ्यं वयः) बहुत प्रशंसनीय अन्न और (उपस्तुत्यं बृहत् वयः) प्रशंसनीय महान् बल (दधाते) धारण करते हैं ॥ २ ॥

[१५०३] (ज्योतिष्मतीं अदितिं स्वःवतीं क्षितिं धारयत्) तेजसे युक्त, टुकडे टुकडे न करनेके योग्य तथा सुख देनेवाली भूमिको धारण करते हुए (दिवे दिवे जागृवांसा) प्रतिदिन जाग्रत रहनेवाले दोनों देव मित्र और वरुण (आ सचेते) आपसमें संयुक्त होते हैं। (दिवे दिवे ज्योतिष्मत् क्षत्रं आशाते) प्रतिदिन तेजस्वी शक्तिको प्राप्त करते हैं। (आदित्या) अदितिके पुत्र (दानुनः पती) दान देने योग्य धनोंके स्वामी (मित्रः वरुणः तयोः) मित्र और वरुण दोनों (जनः यातयत्) मनुष्योंको सन्मार्गमें प्रेरित करता है, (अर्यमा जनः यातयत्) अर्यमा भी मनुष्योंको सन्मार्गमें प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

[१५०४] (अवपानेषु आ भगः) पीने योग्य पदार्थोंमें सर्वोत्तम तथा (देवेषु आ भगः) देवोंमें सबसे ज्यादा ऐश्वर्यसम्पन्न (अयं सोमः) यह सोम (मित्राय वरुणाय शंतमः भूत्) मित्र और वरुणके लिए अत्यन्त सुख देनेवाला हो (अद्य) आज (सजोषसः विश्वे देवासः) एक समान विचारवाले सभी देव (तं जुषेरत) इस सोमका सेवन करें। (राजाना) हे तेजस्वी मित्र और वरुण ! (यत् ईमहे) हम जो मांगते हैं, (तथा करथः) उन्हें पूर्ण करो, हे (ऋतावाना) सत्कर्मोंको प्रेरित करनेवाले देवो ! (यत् ईमहे) जो हम मांगते हैं, उन्हें पूरा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— अत्यन्त तेजीसे गमन करनेवाली उषा लोगोंको यज्ञ करनेके लिए प्रेरणा देते हुए प्रकट होती हुई दिखाई देतीहै। सूर्यका मार्ग भी किरणोंसे युक्त हो गया है अर्थात् उषाके उदय होते ही सूर्यका मार्ग भी प्रकाशित हो जाता है सूर्यके उदय होते ही लोगोंको दीखने लगता है तब सभी यज्ञ करते हैं और ये सभी देव आहुतिरूपी प्रशंसनीय अन्न धारण करते हैं ॥ २ ॥

मित्रके समान हित करनेवाले तथा वरणीय श्रेष्ठ देव इस पृथ्वीको धारण करते हैं। यह पृथ्वी अत्यन्त तेजसे युक्त है, इसीलिए वह अहिंसनीय है। ये दोनों देव प्रतिदिन आकर मनुष्योंको जगाकर उन्हें उत्तम कर्मोंमें प्रेरित करते हैं ॥३॥

सोम सबसे ज्यादा ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी है। स-उमा अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे जो युक्त होता है, वह महा तेजस्वी और ऐश्वर्यसे युक्त होता है, वही सबके साथ मित्रवत् व्यवहार करनेके कारण वरणीय होता है, अर्थात् सभी प्रजाएं उसको चाहती हैं। वही ब्रह्मज्ञानी सभी प्रजाओंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है और उत्तम सुख देता है ॥ ४ ॥

१५०५ यो मित्राय वरुणायाविधज्जनो ऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः ।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् । ॥ ५ ॥
१५०६ नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥
१५०७ ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥

अर्थ— [१५०५] (यः जनः मित्राय वरुणाय अविधत्) जो मनुष्य मित्र और वरुणकी सेवा करता है, (यः एनोः व्रतं) जो इन दोनोंके कर्मको (उक्थैः परिभूषति) अपनी प्रशंसाओंसे अलंकृत करता है, (स्तोमैः व्रतं आभूषति) अपनी वाणीसे इनके कर्मोंका वर्णन करता है, (तं अनर्वाणं) उस द्वेष न करनेवालेकी ये दोनों देव (अंहसः परिपातः) पापसे रक्षा करें । (तं दाश्वांसं ऋजूयन्तं अनुव्रतं) उस दानशील, सरल और सत्यके मार्गसे जानेवाले तथा उत्तम व्रतोंका आचरण करनेवाले मनुष्यकी (अर्यमा अंहसः अभि रक्षति) अर्यमा पापों और दुःखोंसे रक्षा करता है ॥ ५ ॥

१ अनर्वाणं अंहसः परिपातः— जो किसीसे शत्रुता नहीं रखता, ऐसे मनुष्यकी मित्रावरुण दुःखोंसे रक्षा करते हैं । (भ्रातृव्यो हि अर्वा— शत्रुका नाम अर्वा है- तै. सं. ६।३।८।४)

२ दाश्वांसं, ऋजूयन्तं अनुव्रतं अर्यमा अंहसः अभि रक्षति— दान देनेवाले, सरल और सत्य मार्गपर से चलनेवालेकी अर्यमा दुःखोंसे रक्षा करता है ।

[१५०६] (बृहते दिवे) महान् द्युलोकके लिए, (रोदसीभ्यां) द्युलोक और पृथिवीलोकके लिए (मीळ्हुषे मित्राय) सुख देनेवाले मित्रके लिए तथा (सुमृळीकाय मीळ्हुषे वरुणाय) अत्यन्त सुख और आनन्द प्रदान करनेवाले वरुणके लिए मैं (नमः वोचं) नमस्कार कहता हूँ । हे मनुष्य ! तू (इन्द्रं अग्निं, द्युक्षं अर्यमणं भगं उप-स्तुहि) इन्द्र, अग्नि, तेजस्वी अर्यमा और भगकी उपासना कर । हम (ज्योक् जीवन्तः) चिरकालतक जीवित रहकर (प्रजया सचेमहि) प्रजाओंसे युक्त हों, (सोमस्य ऊती सचेमहि) सोमकी रक्षासे युक्त हों ॥ ६ ॥

[१५०७] (स्वयशसः मरुद्भिः इन्द्रवन्तः वयं) अपने यश और शक्तियोंसे ऐश्वर्यवाले हम (देवानां ऊती मंसीमहि) देवोंकी सुरक्षाओंको प्राप्त करें । (अग्निः मित्रः वरुणः शर्म यंसन्) अग्नि, मित्र और वरुण हमें सुख देवें, (मघवानः च वयं तत् अश्याम) और ऐश्वर्यसे सम्पन्न हुए हुए हम उस सुखको प्राप्त करें ॥ ७ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य किसीसे शत्रुता नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता, ऐसे उत्तम मनुष्यकी श्रेष्ठ पुरुष सब ओरसे रक्षा करता है । इसी तरह जो दान द्वारा निर्बलोंकी सेवा करता है, सदा सत्यमार्गपर चलता है और उत्तम व्रतोंका पालन करता है, उसकी देव सब ओरसे रक्षा करते हैं और उसे कभी भी दुःखमें नहीं डालते ॥ ५ ॥

द्युलोक, पृथ्वीलोक, मित्र और वरुण ये सभी देव अत्यन्त सुख और आनन्द प्रदान करनेवाले हैं । उन सभी देवों की कृपासे सभी मनुष्य दीर्घायुवाले होकर प्रजाओंसे युक्त हों और सभी तरहसे सुरक्षित हों ॥ ६ ॥

हम सब देवोंके द्वारा दिए गए सुखको प्राप्त करें, तथा अपने यश और बलोंसे युक्त होकर देवोंके द्वारा सुरक्षित हों ॥ ७ ॥

[१३७]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- अतिशक्करी ।)

१५०८ सुषुमा यातमद्रिभि र्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशा ऽस्मत्रा गन्तमुप नः
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥

१५०९ इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥

१५१० तां वां धेनुं न वासरी मंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नो ऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥

[१३७]

अर्थ— [१५०८] (मित्रावरुणा) हे मित्र और वरुण ! (गोश्रीताः मत्सराः इमे) गायके दूधमें मिले हुए आनन्ददायक इन सोमरसोंको हम (अद्रिभिः सुसुम) पत्थरोंसे कूटकर निचोडते हैं, (इमे सोमासः मत्सराः) ये सोम निश्चयसे आनंद देनेवाले हैं, इसलिए तुम दोनों (नः आयातं) हमारे पास आवो । (राजाना दिविस्पृशा) अत्यन्त तेजस्वी तथा द्युलोकको छूनेवाले तुम दोनों (अस्मत्रा नः उप आ गन्तं) हमारे पालनपोषण करनेवाले होकर हमारे पास आओ । हे मित्र और वरुण ! (वां) तुम्हारे लिए तैय्यार किए गए (गवाशिरः) गायके दूधमें मिले हुए तथा (गवाशिरः) पानीमें मिले हुए (इमे सोमाः) ये सोमरस (शुक्राः) तेजस्वी हैं ॥ १ ॥

[१५०९] हे मित्र और वरुण ! (इमे इन्दवः दध्याशिरः दध्याशिरः) ये तेजस्वी दही दूधमें मिले हुए (सोमासः सुतासः) सोमरस निचोडकर तैय्यार किए गए हैं, अतः (आ यातं) तुम दोनों आवो । (वां) तुम्हारे लिए (उषसः बुधि) उषाके उदयकी बात मालूम होते ही (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्यकी किरणोंके साथ ही ये रस निचोडे गए हैं । (मित्राय वरुणाय पीतये) मित्र और वरुणके पीनेके लिए (चारुः ऋताय पीतये) सत्यज्ञानको पानेके लिए (सुतः) ये सोमरस निचोडे गए हैं ॥ २ ॥

[१५१०] हे मित्रावरुण ! यज्ञ करनेवाले (वां) तुम्हारे लिए (वासरीं धेनुं न) दुधारु गाय जैसे दूध देती है, उसी प्रकार (अद्रिभिः अंशुं दुहन्ति) पत्थरोंसे कूटकर सोमको निचोडते हैं, (अद्रिभिः सोमं दुहन्ति) पत्थरोंसे कूटकर सोमको दुहते हैं । (अस्मत्रा) हमारी रक्षा करनेवाले तुम दोनों (सोम-पीतये) सोम पीनेके लिए (नः अर्वाञ्चा उप आ गन्तं) हमारी तरफ आओ । (मित्रावरुणा) हे मित्रावरुणो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (नृभिः) यज्ञ करनेवालोंके द्वारा (अयं सुतः) यह सोमरस निचोडा गया है, (पीतये सोमः आ सुतः) तुम्हारे पीनेके लिए यह सोमरस निचोडा गया है ॥ ३ ॥

भावार्थ— सोमरस अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण इसके पीनेवालेको भी तेज प्रदान करते हैं । मित्र और वरुण इन दोनों देवोंका यश द्युलोकको छूता है, अर्थात् ये दोनों ही अत्यन्त यशस्वी हैं ॥ १ ॥

तेजस्वी सोम दहीमें मिलाकर पीये जाते हैं । उषःकालमें सूर्यकिरणोंके प्रकट होनेके साथ ही सोमरसोंका निचोडना शुरु हो जाता है । ऐसे समय इन रसोंको पीनेसे बुद्धि तीव्र होती है और ज्ञानकी प्राप्ति सरलतासे हो सकती है ॥ २ ॥

यह सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है फिर उसका रस पीया जाता है । यह रस गायके दूधके समान ही बलदायक होता है । यज्ञ करनेके समय यह रस निचोडा जाता है और उस समय सब देवगण आकर इसका पान करते हैं ॥ ३ ॥

[१३८]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- पूषा । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१५११ प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुम्नयन्नह - मन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

१५१२ प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत् त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान् द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥

१५१३ यस्य ते पूषन् त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥ ३ ॥

---

[१३८]

अर्थ— [१५११] (तुविजातस्य पूष्णः) बलके साथ उत्पन्न हुए हुए इस पूषा देवकी (महित्वं प्र शस्यते) माहिमाकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, (अस्य तवसः न तन्दते) इसके बलको कोई दबा नहीं सकता, (अस्य स्तोत्रं न तन्दते) इसके स्तोत्रको कोई बिगाड नहीं सकता । (सुम्नयन् अहं) सुखकी इच्छा करनेवाला मैं (यः विश्वस्य मखः मनः आयुयुवे) जो सभी यज्ञ करनेवालोंके मनको संगठित करता है, (देवः मखः आयुयुवे) जो तेजस्वी यज्ञोंको संगठित करता है, ऐसे (अन्त्यूतिं मयोभुवं) संरक्षणके साधनोंको अपने पास रखनेवाले सुखकारी पूषाकी (अर्चामि) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१५१२] हे (पूषन्) पोषक देव ! (यामनि अजिरं न) जिस प्रकार युद्धमें उत्तम वेगवान् घोडेकी प्रशंसा होती है, अथवा (यथा मृधः ऋणवः) जिस प्रकार संग्रामोंकी तरफ जानेवाले उत्तम वीरोंकी प्रशंसा होती है, उसी तरह (त्वा स्तोमेभिः कृण्वे) मैं तुझे अपने स्तोत्रोंसे बढाता हूँ, तू (उष्ट्रः न) ऊंट जिस प्रकार यात्रियोंको रेगिस्तानसे पार करा देता है, उसी तरह (मृधः पीपरः) हिंसकोंसे हमें पार करा । (मर्त्यः) मरणशील मैं (सख्याय) मित्रताके लिए (मयोभुवं त्वा देवं) सुख देनेवाले तुझ देवको (हुवे) पुकारता हूँ । तू (अस्माकं आंगूषान्) हमारी वाणियोंको (द्युम्निनः कृधि) तेजस्वी बना, (वाजेषु द्युम्निनः कृधि) संग्रामोंमें हमें तेजस्वी बना ॥ २ ॥

[१५१३] हे (पूषन्) पोषक देव ! (यस्य ते) जिस तेरी (सख्ये सन्तः) मित्रतामें रहकर (विपन्यवः) बुद्धिमान् (क्रत्वा अवसा) अपने पुरुषार्थ और तुम्हारी रक्षासे (बुभुज्रिरे) सारे भोग प्राप्त करते हैं, (इति क्रत्वा बुभुज्रिरे) वे सब इस प्रकार अपने पुरुषार्थसे भोग प्राप्त करते हैं । (तां नवीयसीं अनु) उस प्रशंसनीय बुद्धिके अनुकूल रहकर हम (त्वा नियुतं रायः ईमहे) तुझसे अनन्त ऐश्वर्य मांगते हैं । हे (उरुशंस) बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाले पूषा देव ! (अहेळमानः सरी भव) प्रत्येक युद्धमें हमारी तरफ आ ॥ ३ ॥

१ विपन्यवः क्रत्वा बुभुज्रिरे— बुद्धिमान जन अपने पुरुषार्थसे भोगोंको भोगते हैं ।

भावार्थ— सबके पोषण करनेवाले देवकी महिमा बहुत बडी है । पोषण करनेवालेकी शक्ति बहुत बडी होती है । इसीलिए इस देवकी शक्तिको कोई दबा नहीं सकता, अथवा इसके स्तोत्रको भी कोई बिगाड नहीं सकता । यह देव यज्ञकर्ताओंके मनोंको आपसमें संगठित करता है, इसीलिए वे सब एक मनवाले होकर यज्ञ करते हैं ॥ १ ॥

जिस प्रकार मनुष्य वेगवान् घोडेकी प्रशंसा करके उसका उत्साह बढाते हैं अथवा जैसे संग्राममें वीरकी प्रशंसा करके उसका उत्साह बढाया जाता है, उसी प्रकार सभी पोषण करनेवालोंका उत्साह बढाना चाहिए । इस पोषक देवके साथ मित्रता करनी चाहिए, क्योंकि यह देव अपने उपासकोंको युद्धोंसे उसी तरह तारता है, जिस तरह एक ऊंट रेगिस्तानसे । ऐसे उत्तम वक्ताकी वाणी बडी ओजस्विनी होती है ॥ २ ॥

१५१४ अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवो ऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ ॥

[१३९]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- १ विश्वे देवाः, २ मित्रावरुणौ, ३-५ अश्विनौ, ६ इन्द्रः, ७ अग्निः, ८ मरुतः, ९ इन्द्राग्नी, १० बृहस्पतिः, ११ विश्वे देवाः । छन्दः- अत्यष्टिः, ५ बृहती, ११ त्रिष्टुप् ।)

१५१५ अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी ।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥

अर्थ— [१५१४] हे (अजाश्व) पूषा देव ! (अस्याः सातये) इस ऐश्वर्यकी प्रगतिके लिए (अहेळमानः ररिवान्) क्रुद्ध न होता हुआ और दानशील होकर (नः उप भुवः) हमारे पास उपस्थित हो, (अजाश्व) हे पूषा ! (श्रवस्यतां) अन्नकी इच्छा करनेवाले हमारे पास उपस्थित हो। हे (दस्म) दर्शनीय पूषा ! हम (साधुभिः स्तोमेभिः) उत्तम स्तोत्रोंसे (त्वा सु ववृतीमहि) तेरी उत्तम सेवा करते हैं, हे (पूषन्) पोषक तथा (आघृणे) जल वर्षानेवाले देव ! (त्वा नहि अति मन्ये) तेरा मैं अपमान नहीं करता और (ते सख्यं न अपन्हुवे) तेरी मित्रताको भी नहीं तोडता ॥ ४ ॥

[१३९]

[१५१५] (पुरः) पहले (धिया अग्निं आ दधे) बुद्धिसे मैंने अग्निको धारण किया, (आ नु) इसके बाद हम अग्निसे (तत् दिव्यं शर्धः वृणीमहे) उस दिव्य शक्तिको मांगते हैं। (इन्द्रवायू वृणीमहे) इन्द्र और वायुको वरण करते हैं। (यत् ह) क्योंकि (विवस्वति नाभा) तेजयुक्त यज्ञमें मैंने (नव्यसी क्राणा संदायि) प्रशंसनीय कर्म किए हैं, इसलिए (नः धीतयः) हमारी स्तुतियां (देवान् उप सु यन्तु) देवोंके पास जाएं, (नः धीतयः) हमारी पुकार (देवान् अच्छ) देवोंके पास सीधी जाए ॥ १ ॥

भावार्थ— बुद्धिमान् और वीर पुरुष अपने पुरुषार्थ और पोषक देवकी मित्रतासे भोगोंको प्राप्त करते और भोगते हैं अर्थात् भोगोंको प्राप्त करनेके लिए वे किसी मनुष्यकी दयाके पात्र नहीं बनते । वे हमेशा अपनी उत्तम बुद्धिके अनुकूल ही रहकर धन चाहते हैं, कभी दुर्बुद्धि या कुमार्गसे धन प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करते । तब ऐसे मनुष्योंपर पोषक देव कभी क्रुद्ध नहीं होता, अपितु उनको सहायता करके उन्हें सम्पन्न और समृद्ध बनाता है ॥ ३ ॥

हे पोषक देव ! तू हम पर क्रुद्ध न हो, तथा हमें दान दे । हम भी तेरी उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं । हम तेरा अपमान नहीं करते और तेरी मित्रताको दूर नहीं करते ॥ ४ ॥

शरीरमें अग्निको अच्छी तरह धारण करनेसे शारीरिक बल बढता है । बलके बढनेसे मनुष्य यज्ञमें उत्तम उत्तम कर्म करता है और तब उसकी प्रार्थना देवोंतक सीधी पहुंचती है अर्थात् उत्तम कर्म करनेवालेकी प्रार्थना देवगण बडे ध्यानसे सुनते हैं ॥ १ ॥

१५१६ यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृताद—ध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्म—स्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥
१५१७ युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना ऽऽश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३यवः।
युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥
१५१८ अचेति दस्रा व्यु१नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टि—ष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।
अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजो ऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥

अर्थ—[१५१६] (यत् ह) क्योंकि हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम (स्वेन मन्युना) अपने बलसे (ऋतात् अनृतं आधि आ ददाथेः) सत्यशीलके द्वारा असत्यशीलोंपर शासन करवाते हो, तथा (दक्षस्य स्वेन मन्युना) बलवान्‌की अपनी शक्तिसे शासन करवाते हो, (इत्था) इसलिए (युवोः हिरण्ययं) तुम दोनोंका सोने जैसा चमकीला तेज हम (धीभिः मनसा स्वेभिः अक्षभिः) अपनी बुद्धि, मन और इन्द्रियोंसे तथा (सोमस्य अक्षभिः) ज्ञानकी आंखोंसे (सद्मसु अपश्याम) घरोंमें देखते हैं ॥ २ ॥

[१५१७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (देवयन्तः आयवः) देवोंकी भक्ति करनेवाले मनुष्य (युवां आश्रावयन्त इव) तुम दोनोंको सुनाते हुए (स्तोमेभिः श्लोकं) स्तोत्रों द्वारा तुम्हारे यशको गाते हैं। (आयवः) भक्तजन (युवां हव्या) तुम दोनोंको पुकारते हैं। हे (विश्ववेदसा) सर्वज्ञ अश्विदेवो ! (विश्वाः श्रियः पृक्षः च) सम्पूर्ण सम्पत्तियां और अन्न (युवोः) तुम दोनोंमें निहित हैं। हे (दस्रा) सुन्दर देवो ! (हिरण्यये हिरण्यये रथे) सुन्दर सोनेके रथमें (पवयः) रथकी नाभियां (वां प्रुषायन्ते) तुम दोनोंको ले जाती हैं ॥ ३ ॥

१ पवी— रथकी नाभि। " पवी रथनेमिः भवति, यद्विपुनाति भूमिम् " (निरु. ५।५)

[१५१८] हे (दस्रा) सुन्दर अश्विनौ ! तुम दोनों (नाकं ऋण्वथः) स्वर्गको जाते हो, और (रथयुजः) रथको जोडनेवाले सारथी (वां दिविष्टिषु अध्वस्मानः) द्युलोकके मार्गोंपर दौडनेवाले घोडोंको (युञ्जते) जोडते हैं, यह बात (अचेति) सब जानते हैं। (दस्रा) हे सुन्दर अश्विनौ ! हम (वां) तुम दोनोंको (हिरण्यये वन्धुरे रथे) सुनहले और अच्छी तरहसे बंधे हुए रथमें (आधि स्थाम) बिठलाते हैं। तुम दोनों (अञ्जसा) अपने बलसे (रजः शासता) लोकोंपर शासन करते हुए (रजः अनुशासता) जलोंपर नियंत्रण रखते हुए (पथा इव यन्तौ) अपने अपने मार्गोंसे जाते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— ये मित्रके समान स्नेह करनेवाले, तथा श्रेष्ठ देव सत्यमार्गका संरक्षण करते हैं और असत्यका नाश करते हैं, इसलिए इनकी सहायतासे सत्यके अनुयायी असत्य भाषण करनेवालों पर शासन करते हैं। ज्ञानीजन अपनी बुद्धि, मन और ज्ञानके द्वारा इन देवोंके तेजका साक्षात्कार करते हैं ॥ २ ॥

दोनों अश्विदेव सर्वज्ञ हैं। सभी सम्पत्तियां इनमें निहित हैं। सुन्दर और सुनहले रथपर चढकर ये सर्वत्र जाते हैं। इसीलिए सब इनकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

अश्विनौ अन्तरिक्ष मार्गसे सबका निरीक्षण करते चलते हैं। इनके रथके घोडे बडे ही वेगवान् और रास्तेको शीघ्रतासे काटते हुए चलते हैं। ये सभी लोकोंपर शासन करते चलते हैं ॥ ४ ॥

१५१९ शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत् कदा चनास्मद् रातिः कदा चन ॥ ५ ॥

१५२० वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।
ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥ ६ ॥

१५२१ ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः ।
यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ७ ॥

अर्थ— [१५१९] (शचीवसू) पुरुषार्थसे धन प्राप्त करनेवाले अश्विदेवो ! (शचीभिः) हमारे कर्मोंसे प्रसन्न होकर तुम (नः दिवा नक्तं दशस्यतं) हमें रातदिन धन दो । (वां रातिः) तुम्हारा यह दान (कदाचन मा उपदसत्) कभी भी क्षीण न हो, (अस्मत् रातिः कदाचन मा) हमारे दान भी कभी कम न हों ॥ ५ ॥

[१५२०] हे (वृषन्) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (इमे) ये (अद्रि-सुतासः) पत्थरसे कूटे हुए (वृष-पानासः) बलके लिये पीने योग्य (उत् भिदः) ऊपर उठे हुए (इन्दवः) सोम (सुताः) निचोडे गये हैं । ये (उत्-भिदः) ऊपर उठे हुए सोम (तुभ्यं) तेरे लिये (सुतासः) तैय्यार किए गये हैं । (ते) वे (महे) बडे (चित्राय) विचित्र (राधसे) धनके (दावने) देनेके लिये (त्वा) तुझे (मन्दन्तु) आनन्दित करें । हे (गिर्वाहः) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (गीः-भिः) वाणीसे (स्तवमानः) स्तुति प्राप्त करता हुआ तू (आ गहि) आ । (सु-मृडीकः) सुप्रसन्न होता हुआ तू (नः) हमारे पास (आ गहि) आ ॥ ६ ॥

[१५२१] हे (अग्ने) अग्रणी देव ! (न ईळितः त्वं ओ सु शृणुहि) हमसे प्रशंसित हुआ हुआ तू हमारी प्रार्थना सुन और (यज्ञियेभ्यः यज्ञियेभ्यः राजभ्यः देवेभ्यः) अत्यन्त पूज्य प्रकाशमान देवोंसे (ब्रवसि) तू कह, (यत् ह देवाः) कि हे देवो ! (त्यां धेनुं अंगिरोभ्यः अदत्तन) तुमने जो गाय अंगिराओंको दी थी (तां अर्यमा) उस गायको अर्यमाने (सचा कर्तरि वि दुह्रे) संघटनाके कार्यके समय दुहा । (तां एषः मे सचा वेद) उस गायको अर्यमा और मैं दोनों जानते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— ये अश्विनौ अपने पुरुषार्थसे ही धन प्राप्त करते हैं। तथा पुरुषार्थीको ही धन देते भी हैं। अतः जो इनकी तरह पुरुषार्थ करेगा, वही इनसे धन प्राप्त कर सकेगा, आलसी कभी नहीं । इनके दान कभी कम नहीं होते, इसी प्रकार मनुष्य-के दान भी कभी क्षीण न हों। देवोंसे धन पाकर मनुष्य संचित न करे अपितु दूसरोंको दान देकर उनकी उन्नति करे ॥ ५ ॥

सोम विशेषतः इन्द्रके पीनेके निमित्त बनाये जाते हैं । इनसे इन्द्रको आनन्द मिलता है । ये सोमरस उत्साहदायक होते हैं; इसलिए इसका पान करनेवाले सदा उन्नति करते हैं ॥ ६ ॥

प्रथम इस शरीरमें अग्निने गायों अर्थात् इन्द्रियोंको दुहा अर्थात् उनमें शक्ति स्थापित की, फिर उन गायोंके रस अर्थात् इन्द्रियशक्तिको (अर्यमा) श्रेष्ठ आत्माने दुहा, इस बातको अर्यमा और ज्ञानी दोनों जानते हैं ॥ ७ ॥

१५२२ मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषु- रस्मत् पुरोत जारिषुः।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥
१५२३ दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदु- स्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः ।
तेषां देवेष्वायति- रस्माकं तेषु नाभयः ।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरे- न्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥
१५२४ होता यक्षद् वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः ।
जगृभ्मा दूरआदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥ १० ॥

अर्थ— [१५२२] हे (मरुतः) मरुत् वीरो ! (वः तानि) वे तुम्हारे (सना) प्राचीनकालसे पराक्रम करनेवाले (पौंस्या) सामर्थ्य (अस्मत्) हमसे (मा सु अभिभुवन्) कभी भी दूर न हों। (उत) उसी तरह हमारे (द्युम्नानि) यश (मा जारिषुः) कभी क्षीण न हों। (उत) और (अस्मत् पुरा-जारिषुः) हमारे नगर नष्ट न हों। (वः यत्) तुम्हारा जो (चित्रं नव्यं अमर्त्यं) आश्चर्यकारक, प्रशंसनीय और अमर ऐसे (घोषात् तत्) गोशालासे लेकर मनुष्यतक जो धन हैं, वे सब (युगे युगे) प्रत्येक युगमें (अस्मासु) हमारे अन्दर स्थिर हों। (यत् च दुस्तरं, यत् च दुस्तरं) जो धन कठिनतासे मिलने योग्य और अजिक्य है वे भी तुम हमें (दिधृत) दो ॥ ८ ॥

[१५२३] (दध्यङ्) दध्यङ् (पूर्वः अंगिराः) सनातनकालसे अंगरसकी विद्या जाननेवाले (प्रियमेधः) मेधा जिनको प्रिय है, ऐसे (कण्वः) ज्ञानी (अत्रिः) तीनों दुःखोंसे रहित (मनुः) मननशील ऐसे ज्ञानी (मे जनुषं विदुः) मेरे जन्मको जानते हैं, (ते मनुः) वे मननशील ज्ञानी (मे पूर्वे विदुः) मेरे पूर्वजोंको जानते हैं। (तेषां देवेषु आयति) उन ज्ञानियोंका देवोंके साथ सम्बन्ध रहता है। (तेषु अस्माकं नाभयः) उन देवोंमें हमारी शक्ति है। (तेषां पदेन) उन देवोंके कदमोंपर चलकर मैं (गिरा) वाणीसे (महि आ नमे) उनको नमस्कार करता हूँ (गिरा इन्द्राग्नी आ नमे) वाणीसे मैं इन्द्र और अग्निकी स्तुति करता हूँ ॥ ९ ॥

१ प्रियमेधः— मेधा जिसको प्रिय है " प्रिया अस्य मेधा " (निरु. ३।१७)

२ अत्रिः— आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों दुःखोंसे रहित " अत्रिः न त्रयः " (निरु. ३।१७)

[१५२४] (होता यक्षत्) यज्ञ करनेवाला यज्ञ करे, तथा (वनिनः वार्यं वन्त) अभिलाषी जन अपनी अभिलाषाओंको प्राप्त करें। (वेनः बृहस्पतिः) हितकी कामना करता हुआ वाणीका स्वामी ज्ञानी (उक्षभिः पुरुवारेभिः उक्षभिः यजति) बलयुक्त और अनेकोंके द्वारा चाहने योग्य सोमके द्वारा यज्ञ करता है। हम (दूर आदिशं) दूरकी दिशासे आती हुई (अद्रेः श्लोकं) सोम फूटनेके पत्थरकी आवाज (त्मना जगृभ्म) स्वयं सुनते हैं। (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला यह यज्ञीय मनुष्य (अररिन्दानि अधारयत्) जलोंको धारण करता है। (सुक्रतुः सद्मानि) श्रद्धायुक्त मनसे यज्ञ करनेवाला मनुष्य अनेक घरोंको धारण करता है ॥ १० ॥

भावार्थ— वीर सदा पराक्रम करें। उसी तरह पराक्रम करनेका सामर्थ्य हमें मिले। उसके कारण हमारे यश बढें। हमारे नगर समृद्ध हों। वीरोंका सामर्थ्य हमेशा प्रकट हो। हमें ऐसे धन प्राप्त हों कि जिन्हें शत्रु भी कभी जीत न सकें ॥ ८ ॥

तीनों तरहके दुःखोंसे रहित अत्यन्त मननशील ज्ञानी मनुष्योंके सभी जन्मोंको जानते हैं वे देवोंके अत्यन्त निकट रहते हैं और साधारण मनुष्य देवोंसे ही अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं, इसलिए देव ही उनके केन्द्र होते हैं ॥ ९ ॥

यज्ञ करनेवाला मनुष्य अनेक तरहकी कामनाओंको प्राप्त करता है। वह सदा जल तथा अन्नादिसे भरपूर रहता है और अनेक घरोंको धारण करता है अर्थात् सदा धन और ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहता है ॥ १० ॥

१५२५ ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ ११ ॥

[१४०]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती, १० त्रिष्टुब्वा, १२-१३ त्रिष्टुप् ।)

१५२६ वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥

१५२७ अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥ २ ॥

१५२८ कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युत—मा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥ ३ ॥

अर्थ—[१५२५] हे (देवासः) देवो ! (दिवि महिना) द्युलोकमें अपनी शक्तिसे (ये एकादश स्थ) जो तुम ग्यारह हो (पृथिव्यां अधि एकादश स्थ) पृथ्वीमें ग्यारह हो, (अप्सुक्षितः एकादश स्थ) अन्तरिक्षमें ग्यारह हो, (देवासः) हे देवो ! (ते) वे सब तुम (इमं यज्ञं जुषध्वं) इस यज्ञका सेवन करो ॥ ११ ॥

[१४०]

[१५२६] हे अध्वर्यो ! (प्रियधामाय वेदिषदे सुद्युते अग्नये) प्रिय स्थानवाले, उत्तम वेदीपर बैठनेवाले, प्रकाशमान् अग्निके लिए (धासिं इव योनिं प्रभर) अन्नके समान ही स्थानको विशेषरूपसे तैयार कर । और (शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनं) पवित्र रथके समान ज्योतिर्मय, दीप्तिमान् और अंधकारके विनाशक अग्निको (मन्मना) स्तोत्रोंसे (वस्त्रेण इव वासय) किसी वस्त्रसे ढकनेके समान ढक दो ॥ १ ॥

[१५२७] (द्विजन्मा त्रिवृत् अन्नं अभि ऋज्यते) दो काष्ठोंके मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि तीन तरहके अन्नोंको प्राप्त करता है । किन्तु (ई जग्धं संवत्सरे पुनः वावृधे) अग्निके द्वारा भक्षण किया गया अन्न वर्षमें ही फिर बढ जाता है । (वृषा आसा जिह्वया अन्यस्य जेन्यः) बलवान् अग्नि (जाठराग्नि) मुख और जिह्वाकी सहायतासे अन्नके द्वारा बढता है, तथा (अन्येन वारणः वनिनः निमृष्टः) दूसरे प्रकारके रूपसे (दावाग्नि) सबको दूर करके वन वृक्षोंको जला देता है ॥ २ ॥

१ त्रिवृत् अन्नं— आज्य, पुरोडाश और सोम (सायण) सत्व, रज और तम ।

[१५२८] (अस्य कृष्णप्रुतौ सक्षितौ) इस अग्निकी काली और एक साथ रहनेवाली (उभा मातरौ) दोनों अरणीरूप मातायें (वेविजे) मन्थनसे कम्पित होती हैं । इसके पश्चात् वे (प्राचाजिह्वं, ध्वसयन्तं तृषुच्युतं) उत्तम गतिशील ज्वालाओंरूपी जिह्वावाले, अन्धकारके नाशक, शीघ्र उत्पन्न होनेवाले, (साच्यं, कुपयं पितुः वर्धनं) सहवास करने योग्य, बहुत प्रयत्नसे रक्षा करने योग्य, पालन करनेवालोंके लिए समृद्धि देनेवाले (शिशुं अभितरेते) शिशु अग्निको उत्पन्न करती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों लोकोंमें ग्यारह-ग्यारह देव रहते हैं, इसप्रकार इन तीनों लोकोंमें कुल तैंतीस देव रहते हैं । ये सब देव अपनी शक्तिसे ही इन स्थानोंमें रहते हैं अर्थात् उनके रहनेके लिए उन्हें किसी दूसरेके शक्तिकी आवश्यकता नहीं रहती । इसी तरह मनुष्यको चाहिए कि वह अपने ही सामर्थ्यसे स्थिर रहे । दूसरेकी शक्तिके आधारपर प्राप्त की गई स्थिरता ज्यादा समय तक टिकती नहीं ॥ ११ ॥

हर मनुष्यको चाहिए कि वह अन्धकारके विनाशक, तेजस्वी अग्निकी स्तुतियोंसे उपासना करे ॥ १ ॥

अग्निके द्वारा खाया जानेवाला अन्न हर वर्ष फिर बढ जाता है । उसी अन्नको यह अग्नि जाठराग्निके रूपमें खाता है और दावाग्नि रूपमें जंगलोंका नाश करता है ॥ २ ॥

अरणियोंके मन्थनसे अग्नि प्रकट होती है, फिर वह अन्धकारको दूर करती है और अपने पालन करनेवाले याजकोंको बढाती है ॥ ३ ॥

१५२९ मुमुक्ष्वो३ऽ मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥
१५३० आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत् सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन् त्स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥
१५३१ भूषन् न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६ ॥
१५३२ स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद् वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥

अर्थ— [१५२९] (मुमुक्ष्वः रघुद्रुवः कृष्णसतासः) मोक्ष प्रदान करनेवालीं, तीव्र गतिवालीं, काले मार्गसे जानेवालीं (जुवः असमनाः अजिरासः रघुस्यदः वातजूताः) वेगवालीं, विभिन्न वर्णवालीं, जल्दी जानेवालीं, वायुसे प्रेरित होनेवालीं और (आशवः मनवे मानवस्यते उप युज्यन्ते) सर्वत्र व्याप्त होनेवालीं अग्निकी ज्वालाएं मनस्वी मनुष्यके लिए यज्ञमें उपयोगी होती हैं ॥ ४ ॥

[१५३०] (यत् स्तनयन् अभिश्वसन् नानदत्) जिस समय अग्नि गर्जन करता हुआ श्वास लेता हुआ गंभीर शब्दसे आकाशको गुंजाता हुआ और (महीं अवनिं सीं प्र अभि मर्मृशत् एति) विस्तीर्ण पृथ्वीको सब ओरसे स्पर्श करता हुआ जाता है (आत् अस्य ते ध्वसयन्तः कृष्णं अभ्वं) उसके अनन्तर ही उसकी वे ज्वालायें अंधकारका विनाश करके अन्धकारपूर्ण जानेके मार्गको (महि वर्पः करिक्रतः वृथा ईरते) बडे प्रकाशसे प्रकाशित करके बिना परिश्रमके ही सब ओर फैल जाती हैं ॥ ५ ॥

[१५३१] (यः बभ्रूषु भूषन् न अधि नम्नते) जो अग्नि पीले वर्णवाले औषधियोंमें मानों उनको भूषित करते हुए प्रवेश करता है, और (वृषा इव रोरुवत् पत्नीः अभि एति) गायकी ओर भागनेवाले बैलके समान शब्द करता हुआ औषधि-वनस्पतियोंकी ओर भागता है । और (ओजायमानः तन्वः च शुम्भते) अधिक तेजस्वी होकर अपने शरीरको चमकाता है, तथा (दुर्गृभिः भीमः न शृङ्गा दविधाव) दुर्धर्ष रूप धारण करके भयंकर पशुकी तरह सींग अर्थात् ज्वालाओंको घुमाता है ॥ ६ ॥

[१५३२] (स संस्तिरः विस्तिरः सं गृभायति) वह अग्नि कभी छिपकर कभी विस्तीर्ण होकर ओषधियोंको व्याप्त करता है । (जानन् एव नित्यः जानतीः आशये पुनः वर्धन्ते) ज्ञानवान् अग्नि अविच्छिन्न होकर ज्वालाओंका आश्रय लेता है तब ज्वालाएं बढती हैं और (देव्यं अपि यन्ति) द्युलोककी तरफ बढती हैं । उसके पश्चात् (सचा पित्रोः अन्यत् वर्पः कृण्वते) वे ज्वालाएं अपने पितारूप अग्निके साथ पृथ्वी और आकाशमें दूसरा रूप धारण करती हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— अग्निकी ज्वालाएं मुक्ति प्रदान करनेवालीं, तीव्र गतिवालीं, सबको अपने कामोंमें प्रेरणा देनेवालीं और सर्वत्र व्याप्त होनेवाली हैं इनके कारण ही यज्ञका कार्य होता है ॥ ४ ॥

जब यज्ञीय अग्नि प्रज्वलित की जाती है तब सारा अन्धकार छंट जाता है और चारों ओर इसका प्रकाश फैल जाता है ॥ ५ ॥

प्रथम यह अग्नि औषधियोंमें प्रविष्ट होता है, फिर वहां प्रकट होकर अपने पालन करनेवाली (पत्नी) ओषधियों-वृक्षादियोंको ही खाने लगता है, तब उसकी चमकनेवाली ज्वालाएं चारों ओर फैलती हैं ॥ ६ ॥

यह अग्नि कभी छिपकर कभी प्रकट रूपसे वनस्पतियोंमें व्याप्त रहता है । प्रकट रूपमें इसकी ज्वालाएं ऊंची होकर द्युलोककी तरफ चलती हैं, तब वह अग्नि द्युलोक और पृथ्वी लोकमें सूर्य, बिजली, अग्नि, दावाग्नि आदि विविध रूप धारण करता है ॥ ७ ॥

१५३३ तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदु—दसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥
१५३४ अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।
वयो दधत् पद्वते रेरिहत् सदा—ऽनु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥ ९ ॥
१५३५ अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदि—ह्यध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदे—र्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥
१५३६ इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत् ते शुक्रं तन्वो३ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [१५३३] (केशिनीः अग्रुवः तं सं रेभिरे) लम्बी ज्वालायें उस अग्निका सब ओरसे आलिङ्गन करती हैं। वे ज्वालाएं (हि मम्रुषीः आयवे पुनः ऊर्ध्वाः प्रतस्थुः) निश्चयसे मृतप्रायः होती हुई भी अग्निके लिए फिर ऊपरकी ओर मुख करके उठ जाती हैं। अग्नि (तासां जरां प्रमुञ्चन्) उन ज्वालाओंके बुढापेको दूर करता हुआ (परं असुं अस्तृतं जीवं जनयन् नानदत् एति) उत्कृष्ट सामर्थ्य और अखंडनीय जीवनको उत्पन्न करके गर्जन करते हुए जाता है ॥८॥

[१५३४] यह अग्नि (मातुः अधीवासं परि रिहन्) पृथ्वीमाताके ऊपरके वस्त्र स्थानीय तृणगुल्मादिको चारों ओरसे चाटते हुए, (अह तुविग्रेभिः सत्वभिः ज्रयः वियाति) प्रसिद्ध प्रभूत शब्द करनेवाले प्राणियोंके साथ वेगसे जाता है, और (पद्वते वयः दधत्) पैरवाले पशुओंको अन्न देता है। अग्नि (सदा रेरिहत् अनु वर्तनीः) सर्वदा तृणादिको जलाता हुआ क्रमशः जिस मार्गसे जाता है उस मार्गको पीछेसे (श्येनी सचते अह) श्यामवर्णसे युक्त करता जाता है यह प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥

[१५३५] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अस्माकं मघवत्सु दीदिहि) हमारे समृद्ध घरमें प्रकाशित हो। (अधः वृषभः दमूनाः श्वसीवान् शिशुमतीः अवास्य) उसके अनन्तर बलवान् शत्रुओंको दबानेवाला श्वास लेता हुआ तू बचपन छोडकर (युत्सु वर्म इव परिजर्भुराणः अदीदेः) संग्रामके कवचकी तरह बार बार हमारे शत्रुओंको दूर करके विशेष दीप्तिसे देदीप्यमान हो उठ ॥ १० ॥

[१५३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (इदं) यह हमारा स्तोत्र (ते दुर्धितात् मन्मनः) तेरे बुरे स्तोत्रकी अपेक्षा तो (अधि सुधितं) उत्तम हो ही हो, पर (प्रियात् उ चित् प्रेयः अस्तु) प्रिय स्तोत्रसे भी प्रिय और उत्तम हो। (यत् ते तन्वः शुचि शुक्रं) जब तेरे शरीरका पवित्र तेज (रोचते) चमकता है (तेन अस्मभ्यं त्वं आ रत्नं वनसे) तब उस तेजसे तू हमें रत्न दे ॥ ११ ॥

१ इदं दुर्धितात् सुधितं प्रियात् उ प्रेयः— यह हमारा स्तोत्र अबतक इस अग्रणीके लिए किए गए बुरे और अच्छे सब स्तोत्रोंकी अपेक्षा उत्तम हो।

भावार्थ— अग्नि सबमें प्राण फूंकनेवाला है। वृद्धमें भी यदि अग्निशक्ति बढ जाए तो उसमें भी उत्कृष्ट सामर्थ्य आ सकता है और उसे अखण्डनीय जीवन प्राप्त हो सकता है ॥ ८ ॥

यह अग्नि सारे वनोंको खाता हुआ वेगसे शब्द करता हुआ जाता है। जहां जहांसे यह जाता है, वहां वहांका स्थान काला पड जाता है ॥ ९ ॥

यह अग्नि जब अपना बचपन अर्थात् छोटा रूप छोडकर यौवनका रूप धारण करता है, तब वह बडे बडे शत्रुओंको भी नष्ट कर देता है ॥ १० ॥

हमारे द्वारा किया गया अग्निका स्तोत्र हर प्रकारके स्तोत्रोंकी अपेक्षा अच्छा हो इस स्तोत्रसे अग्निका तेज बढे और वह हमें रत्न देवे ॥ ११ ॥

१५३७ रथा॑य॒ नाव॑मु॒त नो॑ गृ॒हाय॒ नित्या॑रित्रां प॒द्वतीं॑ रास्यग्ने ।
अ॒स्माकं॑ वी॒राँ उ॒त नो॑ म॒घोनो॒ जनाँ॑श्च॒ या पा॒रया॒च्छर्म॒ या च॑ ॥ १२ ॥
१५३८ अ॒भी नो॑ अग्न उ॒क्थमिज्जु॑गुर्या॒ द्यावा॒क्षामा॒ सिन्ध॑वश्च॒ स्वगू॑र्ताः ।
गव्यं॒ यव्यं॒ यन्तो॑ दी॒र्घाहे॒षं॒ वर॑मरु॒ण्यो॑ वरन्त ॥ १३ ॥

[१४१]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती, १२-१३ त्रिष्टुप् ।)

१५३९ बळि॒त्था तद् वपु॑षे धायि द॒र्शतं॒ दे॒वस्य॒ भर्गः॒ सह॑सो॒ यतो॒ जनि॑ ।
यदी॒मुप॒ ह्वर॑ते॒ साध॑ते म॒तिर्ऋ॒तस्य॒ धेना॑ अनयन्त स॒स्रुतः॑ ॥ १ ॥
१५४० पृ॒क्षो वपुः॑ पितु॒मान् नित्य॒ आ श॑ये द्वि॒तीय॒मा स॒प्तशि॑वासु मा॒तृषु॑ ।
तृ॒तीय॑मस्य वृष॒भस्य॑ दो॒हसे॒ दश॑प्रमतिं जनयन्त॒ योष॑णः ॥ २ ॥

अर्थ— [१५३७] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः गृहाय, उत रथाय नित्यअरित्रां पद्वतीं नावं रासि) हमारे घरके लिये और रथके लिये सुदृढ डाँड और अच्छे पैंदेवाली नौका प्रदान कर; (उत या अस्माकं वीरान् मघोनः च जनान् पारयात्) जो नौका, हमारे वीरों, धनाढ्यों और अन्य लोगोंको भी पार लगा सके, (च या शर्म) तथा जो हमको उत्तम सुख दे सके ॥ १२ ॥

[१५३८] हे (अग्ने) अग्ने ! तू हमारे (उक्थं अभि जुगुर्याः) स्तोत्रकी सम्यक् प्रशंसा कर। (द्यावाक्षामा सिन्धवः च स्वगूर्ताः) आकाश, पृथ्वी तथा स्वयं बहनेवाली नदियाँ हमें (गव्यं, यव्यं यन्तः) गौसे उत्पन्न दुग्धादि और अन्नादि पदार्थ प्रदान करें। इसके अलावा (अरुण्यः दीर्घा अहा वरं इषं वरन्त) अरुण वर्णवाली उषायें सर्वदा हमको रमणीय अन्न और बल प्राप्त करानेवाली हों ॥ १३ ॥

[१४१]

[१५३९] (देवस्य दर्शतं तत् भर्गः इत्था वपुषे धायि) अग्निके उस दर्शनीय तेजको लोग शरीरमें धारण करते हैं, (यतः सहसः जनि) क्योंकि वह तेज बलसे उत्पन्न हुआ है (यत् ईं मतिः उपह्वरते साधते) इस प्रसिद्ध लोकोपकारी अग्निके तेजके पास हमारी बुद्धि प्राप्त होती है वह हमारे अभीष्टको सिद्ध करती है। इसीलिये (ऋतस्य धेनाः सस्रुतः अनयन्त) अग्निके पास सब प्राणियोंकी स्तुतियां पहुंचती हैं ॥ १ ॥

१ देवस्य दर्शतं भर्गः वपुषे धायि— दिव्य अग्निका वह दर्शनीय तेज शरीरको सुदृढताके लिए लोग धारण करते हैं।

[१५४०] प्रथम प्रकारका अग्नि (नित्यः पृक्षः वपुः पितुमान् आशये) नित्यरूपसे अन्नको पकानेवाला, शरीरको बढानेवाला होकर (पृथ्वीमें) निवास करता है। (द्वितीयं, सप्तशिवासु मातृषु आशये) दूसरा अग्नि सात लोकोंके कल्याणकारी मातृरूपी जलोंमें व्याप्त होता है। (अस्य वृषभस्य तृतीयं दोहसे) इस बलवान् अग्निका तीसरा रूप सब रसोंका दोहन करनेवाले सूर्यमें है। (दशप्रमतिं योषणः जनयन्त) ऐसे दसों दिशाओंमें उत्तम बुद्धिमान् इस अग्निको अंगुलियां घर्षण द्वारा प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

माता— माता, लक्ष्मी, दुर्गा, पृथ्वी, आकाश।
दोहा— दोहन करनेवाला, सब रसोंका दोहन करनेवाला होनेके कारण सूर्य दोहा है, 'आदत्ते रसान्'।

भावार्थ— हे अग्ने ! हमें सब प्रकारसे पार ले जानेवाली तथा सुख देनेवाली अच्छे साधनोंवाली नाव दे ॥ १२ ॥
हमारे स्तोत्र प्रशंसनीय हों तथा आकाश पृथ्वी आदि हमें अन्न प्रदान करें तथा उषायें भी हमें बलसे युक्त करें ॥ १३ ॥
इस अग्निके कारण ही यह शरीर सुदृढ और कार्यक्षम रहता है। यह अग्नि स्वयं बलसे उत्पन्न होता है और लोगोंको बलवान् बनाता है इसलिए सभी प्राणी इसकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

×

१५४१ निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३ ॥
१५४२ प्र यत् पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद् यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः ॥ ४ ॥
१५४३ आदिन्मातॄराविशद् यास्वा शुचि रहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ ॥
१५४४ आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान् यत् क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥

अर्थ— [१५४१] (ईं यत् महिषस्य बुध्नात्) इस अग्निको जब बलयुक्त अरणिके मूल स्थानसे (वर्पसः ईशानासः सूरयः शवसा निः क्रन्तः) सुन्दर रूपवाले समर्थ विद्वान् बलसे उत्पन्न करते हैं तथा (यत् प्रदिवः मध्वः आधवे) जब पहलेके समान ही सोमकी आहुति देनेके लिए (गुहा सन्तं ईं मातरिश्वा अनु मथायति) गुहामें स्थित इस अग्निको मातरिश्वा मथकर प्रकट करता है, तब इसकी स्तुति होती है ॥ ३ ॥

[१५४२] (यत् परमात् पितुः प्र परिनीयते) जब उत्तम पालक होनेके कारण यह अग्नि चारों ओर ले जाया जाता है तब उस समय (पृक्षुधः दंसु वीरुधः आरोहति) अत्यन्त भूखे इस अग्निकी ज्वालारूपी दांतोंपर वृक्षादि चढ जाते हैं, और (यत् उभा अस्य जनुषं इन्वतः) जब दोनों अरणियां इस अग्निकी उत्पत्तिके लिये प्रयत्न करती हैं (आदित् शुचिः घृणा यविष्ठः अभवत्) तब प्रकट होकर पवित्र अग्नि तेजस्वी होकर बलवान् हो जाता है ॥ ४ ॥

[१५४३] (आदित् आ शुचिः मातॄः आ अविशत्) तदनन्तर ही दीप्त होकर यह अग्नि उत्पन्न करनेवाली दसों दिशाओंमें सर्वत्र व्याप्त हो गया । तथा (यासु अहिंस्यमानः उर्विया वि वावृधे) उन दिशाओंमें हिंसा रहित होकर अत्यधिक वृद्धिको प्राप्त हुआ (यत् सनाजुवः अनुपूर्वा अरुहत्) जो वनस्पतियाँ चिरकालसे दृढ थीं उन सबोंके ऊपर अग्नि चढ गया । और अब (नव्यसीषु अवरासु नि धावते) नई नई उत्पन्न हुई बलहीन वनस्पतियोंकी ओर दौड रहा है ॥ ५ ॥

[१५४४] (आदित्) अनन्तर, (पपृचानासः) हवन करनेवाले सारे मनुष्य (दिविष्टिषु होतारं वृणते) यज्ञोंमें होम सम्पादक अग्निको वरण करते हैं, और (भगं इव ऋञ्जते) ऐश्वर्यसम्पन्न राजाकी तरह उसे प्रसन्न करते हैं, (यत् पुरुष्टुतः क्रत्वा मज्मना) इस कारणसे बहुतोंसे प्रशंसित हुआ हुआ यह अग्नि सामर्थ्य और शारीरिक बलसे युक्त है । वह (देवान् शंसं, मर्तं धायसे वेति) देवोंको स्तुति करनेवाले मनुष्यके पास हविके लिए ले जाता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— अग्निके तीन रूप हैं, पहला भौतिक अग्नि अन्नको पकाता और प्राणियोंके शरीरोंको धारण करता है । दूसरा अग्नि मेघोंमें बिजलीके रूपसे विद्यमान् है । तीसरा अग्नि सब रसोंका दोहन करनेवाले सूर्यके रूपमें है । ऐसे इस अग्निको दश अंगुलियां मथकर प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

प्रथम यह अग्नि अरणियोंमें अप्रकट रूपसे रहता है, तब इसकी प्रशंसा नहीं होती । पर जब विद्वान् सोमयागके लिए इसको मथकर प्रकट करते हैं, तब सब इसकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

यह अग्नि सबका पालन करनेवाला होनेके कारण सब इसे प्रज्वलित करते व इसकी उपासना करते हैं । यह प्रकट होकर तेजस्वी और बलवान् होता है ॥ ४ ॥

यह अग्नि प्रदीप्त होकर चारों ओर फैलता है और बढता है । यह वनमें प्रदीप्त होकर पुराने और नये वृक्षोंको खा जाता है ॥ ५ ॥

यज्ञ करनेवाले सभी मनुष्य इस अग्निका वरण करते और उसे प्रसन्न करते हैं । ऐसे मनुष्योंके यज्ञोंमें वह अग्नि हवि भक्षणके लिए देवोंको बुलाकर लाता है ॥ ६ ॥

१५४५ वि यदस्था॑द् य॒ज॒तो वात॑चोदितो ह्वा॒रो न वक्वा॑ ज॒रणा॒ अना॑कृतः ।
तस्य॒ पत्म॑न् द॒क्षुषः॑ कृ॒ष्णजं॑हसः॒ शुचि॑जन्मनो॒ रज॒ आ व्य॑ध्वनः ॥ ७ ॥
१५४६ रथो॒ न या॒तः शिक्व॑भिः कृ॒तो द्याम॒ङ्गे॑भिररु॒षेभि॑रीयते ।
आद॑स्य॒ ते कृ॒ष्णासो॑ दक्षि सू॒रयः॒ शूर॑स्येव त्वे॒षथा॑दीषते॒ वयः॑ ॥ ८ ॥
१५४७ त्वया॒ ह्य॑ग्ने॒ वरु॑णो धृ॒तव्र॑तो मि॒त्रः शा॑श॒द्रे अ॑र्य॒मा सु॒दान॑वः ।
यत् सी॒मनु॒ क्रतु॑ना वि॒श्वथा॑ वि॒भुर॒रान्न ने॒मिः प॑रि॒भूरजा॑यथाः ॥ ९ ॥
१५४८ त्वम॑ग्ने शशमा॒नाय॑ सुन्व॒ते रत्नं॑ यविष्ठ दे॒वता॑तिमिन्वसि ।
तं त्वा॒ नु नव्यं॑ सहसो युवन् व॒यं भगं॒ न का॒रे म॑हिरत्न धीमहि ॥ १० ॥

अर्थ— [१५४५] (अनाकृतः वक्वा जरणा ह्वारः न) न रोके जाने योग्य, बहुत बोलनेवाला, स्तुति आदि मखौलयुक्त वचनोंसे जिस प्रकार विदूषक सब स्थानको हँसीसे व्याप्त कर देता है उसी प्रकार (वातचोदितः यजतः वि यद् अस्थात्) वायु द्वारा परिचालित यजनीय अग्नि जब चारों ओर व्याप्त हो जाता है तब (दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनः व्यध्वनः) सबको जलानेवाले, जानेके पश्चात् अपने मार्गको काला करनेवाले, पवित्र जन्मवाले तथा अनेक मार्गोंसे जानेवाले (तस्य पत्मन् रजः आ) उस अग्निके मार्गपर सारे लोक चलते हैं ॥ ७ ॥

[१५४६] (शिक्वभिः कृतः यातः रथः न) निपुणकारीगरोंके द्वारा बनाए गए और चलाए गए रथकी तरह यह अग्नि (अरुषेभिः अङ्गेभिः द्यां ईयते) गमनशील ज्वालाओंसे द्युलोककी ओर जाता है । (आत् अस्य ते सूरयः कृष्णासः दक्षि) गमन करनेके अनन्तर इसका वह गमन मार्ग काले वर्णवाला हो जाता है क्योंकि वह काष्ठोंको जलाता है । और (शूरस्य इव त्वेषथात् वयः ईषते) वीरकी तरह इसके देदीप्यमान तेजसे पक्षी आदि भाग जाते हैं ॥ ८ ॥

[१५४७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वया हि वरुणः धृतव्रतः) तेरे कारण ही वरुण अपना व्रत धारण करता, (मित्रः शाशद्रे, अर्यमा सुदानवः) मित्र अन्धकार दूर करता और अर्यमा दानशील होता है । (यत् सीं क्रतुना विश्वथा विभुः परिभूः अनु अजायथाः) इस कारणसे हे अग्नि ! तू सर्वत्र कर्म द्वारा, विश्वात्मक, सर्वव्यापी और सबका पराभवकारी होकर उत्पन्न होता है । तथा (अरान् नेमिः न) जैसे रथका पहिया अरोंको व्याप्त करके रहता है उसी प्रकार तू भी सबको व्याप्त करके रहता है ॥ ९ ॥

१ त्वया वरुणः धृतव्रतः, मित्रः शाशद्रे, अर्यमा सुदानवः— हे अग्ने ! तेरे कारण वरणीय देव व्रतोंको धारण करता, सूर्य अन्धकार हटाता है और श्रेष्ठ पुरुष उत्तम प्रकारसे दान देता है ।

[१५४८] हे (यविष्ठ अग्ने) अत्यन्त युवा अग्ने ! (त्वं शशमानाय सुन्वते रत्नं देवतातिं इन्वसि) तू स्तुति करनेवाले और सोम निष्पन्न करनेवाले यजमानके लिये वैभव योग्य श्रेष्ठ धन देता है । हे (सहसः युवन् महिरत्न) बलके पुत्र तरुण और रमणीय धन अग्ने ! (नव्यं तं त्वा वयं) महा स्तुतिके योग्य तेरी हम सब (भगं न कारे नु धीमहि) राजाकी तरह स्तुति कालमें स्तोत्रोंसे उपासना करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— जब अग्नि वायुकी सहायतासे चारों ओर फैलता है, तब सारे लोक इसका अनुसरण करते हैं, इसकी उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

निपुण कारीगरों द्वारा बनाए गए रथकी तरह यह अग्नि ज्वालाओंके साथ द्युलोककी ओर तेजीसे दौडता तथा काष्ठोंको जलाकर यह अपना मार्ग काला करता जाता है । इसकी ज्वालाओंको देखकर सारे पक्षी डर कर भाग जाते हैं ॥ ८ ॥

इस अग्निके कारण ही सब देव अपना अपना कार्य करते हैं । यह सर्वत्र व्याप्त है इसलिए सबका नियमन करता है ॥ ९ ॥

यह सोमयाग करनेवालेको श्रेष्ठ धन देता है, अतः सब इसकी उपासना करते हैं ॥ १० ॥

१५४९ अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मीँरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥ ११ ॥
१५५० उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरो ऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥ १२ ॥
१५५१ अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥ १३ ॥

[१४२]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- (आप्रीसूक्तं)= १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळाः, ५ बर्हिः, ६ देवीः द्वारः, ७ उषासानक्ता ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळा-भारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः, १३ इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

१५५२ समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

अर्थ— [१५४९] हे अग्ने ! तू (अस्मे न स्वर्थं दमूनसं रयिं पपृचासि) हमारे लिये जिस प्रकार अत्यन्त प्रयोजनीय और घरके लिए उपयोगी धनको देता है, उसी प्रकार (भगं दक्षं न धर्णसिं) ऐश्वर्यसे सम्पन्न, अत्यन्त उत्साही और सहायकारीको भी प्रदान कर, क्योंकि (यः) जो तू अपने (उभे जन्मनी रश्मीन् इव यमति) जन्म देनेवाले आकाश और पृथ्वी दोनोंको रासोंके समान वशमें रखता है, ऐसा (च सुक्रतुः ऋते देवानां शंसं आ) उत्तम कर्म करनेवाला तू यज्ञमें विद्वानोंकी प्रशंसा प्राप्त कर ॥ ११ ॥

[१५५०] (सुद्योत्मा जीराश्वः होता) तेजस्वी, वेगवान् अश्वसे युक्त, देवोंको बुलानेवाला (मन्द्रः चन्द्ररथः अमूरः वस्यः अग्निः) आनन्दमय सोनेके रथवाला, अप्रतिहत शक्तिवाला और प्रसन्न स्वभाववाला अग्नि (नः उत शृणवत्) हमारी प्रार्थना सुनेगा क्या ? तथा (सः नेषतमैः नः वामं सुवितं अच्छ नेषत्) वह कर्म द्वारा हमको सौभाग्यकी ओर भली प्रकारसे ले जाएगा क्या ? ॥ १२ ॥

[१५५१] (साम्राज्याय प्रतरं दधानः अग्निः) साम्राज्यके लिए उत्तम तेजको धारण करनेवाला अग्नि (शिमीवद्भिः अर्कैः अस्तावि) प्रभावोत्पादक स्तोत्रोंसे प्रशंसित होता है । (सूरः मिहं न) जिसप्रकार सूर्य मेघोंको गर्जाता है, उसी प्रकार (अमी च वयं च ये मघवानः) ये ऋत्विक्, हम तथा और दूसरे सम्पत्तिमान् हैं, वे सब (अति निष्टतन्युः) जोर जोरसे अग्निकी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥

२ साम्राज्याय प्रतरं दधानः अस्तावि— साम्राज्यको उत्तमतासे धारण करनेवाला राजा प्रजाओं द्वारा प्रशंसित होता है ।

[१४२]

[१५५२] हे (अग्ने) अग्ने ! (समिद्धः) प्रज्ज्वलित होकर तू (अद्य) आज (देवान् आ वह) देवोंको हमारे पास ला और (यतस्रुचे सुतसोमाय दाशुषे) आहुति देनेके लिए स्रुवाको उठाये हुए, सोमको तैयार करनेवाले दानी यजमानके लिए (तन्तुं तनुष्व) अपनी किरणोंको फैला ॥ १ ॥

भावार्थ— वह अग्रणी हमें गृहस्थ जीवनके लिए उपयोगी सम्पत्ति तथा सन्तान आदि देवे । यह अग्नि सभी लोकोंपर अपना अधिकार चलाता है । और उत्तम कर्म करके विद्वानोंकी प्रशंसा प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

अनेकगुणोंसे विभूषित वह अग्नि भला हमारी प्रार्थना सुनेगा ? और हमें सौभाग्यकी ओर ले जाएगा ? ॥ १२ ॥

साम्राज्यको धारण करनेवाला तेजस्वी सबसे प्रशंसित होता है ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! तू प्रज्वलित होकर देवोंको बुलाकर ला और यज्ञ एवं दान करनेवाले मनुष्यके लिए अपनी ज्वालाओंको फैला और उसका हित कर ॥ १ ॥

१५५३ घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥
१५५४ शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥
१५५५ ईळितो अग्न आ वहे-न्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
इयं हि त्वा मतिर्ममा-च्छा सुजिह्व वच्यते ॥ ४ ॥
१५५६ स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
वृञ्जे देवव्यचस्तम-मिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१५५३] हे (तनूनपात्) शरीरको न गिरने देनेवाले अग्ने ! (शशमानस्य दाशुषः) तेरी प्रशंसा करनेवाले तथा दान देनेवाले (मावतः विप्रस्य) मुझ जैसे ज्ञानी मनुष्यके (मधुमन्तं घृतवन्तं यज्ञं) मधुरतासे युक्त तथा तेजस्वी यज्ञके (उप मासि) पास आकर बैठ ॥ २ ॥

[१५५४] (देवेषु यज्ञियः) देवोंमें पूजनीय (शुचिः पावकः) स्वयं पवित्र रहकर दूसरोंको भी पवित्र करनेवाला (अद्भुतः देवः) अद्भुत और तेजस्वी (नराशंसः) मनुष्योंसे प्रशंसित देव (यज्ञं) यज्ञको (दिवः मध्वा त्रिः आ मिमक्षति) द्युलोकके मधुर रससे तीनबार सींचता है ॥ ३ ॥

[१५५५] हे (अग्ने) तेजस्वी देव ! (ईळितः) प्रशंसित होकर तू (चित्रं प्रियं इन्द्रं) आश्चर्यकारक कर्म करनेवाले तथा प्रिय इन्द्रको (इह आ वह) यहां हमारे पास ले आ । हे (सुजिह्व) सुन्दर ज्वालाओंवाले अग्ने ! (इयं मम मतिः) यह मेरी बुद्धि (त्वा अच्छ वच्यते) तेरी ही स्तुति करती है ॥ ४ ॥

[१५५६] (सु अध्वरे यज्ञे] उत्तम और हिंसारहित यज्ञमें (बर्हिः स्तृणानासः यतस्रुचः) आसनोंको फैलानेवाले तथा आहुति देनेके लिए स्रुवाको उठाये हुए मनुष्य (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (देवव्यचस्तमं सप्रथः शर्म) देवोंके लिए योग्य और सुविस्तृत स्थानको (वृञ्जे) तैय्यार करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह अग्नि या गर्मी जबतक शरीरमें रहती है, तबतक यह शरीर स्वस्थ रहता है। इसीलिए अग्निको तनूनपात् कहा गया है । जबतक इस शरीरमें मानवजीवनरूप यज्ञ चलता रहता है, तबतक अग्नि इस शरीरमें बैठा रहता है ॥ २ ॥

यह नरोंसे प्रशंसित देव पूज्य पवित्र तथा दूसरोंको पवित्र करनेवाला अद्भुत और तेजस्वी है । यह देव द्युलोकमें रहकर वर्षाजलरूपी मधुर रसको उत्पन्न करता है और उससे पृथ्वीको सींचता है । मनुष्योंको दिनमें तीनबार यज्ञ करनेका विधान है अर्थात् दिनमें तीनबार मनुष्य घृत और मधुर रसोंसे यज्ञको सींचे ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तू आश्चर्यकारक कर्म करनेवाले और सबका हित करनेवाले इन्द्रको हमारे पास ला । ताकि मैं अपनी श्रद्धा एवं भक्तिसे युक्त होकर तुम्हारी स्तुति कर सकूं ॥ ४ ॥

यज्ञ उत्तम और हिंसारहित हो । देवपूजा संगठन और दान इत्यादिके जो भी काम किए जाएं, वे किसीपर अत्याचार करके न किए जाएं । समझा बुझाकर प्रजाओंको संगठित किया जाए । इसी तरह किसीसे मारपीटकर जबर्दस्ती दान न करवाया जाए । इसी प्रकार देवपूजा भी हिंसारहित हो । इन सभी उत्तम कामोंमें राजा या राष्ट्रके अधिपतिको उत्तम स्थान प्रदान किया जाए ॥ ५ ॥

१५५७ वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥ ६ ॥
१५५८ आ मन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥ ७ ॥
१५५९ मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥
१५६० शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१५५७] (ऋतावृधः) यज्ञको बढानेवाली (महीः) महिमासे युक्त (पावकासः पुरुस्पृहः) पवित्र करनेवाले, इसी कारण बहुतोंके द्वारा चाहने योग्य तथा (असश्चतः) अलग अलग रहनेवाले (देवीः द्वारः) दिव्य द्वार (देवेभ्यः प्रयै) देवत्वको प्राप्त करानेके लिए (वि श्रयन्तां) यहां रहें ॥ ६ ॥

[१५५८] (मन्दमाने) स्तुतिको प्राप्त होकर (सुपेशसा) उत्तम रूपवाली, (यह्वी) महान् (ऋतस्य मातरा) यज्ञको सिद्ध करनेवाली (उपाके) आपसमें मिलकर रहनेवाली (नक्तोषासा) रात्रि और उषा (सुमत्) हमारे विषयमें उत्तम विचारोंको धारण कर (बर्हिः आ सीदतां) हमारे यज्ञमें आकर बैठें ॥ ७ ॥

[१५५९] (मन्द्रजिव्हा) सुन्दरवाणीवाले (जुगुर्वणी) उच्चस्वरसे स्तुति करनेवाले (कवी) ज्ञानी (दैव्या होतारा) दिव्य होता (अद्य) आज (नः इमं सिध्रं दिविस्पृशं यज्ञं) हमारे इस सिद्धि प्रदान करनेवाले द्युलोकको छूनेवाले यज्ञमें आकर (यक्षतां) पूजा करें ॥ ८ ॥

[१५६०] (शुचिः) पवित्र (देवेषु मरुत्सु अर्पिता) देवोंमें और मरुतोंमें पूज्य (होत्रा) होता (भारती) भारती तथा (मही यज्ञियाः सरस्वती इळा) महान् और पूज्य सरस्वती और इळा (बर्हिः सीदन्तु) यज्ञमें विराजें ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह शरीर एक यज्ञशाला है, जिसमें जीवनका एक यज्ञ चल रहा है । इस यज्ञशालामें आंख, नाक, कान, मुंह, गुदद्वार और जननेन्द्रिय द्वार ये नौ द्वार हैं, जो अलग अलग कार्य करते रहते हैं । इन द्वारोंमेंसे शरीरका मल बाहर निकलता है, अतः ये शरीरको पवित्र करते हैं । ये सभी द्वार शक्तिशाली हों, यह सभी मनुष्य चाहते हैं । इन सभी द्वारोंको जो अपने नियंत्रणमें रखता है, वह देव बनता है । अच्छी तरह नियंत्रित हुई ये इन्द्रियां मनुष्यको देवत्व प्राप्त कराती हैं ॥६॥

उषा और रात्रि दोनों सुन्दर रूपवाले हैं, जिस समय उषा और रात्रि दोनों मिलती हैं, वह काल नक्तोषस् काल है । ऐसे समय यज्ञ शुरु होते हैं । इसीलिए नक्तोषस्‌को यज्ञ की माता कहा है । ये हमेशा साथमें मिलकर रहती हैं । इसी तरह स्त्रियां भी आपसमें मिलकर रहें ॥ ७ ॥

यज्ञ करनेवाले होता उत्तम वाणीवाले हों, सदा मीठी वाणी बोलें तथा स्तोत्र बोलनेमें प्रवीण हों और यज्ञ कर्मोंका अच्छा ज्ञान हो । ऐसे होताओं द्वारा किया जानेवाला यज्ञ सिद्धिको देनेवाला होता है ॥ ८ ॥

मातृभाषा, मातृसंस्कृति और मातृभूमि ये तीनों मनुष्योंमें सदा जागृत रहें । देवों और मर्त्योंमें इनके प्रति अभिमान रहे ॥ ९ ॥

१५६१ तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।
त्वष्टा पोषाय विष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥
१५६२ अवसृजन्नुप त्मना देवान् यक्षि वनस्पते ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥
१५६३ पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।
स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२ ॥
१५६४ स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥

[१४३]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती, ८ त्रिष्टुप् ।)

१५६५ प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदद्दृत्वियः ॥ १ ॥

अर्थ— [१५६१] (त्वष्टा) त्वष्टा देव (अस्मयुः) हमें चाहते हुए (नः पोषाय राये) हमारी पुष्टि और धनके लिए (तत् तुरीपं) उस शीघ्रतासे बहनेवाले (पुरुवारं) बहुतोंसे चाहने योग्य (अद्भुतं) अद्भुत जलको (नाभा) अन्तरिक्षसे (त्मना) स्वयं (विस्यतु) बरसावे ॥ १० ॥

[१५६२] हे (वनस्पते) वनके स्वामिन् ! तू (त्मना अवसृजन्) स्वयं कर्मोंमें प्रेरित होकर (देवान् यक्षि) देवोंका यजन कर । (मेधिरः देवः अग्निः) बुद्धिमान् देव अग्नि (देवेषु हव्या सुषूदति) देवोंमें हवियोंको प्रेरित करता है ॥ ११ ॥

[१५६३] (पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय) पूषा और मरुतोंसे युक्त सभी देवोंके लिए (वायवे) वायुके लिए (गायत्रवेपसे इन्द्राय) स्तुति करनेवालेके रक्षकके रूपमें प्रसिद्ध इन्द्रके लिए (हव्यं) प्रशंसनीय (स्वाहा कर्तन) आत्मसमर्पण करो ॥ १२ ॥

[१५६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (स्वाहाकृतानि हव्यानि वीतये) आत्मसमर्पणपूर्वक दी गई हवियोंको खानेके लिए तू (उप आ गहि) पास आ । (अध्वरे त्वां हवन्ते) यज्ञमें मनुष्य तुझे बुला रहे हैं, (हवं श्रुधी) उनकी प्रार्थना सुन और (आ गहि) आ ॥ १३ ॥

[१४३]

[१५६५] (सहसः सूनवे) जो बलका पुत्र (अपां नपात् प्रियः) जलका रक्षक, सबका प्यारा (होता ऋत्वियः यः वसुभिः सह) होमका सम्पादक ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करनेवाला जो अग्नि धनोंके साथ (पृथिव्यां न्यसीदत्) पृथ्वीके ऊपर यज्ञ वेदी पर बैठता है; (अग्नये तव्यसीं नव्यसीं धीतिं वाचः मतिं प्रभरे) उस अग्निके लिये मैं अतिशय बढानेवाली नवीनतम और धारण करनेयोग्य स्तुतियोंको बुद्धिपूर्वक कहता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ— यह त्वष्टा सबका निर्माण करनेवाला देव है । इसीलिए यह अन्तरिक्षसे जल बरसाकर सबको पुष्टि और ऐश्वर्यप्रदान करता है ॥ १० ॥

वृक्षोंकी समिधासे जब यज्ञाग्नि प्रज्वलित होती है, तब उसमें हवियां डाली जाती हैं, और तब अग्निमें वे हवियां भस्मीभूत होकर देवोंके पास पहुंचती हैं ॥ ११ ॥

जो गायत्रीका गान करता है और देवताओंकी स्तुति करता है, उस उपासककी इन्द्र रक्षा करता है । उपासकको चाहिए कि वह इन्द्र और अन्य देवोंके लिए आत्मसमर्पण करे, अर्थात् अपना सब कुछ देवोंको समर्पित कर दे ॥ १२ ॥

श्रद्धा भक्तिसे अपने इष्ट देवके चरणोंमें सभी कुछ समर्पित कर देना उपासकका कर्तव्य है । आत्मसमर्पण भावसे जो भगवान्‌को पुकारता है, भगवान् उसकी सुनते हैं और उसकी सहायता करते हैं ॥ १३ ॥

१५६६ स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥
१५६७ अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवो ऽग्ने रेजन्ते असंसन्तो अजराः ॥ ३ ॥
१५६८ यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥
१५६९ न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥ ५ ॥

अर्थ— [१५६६] (सः शोचिः अग्निः) वह तेजस्वी अग्नि (परमे व्योमनि जायमानः) उत्कृष्ट आकाशमें उत्पन्न होकर (मातरिश्वने आविः अभवत्) मातरिश्वा वायुके लिये सबसे प्रथम प्रकट हुआ । अनन्तर (समिधानस्य अस्य मज्मना क्रत्वा) अच्छीतरह प्रज्ज्वलित हुए इस अग्निके बल और सामर्थ्यसे (द्यावा पृथिवी प्र अरोचयत्) द्युलोक तथा पृथ्वीलोक प्रकाशित हुए ॥ २ ॥

[१५६७] (अस्य त्वेषाः अजराः) इस अग्निका दीप्त तेज बुढापेसे रहित है । (सुप्रतीकस्य अस्य भानवः सुसंदृशः सुद्युतः) शोभन मुखवाले इसकी किरणें सब ओर व्याप्त और प्रकाशमान हैं । (अग्नेः भात्वक्षसः अक्तुः अति सिन्धवः) अग्निकी देदीप्यमान् बलवाली तथा रात्रीके अन्धकारको नष्ट करनेवाली (असंसन्तः अजराः न रेजन्ते) सदा जाग्रत और जरारहित किरणें कम्पित नहीं होती हैं ॥ ३ ॥

१ सु प्रतीकस्य भानवः अजराः— शुभ मुखवाले मनुष्यका तेज चारों ओर फैलता है ।

[१५६८] (यः वरुणः न वस्वः एकः राजति) जो अग्नि वरुणके समान सब धनोंका एकमात्र स्वामी है तथा (भृगवः आ भुवनस्य) भृगुओंने सब संसारके उत्पन्न प्राणियोंके लिए (मज्मना पृथिव्याः विश्ववेदसं यं ईरिरे) बलसे पृथ्वीके ऊपर धनशाली जिस अग्निको स्थापित किया, तू भी (तं अग्निं स्वे दमे गीर्भिः आ हिनुहि) उस अग्निको अपने घरमें ले जाकर स्तुतियों द्वारा अच्छी प्रकारसे प्रज्ज्वलित कर ॥ ४ ॥

१ यः वरुणः न वस्वः एकः राजति— यह अग्नि वरुणके समान धनोंका एकमात्र स्वामी है ।

[१५६९] (यः अग्नि) जो अग्नि (मरुतां स्वनः इव) मरुतोंकी गर्जनाके समान, (सृष्टा सेना इव) आक्रमण करनेवाली प्रबल सेनाकी तरह तथा (दिव्या अशनिः यथा) आकाशके वज्रके समान किसीसे भी (न वराय) हटाया नहीं जा सकता है । वह (योधः न तिगितैः जम्भैः शत्रून् अत्ति) शूरवीरोंकी तरह तीखे दांतोंसे अर्थात् अपनी तीव्र ज्वालाओंसे शत्रुओंका भक्षण कर जाता है, (भर्वति, वना नि ऋञ्जते) उनका विनाश कर देता है तथा वनोंको निःशेष रूपसे जला देता है ॥ ५ ॥

१ मरुतां स्वनः इव सृष्टा सेना इव दिव्या अशनिः इव न वारय— मरुतोंके गर्जनके समान, आक्रमण करनेवाली सेनाके समान तथा आकाशके वज्रके समान बलशाली इस अग्निको कोई हटा नहीं सकता ।

भावार्थ— वह अग्नि बलका पुत्र, जलोंको धारण करनेवाला, सबको प्रिय तथा ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करनेवाला है ऐसे अग्निकी हम बुद्धिपूर्वक स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

वह अग्नि सर्व प्रथम प्रकट होकर वायुके साथ संयुक्त हुआ । उससे अग्नि और अधिक प्रदीप्त हुआ और उसका प्रकाश चारों ओर फैल गया ॥ २ ॥

इस अग्निका बल कभी क्षीण नहीं होता । इसकी किरणें अन्धकारका नाश करके हमेशा जाग्रत रहती हैं ॥ ३ ॥

सब प्रकारके धनोंके एक मात्र स्वामी इस अग्निको भृगुवंशियोंने इस पृथ्वीपर स्थापित किया ॥ ४ ॥

यह अग्नि बहुत बलवान् है अतः इसके साथ कोई मुकाबला नहीं कर सकता । क्योंकि यह अपने शत्रुओंको अपनी ज्वालाओंसे उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जिस प्रकार वनोंको ॥ ५ ॥

१५७० कुविन्नो अग्निरुचथ॑स्य वीरसद् वसु॑ष्कुविद् वसु॑भिः काम॑मावर॑त् ।
चोदः कुवित् तुतुज्यात् सातये धियः शुचि॑प्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥
१५७१ घृतप्र॑तीकं व ऋतस्य॑ धूर्षद॑मग्निं मित्रं न स॑मिधान ऋञ्जते ।
इन्धा॑नो अक्रो विदथे॑षु दीद्य॑च्छुक्रव॑र्णामुदु नो यंसते धियम् ॥ ७ ॥
१५७२ अप्र॑युच्छन्नप्र॑युच्छद्भिरग्ने शिवेभि॑र्नः पायुभि॑ः पाहि शग्मैः ।
अद॑ब्धेभिरद॑पितेभिरिष्टे ऽनि॑मिषद्भिः परि॑ पाहि नो जाः ॥ ८ ॥

[१४४]

(ऋषिः– दीर्घतमा औचथ्यः । देवता– अग्निः । छन्दः– जगती ।)

१५७३ एति प्र होता॑ व्रतम॑स्य माययो॑र्ध्वां दधा॑नः शुचि॑पेशसं धिय॑म् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अ॑स्य धाम॑ प्रथमं ह निंस॑ते ॥ १ ॥

अर्थ— [१५७०] (अग्निः नः उचथस्य कुवित् वीः असत्) अग्नि हमारे स्तोत्रकी बारम्बार कामना करनेवाला हो, तथा (वसुः वसुभिः कामं कुवित् आवरत्) सबको वास देनेवाला वह धनके द्वारा हमारी इच्छाको प्रचुर रूपसे पूर्ण करे । (धियः चोदः सातये कुवित् तुतुज्यात्) वह हमारे कर्मोंका प्रेरक होकर लाभके लिये हमें पुनः पुनः प्रेरित करे । मैं (शुचिप्रतीकं तं अया धिया गृणे) शोभन ज्वालावाले उस अग्निकी अपनी इस निर्मल बुद्धिसे स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

[१५७१] (वः ऋतस्य धूर्षदं घृतप्रतीकं अग्निं) तुम्हारे लिए यज्ञके निर्वाहक और घीसे प्रदीप्त अग्निको (मित्रं न समिधानः ऋञ्जते) मित्रकी तरह प्रदीप्त करके विभूषित किया जाता है । वह (इन्धानः अक्रः विदथेषु दीद्यत्) सम्यक् प्रकाशमान, ज्वालाओंसे युक्त, यज्ञोंमें प्रदीप्त होकर (नः शुक्रवर्णां धियं उदु यंसते) हमारी विशुद्ध बुद्धिको प्रबुद्ध करता है ॥ ७ ॥

नः शुक्रवर्णां धियं उत् यंसते— वह अग्नि हमारी निर्मल बुद्धिको प्रेरित करता है ।

[१५७२] हे (अग्ने) अग्ने ! (अप्रयुच्छन्, अप्रयुच्छद्भिः शिवेभिः शग्मैः पायुभिः नः पाहि) आलस्य न करते हुए अनवधान रहित, कल्याणरूप एवं सुखकर रक्षाओंके उपायोंसे तू हमारी रक्षा कर । हे (इष्टे) सबके पूज्य देव अग्ने ! तू (अदब्धेभिः अदृपितेभिः अनिमिषद्भिः) हिंसारहित होकर बिना किसी क्लेशके और आलस्य रहित होकर (नः जाः परिपाहि) हमारी सन्तानोंकी सब ओरसे रक्षा कर ॥ ८ ॥

[१४४]

[१५७३] (मायया होता ऊर्ध्वां शुचिपेशसं धियं दधानः) बहुत बुद्धिमान् होता अपनी उच्च और निर्मल बुद्धिको धारण किए हुए (यस्य व्रतं प्रएति) इस अग्निके बताए गए व्रतनियमोंपर चल रहा है । यह होता (दक्षिणावृतः स्रुचः क्रमते) आहुति देनेमें चतुर स्रुचाको धारण करता है । (याः प्रथमं अस्य धाम ह निंसते) जो स्रुचा सबसे पहले इसके स्थानको ही चूमती है ॥ १ ॥

भावार्थ— अग्नि हमारे स्तोत्रोंकी इच्छा तथा हमारी इच्छाओंको पूर्ण करे । इस प्रकार हमारी स्तुतिसे वह प्रसन्न होकर हमें लाभके लिए सदैव उत्तम कार्योंमें प्रेरित करे ॥ ६ ॥

यज्ञके सम्पादक और घीसे प्रदीप्त अग्निको हर तरहसे प्रज्ज्वलित करनेपर वह मनुष्योंकी निर्मल बुद्धियोंको उत्तम कर्मोंकी तरफ प्रेरित करता है ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! आलस्यरहित होकर कल्याणकारक एवं सुखकारक संरक्षणके साधनोंसे हमारी एवं हमारी सन्तानोंकी रक्षा कर ॥ ८ ॥

×

१५७४ अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावस—दध स्वधा अधयद् याभिरीयते ॥ २ ॥
१५७५ युयूषतः सवयसा तदिद् वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोह्ळुर्न रश्मीन् त्समयंस्त सारथिः ॥ ३ ॥
१५७६ यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५७४] (ऋतस्य दोहनाः) जलकी धारायें (योनौ देवस्य सदने परीवृताः) अग्निके उत्पत्ति स्थान सूर्यलोकमें अग्निको चारों ओर घेरकर उस अग्निकी (अभि अनूषत) स्तुति करती हैं। (यत् अपामुपस्थे विभृतः आवसत्) जब जलकी गोदमें अग्नि सुखपूर्वक रहता है (अध स्वधा अधयत्) तब ही लोग अमृतमय जलपान करते हैं। और (याभिः ईयते) जलके साथ ही यह अग्नि विद्युत् रूपमें मिल जाता है ॥ २ ॥

[१५७५] (तद् इत् सवयसा वितरित्रता) उस समयमें समान सामर्थ्यवाले अच्छी प्रकार स्थापित (समानं अर्थं मिथः वपुः युयूषतः) एक ही अर्थकी सिद्धिके लिए परस्पर एक दूसरेके शरीरका आलिंगन करते हैं। (आदीं हव्यः अस्मत् आ आसमयंस्त) उसके अनन्तर ही आहवनीय अग्नि हमारी दी हुई घृतधाराको सब ओरसे इसी प्रकार स्वीकार करता है जिस प्रकार (भगः न सारथिः वोळ्हुः) जैसे पूजनीय भग देव अपनी हविको ग्रहण करता है अथवा जिस प्रकार सारथी घोडोंके लगामको ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

१ सवयसा समाने अर्थे मिथः वपुः युयूषतः— सामर्थ्यवाली दो अरणियां अग्निको प्रकट करनेके रूप समान अर्थकी सिद्धिके लिए अपने शरीरको परस्पर रगडती हैं।

[१५७६] (द्वा सवयसा समाने योना) दो समान अवस्थावाले, एक ही स्थानमें रहनेवाले (मिथुना समोकसा यमीं) एक कार्यमें नियुक्त एक ही घरमें रहनेवाले दम्पती जिस अग्निकी (दिवा न नक्तं सपर्यतः) दिनरात सर्वदा पूजा करते हैं, उनसे पूजित हुआ अग्नि (पलितः युवा अजनि) वृद्ध होता हुआ भी तरुण है तथा (मानुषा युगा पुरु चरन् अजरः) अनेकों मानवीय युगोंसे बहुत संचार करता हुआ भी कभी बूढा नहीं होता और हमेशा अजर बना रहता है ॥ ४ ॥

पलितः युवा अजनि— यह अग्नि अत्यन्त प्राचीन होता हुआ भी तरुण ही है।
मानुषा युगा पुरुचरन् अजरः— अनेकों युगों अर्थात् अनन्त कालतक बहुत संचार करता हुआ भी यह अग्नि कभी बूढा नहीं होता, सदा तरुण ही बना रहता है।

भावार्थ— प्रथम होता निर्मल बुद्धिसे सत्य नियमोंपर चलता है फिर शुद्ध होकर अग्निमें आहुति देनेके लिए स्रुचाको उठाता है ॥ १ ॥

द्युलोकमें पानीकी धारायें अर्थात् मेघ इस अग्निको घेर लेते हैं, तब यह अग्नि अपनी किरणोंसे पानी बरसाता है और लोग इस धाराको आनन्दसे पीते हैं ॥ २ ॥

समान सामर्थ्यवाली दो अरणियां अग्निको प्रकट करनेके लिए परस्पर रगड खाती हैं, उसके बाद अग्नि प्रकट होकर हव्य ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार यह अग्नि अनन्तकालसे सदा पूजित होता आ रहा है और बहुत प्रकाशित होनेपर भी बूढा नहीं होता, उसी प्रकार अग्रणी नेताको भी सदा उत्साहसे युक्त रहना चाहिए ॥ ४ ॥

१५७७ तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशों देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्व—त्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥
१५७८ त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्करी बर्हिराशाते ॥ ६ ॥
१५७९ अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद् वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥ ७ ॥

[१४५]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती, ५ त्रिष्टुप् ।)

१५८० तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन् त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥

अर्थ— [१५७७] (दशधीतयः व्रिशः देवं तं हिन्वन्ति) दसों अंगुलियाँ आपसमें अलग अलग होकर भी, प्रकाशशाली उस अग्निको प्रसन्न करती हैं। हम सब (मर्तासः) मनुष्य (ऊतये हवामहे) अपनी रक्षाके लिये अग्निको बुलाते हैं। (धनोः प्रवतः आ सः ऋण्वति) जैसे धनुषसे बाण निकलता है वैसे ही यह अग्नि प्रकट होता है। और (अभि व्रजद्भिः नवा वयुना अधित) चारों ओर विचरनेवाले अपने स्तोताओंके द्वारा की गई नयी नयी स्तुतियोंको अपने अन्दर धारण करता है ॥ ५ ॥

[१५७८] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं पशुपा इव) तू पशुपालकोंकी तरह (त्मना दिव्यस्य पार्थिवस्य राजसि) अपने सामर्थ्यसे द्यावा और पृथ्वीका स्वामी है। इसलिये (बृहती, अभिश्रिया, हिरण्ययी, वक्वरी एनी एते) महती, ऐश्वर्यशालिनी, सुवर्णमयी, मंगल शब्दकारिणी, शुभ्रवर्णवाली ये दोनों द्यावापृथ्वी (ते बर्हिः आशाते) तेरे इस प्रसिद्ध यज्ञमें प्राप्त होती हैं ॥ ६ ॥

[१५७९] हे (मन्द्र) स्तुत्य, (स्वधावः ऋतजातः सुक्रतो अग्ने) अन्नसे समृद्ध, सत्यके लिए उत्पन्न, शोभन-कर्मवाले अग्ने ! (यः) जो तू (विश्वतः प्रत्यङ्ङसि, दर्शतः) सम्पूर्ण स्थावर जंगमादि जगत्के अनुकूल, दर्शनीय, (पितुमान् इव संदृष्टौ रण्वः क्षयः) यथेष्ट अन्नशाली व्यक्तिकी तरह, नेत्रोंको आनन्द देनेवाला और सबका निवास स्थान है इसलिए तू (जुषस्व) प्रसन्न हो तथा (तत् वचः प्रति हर्य) उन स्तोत्र वचनोंको पुनः पुनः सुननेकी कामना कर ॥ ७ ॥

[१४५]

[१५८०] हे मनुष्यो ! तुम सब (तं पृच्छता) उस अग्निसे पूछो (स जगाम, स वेद स चिकित्वान्, स ईयते) वही सर्वत्र जानेवाला है, वही सब कुछ जानता है वही बुद्धिमान् है, वही सर्वत्र व्यापक है और (नु ईयते) निश्चयसे वही सर्वव्यापक है। (तस्मिन् प्रशिषः सन्ति) उसमें प्रशासन करनेकी शक्तियाँ हैं, (तस्मिन् इष्टयः) सारी अभीष्ट वस्तुयें भी उसीमें हैं। और (सः वाजस्य, शवसः शुष्मिणः पतिः) वह अग्नि अन्नका, बलका तथा बलवानोंका भी स्वामी है ॥ १ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार अंगुलियाँ अलग अलग होती हुई भी मिलकर अग्निको प्रकट करती हैं, उसी प्रकार सब विभिन्न प्रजाओंको मिलकर अग्रणीको प्रकट करना चाहिए ॥ ५ ॥

यह अग्रणी द्यावापृथिवीका स्वामी है, इसलिए इस अग्निका प्रकाश दोनों लोकोंमें फैलता है ॥ ६ ॥

यह अग्नि सत्यकी रक्षाके लिए उत्पन्न, समृद्ध, सुन्दर, नेत्रोंको शक्ति देनेवाला, तथा सबको बसानेवाला है। ऐसे अग्निकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ७ ॥

१५८१ तमित् पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदपितः ॥ २ ॥
१५८२ तमिद् गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद् वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३ ॥
१५८३ उपस्थायं चरति यत् समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५८१] (तम् इत् पृच्छन्ति सिमः न वि पृच्छति) उस अग्निसे विद्वान् ही प्रश्न पूछते हैं क्योंकि सब लोग उससे नहीं पूछ सकते । (धीरः स्वेन इव मनसा) धीर व्यक्ति जो अपने मनसे ही (यत् अग्रभीत्) जो काम करनेका निश्चय कर लेता है (प्रथमं) उसे पहले ही कर डालता है (अपरं न) बादमें नहीं, क्योंकि वह (वचः न मृष्यते) किसीके कहनेको सहन नहीं करता, इसलिये ही (अप्रदपितः अस्य क्रत्वा सचते) दम्भविहीन मनुष्य अग्निके बलको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

१ धीरः स्वेन मनसा यत् अग्रभीत् प्रथमं, न अपरं— धीर बुद्धिमान् मनुष्य जो मनसे निश्चय कर लेता है, उसे पहले ही कर डालता है बादमें नहीं, क्योंकि—
२ वचः न मृष्यते— वह किसीका कहना सुनना पसन्द नहीं करता ।
३ अप्रदपितः अस्य क्रत्वा सचते— गर्व हीन मनुष्य ही इस अग्निके बलसे युक्त होता है ।

[१५८२] (जुह्वः तं इत् गच्छन्ति) सब चमस उस अग्निको ही लक्ष्य करके जाते हैं और (अर्वतीः तं) स्तुतियाँ भी उसके ही लिये हैं, वह (एकः मे विश्वानि वचांसि शृणवत्) अकेले ही मेरे सम्पूर्ण स्तोत्रवचनोंको सुनता है । (पुरु प्रैषः ततुरिः यज्ञसाधनः) बहुतोंका प्रेरक, दुःखसे पार करानेवाला, यज्ञका साधक (अच्छिद्रोतिः) निर्दोष संरक्षक शक्तिसे युक्त है (शिशुः, संरभः, आदत्त) शिशुकी तरह प्रियकारी यह अग्नि हवियोंको स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

[१५८३] (यत् उपस्थायं चरति) जब यजमान अग्निकी सेवा करता है तब यह (सद्यः जातः सं आरत) शीघ्र उत्पन्न होकर सर्वत्र जाता है । और उत्पन्न होकर तुरन्त (युज्येभिः तत्सार) अपनी ज्वालाओंसे सर्वत्र प्रकाशित होता है । और (यत् अपिष्ठितं ईं उशतीः गच्छन्ति) जब सर्वत्र व्याप्त इस अग्निकी ओर कामना करती हुई आहुतियां जाती हैं, उस समय यह अग्नि (नान्द्ये श्वान्तं मुदे अभि मृशते) आनन्दवर्धक कर्ममें थके हुये यजमानको सन्तोष देनेके लिये अभीष्ट फल देता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्रणी बुद्धिमान् ज्ञानी सर्वत्र और सर्वव्यापक है, वही सबका स्वामी है, वही सब जगत् पर शासन कर रहा है इसलिए वही शरणमें जाने योग्य है ॥ १ ॥

यह अग्रणी ज्ञानी है, इसलिए सब इसीसे अपनी समस्यायें पूछते हैं । बुद्धिमान् मनुष्य अपने मनके निश्चयके अनुसार कार्य करते हैं सभी इसके पास विनयसे जाते हैं, इसके बलसे युक्त होते हैं ॥ २ ॥

सारे कर्म उसी अग्रणीको लक्ष्य करके किए जाते हैं । वह अग्रणी अपने उपासकोंको प्रेरणा देनेवाला, दुःखोंसे पार करानेवाला, उनका संरक्षक और प्रिय करनेवाला है ॥ ३ ॥

मंथन कर्मसे प्रकट होकर यह अग्नि शीघ्र ही सब ओर फैलने लग जाता है और तभी इसमें घृतकी आहुतियां पडनी शुरु हो जाती हैं, और यह अग्नि उपासकोंको इष्ट फल देता है ॥ ४ ॥

१५८४ स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद् वयुना मर्त्येभ्यो ऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः । ॥ ५ ॥

[१४६]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१५८५ त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषे ऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥ १ ॥
१५८६ उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥ २ ॥

अर्थ-- [१५८४] (मृगः अप्यः वनर्गुः स ईं) खोजनेके और प्राप्त करनेके योग्य तथा वनमें जानेवाला वह अग्नि (उपमस्यां त्वचि उप नि धायि) सुन्दर इंधनके बीचमें स्थापित किया जाता है । स्थापित होनेके पश्चात् (विद्वान्, ऋतचित्, सत्यः अग्निः) सर्वज्ञ, यज्ञका ज्ञाता, यथार्थवादी अग्नि, (हि मर्त्येभ्यः वयुना वि अब्रवीत्) निश्चयसे मनुष्योंके लिये ज्ञानका उपदेश देता है ॥ ५ ॥

१ मृगः आप्यः— यह अग्नि खोजने और प्राप्त करनेके योग्य है, ' मृगो मार्ष्टेर्गतिकर्मणः ' (निरु. १।२०)

२ मर्त्येभ्यः वयुना वि अब्रवीत्— यह अग्रणी मनुष्योंको ज्ञानका उपदेश देता है । अग्नि ज्ञानोपदेशक है ।

[१४६]

[१४८५] (पित्रोः उपस्थे, निषत्तं त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं) पिता माता रूप द्यु और पृथ्वीके गोदके मध्यमें अवस्थित, सवनत्रय रूप तीन मस्तकसे युक्त, सप्त छन्दरूप सात रश्मियोंसे सम्पन्न, (अनूनं आ पप्रिवांसं अग्निं गृणीषे) और न्यूनतासे रहित अर्थात् पूर्ण और सबको पूर्ण करनेवाले इस अग्निकी स्तुति कर । (दिवः अस्य विश्वा रोचना) द्युलोकसे आया हुआ इस अग्निका सम्पूर्ण तेज समूह (ध्रुवस्य, चरतः) सभी स्थावर और जंगम पदार्थोंमें व्याप्त हो रहा है ॥ १ ॥

१ त्रिमूर्धानं, सप्तरश्मि— प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और सायंसवन ये तीन सवन ही अग्निके तीन सिर हैं और त्रिष्टुप्, जगती, बृहती, अनुष्टुभ्, उष्णिक्, पंक्ति और गायत्री ये सात छन्द ही सात रश्मियां है अथवा काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता ये सात ज्वालाएं ।

[१५८६ । (उक्षा महान्) समर्थ और महान् अग्नि (एने अभि ववक्षे) इस द्यावा और पृथ्वीको चारों ओरसे व्याप्त किये हुए है । यह (अजरः ऋष्वः इतऊतिः तस्थौ) बुढापेसे रहित, पूज्य, रक्षा साधनोंसे युक्त होकर स्थित है । तथा (उर्व्याः सानौ पदः निदधाति) विस्तृत भूमिके प्रदेशपर अपने पैरको रखता है । (अस्य अरुषासः ऊधः रिहन्ति) इसकी उज्ज्वल ज्वालायें अन्तरिक्षरूपी स्तनको चाटती हैं ॥ २ ॥

भावार्थ-- यह अग्रणी सबके द्वारा प्राप्त करने योग्य है क्योंकि यह ज्ञानी है, सत्यका पालक और सबको सत्यके मार्गपर प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

द्यु और पृथ्वीके बीचमें स्थित यह अग्नि अपनी सात तरहकी ज्वालाओंसे सबको व्याप लेता है। यही स्थावर और जंगममें व्याप्त है ॥ १ ॥

यह अग्नि महान् और सामर्थ्यशाली है । सदा तरुण रहनेवाला अग्नि सदा संरक्षणके साधनोंसे युक्त रहता है । इसकी प्रदीप्त ज्वालाएं आकाशमें सर्वत्र फैलती हैं ॥ २ ॥

१५८७ समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वंग्धेनू वि चरतः सुमेके ।
अनपवृज्याँ अध्वंनो मिमाने विश्वान् केताँ अधि महो दधाने ॥ ३ ॥
१५८८ धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धु—माविरेभ्यो अभवत् सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥
१५८९ दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।
पुरुत्रा यदभवत् सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ ॥

[१४७]

(ऋषिः– दीर्घतमा औचथ्यः । देवता– अग्निः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

१५९० कथा ते अग्ने शुचयन्त आयो—र्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत् तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः ॥ १ ॥

अर्थ-- [१५८७] (समानं वत्सं संचरन्ती) एक ही बछडेकी तरफ जानेवालीं, (अध्वनः अन्- अपवृज्यान् मिमाने) मार्गोंको प्रकाशसे युक्त कर उन्हें जाने योग्य बनाती हुई (विश्वान् केतान् महः अधि दधाने) सभी तरहके ज्ञानोंको अत्यधिक धारण करती हुई (सुमेके धेनू विष्वक् चरतः) सुन्दर दर्शनीय दो गायें चारों ओर घूमती हैं ॥ ३ ॥

[१५८८] (धीरासः कवयः) धैर्यशाली तथा ज्ञानी मनुष्य इस अग्निकी (नाना हृदा रक्षमाणाः) अनेक प्रकारके साधनों द्वारा हृदय लगाकर रक्षा करते हुए (अजुर्यं पदं नयन्ति) नष्ट न होनेवाले स्थान पर ले जाते हैं । तब (सिन्धुं सिषासन्तः) नदी अर्थात् पानीकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंने (परि अपश्यन्त) पानीको चारों ओर देखा (एभ्यः नॄन्) ऐसे मनुष्योंके लिए (सूर्यः आविः अभवत्) सूर्य प्रकट हुआ ॥ ४ ॥

[१५८९] अग्नि (परि काष्ठासु दिदृक्षेण्यः जेन्यः ईळेन्य :) सम्पूर्ण दिशाओंमें दर्शनीय, सदा जयशील और स्तुतिके योग्य है । वह (महः अर्भाय जीवसे) बडे और छोटे अर्थात् सबको जीवन प्रदान करनेवाला है (यत् अह मघवा विश्वदर्शतः) इस कारण अनेक तरहसे धनवान् और दर्शनीय यह अग्नि (पुरुत्रा एभ्यः गर्भेभ्यः सूः अभवत्) इन गर्भस्थ पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाला है ॥ ५ ॥

[१४७]

[१५९०] हे (अग्ने) अग्ने ! (शुचयन्तः आशुषाणाः ते) शुद्ध करनेवाली और सर्वत्र प्रकाशित होनेवाली तेरी ज्वालाएं (कथा वाजेभिः आयोः ददाशुः) कैसे अन्नके साथ आयु प्रदान करती हैं ? (यत् तोके तनये उभे दधानाः) जिससे पुत्र और पौत्रादिके लिये अन्न और आयु प्राप्त कर (देवाः ऋतस्य सामन् रणयन्त) उत्तम गुण-वाले मनुष्य यज्ञके सामगानमें रमते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ-- एक ही अग्नि रूप पुत्रको उत्पन्न करनेवाली, मार्गोंको प्रकाशित करनेवाली, दो अरणीरूप गायें चारों ओर मथी जाती हैं ॥ ३ ॥

ज्ञानी जन इस अग्निकी हर तरहसे रक्षा करते हैं, ऐसे यज्ञीय मनुष्योंको हर तरहका सुख प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

सभी दिशाओंमें व्याप्त होनेके कारण एवं सदा विजय होनेके कारण यह अग्नि स्तुतिके योग्य है । वह छोटे बडे सबको जीवनशक्ति देता है और वही सबका उत्पादक है ॥ ५ ॥

जिस अन्नसे हर तरहका पोषण होता है वह अग्निके द्वारा किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, वह मार्ग जानना चाहिए ॥ १ ॥

१५९१ बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥
१५९२ ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान् त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥
१५९३ यो नो अग्ने अररिवाँ अघायु- ररातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५९१] हे (यविष्ठ) अत्यन्त बलवान् ! हे (स्वधावः) अन्नवान् अग्ने ! तू (मे मंहिष्ठस्य, प्रभृतस्य) मेरे आदरके योग्य और भली प्रकारसे सम्पादित (अस्य वचसः बोध) इस स्तुति रूप वचनोंको सुन । हे (अग्ने) अग्ने ! संसारमें (त्वः पीयति, त्वः अनुगृणाति) एक मनुष्य तुझको पीडा पहुँचाता है, और दूसरा मनुष्य तेरी स्तुति करता है, मैं तो (ते वन्दारुः, ते तन्वं वन्दे) तेरा उपासक हूँ इसलिये तेरे स्वरूपकी वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥

१ त्वः पीयति, त्वः अनुगृणाति— एक मनुष्य इस प्रकाश स्वरूप परमात्मा पर विश्वास नहीं करता और दूसरा इस परमात्मा पर बडी श्रद्धा रखता है ।

[१५९२] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते ये पायवः) तेरे जिन प्रसिद्ध पालक रश्मियोंने (मामतेयं अन्धं पश्यन्तं) ममताके पुत्रको अन्धेपनेसे युक्त देखकर (दुरितात् अरक्षन्) अन्धेपनेके दुःखसे उसकी रक्षा की, अतः (तान् सुकृतः विश्ववेदाः ररक्ष) उन पुण्यशालियोंकी सबको जाननेवाले तूने रक्षा की, पर (दिप्सन्त इत् रिपवः अह न देभुः) दम्भ करनेवाले शत्रुगण भी तुझे दबानेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ३ ॥

१ तान् सुकृतः विश्ववेदाः ररक्ष— यह अग्नि पुण्यशालियोंकी रक्षा करता है ।

२ दिप्सन्तः रिपवः न देभुः— दम्भी या अभिमानी शत्रु भी इसे नहीं दबा सकते ।

[१५९३] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः अघायुः नः अररिवान् अराती वा) जो पापी हमें दान देनेसे रोकता है और स्वयं भी दान नहीं करता है तथा (द्वयेन मन्त्रः मर्चयति) कपट युक्त उपायसे हमें दुःखी करता है, उसका (सः अस्मै पुनः गुरुः अस्तु) वह कपट उपाय उसके स्वयंके लिए भारी पड जाए। और दूसरे (दुरुक्तैः तन्वं अनु मृक्षीष्ट) दुर्वाक्य अर्थात् निन्दनीय शब्दोंसे वह स्वयं अपने शरीरका नाश कर ले ॥ ४ ॥

१ अघायुः अररिवान् अरातिः मृक्षीष्ट— पापी, दान देनेसे रोकनेवाला तथा स्वयं भी दान न देनेवाला मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाए ।

२ दुरुक्तैः तन्वं मृक्षीष्ट— दूसरोंको बुरे शब्द बोलनेवालेका ही शरीर क्षीण हो जाए ।

भावार्थ— कुछ नास्तिक लोग इस परमात्माकी हंसी उडाते हैं, जब कि दूसरे आस्तिक लोग इस पर बडी श्रद्धा रखते हैं । इन दोनोंमें परमात्माका उपासक उत्तम है ॥ २ ॥

इस अग्निने अपनी शक्तिसे अन्धत्व दूर किया और पुण्यवानोंकी रक्षा की । यह अभिमानियोंपर कृपा नहीं करता ॥ ३ ॥

जो स्वयं न देकर दूसरोंको भी दान देनेसे रोकता है, वह पापी स्वयं नष्ट हो जाता है । दूसरोंको गालियां देनेवाला स्वयं ही पहले मानसिक रूपसे क्षीण हो जाता है । गालियोंके उच्चारणके पहले ही गाली देनेवालेका मन कुविचारोंसे ग्रस्त हो जाता है ॥ ४ ॥

१५९४ उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्त मग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥ ५ ॥

[१४८]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१५९५ मथीद् यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥

१५९६ ददानमिन्न ददभन्त मन्मा ग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मो पस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥

१५९७ नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टा वश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥

अर्थ -- [१५९४] (उत वा) अथवा (सहस्य अतः) बलके पुत्र हे अग्ने ! (यः मर्तः प्र विद्वान् द्वयेन मर्तं मर्चयति) जो मनुष्य जानबूझकर छलकपटसे हमको पीडित करना चाहता है, उससे तू (स्तुवन्तं पाहि) स्तुति करनेवाले मेरी रक्षा कर । हे (स्तवमान अग्ने) प्रशंसित होनेवाले अग्ने ! (नः दुरिताय माकिः धायीः) हमको दुःखरूपी पापमें मत फेंक ॥ ५ ॥

[१४८]

[१५९५] (यत् होतारं, विश्वाप्सुं, विश्वदेव्यं ईं) जब देवोंको बुलानेवाले, विविध रूपवाले, सारे देवोंके कार्य करनेमें निपुण इस अग्निका (मातरिश्वा, विष्टः मथीत्) अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले वायुने सर्वत्र व्यापक होकर मंथन किया । और (स्वः न चित्रं विभावं यं) सूर्यके समान विलक्षणतासे युक्त, तेजस्वी जिस अग्निको (मनुष्यासु विक्षु वपुषे नि दधुः) मनुकी प्रजाओंमें शरीरकी पुष्टिके लिए स्थापित किया उस अग्निकी मैं पूजा करता हूँ ॥ १ ॥

[१५९६] अग्निकी (मन्म ददानं इत् न ददभन्त) स्तुति करनेवाले मुझे शत्रु नहीं दबा सकते, क्योंकि (अग्निः तस्य मम वरूथं चाकन्) अग्नि मेरे श्रेष्ठ स्तोत्रकी अत्यन्त कामना करता है । (स्तुतिं भरमाणस्य कारोः) स्तुति करनेवाले मुझ इस स्तोताके (विश्वानि कर्म उप जुषन्त) सम्पूर्ण कर्मोंका सारे देव सेवन करते हैं ॥ २ ॥

[१५९७] (यज्ञियासः यं) याज्ञिक जिस अग्निको (नित्ये चित् सदने नु जगृभ्रे) नित्य अग्निगृहमें शीघ्रता से ले जाते हैं, और ले जाकर (प्रशस्तिभिः दधिरे) प्रशंसनीय स्तुतियोंसे स्थापित करते हैं । इस अग्निको (रारहाणाः रथ्यः अश्वासः न) शीघ्रगामी रथमें जुते घोडेकी तरह (इष्टौ गृभयन्तः प्र सू नयन्त) यज्ञमें ले जाकर वे याज्ञिक सुन्दर रूपसे बढाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! जो छलकपटसे हमें मारना चाहता है, उससे हमारी रक्षा कर और हमें कभी भी दुःखोंमें मत डाल ॥ ५ ॥

मातरिश्वा वायुके मंथनसे यह अग्नि प्रकट हुआ है और तदनन्तर यह अग्नि मनुकी प्रजाओंमें स्थित होकर प्राणियोंके शरीरोंको धारण करने लगा ॥ १ ॥

जो अग्निकी उपासना करता है, वह किसी भी शत्रुसे नहीं दबता और उसकी स्तुतियोंको सब देवता ग्रहण करते हैं ॥ २ ॥

याज्ञिक जन इसे यज्ञ गृहमें ले जाकर अच्छी तरह प्रदीप्त करते हैं ॥ ३ ॥

१५९८ पुरूणि दुस्मो नि रिणाति जम्भै॒ राद् रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचि॒ रस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥ ४ ॥
१५९९ न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥

[१४९]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- विराट् ।)

१६०० महः स राय एषते पतिर्द॒ न्निन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥ १ ॥
१६०१ स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥

अर्थ-- [१५९८] (दस्मः पुरूणि जम्भैः) विनाशक अग्नि सब प्रकारके वृक्षोंको अपने दांतोंसे (निरिणाति आत्) बिलकुल नष्ट कर देता है, जलानेके अनन्तर (वने विभावा आ रोचते) जंगलमें विशेष तेजसे युक्त होकरके चारों ओर प्रकाशमान होता है । (आत् न अस्तुः असनां शर्या) उसके पश्चात् जिस प्रकार बाण चलानेवालेके पाससे बाण वेगके साथ जाता है, उसी प्रकार (अस्य शोचिः) इस अग्निकी किरणें इसके पाससे (अनुद्यून् वातः वाति) प्रतिदिन वायुका अनुकरण करती हुई वेगसे जाती हैं ॥ ४ ॥

[१५९९ | (गर्भे सन्तं) अरणिके गर्भमें अवस्थित (यं रिपवः न रेषयन्ति) जिस अग्निको शत्रुगण दुःख नहीं दे सकते हैं, तथा (अन्धाः, अपश्याः अभिख्याः न दभन्) नेत्ररहित अथवा ज्ञानशून्य जन, एवं विद्वान् होकर भी न जाननेवाले लोग जिसके चारों ओर फैले हुए महात्म्यको नष्ट नहीं कर पाये हैं, ऐसे (ईं) इस अग्निकी (नित्यासः प्रेतारः अरक्षन्) प्रतिदिन तृप्त करनेवाले मनुष्य रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

१ अन्धाः, अपश्याः अभिख्याः न दभन्— अन्धे अथवा अज्ञानी पुरुष इस अग्निके महत्वको नहीं जान सकते ।

[१४९]

[१६००] (सः महः रायः पतिः दन् आ ईषते) वह अत्यन्त ऐश्वर्यवान्, धनका स्वामी, धन देनेके लिये हमारी ओर आता है; (इनस्य इनः वसुनः पदे आ) स्वामियोंका स्वामी अग्नि धनके स्थान प्राप्त करता है, उस समय (अद्रयः उपध्रजन्तं विधन् इत्) सोम कूटनेके पत्थर पास आनेवाले उस अग्निके लिये रस तैयार करते हैं ॥ १ ॥

[१६०१] (नरां वृषा न) मनुष्योंमें बलवान् मनुष्यकी तरह (यः रोदस्योः श्रवोभिः अस्ति) जो अग्नि दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकमें अपने यशोंसे विद्यमान है, (यः) जो (जीवपीतसर्गः) प्राणियोंके द्वारा उपभोग करने योग्य संसारकी उत्पत्ति करता है । (सस्राणः सः) प्रकट होकर वह (योनौ शिश्रीत) अपने स्थानपर आ जाता है ॥ २ ॥

भावार्थ-- यह अग्नि सर्वभक्षक है । यह अपनी दाढोंसे सब खा जाता है और अनुकूल वायु पाकर और विशेष तेजस्वी होता है ॥ ४ ॥

गुप्त रहनेवाले और प्रकट हुए हुए अग्निको कोई नष्ट नहीं कर सकता, क्योंकि नित्य प्रति इस अग्निको तृप्त करनेवाले मनुष्य इसकी हर तरहसे रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

वह अग्नि सब तरहके धनों और ऐश्वर्योंका स्वामी है, इसलिए वह हमेशा धनके स्थानोंपर ही रहता है । वह जब धन देनेके लिए जाता है, तब लोग उसका सोमके द्वारा स्वागत करते हैं ॥ १ ॥

मनुष्योंमें बलवान् जिस प्रकार अपने बलके कारण सर्व श्रेष्ठ होता है, उसी तरह यह अग्नि अपनी शक्तिसे इस द्युलोक और पृथ्वीलोकमें सर्वश्रेष्ठ है । यही सारे संसारको उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

×

१६०२ आ यः पुरं नार्मिणीमदीदे॒दत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥

१६०३ अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥

१६०४ अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥

[१५०]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- उष्णिक् ।)

१६०५ पुरु त्वा दाश्वान् वोचे ऽरिरग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

अर्थ-- [१६०२] (यः) जिस अग्निने (नार्मिणीं पुरं) अविनश्वर आत्माकी इस नगरी-शरीरको (आ अदीदेत्) चारों ओरसे प्रकाशित किया और जो (नभन्यः अर्वा न अत्यः) आकाशके वायुके समान और शीघ्रगामी घोडेके समान वेगवान् है, वह (कविः) ज्ञानी अग्नि (शतात्मा सूरः न) सैंकडों किरणवाले सूर्यके समान (रुरुक्वान्) तेजस्वी है ॥३॥

१ नार्मिणी— नष्ट न होनेवाला, अविनश्वर ।

२ यः नार्मिणीं पुरं आ अदीदेत्— यह अग्नि इस अविनश्वर आत्माकी नगरी इस शरीरको चारों ओरसे प्रकाशित करता है ।

[१६०३] (द्विजन्मा, त्री रोचनानि अभि शुशुचानः) दो अरणियोंसे उत्पन्न अग्नि तीनों लोकोंको सब ओरसे प्रकाशित करता है; तथा (विश्वा रजांसि) सारे लोकोंको भी प्रकाशित करता है । यह (होता यजिष्ठः अपां सधस्थे अस्थात्) देवोंको बुलानेवाला तथा यज्ञका कर्ता अग्नि जलोंके बीचमें भी रहता है ॥ ४ ॥

[१६०४] (यः द्विजन्मा) जो अग्नि दो अरणियोंसे जन्म लेता है (सः होता) यह ही देवोंको बुलानेवाला है । (अयं विश्वा वार्याणि दधे) यह सम्पूर्ण वरण करने योग्य धनोंको धारण करता है । (यः मर्तः अस्मै) जो मनुष्य इस अग्निके लिये (श्रवस्या ददाश, सुतुकः) पवित्र अन्नादि देता है उसको यह उत्तम पुत्र प्रदान करता है ॥ ५ ॥

[१५०]

[१६०५] (दाश्वान्) मैं दान देता हुआ (त्वा पुरु वोचे) तेरी अनेक तरहसे प्रार्थना करता हूँ । हे (अग्ने) अग्ने ! (महस्य तोदस्य इव) जिस प्रकार एक महान् यज्ञशीलके शरणमें सब लोग जाते हैं, उसी प्रकार (तव अरिः स्वित् शरणे आ) तेरा शत्रु भी तेरी शरणमें आता है ॥ १ ॥

भावार्थ-- अग्निके कारण ही इस शरीरमें तेजस्विता रहती है, इस उष्णताके निकल जानेपर शरीर निस्तेज हो जाता है ॥ ३ ॥

इसी अग्निके कारण तीनों लोक और सारा विश्व प्रकाशित होता है । पृथ्वीपर अग्निके रूपमें, अन्तरिक्षमें विद्युत्के रूपमें, द्युलोकमें सूर्यके रूपमें और जलमें जलाग्निके रूपमें अग्नि रहता है ॥ ४ ॥

द्विजन्मा यह अग्नि देवोंको बुलानेवाला है, यही सब धनोंको धारण करता है । जो इसकी उपासना करता है, वह पुत्र पौत्रोंसे युक्त होता है ॥ ५ ॥

यह अग्नि बहुत बलशाली है इसलिए शत्रु भी इसकी शरणमें जाते हैं ॥ १ ॥

१६०६ न्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः । कुदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥

१६०७ स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि । प्रप्रेत् ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥

[१५१]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- १ मित्रः, २-९ मित्रावरुणौ । छन्दः- जगती ।)

१६०८ मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥

१६०९ यद्ध त्यद् वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥

अर्थ-- [१६०६] हे अग्नि ! मैं तुझसे यह (वि) विशेष रूपसे निवेदन करता हूँ कि (**अनिनस्य, धनिनः प्रहोषे चित् अररुषः**) तुझे अपना स्वामी न माननेवाले, धनी होते हुए भी श्रेष्ठ यज्ञमें दक्षिणा नहीं देनेवाले और (**कदाचन प्रजिगतः अदेवयोः**) कभी देवोंकी स्तुति न करनेवाले, देवोंको न माननेवाले अर्थात् नास्तिकोंके पास तू मत जा ॥ २ ॥

[१६०७] हे (**विप्र अग्ने**) हे मेधावी अग्ने ! जो (**मर्त्यः, सः दिवि चन्द्रः**) मनुष्य तुम्हारी उपासना करता है वह द्युलोकमें चन्द्रमाके समान सबको आनन्द देता है; तथा (**महः व्राधन्तमः**) महान्‌से भी सबसे अधिक महान् होता है । इसलिये हे अग्ने ! (**ते प्रप्र इत् वनुषः स्याम**) तेरे हम विशेष भक्त हों ॥ ३ ॥

[१५१]

[१६०८] (**प्रियं यजतं यं**) प्रिय और पूज्य जिस अग्निको (**जनुषां अवः**) मनुष्योंकी रक्षाके लिए (**गोषु गव्यवः सु-आध्यः**) गायोंकी इच्छा करनेवाले तथा उत्तम ज्ञानी लोग (**शिम्या**) अपने कर्मसे (**विदथे अप्सु**) यज्ञमें तथा अन्य कर्मोंमें भी (**मित्रं न जीजनन्**) मित्रके समान उत्पन्न करते हैं, उस अग्निके (**गिरा पाजसा**) शब्द और बलसे (**रोदसी अरेजेतां**) द्युलोक और पृथ्वीलोक कांपने लगते हैं ॥ १ ॥

[१६०९] हे (**वृषणा**) बलवान् मित्रावरुण ! (**यत् ह**) चूंकि (**वां**) तुम दोनोंके लिए (**मित्रासः न**) मित्रोंके समान हित करनेवाले जन (**सु आभुवः पुरुमीळहस्य सोमिनः**) अपनी शक्तिसे सत्तावान्, अनेक सुखोंको देनेवाले (**सोमिनः**) सोमरसकी आहुतियोंको (**दधिरे**) धारण करते हैं, (**अध**) इसलिए (**अर्चते**) तुम्हारी स्तुति करनेवालेके (**क्रतुं गातुं विदतं**) कर्म और आचारविचारको जानो, तथा (**पस्त्यावतः उत श्रुतं**) गृहपतिकी प्रार्थना सुनो ॥ २ ॥

भावार्थ-- जो ईश्वरको अपना स्वामी नहीं मानता, धनवान् होते हुए भी यज्ञ यागादि करके धनदान नहीं करता, तथा देवोंकी स्तुति नहीं करता, ऐसे नास्तिकोंका कल्याण नहीं होता ॥ २ ॥

जो इस तेजस्वी अग्निकी उपासना करता है, वह चन्द्रमाके समान सबको सुख देनेवाला होता है, तथा वह सबसे महान् होता है ॥ ३ ॥

ज्ञानी जन मनुष्योंकी रक्षाके लिए इस अग्निको यज्ञमें उत्पन्न करते हैं, अर्थात् हर कामके प्रारंभमें इस अग्निका आधान करते हैं । यह अपने जनोंका मित्रके समान कल्याण करता है । इस अग्निकी स्तुति सब काममें मंगलकारी होती है । जब यह अग्नि खूब प्रज्वलित हो जाती है, तब यह इतना भयंकर हो जाता है कि इसको देखकर सभी लोक कांपने लग जाते हैं ॥ १ ॥

सोम अपने स्वयं की शक्तिसे सत्तावान् है । यह अनेक तरहके सुखोंको देनेवाला है । इसे पीकर सभी देव आनंदित होते हैं । मित्र और वरुणको जब सोमकी आहुतियां दी जाती हैं, तब ये देव अपने उपासकको उत्तम कर्मोंकी तरफ प्रेरित करते हैं ॥ २ ॥

१६१० आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥
१६११ प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥
१६१२ मही अत्र महिना वारमृण्वथो ऽरेणवस्तुज आ सद्मन् धेनवः
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ ॥
१६१३ आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥

अर्थ-- [१६१०] हे (वृषणा) बलवान् मित्रावरुण ! (वां रोदस्योः प्रवाच्यं जन्म) तुम दोनोंके द्यावा-पृथिवीसे प्रशंसनीय जन्मकी (क्षितयः) मनुष्य (महे दक्षसे) महान् बलकी प्राप्तिके लिए प्रशंसा करते हैं और तुम दोनोंको (आभूषन्) अलंकृत करते हैं । (यत् ऋताय ईं भरथः) क्योंकि तुम दोनों इस अपने सच्चे उपासकको बलसे भरपूर करते हो और (यत् अर्वते) पशुओंसे युक्त उपासकको भी बलसे परिपूर्ण करते हो । (होत्रया शिम्या अध्वरं वीथः) तुम पुकारने तथा कर्मोंसे आकृष्ट होकर लोगोंके यज्ञको जाते हो ॥ ३ ॥

[१६११] हे (असुरा) बलवान् मित्र वरुण ! (या महि प्रिया) जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय है, (सा क्षितिः प्र) वह भूमि अत्यधिक विस्तृत हो, (ऋतावानौ) हे यज्ञके पालक देवो ! तुम दोनों (बृहत् ऋतं आ घोषथः) इस महान् सत्यकी घोषणा करो । (बृहतः दिवः) महान् देवोंके उपकारके लिए (युवं) तुम दोनों (दक्षं आभुवं अपः) बलकारी तथा हितदायक कर्ममें उसी तरह (उपयुंजाथे) जुड जावो, जिसप्रकार (धुरि गां न) जुयेमें बैल जुडते हैं ॥४॥

१ बृहत् ऋतं आ घोषथः— जो सत्य हो, उसकी घोषणा करनी चाहिए।

[१६१२] हे मित्रावरुण ! तुम (मही अत्र) इस विशाल पृथ्वी पर (महिना) अपनी शक्तिसे (वारं ऋण्वथः) ग्रहण करनेयोग्य धनको देते हो, (अरेणवः तुजः धेनवः) पापरहित और दुधारु गायें (सद्मन् आ) घर आती हैं । (उपरताति) आकाशके मेघसे युक्त होने पर (ताः) वे गायें (निम्रुचः उषसः) सभी उषःकालोंमें (सूर्यं स्वरन्ति) सूर्यके लिए उसी प्रकार चिल्लाती हैं, जिसतरह (तक्ववीः इव) मनुष्य चोरको देखकर चिल्लाते हैं ॥ ५ ॥

[१६१३] हे (मित्रवरुण) मित्र और वरुण ! (यत्र गातुं अर्चथः) जिस प्रदेशमें तुम्हारी स्तुति होती है, वहां (केशिनीः) अग्निकी ज्वालायें (ऋताय) यज्ञके लिए (वां अनूषत) तुम दोनोंकी सेवा करती हैं । तुम दोनों (त्मना अवसृजतं) स्वयं हमें शक्तिप्रदान करो, तथा (धियः पिन्वतं) हमारी बुद्धियोंको पुष्ट करो, (युवं) तुम दोनों (विप्रस्य मन्मनां) ज्ञानीके स्तोत्रोंके (इरज्यथः) स्वामी हो ॥ ६ ॥

भावार्थ-- मित्र अर्थात् अग्नि और वरुण अर्थात् सूर्य इन दोनोंका जन्म पृथिवी और द्युलोकसे होता है । इनके उत्पन्न होते ही अन्धकार नष्ट होकर सर्वत्र प्रकाश छा जाता है, इसलिए सर्वत्र इनके जन्मकी प्रशंसा होती है। ये दोनों अपने सच्चे उपासकको बलसे युक्त करते हैं ॥ ३ ॥

ये दोनों मित्र और वरुण बहुत बलवान् हैं। इन्हें यज्ञकी भूमि अत्यन्त प्रिय है। यह हमेशा सत्यके मार्ग पर निर्भीक होकर चलते हैं और सत्यकी निर्भीकतासे घोषणा करते हैं । ये दोनों हितकारी काम ही करते हैं, क्योंकि हितकारी कामोंसे देवोंका उपकार होता है । मनुष्य सदा निर्भीक होकर सत्यके मार्ग पर चले तथा सत्य बात निर्भीक होकर कहे ॥४॥

जिसके घर गायें रहती हैं, उसके यहां सभी तरहके ऐश्वर्य निवास करते हैं, देवगण भी गौपालकको धन देते हैं। जिस समय आकाशमें मेघ आते हैं, उस समय गायें सूर्यकी प्रार्थना करती हैं, ताकि सूर्य बादलोंसे पानी बरसाये तथा उन गायोंको खूब घास प्राप्त हो ॥ ५ ॥

जहां पर भी ये मित्र और वरुण जाते हैं, वहां यज्ञमें इनकी स्तुति होती है । ये दोनों बुद्धियोंको पुष्ट करनेवाले हैं। इसलिए मनुष्य अपनी बुद्धियोंसे इन्हींकी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

१६१४ यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वर—मच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥
१६१५ युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरो ऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥
१६१६ रेवद् वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६१४] (यः खलु) जो मनुष्य (यज्ञैः शशमानः) यज्ञके द्वारा स्तुति करता हुआ (वां) तुम दोनोंको (दाशति) हवि देता है, (मन्मसाधनः कविः होता) स्तुतिसे युक्त होकर ज्ञानी होता (यजति) यज्ञ करता है, हे मित्रावरुण ! तुम दोनों (अह) प्रतिदिन (तं उप गच्छथः) उस यज्ञकर्ताके समीप जाते हो, उसके (अध्वरं वीथः , यज्ञकी कामना करते हो। (अस्मयू) हमारे पास आनेकी इच्छा करनेवाले तुम दोनों (गिरः सुमतिं) हमारी स्तुति और उत्तम बुद्धिकी तरफ (अच्छ आ गन्तं) सीधे आते हो ॥ ७ ॥

[१६१५] हे (ऋतावाना) यज्ञ युक्त मित्रावरुण ! (प्रयोक्तिषु मनसः न) इन्द्रियोंमें जिसप्रकार मन मुख्य होता है, उसी प्रकार (प्रथमा युवां) देवोंमें मुख्य तुम दोनोंको यज्ञ करनेवाले (यज्ञैः गोभिः) यज्ञ और दूध घी आदि के द्वारा (अंजते) युक्त करते हैं। (संयता मन्मना) संयमित और मननशील बुद्धिके द्वारा (वां गिरः भरन्ति) तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, तुम भी (अदृप्यता मनसा) अपना शक्तिशाली मनसे उन्हें (रेवत् आशाथे) धन प्रदान करते हो ॥ ८ ॥

[१६१६] हे मित्रावरुण ! (रेवत् वयः) ऐश्वर्ययुक्त अन्न (दधाथे) धारण करते हो, हे (नरा) नेताओ ! (मायाभि इतः ऊति) शक्तियोंसे हमारी रक्षा करते हुए (माहिनं रेवत् आशाथे) महत्त्वपूर्ण धनको देते हो। (वां देवत्वं मघं) तुम दोनोंके देवत्व और ऐश्वर्यको (द्यावः न आनशुः) द्युलोक नहीं प्राप्त कर सके, (उत अहभिः न) दिन रात भी नहीं पा सके, (सिन्धवः न) नदियां भी नहीं पा सकीं (पणयः न) और पणि भी नहीं पा सके ॥९॥

१ वां देवत्वं मघं द्यावः अहभिः सिन्धवः पणयः न आनशुः— इन मित्रावरुणके देवत्व और ऐश्वर्यको द्युलोक, दिन रात, नदियां और पणि भी नहीं पा सके।

भावार्थ— जो ज्ञानी और यज्ञ करनेवाला स्तोता यज्ञके द्वारा हवि प्रदान करता हुआ इन मित्र और वरुणकी स्तुति करता है, उसके यज्ञमें ये दोनों जाते हैं और उसके द्वारा की जानेवाली स्तुतिको बडे ध्यानसे सुनते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रियोंमें मन सर्वश्रेष्ठ होता है क्योंकि मनसे प्रेरित होकर ही इन्द्रियां अपने अपने व्यापारमें प्रयुक्त होती हैं। उसी प्रकार देवोंमें ये मित्र और वरुण श्रेष्ठ हैं। इनकी [illegible] स्तुति करते हैं, तब ये प्रसन्न होकर स्तोताको अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥

मित्र और वरुण दोनों अपनी शक्तियोंसे भक्तोंकी रक्षा करते हैं और उन्हें ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। ये दोनों देव इतने ऐश्वर्यवान् और दिव्य तेजसे युक्त हैं कि इनके जैसे ऐश्वर्य और दिव्य तेजको द्युलोक, दिन, रात, नदियां और यहां तक कि पणि नामक असुरगण भी नहीं पा सके। देवगण अत्यन्त तेजस्वी होते हैं, अतः उनके तेजका पार पाना असंभव है ॥ ९ ॥

[१५२]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१६१७ युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥
१६१८ एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥
१६१९ अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥

---

[१५२]

अर्थ-- [१६१७] हे (मित्रावरुणा) मित्रावरुण ! (युवं) तुम दोनों (पीवसा) पुष्ट होकर (वस्त्राणि वसाथे) वस्त्रोंको ढकते हो, (युवोः सर्गाः) तुम दोनोंके द्वारा उत्पन्न किए गए पदार्थ (आच्छिद्राः मन्तवः) दोष रहित और मनन करनेयोग्य हैं, तुम दोनों (विश्वा अनृतानि अव अतिरतम्) सम्पूर्ण असत्योंको नष्ट करते हो और (ऋतेन सचेथे) मनुष्यको सत्यसे संयुक्त करते हो ॥ १ ॥

१ विश्वा अनृतानि अव अतिरतं, ऋतेन सचेथे— ये मित्र और वरुण असत्यभाषण करनेवालोंको नष्ट करके मनुष्योंको सत्यसे संयुक्त करते हैं ।

[१६१८] (एषां) इन दोनों मित्र और वरुणमें (त्वः चन) एक ही (सत्यः मंत्रः कविशस्तः ऋघावान्) सत्यशील, बुद्धिमान् , ज्ञानियों द्वारा प्रशंसनीय और सामर्थ्यशाली है, (एतत् वि चिकेतत्) वह इस बातको अच्छी तरह जानता है । वह (उग्रः) वीर (त्रिरश्रिं चतुरश्रिः हन्ति) तीन धारवाले तथा चार धारवाले हथियारोंको धारण करनेवाले शत्रुओंको मार देता है (देवनिदः प्रथमाः अजूर्यन्) देवोंकी निन्दा करनेवाले प्रथम शक्तिशाली होते हुए भी बादमें क्षीणशक्तिवाले हो जाते हैं ॥ २ ॥

१ देवनिदः प्रथमा अजूर्यन्— देवोंकी निन्दा करनेवाले प्रथम शक्तिशाली होते हुए भी बादमें शक्तिहीन हो जाते हैं ।

[१६१९] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (पद्वतीनां प्रथमा) पैरोंसे युक्त प्राणियोंसे भी पहले जागृत होनेवाली उषा (अ-पात्) पैरोंसे रहित होनेपर भी (एति) सर्वत्र संचार करती है (वां तत् कः चिकेत) तुम दोनोंके उस सामर्थ्यको कौन जानता है । (गर्भः) तुम दोनोंका गर्भ अर्थात् बच्चा सूर्य (अस्य भारं भराति) संसारके पालनपोषणरूप भारको ढोता है, (ऋतं पिपर्ति) सत्यको परिपूर्ण करता है और (अनृतं नि तारीत्) असत्यका नाश करता है ॥ ३ ॥

१ पद्वतीनां प्रथमा अपात् एति— मनुष्योंमें प्रथम जागृत होनेवाली उषा पैरोंसे रहित होने पर भी सब जगह संचार करती है

२ गर्भः अस्य भारं भराति— गर्भ रूप सूर्य इस जगत्का पालन पोषण करता है ।

३ मित्र-वरुण-दिन रात " अहोरात्रे वै मित्रावरुणौ " (तै. सं. २।४।१०।१)

भावार्थ-- ये दोनों मित्रावरुण अत्यन्त पुष्ट हैं और सदा उत्तमोत्तम वस्त्र पहनते हैं । ये दोनों सदा सत्यको प्रोत्साहन देते हैं और असत्य या अनृतका नाश करते हैं । इसी प्रकार मनुष्य भी हृष्टपुष्ट होकर उत्तमोत्तम वस्त्र पहनें और सदा सत्यके मार्ग पर चलते हुए असत्यवादियोंका नाश करें ॥ १ ॥

मित्र और वरुण इन दोनोंमेंसे अकेला देव भी बहुत बुद्धिमान् और वीर है, वह सभी शस्त्रोंको धारण करनेवाले शत्रु को भी आसानीसे मार देता है । जब अकेला देव ही इतना शक्तिशाली है, तो दोनों जब मिल जाते हैं, तब तो उनकी शक्ति-का अन्दाजा भी लगाना कठिन हो जाता है । ऐसे शक्तिशाली इन दोनों देवोंकी जो निंदा करता है, वह भले ही पहले कितना भी सामर्थ्यवान् हो, बादमें जाकर शक्तिहीन होकर नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

१६२० प्रयन्तमित् परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥
१६२१ अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥
१६२२ आ धेनवो मामतेयमवन्ती— ब्रह्मप्रियं पीपयन् त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वा— नासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६२०] (अनवपृग्णा वितता वसानं) चारों ओर फैलनेवाले अत्यन्त विस्तृत तेजोंको धारण करनेवाले, (मित्रस्य वरुणस्य प्रियं धाम) मित्र और वरुणके प्रिय स्थान (कनीनां जारं) सुन्दर रूपवाली उषाओंको नष्ट करनेवाले सूर्यको (परि प्रयन्तं इत् पश्यामसि) चारों तरफ सदा चलते हुए ही देखते हैं, (न उपनिपद्यमानं) उसे कभी बैठा हुआ नहीं देखते ॥ ४ ॥

[१६२१] (अनश्वः अनभीशुः) घोडे और लगाम आदिसे रहित होनेपर भी यह सूर्य (अर्वा) शीघ्र गतिसे जाता है । (जातः) उदय होनेके बाद (कनिक्रदत्) गर्जना करता हुआ (ऊर्ध्वसानुः पतयत्) सभी उच्च शिखरोंपर अपनी किरणें फेंकता है । (मित्रे वरुणे धाम गृणन्तः) मित्र और वरुणके तेजकी प्रशंसा करते हुए (युवानः) तरुण उपासक इस सूर्यके लिए (अचित्तं ब्रह्म जुजुषुः) अत्यन्त गंभीर स्तोत्रोंको करते हैं ॥ ५ ॥

[१६२२] (ब्रह्मप्रियं) उपासना प्रिय (मामतेयं) अत्यधिक ममतावाले मनुष्यको (धेनवः) गायें (अवन्तीः) उसकी रक्षा करती हुई (सस्मिन् ऊधन्) अपने सभी थनोंसे (आ पीपयन्) पुष्ट करें । (वयुनानि विद्वान्) सभी उपायोंको जाननेवाला ज्ञानी (आसा पित्वः भिक्षेत) अपने मुंहसे तुमसे खाने पीनेके पदार्थ मांगे । (आ विवासन् अदितिं उरुष्येत्) तुम्हारी उपासना करते हुए मनुष्य मृत्युको दूर करे ॥ ६ ॥

१ मामतेयं धेनवः अस्मिन् ऊधन् आ पीपयन्— गायोंसे अत्यधिक ममता या प्रेम रखनेवालेको गायें अपने सभी थनोंसे दूध देकर पुष्ट करती हैं ।

२ आ विवासन् अदितिं उरुष्येत्— मित्रावरुणकी उपासना करते हुए मनुष्य मृत्युको दूर कर सकता है ।

भावार्थ— मित्र और वरुण ये क्रमशः दिन और रात हैं । इन्हींके सामर्थ्यसे उषा सर्वप्रथम आती है और पैरोंसे रहित होकर भी सब जगह घूमती है । यह सब दिन और रातका सामर्थ्य है । पर इस तथ्यको सब नहीं जान पाते । इन्हींका गर्भरूप अर्थात् दिन और रातके संयोगसे उत्पन्न हुआ हुआ शिशुरूप सूर्य जगत्का पालनपोषण करता है । सूर्य इस जगत्की आत्मा है । उसीके आधार पर वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं और उससे जगत्का पोषण होता है । वह सूर्य असत्यरूप अन्धकारका नाश करके सत्यरूप प्रकाशको फैलाता है ॥ ३ ॥

सूर्य सुन्दर रूपवाली उषाओंका जार है अर्थात् सूर्यके उदय होते ही उषायें नष्ट हो जाती हैं, ऐसा यह तेजस्वी सूर्य सदा चलता रहता है, कभी बैठता नहीं । यह सूर्य चूंकि सदा पुरुषार्थ करता रहता है, अतः वह सदा तेजसे युक्त रहता है और उसका तेज चारों ओर फैला हुआ होता है । इसी तरह जो मनुष्य सदा पुरुषार्थ करेगा, कभी आलसी होकर बैठेगा नहीं, वह तेजस्वी होगा और उसका यश चारों ओर फैलेगा ॥ ४ ॥

इस सूर्यके पास न घोडे हैं, और न उनको नियंत्रणमें रखनेके लिए उसके पास लगाम ही हैं, पर फिर भी अपने प्रयत्नसे वह सर्वत्र संचार तीव्रगतिसे करता है, इसीलिए वह सर्वत्र प्रशंसित होता है । इसी तरह जो मनुष्य साधनोंकी भी परवाह न करते हुए उनके अभावमें भी अपने प्रयत्नोंके द्वारा अपने लक्ष्यकी तरफ बढता चला जाता है, वह सर्वत्र प्रशंसित होता है ॥ ५ ॥

१६२३ आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ ॥

[१५३]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१६२४ यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद् वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥

१६२५ प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्ति- रयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद् वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥

अर्थ— [१६२३] हे (देवौ मित्रावरुणा) तेजस्वी मित्र और वरुण ! मैं (नमसा अवसा) नमस्कारों एवं स्तोत्रोंसे (वां) तुम दोनोंको (ववृत्यां) अपनी ओर झुकाता हूँ । (अस्माकं हव्यजुष्टिं ब्रह्म) हमारे हविसे युक्त स्तोत्र (पृतनासु सह्या) युद्धोंमें हमें विजय प्राप्त करावें । (दिव्या वृष्टिः अस्माकं सुपारा) दिव्य बरसात हमें अकाल और दारिद्र्यसे पार करे ॥ ७ ॥

[१५३]

[१६२४] (घृतस्नू सजोषा मित्रावरुणौ) अत्यन्त तेजस्वी एवं परस्पर प्रीतिसे रहनेवाले मित्र और वरुण देवो ! (यत्) चूंकि (वां) तुम्हारे लिए (अस्मे अध्वर्यवः) हमारे अध्वर्यु (धीतिभिः भरन्ति) स्तोत्र कहते हैं, (अध) इसलिए हम भी (महः वां) महान् तुम दोनोंकी (हव्येभिः नमोभिः) प्रशंसनीय स्तोत्रोंके द्वारा (यजामहे) पूजा करते हैं ॥ १ ॥

[१६२५] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण! मैं (वां प्रस्तुतिः) तुम दोनोंकी स्तुति करता हूँ, (सुवृक्तिः) बोलनेमें प्रवीण मैं (धाम न) घरके समान (प्रयुक्तिः अयामि) तुम्हारा ध्यान करता हूँ । (वृषणा) हे बलवान् मित्र वरुण ! (इयक्षन् सूरिः होता) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाला विद्वान् होता, (यत् वां विदथेषु अनक्ति) चूंकि तुम दोनोंकी यज्ञोंमें स्तुति करता है, इसलिए (वां सुम्नं) वह तुम दोनोंसे सुख मांगता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य अपनी गायोंसे अत्यधिक प्रेम करता है, उसे गायें भी अपने दूधसे पुष्ट करती हैं । गायोंमें भी प्रेमकी भावना होती है । दूध दुहनेके समय यदि गायसे प्रेमपूर्वक व्यवहार किया जाए, तो वह ज्यादा दूध देती है । देवोंकी उपासना एक उत्तम साधन है । इनकी उपासना द्वारा मृत्युको भी दूर किया जा सकता है ॥ ६ ॥

हमारे विनम्र भावसे किए गए स्तोत्रोंको सुनकर ये मित्र और वरुण हमारे पास आवें । तथा हमारी प्रार्थनाओंसे प्रेरित होकर हमें संकटोंसे बचावें, तथा पानी बरसाकर हमें अकाल एवं दारिद्र्यसे पार करें ॥ ७ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव अत्यन्त तेजस्वी और परस्पर प्रेमसे रहते हैं । इसलिए सब इनकी पूजा करते हैं ॥ १ ॥

जिस तरह गृहस्वामी अपने घरकी देखभाल बडे ही ध्यानसे करता है, उसी प्रकार विद्वान् मनुष्य मित्र और वरुणकी स्तुति बडे ध्यानसे करता है । इस मित्र और वरुणका तेज बडा ही सुखकारक है ॥ २ ॥

१६२६ पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद् वां विदथे सपर्यन् त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ३ ॥
१६२७ उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन् वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ४ ॥

[१५४]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- विष्णुः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१६२८ विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥

अर्थ— [१६२६] (यत्) जब (रातहव्यः मानुषः होता) हविको देनेवाला मननशील होता (सपर्यन्) तुम्हारी पूजा करता हुआ (विदथे वां हिनोति) यज्ञमें तुम्हें आहुति देता है, तब हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! उस (ऋताय हविर्दे जनाय) सत्य मार्गपर चलनेवाले तथा हविप्रदान करनेवाले मनुष्यको (अदितिः धेनुः पीपाय) न काटे जाने योग्य गाय तृप्त करे ॥ ३ ॥

१ ऋताय हविर्दे जनाय अदितिः धेनुः पीपाय— सत्यमार्गपर चलनेवाले तथा हवि देनेवाले मनुष्यको न काटे जाने योग्य गायें तृप्त करती हैं ।

[१६२७] हे मित्र वरुण ! (वां) तुम दोनों (अन्धः देवीः गावः आपः च) अन्न, दिव्य गायें और जल ये सभी (मद्यासु विक्षु) आनन्दित प्रजाओंमें सबको (पीपयन्त) तृप्त करें, (उत) और (नः अस्य पूर्व्यः पतिः) हमारे इस यज्ञका प्राचीन स्वामी (दन्) हमें ऐश्वर्य प्रदान करे । तुम दोनों (वीतं) यज्ञीय अन्नका भक्षण करो, (उस्रियायाः पयसः पातं) गायका दूध पीओ ॥ ४ ॥

[१५४]

[१६२८] (यः पार्थिवानि रजांसि वि ममे) जिसने पृथ्वीके लोकोंको बनाया, तथा (उरुगायः यः) बहुतोंसे प्रशंसित जिस देवने (त्रेधा चक्रमाणः) तीन प्रकारसे चलते हुए (उत्तरं सधस्थं) अत्यन्त विस्तृत द्युलोकको (अस्कभायत्) थाम रखा है, उस (विष्णोः) व्यापक देवके (वीर्याणि कं प्रवोचं) पराक्रमोंका मैं वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ— जब हविको देनेवाला मननशील मनुष्य इन मित्र और वरुणको यज्ञमें हवि प्रदान करता है, तब सत्यशील और हवि प्रदान करनेवालेको गायें हर तरहका सुख प्रदान करती हैं । अर्थात् यज्ञ करनेवालेके पास अनेकों गायें रहती हैं, जो उसे अपने दूध आदि देकर हर तरहसे तृप्त करती हैं ॥ ३ ॥

ये मित्र वरुण, गायें, अन्न और जल ये सभी मनुष्योंका हित और कल्याण करें, उन्हें आनन्दित करें । अग्नि भी ऐश्वर्य प्रदान करे । फिर सभी यज्ञशील मनुष्य ऐश्वर्यशाली होकर देवोंको हवि प्रदान करें ॥ ४ ॥

विष्णु यह सूर्य देव है । यही सूर्य इस पृथ्वीपरके अनेक लोकोंको बनाता है, प्रकट करता है । इसी सूर्यके कारण द्युलोक इतना विस्तृत होनेपर भी स्थिर है । सारे लोक इसी विष्णुपर आधारित हैं और इसीके कारण टिके हुए हैं । ऐसे पराक्रमोंसे युक्त यह विष्णु है । इसके पराक्रमोंका वर्णन एवं उनका अनुकरण करना चाहिए ॥ १ ॥

×

१६२९ प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे- ष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

१६३० प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थ- मेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः ॥ ३ ॥

१६३१ यस्य त्री पूर्णा मधुना पदा- न्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्या- मेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

अर्थ— [१६२९] (यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु) जिसके अत्यन्त विस्तृत तीन कदमोंमें (विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति) सारे भुवन रहते हैं, (तत् विष्णुः) वह व्यापक देव (वीर्येण) अपने पराक्रमके कारण (कुचरः गिरिष्ठाः भीमः मृगः न) हिंसादि बुरे कर्म करनेवाले, गुफाओंमें रहनेवाले भयंकर सिंहके समान (प्रस्तुवते) सब जगह स्तुत होता है ॥ २ ॥

१ यस्य विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति, तत् विष्णुः वीर्येण स्तवते— जिसके आधार पर सारे भुवन रहते हैं, वह विष्णु अपने पराक्रमके कारण सर्वत्र प्रशंसित होता है ।

[१६३०] (यः एकः) जिसने अकेले ही (त्रिभिः पदेभिः इत्) केवल तीन कदमोंसे (इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थं) इस लम्बे और चौडे द्युलोकको (विममे) नापा, उस (गिरिक्षिते उरुगायाय वृष्णे विष्णवे) मेघोंमें रहनेवाले, बहुतोंसे प्रशंसित, जल बरसानेवाले विष्णुके पास (शूषं मन्म एतु) हमारे बलसे युक्त स्तोत्र पहुंचे ॥ ३ ॥

१ एकः इत् इदं दीर्घं आयतं सधस्थं वि ममे— यह विष्णु अकेला ही इस लम्बे और चौडे द्युलोकको नाप देता है ॥ ३ ॥

[१६३१] (यस्य) जिस विष्णुके (मधुना पूर्णा त्री पदानि) अमृतसे भरपूर तीन कदम (अक्षीयमाणा) कभी नष्ट न होते हुए (स्वधया मदन्ति) अपनी धारण शक्तिसे युक्त होकर आनन्दित होते हैं, (यः) जो (त्रिधातु) तीन धातुओं, (पृथिवीं उत द्यां) पृथिवी और द्युलोक तथा (विश्वा भुवनानि एकः दाधार) सम्पूर्ण भुवनोंको अकेला ही धारण करता है ॥ ४ ॥

१ मधुना पूर्णा पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति— इस विष्णुके अमृतसे भरपूर कदम कभी नष्ट न होते हुए अपनी धारणशक्तिसे हर्षित होते हैं ।

भावार्थ— यह व्यापक देव अपने तीन कदमोंसे सारे भुवनोंको व्याप लेता है । उदयके समय वामन रूप विष्णु भगवान् अर्थात् सूर्य अपनी किरणोंसे द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकोंको व्याप लेता है अर्थात् प्रकाशित कर देता है। इसी सूर्यके आधार पर सारा विश्व रहता है। सारा विश्व सूर्यसे ही प्राणशक्ति प्राप्त करता है, इसलिए सूर्यको विश्वका आत्मा कहा है । यह अपने पराक्रमके कारण सर्वत्र उसी प्रकार प्रशंसित होता है, जिस प्रकार गुफाओंमें रहनेवाला भयंकर सिंह ॥ २ ॥

उदय होते ही सूर्य इस लम्बे चौडे द्युलोकको अपने कदमोंसे नाप देता है अर्थात् अपनी किरणोंसे द्युलोकको प्रकाशित कर देता है । वह सूर्य बादलोंमें रह कर बादलोंमें छिपे हुए पानीको बरसाता है । इसलिए सब इस सूर्यकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

प्रातः, मध्यान्ह और सायं ये सूर्यके तीन कदम हैं । इन कदमोंसे वह सर्वत्र संचार करता है । उसकी प्रातःकालीन, मध्यान्हकालीन और सायंकालीन किरणें अमृतसे भरपूर होती हैं । वह अपनी किरणोंसे मानों अमृत लुटाता चलता है । वह सूर्य सत्त्व, रज और तमो रूप तीन धातुओं, पृथिवी द्यु आदि लोकों और सारे विश्वोंको धारण करता है । सूर्यकी ये किरणें अपनी शक्तिसे सर्वत्र प्रसन्नता फैलाती हैं ॥ ४ ॥

१६३२ तदस्य प्रियमभि पाथों अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥

१६३३ ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ ६ ॥

अर्थ—[१६३२] (देवयवः नराः यत्र मदन्ति) देवोंके उपासक मनुष्य जहां जाकर आनन्दित होते हैं, ऐसे (अस्य) इस विष्णुके (तत् प्रियं पाथः अश्यां) उस प्रिय स्थानको प्राप्त करें। (इत्था) ऐसा यह विष्णु (उरुक्रमस्य बन्धूः) बहुत पराक्रम करनेवालेका भाई होता है, (विष्णोः परमे पदे) विष्णुके उस उत्तम स्थानमें (मध्वः उत्सः) अमृतका झरना बहता है ॥ ५ ॥

१ देवयवः नराः यत्र मदन्ति, अस्य तत् प्रियं पाथः अश्यां— देवत्वको प्राप्त करनेवाले मनुष्य जहां आनन्द करते हैं, विष्णुके उस प्रिय स्थानको हम भी प्राप्त करें ।

२ उरुक्रमस्य बन्धुः— यह विष्णु पराक्रम करनेवाले उद्योगियोंका भाई अर्थात् सहायक होता है ।

३ विष्णोः परमे पदे मध्वः उत्सः— विष्णुके उस उत्तम स्थानमें अमृतका झरना बहता है ।

[१६३३] हे दम्पती ! (वां) तुम दोनोंके (गमध्यै) चलने फिरने या निवासके लिए हम (ता वास्तूनि उश्मसि) ऐसे घर चाहते हैं, (यत्र भूरिशृंगाः गावः अयासः) जहां अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्य किरणें जा सकें । क्योंकि (अत्र अह) ऐसे ही घरोंमें (उरुगायस्य वृष्णः) अनेकों उपासकोंद्वारा प्रशंसित बलवान् विष्णुका (तत् परमं पदं) वह उत्तम स्थान (भूरि अवभाति) बहुत प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

१ वां गमध्यै ता वास्तूनि, यत्र भूरिशृंगाः गावः अयासः— हे दम्पती ! तुम्हारे निवासके लिए घर ऐसे हों, जहां अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्य किरणें प्रविष्ट हो सकें अथवा घर ऐसे हों जहां उत्तम सींगोंवाली गायें रह सकें ।

२ अत्र अह वृष्णः परमं पदं अवभाति— ऐसे ही उत्तम घरोंमें बलवान् विष्णुका वह श्रेष्ठ स्थान प्रकाशित होता है ।

भावार्थ— दो लोक होते हैं सूर्यलोक और चन्द्रलोक । सूर्यलोकमें केवल वही जा सकते हैं जो देवत्वको पा लेते हैं। इसी लोकको मोक्ष कहते हैं। इस लोकको प्राप्त होनेवाला व्यक्ति मोक्षानन्द या ब्रह्मानन्दको प्राप्त करता है। चन्द्रलोक साधारण लोग जाते हैं और समय पर वे फिर संसारमें सुख दुःख भोगते हैं। अतः मनुष्योंको चाहिए कि वे प्रयत्न करके सूर्यलोकके मार्ग पर ही चलें, चन्द्रलोकके नहीं । जो इस प्रकार उद्योग करता है, उसकी सहायता विष्णु अर्थात् व्यापक देव स्वयं करते हैं। विष्णुलोकमें अमृतका कोष है, अतः देवकी कृपा और अपने उद्योगोंसे जो विष्णु लोकको प्राप्त कर लेता है, वह अमर हो जाता है। वह मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥

मनुष्योंके रहनेके घर ऐसे विस्तृत और खुले हुए हों कि जहां सूर्यकी किरणें स्वच्छन्दतासे आ सकें । जहां सूर्यकी किरणें प्रविष्ट होती हैं, उस घरमें रहनेवालोंका स्वास्थ्य उत्तम रहता है, क्योंकि सूर्यकिरणोंमें रोग जन्तुओंको नष्ट कर स्वास्थ्यप्रदान करनेकी शक्ति रहती है। घरोंमें गायोंके रहनेका प्रबन्ध भी उत्तम हो । जिस घरमें गायें रहती हैं, उस घरके निवासी गौदुग्धघृत आदिके कारण हृष्टपुष्ट और स्वस्थ रहते हैं। इस प्रकार जिन घरोंमें सूर्यकी किरणें आ जा सकती हैं और गायें रहती हैं, वहांके लोग स्वस्थ एवं हृष्टपुष्ट होते हैं और प्रयत्नशील और उद्योगी होते हैं। ऐसी ही जगह व्यापक देव विराजते हैं ॥ ६ ॥

[१५५]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- विष्णुः, १-३ इन्द्राविष्णू । छन्दः- जगती ।)

१६३४ प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥

१६३५ त्वेषमित्था समरणं शिमीवतो-रिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित् कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥

१६३६ ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितु-र्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥

---

[१५५]

अर्थ— [१६३४] (या) जो (अ-दाभ्या महः) शत्रुओंसे कभी न हारनेवाले तथा महान् इन्द्र और विष्णु (साधुना अर्वता इव) उत्तम घोडेके समान (पर्वतानां सानुनि तस्थतुः) पहाडोंकी चोटी पर रहते हैं। उनमें (धियायते महे शूराय विष्णवे) बुद्धियोंके तृप्त करनेवाले महान् शूरवीर विष्णुकी (वः) तुम (पान्तं अन्धसः अर्चत) पीने योग्य अन्नसे पूजा करो ॥ १ ॥

[१६३५] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (अस्तुः कृशानोः) शत्रुओंके विनाशक अग्निकी (प्रतिधीयमानं असनां इत्) धारण करने योग्य ज्वालाको और अधिक (उरुष्यथः) विस्तृत करते हो, उन (शिमीवतोः वां) शक्तिशाली तुम दोनोंके (समरणं त्वेषं) सब जगह फैलनेवाले तेजको (सुतपा उरुष्यति) सोमरस पीनेवाला विस्तृत करता है ॥ २ ॥

[१६३६] (ताः) वे स्तुतियां (अस्य) इस विष्णुके (महि पौंस्यं वर्धन्ति) महान् सामर्थ्यको और ज्यादा बढाती हैं, तब वह विष्णु अपने सामर्थ्यको (रेतसे भुजे) शक्ति और भोगके लिए (मातरा नि नयति) द्यु और पृथ्वी रूप दो माताओंके बीचमें स्थापित करता है। जैसे (पुत्रः) पुत्र (पितुः परं अवरं तृतीयं नाम) अपने पिताके श्रेष्ठ, अधम और मध्यम गुणोंको धारण करता है, उसी तरह यह विष्णु अपने सभी तरहके सामर्थ्योंको (दिवः रोचने दधाति) द्युलोकके मण्डलमें स्थापित करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— विष्णु- सूर्य और इन्द्र- बिजली ये दोनों अत्यन्त शक्तिशाली हैं। उत्तम घोडा जिस प्रकार पर्वतकी चोटीपर आसानीसे चढ जाता है, उसी प्रकार ये दोनों पर्वतकी चोटियोंपर आसानीसे चढ जाते हैं। सूर्योदय होनेके साथ ही सूर्यकी किरणें बहुत ऊंचे होनेके कारण पर्वतोंपर सबसे प्रथम पडती हैं और वर्षाकालमें बिजली भी पहाडोंपर अधिकतर गिरती है। इन दोनोंमें सूर्य अधिक तेजस्वी और शक्तिशाली है ॥ १ ॥

इन्द्र और विष्णु दोनों देव अग्निके तेजको और अधिक तीव्र करते हैं। सूर्य और बिजली इन दोनोंमें अग्नितत्व प्रकृष्टरूपमें है। इसलिए सूर्य और बिजलीके रूपमें मानों अग्नि ही अपने रूपका विस्तार करता है। सोम यज्ञ करनेवाले मनुष्य यज्ञके द्वारा इन्द्र और विष्णुके तेजको बढाते हैं ॥ २ ॥

स्तुतियां जब सूर्यके पास पहुंचती हैं, तब इसका सामर्थ्य और भी बढ जाता है, तब यह अपने सामर्थ्यसे जल बरसाता है। जलसे अन्नादि उत्पन्न होते हैं, जिन्हें खाकर प्रजायें शक्तिशाली और प्रजोत्पादनमें समर्थ होती हैं। जिस तरह एक पुत्र अपने पिताके उत्तम, मध्यम और अधम अर्थात् सभी तरहके गुणोंको धारण करता है, उसी तरह द्युलोक भी इस विष्णुके सभी तरहके गुणोंको धारण करता है ॥ ३ ॥

१६३७ तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसी–नस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विगामभि–रुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४ ॥
१६३८ द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशो ऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥
१६३९ चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभि–श्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभि–र्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥

अर्थ—[१६३७] (यः) जिस विष्णुने (उरुगायाय जीवसे) अपने मार्गको विस्तृत करनेके लिए तथा प्राणशक्ति प्रदान करनेके लिए (उरु पार्थिवानि) सभी विस्तीर्ण लोकोंको (त्रिभिः विगामिभिः इत्) तीन ही कदमोंसे (क्रमिष्ट) नाप दिया, ऐसे (त्रातुः अवृकस्य मीळ्हुषः इनस्य अस्य) संरक्षण करनेवाले, शत्रुओंसे रहित एवं सुख देनेवाले तथा सबके स्वामी इस विष्णुके (तत् तत् पौंस्यं गृणीमसि) उस उस पराक्रमका वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

[१६३८] (मर्त्यः) मनुष्य (स्वर्दृशः अस्य द्वे इत् क्रमणे) तेजस्वी दृष्टिवाले इस विष्णुके दो पैरको ही (अभिख्याय) चारों ओर प्रशंसा करके उसका (भुरण्यति) ज्ञान प्राप्त कर सकता है । पर (अस्य तृतीयं) इसके तीसरे कदमको (न किः आ दधर्षति) कोई भी हरा नहीं सकता, यहांतक कि (पतयन्तः पतत्रिणः वयः चन) आकाशमें उडनेवाले सुदृढ पंखोंवाले पक्षी भी नहीं हरा सकते ॥ ५ ॥

[१६३९] यह विष्णु (व्यतीन् चतुर्भिः साकं नवतिं च) बीतनेवाले चार सहित नब्बे अर्थात् चोरानवे कालके अवयवोंको (नामभिः) अपनी प्रेरणासे (वृत्तं चक्रं न) गोल चक्रके समान (अवीविपत्) घुमाता है । तब (बृहत् शरीरः) बडे शरीरवाला (युवा अकुमारः) सदा तरुण होनेके कारण कभी भी कुमार न होनेवाला यह विष्णु (विमिमानः) कालको नापता हुआ (ऋक्वभिः) स्तुतियोंसे आकर्षित होकर (आहवं प्रति एति) यज्ञकी तरफ जाता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह विष्णु सबका रक्षक है, शत्रुसे रहित है और सब पदार्थोंका स्वामी है तथा सबको सुख देनेवाला है । यह उदय होते ही अपनी किरणोंसे सब लोकोंको नाप देता है अर्थात् प्रकाशित कर देता है । ऐसे विष्णुकी प्रशंसा सब करते हैं ॥ ४ ॥

इस विष्णु- सूर्यके तीन कदम हैं, जो क्रमशः द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोकमें रहते हैं । मनुष्य उनमें पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकमें रहनेवाले कदमोंका तो वर्णन कर सकता है अर्थात् पृथ्वी और अन्तरिक्षमें रहनेवाले प्रकाशका तो थोडा बहुत वर्णन कर सकता है, पर द्युलोकमें रहनेवाले प्रकाशके विषयमें वह कुछ नहीं जानता । द्युलोकमें सूर्य इतना तेजस्वी है कि उसके तेजके अन्तका पता लगाना मनुष्यके लिए असंभव है । यहां तक कि सुदृढ पंखवाले पक्षी भी उसको जान नहीं सकते ॥ ५ ॥

कालके चौरानवे (९४) अवयव होते हैं, जो इस प्रकार हैं– १ संवत्सर, २ अयन (उत्तरायण– दक्षिणायन) ५ ऋतु, १२ मास, २४ पक्ष (शुक्ल एवं कृष्ण), ३० दिनरात, ८ याम, १२ मेषवृश्चिकादि राशियां = ९४ । इन सभी अवयवोंको सूर्य घुमाता है । जिस प्रकार गोल चक्र घूमता रहता है, उसी तरह सूर्यकी प्रेरणासे ये सभी कालावयव स्वयं घूमते रहते हैं । इसप्रकार यह सूर्य कालका नियामक है । यह सूर्य सदा तरुण रहता है, यद्यपि यह समयका नियन्ता है, पर समयका प्रभाव इसपर कभी नहीं पडता । इसलिए इसकी शक्ति न कभी क्षीण न थी और न होगी । ऐसा यह सूर्य ऋचाओं द्वारा स्तुत होकर यज्ञको प्रेरित करता है ॥ ६ ॥

[१५६]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- विष्णुः । छन्दः- जगती ।)

१६४० भवा॑ मि॒त्रो न शेव्यो॑ घृ॒तासु॑ति॒र्विभू॑तद्युम्न एव॒या उ॑ स॒प्रथाः॑ ।
अधा॑ ते विष्णो वि॒दुषा॑ चि॒दर्ध्यः॒ स्तोमो॑ य॒ज्ञश्च॒ राध्यो॑ ह॒विष्म॑ता ॥ १ ॥

१६४१ यः पू॒र्व्याय॑ वे॒धसे॒ नवी॑यसे सु॒मज्जा॑नये॒ विष्ण॑वे॒ ददा॑शति ।
यो जा॒तम॑स्य मह॒तो महि॒ ब्रव॒त् सेदु॒ श्रवो॑भि॒र्युज्यं॑ चिद॒भ्यस॑त् ॥ २ ॥

१६४२ तमु॑ स्तोतारः पू॒र्व्यं यथा॑ वि॒द ऋ॒तस्य॒ गर्भं॑ ज॒नुषा॑ पिपर्तन ।
आस्य॑ जा॒नन्तो॒ नाम॑ चिद् विवक्तन म॒हस्ते॑ विष्णो सुम॒तिं भ॑जामहे ॥ ३ ॥

---

[१५६]

अर्थ— [१६४०] (विष्णो) हे विष्णो ! (घृतासुतिः) जल उत्पन्न करनेवाला, (विभूतद्युम्नः) अत्यन्त तेजस्वी (एवयाः सप्रथाः) सर्वत्र गति करनेवाला तथा अत्यन्त विस्तृत तू (मित्रः न) मित्रके समान (शेव्यः भव) हमें सुख देनेवाला हो। हे विष्णो! (अध) इसके बाद (विदुषा ते स्तोमः अर्ध्यः) विद्वान् मनुष्यके द्वारा की गई तेरी स्तुति प्रशंसनीय है। (हविष्मता यज्ञश्च राध्यः) हविसे युक्त मनुष्यके द्वारा किया गया यज्ञ भी प्रशंसनीय है ॥ १ ॥

[१६४१] (यः) जो मनुष्य (पूर्व्याय) अत्यन्त प्राचीन (वेधसे) ज्ञानी (नवीयसे) स्तुतिके योग्य (सुमत् जानये) उत्तम बुद्धिको उत्पन्न करनेवाले (विष्णवे) विष्णुके लिए (यः ददाशति) जो हवि देना चाहता है, (यः) जो (महतः अस्य) महान् इस विष्णुके (महि जातं) प्रशंसनीय जन्मका (ब्रवत्) वर्णन करता है, (सः इत्) वही (श्रवोभिः युज्यं चित् अभि असत्) यशसे परिपूर्ण उस स्थानको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

[१६४२] हे (स्तोतारः) स्तुति करनेवालो ! (ऋतस्य गर्भं) यज्ञके केन्द्र (पूर्व्यं) अत्यन्त प्राचीन (तं) उस विष्णुको (यथा विदे) जैसा भी तुम जानते हो, उसी रीतिसे (जनुषा पिपर्तन) स्तुतियोंसे तृप्त करो। (अस्य नाम जानन्तः चित्) इसके यश या पराक्रमको जानते हुए तुम (विवक्तन) उसका वर्णन करो। हे (विष्णो) व्यापक देव ! (महः ते) महान् तुम्हारी (सुमतिं भजामहे) उत्तम बुद्धिको हम प्राप्त करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह सूर्य जलको उत्पन्न करनेवाला है। पृथ्वीपरके जलोंको सूर्य अपनी किरणोंसे भाप बनाकर उनको बादलके रूपमें बदल देता है, इसप्रकार बादल बरसकर फिर पानी बन जाते हैं। इसीलिए सूर्यको जलको उत्पन्न करनेवाला कहा है। वह सूर्य मित्र है, क्योंकि वह लोगोंका हित करता है। अतः वह हमारे लिए सुख देनेवाला हो ॥ १ ॥

यह सूर्य अनन्तकालसे इसी प्रकार जगको प्रकाश देता आ रहा है, पर फिर भी सदा तरुण जैसा नवीन रहता है। इतने समयके पश्चात् भी वह वृद्ध नहीं होता। यह उत्तम बुद्धिको प्राप्त कराता है। जो इस सूर्यका निरन्तर ध्यान करता है, वह यशस्वी होकर उत्तम स्थानको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

हे स्तोताओ ! तुम जो कुछ भी इस सूर्यके बारेमें जानते हो, उतना सब वर्णन इस सूर्यका तुम करो। इसने जो भी पराक्रम आजतक किए हैं, उनका भी वर्णन तुम करो। हे व्यापक देव ! हम तुम्हारी उत्तम बुद्धिको प्राप्त करें ॥ ३ ॥

१६४३ तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४ ॥
१६४४ आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत् त्रिषधस्थ आर्य-मृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥

[१५७]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- जगती; ५-६ त्रिष्टुप् ।)

१६४५ अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देवः सविता जगत् पृथक् ॥ १ ॥

अर्थ— [१६४३] (मारुतस्य वेधसः अस्य) देवोंके साथ रहनेवाले तथा ज्ञानयुक्त इस विष्णुके (तं क्रतुं) उस कर्मके अनुसार (राजा वरुणः) तेजस्वी वरुण और (अश्विना सचन्ते) अश्विनौ देव चलते हैं । (सखिवान् विष्णुः) मित्रोंसे युक्त विष्णु (अहर्विदं उत्तमं दक्षं) दिनको प्रकट करनेवाले उत्तम बलको (दाधार) धारण करता है, (व्रजं च अप ऊर्णुते) और मेघोंके आवरणको छिन्न भिन्न कर देता है ॥ ४ ॥

[१६४४] (यः दैव्यः) जो द्युलोकमें रहनेवाला तेजस्वी (सुकृत्तरः) उत्तम कर्म करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ (विष्णुः) विष्णु (सुकृते इन्द्राय सचथाय) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रकी सहायता करनेके लिए (आ विवाय) आगे आता है । (त्रिषधस्थः वेधाः) तीनों लोकोंमें रहनेवाला बुद्धिमान् यह विष्णु (आर्यं अजिन्वत्) श्रेष्ठ पुरुषको तृप्त करता है और (ऋतस्य भागे यजमानं आ भजत्) यज्ञके समय पर यज्ञ करनेवालेके पास जाता है ॥ ५ ॥

१ वेधाः आर्यं अजिन्वत्— बुद्धिमान् विष्णु श्रेष्ठ पुरुषको हर तरहसे उत्तम बनाता है ।

[१५७]

[१६४५] (अग्निः ज्मः अबोधि) अग्नि भूमिपर जागृत हो चुका है, (सूर्यः उदेति) सूर्य उदय हो चुका है । (मही उषाः) बडी उषा (अर्चिषा चन्द्रा वि आवः) अपने तेजसे लोगोंको आल्हाद देनेवाली होकर फैल चुकी है, इस समय अश्विदेवोंने (यातवे) यात्रा करनेके लिए अपने (रथं आयुक्षातां) रथको तैयार किया है तब (सविता देवः) सूर्य देवने (जगत् पृथक्) संसारको अलग अलग ढंगसे (प्र असावीत्) उत्पन्न किया है । अर्थात् सब संसारको जाग्रत करके कर्मोंमें लगाया है ॥ १ ॥

भावार्थ— तेजस्वी वरुण और अश्विनौ आदि सभी देव इस विष्णुके द्वारा बताये गए मार्गसे चलते और उसके बतायेके अनुसार कर्म करते हैं अर्थात् सभी देव इसी विष्णुके अधीन होकर अपना अपना कार्य करते हैं । यह विष्णु अपनी शक्तिसे दिनको प्रकट करता है और मेघोंको छिन्न भिन्न करके पानी बरसाता है ॥ ४ ॥

द्युलोकमें रहनेवाला यह तेजस्वी सूर्य वर्षाके समय बिजलीकी सहायता करता है । यह सूर्य ही बिजलीको प्रेरित करके पानी बरसाता है । यह सूर्य पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु तीनों लोकोंमें रहकर प्रकाशित करता है । वह विष्णु श्रेष्ठ पुरुषकी और यज्ञ करनेवाले पुरुषकी हर तरहसे सहायता और रक्षा करता है ॥ ५ ॥

अग्नि प्रज्वलित हुई है, उषा अपने तेजके साथ फैल गयी है, अश्विदेवोंने अपना रथ तैयार किया है, सूर्यने उदय होकर सब लोगोंको अपने अपने कार्योंमें लगा दिया है । रात्रीके समय अग्निको जलाते रखना चाहिए, उषःकालमें उजाला होगा, अश्विदेव उदित होंगे, पश्चात् सूर्य उदय होगा तब सभी लोगोंको अपने कार्योंमें लगना चाहिए ॥ १ ॥

१६४६ यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
१६४७ अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
१६४८ आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥
१६४९ युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीँरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६४६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यत् वृषणं रथं युञ्जाथे) चूँकि तुम दोनों अपने बलवान् रथको तैयार कर रहे हो, इसलिए हम तुमसे विनती करते हैं कि, (मधुना घृतेन) मीठे शहदसे तथा घीसे (नः क्षत्रं उक्षतं) हमारी क्षात्रसेनाको पुष्ट करो, तथा (पृतनासु अस्माकं ब्रह्म जिन्वतं) युद्धोंमें हमारे ज्ञानको यशसे युक्त करो (शूरसाता वयं) जहां शूर लोग धनके लिए युद्ध करते हैं उस युद्धमें हम (धना भजेमहि) धनोंको प्राप्त करें ॥ २ ॥

[१६४७] (त्रिचक्रः) तीन पहियोंसे युक्त (जीराश्वः सुष्टुतः) वेगवान् घोडोंसे युक्त, भलीभाँति प्रशंसित (अश्विनोः रथः) अश्विदेवोंका रथ (मधुवाहनः अर्वाङ् यातु) मिठाससे पूर्ण अन्नको ढोता हुआ हमारे पास आवे, (त्रिवन्धुरः विश्वसौभगः) वह तीन बैठकोंसे युक्त और सभी सौंदर्योंसे युक्त (मघवा) ऐश्वर्यसम्पन्न रथ (नः द्विपदे चतुष्पदे) हमारे मानवों तथा चौपायोंको (शं आवक्षत्) सुख पहुँचाये ॥ ३ ॥

[१६४८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं नः ऊर्जं आवहतं) तुम दोनों हमारे लिए अन्न ले आओ, (नः मधुमत्या कशया मिमिक्षतं) हमें शहदसे पूर्ण पात्रमें संयुक्त करो; (आयुः प्रतारिष्टं) हमारी आयुको सुदीर्घ बनाओ, (रपांसि नि मृक्षतं) दोषोंको पूर्णतया मिटा दो, (द्वेषः सेधतं) द्वेषको हटा दो और (सचाभुवा भवतं) हमारे सहायक बनो ॥ ४ ॥

[१६४९] हे (वृषणौ) बलवान् अश्विदेवो ! (जगतीषु युवं ह) जगतियोंमें, या गौवोंमें तुम दोनोंही (गर्भं धत्थः) गर्भको रख देते हो तथा (विश्वेषु भुवनेषु अन्तः) सारे प्राणियोंके भीतर (युवं) तुम दोनों गर्भ स्थापित करते हो, (अग्निं च अपः च) अग्निको तथा जलोंको और (वनस्पतीन्) वनस्पतियोंको (युवं ऐरयेथां) तुम दोनों प्रेरित करते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुमने बाहर जानेके लिये अपना बलवान् रथ जोड कर रखा है, इसलिए हमारी प्रार्थना है कि शहद और घीसे हमारे क्षात्रियोंको बलवान् बनाओ, युद्धोंमें हमारा ज्ञान यशस्वी हो और जहां शूर ही लडते हैं, उस युद्धमें हमें विजय प्राप्त हो । क्षत्रियोंको शहद और घी पर्याप्त मात्रामें मिले, उसके सेवनसे वे पुष्ट और बलिष्ठ बनें, वे युद्धोंमें विजयी हों और बहुत धन प्राप्त करें ॥ २ ॥

तीन पहियोंसे युक्त, वेगवान् घोडोंसे जोता हुआ, अश्विदेवोंका रथ शहद लेकर हमारे पास आवे । तीन आसनोंवाला अतिसुन्दर तथा ऐश्वर्यवान् रथ हमारे द्विपाद और चतुष्पादोंको सुख देवे ॥ ३ ॥

हे अश्विदेवो ! हमें विपुल अन्न दो, शहदसे भरे पात्र हमें दो, हमारी आयु दीर्घ करो, हमारे दोष दूर करो, द्वेषभावको दूर करो और सदा हमारे सहायक बनो । विपुल अन्न तथा शहद सेवन करके आयुको बढाना चाहिए, दोषोंको दूर करके द्वेषभावको मिटाकर परस्परकी सहायता करनी चाहिए ॥ ४ ॥

गौओंमें तथा सब प्राणियोंकी स्त्रियोंमें गर्भका पालन पोषण करना अश्विदेवोंका कार्य है । अग्नि, जल और वनस्पतियोंको मनुष्योंके लिये ही अश्विदेव प्रेरित करते हैं ॥ ५ ॥

१६५० युवं हं स्थो भिषजां भेषजेभि॒रथो॑ ह स्थो र॒थ्या॒३ राथ्ये॑भिः ।
अथो॑ ह क्ष॒त्रमधि॑ धत्थ उग्रा यो वां ह॒विष्मा॒न् मन॑सा द॒दाश॑ ॥ ६ ॥

[१५८]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।)

१६५१ वसू॑ रु॒द्रा पु॑रु॒मन्तू॑ वृ॒धन्ता॑ दश॒स्यतं॑ नो वृषणाव॒भिष्टौ॑ ।
दस्रा॑ ह॒ यद् रेक्ण॑ औच॒थ्यो वां॒ प्र यत् स॒स्राथे॒ अक॑वाभिरू॒ती ॥ १ ॥

१६५२ को वां॑ दाशत् सु॒मतये॑ चिद॒स्यै वसू॒ यद् धेथे॒ नम॑सा प॒दे गोः ।
जि॒गृ॒तम॒स्मे॒ रे॒वती॒ः पुरं॑धीः काम॒प्रेणे॑व॒ मन॑सा॒ चर॑न्ता ॥ २ ॥

अर्थ— [१६५०] (भेषजेभिः युवं) औषधियोंको साथ रखनेके कारण तुम दोनों ही (भिषजा ह स्थः) निश्चय पूर्वक वैद्य हो, (अथ) उसी प्रकार (राथ्येभिः) रथको जोतनेयोग्य घोडोंके कारण (रथ्याः ह स्थः) रथी भी हो, (अथ) और तुम स्वयं हे (उग्रा) उग्रस्वरूपवाले अश्विदेवो ! (यः) जो (हविष्मान्) हवि आदि चीजें (मनसा वां ददाश) मनःपूर्वक तुम दोनोंको अर्पण करता है, उसे तुम (क्षत्रं अधि धत्थः) क्षत्रियोचित वीरता देते हो ॥ ६ ॥

[१५८]

[१६५१] हे (वृषणौ दस्रा) बलवान् शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (वसू रुद्रा) तुम दोनों बसानेवाले, शत्रुओंको रुलानेहारे, (पुरुमन्तू वृधन्ता) बहुत ज्ञानवाले, बढते हुए और (अभिष्टौ) वाञ्छनीय दान (नः दशस्यतं) हमें दो, (यत्) क्योंकि (औचथ्यः रेक्णः वां) उचथ्यका पुत्र धनके लिए तुम दोनोंसे जब प्रार्थना करता है, (यत्) तब (अकवाभिः ऊती) अनिन्दनीय संरक्षणकी आयोजनाओंके साथ (प्र सस्राथे ह) तुम दोनों दौडते हुए आते हो ॥ १ ॥

[१६५२] हे (वसू) बसानेहारे अश्विदेवो ! (यत्) चूँकि (गोः पदे) इस भूमिपर (नमसा) नमस्कार करनेपर (धेथे) तुम दोनों दान देते हो, (अस्यै वां सुमतये चित्) इस तुम्हारी अच्छी बुद्धिको प्रसन्न करनेके लिए (कः दाशत्) कौन और क्या देनेमें समर्थ होगा ? (कामप्रेण इव मनसा चरन्ता) इच्छा पूर्ण करनेकी अभिलाषा मनमें रख कर संचार करनेवाले तुम दोनों (अस्मे) हमें (रेवतीः पुरन्धीः) धनके साथ गौवें (जिगृतं) दे दो ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम दोनों अपने पास उत्तम औषधियां रखनेके कारण उत्तम वैद्य हो, उत्तम घोडे अपने रथको जोतनेके कारण उत्तम रथी हो, तुम स्वयं उग्रवीर हो, अतः क्षत्रियोचित सहायता करते हो, जो तुम्हें मनःपूर्वक हवि अर्पण करता है उसकी तुम सहायता करते हो। अपने पास उत्तम औषधियाँ रखकर वैद्य रोगियोंकी उत्तम चिकित्सा करें । वीरता प्राप्त करके अन्योंको रक्षा करनी चाहिए। अपने अनुयायियोंकी सहायता करनी चाहिए ॥ ६ ॥

अश्विदेव बलवान्, शत्रुका नाश करनेवाले, सबको यथायोग्य बसानेवाले, दुष्टोंको रुलानेवाले, ज्ञानी और बडे हैं । वे हमें यथेष्ट दान दें । उचथ्यके पुत्र दीर्घतमाने जब धनके लिये उनसे प्रार्थना की तब वे दौडते हुए आये थे ॥ १ ॥

हे सबको ठीक तरह बसानेवाले अश्विदेवो ! इस भूमिपर जो तुम्हें नमन करता है उसको तुम दान देते हो, ऐसी तुम्हारी उत्तम बुद्धि है । इस तुम्हारी सुबुद्धिको और अधिक प्रसन्न करनेके लिये भला कौन और अधिक क्या कर सकता है ? तुम तो सबकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए ही सर्वत्र संचार करते हो, इसलिए हमें धनके साथ पोषक दुधारू गौवें दो ॥ २ ॥

१६५३ युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय पेरु—र्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥

१६५४ उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्ये—न्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद् वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥ ४ ॥

१६५५ न मा गरन् नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत् स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६५३] (वां पेरुः) तुम दोनोंका वह पार ले चलनेवाला रथ (यत्) जब (तौग्र्याय युक्तः ह) तुग्रके पुत्रको बचानेके लिए तैयार हो चुका तब उसे (अर्णसः मध्ये) समुद्रके मध्य (पज्रः वि धायि) बलसे तुमने खडा रखा; (पतयद्भिः एवैः) वेगपूर्वक जानेवाले गति साधनोंसे (शूरः अज्म न) वीर पुरुष जैसे युद्धमें प्रवेश करता है उसी प्रकार (वां उप) तुम दोनोंके समीप (अवः शरणं गमेयं) संरक्षण तथा आश्रयके लिए मैं भी जाऊँ ॥ ३ ॥

[१६५४] (औचथ्यं) उचथके पुत्रको अर्थात् मुझको (उपस्तुतिः उरुष्येत्) तुम दोनोंके समीप आकर की गई स्तुति सुरक्षित रखे, (इमे पतत्रिणी) सूर्यसे बने दिन तथा रात (मां) मुझको (मा वि दुग्धां) निस्सार न बना डालें; (दशतयः चितः एधः) दश गुनी समिधाएँ डालकर प्रदीप्त की गई यह अग्नि (मां मा धाक्) मुझे न जला डाले (यत्) जिसने (वां बद्धः) तुम दोनोंके भक्तको बांधा था (त्मनि क्षां खादति) वही अब भूमिपर धूल खाता पडा है ॥ ४ ॥

[१६५५] (यत् ईं) जब इस मुझ उचथ्य पुत्र दीर्घतमाको (सुसमुब्धं) भली भाँति जकडकर और बांध कर (दासाः अव अधुः) दासोंने नीचे मुख करके फेंक दिया, तब भी (मातृतमाः नद्यः) मातृतुल्य उन नदियोंने (मा) मुझ (न गरन्) नहीं डुबोया (यत् अस्य शिरः) जब मेरा सिर (त्रैतनः दासः) त्रैतन नामक दास (स्वयं वि तक्षत्) स्वयं काटने लगा और (उरः अंसौ अपि ग्ध) छाती तथा कंधोंको तोडने लगा । तब भी आपकी कृपासे बच गया ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विनौ ! तुम्हारा रथ संकटोंसे बचानेवाला है । तुग्रके पुत्र भुज्युको बचानेके लिए तुमने उस रथको समुद्रमें वेगवान् गतिसाधनोंसे, शूर जैसे युद्धमें जाता है, वैसे चलाया था । अब मैं भी तुम्हारे पास अपनी सुरक्षाके लिए आता हूं ॥ ३ ॥

उचथ्यका पुत्र दीर्घतमा कहता है कि– हे अश्विदेवो ! तुम्हारी स्तुति मेरी रक्षा करे, आकाशमें पक्षीके समान जाने-वाले सूर्यसे निर्माण हुए दिन रात मुझे निःसार न बनावें, दशगुनी लकडियां डाल कर प्रदीप्त हुई यह अग्नि मुझे न जला दे । जिसने तुम्हारे इस भक्तको, मुझ उचथ्यको, बांधकर जलमें फेंक दिया था, वही अब यहां भूमिपर पडा धूल खाता है, यह आपके सामर्थ्यका प्रभाव है ॥ ४ ॥

उचथ्य पुत्र दीर्घतमाको दासोंने बांधकर नदीमें फेंक दिया और त्रैतन नामक दासने तो उसका सिर, छाती और कंधे काटनेका यत्न किया, पर ऐसा हुआ कि ऋषि तो बच गया और दासके ही अवयव कट गये ! यह अश्विदेवोंकी ही कृपा है । दूसरेको नदीमें डुबाना, उसका सिर तथा कंधोंको काटना आदि करनेका परिणाम यही हुआ कि अपकार कर्ताका ही नाश हुआ । दूसरेका नाश करनेके लिये यत्न करनेपर अपना ही नाश होता है ॥ ५ ॥

१६५६ दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः । ॥ ६ ॥

[१५९]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- जगती ।)

१६५७ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससे-त्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥

१६५८ उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतु-रुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥

अर्थ— [१६५६] (मामतेयः दीर्घतमाः) ममताका पुत्र दीर्घतमा नामक ऋषि (दशमे युगे) दसवें युगमें (जुजुर्वान्) वृद्ध होने लगा, (यतीनां अपां अर्थं) संयमसे किये जानेवाले कर्मोंसे प्राप्तव्य अर्थके लिए वह (ब्रह्मा सारथिः भवति) ब्रह्मा ज्ञानी पुरुष बनकर सबको चलानेवाला सारथि बनता है ॥ ६ ॥

[१५९]

[१६५७] (ये देवपुत्रे) जो देवोंकी पुत्रियां द्यावापृथ्वी (देवेभिः) देवोंके साथ मिलकर (सुदंससा धिया) उत्तम कर्म और बुद्धिसे (इत्था वार्याणि प्रभूषतः) इसप्रकार ऐश्वर्योंसे अलंकृत करती हैं, ऐसे (ऋतावृधा) यज्ञोंको बढानेवाले (मही) बडे (विदथेषु प्रचेतसा) यज्ञोंमें ज्ञान प्रदान करनेवाले (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवीकी (यज्ञैः स्तुषे) स्तोत्रोंसे स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१६५८] मैं (अद्रुहः पितुः मातुः) द्रोह न करनेवाले पिता और माताके (स्वतवः महि तत् मनः) शक्तिसे पूर्ण तथा महान् उस मनको (हवीमभिः उत मन्ये) अपनी स्तुतियोंसे मैं प्रसन्न करता हूँ । (सुरेतसा पितरा) उत्तम वीर्यवान् माता पिताओंने (प्रजायाः) प्रजाकी (वरीमभिः) रक्षणोंके द्वारा (चक्रतुः) उन्नति की, यह उनका (अमृतं) सर्वश्रेष्ठ काम (भूम उरु) बहुत विस्तृत है ॥ २ ॥

१ अद्रुहः पितुः मातुः मनः हविमभिः मन्ये— द्रोह न करनेवाले माता पिताका मन अपनी स्तुतियोंसे प्रसन्न करना चाहिए ।

भावार्थ— ममताका पुत्र दीर्घतमा ऋषि दशम युगमें अर्थात् १११ वें वर्षके अनंतर वृद्ध होने लगा। उसने जो संयमपूर्वक उत्तम कर्म किये थे, उनसे प्राप्त होनेवाले धर्म-अर्थ-काम मोक्षरूपी पुरुषार्थको प्राप्त करके, वह ब्रह्मज्ञानी हुआ, सबका संचालन करनेवाले सारथीके समान सुयोग्य संचालक वह बन गया । १२० वर्षोंकी पूर्ण आयुतक मनुष्य जीवित रहे, ११० वर्षोंके पश्चात् वृद्ध बने, इस तरह अपना जीवन व्यतीत करे, अकालमें अपमृत्युसे न मरे, संयमपूर्वक सब कर्म करे, उनके फल प्राप्त करे, ज्ञानी बने और सारथीके समान सबको उत्तम रीतिसे चलावे । अर्थात् स्वयं समर्थ बने और दूसरोंका मार्गदर्शक बने ॥ ६ ॥

ये द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों देवोंकी रक्षा करनेके कारण उनकी पुत्रियोंके समान हैं । ये दोनों अपने कर्मों और बुद्धियोंसे सबको उत्तमोत्तम ऐश्वर्योंसे भूषित करती हैं ॥ १ ॥

पुत्रका कर्तव्य है कि वह अपने माता पिताके मनको अपने उत्तम आचरणोंसे हमेशा प्रसन्न रखे । और माता पिताको भी चाहिए कि वे अपने पुत्रसे द्रोह न करें । अपनी रक्षणशक्तियों द्वारा प्रजाकी उन्नति करनी चाहिए और उन्हें हर प्रकारसे बढाना चाहिए ॥ २ ॥

१६५९ ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३ ॥
१६६० ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥
१६६१ तद् राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥

[१६०]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- जगती ।)

१६६२ ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥

अर्थ— [१६५९] (सु अपसः सुदंससः ते सूनवः) उत्तम कर्म करनेवाले तथा दर्शनीय वे पुत्र (पूर्वचित्तये) प्रथम ज्ञान प्राप्त करनेके लिए (मही मातरा जज्ञुः) इन दोनों बडी माताओंको जानते हैं । (स्थातुः च जगतः च) स्थावर और जंगमरूप (अद्वयाविनः पुत्रस्य) कुटिलता रहित पुत्रके (धर्मणि) रक्षणके लिए (सत्यं पदं पाथः) सच्चा पद प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[१६६०] (दिवि समुद्रे अन्तः) द्युलोकरूपी समुद्रके अन्दर स्थित सूर्यकी (कवयः सुदीतयः) ज्ञानसे युक्त तथा अत्यन्त तेजस्वी किरणें (नव्यं नव्यं तन्तुं) प्रशंसनीय तानेबानेको (तन्वते) बुनती हैं, वे (सुप्रचेतसः मायिनः) उत्तम ज्ञानी और शक्तिशाली किरणें (जामी सयोनी मिथुना सं ओकसः) बहिनके रूपमें एक स्थानसे उत्पन्न, सदा एक साथ रहनेवाली तथा एक ही घरमें रहनेवाली इन द्यावापृथिवीको (ममिरे) नापती है ॥ ४ ॥

[१६६१] (वयं अद्यः) हम आज (प्रसवे) उत्तम कर्मोंको करनेके लिए (सवितुः देवस्य) सब जगत्को उत्पन्न करनेवाले उस देवसे (तत् वरेण्यं राधः मनामहे) उस श्रेष्ठ ऐश्वर्यको मांगते हैं । (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथ्वीलोक (सुचेतुना) अपनी उत्तम बुद्धिसे (अस्मभ्यं) हमारे लिए (वसुमन्तं शतग्विनं) निवास करानेवाले तथा अनेकों पशुओंसे युक्त (रयिं धत्तं) ऐश्वर्यको प्रदान करें ॥ ५ ॥

[१६०]

[१६६२] (विश्वशंभुवा) संसारको सुख देनेवाली (ऋतावरी) यज्ञोंको सम्पन्न करनेवाली (रजसः) पानी बरसानेवाली (धारयत् कवी) ज्ञानियोंकी रक्षा करनेवाली (सु जन्मनी) उत्तम जन्मवाली (धिषणे) बुद्धिसे युक्त (देवी द्यावापृथिवी) तेजस्वी द्यावापृथिवीके (अन्तः) बीचमें (शुचिः देवः सूर्यः) पवित्र करनेवाला तेजस्वी सूर्य (धर्मणा ईयते) अपनी धारणशक्तिसे युक्त होकर चलता है ॥ १ ॥

भावार्थ— उत्तम कर्म करनेवाले गुणवान् पुत्र अपने माता पिताको हर तरहसे प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करते हैं । ये द्युलोक एवं पृथ्वीलोक स्थावर और जंगमरूप अपने सभी पुत्रोंका हर तरहसे पालन पोषण और रक्षण करते हैं ॥ ३ ॥

द्युलोकमें बैठा हुआ सूर्य मानों एक जुलाहा है, जो अपनी किरणरूपी ताने बानेसे प्रकाशरूपी वस्त्र बुनता रहता है । इस वस्त्रसे वह द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनोंको ढंक देता है ये दोनों द्यावापृथिवी पृथक् पृथक् होते हुए भी एक स्थानपर सगी बहिनोंके समान रहती हैं । इसी प्रकार सभी स्त्रियां परस्पर मिलजुलकर रहें ॥ ४ ॥

भगवान् सवितासे हम जो धन प्राप्त करें, उसका उपयोग हम उत्तम कामोंमें ही करें । देवोंसे प्राप्त किए गए धनका उपयोग हम कभी भी बुरे कामोंमें न करें । सभी देव हमें प्रसन्न होकर धन दें, ताकि उस उत्तम धनसे हम अपना जीवन सुचारु रूपसे चला सकें ॥ ५ ॥

ये द्यावापृथिवी दोनों संसारको सुख देनेवाली, जल बरसानेवाली, ज्ञानियोंको धारण करनेवाली हैं । इन दोनोंके बीचमेंसे सूर्य चलता है । यह सूर्य सबको पवित्र करता है और संसारको धारण करता है ॥ १ ॥

१६६३ उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत् सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥
१६६४ स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥
१६६५ अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया ऽजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥
१६६६ ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६६३] (यत् पिता) क्योंकि पितारूपी द्यु अर्थात् सूर्य (रूपैः) अपने प्रकाशोंसे मनुष्योंको (सीं अभि अवासयत्) चारों ओरसे वास कराता है, इसलिए (सुधृष्टमे रोदसी) अत्यन्त शक्तिशाली ये द्यावापृथिवी (वपुष्ये न) पुष्टिकारक हैं। (उरुव्यचसा) अत्यन्त विस्तीर्ण (महिनी असश्चता पिता माता च) महान् और पृथक् पृथक् रूपवाले सूर्य और पृथ्वी (भुवनानि रक्षतः) लोकोंकी रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

[१६६४] (पित्रोः पुत्रः) मातापितारूप द्युलोक और पृथ्वीलोकका पुत्र (वह्निः) हविका वाहक (पवित्रवान्) पवित्र करनेहारा (धीरः) बुद्धिमान् (सः) वह सूर्य (मायया) अपनी शक्तिसे (भुवनानि पुनाति) सभी लोकोंको पवित्र करता है। वह (अस्य) अपनी शक्तिसे (विश्वाहा) सब दिन (पृश्निं धेनुं सुरेतसं वृषभं) दुधारु गायों और वीर्यवान् बैलोंको पुष्ट करनेके लिए (शुक्रं पयः दुक्षतः) शुद्ध जल दुहता है ॥ ३ ॥

[१६६५] (यः विश्वशंभुवा रोदसी जजान) जिस देवने विश्वको सुख पहुंचानेवाले द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया, (यः) जिसने (सुक्रतूयया) उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे (रजसी वि ममे) दोनों द्यावापृथिवीको मापा, तथा (अजरेभिः स्कंभनेभिः सं आनृचे) मजबूत आधारोंसे दोनों लोकोंको दृढ कर दिया, ऐसा (अयं) यह देव (अपसां देवानां अपस्तमः) उत्तम कर्म करनेवाले देवोंके बीचमें सर्वश्रेष्ठ कर्म करनेवाला है ॥ ४ ॥

[१६६६] (नः गृणाने) हमसे प्रशंसित हुई हुई (ते महिनी द्यावापृथिवी) वे विशाल द्यावापृथिवी हमारे लिए (महि श्रवः बृहत् क्षत्रं धासथः) बहुत सा अन्न और बहुत सारी शक्ति प्रदान करें, (येन) जिससे हम (कृष्टिः अभि ततनाम) प्रजाओंका विस्तार करें। वे दोनों (विश्वहा) प्रतिदिन (अस्मे) हमारे अन्दर (पनाय्यं ओजः सं इन्वतं) प्रशंसनीय बलको प्रेरित करें ॥ ५ ॥

भावार्थ— सूर्यके अन्दर जीवनशक्ति है, उससे जीवनशक्ति लेकर प्राणी जीवित रहते हैं, यदि सूर्य न हो तो सारे संसारका विनाश हो जाए। इसी प्रकार पृथ्वी सबको आधार देकर अन्नादि देकर उनको पुष्ट करती है। इस प्रकार ये दोनों सब संसारको बसानेवाले हैं। इन दोनोंका विस्तार अत्यधिक है, अर्थात् इनका अन्त कहीं नहीं है ॥ २ ॥

द्यावापृथिवीके मध्यमें यह सूर्य संचार करता है, अतः यह इन दोनोंका पुत्रस्थानीय है। यह अपनी किरणोंसे सब लोकोंको पवित्र करता हुआ चलता है, तथा आकाशसे पानी बरसा कर गायों बैलों अर्थात् प्राणिमात्रको पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

इस सूर्यने द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया, उनको सुदृढ किया। इसीलिए उत्तम कर्म करनेवाले देवोंके बीचमें यह अग्रगण्य है और सर्वश्रेष्ठ कर्मका करनेवाला है ॥ ४ ॥

ये दोनों द्यावापृथिवी हमसे स्तुत होकर हमें शक्ति प्रदान करें, ताकि हम प्रजा विस्तारके कार्यमें समर्थ हों, अर्थात् हम मनुष्योंको उन्नत करनेके कार्यमें समर्थ हों। इस उत्तम कार्यके लिए हमें प्रतिदिन उत्तम प्रेरणा मिलती रहे ॥ ५ ॥

[१६१]

(ऋषिः– दीर्घतमा औचथ्यः । देवता– ऋभवः । छन्दः– जगती; १४ त्रिष्टुप् ।)

१६६७ किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन् किमीयते दूत्यं१ कद् यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलो ऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद् भूतिमूदिम ॥ १ ॥

१६६८ एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद् वो देवा अब्रुवन् तद् व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥

१६६९ अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतना–श्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥

[१६१]

अर्थ—[१६६७] (नः आजगन्) जो हमारे पास आया है, वह (किं उ श्रेष्ठः) क्या श्रेष्ठ है (किं यविष्ठः) अथवा छोटा है, (किं दूत्यं इयते) यह किसका दूत होकर आया है, (कत् यत् ऊचिम) हम किसका वर्णन करें । हे (भ्रातः अग्ने) भरणपोषण करनेहारे अग्ने ! (यः महाकुलः) जो अच्छे कुलमें उत्पन्न हुआ है, ऐसे (चमसं न निन्दिम) चावल आदिकी निन्दा नहीं करते, अपितु (द्रुणः भूतिं इत् ऊदिम) शत्रुओंको झुकानेवाले इस अन्नके ऐश्वर्यका ही वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

१– महाकुलं चमसं न निन्दिम, भूतिं इत् ऊदिम— उत्तम जमीनपर होनेवाले अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, अपितु उसकी प्रशंसा ही करनी चाहिए ।

[१६६८] हे (सौधन्वनाः) हे सुधन्वाके पुत्रो ! तुम (एकं चमसं चतुरः कृणोतन) एक अन्नके चार भाग करो, (तत् वः देवाः अब्रुवन्) ऐसा तुमसे देवोंने कहा है, (तत् वः आगमं) उसीको तुमसे कहनेके लिए मैं आया हूँ । (यदि एवा करिष्यथ) यदि तुम ऐसा करोगे, तो (देवैः साकं यज्ञियासः भविष्यथ) देवोंके साथ ही तुम भी पूजनीय हो जाओगे ॥ २ ॥

[१६६९] हे ऋभुओ ! तुमने (दूतं अग्निं प्रति) दूतका कर्म करनेवाले अग्निसे (यत् अब्रवीतन) जो यह कहा कि (अश्वः कर्त्वः) घोडेको हृष्टपुष्ट बनाना है, (उत इह रथः कर्त्वः) और यहां रथ भी तैयार करना है, (धेनुः कर्त्वा) गायको हृष्टपुष्ट करना है, (द्वा युवशा कर्त्वा) दोनों वृद्धोंको तरुण बनाना है, (तानि कृत्व्या) उन सब कामोंको करके हे (भ्रातः) भाई अग्ने ! (वः अनु एमसि) हम तुम्हारे पीछे आते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— घरमें कोई अतिथि आवे तो प्रथम यह देखना चाहिए कि वह बडा है या छोटा । ताकि उससे यथायोग्य व्यवहार किया जा सके । फिर उससे प्रेमपूर्वक पूछना चाहिए कि तुम कहांसे आये हो, किसीका सन्देश लेकर आए हो, इत्यादि । इसके बाद उसे अन्न देवे । अतिथि भी गृहस्थ द्वारा दिए गए अन्नकी कभी निन्दा न करे । अन्न एक देव है जिसकी कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए, अपितु सदा प्रसन्न मनसे उसकी प्रशंसा करते हुए उसे खाना चाहिए ॥ १ ॥

गृहस्थियोंको चाहिए कि वे अपने अन्नके चार भाग करें, (१) घरवालोंके लिए, (२) अतिथियोंके लिए, (३) नौकर चाकरोंके लिए, (४) पशु पक्षियोंके लिए इसप्रकार चार भाग करें । यह देवोंकी आज्ञा है । जो इसप्रकार करता है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

घोडोंको और गायोंको हृष्टपुष्ट बनाना चाहिए, रथोंको भी उत्तम रीतिसे तैय्यार करना चाहिए । गायोंके हृष्टपुष्ट होनेसे, जो वृद्ध होंगे, वे भी उनका दूध घी खाकर तरुणके समान शक्तिशाली और उत्साहपूर्ण हो सकेंगे ॥ ३ ॥

१६७० चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद् यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृता- नादित् त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥

१६७१ हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवी- च्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान् कन्या नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥

१६७२ इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६७०] (चकृवांसः ऋभवः तत् अपृच्छत) प्रयत्नशील ज्ञानियोंने यह पूछा कि (यः दूतः स्य नः आजगन्) जो दूत होकर हमारे पास आया, वह (क्व इत् अभूत्) वह कहां उत्पन्न हुआ था ? (यदा) जब (त्वष्टा) त्वष्टाने (चतुरः कृतान् चमसान्) चार तरहसे किए गए अन्नोंको (अव अख्यत्) प्रकाशित किया, (आत् इत्) उसके बाद ही वह दूत (ग्नासु अन्तः नि आनजे) जाने योग्य भूमियोंमें सर्वत्र संचार करने लगा ॥ ४ ॥

[१६७१] (त्वष्टा अब्रवीत् यत्) त्वष्टाने कहा है कि (ये देवपानं चमसं अनिन्दिषुः) जो देवोंके द्वारा खाने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, (एनान् हनाम) उन्हें हम मारें । (सचा सुते) परस्पर मिलकर सोम निचोडने पर इसके (अन्या नामानि कृण्वते) दूसरे भी अनेक नाम होते हैं, तब (कन्या) सुन्दर स्त्रियां (एनान् अन्यैः नामभिः स्परत्) इन्हें दूसरे नामोंसे सम्बोधित करती हैं ॥ ५ ॥

१ ये देवपानं अनिन्दिषुः एनान् हनाम, त्वष्टा अब्रवीत्— जो देवोंके द्वारा भक्षण करने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, उन्हें हम मारें, ऐसा त्वष्टाने कहा ।

[१६७२] (इन्द्रः हरी युयुजे) इन्द्रने घोडोंको जोड दिया है, (अश्विना रथं) अश्विनौने रथको तैय्यार कर दिया है, (बृहस्पतिः विश्वरूपां उप आजत) बृहस्पतिने अनेकरूपोंवाली वाणीका बोलना शुरु कर दिया है, अतः हे (ऋभुः विभ्वा वाजः) ऋभु विभ्वा और वाज ! तुम (देवान् अगच्छत) देवोंके पास जाओ और (सु-अपसः यज्ञियं भागं ऐतन) उत्तम कर्म करनेवाले होकर तुम सब यज्ञके भागको प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

१ सु-अपसः यज्ञियं भागं ऐतन— उत्तम कर्म करनेवाले ही यज्ञके भागको प्राप्त कर सकते हैं ।

२ ऋभुः विभ्वा वाजः देवान् अगच्छत— ज्ञानी, तेजस्वी और बलवान् ही देवत्व प्राप्त कर सकते हैं ।

भावार्थ— दूत देशका सम्मान्य प्रतिनिधि होता है, अतः उसका अपमान देशका अपमान माना जाता है । इसीलिए दूतका हर तरहसे सम्मान करना चाहिए । जब वह आवे तब हरतरहके अन्नोंसे उसको आनन्दित करना चाहिए, ताकि वह भूमिपर सर्वत्र सुखपूर्वक संचार कर सके ॥ ४ ॥

जो देवोंके द्वारा खाने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, जो देवोंकी, हवियोंकी, यज्ञोंकी और अन्नकी निन्दा करते हैं, या उनका अपमान करते हैं, उनको मारना चाहिए । जो अन्नको मारते हैं, उन्हें अन्न मार देता है, अतः अन्नकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए । सोम जब तैय्यार हो जाता है, तब उसके नाम भी अनेक हो जाते हैं और तब वह अनेक नामोंसे संबोधित होता है ॥ ५ ॥

इन्द्र अपने घोडे जोडकर, अश्विनौ अपने रथ तैयार करके यज्ञको जानेके लिए तैयार हो गए हैं, बृहस्पतिने भी स्तोत्रोंका गान शुरु कर दिया है । पर ऐसे देवोंके पास वही जा सकते हैं, जो ज्ञानी, तेजस्वी और शक्तिशाली होते हैं । और उत्तम कर्म करनेवाले ही यज्ञके भागको प्राप्त कर सकते हैं ॥ ६ ॥

१६७३ निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभि—र्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥ ७ ॥
१६७४ इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतने—दं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥
१६७५ आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवी—दग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवी—दृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६७३] हे (सौधन्वनाः) सुधन्वाके पुत्रो ! तुमने (धीतिभिः) अपने प्रयत्नोंसे (निश्चर्मणः गां अरिणीत) चर्मसे रहित गायको भी पुष्ट किया । (या जरन्ता) जो बूढे हो गए थे (ता) उन माता पिताको (युवशा अकृणोतन) फिरसे तरुण बनाया । (अश्वात् अश्वं अतक्षत) एक घोडेसे दूसरा घोडा पैदा किया, फिर (रथं युक्त्वा) उन घोडोंको अपने रथमें जोडकर (देवान् उप अयातन) देवोंके पास गए ॥ ७ ॥

१ निश्चर्मणः गां अरिणीत— चर्मसे भी रहित अर्थात् अत्यन्त कमजोर गायको हृष्टपुष्ट किया ।

[१६७४] हे (सौधन्वनाः) सुधन्वाके पुत्रो ! (इदं उदकं पिबत) इस पानीको पीओ (इदं मुंजनेजनं पिबत) इस मौञ्जवान् पर्वतसे लाए गए सोमरसको पीओ (इति अब्रवीतन) ऐसा तुमने कहा था । (यदि तत् न एव हर्यथ) यदि उसको पीनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो (तृतीये सवने घ मादयाध्वै) तीसरे समय तो निश्चयसे उसे पीकर आनन्दित होओ ॥ ८ ॥

[१६७५] (आपः भूयिष्ठाः) जल सर्वश्रेष्ठ है, (इति एकः अब्रवीत्) ऐसा एकने कहा, (अग्निः भूयिष्ठः इति अन्यः अब्रवीत्) अग्नि श्रेष्ठ है, ऐसा दूसरेने कहा, (एकः वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्र अब्रवीत्) तीसरेने भूमिको सर्वश्रेष्ठ बतलाया, इसप्रकार (ऋता वदन्तः) सत्य बोलते हुए सभीने (चमसान् अपिंशत) ऐश्वर्यका विभाग किया ॥ ९ ॥

वधर्यन्ती– " भूमि वधं आत्मनः इच्छन्तीं भूमिं " (सायणः)

भावार्थ— राष्ट्रमें ऐसी विद्याका प्रचार हो जिसके द्वारा कमजोरको हृष्टपुष्ट और वृद्धोंको तरुण बनाया जा सके । सुधन्वाके पुत्रोंने जिसके शरीरपर केवल चमडी ही रह गई थी, ऐसी कमजोर गायको भी फिरसे हृष्टपुष्ट बनाया और वृद्धोंको फिरसे तरुण बनाया ॥ ७ ॥

यदि कोई वीर पुरुष अतिथिके रूपमें आवे, तो उससे प्रेमपूर्वक कहना चाहिए कि ' आप पानी पीयें अथवा सोमरस ही पीयें अथवा यदि आपको इस समय पीना अच्छा न लगता हो तो शामको तो अवश्य पीकर आप आनन्दित हों । ' तात्पर्य यह कि घरमें आया हुआ अतिथि अप्रसन्न होकर न जाए । गृहस्वामी अतिथिको खुश करनेका भरसक प्रयत्न करे । अतिथिका अप्रसन्न होकर चला जाना गृहस्वामीके लिए पापका कारण बनता है ॥ ८ ॥

कहीं जलको सर्वश्रेष्ठ बताया है, कहीं अग्निको सर्वश्रेष्ठ कहा है, तो कहीं भूमिको सर्वश्रेष्ठ बताया है । ये बातें यद्यपि ऊपरसे विरुद्ध प्रतीत होती हैं, पर हैं ये सभी सत्य ही, क्योंकि परमात्माने इन सभी तत्त्वोंमें ऐश्वर्यका विभाग किया है । यदि जल न हो तो जीवन न हो, अग्नि न हो तो शरीर न रहे और यदि भूमि न हो तो सब आधारहीन होकर नष्ट हो जाए, अतः इन सभी तत्त्वोंमें ऐश्वर्य विद्यमान है । जलमें जीवनतत्त्वोंको पुष्ट करनेवाला ऐश्वर्य है । अग्निमें शरीरमें उष्णता पैदा करके उसे उत्साहपूर्ण बनानेका ऐश्वर्य है और भूमिमें सभी तरहके ऐश्वर्य हैं । इस तरह इन तीनों तत्त्वोंमें ऐश्वर्य भरपूर है, इसलिए ये तीनों ही श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥

१६७६ श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत् किं स्वित् पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥ १० ॥
१६७७ उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥
१६७८ संमील्य यद् भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित् तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत् प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥ १२ ॥

अर्थ— [१६७६] (एकः) एक पुत्र (श्रोणां गां उदकं अव अजति) पुष्ट गायको पानीकी तरफ ले जाता है, (एकः सूनया आभृतं मांसं पिंशति) दूसरा पुत्र उत्तम रीतिसे लाए गए चारेको खिलाकर गायके शरीरको मांसयुक्त बनाकर उसे रूपवान् बनाता है, (एकः) तीसरा पुत्र (निम्रुचः) सूर्यास्तके समय (शकृत् अप अभरत्) गायके गोबरको उठा कर फेंकता है, ऐसे उत्तम (पुत्रेभ्यः) पुत्रोंसे (पितरा किंस्वित् उप अवतुः) माता पिता और किस बातकी अपेक्षा रखें ? ॥ १० ॥

[१६७७] (ऋभवः नरः) हे तेजस्वी मनुष्यो ! (सु अपस्यया) अपने उत्तम कर्मोंसे (उत् वत्सु अस्मै तृणं अकृणोतन) ऊंचे प्रदेशोंमें इस गाय आदि पशुके लिए घास आदि पैदा करो, तथा (निवत्सु अपः) निचले प्रदेशोंमें पानीको सुरक्षित रखो । (यत्) जबतक तुम (अगोह्यस्य गृहे असस्तन) गायके रहने न योग्य घरमें रहोगे, (तत् अद्य) तबतक तुम (इदं न अनुगच्छथ) इस ऐश्वर्यको नहीं पा सकते ॥ ११ ॥

१ यत् अ-गोह्यस्य गृहे असस्तन तत् इदं न अनु गच्छथ— जबतक मनुष्य गायके न रहने योग्य घरमें रहेंगे, तबतक वे ऐश्वर्यको नहीं पा सकते ।

[१६७८] हे ऋभुओं-सूर्यकिरणो ! तुम (यत्) जब (तात्या भुवना संमील्य परि असर्पत) मेघोंसे लोकोंको आच्छादित करके चारों ओर विचरते हो, तब (वः पितरा क्व स्वित् आसतुः) तुम्हारे मातापितारूप सूर्य चन्द्र कहां रहते हैं ? (यः वः करस्नं आददे) जो तुम्हारे हाथोंको रोकता है, उसे (अशपत) शाप दो, (यः प्र अब्रवीत्) जो तुम्हारी स्तुति करता है, (तस्मै प्र अब्रवीतन) उसके लिए तुम आशीर्वाद दो ॥ १२ ॥

१ ऋभुः-सूर्य किरण " आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते " (निरु. ११।१६)

भावार्थ— सूर्यास्तके समय जब गाय वनसे लौटती है, तब गृहस्वामीका एक पुत्र उसे पानी पिलाता है, दूसरा उत्तम चारा आदि खिलाकर उसे मांसल एवं रूपवान् बनाता है, तीसरा उसके गोबरको उठाकर दूर फेंकता है और गायके रहनेके स्थानको साफ रखता है, ऐसे उत्तम गोसेवी जिसके पुत्र हों, उन्हें और किस बातकी कमी है, अर्थात् जिस घरमें सौभाग्यकी प्रतीक गायकी ऐसी उत्तम सेवा होती है, वह घर हमेशा ऐश्वर्यसे भरापूरा रहता है ॥ १० ॥

हे मनुष्यो ! जो ऊंचे प्रदेश हों अर्थात् जहां पानी न रह सकता हो, वहां गाय आदि पशुके लिए घास आदि उत्पन्न करो और जो नीचे प्रदेश हों, अर्थात् जहां पानी रह सकता हो, वहां गायोंके पीनेके लिए पानी इकट्ठा करो । गाय ऐश्वर्यको देनेवाली है, इसमें सब ऐश्वर्य बसते हैं, अतः जिस घरमें गाय नहीं रहती, वह घर ऐश्वर्यहीन होता है । अतः जबतक मनुष्य ऐसे घरमें रहेंगे कि जिसमें गायें नहीं रह सकतीं, तबतक वे ऐश्वर्यहीन ही रहेंगे ॥ ११ ॥

जब आकाशमें बादल छा जाते हैं, तब किरणोंके पालक सूर्य चन्द्र छिप जाते हैं । उनको लोग देख नहीं पाते । जो मनुष्य इन किरणोंको रोकना चाहता है अर्थात् सूर्यकिरणोंको अपने घरमें आने नहीं देता और स्वयं भी सूर्यकिरणोंमें विचरता नहीं, वह अनेक रोगोंसे ग्रस्त होकर विनष्ट हो जाता है । सूर्यकिरणोंमें रोग जन्तुओंको नष्ट करनेका गुण है । अतः जो इन किरणोंका उपयोग करता है, उनसे भरपूर लाभ उठाता है, उसे यह किरणें स्वस्थ बनाती हैं ॥ १२ ॥

×

१६७९ सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छता-गोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत् संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३ ॥
१६८० दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्नि-रयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रै-र्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ॥

[१६२]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्वः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ३, ६ जगती ।)

१६८१ मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायु-रिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद् वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥
१६८२ यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद् विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥

अर्थ— [१६७९] हे (ऋभवः) सूर्यकिरणो ! (सुषुप्वांसः) सोते हुए तुमने सूर्यसे (तत् इदं अपृच्छत) इस सब बातको पूछा कि हे (अगोह्य) न छिपनेवाले सूर्य ! (नः कः अबूबुधत्) हमें किसने जगाया है, (बस्तः) सबको निवास करानेवाले सूर्यने (बोधयितारं) तुम्हें जगानेवाला (श्वानं अब्रवीत्) वायु बताया । तुमने (संवत्सरे अद्य इदं आ व्यख्यत) एक वर्षके बाद आज इस जगत्को प्रकाशित किया है ॥ १३ ॥

[१६८०] हे (शवसः नपातः) बलको न गिरने देनेवाले ऋभुओ । (युष्मान् इच्छन्तः) तुम्हें पानेकी इच्छा करते हुए (मरुतः दिवा यान्ति) मरुद्गण द्युलोकसे जाते हैं, (भूम्या अग्निः) भूमिसे अग्नि जाता है, (अयं वातः अन्तरिक्षेण याति) यह वायु अन्तरिक्षसे जाता है । तथा (समुद्रैः अद्भिः वरुणः याति) बहनेवाले जलप्रवाहोंसे वरुण जाता है ॥ १४ ॥

[१६२]

[१६८१] (यत्) जो हम (देवजातस्य वाजिनः सप्तेः) देवोंसे उत्पन्न हुए बलशाली घोडेके (विदथे) संग्राममें किए गए (वीर्याणि) पराक्रमोंका (प्रवक्ष्यामः) वर्णन करते हैं, इसलिए (मित्रः वरुणः अर्यमा आयुः ऋभुक्षा मरुतः) मित्र, वरुण, अर्यमा, वायु, ऋभुक्षा और मरुत (नः मा परि ख्यन्) हमारी निन्दा न करें ॥ १ ॥

[१६८२] (यत्) जब वीर (निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य) रूप और धनसे भरपूर घोडेके (मुखतः) शक्तिसे (गृभीतां रातिं नयन्ति) प्राप्त किए गए ऐश्वर्यको पाते हैं, तब (विश्वरूपः अजः) अनेकों रूपोंवाला नेता घोडा (सुप्राङ् मेम्यत्) सेनाके आगे रहकर शत्रुओंको मारता हुआ (इन्द्रापूष्णोः प्रियं पाथः अपि एति) इन्द्र और पूषाके स्नेहको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— वर्षाकालमें आकाशमें चारों ओर बादल छा जाते हैं, इसलिए सूर्यकी किरणें छिप जाती हैं, तब वे मानों सो जाती हैं । पर जब बहुत जोरकी हवा चलती है तब सारे बादल छट जाते हैं अर्थात् उड जाते हैं, तब किरणें फिर फैल जाती हैं, यही मानों उनका जगना है । वर्षाकालमें बहुत समयके बाद सूर्यका दर्शन होता है ॥ १३ ॥

इन सूर्यकी किरणोंसे प्रेरित होकर द्युलोकमें मरुत् चलते हैं । भूमिपर अग्नि अपना काम करती है, हवा अन्तरिक्षमें चलती है और जलप्रवाह चलते हैं । सारे देव उसीकी प्रेरणासे कार्य करते हैं ॥ १४ ॥

कोई भी जीव हो, यदि वह उत्तम कर्म करे, तो उसकी प्रशंसा अवश्य करनी चाहिए । घोडेको सिखाकर उसे कुशल और युद्धके लिए निपुण बनाना चाहिए ॥ १ ॥

वे ही वीर संग्राममें ऐश्वर्य प्राप्त कर सकते हैं, जिनके घोडे बहुत हृष्टपुष्ट और शक्तिशाली होते हैं । ये घोडे सेनाके आगे रहकर संग्राममें शत्रुओंको मारते काटते आगे बढते हैं, तब ये घोडे इन्द्र और पूषाके प्रेमको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

१६८३ एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत् पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥

१६८४ यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

१६८५ होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६८३] (पूष्णः भागः) पूषाका भाग (विश्वदेव्यः) सब गुणोंसे युक्त (एषः छागः) यह निष्क्रिय घोडा (वाजिना अश्वेन पुरः) बलवान् घोडेके साथ आगे आगे (नीयते) ले जाया जाता है, तब (त्वष्टा) त्वष्टा (अर्वता) बलवान् घोडेके साथ रहनेवाले (एनं अभिप्रियं पुरोडाशं) इस प्रिय और आगे रहनेवाले घोडेको (सौश्रवसाय) उत्तम यशकी प्राप्तिके लिए (जिन्वति) तृप्त करता है ॥ ३ ॥

छागः– निष्क्रिय घोडा— " यश्छिन्नगमनोऽश्वः स छागः । छिदेर्गमेश्च छागशब्दः प्रसिद्धः "
(ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य ६।८।३६)

[१६८४] (मानुषाः) मनुष्य (यत्) जब (हविष्यं देवयानं) हविके योग्य और देवोंके पास पहुंचानेवाले (अश्वं) अश्वको (ऋतुशः) ऋतुओंके अनुसार (त्रिः परि नयन्ति) तीन बार चारों ओर घुमाते हैं, (अत्र) तब (पूष्णः भागः) पूषाका भाग तथा (अजः) नेतारूप यह घोडा (देवेभ्यः यज्ञं प्रतिवेदयन्) देवोंको यज्ञका ज्ञान कराता हुआ (प्रथमः एति) सबसे पहले जाता है ॥ ४ ॥

[१६८५] (ग्रावग्राभः) सोमकूटनेके पत्थरोंकी स्तुति करनेवाला (शंस्ता) स्तोत्र बनानेवाला तथा (सुविप्रः) उत्तम ज्ञानी (होता) देवोंको बुलानेवाला तथा (आवया) श्रद्धापूर्वक हवि देनेवाला (अध्वर्युः) अध्वर्यु (अग्नि इन्धः) अग्निको प्रज्वलित करता है । हे मनुष्यो ! तुम सब (तेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन यज्ञेन) उस अलंकृत और उत्तम प्रकारसे आहुतिसे युक्त यज्ञके द्वारा (वक्षणाः आ पृणध्वं) नदियोंको भर दो ॥ ५ ॥

भावार्थ— एक निष्क्रिय घोडेको जब युद्धादि कला सिखानी होती है, तब उसे एक बलशाली घोडेसे संयुक्त करते हैं, इस प्रकार वह घोडा उस निष्क्रिय घोडेको भी युद्धकला सिखा देता है। तब वह निष्क्रिय घोडा भी राजाका स्नेहपात्र बन जाता है और वह राजा उस घोडेको यश प्राप्त करनेकी इच्छासे पुष्ट बनाता है ॥ ३ ॥

अश्वमेधके अवसर पर ऋत्विग्गण यज्ञके पशु घोडेको अग्निके चारों ओर तीनबार घुमाते हैं, तीनबार अग्निकी परिक्रमा करवानेसे वह यज्ञीय हो जाता है और तब वह देवत्वको प्राप्त करानेवाला होता है। वह पोषण करनेवाले राजाका मुख्य भाग होता है अर्थात् उस अश्वकी सेवा राजाको भी करनी पडती है । तब वह यज्ञका ज्ञान कराता हुआ भूमि पर सर्वत्र विचरता है। वह सबसे आगे रहता है और पीछे उसकी संरक्षक सेना रहती है । जिधर जिधर घोडा जाता है, उधर उधर सेनाको भी जाना पडता है ॥ ४ ॥

हे मनुष्यो ! उत्तम ज्ञानी यह होता अध्वर्यु यज्ञको प्रज्वलित करता है, और तुम सब इस यज्ञमें उत्तम उत्तम आहुतियां देकर नदियोंको भर दो । यज्ञमें आहुति देनेसे यज्ञके धुंएसे बादलोंका निर्माण होता है । उसका नाम " पर्जन्येष्टि " है । इस पर्जन्येष्टिसे बादलोंका निर्माण होकर पानी बरसता है और तब सारी नदियां भर जाती हैं ॥ ५ ॥

१६८६ यूपव्रस्का उत ये यूपवाहा—श्चषालं ये अंश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं संभरं—न्त्युतो तेषांमभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥
१६८७ उप प्रागात सुमन्मेऽधायि मन्मं देवानामाशा उपं वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चंकृमा सुबन्धुम् ॥ ७ ॥
१६८८ यद् वाजिनो दामं संदानमर्वतो या शीर्षण्यां रशना रज्जुरस्य ।
यद् वां घास्य प्रभृतमास्ये३ तृणं सर्वा ता ते अपिं देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥
१६८९ यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद् वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपिं देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६८६] (ये यूपव्रस्काः) जो यूपके लिए वृक्षको काटते हैं (उत) और (यूपवाहाः) जो यूपके लिए लकडीको ढोकर लाते हैं, (ये अश्वयूपाय चषालं तक्षति) जो घोडेको बांधनेके खम्भोंके अग्रभागको तेज करते हैं, (उत) और (ये अर्वते पचनं संभरन्ति) जो घोडेके लिए घास आदि अन्न लाते हैं, (तेषां अभिगूर्तिः नः इन्वतु) उनके उत्तम विचार हमें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

[१६८७] (मे सुमत् मन्म अधायि) मैंने उत्तम बुद्धियोंसे बनाये गए स्तोत्रको धारण किया है, इसलिए (वीतपृष्ठः) सुन्दर पीठवाला वह घोडा (देवानां आशाः) देवताओंकी आशाओंको पूरा करनेके लिए (उप प्र अगात्) पास आवे । (एनं सुबन्धुं) इस उत्तम प्रकारसे बंधे हुए घोडेको (देवानां पुष्टे) देवोंके पोषणके लिए (चकृम) पुष्ट करते हैं । (विप्राः ऋषयः) ज्ञानी ऋषि भी (अनु मदन्ति) इसे हर्षित करें ॥ ७ ॥

[१६८८] (वाजिनः यत् संदानं दाम) इस बलशाली घोडेकी जो पैरोंमें बांधनेवाली रस्सी है, (या शीर्षण्या रज्जुः) जो सिरमें बांधनेवाली रस्सी, (अस्य अर्वतः रशना) और इस घोडेके जो लगाम हैं, (वा) अथवा (अस्य आस्ये यत् प्रभृतं तृणं) इसके मुंहमें बहुत सारी जो घास है, हे अश्व ! (ते ता सर्वा) तेरे वे सभी पदार्थ (देवेषु अस्तु) देवोंके लिए समर्पित हो ॥ ८ ॥

[१६८९] (क्रविषः अश्वस्य) शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले यज्ञीय घोडेको (मक्षिका आश) मक्खी खाती हो, (वा) अथवा (स्वरौ स्वधितौ) शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले तथा उत्तम-शक्तिको धारण करनेवाले इस घोडेमें (यत् रिप्तं अस्ति) जो मैल आदि लिपटा हुआ हो, (शमितुः हस्तयोः यत्) यज्ञ करनेवालेके हाथमें जो मैल हो, (नखेषु यत्) उसके नाखूनोंमें जो मैल हो, (ता सर्वा अपि) वे सब (देवेषु) देवोंके यज्ञमें (अस्तु) शुद्ध किए जाएं ॥ ९ ॥

भावार्थ— यज्ञीय अश्वको बांधनेके लिए जो स्तंभ तैयार किया जाता है, उसके लिए जो लकडी काटता है, जो उस लकडीको ढोकर यज्ञ स्थानतक लाता है और जो उस स्तम्भको उत्तम रीतिसे तैय्यार करता है, तथा जो उस अश्वके लिए उत्तम घास आदि लाता है, ऐसे श्रेष्ठ मनुष्योंके उत्तम विचार हमें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

सुन्दर पीठवाला और अनेक तरहसे सजाया गया अश्वमेधका घोडा देवोंकी आशाओंको पूर्ण करनेवाला है अर्थात् यज्ञमें आकर देवगण हवियोंसे तृप्त होते हैं, इसलिए यह घोडा ही मानों उनकी आशाओंको तृप्त करता है । इस यज्ञीय पशु अश्वको सब तरहसे पुष्ट करना चाहिए ॥ ७ ॥

अश्वमेधके लिए चुना हुआ घोडा यज्ञयूपपर लाकर बांध दिए जाने तथा सभी संस्कारोंसे संस्कृत हो जानेपर साधारण अश्व न रहकर एक उत्कृष्ट देव बन जाता है, अतः उस समय उसे जो भी पदार्थ दिए जाते हैं, वे मानों देवको ही दिए जाते हैं, अतः उस यज्ञीय पशुको जो भी पदार्थ दिए जाएं, वे उत्तम ही हों ॥ ८ ॥

यज्ञका घोडा उत्तम और हृष्टपुष्ट हो । उसे हर प्रकारसे साफ रखा जाए, ताकि उसके शरीरपर मक्खियां न बैठें । यज्ञ करनेवालोंके हाथ और नाखून भी हर तरहसे साफ रहें । इस प्रकार हर तरहसे शुद्ध और पवित्र हाथोंसे ऋत्विगगण यज्ञमें देवोंको हवि प्रदान करें ॥ ९ ॥

१६९० यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ १० ॥
१६९१ यत् ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद् भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ११ ॥
१६९२ ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ १२ ॥
१६९३ यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [१६९०] (क्रविषः उदरस्य) आक्रमणशील घोडेके पेटसे (यत् ऊवध्यं अपवाति) जो शौच बाहर गिरे और (आमस्य यः गन्धः अस्ति) उस अपक्व पदार्थका जो गंध फैले, (शमितारः तत् सुकृता कृण्वन्तु) यज्ञ करनेवाले उस सबको साफ करें, (उत) और (शृतपाकं मेधं पचन्तु) पके हुए यज्ञ पदार्थको और अच्छी तरह पकायें ॥ १० ॥

[१६९१] हे अश्व ! (निहतस्य ते) निरन्तर गति करनेवाले तेरे (अग्निना पच्यमानात् गात्रात्) क्रोधाग्निसे पकनेवाले शरीरसे निकला हुआ (यत् शूलं) जो शस्त्र (अवधावति) शत्रुकी तरफ दौडता है, (तत् भूम्यां मा आ श्रिषत्) वह भूमिपर न गिरे, (मा तृणेषु) घासोंमें न गिरे, अपितु (उशद्भ्यः देवेभ्यः रातं अस्तु) इच्छा करनेवाले दिव्य वीरोंको धन वह देनेवाला हो ॥ ११ ॥

[१६९२] (ये अर्वतः मांसभिक्षां उपासते) जो घोडेको मांसल बनानेके लिए उसकी सेवा करते हैं, (उत) और (ये इति आहुः) जो यह कहते हैं कि (ई सुरभिः निर्हर) इस घोडेके लिए उत्तम गंधवाले अन्न ले आओ, और इस प्रकार (ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति) जो घोडेको हृष्टपुष्ट देखते हैं, (तेषां अभिगूर्तिः नः इन्वतु) उनकी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ १२ ॥

[१६९३] (मांस्पचन्याः उखायाः यत् नीक्षणं) फलोंके गूदेको पकानेवाले पात्रको देखनेका जो साधन और (यूष्णः आसेचनानि या पात्राणि) रसको परोसे जानेवाले जो पात्र हैं, (ऊष्मण्या अपिधाना) भापको रोके रखनेवाले ढक्कन (चरूणां अंकाः सूनाः) चरुओंको काटनेके साधन छुरी आदि (अश्वं परिभूषन्ति) घोडेको भूषित करते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ— यज्ञस्तूपमें बंधा हुआ यज्ञका पशु यज्ञस्थानमें शौचादि करके उस स्थानको गंदा करे तो यज्ञ करनेवाले उस स्थानको झाडपोंछकर साफ रखें और यज्ञमें दी जानेवाली हविको अच्छी तरह पकायें । जहां पशु बंधा रहेगा, वहां गन्दगी और दुर्गन्धीका होना स्वाभाविक है । पर यज्ञ करनेवालोंको चाहिए कि वे उस स्थानको साफ करते हुए शुद्ध रखें ॥ १० ॥

वेगसे दौडनेवाले उत्तम और हृष्टपुष्ट अश्वकी पीठपर बैठा हुआ वीर जब गुस्सेमें आकर शत्रुओंपर अपना शस्त्र फेंके, तो उसका वह शस्त्र भूमिपर अथवा घासपर गिरकर व्यर्थ न हो, अपितु वह शत्रुओंपर गिरकर उनका संहार करे और विजयकी इच्छा करनेवाले वीरोंको धन दो, अर्थात् वीरोंके हाथसे छूटे हुए शस्त्रास्त्र शत्रुओंका संहार करें और शत्रुओंका धन वीरोंको प्राप्त हो ॥ ११ ॥

जो उत्तम गंधसे युक्त घास आदि चारा देकर अश्वको हृष्टपुष्ट और मांसल बनाते हैं, उनकी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो अर्थात् पशुसेवा करनेकी उत्तम बुद्धि सभीको मिले, सभी पशुसेवा करें और उन्हें हृष्टपुष्ट बनावें ॥ १२ ॥

अश्वमेधके अवसर पर आनेवाले अतिथियोंको खिलानेके लिए शाकके गूदेको पकानेवाले बर्तन, रस आदि रखनेके लिए पात्र, ढक्कन तथा काटनेके लिए छुरी आदि साधन यज्ञस्थानमें होते हैं । ये सब साधन अश्वमेधके कारण ही एकत्रित किए जाते हैं, इसलिए मानों ये घोडेको ही भूषित करते हैं ॥ १३ ॥

१६९४ निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥

१६९५ मा त्वाग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धि — र्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १५ ॥

१६९६ यदश्वाय वास उपस्तृण — न्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥

१६९७ यत् ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७ ॥

अर्थ— [१६९४] (अर्वतः यत् निक्रमणं) यज्ञीय घोडेका चलना, (निषदनं) बैठना (विवर्तनं) तथा अन्य चेष्टायें करना, (च पड्वीशं) तथा पैरोंका बन्धन है, (यत् च पपौ) जो कुछ घोडेने पिया (यत् घासिं च जघास) जो कुछ आहार उसने खाया, हे अश्व ! (ते ता सर्वा) तेरी वे सब क्रियायें (देवेषु अस्तु) देवोंके लिए समर्पित हो ॥ १४ ॥

[१६९५] हे अश्व ! (धूमगन्धिः अग्निः) धुंवेसे व्याप्त अग्नि (त्वा मा ध्वनयीत्) तुझसे शब्द न करावे। (जघ्रिः भ्राजन्ती उखा) सुगंधसे भरी हुई तपती हुई थाली (मा अभिविक्त) तुझे भयभीत न करे। ऐसे (इष्टं वीतं अभिगूर्तं वषट्कृतं तं अश्वं) चाहनेयोग्य, सुन्दर, उद्यमी और संस्कारसे सम्पन्न उस घोडेको (देवासः प्रति गृभ्णन्ति) देवगण स्वीकार करते हैं ॥ १५ ॥

[१६९६] जो (अश्वाय) यज्ञीय अश्वके लिए (यत् अधीवासं) जो ओढनेके योग्य है, ऐसा (वासः उपस्तृणन्ति) कपडा उढाते हैं, जो (अस्मै) इसे (या हिरण्यानि) जो सोनेके अलंकार हैं, उन सजाते हैं, ये सब पदार्थ तथा (अर्वन्तं पड्वीशं संदानं) घोडेके पैरोंको बांधे जानेवाली रस्सी (प्रिया) ये सभी प्रिय साधन मनुष्यको देवेषु आ यामयन्ति) देवोंके पास पहुंचाते हैं ॥ १६ ॥

[१६९७] हे अश्व ! (यत्) जो (महसा शूकृतस्य) वेगसे दौडनेके कारण हांपनेवाले (ते सादे) तेरे बैठ जानेपर (पार्ष्ण्या वा कशया तुतोद) कीलसे अथवा चाबुकसे दुःखी किया हो, तो (अध्वरेषु) यज्ञोंमें (ते ता सर्वा) तेरे उन सभी दुःखोंको मैं (ब्रह्मणा सूदयामि) स्तोत्रोंसे उसी प्रकार दूर करता हूँ (हविषाः स्रुचा इव) जिस प्रकार हवियोंको स्रुवासे डाला जाता है ॥ १७ ॥

भावार्थ— यज्ञका अश्व एक देव है, अतः वह जो कुछ चेष्टायें करता है, वह एक देवकी चेष्टायें होती हैं। इसलिए उसे जो कुछ पीनेके लिए या खानेके लिए दिया जाता है, वह मानो एक देवके लिए ही समर्पित किया जाता है ॥ १४ ॥

अश्वमेधके समय यज्ञ कुण्डमें अग्नि जलती रहती है और घोडा पासमें ही बंधा हुआ होता है। वह घोडा ऐसी धुवेंसे युक्त अग्निको देखकर शब्द न करें। यज्ञके मध्यमें घोडेके शब्द करने पर ऋत्विजोंके लिए प्रायश्चित्तका विधान है। तपे हुए बर्तनोंको देखकर घोडा न डरे। जो ऐसा उत्तम, निर्भीक, परिश्रमी और उत्तम संस्कारी घोडा होता है, उसे ही देव गण अपनाते हैं अर्थात् अश्वमेधके लिए ऐसा ही उत्तम घोडा चुनना चाहिए ॥ १५ ॥

जो यज्ञीय घोडेको वस्त्रोंसे सुसज्जित करता है, या सोनेके अलंकारोंसे उसे सजाता है अथवा उसके लिए रस्सी आदि अन्य पदार्थ देता है, वह मानों ये सभी पदार्थ देवको ही देता है ॥ १६ ॥

यज्ञीय अश्वको कभी कष्ट नहीं देना चाहिए, उसे कभी चाबुक या कीलसे मारना नहीं चाहिए। वह देवता है अतः देवताको कष्ट देना योग्य नहीं ॥ १७ ॥

१६९८ चतुस्त्रिंशद् वाजिनो देवबन्धो— र्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥ १८ ॥
१६९९ एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥
१७०० मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत् ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २० ॥
१७०१ न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूता— मुपास्थाद् वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१ ॥

अर्थ— [१६९८] (देवबन्धोः वाजिनः) देवोंको प्रिय घोडेके (चतुस्त्रिंशत् वङ्क्रिः) दोनों तरफ चौंतीस हड्डियां होती हैं, ऐसे (अश्वस्य स्वधितिः सं एति) घोडेके शस्त्रास्त्र शत्रुओंकी तरफ जाते हैं। हे मनुष्यो ! (गात्रा अच्छिद्रा वयुना कृणोत) घोडेके अंग प्रत्यंगोंको दोषरहित और दर्शनीय बनाओ । ताकि (अनुघुष्य) हिनहिनाते हुए वह (परुः परुः विशस्त) शत्रुओंके अंगोंको काटे ॥ १८ ॥

[१६९९] (ऋतुः अश्वस्य त्वष्टुः) शीघ्र गतिसे सर्वत्र संचार करनेवाले घोडेको (एकः विशास्ता) एक ही मारनेवाला होता है (तथा द्वा यन्तारा भवतः) तथा दो उसे वशमें करनेवाले होते हैं । हे अश्व ! (ते गात्राणां) तेरे अंग प्रत्यंगोंके मध्यमेंसे (या ऋतुथा कृणोमि) जिन अंगोंको ऋतुके अनुसार पुष्ट करता हूँ (पिण्डानां) शरीरमेंसे (ताता अग्नौ जुहोमि) उन उन अंगोंको अग्निमेंसे निकालता हूँ ॥ १९ ॥

[१७००] हे अश्व ! (अपियन्तं त्वा) देवोंकी तरफ जानेवाले तुझे (प्रियः आत्मा) तेरी प्रिय आत्मा (मा तपत्) दुःख न दे । (ते तन्वः) तेरे शरीर पर (स्वधितिः मा अतिष्ठिपत्) शस्त्र न बैठे । (गृध्नुः अविशास्ता) लालची और दुष्ट मनुष्य (अतिहाय) तेरे कष्टकी चिन्ता न करते हुए (मिथू) व्यर्थ ही (असिना) अपने शस्त्रसे (ते गात्राणि छिद्रा मा कः) तेरे शरीरमें छेद न करे ॥ २० ॥

[१७०१] हे वीर ! (एतत् उ) यह निश्चय है कि तू (न म्रियसे) मरेगा नहीं, (न रिष्यसि) तू हिंसित भी नहीं होगा, अपितु (सुगेभिः पथिभिः देवान् इत् एषि) उत्तमता और सुखपूर्वक जानेयोग्य मार्गोंसे तू देवोंके पास जाएगा । (ते हरी युंजा) तेरे रथमें दो घोडे जोते गए हैं । (पृषती अभूतां) वे घोडे हिरणके समान वेगवान् हैं । (रासभस्य धुरि वाजी अस्थात्) गर्जना करनेवाले तेरे रथकी धुरामें बलवान् अश्व विद्यमान है ॥ २१ ॥

भावार्थ— घोडेके दोनों बगलोंमें चौंतीस हड्डियां होती हैं । यहां प्राणिविज्ञान वेदमंत्र बताता है । इसके सभी अंग दोषरहित और देखने योग्य हों । वह शब्द करते हुए शत्रुओं पर आक्रमण करे और उस पर बैठे हुए वीर अपने शस्त्रास्त्रोंसे शत्रुओंके मर्मों पर प्रहार करके उन्हें काटें ॥ १८ ॥

जब वेगवान् घोडा रथमें जोडा जाता है, तब एक सारथि ही उसे मारता है और दो लगाम उसे वशमें करनेवाले होते हैं । जब ऋतुके अनुसार घोडेको खिला पिलाकर पुष्ट किया जाता है, तब उसे संग्रामकी अग्निमें तपाकर परिपक्व करना चाहिए, अर्थात् उसे संग्राममें भेजकर युद्धकी कला और नीतियोंमें निपुण बनाना चाहिए ॥ १९ ॥

मांसके लालचसे कोई भी दुष्ट मनुष्य घोडेको न मारे, न काटे, उस पर कोई शस्त्र प्रहार न करे और इस प्रकार अश्वकी प्रिय आत्माको उससे वियुक्त करके दुःख न दे ॥ २० ॥

हे वीर ! तेरे रथमें हिरणके समान वेगवान् और अत्यन्त बलवान् दो घोडे जोते गए हैं, और तू स्वयं भी गर्जना करनेवाला है । इसलिए तू डर मत, न तू मरेगा और न शत्रुओंसे मारा ही जाएगा । अतः तू निर्भीक होकर युद्धमें जा । इस प्रकार वीरता दिखाकर तू देवोंके पास जाने योग्य हो सकेगा, अथवा यदि तू युद्धमें मर भी जाएगा, तो भी तू स्वर्गको प्राप्त होकर देवोंके पास जा सकेगा ॥ २१ ॥

१७०२ सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

[१६३]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्वः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१७०३ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन् त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥

१७०४ यमेन दत्तं त्रित एनमायुन- गिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

अर्थ— [१७०२] (वाजी) बलवान् वह घोडा (नः पुंसः) हम मनुष्योंको (पुत्रान्) पुत्र (उत) और (सुगव्यं सु अश्व्यं) उत्तम गाय और घोडोंसे युक्त (विश्वापुषं रयिं) सबका पोषण करनेवाला धन प्रदान करे । (अदितिः) न मारे जाने योग्य यह घोडा (नः अनागास्त्वं कृणोतु) हमें पापसे रहित करे । (हविष्मान् अश्वः) तेजस्वी घोडा (नः क्षत्रं वनतां) हमें क्षात्रशक्तिसे संयुक्त करे ॥ २२ ॥

[१६३]

[१७०३] हे (अर्वन्) अश्व ! (समुद्रात् प्रथमं जायमानः) समुद्रसे सर्वप्रथम उत्पन्न होता हुआ तथा (उत वा) अथवा (पुरीषात् उद्यन्) पानीमेंसे ऊपर आता हुआ तू (यत् अक्रन्दः) जो गरजा, (ते महि जातं उपस्तुत्यं) तेरा वह महान् जन्म प्रशंसनीय है । तेरे (पक्षा) दोनों पक्ष (श्येनस्य) बाजके समान हैं और (बाहू हरिणस्य) बाहुएं हिरणके समान हैं ॥ १ ॥

[१७०४] (यमेन दत्तं एनं) यमके द्वारा दिए गए इस अश्वको (त्रितः अयुनक्) त्रितने अपने रथमें जोडा, (प्रथमः इन्द्रः एनं अधि अतिष्ठत्) मुख्य और श्रेष्ठ इन्द्रने इसपर अधिकार किया । (गन्धर्वः अस्य रशनां अगृभ्णात्) गन्धर्वने इसके लगाम पकडे और (वसवः) वसुओंने (सूरात्) सूर्यसे (अश्वं निरतष्ट) इस घोडेको उत्तम रीतिसे बनाया ॥ २ ॥

भावार्थ— यह यज्ञीय बलवान् घोडा हमें हर तरहके धन, पुत्र तथा गाय, घोडे आदि पशु प्रदान करे । हमें प्राप्त धनसे सभीका पोषण हो । यह घोडा मारे जाने योग्य नहीं है । हम कभी ऐसा पाप न करें । यह तेजस्वी घोडा हमें क्षात्र शक्तिसे युक्त करे ॥ २२ ॥

सर्वत्र व्यापनेवाला यह सूर्य द्युलोकसे वा जलके मध्यमेंसे उदय होता हुआ प्रकाशित होता है, इसके पंख और बाहु अर्थात् किरणें बाजकी तरह शक्तिशाली और हिरणकी तरह वेगवान् हैं ॥ १ ॥

सर्व नियन्ताके द्वारा उत्पन्न किए गए इन किरणोंको तीनों लोकोंमें गमन करनेवाले सूर्यने अपने रथमें जोडा अर्थात् वह किरणोंसे युक्त हुआ । उसकी शक्ति सबसे प्रथम बिजलीने प्राप्त की, तब बिजलीकी शक्तिको जल धारण करनेवाले बादलोंने पाई, बादल ही बिजलीके नियामक हैं । पानी बरसनेके बाद बादलोंके छंट जानेपर किरणें फिर सूर्यको प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

१७०५ असि यमो अस्यादित्यो अर्व—न्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ३ ॥
१७०६ त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥
१७०७ इमा ते वाजिन्नवमार्जनानी—मा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्य—मृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥
१७०८ आत्मानं ते मनसारादजाना—मवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभि—ररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥

अर्थ— [१७०५] हे (अर्वन्) गतिशील अश्व ! तू (यमः असि) सबका नियन्ता है, (आदित्यः असि) तू सब रसोंका आदान करनेवाला है, (गुह्येन व्रतेन त्रितः असि) तू अपने गोपनीय कर्मोंसे त्रित है। तू (सोमेन समया) सोमके साथ (विपृक्तः असि) अच्छी तरह संयुक्त है, (ते दिवि त्रीणि बन्धनानि आहुः) तेरे द्युलोकमें तीन बंधन हैं, ऐसा कहते हैं ॥ ३ ॥

[१७०६] हे (अर्वन्) अश्व ! (दिवि ते त्रीणि बंधनानि आहुः) द्युलोकमें तेरे तीन बंधन हैं, (अप्सु त्रीणि) जलोंमें तीन बंधन हैं, (समुद्रे अन्तः त्रीणि) अन्तरिक्षमें तीन बन्धन हैं (यत्र ते परमं जनित्रं आहुः) जहां तेरा उत्तम जन्म हुआ है, ऐसा कहते हैं, उसे (वरुणः) वरणीय तू (मे छन्त्सि) मुझे कह ॥ ४ ॥

[१७०७] हे (वाजिन्) यज्ञीय अश्व ! (ते इमा अवमार्जनानि) तेरे ये शरीरशुद्धिके स्थान हैं, (सनितुः) यज्ञसे सम्बन्ध रखनेवाले तेरे ये (शफानां निधाना) खुरोंके रखनेके स्थान हैं। (या गोपाः ऋतस्य अभि रक्षन्ति) जो रक्षा करनेवाले यज्ञकी रक्षा करते हैं, ऐसे (ते भद्राः रशनाः) तेरे कल्याणकारी लगाम मैंने (अत्र अपश्यं) यहां देखे हैं ॥ ५ ॥

[१७०८] हे अश्व ! (पतयन्तं पतंगं) उडते हुए पक्षीकी तरह (दिवा अवः) द्युलोकसे नीचे आनेवाले (ते आत्मानं) तेरी आत्माको (आरात्) दूरसे ही (मनसा अजानां) प्रसन्न मनसे मैंने जान लिया है। (पतत्रि) पक्षीके समान (अरेणुभिः सुगेभिः पथिभिः) पापरहित और सुखसे जानेयोग्य मार्गोंसे (जेहमानं ते शिरः अपश्यं) जानेवाले तेरे सिरको मैंने देखा है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह गतिशील सूर्य सब जगत्का नियन्ता है अर्थात् सारे संसारको यह सूर्य चलाता है, सब रसोंको ग्रहण करनेवाला होनेसे वह आदित्य है, अपनी किरणोंसे वह पृथ्वीपरके सब रसोंको ग्रहण करता है। वह अपने कर्मोंसे तीनों लोकोंमें संचार करता है। वह चन्द्रमाके साथ अच्छी तरह संयुक्त होता है, चन्द्रमामें सूर्यकी किरणें ही प्रकाशित होती हैं। द्युलोकमें इस सूर्यके तीन बन्धन हैं, वसु, आदित्य और द्यु ये तीन उसके बन्धन हैं ॥ ३ ॥

वसु, आदित्य और द्यु ये तीन बंधन द्युलोकमें इस सूर्यके हैं, पृथ्वीपर अन्न, स्थान और बीज ये तीन बंधन हैं, अन्तरिक्षमें मेघ, विद्युत् और वायु ये तीन बंधन हैं। इन तीन स्थलोंमें इस सूर्यका उत्तम जन्म है, अर्थात् यह सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

यज्ञीय पशुके शरीरशुद्धिके स्थान तथा उसके रहनेके स्थान सभी साफ और पवित्र हों। वह यज्ञकी रक्षा करता है ॥ ५ ॥

जिस तरह आकाशमें पक्षी उडते हैं, उसी तरह द्युलोकसे नीचे आती हुई सूर्यकी किरणोंको दूरसे ही देखकर मनुष्य बहुत प्रसन्न होता है। उस सूर्यकी किरणें पापरहित मार्गोंसे इस पृथ्वीपर आती हैं, अर्थात् जहां जहां सूर्यकी किरणें जातीं हैं, वहांका स्थान शुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥

१७०९ अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमान-ळादिद् ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७ ॥
१७१० अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्-ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयु-रनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥
१७११ हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन् यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥
१७१२ ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥

अर्थ— [१७०९] (गोः पदे) पृथ्वीके स्थानमें (इषः जिगीषमाणं) अन्नको खानेकी इच्छा करनेवाले (ते उत्तमं रूपं अत्र अपश्यं) तेरे उत्तम रूपको मैंने देखा है। हे अश्व! (यदा) जब (ग्रसिष्ठः ओषधीः अजीगः) भक्षण करनेवाले तूने औषधियोंको खाया, (आत् इत्) उसके बाद ही (ते मर्तः) तेरे उपासक मनुष्यने (भोगं अनु आनट्) ऐश्वर्यादि भोगोंको प्राप्त किया ॥ ७ ॥

[१७१०] हे (अर्वन्) गतिशील अश्व! (त्वा अनु रथः) तेरे पीछे रथ चलता है, (मर्यः अनु) मनुष्य तेरे पीछे चलता है, (गावः अनु) गायें तेरे पीछे चलती हैं, (कनीनां भगः अनु) कन्याओंका सौभाग्य भी तेरे पीछे चलता है, (व्रातासः अनु तव सख्यं ईयुः) व्रतशील मनुष्य भी तेरे पीछे चलते हुए तेरी मित्रताकी कामना करते हैं (देवाः अनु) देवगण भी तेरे पीछे चलते हुए (ते वीर्यं ममिरे) तेरी शक्तिका मापन करते हैं ॥ ८ ॥

[१७११] यह घोडा (हिरण्यशृंगः) सोनेके कानोंवाला है, (अस्य पादाः अयः) इसके पैर लोहेके समान दृढ हैं, (यः अर्वन्तं प्रथमः अध्यतिष्ठत्) जिस घोडेपर सर्वप्रथम चढा था, वह (मनोजवाः इन्द्रः अवरः आसीत्) मनसे भी वेगवान् इन्द्र भी इस घोडेके सामने नीचा हो गया, (देवाः इत्) देवगण भी (अस्य हविरद्यं) इसकी हवि खानेके लिए (आयन्) आते हैं ॥ ९ ॥

[१७१२] (ईर्मान्तासः) पुष्टजघनभागवाले, (सिलिकमध्यमासः) तथा पतली कमरवाले (शूरणासः दिव्यासः अत्याः अश्वाः) चलनेमें तेज, उत्तम गुणवाले, हमेशा गति करनेवाले घोडे, (यत्) जब (दिव्यं अज्म) उत्तम मार्गपर (आक्षिषुः) चलते हैं, तब (हंसाः इव) हंसोंके समान (श्रेणिशः यतन्ते) एक पंक्तिमें रहकर चलते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— पृथ्वीमें अन्न खानेकी इच्छा करनेवाले इस यज्ञीय पशुके उत्तम रूपको देखकर सभी खुश होते हैं। जब उपासक मनुष्यके द्वारा दिए गए उत्तम उत्तम वनस्पतियोंको यह घोडा खुश होकर खाता है, तब उसका उपासक उसकी कृपासे सभी ऐश्वर्यों और भोगोंको प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

यज्ञके पश्चात् जब अश्वमेधका घोडा छोडा जाता है और वह नगरके बाहर जाने लगता है, तब उसकी रक्षाके लिए रथ और सैनिक पीछे चलते हैं, उसकी और राजाकी मंगल कामना करतीं हुईं सुवासिनी कन्यायें उसके पीछे चलती हैं। शकुनको प्रकट करनेवाली गायें भी उसके पीछे चलती हैं और वेदज्ञ विद्वान्गण स्वस्त्ययन आदि मङ्गलस्तोत्रोंका पाठ करते हुए उसकी शक्ति बढाते हुए उसके पीछे पीछे चलते हैं ॥ ८ ॥

इस यज्ञीय घोडेके कान सोनेके आभूषणोंसे सजाये जाते हैं और पैरोंमें लोहेकी नाल भी लगाई जाती है, ताकि सर्वत्र संचार करनेवाले इस घोडेको चलने फिरनेमें कष्ट न हों। जब यह घोडा यज्ञ आदिसे सुसंस्कृत हो जाता है, तब इसके तेजके सामने इन्द्र भी फीका हो जाता है अर्थात् संस्कारके कारण इस घोडेका तेज बहुत बढ जाता है। तब सभी देव इस घोडेको दिए जानेवाले हविकी कामना करते हैं ॥ ९ ॥

घोडे वे अच्छे होते हैं कि जिनकी जांघे या पीछेका भाग पुष्ट और बीचका भाग पतला हो। ऐसे घोडे चलनेमें तेज और उत्तम गुणवाले होते हैं। ऐसे घोडे जब मार्गपर एक कतारमें दौडते हैं, तब वे ऐसे सुन्दर प्रतीत होते हैं, जिस प्रकार आकाशमें उडती हुई हंसोंकी श्रेणियां ॥ १० ॥

१७१३ तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन् तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रा–रण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११ ॥

१७१४ उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्या–नु पश्चात् कवयो यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥

१७१५ उप प्रागात् परमं यत् सधस्थ–मर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १३ ॥

अर्थ—[१७१३] हे (अर्वन्) अश्व ! (तव शरीरं पतयिष्णु) तेरा शरीर उडनेवाला है, (तव चित्तं वातः इव ध्रजीमान्) तेरा मन वायुके समान वेगवान् है । (तव शृंगाणि पुरुत्रा विष्ठिता) तेरे सींग अर्थात् अयाल बहुत प्रकारसे रहते हैं, और (जर्भुराणा अरण्येषु चरन्ति) मनोहर वे अयाल जंगलोंमें विचरते हैं ॥ ११ ॥

[१७१४] (वाजी अर्वा) बलवान् घोडा (देवद्रीचा मनसा दीध्यानाः) अपने दिव्य मनसे ध्यान करता हुआ (शसनं उप प्र अगात्) शत्रुओंको काटनेके लिए आगे चलता है । (नाभिः अजः पुरः नीयते) शक्तियोंका केन्द्र यह नेता–अश्व आगे ले जाया जाता है, (अस्य अनु पश्चात्) इसके पीछे पीछे (रेभाः कवयः यन्ति) स्तुति करनेवाले ज्ञानी जन जाते हैं ॥ १२ ॥

[१७१५] (यत् परमं सधस्थं) जो सर्वोत्कृष्ट स्थान है, वहां (अर्वान्) यह घोडा (मातरं पितरं अच्छा उप प्रागात्) माता पिताके पास सीधा जाता है । हे अश्व ! तू (अद्य) आज (जुष्टतमः) अत्यन्त प्रसन्न होकर (देवान् गम्याः)देवोंके पास जा (अथ) और (शास्ते दाशुषे वार्याणि) स्तुति करनेवाला तथा दानशीलके लिए वरणीय धन प्राप्त हों ॥ १३ ॥

भावार्थ— इस सूर्यका प्रकाश द्युलोकसे उडकर इस पृथ्वीतक आता है, इसकी गति वायुसे भी तेज है । इसकी किरणें अनेक रंगोंवाली हैं और वे सब अन्धकारोंमें विचरती हैं । घोडा भी बहुत ऊंची कुदान मारनेवाला है, इसका मन हमेशा प्रसन्न रहकर वेगवान् हो । उसके अयाल सुन्दर हों, ऐसे सुन्दर अयालोंवाला घोडा सर्वत्र विचरता रहे ॥ ११ ॥

उत्तम गुणोंसे युक्त बलवान् घोडा हमेशा अपने स्वामीके हितका ध्यान करता हुआ शत्रुओंके विनाशके लिए संग्राममें जाता है । ऐसा घोडा संग्राममें लडता भिडता हुआ भी सदा अपने स्वामीके हितका ही ध्यान रखता है । ऐसा लोगोंको आगे ले जानेवाला घोडा आगे आगे जाता है और उसके पीछे पीछे ज्ञानी जन स्तोत्र गाते हुए चलते हैं ॥ १२ ॥

यह घोडा इतना वेगवान् है कि यह मानों अपनी गतिसे द्युलोक पर चढ जाना चाहता है । अर्थात् ऐसा उत्तम और श्रेष्ठ घोडा हो, जिसके मनमें बहुत उत्साह हो । वह प्रसन्न होकर तेजस्वी मनुष्योंकी हरतरहसे सहायता करे और उन्हें धनादि प्रदान करे ॥ १३ ॥

[१६४]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- १-४१ विश्वे देवाः; ४२ आद्यर्धर्चस्य वाक्, द्वितीयस्य आपः; ४३ आद्यर्धर्चस्य शकधूमः, द्वितीयस्य सोमः; ४४ केशिनः [अग्निः सूर्यो वायुश्च] ४५ वाक; ४६-४७ सूर्यः; ४८ संवत्सरकालचक्रम्; ४९ सरस्वती; ५० साध्याः; ५१ सूर्यः; पर्जन्याग्नयो वा; ५२ सरस्वान्, सूर्यो वा । छन्दः- त्रिष्टुप्; १२, १५, २३, २९, ३६, ४१ जगती; ४२ प्रस्तारपंक्तिः; ५१ अनुष्टुप् ।)

१७१६ अस्य वामस्य पलितस्य होतु-स्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्या-त्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥
१७१७ सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र-मेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥
१७१८ इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥

[१६४]

अर्थ— [१७१६] (अस्य वामस्य पलितस्य होतुः) इस सुन्दर और पालन करनेवाले तथा सब रसोंका हरण करनेवाले सूर्यका (मध्यमः भ्राता) मझला भाई (अश्नः अस्ति) सर्वत्र व्याप्त है। (अस्य तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठः) इसका तीसरा भाई तेजस्वी पीठवाला या घृतसे युक्त पीठवाला है। (अत्र) यहां मैंने (सप्तपुत्रं विश्पतिं अपश्यं) सात पुत्रोंसे युक्त प्रजाके पालन करनेवालेको देखा है ॥ १ ॥

[१७१७] (एकं चक्रं रथं सप्त युंजंति) एक चक्रवाले रथमें सात घोडे जुडे हुए हैं, (सप्तनामा एकः अश्वः वहति) सात नामोंवाला एक ही घोडा इस रथको खींचता है। (त्रिनाभि चक्रं) इस रथका तीन नाभियोंवाला चक्र (अजरं अनर्वं) अजर और अशिथिल है, (यत्र इमा विश्वा भुवनानि तस्थुः) जिसमें ये सारे भुवन स्थित हैं ॥ २ ॥

[१७१८] (ये सप्त इमं रथं अधि तस्थुः) जो सात किरणें इस रथपर आश्रित होकर बैठी हैं, (सप्तचक्रं) सातचक्रवाले इस कालरूपी सूर्यको (सप्त अश्वाः वहन्ति) सात घोडे ढोते हैं। (यत्र गवां सप्तनाम निहिता) जहां वाणीके सात नाम छिपे हुए हैं, ऐसी (सप्त स्वसारः अभि सं नवन्ते) सात बहिनें इस सूर्यकी चारों ओरसे स्तुति करती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— सूर्य, वायु और अग्नि ये तीन भाई हैं। द्युलोकस्थ सूर्य ज्येष्ठ, अन्तरिक्षस्थ वायु मध्यम और पृथिवीस्थ अग्नि कनिष्ठ है। द्यु और पृथिवी इन तीनोंके पिता माता हैं। इनमें ज्येष्ठ भाई सूर्य सात रंगकी किरणोंसे युक्त होनेके कारण सात पुत्रोंवाला है। वह सब प्राणिमात्रका पालक होनेसे विश्पति है। यदि सूर्य न हो तो जगत्का नाश हो जाए। उसका मझला भाई वायु सर्वत्र व्याप्त है। वायुसे रहित कोई भी स्थान नहीं है। तथा सूर्यका तीसरा भाई अग्नि तेजस्वी पीठवाला है, उसकी पीठरूपी ज्वालायें अत्यधिक तेजस्वी हैं अथवा वह घीसे युक्त पीठवाला है, यज्ञमें अग्निकी ज्वालाओंमें घीकी आहुतियां दी जाती हैं, इसलिए उसे घृतपृष्ठ कहा गया है ॥ १ ॥

आदित्यमण्डलरूपी गतिशील रथका सूर्यरूपी एक ही चक्र है। उस रथमें सात रंगकी किरणरूपी सात घोडे जुते हुए हैं, जो उस सूर्यको सब जगह ले जाते हैं। यद्यपि किरण एक ही है, पर रंगोंके विभिन्न होनेसे वे सात किरणें अलग अलग हो जाती है, अतः किरणरूपी एक ही घोडेके रंगोंके कारण सात नाम हो जाते हैं। सूर्यका यह कालरूपी रथ तीन नाभियों-वाला है, उस कालकी शरद, वर्षा और ग्रीष्म ये तीन नाभियां हैं, और यह कालरूपी रथ हमेशा चलता रहता है, इसकी गति कभी बंद या धीमी नहीं होती। इसी कालके अन्तर्गत सारे लोक रहते हैं। इस कालके प्रभावसे मुक्त कोई भी नहीं है ॥२॥

इस सूर्यमें सातरंगकी किरणें आश्रित रहती हैं। यह सूर्य कालका निर्माता होनेसे स्वयं भी कालरूप है। ऐसे इस कालरूपी सूर्यके अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात और मुहूर्त ये सात चक्र हैं, जिन्हें सात किरणरूपी सात घोडे खींचते हैं। इस सूर्यके प्रभावसे कोई भी मुक्त नहीं है। इसका प्रभाव अमित है। इसीलिए सात नाम अर्थात् सात स्वरों और सात बहिनों अर्थात सात छन्दोंवाली वेदवाणी इसी सूर्यकी स्तुति करती है ॥ ३ ॥

१७१९ को द॑दर्श प्रथ॒मं जाय॑मान॒मस्थ॒न्वन्तं॒ यद॑न॒स्था बिभ॑र्ति ।
भूम्या॒ असु॒रसृ॑गा॒त्मा क्व॑ स्वि॒त् को वि॒द्वांस॒मुप॑ गा॒त् प्रष्टु॑मे॒तत् ॥ ४ ॥
१७२० पाक॑ः पृच्छामि॒ मन॒साऽवि॑जानन् दे॒वाना॑मे॒ना निहि॑ता प॒दानि॑ ।
व॒त्से ब॒ष्कये॒ऽधि स॒प्त तन्तू॒न् वि त॑त्निरे क॒वय॒ ओत॒वा उ॑ ॥ ५ ॥
१७२१ अचि॑कित्वाञ्चि॒कितु॑षश्चि॒दत्र॑ क॒वीन् पृ॑च्छामि वि॒द्मने॒ न वि॒द्वान् ।
वि यस्त॒स्तम्भ॒ षळि॒मा रजां॑स्य॒जस्य॑ रू॒पे किम॑पि॒ स्वि॒देक॑म् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१७१९] (यत् अनस्था अस्थन्वन्तं बिभर्ति) जो हड्डीरहित होते हुए भी हड्डियोंसे युक्त प्राणियोंको धारण करता है, (जायमानं प्रथमं कः ददर्श) उसे उत्पन्न होते हुए सर्वप्रथम किसने देखा ? (भूम्याः असुः असृक् आत्मा क्व स्वित्) भूमिके प्राण, रक्त और आत्मा ये सब कहां थे ? (एतत् प्रष्टुं) यह पूछनेके लिए (कः विद्वांसं उप गात्) कौन विद्वान्‌के पास गया ? ॥ ४ ॥

[१७२०] (पाकः) अपरिपक्व बुद्धिवाला मैं (अविजानन्) कुछ न जानता हुआ (देवानां निहिता एना पदानि) देवोंके गुप्त इन स्थानोंको (मनसा पृच्छामि) श्रद्धापूर्वक पूछता हूँ । (बष्कये वत्से) देखनेके लिए निवास करनेके लिए तथा (ओतवै) विस्तार करनेके लिए (कवयः) ज्ञानी जन (सप्त तन्तून् वितत्निरे) सात धागोंको बुनते हैं ॥ ५ ॥

[१७२१] (यः इमा षट् रजांसि तस्तम्भ) जिसने छहों लोक थाम रखे हैं, (अजस्य रूपे) उस अजन्मा प्रजापतिके रूपमें (एकं किं स्वित्) वह एक तत्त्व किस प्रकारका है, यह बात (अचिकित्वान्) न जाननेवाला मैं (चिकितुषः कवयः) जाननेवाले ज्ञानियोंसे (विद्मने) जाननेके लिए (पृच्छामि) पूछना चाहता हूँ, क्योंकि (न विद्वान्) मैं यह गुप्त विद्या नहीं जानता ॥ ६ ॥

भावार्थ— सृष्टिके पूर्वावस्थाका वर्णन है । जिस समय कुछ भी पदार्थ अस्तित्वमें नहीं था, उस समय भी एक तत्त्व ऐसा विद्यमान था, जो सब सृष्टिका निरीक्षण कर रहा था और उत्पन्न होते हुए पदार्थोंको देख रहा था, वह तत्त्व कः अर्थात् प्रजापति था । आज भी वह प्रजापति स्वयं हड्डीसे रहित अर्थात् शरीरसे रहित होते हुए भी शरीरसे युक्त प्राणियोंका पालनपोषण करता है । सृष्टिके पूर्व इस भूमिके लिए प्राणरूप वायु, रक्तरूप जल तथा आत्मारूप सूर्य अर्थात् भूमि, वायु, जल और सूर्य ये कुछ भी पदार्थ नहीं थे । वायु पृथ्वीका प्राण, जल रक्त और सूर्य आत्मा है । उस समय जब ये कुछ भी पदार्थ नहीं थे, तो इनके बारेमें कौन किससे पूछने जाता ? उस समय तो केवल प्रजापति था, जो सब कुछ देख रहा था ॥ ४ ॥

इस विश्वमें अनेक देवता कार्य करते हैं । वे अनेक लोकोंमें रहते हैं, पर उनका मूलस्थान अर्थात् जहांसे वे उत्पन्न हुए, रहस्यमय या गुप्त है । यह बात एक अपरिपक्व बुद्धिवाला श्रद्धालु जिज्ञासु जानना चाहता है । ये ज्ञानयुक्त देवगण उत्पन्न होकर मन, प्राण, पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश (पंचभूत) इन सात तत्त्वरूपी सात सूतोंसे ताना बाना डालकर यह संसाररूपी वस्त्र बुनते हैं अर्थात् इस संसारको उत्पन्न करते हैं । तब यह संसार विस्तृत होकर देखने और रहने योग्य होता है । देवगण जुलाहे हैं, जो मन, प्राण और पंचमहाभूतरूपी सात सूतोंको लेकर संसाररूपी वस्त्र बुना करते हैं ॥ ५ ॥

जिसने ये छहों लोक स्थिर किए हुए हैं, वह अजन्मा एक तत्त्व किस तरहका है, उसका स्वरूप क्या है ? यह कुछ निश्चित नहीं है, पर वह कुछ है इतना तो ज्ञात है, पर उसके निश्चित स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करना कठिन है । उसी तत्त्वके प्रभावसे ये सभी लोक स्थिर हैं । उस तत्त्वके निश्चित स्वरूपका परिज्ञान ज्ञानियोंसे पूछकर ही प्राप्त किया जा सकता है । पर उसके लिए भी जिज्ञासुके ये भाव हों कि " मैं कुछ नहीं जानता, अतः मैं ज्ञानियोंसे पूछता हूँ । " अर्थात् वह जिज्ञासु भावसे विनम्र होकर ज्ञानियोंके पास जाए । उनके ज्ञानकी परीक्षाके लिए नहीं ॥ ६ ॥

१७२२ इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदा॒ऽस्य वा॒मस्य॒ निहि॑तं प॒दं वेः ।
शी॒र्ष्णः क्षी॒रं दु॑ह्रते॒ गावो॑ अस्य व॒व्रिं वसा॑ना उद॒कं प॒दापुः ॥ ७ ॥

१७२३ मा॒ता पि॒तर॑मृ॒त आ ब॑भाज धी॒त्यग्रे॒ मन॑सा॒ सं हि ज॒ग्मे ।
सा बी॑भ॒त्सुर्गर्भ॑रसा॒ निवि॑द्धा॒ नम॑स्वन्त॒ इदु॑पवा॒कमी॑युः ॥ ८ ॥

१७२४ यु॒क्ता मा॒तासी॑द्धु॒रि दक्षि॑णाया॒ अति॑ष्ठ॒द्गर्भो॑ वृ॒जनी॑ष्व॒न्तः ।
अमी॑मेद्व॒त्सो अनु॒ गाम॑पश्यद्विश्वरू॒प्यं॑ त्रि॒षु योज॑नेषु ॥ ९ ॥

अर्थ--[१७२२] (यः अस्य वामस्य वेः) जो इस सुन्दर और गतिशील सूर्यके (पदं) स्थानको (वेद) जानता है, वह (इह ईं ब्रवीतु) यहां आकर इस रहस्यको स्पष्ट रूपसे कहे। (शीर्ष्णः अस्य) सर्वश्रेष्ठ इस सूर्यकी (गावः) किरणें (क्षीरं दुह्रते) पानी दुहती हैं और वे ही (वव्रिं वसाना) अत्यन्त तेजस्वी रूपको धारण करके (पदा उदकं आपुः) पैरोंसे पानीको पीती हैं ॥ ७ ॥

[१७२३] (माता धीती) माताने अपने कर्मसे (ऋते) जलके लिए (पितरं आ बभाजे) पिताका सेवन किया, (अग्रे) इसके बाद (मनसा सं हि जगमे) पिता प्रीतिपूर्वक मनसे मातासे संयुक्त हुआ, (सा बीभत्सुः) वह गर्भको धारण करनेकी इच्छावाली माता (गर्भरसा निविद्धा) गर्भको उत्पन्न करनेवाले रससे युक्त हुई, तब (नमस्वन्तः उप वाकं ईयुः) अन्नकी इच्छा करनेवाले स्तुति करते हुए इसके पास पहुंचे ॥ ८ ॥

[१७२४] (दक्षिणायाः धुरि) सूर्यकी धारणाशक्ति पर (माता युक्ता आसीत्) पृथ्वी माता आश्रित रहती है (त्रिषु योजनेषु) तीनों लोकोंमें (विश्वरूप्यं गां अपश्यत्) अनेक रूपोंवाली गायको जब देखा, तब (वत्सः अनु अमीमेत्) उसका बछडा चिल्लाने लगा, और तब (वृजनीषु अन्तः गर्भः अतिष्ठत्) अनकों शक्तियोंसे परिपूर्ण पृथ्वीके अन्दर गर्भ स्थापित हुआ ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह सूर्य कहांसे उत्पन्न होता है, कहां रहता है और उसका क्या स्वरूप है? यह सभी बातें हर कोई नहीं जान सकता। ज्ञानी ही जान सकते हैं। वर्षाकालमें इस सूर्यकी जो गायें अर्थात् किरणें पानी बरसाती हैं, वे ही ग्रीष्मकालमें तेज होकर अपने अग्रभागसे पृथिवीपरके पानीको पीती हैं– सोखती हैं। पानीका सोखना और बरसना ये सूर्यके कार्य सभी जानते हैं, पर उस सूर्यका मूलस्थान केवल ज्ञानी ही जानते हैं ॥ ७ ॥

ग्रीष्मकालमें संतप्त हुई पृथ्वीमाताको पानीकी आवश्यकता होती है, तब सूर्य जल बरसाता है। इस जलके माध्यमसे पृथ्वीरूपी माता और सूर्यरूपी पिताका संयोग होता है। तब पितारूपी सूर्य वर्षारूपी वीर्यको मातारूपी पृथ्वीमें स्थापित करता है। जब वह पृथ्वी वर्षाजलसे सिंचित होकर गर्भ धारण कर गर्भरूपी अन्नादिकको प्रसूत करनेमें समर्थ होती है, तब अन्नको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले कृषक आदि उस पृथ्वीके पास जाते हैं ॥ ८ ॥

सूर्य सब विश्वकी धारण करता है, अतः उस पर पृथ्वी भी आश्रित रहती है। सूर्यसे पृथ्वीको जीवन मिलता है। इस सूर्यकी किरणोंके द्वारा बादलोंका निर्माण होता है अतः सूर्यकी किरणें गायें हैं और उसके द्वारा उत्पन्न हुए हुए बादल उसके बछडे हैं, जब बादल इन किरणोंसे संयुक्त होता है, तब वह गरजता है और पानी बरसाता है। उस पानीरूपी वीर्यके कारण यह पृथ्वी गर्भवती अर्थात् अन्नादिको प्रसूत करनेमें समर्थ होती है ॥ ९ ॥

१७२५ तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेकं ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमवं ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्यं पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १० ॥

१७२६ द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्यं ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्रं सप्त शतानि विंशतिश्चं तस्थुः ॥ ११ ॥

१७२७ पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आंहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

अर्थ— [१७२५] (एकः) यह प्रजापति अकेला ही (तिस्रः मातृः) तीन माताओं और (त्रीन् पितृन्) तीन पिताओंको (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (ऊर्ध्वः तस्थौ) सबसे ऊपर विराजमान है। वे सभी (ईं न अव ग्लापयन्ति) इसको दुःखी नहीं करते । (विश्वविदं) समस्त विश्वको जाननेवाली तथापि (विश्वमिन्वां) समस्त विश्वसे परे रहनेवाली (अमुष्य वाचं) इस प्रजापतिकी वाणीके बारेमें वे सब (दिवः पृष्ठे मन्त्रयन्ते) द्युलोककी पीठपर विचार करते हैं ॥ १० ॥

[१७२६] (ऋतस्य द्वादशारं चक्रं) सूर्यका बारह अरोंवाला चक्र (द्यां परि वर्वर्ति) द्युलोकके चारों ओर घूमता है और (तत् जराय नहि) वह कभी जीर्ण नहीं होता। हे (अग्ने) अग्ने ! (सप्त शतानि विंशतिः च) सातसौ बीस (मिथुनासः पुत्राः) जोडे पुत्र (आ तस्थुः) हमेशा रहते हैं ॥ ११ ॥

[१७२७] (पंचपादं द्वादशाकृतिं पुरीषिणं पितरं) पांच पैरोंवाला, बारह आकृतियोंवाला तथा जलसे युक्त पिता (दिवः परे अर्धे आहुः) द्युलोकके दूसरे आधे भागमें रहता है, ऐसा कहते हैं (अथ) और (इमे अन्ये) ये दूसरे जन (विचक्षणं) इस बुद्धिमान्‌को (षडरे सप्तचक्रे उपरे अर्पितं आहुः) छे अरोंवाले और सात चक्रोंवाले रथ पर चढा हुआ कहते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह प्रजापति पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोकरूपी तीन माताओं और अग्नि, वायु और द्युरूपी तीन पिताओंका भरणपोषण करता हुआ उन सबसे परे रहता है अर्थात् इन सबमें रहता हुआ भी इनमें लिप्त नहीं होता, इसीलिए ये उसे दुःखी नहीं करते । शब्द आकाशका गुण होनेसे वाणी आकाशका ही रूप है, और आकाश ब्रह्मका रूप है अतः वाक् भी ब्रह्मका रूप है । यह ब्रह्म सारे विश्वको जानता है और इस विश्वसे भी परे है । सभी देव इस ब्रह्मकी शक्तिका विचार करते हैं ॥ १० ॥

इस सूर्यका बारह मासवाला चक्र इस विश्वके चारों ओर निरन्तर घूमता रहता है, इतनी गति करनेके बावजूद भी वह चक्र कभी टूटता या शिथिल नहीं होता । बारह मासोंका चक्र हमेशा चलता रहता है । अग्निरूप सूर्यके दिनरातरूपी सातसौ बीस जोडे पुत्र अर्थात् ३६० दिन और ३६० रात ये हमेशा कार्य करते रहते हैं । ३६० दिन और ३६० रात इस प्रकार ७२० जुडवें पुत्र हमेशा कार्यमें रत रहते हैं ॥ ११ ॥

अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन और रात इन पांच पैरोंवाला तथा बारह महीनेरूप बारह आकृतिवाला, तथा जलको बरसानेवाला सूर्य द्युलोकके आधे भागमें रहता है, अर्थात् पृथ्वीकी अपेक्षासे वह अन्तरिक्षसे परे रहता है । यह सूर्य संवत्सररूपी रथपर चढा हुआ है, इस संवत्सर-रथके छे ऋतुरूपी छे अरे हैं और अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन, रात तथा मुहूर्त इन सात चक्रोंवाला है । सूर्य ही अयन मास आदि काल विभागोंको बनाता हुआ अपना एक परिभ्रमण एक संवत्सर अर्थात् एक वर्षमें पूरा करता है ॥ १२ ॥

१७२८ पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥
१७२९ सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥
१७३० साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद् यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥

अर्थ— [१७२८] (परिवर्तमाने तस्मिन् पंचारे चक्रे) घूमनेवाले उस पांच अरोंवाले चक्रमें (विश्वा भुव-
नानि आ तस्थुः) सारे लोक आकर रहते हैं। (भूरिभारः तस्य अक्षः न तप्यते) बहुत बोझ होनेपर भी उस रथका
अक्ष गरम नहीं होता, (सनाभिः सनात् एव) निरन्तर रूपसे अनन्तकालसे गति करते रहनेपर भी (न शीर्यते) वह
टूटता नहीं ॥ १३ ॥

[१७२९] (सनेमि अजरं चक्रं वि वावृते) नेमिसे युक्त तथा कभी न टूटनेवाला यह जगत्‌रूपी चक्र हमेशा
घूमता रहता है। (उत्तानायां दश युक्ताः वहन्ति) अत्यन्त विस्तृत प्रकृतिके उत्पन्न होनेपर इसे दस घोडे मिलकर
खींचते हैं। (सूर्यस्य चक्षुः रजसा आवृतं एति) सूर्यका प्रकाश जलसे आच्छादित होकर चलता है। (तस्मिन्
विश्वा भुवनानि अर्पिता) उसीमें सारे लोक स्थित हैं ॥ १४ ॥

[१७३० | (साकंजानां सप्तथं एकजं आहुः) एकसाथ उत्पन्न होनेवाले सात तत्त्वोंको एकसे उत्पन्न होनेवाला
कहते हैं। इनमें (षट् इत् यमाः) छै जुडवें हैं (ऋषयः देवजाः) ये ऋषि हैं और देवोंसे उत्पन्न होनेवाले हैं।
(तेषां इष्टानि धामशः विहितानि) उनके यज्ञ उनके अपने अपने स्थानोंपर चल रहे हैं, (रूपशः विकृतानि स्थात्रे
रेजन्ते) रूपसे विभिन्न होनेपर भी एक ही तत्त्वपर आश्रित होकर गति करते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ— अयनमास आदि पांच अरोंवाले रथरूपी इस संवत्सर अर्थात् कालमें सारे लोक हैं। इस कालसे बाहर या
इससे परे कोई लोक नहीं है। इतने लोकोंका भार ढोते रहनेपर भी इस रथका अक्ष न गरम होता है और न ही टूटता है।
यह काल अनन्तकालसे चलता आ रहा है, पर इस कालकी समाप्ति कभी होने नहीं आती ॥ १३ ॥

यह जगत्‌रूपी चक्र हमेशा चलता रहता है, इसकी नेमि निरन्तर चलते रहनेपर भी नहीं टूटती। प्रजापति इस
जगत्‌का नेमि है। वही इस जगत्‌का केन्द्र है, उसीपर आश्रित होकर यह जगत् गति करता है। वह प्रजापति अविनाशी
है। जब प्रकृतिमें गति उत्पन्न होती है, तब प्रकृतिको बुद्धि, मन, चित्त, अहंकार, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और
आत्मा ये दस घोडे ले जाते हैं। अर्थात् जब प्रकृतिमें क्रिया उत्पन्न होती है, तब उससे ये नौ तत्त्व अस्तित्वमें आते हैं।
आत्मा अविनाशी होनेसे पूर्वसे विद्यमान है। इन दस तत्त्वोंसे सारा जगत् बनता है। जब जगत् उत्पन्न हो जाता है, तब
सूर्यका प्रकाश द्युलोकमें घूमता है, और उसी सूर्यके आधारपर सारे लोक स्थित हैं ॥ १४ ॥

विश्वमें भूः, भुवः, स्वः, महः जनः, तपः, सत्यं ये सात लोक उस एक ही प्रजापतिसे उत्पन्न होते हैं। इनमें भूः-
भुवः, स्वः–महः, और जनः–तपः ये जुडवें हैं और सत्यं यह अकेला है, ये सभी ऋषि हैं और देवोंसे उत्पन्न होनेवाले हैं।
इनका अपनी अपनी जगह यज्ञ चल रहा है। यद्यपि इनके रूप अलग अलग हैं, पर ये सब एक प्रजापतिके आधारसे रहते
हैं। इसी प्रकार शरीरमें आंख, नाक, कान और रसना ये इन्द्रियां हैं। इनमें दो आंखें, दो नाक और दो कान ये जुडवें
हैं और रसना यह अकेली है। ये सात ऋषि हैं (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) और देवोंसे पैदा हुए हैं सूर्यदेवसे
आंख, दिशाओंसे कान, अश्विनौ देवोंसे नाक, और जलसे रसना बनी है। ये सभी इन्द्रियें अपनी अपनी जगह
मानव जीवनरूपी यज्ञ रचा रही हैं। यद्यपि ये रूपोंमें पृथक् पृथक् हैं, पर सभी एक आत्माके आश्रयसे इस शरीरमें रह
रहीं हैं ॥ १५ ॥

१७३१ स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥ १६ ॥
१७३२ अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः ॥ १७ ॥
१७३३ अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥

अर्थ—[१७३१] (स्त्रियः सतीः तां पुंसः) स्त्रियां होती हुई भी वे पुरुष हैं, ऐसा (मे आहुः) मुझसे कहते हैं। इस बातको (अक्षण्वान् पश्यत्) आंखोंवाला ही देख सकता है, (अन्धः न विचेतत्) अन्धा इसे नहीं जान सकता। (यः कविः पुत्रः) जो ज्ञानी पुत्र है, (सः ई आ चिकेत) वही इसे जान सकता है, (यः ताः विजानात्) जो इन्हें जानता है, (सः पितुः पिता असत्) वह पिताका भी पिता हो जाता है ॥ १६ ॥

[१७३२] (परेण अवः) द्युलोककी अपेक्षासे नीचे तथा (एना अवरेण परः) इस पृथ्वीकी अपेक्षासे ऊपरके स्थानमें (पदा) अपने पैरसे (वत्सं बिभ्रती) बछडेको धारण करती हुई (गौः उत् अस्थात्) गाय ऊपर स्थित है। (कद्रीची सा) अनजान लक्ष्यकी तरफ गति करती हुई वह गाय (कं अर्धं स्वित् परा अगात्) किस अर्ध भागके परे चली जाती है ? और (क) किस स्थानपर (सूते) अपने बछडेको उत्पन्न करती है ? क्योंकि (न हि यूथे अन्तः) वह इस अपने झुण्डमें तो वत्सको पैदा नहीं करती ॥ १७ ॥

[१७३३] (परेण अवः) द्युलोककी अपेक्षा नीची (अस्य पितरं यः अनुवेद) इस पृथ्वीके पालक अग्निको जो जानता हो, तथा (एना अवरेण परः) इस पृथ्वीकी अपेक्षा ऊंचे द्युलोकके पालक सूर्यको जानता हो, तथा (देवं मनः कुतः अधि प्रजातं) यह दिव्य मन कहांसे उत्पन्न हुआ, यह जो जानता हो (कवीयमानः कः) ऐसा ज्ञानी कौन है ? वह (इह प्रवोचत्) यहां आकर हमें बतावे ॥ १८ ॥

भावार्थ— हर स्त्रीमें आधा पुरुषत्व और हर पुरुषमें आधा स्त्रीत्व होता है। यह आधुनिक शरीरशास्त्रका भी मत है। इसीके आधारपर अर्धनारीश्वरकी कल्पना की है। इसलिए स्त्रियोंमें स्त्रीत्व रहते हुए भी उनमें पुरुषत्व भी रहता है। स्त्री और पुरुषमें कुछ इन्द्रियोंको छोडकर बाकीकी इन्द्रियें समान हैं, इसलिए भी स्त्री पुरुष ही है। दूसरे पक्षमें सूर्यकी रश्मियां यद्यपि स्त्रीलिंगी होनेसे स्त्री हैं, तथापि वे वृष्टिजलरूपी वीर्यका सेचन करके पृथ्वीको गर्भवती करनेके कारण पुरुष हैं। इस रहस्यको केवल वही जान सकता है, जो ज्ञानरूपी आंखोंसे युक्त है, जो स्थूल दृष्टिवाला है, जो इस रहस्यकी गहराईमें नहीं उतर सकता, वह इस रहस्यको नहीं जान सकता। जो इस रहस्यको जान लेता है, वह पालन करनेवाले पिताके समान आदरणीय हो जाता है ॥ १६ ॥

विराज् अथवा प्रकृति यह गाय है जो द्युलोक और पृथ्वीलोकमें समान रूपसे रहती है। पैरोंसे चलनेके कारण पैर गतिके प्रतीक हैं, वह प्रकृति पदा पैरसे अर्थात् गति करती हुई सूर्यरूपी बछडेको पैदा करती है। वह प्रकृति निरन्तर गति कर रही है। पर उसकी यह गति किस कारण है, उसकी गतिका निश्चित लक्ष्य क्या है, अथवा वह किस लक्ष्यकी तरफ इतनी तीव्र गतिसे भागी जा रही है, यह ज्ञात नहीं है, उसका लक्ष्य अज्ञात है। वह सूर्यको किस जगह पैदा करती है, यह भी कोई नहीं जानता। पर इतना तो निश्चित है कि वह उसे पृथ्वीपर तो पैदा नहीं करती है, ॥ १७ ॥

इस पृथ्वीके पालक अग्निके तथा द्युलोकके पालक सूर्यके रहस्यको जो जानता हो, तथा दिव्य मनको जो जानता हो वह आकर हमें बतावे। तात्पर्य यह कि अग्नि और सूर्य इतने रहस्यमय हैं कि उन्हें पूर्णतया कोई नहीं जान सकता। इसी तरह चेतन, अचेतन, अर्धचेतन स्तरोंसे युक्त मन तो इतना रहस्यमय है कि उसके अन्तका पाना असंभव है। मन दिव्य है अर्थात् उत्तम भावोंसे उत्पन्न हुआ है। वह देव है ॥ १८ ॥

×

१७३४ ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहु— र्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥
१७३५ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्व—त्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥
१७३६ यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भाग—मनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २१ ॥

अर्थ— [१७३४] (ये अर्वाचः) जो पास है (तां पराचः आहुः) उसे लोग दूर कहते हैं, (ये पराञ्चः) जो दूर हैं (तां अर्वाचः आहुः) उसे पास कहते हैं, (सोम इन्द्रः च) हे सोम ! तूने और इन्द्रने (या चक्रथुः) जो मण्डल बनाये हैं (तानि) वे मण्डल (धुरा युक्ताः न) रथकी धुरामें जोडे गए घोडोंकी तरह (रजसः वहन्ति) लोकोंको खींचते हैं ॥ १९ ॥

[१७३५] (सयुजा सखाया द्वा सुपर्णा) हमेशा साथ रहनेवाले तथा अत्यन्त मित्र दो उत्तम पंखवाले पक्षी (समानं वृक्षं परि ष्वजाते) एक ही वृक्षका आलिंगन किए हुए हैं (तयोः अन्यः) उनमें एक (स्वादु पिप्पलं अत्ति) उस पेडके मीठे मीठे फलोंको खाता है, (अन्यः) और दूसरा (अनश्नन्) उन फलोंको न खाता हुआ (अभि चाकशीति) केवल प्रकाशित होता है ॥ २० ॥

[१७३६] (यत्र) जिस वृक्षपर बैठकर (सुपर्णाः) उत्तम पंखवाले पक्षीगण (अमृतस्य भागं) अमृतके भाग-की (विदथा अनिमेषं अभिस्वरन्ति) अपनी वाणियोंसे निरन्तर स्तुति करते हैं । (अमृतस्य भुवनस्य इनः गोपाः) सम्पूर्ण लोकोंका स्वामी और रक्षक (सः धीरः) वह ज्ञानवान् (अत्र पाकं मा विवेश) मुझ अज्ञानीके अन्दर प्रविष्ट हो गया ॥ २१ ॥

भावार्थ— समय और सृष्टिका चक्र तेजीसे घूम रहा है, इस कारण जिसे हम पहले क्षणमें पासकी कहते हैं, दूसरे क्षणमें वही दूर हो जाती है और प्रथम क्षणमें जिसे हम दूरकी कहते हैं, अगले क्षणमें वही पास आ जाती है, इसप्रकार दूरकी चीज पास और पासकी दूर होती रहती है । जो जगत् इस समय है, आगे आनेवाले कालमें वह इसी तरह बदल जाता है । इस जगत्के अन्तर्गत सोम और इन्द्ररूपी जोडेने जो मण्डल बनाये हैं, वे लोकोंको धारण करते हैं । सोम मादाका प्रतीक है और इन्द्र नरका । ये नरमादा अपने चारों ओर जिस सन्तानरूपी मण्डलका निर्माण करते हैं, उसीके कारण ये लोक चलते हैं । यदि नरमादा न हों या सन्तानोत्पत्ति न हो, तो सभी लोकोंका उच्छेद हो जाए ॥ १९ ॥

जीवात्मा और परमात्मा ये दो सुपर्ण हैं अर्थात् उत्तम शक्तिसे युक्त हैं । पर्ण-पंख शक्तिके प्रतीक हैं । ये दोनों हमेशा साथ साथ रहते हैं और परस्पर गाढ मित्र हैं । परमात्मा जीवात्माके पास सदा रहता है और हरदम मित्रवत् उसकी सहायता करता है । ये दोनों जीवात्मा एवं परमात्मारूपी सुपर्ण प्रकृतिरूपी वृक्षपर बैठे हुए हैं । इन दोनोंमें जीवात्मा सुपर्ण इस प्रकृतिरूपी वृक्षके फलोंको खाता है अर्थात् संसारमें आसक्त होकर सुखदुःखरूपी फल भोगता है । जब कि परमात्मा इस संसारसे निर्लिप्त रहकर केवल प्रकाशित होता है ॥ २० ॥

इस प्रकृतिरूपी वृक्षपर बैठे हुए अर्थात् संसारमें लिप्त मरणधर्मा जीवात्मायें उस अमृतरूप परमात्माकी अपने शब्दोंमें स्तुति करती हैं । आत्मायें इस शरीरके साथ संयुक्त होकर जीवात्मा बनती हैं और शरीरसे वियुक्त होकर फिर आत्मा बन जाती हैं, इसीलिए जीवात्माको मरणशील कहा है, आत्मा अमर है । ऐसी जीवात्मायें इस प्रकृतिरूपी वृक्षके फलोंको खाती हुई परमात्माकी स्तुति करती हैं । तब इन भुवनोंका स्वामी और रक्षक परमात्मा अज्ञानसे युक्त इस जीवात्माके अन्दर ज्ञान भरता है ॥ २१ ॥

१७३७ यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥

१७३८ यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ २३ ॥

१७३९ गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाऽक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४ ॥

अर्थ—[१७३७] (यस्मिन् वृक्षे) जिस वृक्षपर (मध्वदः सुपर्णाः) मधुको पीनेवाले सुपर्ण पक्षी (निविशन्ते) बसेरा करते हैं और (सुवते) प्रजा उत्पन्न करते हैं (तस्य विश्वे अग्रे अधि) उस वृक्षके सबसे ऊपर (स्वादु पिप्पलं) मीठे मीठे फल हैं, पर (यः पितरं न वेद) जो पिताको नहीं जानता, वह (तत् न उन्नशत्) उन मीठे फलोंको नहीं पा सकता ॥ २२ ॥

[१७३८] (यत् गायत्रे अधि गायत्रं आहितं) गायत्रीके ऊपर गायत्री स्थित है, (त्रैष्टुभात् वा त्रैष्टुभं निरतक्षतं) त्रैष्टुभसे त्रैष्टुभकी रचना हुई, (यत् वा जगति जगत् पदं आहितं) जगतीपर जगत्पद रखा गया है (यः इत् तत् विदुः अमृतत्त्वं आनशुः) जो इस बातको जानते हैं, वे अमृतको प्राप्त करते हैं ॥ २३ ॥

[१७३९] (गायत्रेण अर्कं प्रति मिमीते) गायत्रसे अर्कको नापा जाता है, (अर्केण साम) अर्कसे सामको नापा जाता है, (त्रैष्टुभेन वाकं) त्रिष्टुभ्‌से वाक्‌को नापा जाता है (वाकेन वाकं) वाणीसे वाणीको नापा जाता है। (द्विपदा चतुष्पदा अक्षरेण) दो पाद और चार पादोंवाले अक्षरसे (सप्त वाणीः मिमते) सात प्रकारकी वाणी नापी जाती है ॥ २४ ॥

१ प्राणो वा अर्कः— (शत. १०।४।१।२३)
२ ऋक् एव अर्कः—

भावार्थ— इस संसाररूपी वृक्षपर मधु अर्थात् प्राण रसको पीनेवाले पक्षी– जीवात्मायें रहती हैं। जब आत्मायें शरीरके साथ संयुक्त होती हैं, तब वे जीवात्मायें बनकर प्राणरूपी मधुरसका पान करती हैं, (प्राणो वै मधुः प्राण ही मधु है– शतपथ १४।१।३।३०)। इस संसार वृक्षमें सबसे ऊपर मीठे मीठे फल लगे हुए हैं, जो इस संसारमें सर्वश्रेष्ठ बनता है, वही उन मीठे मीठे फलोंको खा सकता है। पर जो उस सर्वपालक परमात्माको नहीं जनता, वह उन फलोंको नहीं पा सकता। परमात्माको जाने बिना श्रेष्ठ बनना और श्रेष्ठ बने बिना उन मीठे फलोंको पा सकना असंभव है ॥ २२ ॥

गायत्री भूमि है, उसपर अग्निकी स्थापना की जाती है। (गायत्रोऽग्निः तै. सं. २.२.५.५)। त्रैष्टुभ अन्तरिक्ष है, उसपर वायुकी स्थापना की जाती है। जगत् द्यु है उसपर आदित्यकी स्थापना की जाती। अग्नि भूमिका प्राण है, वायु अन्तरिक्षका प्राण है और सूर्य द्युलोकका प्राण है। जो इस विद्याको जानते हैं, वे ही अमृतको प्राप्त कर सकते हैं ॥ २३ ॥

गायत्र अर्थात् उस परमेष्ठी प्राणसे वैय्यक्तिक प्राणकी रचना हुई। ऋचासे सामकी रचना हुई, (या ऋक् तत् साम), पादबद्धव्यवस्थावाले मंत्रोंसे गानकी रचना हुई। स्तोत्रसे वाणीकी रचना हुई। परमेष्ठी वाणीसे साधारण वाणीकी रचना हुई और दो पाद या चार पादवाले अक्षरोंसे सात प्रकारके छन्दोंका निर्माण हुआ। उस परमेष्ठी प्रजापतिसे ही प्राणिमात्रके प्राण और वाणीकी रचना हुई है ॥ २४ ॥

१७४० जग॑ता॒ सिन्धुं॑ दि॒व्य॑स्तभायद् रथंत॒रे सूर्यं॒ पर्य॑पश्यत् ।
गा॒य॒त्रस्य॑ स॒मिध॑स्ति॒स्र आ॑हु॒स्ततो॑ म॒ह्ना प्र रि॑रिचे महि॒त्वा ॥ २५ ॥

१७४१ उप॑ ह्वये सु॒दुघां॑ धे॒नुमे॒तां सु॒हस्तो॑ गो॒धुगु॒त दो॑हदेनाम् ।
श्रेष्ठं॑ स॒वं स॑वि॒ता सा॑विषन्नो॒ ऽभीद्धो॑ घ॒र्मस्तदु॒ षु प्र वो॑चम् ॥ २६ ॥

१७४२ हि॒ङ्कृ॒ण्व॒ती व॑सु॒पत्नी॒ वसू॑नां व॒त्समि॒च्छन्ती॒ मन॑सा॒भ्यागा॑त् ।
दु॒हाम॒श्विभ्यां॒ पयो॑ अ॒घ्न्येयं सा व॑र्धतां मह॒ते सौभ॑गाय ॥ २७ ॥

अर्थ— [१७४०] (जगता) अत्यन्त गति करनेवाले सूर्यके द्वारा प्रजापतिने (दिवि सिन्धुं अस्तभायत्) द्युलोकमें सिन्धुको स्थिर किया। (रथन्तरे सूर्यं परि अपश्यत्) पृथ्वीसे संयुक्त होते हुए सूर्यको देखा गया! (गायत्रस्य समिधः तिस्रः आहुः) गायत्रीकी तीन समिधायें हैं, ऐसा कहते हैं। (ततः मन्हा महित्वा प्ररिरिचे) तब उनके बल और महत्त्वसे वह सुशोभित हुआ ॥ २५ ॥

१ प्राणो वै सिन्धुश्छन्दसः (शत. ६।५।२।४)

२ इयं पृथिवी रथन्तरं (ऐत. ब्रा. ८।१)

[१७४१] (एतां सुदुघां धेनुं उपह्वये) इस उत्तम रीतिसे दूध देनेवाली गायको मैं बुलाता हूँ, (उत) और (एनां सुहस्तः गोधुक् दोहत्) इस गायको उत्तम हाथोंसे युक्त दूध दुहनेवाला दुहे। (सविता) सविता (नः श्रेष्ठं सवं साविषत्) हमें श्रेष्ठ दूध प्रदान करे, (घर्मः अभीद्धः) भट्टी गरम है, (तत् उ सु प्रवोचं) इस बातको मैं कहता हूँ ॥ २६ ॥

[१७४२] (वसूनां वसुपत्नी) अष्ट वसुओं और ऐश्वर्योंको धारण एवं उनका पोषण करनेवाली धेनु (हिंकृण्वती) रंभाती हुई तथा (मनसा वत्सं इच्छन्ती) मनसे अपने बछडेको प्यार करती हुई (अभि आगात्) आई है। (इयं अघ्न्या) यह न मारे जाने योग्य गाय (अश्विभ्यां पयः दुहां) अश्विदेवोंके लिए दूध दुहे। तथा (महते सौभगाय सा वर्धतां) महान् सौभाग्यके लिए वह बढे ॥ २७ ॥

१ इयं अघ्न्या महते सौभगाय वर्धतां— यह न मारे जाने योग्य गाय महान् सौभाग्यके लिए बढे।

भावार्थ— अत्यन्त गति करनेवाले सूर्यके अन्दर प्राणशक्ति विद्यमान है, जो सारे द्युलोकमें फैली हुई है। जब वृष्टिके माध्यमसे सूर्य पृथ्वीसे संयुक्त होता है, तब सूर्य और द्युलोकके अन्दर निहित प्राण उस वृष्टिजलसे इस पृथ्वी पर आती है। ऐसे सूर्यके द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी ये तीन पाद होते हैं। उस परमेष्ठी प्रजापतिके तेजसे ही ये सूर्यादि तत्त्व शक्तिशाली होते हैं ॥ २५ ॥

यह कामधेनु गाय महा प्रकृति है, इसका वत्स प्राणरूप सूर्य है और यह संसार उस गायरूपी प्रकृतिका दूध है। इस दूधको वही दुह सकता है जो ज्ञानी है, अर्थात् ज्ञानी ही इस प्रकृति और संसारकी वास्तविकताको जान सकता है। सविता यह मन और प्राण है, (मनो वै सविता, शत. ६।३।१।१३; प्राणो वै सविता), यह प्राण शरीरमें जीवन रसका संचार करता है यह शरीर एक भट्टी है, जो सदा तपती रहती है और इसमें प्राणके द्वारा उत्पन्न जीवन रस पकता रहता है ॥ २६ ॥

गाय मन, प्राण, अपान और पंचभूत इन आठ वसुओंका पालन करती है अर्थात् यह गाय सारे संसारका पालन करती है। वह प्यारकी मूर्ति है। यह मारे जाने योग्य नहीं है, अतः इसकी हिंसा नहीं करनी चाहिए। इसके विपरीत इसे हरतरहसे बढाना चाहिए। गायोंको समृद्ध करना ऐश्वर्योंको बढाना है, क्योंकि गायोंमें हरतरहके ऐश्वर्य बसते हैं ॥ २७ ॥

१७४३ गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८ ॥
१७४४ अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद् भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९ ॥
१७४५ अनच्छये तुरगातु जीव—मेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभि—रमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥

अर्थ – [१७४३] (मिषन्तं वत्सं अनु गौः अमिमेत्) आंखें बंद किए हुए बछडेके पास जाकर गाय शब्द करती है, और (मूर्धानं मातवै हिङ् अकृणोत्) उस बछडेके सिरको चाटनेके लिए रंभाती है, (अभि वावशाना) शब्द करती हुई वह (सृक्वाणं घर्म अभि) बछडेके मुखको अपने गरम गरम थनोंके पास ले जाती है, (मायुं मिमाति) रंभाती जाती है और (पयोभिः पवते) दूधसे उस बछडेको तृप्त करती जाती है ॥ २८ ॥

[१७४४] (येन गौः अभीवृता) जिस मेघने किरणोंको चारों ओरसे घेर लिया है, (अयं सः शिंक्ते) वह यह मेघ शब्द करता है। (ध्वसनौ अधिश्रिता) उन मेघोंमें आश्रित यह विद्युत् (मायुं मिमाति) गर्जना करती है। (सा चित्तिभिः मर्त्यं नि चकार) वह अपने कर्मोंसे मनुष्योंको उत्पन्न करती है, और तदनन्तर (विद्युत् भवन्ती प्रति वव्रिं औहत) चमकीली होकर अपना सुन्दर रूप प्रकाशित करती है ॥ २९ ॥

[१७४५] (तुरगातु अनत् जीवं) शीघ्रगतिसे गति करनेवाला तथा श्वसन् करनेवाला यह जीव, (एजत्) निकल जाता है, और यह शरीर (पस्त्यानां मध्ये ध्रुवं शये) गृहमें निश्चल पडा रहता है। (मृतस्य) मरे हुएका (मर्त्येन सयोनिः) मर्त्यके साथ रहनेवाला (अमर्त्यः जीवः) अविनाशी आत्मा (स्वधाभिः चरति) अपनी धारण-शक्तियोंसे युक्त होकर घूमता रहता है ॥ ३० ॥

भावार्थ— गाय दूरसे ही बछडेको देखकर रंभाने लग जाती है और बछडा भी प्यारसे आंखें बंद करके बैठा रहता है, तब गाय बछडेके पास जाकर उसके सिरको प्यारसे चाटती और उसके मुंहके पास अपने थनोंको ले जाती है ताकि वह दूध पीले। जब बछडा दूध पीने लगता है, तब वह गाय अपने बछडेको दूध भी पिलाती जाती है; चाटती भी जाती है और प्यारसे शब्द भी करती है। प्यारका स्वाभाविक वर्णन है ॥ २८ ॥

बादल शब्द करते हुए आते हैं और सूर्य किरणोंको ढक लेते हैं, तब उन बादलोंमें स्थित बिजली गरजती है, जब वह पानी बरसाती है, तब मनुष्य उत्पन्न होते हैं (जलसे अन्न, अन्नसे वीर्य और वीर्यसे पुरुष उत्पन्न होते हैं), जब पानी बरसने लगता है, तब उसका रूप और प्रकाशमान हो जाता है ॥ २९ ॥

यह आत्मा सतत घूमती रहती है। एक शरीरको छोडकर दूसरेमें जाना इसका स्वभाव है। यह प्राणका आधार आत्मा जब शरीरसे निकल जाती है, तब यह शरीर गृहमें ही खम्बेके समान निश्चल पडा रहता है। शरीरके साथ यह आत्मा रहती है, पर शरीर मरणशील है और आत्मा अविनाशी है। शरीर इस आत्माके आश्रित रहती है, पर यह आत्मा किसी दूसरे पर आश्रित नहीं रहती, अपितु अपनी ही शक्तियोंसे युक्त होकर सर्वत्र घूमती रहती है ॥ ३० ॥

१७४६ अपश्यं गोपामनिपद्यमान—मा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥

१७४७ य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्त—र्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३२ ॥

१७४८ द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्त—रत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥

अर्थ—[१७४६] (अनिपद्यमानं) कभी भी न गिरनेवाले (आ च परा च पथिभिः चरन्तं) पासके और दूरके मार्गोंसे चलनेवाले (गोपां) तथा रक्षण करनेवाले इस सूर्यको (अपश्यं) मैंने देखा है। (सः सध्रीचीः) वह एक साथ चलनेवाले तथा (सः विषूचीः वसानः) वह चारों और फैलनेवाले तेजको धारण करता हुआ (भुवनेषु अन्तः आ वरीवर्ति) संसारमें विराजमान होता है ॥ ३१ ॥

[१७४७] (यः ईं चकार) जिसने यह सृष्टि बनाई (सः अस्य न वेद) वह भी इसे नहीं जानता। (यः ईं ददर्श) जिसने इसे देखा, (तस्मात् हिरुक् इत् नु) उससे यह छिप गया। (स मातुः योना अन्तः परिवीतः) वह माताके गर्भके अन्दर चारों ओरसे वेष्टित है, (बहु प्रजाः निर्ऋतिं आ विवेश) वह बहुत प्रजावाला होकर मृत्युमें प्रविष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥

[१७४८] (द्यौः मे जनिता) द्यु मुझे उत्पन्न करनेवाला तथा (पिता) पालक भी है, (बन्धुः) वह मेरा भाई भी है और (अत्र नाभिः) यहां मेरा केन्द्र भी है। (इयं मही पृथिवी मे माता) यह विशाल पृथ्वी मेरी माता है। (उत्तानयोः चम्वोः योनिः अन्तः) ऊपरकी ओर उठे हुए दो पात्रोंके स्थानमें रहता हुआ (पिता दुहितुः गर्भं आधात्) पिता दुहितामें गर्भ स्थापित करता है ॥ ३३ ॥

दुहिता— दुः हिता, दूरे हिता, दोग्धेर्वा (निरु०)

भावार्थ— यह सूर्य निरन्तर चलता तो रहता है, पर कभी गिरता नहीं, यह पासके और दूरके मार्गोंसे सदा चलता रहता है और सारे संसारकी रक्षा करता है। वह चारों ओर फैलनेवाले तेजसे युक्त रहता है और सारे भुवनोंमें संचार करता है ॥ ३१ ॥

यह विश्व इतना विस्तृत और अनन्त है, कि जिसने यह विश्व बनाया है, वह भी इसे पूरी तरह जानता है, या नहीं, कौन कह सकता है। जब उसके कर्ताके बारेमें भी यह संशय है, तो इस अल्पज्ञ आत्माके बारेमें तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। क्योंकि जब यह आत्मा इस विश्वको देखनेकी कोशिश करती है, तब यह विश्व उससे छिप जाता है, अर्थात् यह अल्पज्ञ आत्मा इस विश्वके अनन्तत्वकी कल्पना भी नहीं कर सकती। यह आत्मा माताके गर्भके अन्दर आकर प्रसूत होती है, फिर वह भी अनेक प्रजाओंको उत्पन्न करके अन्तमें मृत्युके मुखमें चली जाती है। यद्यपि आत्मा अविनाशी है, पर शरीरके संयोगके कारण शरीरके धर्म उसपर आरोपित होते हैं ॥ ३२ ॥

द्युलोक सूर्यका उपलक्षण है। सूर्य सब संसारको पैदा करता है, उसका पालन करता है, और उसकी सहायता करता है। सारे संसारका केन्द्र यह सूर्य है। पृथ्वीलोक और द्युलोक ये दो पात्र हैं, जो एक दूसरेकी तरफ मुंह किए हुए हैं। इन दोनोंके बीचमें स्थित सूर्य अपनेसे दूर स्थित पृथ्वीमें वृष्टिजल द्वारा गर्भ स्थापित करता है अर्थात् वह पृथ्वीको अन्नादि प्रसूत करनेके कार्यमें समर्थ बनाता है ॥ ३३ ॥

१७४९ पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥
१७५० इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥
१७५१ सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥

अर्थ— [१७४९] (पृथिव्याः परं अन्तं त्वा पृच्छामि) इस पृथ्वीका आखिरी अन्त तुमसे पूछता हूँ। (यत्र भुवनस्य नाभिः पृच्छामि) सब भुवनके केन्द्रके विषयमें मैं पूछता हूँ। (वृष्णः अश्वस्य रेतः त्वा पृच्छामि) बलवान् अश्वके वीर्यके विषयमें मैं पूछता हूँ। (वाचः परमं व्योम पृच्छामि) वाणीका परम आकाश अर्थात् उत्पत्ति स्थान मैं पूछता हूँ ॥ ३४ ॥

[१७५०] (इयं वेदिः पृथिव्याः परः अन्तः) यह वेदि पृथ्वीका अन्तिम छोर है (अयं यज्ञः भुवनस्य नाभिः) यह यज्ञ संसारका केन्द्र है। (अयं सोमः वृष्णः अश्वस्य रेतः) यह सोम बलवान्का वीर्य है और (अयं ब्रह्मा वाचः परमं व्योम) यह ब्रह्मा वाणीका परम उत्पत्ति स्थान है ॥ ३५ ॥

[१७५१] (भुवनस्य रेतः) संसारका सार (सप्त अर्धगर्भाः) अर्ध भागके सात पुत्रोंमें है, जो (विष्णोः प्रदिशा विधर्मणि तिष्ठन्ति) व्यापक देवकी आज्ञासे अपने अपने धर्ममें स्थित हैं। (ते विपश्चितः ते परिभुवः) वे बुद्धिमान् और सर्वव्यापक होकर (धीतिभिः मनसा विश्वतः परिभवन्ति) अपनी बुद्धि और मनसे सब ओरसे घेरते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ— इस पृथ्वीका अन्तिम भाग कौनसा है ? सम्पूर्ण जगत्का केन्द्र कौनसा है ? बलवान् अश्वका वीर्य कौनसा है ? और वाणीका परम उत्पत्ति स्थान कौनसा है ? ये चार प्रश्न इस मंत्रमें पूछे गए हैं, जिनका उत्तर अगले मंत्रमें दिया गया है ॥ ३४ ॥

पृथ्वी माताका प्रतीक है। यह वेदि अर्थात् प्रसवस्थान ही मातृत्वकी पराकाष्ठा है। मातृत्वसे बढकर और कोई तत्त्व नहीं। माता सबसे बडी होती है। इसलिए मातृत्व अन्तिम पराकाष्ठा है। स्त्रीपुरुषका संयोगरूपी यज्ञ ही इस संसारका केन्द्र है। यदि स्त्रीपुरुष संयोगरूपी यज्ञ न हो तो संसारका उच्छेद हो जाए। सोम अर्थात् सन्तान ही बलवान् और शक्तिशाली पुरुषका रेत है। जबतक सन्तान न हो, तबतक वीर्यकी सार्थकता नहीं होती। किसी पुरुषके वीर्यके बलवान् होनेका प्रमाण उसकी सन्तान है। निर्बल वीर्यके सन्तान नहीं होती। यह आत्मा ही वाणीका उत्पत्ति स्थान है। आत्मा कुछ अभिप्राय व्यक्त करनेकी इच्छासे इन्द्रियोंके साथ संयुक्त होकर वाणी उत्पन्न करती है ॥ ३५ ॥

परमेष्ठीके दो भाग हैं, एक परार्ध और दूसरा अवरार्ध। परार्ध प्रजापति है और अवरार्ध प्रकृति। इस अवरार्ध प्रकृतिके मन, प्राण और पंचभूतरूपी सात पुत्र हैं, जिनसे यह सारा विश्व बनता है। ये सभी तत्त्व व्यापक प्रजापतिकी आज्ञासे अपना अपना काम करते हैं। तथा सारे विश्वको घेरे रहते हैं। विश्वमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो मन, प्राण और पंचभूतोंसे रहित हो ॥ ३६ ॥

१७५२ न वि जा॑नामि यदि॑वेदमस्मि॒ निण्यः संन॑द्धो मन॑सा चरामि ।
य॒दा माग॑न् प्रथम॒जा ऋतस्या॒दिद् वा॒चो अ॑श्नुवे भा॒गम॒स्याः ॥ ३७ ॥

१७५३ अपा॒ङ् प्राङे॑ति स्व॒धया॑ गृभी॒तो ऽम॑र्त्यो॒ मर्त्ये॑ना॒ सयो॑निः ।
ता शश्व॑न्ता विषू॒ची॑ना॑ वि॒यन्ता॒ न्य१॒न्यं चि॒क्युर्न नि चि॑क्युर॒न्यम् ॥ ३८ ॥

१७५४ ऋ॒चो अ॒क्षरे॑ पर॒मे व्यो॑मन् यस्मि॑न् दे॒वा अधि॒ विश्वे॑ निषे॒दुः ।
यस्तन्न वेद॒ किमृ॒चा क॑रिष्यति॒ य इत्त॒द् वि॒दुस्त इ॒मे समा॑सते ॥ ३९ ॥

१७५५ सू॒यव॒साद् भग॑वती॒ हि भू॒या अथो॑ व॒यं भग॑वन्तः स्याम ।
अ॒द्धि तृण॑मघ्न्ये विश्व॒दानीं॒ पिब॑ शु॒द्धमु॑दक॒मा॒चर॑न्ती ॥ ४० ॥

अर्थ— [१७५२] (न विजानामि यत् इव इदं अस्मि) मैं नहीं जानता कि मैं किसके सदृश हूँ। (निण्यः सन्नद्धः मनसा चरामि) अन्दर बंधा हुआ मैं मनसे चलता हूँ। (यदा ऋतस्य प्रथमजाः मा अगन्) जब सत्यका प्रथम प्रवर्तक मेरे समीप आया, (आत् इत् अस्याः वाचः भागं अश्नुवे) उसी समय इसके वाणीके भागको मैंने प्राप्त किया ॥ ३७ ॥

[१७५३] (अमर्त्यः मर्त्येन सयोनिः) अमर आत्मा मरण धर्मवाले शरीरके साथ एक उत्पत्तिस्थानमें प्राप्त होकर (स्वधया गृभीतः अपाङ् प्राङ् एति) अपनी धारणा शक्तिसे युक्त होकर नीचे तथा ऊपर जाता है। (ता शश्वन्ता विषूचीना) वे दोनों शाश्वत रहनेवाले और विविध गतिवाले तथा (वियन्ता) विरुद्ध गतिवाले हैं। लोग उनमेंसे (अन्यं निचिक्युः) एकको जानते हैं (अन्यं न निचिक्युः) दूसरेको नहीं जानते ॥ ३८ ॥

[१७५४] (परमे व्योमन् ऋचः अक्षरे) परम आकाशके समान व्यापक और ऋचाओंके अक्षरके समान अविनाशी परमात्मा है, (यस्मिन् विश्वे देवाः अधि निषेदुः) जिसमें सम्पूर्ण देवगण स्थित हैं, (यः तत् न वेद) जो उस परब्रह्मको नहीं जानता, (किं ऋचा करिष्याति) वह इन वेदमंत्रोंसे क्या करेगा, (यः इत् तत् विदुः) जो उस परमतत्त्वको जानते हैं, (ते इमे सं आसते) वे ये विद्वान् उत्तम स्थानमें बैठते हैं ॥ ३९ ॥

[१७५५] हे (अघ्न्ये) न मारे जाने योग्य गौ ! तू (सु-यवसाद् भगवती भूयाः) उत्तम घास खानेवाली और भाग्यशालिनी हो। (अथः) और (वयं भगवन्तः स्याम) हम सब भी भाग्यवान् हों, (विश्वदानीं तृणं अद्धि) सर्वदा तृण भक्षण कर और (आचरन्ती शुद्धं उदकं पिब) और भ्रमण करती हुई शुद्ध जल पी ॥ ४० ॥

भावार्थ— यह आत्मा किसके समान है, यह विदित नहीं। यह आत्मा इस शरीरमें बद्ध होकर रहती हुई भी मनसे बडी हलचल करती है। जिस समय यह आत्मा सत्यके पहले प्रवर्तक परमात्माको प्राप्त होती है, उसी समय इस दिव्य मंत्रकी वाणीका भाग्य इसे प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

यह आत्मा अमर है, तथापि मरण धर्मवाले शरीरके साथ रहनेके कारण यह विविध योनियोंमें जाती है। यह अपनी धारणशक्तिके साथ ही इस शरीरमें आती और शरीरसे पृथक् होती है। ये दोनों शरीर और आत्मा शाश्वत और गतिमान् हैं। पर दोनोंकी गतियोंमें अन्तर है। इनमें प्रथम शरीरको तो प्रत्यक्ष देखते हैं इसलिए इसके बारेमें जानते हैं, पर आत्मा अप्रत्यक्ष होनेके कारण उसके बारेमें नहीं जानते ॥ ३८ ॥

वह परब्रह्म आकाशके समान व्यापक और वेदमंत्रोंके अक्षरोंके समान अविनाशी है। जिस प्रकार परमात्मामें सब देवगण निवास करते हैं, उसी प्रकार उसकी वाणी वेदमंत्रोंके अक्षर समूहोंमें देवगण निवास करते हैं। जो मनुष्य उस परमात्माकी सत्तामें विश्वास नहीं करता, जो नास्तिक है, वह इन वेदमंत्रोंका क्या सदुपयोग कर सकेगा? पर जो परमात्मापर श्रद्धा करते हैं, वे इन मंत्रोंका मनन करके परमस्थान मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥ ३९ ॥

गाय न मारी जाये। वह सर्वत्र तृण भक्षण करती हुई भाग्यशालिनी हो और उसके साथ हम सब भाग्यशाली हों। यह गाय शुद्ध घास खाती हुई और शुद्ध जल पीती हुई सर्वत्र संचार करे। गाय सौभाग्यकी प्रतीक है, उसकी सर्वत्र सुरक्षा हो ॥ ४० ॥

१७५६ गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्ष—त्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ ४१ ॥
१७५७ तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद् विश्वमुप जीवति ॥ ४२ ॥
१७५८ शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरा—स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ ४३ ॥
१७५९ त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभि—र्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—[१७५६] (गौरीः सलिलानि तक्षत्) गौ निश्चयसे जलोंको हिलाती हुई (मिमाय) शब्द करती है । (सा एकपदी द्विपदी चतुष्पदी) वह एक पादवाली, दो पादवाली, चारपादवाली (अष्टापदी नवपदी बभूवुषी) आठपादोंवाली, नौ पादोंवाली तथा बहुत होनेकी इच्छा करनेवाली यह वाक् (सहस्राक्षरा) हजारों अक्षरोंवाली होकर (परमे व्योमन्) परम व्योममें व्याप्त रहती है ॥ ४१ ॥

[१७५७] (तस्याः समुद्राः अधि विक्षरन्ति) उस गौसे समुद्र बहते हैं, (तेन चतस्रः प्रदिशः जीवन्ति) उस कारण चारों दिशायें जीवित रहती हैं, (ततः अक्षरं क्षरति) उससे पानी बरसता है, (तत् विश्वं उप जीवति) उससे सारा विश्व जीता है ॥ ४२ ॥

[१७५८] (विषूवता परः आरात् अवरेण) अनेक रूपोंसे बहुत दूर और पास भी (एना शकमयं धूमं अपश्यं) इस शक्तिवाले धूमको मैंने देखा । वहां (वीराः उक्षाणं पृश्निं अपचन्त) वीर शक्तिदायक सोमको पका रहे हैं । (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) वे धर्म प्रथम थे ॥ ४३ ॥

[१७५९] (त्रयः केशिनः ऋतुथा विचक्षते) तीन किरणवाले पदार्थ ऋतुके अनुसार दिखाई देते हैं । (एषां एकः संवत्सरे वपते) इनमेंसे एक वर्षभरमें एक बार उपजता है, (एकः शचीभिः विश्वं अभिचष्टे) दूसरा शक्तियोंसे विश्वको प्रकाशित करता है, (एकस्य ध्राजिः ददृशे) एककी गति दीखती है, परन्तु उसका (रूपं न) रूप नहीं दीखता ॥ ४४ ॥

भावार्थ— यह वाक्रूपी गौ अर्थात् काव्यमयी वाक् एक, दो, चार, आठ अथवा नौ पदोंवाले छन्दोंमें विभक्त हुई है, यह अनेक प्रकारकी है, हजार अक्षरोंतक इसकी सीमा है । यह सारे आकाशमें व्याप्त है । शब्द आकाशका गुण है, इसलिए वाणी भी आकाशका गुण ही है ॥ ४१ ॥

उस गौ अर्थात् सूर्यरश्मियोंसे जल प्रवाह बहते हैं, अर्थात् उन सूर्यरश्मियोंके कारण जल बरसता है, और उस वृष्टिके कारण जलप्रवाह बहते हैं । उस जलसे सारी दिशायें प्रसन्न रहती हैं । जल बरसनेके बाद चारों ओर हरियाली छा जाती है । उस जलसे सारा विश्व जीता है । इस वृष्टि जलके साथ सूर्यमें स्थित प्राण या जीवनशक्ति इस पृथ्वी पर आती है, उस जीवनशक्तिसे सारा विश्व जीवित रहता है ॥ ४२ ॥

पास और बहुत दूर भी मैंने धुंवेको देखा और उससे अग्निका अनुमान किया । उस अग्निपर वीरगण शक्तिदायक सोमको पकाते हैं । ये सब यज्ञ कर्मके प्रारम्भमें होते थे ॥ ४३ ॥

तीन किरणवाले पदार्थ अग्नि, आदित्य और वायु हैं । अग्नि वर्षभरमें एक बार यज्ञमें प्रज्वलित होती है । अर्थात् वर्षारंभमें एक बार यज्ञाग्नि प्रज्वलित की जाती है, और वह सतत प्रज्वलित रहती है, उसी अग्निसे प्रतिदिनका यज्ञ निष्पन्न होता है । दूसरा सूर्य अपनी किरणोंसे समस्त संसारको प्रकाशित करता है । तीसरा वायु है । उसकी गति तो ज्ञात होती है, पर इसका रूप देखनेमें नहीं आता ॥ ४४ ॥

१७६० चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥
१७६१ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु—रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वद—न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ४६ ॥
१७६२ कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन् त्सदनादृतस्या—दिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ४७ ॥
१७६३ द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवो ऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥ ४८ ॥

अर्थ— [१७६०] (वाक् चत्वारि पदानि परिमिता) वाणीके चार स्थान नापे गए हैं। (ये मनीषिणः ब्राह्मणाः) जो ज्ञानी ब्राह्मण हैं, वे (तानि विदुः) उनको जानते हैं। उनमेंसे (त्रीणि गुहा निहिता) तीन वाणियोंके स्थान गुप्त हैं, वे (न इंगयन्ति) प्रकट नहीं होते। (मनुष्याः वाचः तुरीयं वदन्ति) मनुष्य वाणीके चतुर्थ रूपको बोलते हैं ॥ ४५ ॥

[१७६१] (एकं सत्) एक सत् वस्तु है, उसीका (विप्राः बहुधा वदन्ति) ज्ञानी लोग अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं। उसीको (इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निं आहुः) इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं। (अथ) और (सः दिव्यः सुपर्णः गरुत्मान्) वह दिव्य सुपर्ण और गरुत्मान् है ॥ ४६ ॥

[१७६२] (अपः वसानाः) जलको अपने साथ लेती हुई (सुपर्णाः हरयः) उत्तम गतिशील सूर्यकिरणें (कृष्णं नियानं दिवं) सबका आकर्षण करनेवाले यानरूप सूर्यपर (उत्पतन्ति) चढती हैं। (ते ऋतस्य सदनात्) वे जलके स्थानरूप अन्तरिक्षसे (आववृत्रन्) नीचे आती हैं, (आत् इत् घृतेन पृथिवी वि उद्यते) इसके बाद ही जलसे भूमि भीग जाती है ॥ ४७ ॥

[१७६३] (एकं चक्रं) एक चक्रको (द्वादश प्रधयः) बारह घेरे रहते हैं, उस चक्रकी (त्रीणि नभ्यानि) तीन नाभियां हैं, (कः उ तत् चिकेत्) कोई विद्वान् ही उन्हें जानता है। (तस्मिन्) उस चक्रमें (चलाचलासः) अत्यन्त गति करनेवाली (त्रिशता षष्टि शंकवः अर्पिताः) तीनसौ साठ खूंटियां लगी हुई हैं ॥ ४८ ॥

भावार्थ— परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी ये वाणीके चार रूप हैं। इनमें परा वाणीका स्थान मूलाधार है। वहांसे यह प्रकट होकर हृदयमें पहुंचती है, उस हृदयस्थानीय वाणीको पश्यन्ति कहते हैं, वहांसे गुजरती हुई वाणी बुद्धिमें पहुंचती है, उस बुद्धिस्थानीय वाणीका नाम मध्यमा है। उस बुद्धिमेंसे निकलकर वाणी कण्ठ और मुखमें प्रकट होती है। यही वैखरी वाणी है। इनमें मूलाधारकी परा, हृदयस्थानीया पश्यन्ति, बुद्धिस्थानीया मध्यमा ये तीन वाणियां गुहा अर्थात् गुप्तस्थानोंमें छिपी हुई होनेके कारण योगी जन ही इसे जान सकते हैं और जो कण्ठस्थानीया चौथी वाणी है, उसे सभी मनुष्य बोलते हैं और सभी जानते हैं ॥ ४५ ॥

यद्यपि परमात्मा एक ही सत् तत्त्व है, पर उसका वर्णन ज्ञानी जन अनेक तरहसे करते हैं। ऐश्वर्यवान् होनेसे वही इन्द्र, हितकारी होनेसे वही मित्र, श्रेष्ठ होनेसे वरुण, प्रकाशक होनेसे अग्नि, उत्तम होनेसे सुपर्ण गरुत्मान् है ॥ ४६ ॥

सूर्य किरणें अपने साथ जलको उठाती हैं, वह जल उनके साथ ऊपर मेघमंडलमें पहुंचता है, वहांसे वह फिर वृष्टि द्वारा नीचे आता है और भूमिको भिगाता है ॥ ४७ ॥

संवत्सररूपी चक्र है, जिसमें बारह मासरूपी अरे लगे हुए हैं। ग्रीष्म, शरद्, वर्षा रूपी तीन नाभियां हैं और ३६० दिनरूपी कीलें उस चक्रमें लगी हुई हैं। ये दिनरूपी कीलें हमेशा चल हैं अर्थात् हमेशा गति करती रहती हैं ॥ ४८ ॥

१७६४ यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभू–र्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ४९ ॥
१७६५ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा–स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ ५० ॥
१७६६ समानमेतदुदक–मुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥ ५१ ॥
१७६७ दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्त–मपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥ ५२ ॥

अर्थ— [१७६४] हे (सरस्वति) सरस्वती ! (यः स्तनः ते शशयः) जो स्तन तेरे शरीरमें वर्तमान है, (यः मयोभूः) जो सुखकारक है (येन विश्वा वार्याणि पुष्यसि) जिससे सभी वरणीय धनोंको तू पुष्ट करती है, (यः रत्नधा वसुवित्) जो रत्नोंको धारण करनेवाला तथा धनोंको प्राप्त करानेवाला है, (यः सुदत्रः) जो कल्याणकारी दान करनेवाला है, (तं धातवे इह कः) तू उस स्तनको हमारे पीनेके लिए इधर कर ॥ ४९ ॥

[१७६५] (देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त) देवगण यज्ञसे यज्ञ पुरुषकी पूजा करते हैं, (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) वे धर्म उत्कृष्ट हैं। (ते महिमानः नाकं सचन्ते) वे महत्त्व प्राप्त करते हुए उस सुखपूर्ण लोकको प्राप्त करते हैं, (यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति) जहां पूर्वके साधनसम्पन्न देव रहते हैं ॥ ५० ॥

[१७६६] (एतत् समानं उदकं) यह एक ही जल (अहभिः उच्चै एति) दिनमें ऊपर जाता है और (अव) नीचे आता है। (पर्जन्याः भूमिं जिन्वन्ति) मेघ भूमिको तृप्त करते हैं और (दिवं अग्नयः जिन्वन्ति) द्युलोकको अग्नियां तृप्त करती हैं ॥ ५१ ॥

[१७६७] मैं (दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तं) द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले, उत्तम गतिवाले, निरन्तर गति करनेवाले महान्, (अपां गर्भं ओषधीनां दर्शतं) जलोंके केन्द्र, औषधियोंको पुष्ट करनेवाले (वृष्टिभिः अभीपतः तर्पयन्तं) वृष्टि होनेके कारण चारों ओरसे बहनेवाले जलप्रवाहोंसे भूमिको तृप्त करनेवाले (सरस्वन्तं) इस सूर्यको (अवसे जोहवीमि) अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ ॥ ५२ ॥

भावार्थ— सरस्वतीका स्तन अर्थात् प्यार सुखकारक, धनोंको पुष्टकारक, रत्नोंको धारण करनेवाला, धनोंको प्राप्त करानेवाला तथा कल्याणकारक है, वह प्यार सभी प्राप्त करें ॥ ४९ ॥

श्रेष्ठ याजक अपनी आत्माके योगसे परमात्माकी उपासना करते हैं। यह मानसोपासनाकी यज्ञविधि सबसे श्रेष्ठ और मुख्य है। इस प्रकारकी उपासना करनेवाले श्रेष्ठ उपासक ही इस सुखपूर्ण स्वर्गधामको प्राप्त करते हैं जहां पूर्वकालके ऐश्वर्यवान् देव रहते थे ॥ ५० ॥

जल एक ही है, वही जल गर्मीके दिनोंमें सूर्यकिरणोंसे संतप्त होकर बाष्परूपमें ऊपर जाता है और वही जल वर्षाऋतुमें नीचे आता है। उस नीचे आनेवाले जल अर्थात् वर्षासे भूमि तृप्त होती है और अग्नियोंमें दी जानेवाली आहुतियोंसे द्युलोक तृप्त होता है। अग्निमें दी जानेवाली आहुतियां सूक्ष्म होकर द्युलोकमें जाती हैं ॥ ५१ ॥

यह सूर्य उत्तम और निरन्तर गति करनेवाला है। सूर्यप्रकाशके कारण ही ओषधियोंमें रस आता है और वे पुष्ट होती हैं। इसीलिए सूर्यको जगत्की आत्मा कहा है। उसीके कारण वृष्टि होती है। सूर्यकिरणें बादलोंको प्रेरित करती हैं और तब बादल पानी बनकर बरसते हैं और उस वर्षाके कारण बहनेवाले जलप्रवाह भूमिको तृप्त करते हैं ॥ ५२ ॥

[१६५]

(ऋषिः- १, २, ४, ६, ८, १०-१२ इन्द्रः; ३, ५, ७, ९ मरुतः; १३-१५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः ।
देवता- मरुत्वानिन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ।)

१७६८ कया॑ शु॒भा सव॑यसः॒ सनी॑ळाः समा॒न्या म॒रुतः॒ सं मि॑मिक्षुः ।
कया॑ म॒ती कुत॒ एता॑स ए॒ते ऽर्च॑न्ति॒ शुष्मं॒ वृष॑णो वसू॒या ॥ १ ॥

१७६९ कस्य॒ ब्रह्मा॑णि जुजुषु॒र्युवा॑नः॒ को अ॑ध्व॒रे म॒रुत॒ आ व॑वर्त ।
श्ये॒नाँ इ॑व॒ ध्रज॑तो अ॒न्तरि॑क्षे॒ केन॑ म॒हा मन॑सा रीरमाम ॥ २ ॥

१७७० कुत॒स्त्वमि॑न्द्र॒ माहि॑नः॒ सन्नेको॑ यासि सत्पते॒ किं त॑ इ॒त्था ।
सं पृ॑च्छसे समरा॒णः शु॑भा॒नैर्वो॒चेस्तन्नो॑ हरिवो॒ यत् ते॑ अ॒स्मे ॥ ३ ॥

१७७१ ब्रह्मा॑णि मे म॒तयः॒ शं सु॒तासः॒ शुष्म॑ इयर्ति॒ प्रभृ॑तो मे॒ अद्रिः॑ ।
आ शा॑सते॒ प्रति॑ हर्यन्त्यु॒क्थेमा हरी॑ वहत॒स्ता नो॒ अच्छ॑ ॥ ४ ॥

[१६५]

अर्थ— [१७६८] (सवयसः सनीळाः) एक समान आयुवाले, एक घरमें रहनेवाले (मरुतः) मरुत् गण (कया शुभा समान्या) किस शुभ जलसे (सं मिमिक्षु) सींचते हैं । (कया मती) किस बुद्धिसे युक्त होकर तथा (कुतः एतासः) कहांसे आकर (एते वृषणः) ये बलशाली मरुत् (वसूया शुष्मं अर्चन्ति) धनकी इच्छासे बलकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[१७६९] (युवानः) सदा तरुण रहनेवाले ये मरुत् (कस्य ब्रह्माणि जुजुषुः) किसके स्तोत्रोंका सेवन करते हैं ? (कः अध्वरे ववर्त) कौन अपने यज्ञकी ओर मोडता है । (श्येनाः इव अन्तरिक्षे ध्रजतः) श्येन पक्षिके समान अन्तरिक्षमें जानेवाले इन (मरुतः) मरुतोंको (केन महा मनसा रीरमाम) किस बडे मनसे प्रसन्न करें ? ॥ २ ॥

[१७७०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं माहिनः सन्) तू महान् होता हुआ भी (एकः कुतः यासि) अकेला ही कहां जाता है ? (सत्पते) हे उत्तम सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते इत्था किं) तेरी यह दशा क्यों है ? (समराणः सं पृच्छसे) हमारे साथ चलते हुए तुझसे हम पूछते हैं । हे (हरिवः) घोडोंवाले इन्द्र ! (अस्मे ते यत्) हमसे तुझे जो कुछ भी कहना हो, (तत् नः) वह हमसे (शुभानैः वोचेः) मीठी वाणीसे कह ॥ ३ ॥

१ यत्, तत् शुभानैः वोचेः— जो कुछ भी कहना हो, वह मीठी और शुभ वाणीमें ही बोला जाए ।

[१७७१] (ब्रह्माणि, मतयः सुतासः) स्तोत्र, बुद्धियां एवं सोम (मे शं) मेरे लिए सुखकारक हों (मे शुष्मः अद्रिः) मेरा शक्तिशाली वज्र (प्रभृतः इयर्ति) प्रेरित होकर शत्रुओंपर जाता है । (इमा उक्था प्रति हर्यन्ति आ शासते) ये स्तोत्र मेरी तरफ आते हैं और मेरी प्रशंसा करते हैं । (ता हरि नः अच्छ वहतः) वे दोनों घोडे हमें लक्ष्यकी तरफ सीधे ले जाएं ॥ ४ ॥

भावार्थ— ये मरुत् एक समान आयुवाले, एक घरमें हिलमिलकर रहनेवाले शुभ जलसे इस पृथ्वीको सींचते हैं और उत्तम बुद्धिसे बलकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

सदा तरुण रहनेवाले ये मरुत् उसीके यज्ञमें जाते हैं और उसीके स्तोत्र सुनते हैं, जिसका मन विशाल होता है । जो संकुचित मनोवृत्तिवाला है, उसकी प्रार्थना कोई भी नहीं सुनता ॥ २ ॥

इन्द्र बहुत महान् है, वह इस योग्य है, कि उसके पीछे अनुचर चलें, पर फिर भी वह हर कामके लिए अकेला ही चल पडता है, वह दूसरेपर आश्रित नहीं रहता । इसी तरह सब अपने बलपर भरोसा रखें और आत्मविश्वाससे सब कार्य करें । जो भी आपसमें कुछ कहना या बोलना हो, मीठी वाणीसे ही बोलें, कभी भी बातचीतमें कटुता पैदा न करें ॥ ३ ॥

ज्ञान और बुद्धियां मेरे लिए सुखकारक हों । ज्ञान और उत्तम बुद्धियोंवाला हमेशा सुखी रहता है । वीर मनुष्योंके शस्त्रास्त्र शत्रुओंके विनाशके लिए हमेशा तैय्यार रहें । ऐसे वीरोंकी सभी प्रशंसा करें ॥ ४ ॥

१७७२ अतो॑ व॒यम॑न्त॒मेभि॑र्युजा॒नाः स्वक्ष॑त्रेभिस्त॒न्व१॒॑: शुम्भ॑मानाः ।
महो॑भि॒रेताँ॒ उप॑ युज्महे॒ न्वि—न्द्र॑ स्व॒धामनु॒ हि नो॑ ब॒भूथ॑ ॥ ५ ॥
१७७३ क्व१॒ स्या वो॑ मरुतः स्व॒धासी॒द् यन्मामेकं॑ स॒मध॑त्ताहि॒हत्ये॑ ।
अ॒हं ह्यु१॒ग्रस्त॑वि॒षस्तुवि॑ष्मा॒न् विश्व॑स्य॒ श॒त्रोरन॑मं वध॒स्नैः ॥ ६ ॥
१७७४ भूरि॑ चकर्थ॒ युज्ये॑भिर॒स्मे स॑मा॒नेभि॑र्वृषभ॒ पौंस्ये॑भिः ।
भूरी॑णि॒ हि कृ॒णवा॑मा शवि॒ष्ठे—न्द्र॒ क्रत्वा॑ मरुतो॒ यद् वशा॑म ॥ ७ ॥
१७७५ वधीं॑ वृ॒त्रं म॑रुत इन्द्रि॒येण॒ स्वेन॒ भामे॑न तवि॒षो ब॑भू॒वान् ।
अ॒हमे॒ता मन॑वे वि॒श्वश्च॑न्द्राः सु॒गा अ॒पश्च॑कर॒ वज्र॑बाहुः ॥ ८ ॥

अर्थ— [१७७२] (अतः वयं) इसलिए हम (स्वक्षत्रेभिः अन्तमेभिः युजानाः) अत्यन्त बलशाली घोडोंसे युक्त होकर तथा (महोभिः तन्वः शुंभमानाः) तेजोंसे अपने शरीरोंको सजाकर (एतान् उपयुज्महे) इन शक्तियोंका उपयोग शत्रुविनाशके लिए करते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (न स्वधां नः अनुबभूथ) अपनी धारणशक्तिको हमारे अनुकूल करो ॥ ५ ॥

[१७७३] हे (मरुतः) मरुतो ! (वः स्या स्वधा क्व आसीत्) तुम्हारी वह शक्ति कहां थी (यत् एकं मां अहिहत्ये सं अधत्त) जिसे तुमने अकेले मुझमें शत्रुनाशके अवसरपर स्थापित की थी। (अहं हि उग्रः तविषः तुविष्मान्) मैं वीर, बलवान् और शक्तिशाली हूँ, मैंने (वधस्नैः विश्वस्य शत्रोः अनमं) शस्त्रास्त्रोंसे सभी शत्रुओंको झुका दिया ॥ ६ ॥

[१७७४] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! तूने (अस्मे युज्येभिः समानेभिः पौंस्येभिः) हमारे उपयोगी और अपने सदृश बलोंसे युक्त होकर (भूरि चकर्थ) बहुत काम किए हैं। हे (शविष्ठ इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (भूरीणि हि कृणवाम) हमने भी बहुतसे वीरताके काम किए हैं। हम (मरुतः) मरुत्गण (यत् वशाम) जो कुछ भी चाहते हैं (क्रत्वा) उद्योगोंसे प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

१ यत् वशाम, क्रत्वा— जो कुछ भी मनुष्य चाहे, उद्योग करके उसे प्राप्त कर ले।

[१७७५] हे (मरुतः) मरुतो ! मैंने (इन्द्रियेण वृत्रं वधीं) अपनी शक्तिसे वृत्रको मारा और (स्वेन भामेन तविषः बभूवान्) अपनी ही शक्तिसे मैं शक्तिशाली हुआ। (वज्रबाहुः अहं) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले मैंने (मनवे) मनुष्योंके हितके लिए (विश्वः चन्द्राः सुगाः एताः अपः चकर) सबको आनंद देनेवाले और आसानीसे बहनेवाले इन जलोंको प्रकट किया ॥ ८ ॥

१ स्वेन भामेन तविषः बभूवान्— मनुष्यको चाहिए कि वह अपने बलसे ही बलवान् बने।

भावार्थ— सबके पास उत्तमोत्तम पशु हों, सबके शरीर तेजस्वी हों। इन तेजों और शक्तियोंका उपयोग लोग अपने शत्रुओंका विनाश करनेके लिए करें। इन्द्रकी शक्ति भी ऐसे वीरोंके अनुकूल हो। इन्द्रकी शक्ति यदि प्रतिकूल हो जाए, तो जीवनका नाश हो जाए। शरीरमें आत्मा इन्द्र है और उसकी शक्तियां इन्द्रियें हैं, यदि ये इन्द्रियें और आत्मा मनुष्यके प्रतिकूल हो जाए तो मनुष्यका नाश निश्चित है। जो अपने शरीरको तेजस्वी बनाता है, अपनी शक्तियोंका सदुपयोग रहता है, उसकी आत्मा व इन्द्रियें उसके अनुकूल रहती हैं ॥ ५ ॥

यह इन्द्र इतना वीर है कि वह समय पडनेपर बिना मरुतोंकी सहायता लिए ही शत्रुओंका नाश कर देता है। वह अपने शस्त्रास्त्रोंसे भयंकरसे भयंकर शत्रुओंको भी झुका देता है ॥ ६ ॥

मरुतोंके उपयोगी और इन्द्रके शक्तिके समान ही शक्तियोंसे युक्त होकर इन्द्र अनेकों वीरताके काम कर लेता है। इन्द्रके अलावा भी मरुत् बहुत काम करते हैं। वे जो कुछ भी पाना चाहते हैं, अपने उद्योगोंसे प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य जो कुछ भी पाना चाहे, उसके लिए उद्योग करे, बिना उद्योगके कुछ भी पाना मुश्किल है ॥ ७ ॥

१७७६ अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ९ ॥
१७७७ एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥ १० ॥
१७७८ अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१७७६] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (ते अनुत्तं न किः) तुझसे प्रेरित न हुआ हुआ ऐसा कुछ भी नहीं है । (त्वावान् विदानः देवता न अस्ति) तेरे जैसा विद्वान् देवता और कोई नहीं है । हे (प्रवृद्ध) महान् इन्द्र ! (यानि करिष्या कृणुहि) जिन कर्तव्योंको तुम करते हो, उसे (न जातः नशते न जायमानः) न पहले उत्पन्न हुआ कोई देव व्याप सकता है और न आगे होनेवाला ही व्याप सकता है ॥ ९ ॥

१ ते अनुत्तं नकिः— इस इन्द्रसे अप्रेरित ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है ।

२ यानि करिष्या कृणुहि, न जातः नशते न जायमानः— जिन कर्तव्योंको यह करता है, उसका अन्त पानेवाला न कोई हुआ है और न होगा ।

[१७७७] (या नु दधृष्वान्) जिन कर्मोंको मैं करना चाहता हूं, इन्हें (मनीषा कृणवै) मन लगाकर करता हूँ, इसलिए (एकस्य मे) अकेले मेरा ही (ओजः विभुः अस्तु) बल चारों ओर फैलता है । हे (मरुतः) मरुतो ! (हि अहं उग्रः विदानः) क्योंकि मैं वीर और विद्वान् हूँ, इसलिए (इन्द्रः) मैं इन्द्र (यानि च्यवं) जिनकी तरफ जाता हूँ, (एषां इत् ईशे) उनका ही स्वामी बन जाता हूँ ॥ १० ॥

१ या नु दधृष्वान् मनीषा कृणवै— जिन कर्मोंको इन्द्र करना चाहता है, उन्हें मन लगाकर करता है, इसी लिए—

२ मे ओजः विभुः— उसका यश चारों ओर फैलता है

३ अहं उग्रः विदानः— यह इन्द्र वीर और विद्वान् है । इसलिए—

४ यानि च्यवं एषां इत् ईशे— यह जिनकी तरफ जाता है, उनका स्वामी बन जाता है ।

[१७७८] हे (नरः सखायः मरुतः) नेता तथा मित्र मरुतो ! तुमने (मे) मेरे लिए (यत् श्रुत्यं ब्रह्म चक्र) जो प्रसिद्ध स्तोत्र बनाया, (स्तोमः या अत्र अमन्दत्) उस स्तोत्रने मुझे यहां बहुत आनन्दित किया । वह स्तोत्र (इन्द्राय वृष्णे सुमखाय) ऐश्वर्यवान्, बलवान्, उत्तम यज्ञ करनेवाले (सखायः तनूभिः) मित्र तथा शक्तियोंसे युक्त (मह्यं तन्वे) मेरे पोषणके लिए हो ॥ ११ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अपनी शक्ति ही से शक्तिशाली है, किसी दूसरेकी शक्तिका आश्रय लेकर यह वीरता नहीं दिखाता । यह इन्द्र अपनी शक्तिका उपयोग मनुष्योंका हित करनेके लिए करता है । इसीने मनुष्योंके हितके लिए जलप्रवाहोंको प्रकट किए । इसी प्रकार मनुष्य भी अपनी शक्तिका आश्रय लेकर ही वीरता दिखाये । दूसरेकी शक्तिपर घमंड न करे । शक्ति प्राप्त करके वह अपनी शक्तिका सदुपयोग मनुष्योंकी भलाईमें करे अर्थात् शक्ति पाकर वह मनुष्योंपर अत्याचार न करे अपितु उनकी सदा भलाई ही करे ॥ ८ ॥

इस विश्वमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जिसे इन्द्र प्रेरित न करता हो । उस इन्द्र जैसा विद्वान् कोई भी देवता नहीं है । वह इन्द्र अद्वितीय विद्वान् है । अपनी विद्वत्तासे वह जो कुछ कार्य करता है, वह इतना विशाल होता है कि उसका पार पानेवाला अभीतक न कोई हुआ है न कोई होगा ॥ ९ ॥

यह इन्द्र जिन कामोंको करना चाहता है, उन्हें मन लगाकर करता है और उन कामोंको पूर्णतातक ले जाता है इसी लिए वह सर्वत्र यशस्वी होता है । सर्वत्र यशस्वी होनेका एक उत्तम साधन है कि जिस कामको भी मनुष्य हाथमें ले, उसे मन लगाकर करे और पूरा होनेतक उसे न छोडे । यह इन्द्र वीर और विद्वान् है, इसलिए वह जिस पदार्थकी तरफ जाता है, उसका स्वामी बन जाता है । इसी प्रकार मनुष्य भी विद्वान् और वीर बने । ऐसा मनुष्य जिस पदार्थको भी चाहेगा, उसका वह स्वामी बनकर उपभोग करेगा ॥ १० ॥

मरुतोंने इस इन्द्रके लिए जो स्तोत्र बनाये, उन स्तोत्रोंसे वह बहुत आनंदित हुआ । यह इन्द्र ऐश्वर्यवान्, बलवान् और उत्तम यज्ञ करनेवाला है । तथा शक्तिशाली इस इन्द्रके शरीरको यह स्तोत्र पुष्ट करनेवाला हो ॥ ११ ॥

१७७९ एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ १२ ॥
१७८० को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥ १३ ॥
१७८१ आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारु-रस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छे-मा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ १४ ॥
१७८२ एष वः स्तोमो मरुत इयं गी-र्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥

अर्थ— [१७७९] हे (मरुतः) मरुतो ! (एव इत्) इसी प्रकार (मा प्रति रोचमानाः) मुझपर प्रेम रखते हुए (अनेद्यः इषः श्रवः दधानाः) प्रशंसनीय धन और अन्नको धारण करते हुए (चन्द्रवर्णाः) आनन्ददायक रूपोंवाले (एते) ये तुम (मे संचक्ष्य) मुझे लक्ष्य करके (मे अच्छान्त आ छदयाथ) मुझे यशसे ढक दो ॥ १२ ॥

[१७८०] हे (मरुतः) मरुतो ! (अत्र वः कः मामहे) यहां तुम्हारी कौन पूजा करता है ? हे (सखायः) मित्रो ! (सखीन् अच्छ प्र यातन) मित्रके समान अपने हित करनेवालोंके पास तुम जाओ। हे (चित्राः) सुन्दर मरुतो ! (मन्मानि अपिवातयन्त भूत) स्तोत्रोंको सम्पूर्ण करनेवाले होओ और (मे ऋतानां एषां) मेरे द्वारा किए जानेवाले इन सत्य स्तोत्रोंको (नवेदाः) जाननेवाले होओ ॥ १३ ॥

[१७८१] हे (मरुतः) मरुतो ! (दुवस्यात् दुवसे) स्तोत्रोंसे स्तुति करनेके लिए (मान्यस्य कारुः मेधा) सम्मानके योग्य स्तोताकी बुद्धि (अस्मान् आ चक्रे) हमें प्राप्त हो । (यत्) चूंकि (जरिता) स्तुति करनेवाला (इमा ब्रह्माणि वः अर्चत्) इन स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति करता है, इसलिए (विप्रं अच्छ आ वर्त) उस ज्ञानीकी तरफ तुम घूमो ॥ १४ ॥

[१७८२] हे (मरुतः) मरुतो ! (एषः स्तोमः वः) यह स्तोत्र तुम्हारे लिए है, (इयं गीः) यह वाणी तुम्हारे लिए है, अतः तुम (मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः) आनन्द देनेवाले तथा सम्मानके योग्य स्तोताके (तन्वे) शरीर की पुष्टिके लिए (आ यासीष्ट) आओ और (वयां) हम भी (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और जय दिलानवाले धनको प्राप्त करें ॥ १५ ॥

भावार्थ— हे मरुतो ! मुझपर प्रेम रखो, तथा मेरे लिए धनादि धारण करो। मुझे यशसे युक्त करो। जो मनुष्य इन मरुतोंको प्रसन्नता प्राप्त करता है, वह धन, अन्न और यशसे युक्त होता है ॥ १२ ॥

हे सैनिको ! यहां तुम्हारी कौन पूजा करता है और कौन तुमसे द्वेष करता है, यह अच्छी तरह जानकर मित्रके समान तुम्हारा जो हित करता है, उसके पास जाओ और वे जिस प्रकारकी पूजा करें, उस पूजाको तुम पूर्ण करो और वह जिसके स्तोत्र कर रहा है, वह उसका उद्देश्य पूर्ण करो ॥ १३ ॥

हे मरुतो ! हमें ऐसी उत्तम बुद्धि प्राप्त हो कि जिससे हम तुम्हारी उत्तम स्तुति कर सकें। यह स्तुति करनेवाला स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति करता है, इसलिए उस ज्ञानीकी तरफ तुम घूमो अर्थात् उसपर अपनी कृपाकी दृष्टि डालो ॥ १४ ॥

हे मरुतो ! इस स्तोत्र और श्रेष्ठ वाणीका उच्चारण तुम्हारे लिए किया जा रहा है। यह वाणी तुम्हें आनन्द देनेवाली हो। तुम्हारी दयासे हम सन्मानके योग्य हों। तुम हमारी तरफ आवो, ताकि हम अन्न, बल आदि प्राप्त कर सकें ॥१५॥

[१६६]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगती; १४-१५ त्रिष्टुप् ।)

१७८३ तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन् मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥ १ ॥

१७८४ नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥

१७८५ यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥

---

[१६६]

अर्थ— [१७८३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (रभसाय जन्मने) पराक्रम करनेके लिए सुयोग्य जीवन प्राप्त हो, इसलिए और (वृषभस्य केतवे) बलिष्ठोंके नेता बननेके लिए (तत्) उस तुम्हारे (पूर्वं) प्राचीन कालसे चले आ रहे (महित्वं) महत्त्वका (नु वोचाम) हम ठीक ठीक वर्णन रहे हैं । हे (तुविष्वनः) गरजनेवाले तथा (शक्राः) समर्थ वीरो ! (युधा इव) युद्धवेलाके समानही (यामन्) शत्रुदल पर चढाई करते हुए (ऐधा इव) धधकते हुए अग्निकी तरह (तविषाणि कर्तन) शत्रुओंकी सेनाको काटो ॥ १ ॥

[१७८४] (नित्यं सूनुं न) पिता जिस प्रकार अपने औरस पुत्रको खाद्यवस्तु देता है, वैसे ही सबके लिए (मधु बिभ्रतः) मिठास भरे रसको धारण करनेवाले (घृष्वयः) युद्धसंघर्षमें निपुण और (क्रीळाः) क्रीडासक्त मनोवृत्तिवाले ये वीर (विदथेषु उप क्रीळन्ति) युद्धोंमें, मानों खेलकूदमें लगे हुए हों, इस भाँति कार्य करना शुरू करते हैं । (रुद्राः) शत्रुको रुलानेवाले ये वीर (नमस्विनं) उपासकोंको (अवसा नक्षन्ति) स्वकीय शक्तिसे सुरक्षित रखते हैं । (स्व-तवसः) अपने निजी बलसे युक्त ये वीर (हविस्-कृतं) हविष्यान्न देनेवालेको (न मर्धन्ति) कष्ट नहीं पहुँचाते हैं ॥२॥

[१७८५] (ऊमासः) रक्षण करनेवाले, (अ-मृताः) अमर वीर मरुतोंने (यस्मै हविषा ददाशुषे) जिस हविष्यान्न देनेवालेको (रायः पोषं) धनकी पुष्टि (अरासत) प्रदानकी-बहुतसा धन दिया (अस्मै) उसके लिए (हिताः इव) कल्याणकारक मित्रोंके समान (मयो-भुवः) सुख देनेवाले वे वीर (रजांसि) हल चलाई भूमि पर (पुरु पयसा) बहुत जलसे (उक्षन्ति) वर्षा करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हम सामर्थ्यवान् बनें और नेताके पद पर बैठ सकें, इसीलिए हम वीरोंके काव्यका गायन तथा पठन करते हैं । युद्ध छिड जानेके मौके पर जिस तरह तुम्हारी हलचलें या तैयारियाँ हुआ करती हैं, उन्हें वैसे ही अक्षुण्ण बनाये रखें । उन तैयारियोंमें तनिक भी ढीलापन न रहने पाये, ऐसी सावधानी रखनी चाहिए ॥ १ ॥

जिस तरह पिता अपने पुत्रको खानेकी चीजें देता है, उसी प्रकार वीरोंको चाहिए कि वे भी सभी लोगोंको पुत्रवत् माने, उन्हें खानपानकी वस्तुएँ प्रदान करें। ये वीर हमेशा खिलाडीपनसे पारस्परिक बर्ताव करें और धर्मयुद्धमें कुशलतापूर्वक अपना कार्य करते रहें । शत्रुओंको हटाकर साधु जनोंका संरक्षण करना चाहिए और दानी उदार लोगोंको किसी प्रकारका कष्ट न देकर सुख पहुँचाना चाहिए ॥ २ ॥

सबके संरक्षणका तथा उदार दानी पुरुषोंके भरणपोषणका बीडा वीरोंको उठाना पडता है । चूँकि वीर समूची जनताके हितकर्ता हैं, अतएव वे सबको सुख पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

१७८६ आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४ ॥
१७८७ यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान् दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन् भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥ ५ ॥
१७८८ यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना ऽरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद् रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥ ६ ॥

अर्थ— [१७८६] (ये एवासः) जो तुम वेगवान् वीर (तविषीभिः) अपने सामर्थ्यों तथा बलोंद्वारा (रजांसि अव्यत) सब लोगोंका संरक्षण करते हो, तथा (स्व-यतासः) स्वयं ही अपना नियंत्रण करनेवाले तुम जब शत्रुपर (प्र अध्रजन्) वेगपूर्वक दौड जाते हो और जब (प्र-यतासु वः ऋष्टिषु) अपने हथियारोंको आगे धकेलते हो, उस समय (विश्वा भुवनानि) सारे भुवन, (हर्म्या) बडे बडे प्रसाद भी (भयन्ते) भयभीत हो उठते हैं, क्योंकि (वः यामः) तुम्हारी यह हलचल (चित्रः) सचमुच आश्चर्यजनक है ॥ ४ ॥

[१७८७] (त्वेष-यामाः) वेगपूर्वक चढाई करनेवाले ये वीर (यत्) जब (पर्वतान् नदयन्त) पहाडोंको शब्दायमान बना डालते हैं, (वा) उसी प्रकार (नर्याः) जनताका हित करनेवाले ये वीर जब (दिवः पृष्ठं अचुच्यवुः) अन्तरिक्षके पृष्ठभाग परसे जाने लगते हैं, उस समय हे वीरो ! (वः अज्मन्) तुम्हारी इस चढाईके फलस्वरूप (विश्वः वनस्पतिः) सभी वृक्ष (भयते) भयव्याकुल हो जाते हैं और सभी (ओषधिः) औषधियाँ भी (रथीयन्ती इव) रथ पर बैठी हुई महिलाके समान (प्र जिहीते) विकंपित हुआ करती हैं ॥ ५ ॥

[१७८८] (सु-धिता इव) अच्छे प्रकार पकडे हुए (बर्हणा) हथियारके समान (यत्र) जिस समय (वः) तुम्हारा (क्रिविर्-दती) तीक्ष्ण रूपसे दंदानेदार और (दिद्युत्) चमकीली तलवार (रदति) शत्रुदलके टुकडे टुकडे कर डालती है, तथा (पश्वः रिणाति) जानवरोंको भी मार डालती है, उस समय हे (उग्राः मरुतः) शूर तथा मनमें भय पैदा करनेवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (सुचेतुना) उत्तम अन्तःकरणपूर्वक (अ-रिष्ट-ग्रामाः) गाँवोंका नाश न करते हुए (नः सु-मतिं) हमारी अच्छी बुद्धिको बढाते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— ये वीर सबकी रक्षामें दत्तचित्त हुआ करते हैं और जब अपना नियंत्रण स्वयं ही करते हैं तथा शत्रुदल पर टूट पडते हैं, तब स्वयं स्फूर्तिसे यह सब कुछ होता है, इसलिए सभी लोग सहम जाते हैं, क्योंकि इनका आक्रमण कोई साधारणसी बात नहीं है । इन वीरोंकी चढाईमें भीषणता पर्याप्त मात्रामें पाई जाती है ॥ ४ ॥

जब हमले करनेवाले शूर लोग शत्रुदल पर चढाई करनेके लिए पहाडोंमें तथा अन्तरिक्षमें बडे जोरसे आक्रमण कर देते हैं, तब वृक्षवनस्पति सभी विचलित हो जाते हैं ॥ ५ ॥

वीर लोग ही अन्य सज्जनोंको आश्रय देते हैं, अपने धनवैभवका भली प्रकार संरक्षण करते हैं, शत्रुओंका विनाश करते हैं और सोमरसका सेवन करके युद्धोंमें अपना प्रभाव दर्शाते हैं तथा परमात्माकी उपासना भी करते हैं । ऐसे वीर ही अन्य वीरोंकी शक्तियोंकी यथोचित जाँच करनेकी क्षमता रखते हैं ॥ ६ ॥

×

१७८९ प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसो ऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७ ॥
१७९० शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८ ॥
१७९१ विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयो ऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ ९ ॥
१७९२ भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान् व्यनु श्रियो धिरे ॥ १० ॥

अर्थ— [१७८९] (स्कम्भदेष्णाः) आश्रय देनेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन कोई छीन नहीं सकता ऐसे, (अल-आ-तृणासः) शत्रुओंका पूरा पूरा विनाश करनेहारे तथा (सु-स्तुताः) अत्यन्त सराहनीय ये वीर (विदथेषु) युद्धस्थलों तथा यज्ञोंमें (मदिरस्य पीतये) सोमरस पीनेके लिए (अर्कं प्र अर्चन्ति) पूजनीय देवताकी भली भाँति पूजा करते हैं। क्योंकि वही (वीरस्य) वीरोंके (प्रथमानि) प्रथम श्रेणीमें परिगणनीय (पौंस्या विदुः) बल तथा पुरुषार्थ जानते हैं ॥ ७ ॥

[१७९०] हे (उग्राः) शूर, (तवसः) बलिष्ठ और (वि-रप्शिनः) समर्थ (मरुतः) वीर मरुतो ! (यं) जिसे (अभिह्रुतेः) विनाशसे और (अघात्) पापसे तुम (आवत) सुरक्षित रखते हो, (यं जनं) जिस मनुष्यक (तनयस्य पुष्टिषु) वह अपने बालबच्चोंका भरणपोषण कर ले, इस लिए (शंसात्) निन्दासे (पाथन) बचाते हो, (तं) उसे (शतभुजिभिः) सैकडों उपभोगके साधनोंसे युक्त (पूर्भिः) दुर्गोंसे (रक्षत) रक्षित करो ॥ ८ ॥

[१७९१] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें (विश्वानि भद्रा) सभी कल्याणकारक वस्तुएँ रखी हुई हैं। (वः अंसेषु आ) तुम्हारे कंधोंपर (मिथः स्पृध्या इव) मानों एक दूसरेसे स्पर्धा करनेवाले (तविषाणि) बलयुक्त हथियार (आहिता) लटकाये हुए हैं। (प्र-पथेषु) सुदूर मार्गोंमें यात्रा करनेके लिए (खादयः) खानेपीनेकी चीजोंका संग्रह पर्याप्त है। (वः अक्षः चक्रा) तुम्हारे रथके पहियोंको जोडनेवाला डंडा तथा उसके चक्र (समया वि वावृते) उचित समयपर घूमते हैं ॥ ९ ॥

[१७९२] (नर्येषु) जनताका हित करनेवाले इन वीरोंकी (बाहुषु) भुजाओंमें (भूरीणि भद्रा) यथेष्ट कल्याण-कारक शक्ति विद्यमान है, (वक्षःसु रुक्माः) उनके वक्षःस्थलोंपर मुहरोंके हार तथा (अंसेषु) कन्धोंपर (एताः) विभिन्न रंगवाले, (रभसासः) सुदृढ (अञ्जयः) भूषण हैं, उनके (पविषु अधि) वज्रोंपर (क्षुराः) तीक्ष्ण धाराएँ हैं, (वयः पक्षान् न) पंछी जिस तरह डैने धारण करते हैं, उसी प्रकार (अनुश्रियः वि धिरे) भाँति भाँतिकी शोभाएँ वे धारण करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— अपने तीक्ष्ण हथियारोंसे वीर सैनिक शत्रुका विनाश कर देते हैं, इतना ही नहीं अपितु शत्रुके पशुओंका भी वध कर डालते हैं। हे वीरो ! अपने शुभ अंतःकरणसे हमारी सुबुद्धि बढाओ और हमारे ग्रामोंका विनाश मत करो ॥ ७ ॥

जो बलवान् तथा वीर होते हैं, वे जनताको नाश तथा पापकृत्यों एवं निंदासे बचानेकी चेष्टामें सफलता पाते हैं। इन वीरोंके भुजबलके सहारे जनता सुरक्षित और अकुतोभय होकर अच्छी नगरीमें निवास करती है और वहाँपर अपने पुत्रपौत्रोंका संरक्षण करती है ॥ ८ ॥

वीरोंके रथोंपर सभी आवश्यक युद्धसाधनोंका संग्रह रहता है। वे अपने शरीरोंपर हथियार धारण करते हैं। दूरकी यात्राके लिए सभी जरूरी खानेपीनेकी चीजें रथोंपर इकट्ठी की जाती हैं और उनके रथोंके पहिये भी उचित वेलामें जैसे घूमने चाहिए, वैसे ही फिरते हैं ॥ ९ ॥

१७९३ महान्तो मह्ना विभ्वो३ विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥
१७१४ तद् वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥ १२ ॥
१७९५ तद् वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥ १३ ॥

अर्थ— [१७९३] (ये मरुतः) जो वीर मरुत् (मह्ना) अपनी महत्ताके कारण (महान्तः) बडे (विभ्वः) सामर्थ्यवान् (विभूतयः) ऐश्वर्यशाली, तथा (स्तृभिः) नक्षत्रोंसे युक्त (दिव्याः इव) स्वर्गीय देवतागणकी भांति सुहानेवाले, (दूरेदृशः) दूरदर्शी, (मन्द्राः) हर्षित और (सुजिह्वाः) अच्छी जीभ रहनेके कारण अपने (आसभिः) मुखोंसे (स्वरितारः) भलीभाँति बोलनेवाले हैं। वे (इन्द्रे संमिश्लाः) इन्द्रको सहायता पहुंचानेवाले हैं, अतः (परिस्तुभः) सभी प्रकारसे सराहनीय हैं ॥ ११ ॥

[१७९४] हे (सु जाताः मरुतः) कुलीन वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारा (तत् महित्वनं) वह बडप्पन सचमुच प्रसिद्ध है। (अदितेः इव दीर्घं व्रतं) भूमिके विस्तृत व्रतके समान ही (वः दात्रं) तुम्हारी उदारता बहुत बडी है, (यस्मै) जिस (सु-कृते) पुण्यात्मा (जनाय) मानवको तुम (त्यजसा) अपनी त्यागवृत्तिसे जो (अराध्वं) दान देते हो, (तत्) उसे (इन्द्रः चन वि ह्रुणाति) इन्द्र भी विनष्ट नहीं कर सकता है ॥ १२ ॥

[१७९५] हे (अ-मृतासः मरुतः) अमर वीर मरुत्गण ! (वः तत् जामित्वं) तुम्हारा वह भाईपन बहुत प्रसिद्ध है, (यत्) जिस (परे युगे) प्राचीन कालमें निर्मित (शंसं) स्तुतिको सुनकर तुम हमारी (पुरु आवत) बहुत रक्षा कर चुके हो और उसी (अया धिया) इस बुद्धिसे (मनवे) मनुष्यमात्रके लिए (साकं नरः) मिलजुलकर पराक्रम करनेवाले नेता बने हुए तुम (दंसनैः) अपने कर्मोंसे (श्रुष्टिं आव्य) ऐश्वर्यकी रक्षा करके उसमें विद्यमान (आ चिकित्रिरे) दोषोंको दूर हटाते हो ॥ १३ ॥

भावार्थ— जनताका हित करनेके लिए वीरोंके बाहु प्रस्फुटित होने तथा आगे बढने लगते हैं और उनकी छातीपर एवं कंधोंपर विभिन्न वीरभूषण चमकते हैं। उनके शस्त्र तीक्ष्ण धाराओंसे युक्त होते हैं। पंछी जिस भाँति अपने डैनोंसे सुहाने लगते हैं, उसी प्रकार ये वीर इन सभी आभूषणों एवं आयुधोंसे बडे भले प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

वीरोंमें श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं, इसी कारणसे वे महान् तथा ऊँचे पदपर विराजमान होते हैं और वे अत्यधिक सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान्, दूरदर्शी, तेजस्वी, उल्लसित, अच्छे भाषण करनेहारे और परमात्माके कार्यका बीडा उठानेके कारण सभीके लिए प्रशंसनीय हैं ॥ ११ ॥

वीर पुरुष बडी भारी उदारतासे जो दान देते हैं, उसीसे उनका बडप्पन प्रकट होता है। पृथ्वीके समान ही ये बडे विशालचेता एवं उदार हुआ करते हैं। शुभ कर्म करनेवालेको इनसे जो सहायता मिलती है, वह अप्रतिम तथा बेजोड ही है। एक बार ये वीर अगर कुछ कार्यकर्ताको दे डालें, तो कोई भी इस दानको छीन नहीं सकता। वीरोंकी देनको छीन लेनेकी मजाल भला किसमें होगी ? विशेषतया जब सुयोग्य कार्यकर्ता उस दानको पानेके अधिकारी हों ॥ १२ ॥

तुम वीरोंका भ्रातृप्रेम सचमुच अवर्णनीय है। अतीतकालमें तुम भलीभाँति हमारी रक्षा कर ही चुके हो, लेकिन आगामी युगमें उसी उदार मनोवृत्तिसे सारे मानवोंकी रक्षाके लिए तुम सभी वीर मिलजुलकर एक दिलसे अपने कर्मों द्वारा जिस रक्षणके गुरुतर कार्यको उठाना चाहते हो, वह भी पूर्णतया त्रुटिहीन एवं अविकल है ॥ १३ ॥

१७९६ येनं दीर्घं मरुतः शूशवांम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।
आ यत् ततनंन् वृजनं जनांस एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥ १४ ॥
१७९७ एषः वः स्तोमों मरुत इयं गी- र्मान्दार्यस्य मान्यस्यं कारोः ।
एषा यांसीष्ट तन्वें वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदांनुम् ॥ १५ ॥

[१६७]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। देवता- १ इन्द्रः; २-११ मरुत। छन्दः- त्रिष्टुप्; (१० पुरस्ताज्ज्योतिः)।)
१७९८ सहस्रं त इन्द्रोतयों नः सहस्रमिषों हरिवो गूर्ततमाः ।
सहस्रं रायों मादयध्यै सहस्रिण उपं नो यन्तु वाजाः ॥ १ ॥
१७९९ आ नोऽवोंभिर्मरुतों यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद् दिवैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्यं चिद् धनयंन्त पारे ॥ २ ॥

अर्थ— [१७९६] हे (तुरासः मरुतः) वेगवान् वीर मरुतो ! (येन युष्माकेन परीणसा) जिस तुम्हारे ऐश्वर्यके सहयोगसे हम (दीर्घं) बडे बडे कार्य (शूशवाम) करते हैं और (यत्) जिससे (जनासः) सभी लोग (वृजने) संग्रामोंमें (आ ततनन्) चतुर्दिक् फैल जाते हैं- विजयी बन जाते हैं- (तत् इष्टिं) उस तुम्हारी शुभ इच्छाको हम (एभिः यज्ञेभिः) इन यज्ञकर्मोंसे (अभि अश्यां) प्राप्त हों ॥ १४ ॥

[१७९७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्तिके तथा (मान्यस्य) संमानार्ह (कारोः) कारीगर या कविका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए है । यह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्नके साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीरकी वृद्धि करनेके लिए तुम्हें (आ यासीष्ट) प्राप्त हो उसी प्रकार (वयां) हमें (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) शीघ्र विजय (विद्याम) प्राप्त हो ॥ १५ ॥

[१६७]

[१७९८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः ऊतयः) हमारी रक्षा करनेके लिए (ते सहस्रं) तेरे हजारों साधन हैं, हे (हरिवः) घोडोंवाले इन्द्र ! तेरे (गूर्ततमाः सहस्रं इषः) प्रशंसाके योग्य हजारों तरहके अन्न तथा (मादयध्यै सहस्रं रायः) हमें आनन्दित करनेके लिए हजारों तरहके धन तथा (सहस्रिणः वाजाः) हजारों तरहके बल (नः उप यन्तु) हमें प्राप्त हों ॥ १ ॥

[१७९९] (सु-मायाः) ये अच्छे कौशलसे युक्त (मरुतः) वीर मरुत्गण अपने (अवोभिः) संरक्षणक्षम शक्तियोंके साथ और (ज्येष्ठेभिः) श्रेष्ठ (बृहत्-दिवैः वा) रत्नोंके साथ (नः अच्छ आ यान्तु) हमारे निकट आ जाएँ । (अध यत्) और तदुपरान्त (एषां परमाः नियुतः) इनके उत्तम घोडे (समुद्रस्य पारे चित्) समुद्रके भी परे जाकर (धनयन्त) धन लानेका प्रयत्न करें ॥ २ ॥

भावार्थ— तुम्हारी महान् सहायता पाकर ही हम बडे बडे कर्म कर सके हैं और उसी तुम्हारी सहायतासे सभी लोग भाँति भाँतिके युद्धोंमें विजयी बन सके हैं । हमारी यही लालसा है कि, अब शुरू किये जानेवाले कर्मोंमें वही तुम्हारी पुरानी सहायता हमें मिले ॥ १४ ॥

उच्च कोटिके कविका बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरोंका उत्साह बढानेके लिए उन्हें प्राप्त हो और हमें अन्न सामर्थ्य तथा विजय मिले ॥ १५ ॥

इस इन्द्रके हजारों तरहके रक्षाके साधन हमें प्राप्त हों, अनेकों तरहके प्रशंसनीय अन्न, अनेक तरहके आनन्ददायक धन तथा हजारों तरहके बल हमें प्राप्त हों ॥ १ ॥

निपुण वीर अपनी संरक्षणक्षम शक्तियोंके साथ हमारी रक्षा करें और दिव्य रत्न प्रदान करके हमारी संपत्ति बढावें । उसी प्रकार इनके घोडे भी समुद्रपार जाकर वहाँसे संपत्ति लायें और हममें वितीर्ण करें ॥ २ ॥

१८०० मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥ ३ ॥
१८०१ परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥
१८०२ जोषद् यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात् त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥
१८०३ आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद् वो मरुतो हविष्मान् गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१८००] (सु-धिता) भली भाँति सुदृढ ढंगसे पकडी हुई, (घृताची) तेज बनाई हुई (हिरण्यनिर्णिक्) सुवर्णकी तरह चमकनेवाली (ऋष्टिः) तलवार (उपरा न , मेघमण्डलमें विद्यमान् बिजलीके समान (येषु) जिन वीरोंके निकट (सं मिम्यक्ष) सदैव रहा करती है, वह (गुहा चरन्ती) परदेमें संचार करती हुई (मनुषः योषा न) मानवकी नारीके समान कभी अदृश्य रहती है और कभी कभी (विदथ्या इव वाक्) यज्ञसभाकी वाणीकी भांति (सभा-वती) सभासदोंमें प्रकट हुआ करती है ॥ ३ ॥

[१८०१] (शुभ्राः) तेजस्वी, (अयासः) शत्रु पर हमला करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (साधारण्या इव) सामान्य नारीके साथ जैसे लोग बर्ताव रखते हैं, उसी तरह (यव्या) जौ उत्पन्न करनेवाली धरती पर (परा मिमिक्षुः) बहुत वर्षा कर चुके हैं। (घोराः) उन्हें देखते ही मनमें तनिक भय उत्पन्न करनेवाले मरुतोंने (रोदसी) आकाश एवं धरतीको (न अप नुदन्त) दूर नहीं हटा दिया। अर्थात् उनकी उपेक्षा नहीं की, क्योंकि (देवाः) प्रकाशमान उन मरुतोंने (सख्याय) सबसे मित्रता प्रस्थापित करनेके लिए ही (वृधं) बडप्पनका (जुषन्त) अंगीकार किया है ॥४॥

[१८०२] (असु-र्या) जीवन देनेहारी और (नृ-मनाः) वीरों पर मन रखनेवाली (रोदसी) धरती या विद्युत् (तत् ईं) जो इनके (सचध्यै) सहवासके लिए (जोषत्) उनकी सेवा करती है। वह (वि-सित-स्तुका) केश सँवारकर ठीक बांधे हुए (त्वेषप्रतीका) तेजस्वी अवयववाली (सूर्या इव) सूर्यासावित्रीके समान (विधतः रथं) विधाताके रथपर (नभसः इत्या न) सूर्यकी गतिके समान विशेष गतिसे (आ गात्) आ पहुँची ॥ ५ ॥

[१८०३] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यत्) जब (अर्कः) पूजनीय, (हविष्मान्) हविष्यान्न समीप रखनेवाला और (सुत-सोमः) जिसने सोमरस निचोड रखा है, वह (वः दुवस्यन्) तुम वीरोंकी पूजा करनेहारा उपासक (विदथेषु) यज्ञोंमें (गाथं) स्तोत्रका (आ गायत्) गायन करता है, तब (युवानः) तुम युवक वीर (नि-मिश्लां) नित्य सहवासमें रहती हुई (पज्रां) बलशाली (युवतिं) नवयौवना-स्वपत्नीको (शुभे) अच्छे मार्गमें, यज्ञमें (अस्थापयन्त) प्रस्थापित करते हो, ले आते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— वीरोंकी तलवार श्रेष्ठ फौलादकी बनी हुई होती है और वह तीक्ष्ण एवं स्वर्णवत् चमकीली दीख पडती है। वीर लोग उसे बहुत मजबूत तरहसे हाथमें पकडे रहते हैं। तथापि वह मानवी महिलाके समान कभी कभी मियानमें छिपी पडी रहती है और यज्ञिय मंत्रघोषके समान वह किन्हीं अवसरोंपर युद्धके जारी रहनेपर बाहर अपना स्वरूप दर्शाती है ॥३॥

जो शूर तथा वीर हैं, वे उर्वरा भूमिको बडे परिश्रमपूर्वक जोतते हैं और मेघ भी ऐसी धरती पर यथेष्ट वर्षा करते हैं। जिस प्रकार सामान्य नारीसे कोई भी सम्बन्ध रखता है, उसी प्रकार ये वीर भी भूलोक एवं द्युलोकमें विद्यमान सब चीजोंसे मित्रतापूर्वक सम्पर्क प्रस्थापित करते हैं। इसीसे इन वीरोंको बडप्पन प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥

वीरोंकी पत्नी वीरों पर असीम प्रेम करती है और वह खूब सँवारकर तथा बन-ठनके या साजसिंगार करके जैसे सावित्री पतिके घर जानेके लिए विधाताके रथ पर बैठ गयी थी वैसे ही पतिगृह पहुँचनेके लिए वह भी वीरोंके रथ पर चढ जाती है ॥ ५ ॥

जब उपासक वीरोंकी प्रशंसा करते हैं, तब वीरोंकी धर्मपत्नी सन्मार्ग पर चलती हुई अपने पतिका यश बढाती है ॥६॥

१८०४ प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥ ७ ॥
१८०५ पान्ति मित्रावरुणाववद्या–च्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥ ८ ॥
१८०६ नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसो ऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥ ९ ॥
१८०७ वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥ १० ॥

अर्थ— [१८०४] (एषां मरुतां) इन वीर मरुतोंका (यः वक्म्यः) जो वर्णनीय एवं (सत्यः) सच्चा (महिमा अस्ति) बडप्पन है (तं प्र विवक्मि) उसका मैं भलीभाँति बखान करता हूँ। (यत् ईं) वह इस तरह कि यह (स्थिरा चित्) अटल धरती भी (सचा) इनका अनुसरण करनेवाली (वृष-मनाः) बलवानोंसे मनःपूर्वक प्रेम करनेहारी पर वीरपत्नी बननेकी (अहं–युः) अहंकार धारण करनेवाली और (सु-भागाः) सौभाग्य युक्त (जनीः) प्रजा (वहते) धारण करती है, उत्पन्न करती है ॥ ७ ॥

[१८०५] हे (मरुतः !) वीर–मरुतो ! (मित्रा-वरुणौ) मित्र एवं वरुण (अवद्यात्) निंदनीय दोषोंसे (ईं पान्ति) रक्षण करते हैं। (अर्यमा उ) अर्यमा ही (अ–प्रशस्तान्) निंदा करनेयोग्य वस्तुओंको (चयते) एक ओर कर देता है और (उत) उसी प्रकार (अ–च्युता) न हिलनेवाले तथा (ध्रुवाणि) दृढ शत्रुओंको भी (च्यवन्ते) अपने पदों परसे हटल देते हैं, (ईं) यह तुम्हारा (दाति–वारः) दानका वर हमेशा (ववृधे) बढता जाता है। तुम्हारी सहायता अधिकाधिक मिलती रहती है ॥ ८ ॥

[१८०६] हे (मरुतः !) वीर–मरुतो ! (वः शवसः) तुम्हारे सामर्थ्यकी (अन्तं) चरम सीमा (अन्ति) समीपसे या (आरात्तात् चित्) दूरसे भी (अस्मै) हमें (नहि नु आपुः) सचमुच प्राप्त नहीं हुई है। (ते धृष्णुना शवसा) वे वीर आवेशयुक्त बलसे (शूशुवांसः) बढनेवाले, अपने (धृषता) शत्रुदलकी धज्जियाँ उडानेवाले बलसे (द्वेषः) शत्रुओंको (अर्णः न) जलके समान (परि स्थुः) घेर लेते हैं ॥ ९ ॥

[१८०७] (अद्य वयं) आज हम (इन्द्रस्य प्र–इष्ठाः) इन्द्रके अतीव प्रिय बने हैं (वयं) हम (श्वः) कल भी उसी तरह उसके प्यारे बनेंगे। (पुरा वयं) पहले हम (नः) हमें (महि च) बडप्पन मिल जाय इसलिए (द्यून् अनु) प्रतिदिन (स–मर्ये) युद्धोंमें (वोचेमहि) घोषित कर चुके हैं– प्रार्थना कर चुके (तत्) कि (ऋभु-क्षाः) वह इन्द्र (नरां) सब मानवोंमें (नः) हमें (अनु स्यात्) अनुकूल बने ॥ १० ॥

भावार्थ— वीरोंकी महिमा इतनी अवर्णनीय है कि, धरतीमातातक उनकी शूरता पर लुब्ध होकर अच्छी भाग्यशाली प्रजाका धारणपोषण करती है। इन वीरोंकी महिलाएँ भी इनके पराक्रमसे संतुष्ट होकर अच्छे गुणोंसे युक्त संतानको जन्म देती हैं ॥ ७ ॥

उपासकको मित्र, वरुण तथा अर्यमा दोषोंसे और निंदासे बचाते हैं। उसी प्रकार ये वीर सुस्थिर शत्रुओंको भी पद-भ्रष्ट करके सारी प्रजाको प्रगतिशील बननेमें सहायता पहुँचाते हैं। सहायता करनेका गुण इनमें प्रतिपल बढता ही रहता है ॥ ८ ॥

पराक्रम कर दिखलानेकी जो शक्ति वीरोंमें अंतर्निगूढ बनी रहती है, उसकी चरम सीमाका ज्ञान अभीतक किसीको भी नहीं। चूँकि उन वीरोंमें यह सामर्थ्य छिपा पडा है कि, उनके शत्रुओंको तुरन्त पराभूत तथा हतबल कर डाले, अतः वे प्रतिपल वर्धिष्णु ही बने रहते हैं। इसी दुर्दम्य शक्तिके सहारे वे शत्रुको घेरकर उसे विनष्ट कर देते हैं ॥ ९ ॥

हम प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि, अतीत वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालोंमें वह हम पर कृपादृष्टि रखे जिससे हमें बडप्पन मिले और स्पर्धामें उसकी मददसे विजयी बनें ॥ १० ॥

१८०८ एष वः स्तोमो मरुत इयं गी–र्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१६८]

(ऋषिः– अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता– मरुतः । छन्दः– जगती; ८–१० त्रिष्टुप् ।)

१८०९ यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणि–र्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुवितायु रोदस्यो–र्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

१८१० वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥

अर्थ— [१८०८] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्तिके तथा (मान्यस्य) सम्मानके योग्य (कारोः) कविका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए है। यह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्नके साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीरकी वृद्धि करनेके लिए तुम्हें (अयासिष्ट) प्राप्त हो, उसी प्रकार (वयां) हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीरदानुं) शीघ्र विजय (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१६८]

[१८०९] (यज्ञा–यज्ञा) हर कर्ममें (वः) तुम्हारा (स–मना) मनका समभाव (तुतुर्वणिः) सेवा करनेमें त्वरा करनेवाला है; तुम अपना (धियं धियं) हर विचार (देव–याः उ) दैवी सामर्थ्य पानेकी इच्छासे ही (दधिध्वे) धारण करते हो। (रोदस्योः) आकाश एवं पृथ्वीकी (सुविताय) सुस्थितिके लिए तथा (महे अवसे) सबके पूर्ण रक्षणके लिए (सु–वृक्तिभिः) अच्छे प्रशंसनीय मार्गोंसे (वः) तुम्हें (अर्वाचः) अपनी ओर (आ ववृत्यां) आकर्षित करता हूँ ॥ १ ॥

[१८१०] (ये) जो (वव्रासः न) सुरक्षित स्थानोंके समान सबको सुरक्षित रखते हैं और जो (स्व–जाः) अपनी निजी स्फूर्तिसे कार्य करते हैं और (स्व–तवसः) अपने बलसे युक्त होनेके कारण (धूतयः) शत्रुओंको हिला देते हैं वे (इषं) अन्नप्राप्ति तथा (स्वः) स्वप्रकाशके लिए ही (अभिजायन्त) सब तरहसे जन्मे होते हैं, वे (अपां ऊर्मयः न) जलकी तरंगोंके समान (सहस्रि–यासः) हजारों लोगोंको प्रिय होते हैं; वेही (वन्द्यासः गावः उक्षणः न) पूज्य गौ तथा बैलोंके समान (आसा) हमारे समीप रहें ॥ २ ॥

भावार्थ— उच्च कोटिके कविका बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरोंका उत्साह बढानेके लिए उन्हें प्राप्त हो और हमें अन्न, सामर्थ्य तथा विजय मिले ॥ ११ ॥

वीरोंके मनकी संतुलित दशा ही उन्हें हर शुभ कार्यमें प्रेरित करती है, स्फूर्ति प्रदान करती है। वे ख्याल करते हैं कि, दैवी शक्ति पाकर सब लोगोंकी सुस्थिति एवं सुरक्षाके लिए ही उसका उपयोग करना चाहिए। इसीलिए ऐसे महान् वीरोंको अपने अनुकूल बनाना चाहिए ॥ १ ॥

स्वयं प्रेरणासे ही वीर सैनिक जनताका संरक्षण करनेके लिए आगे आते हैं। अपनी शक्तिसे शत्रुओंका नाश करके वे जनताको भयमुक्त करते हैं। वे मानों लोगोंको अन्न एवं तेजस्विता देनेके लिए ही जन्मे हों। पानीके समान सभी लोग उन्हें चाहते हैं और सबकी यही इच्छा है कि, गाय बैल जैसे वे अपने समीप सदैव रहें ॥ २ ॥

१८११ सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ ३ ॥

१८१२ अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययु रमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवु र्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥

१८१३ को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्योई नैतशः ॥ ५ ॥

१८१४ क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥

अर्थ—[१८११] (सुताः) निचोडे हुए (पीतासः) पिये हुए (हृत्सु) हृदयमें जाकर (तृप्त-अंशवः) तृप्ति करनेवाले (सोमासः न) सोमरसके समान, (दुवसः न) पूज्य मानवोंके समानही जो वीर पुरुष राष्ट्रमें (आसते) रहते हैं (एषां अंसेषु) उनके कंधों पर (रम्भिणी इव) लाठियोंको ले चढाई करनेवाली सेनाके समान हथियार (आ रारभे) विद्यमान हैं। उसी प्रकार उनके (हस्तेषु खादिः) हाथोंमें अलंकार तथा (कृतिः च) तलवार भी (सं दधे) भली प्रकार धरे हुए हैं ॥ ३ ॥

[१८१२] (स्व-युक्ताः) स्वयं ही कर्ममें निरत होनेवाले वे वीर (दिवः) द्युलोकसे (वृथा) अनायासही (अव आ ययुः) नीचे आये हुए हैं। हे (अ-मर्त्याः) अमर वीरो ! (त्मना) तुम अपने (कशया) कोडेसे घोडोंको (चोदत) प्रेरित करो। ये (अ-रेणवः) निर्मल (तुवि-जाताः) बलके लिए प्रसिद्ध तथा (भ्राजत्-ऋष्टयः) तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (दृळ्हानि चित्) सुदृढोंको भी (अचुच्यवुः) हिला देते हैं ॥ ४ ॥

[१८१३] हे (ऋष्टि-विद्युतः मरुतः) आयुधोंसे विराजमान वीर मरुतो ! तुम (इषां) अन्नके लिए (पुरु-प्रैषाः) बहुत प्रेरणा करनेहारे हो। (धन्व-च्युतः न) धनुष्यसे छोडे हुए बाणकी तरह (अ-हन्यः) जिसे मारनेकी कोई आवश्यकता नहीं, ऐसे (एतशः न) सिखाये हुए घोडेके समान (वः अन्तः) तुममें (त्मना) स्वयं ही (जिह्वया) जीभके साथ-वाणी सहित (हन्वा इव) ठुड्डी जैसे हिलती है, वैसे ही (कः रेजति) कौन भला प्रेरणा करता है ? ॥ ५ ॥

[१८१४] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यस्मिन्) जहाँसे (आयय) तुम आते हो, (अस्य महः रजसः) उस प्रसिद्ध विस्तृत अंतरिक्षलोकके (परं क्व स्वित्) उस ओरका छोर कौनसा है ? (अवरं क्व) और इस ओरका भी कौन है ? (यत्) जब कि तुम (सं-हितं) इकट्ठे हुए मेघोंको तथा शत्रुओंको (च्यावयथ) हिला देते हो, उस समय (अद्रिणा) वज्रसे (वि-थुरा इव) निराश्रितके समान (त्वेषं अर्णवं) उन तेजस्वी मेघों या शत्रुओंको तुम (वि पतथ) नीचे गिरा देते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— सोमरसके सेवनके उपरान्त जैसे हर्ष एवं उमंगमें वृद्धि होती है उसी प्रकार जो वीर जनतामें कर्म करनेका उत्साह बढाते हैं उनके कंधों पर हथियार और हाथमें ढाल तलवार दिखाई देते हैं ॥ ३ ॥

अपनी ही इच्छासे कार्य करनेवाले ये वीर दिव्यस्वरूपी हैं और निष्काम भावसे विविध कार्योंमें जुट जाते हैं। इन निर्मल एवं तेजस्वी वीरोंमें इतनी क्षमता है कि, प्रबल शत्रुओंमें भी क्या मजाल कि इनके सामने खडे रह सके ॥ ४ ॥

वीर सैनिक अन्नकी वृद्धिके लिए बहुत प्रयत्न करते हैं। धनुष्यसे छोडा हुआ तीर जैसे ठीक पहुँच जाता है, या भली भाँति सिखाया हुआ घोडा जैसे ठीक चलता रहता है, वैसे ही तुम जो कार्यभार उठाते हो, उसे अच्छी तरह निभाते हो। भला इसमें तुम्हें अन्तःप्रेरणा कैसे मिलती होगी ? ॥ ५ ॥

महान् तथा असीम अंतरिक्षमेंसे तुम आते हो और बादलों तथा दुश्मनोंको विचलित करते हो। एवं निराधारोंके समान उन्हें नीचे गिरा देते हो। (इस मंत्रमें बादल और शत्रुओंके बारेमें समान भाव व्यक्त किये हैं।) ॥ ६ ॥

१८१५ सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ ७ ॥
१८१६ प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥
१८१७ असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्व-मादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
१८१८ एष वः स्तोमो मरुत इयं गी-र्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१८१५] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः सातिः न) तुम्हारी देनके समान ही (वः रातिः) तुम्हारी कृपा भी (अम-वती) बलवान्, (स्वर्-वती) सुख देनेवाली, (त्वेषा) तेजस्वी, (वि-पाका) विशेष फल देनेवाली, (पिपिष्वती) शत्रुदलको चकनाचूर करनेवाली तथा (भद्रा) कल्याणकारक है; (पृणतः दक्षिणा न) जनताको संतुष्ट करनेवाले धनाढ्य पुरुषकी दी हुई दक्षिणाके समान (पृथु-ज्रयी) विशेष दिखानेवाली और (असुर्या इव) दैवी शक्तिके समान (जञ्जती) शत्रुसे जूझनेवाली है ॥ ७ ॥

[१८१६] (यत्) जब ये वीर (पविभ्यः) रथके पहियोंसे (अभ्रियां वाचं) मेघसदृश गर्जना (उदीरयन्ति) प्रवर्तित कर देते हैं, तब (सिन्धवः) नदियाँ (प्रति स्तोभन्ति) बौखला उठती हैं (यदि) जिस समय (मरुतः) वीर मरुत् (घृतं) जल (प्रुष्णुवन्ति) बरसाने लगते हैं तब (पृथिव्यां) धरती पर (विद्युतः) बिजलियाँ मानों (अव स्मयन्त) हँसती हैं, ऐसा जान पडता है ॥ ८ ॥

[१८१७] (पृश्निः) मातृभूमिने (महते रणाय) बडे भारी संग्रामके लिए (अयासां मरुतां) गतिमान् वीर मरुतोंका (त्वेषं अनीकं) तेजस्वी सैन्य (असूत) उत्पन्न किया। (ते सप् सरासः) वे इकट्ठे होकर हलचल करनेवाले वीर (अभ्वं अजनयन्त) बडी शक्ति प्रकट कर चुके। (आत् इत्) तदुपरान्त उन्होंने (इषि-रां स्व-धां) अन्न देनेवाली अपनी धारक शक्तिको ही (परि अपश्यन्) चतुर्दिक् देख लिया ॥ ९ ॥

[१८१८] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्तिके तथा (मान्यस्य) सम्मानके योग्य (कारोः) कविका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह स्तोम यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए हैं। यह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्नके साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीरकी वृद्धि करनेके लिए तुम्हें (अयासिष्ट) प्राप्त हो, उसी प्रकार (वयां) हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल तथा (जीरदानुं) शीघ्र विजय (विद्याम) प्राप्त करें ॥ १० ॥

भावार्थ— वीरोंका दान तथा दयालुता शक्ति, सुख, तेजस्विता और कल्याण प्रदान करनेवाली है ही, पर उसीसे शत्रुका नाश करनेका सामर्थ्य भी मिल जाता है ॥ ७ ॥

(आधिभौतिक अर्थ-) इन वीरोंका रथ चलने लगे, तो मेघोंकी दहाडसी सुनाई पडती है और नदियोंको पार करते समय जलप्रवाहमें भारी खलबली मच जाती है। (आधिदैविक अर्थ-) जब वायुप्रवाह बहने लगते हैं, तब मेघगर्जना हुआ करती है, दामिनीकी दमक दीख पडती है और मूसलाधार वर्षाके फलस्वरूप नदियोंमें महान् बाढ आती है ॥ ८ ॥

शत्रुसे जूझनेके लिए मातृभूमिकी प्रेरणासे वीरोंकी प्रचंड सेना अस्तित्वमें आ गयी। एकत्रित बनकर शत्रु पर टूट पडनेवाले इन वीरोंने युद्धमें बडी भारी शक्ति प्रकट की और उन्होंने देखा कि, उस शक्तिमें अन्नका सृजन करनेकी क्षमता थी ॥ ९ ॥

उच्चकोटिके कविका बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरोंका उत्साह बढानेके लिए उन्हें प्राप्त हों और हमें अन्न, सामर्थ्य तथा विजय मिले ॥ १० ॥

×

[१६९]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, चतुष्पदा विराट् ।)

१८१९ महश्चित् त्वमिन्द्र यत एतान् महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान् त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥

१८२० अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टी–र्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥

१८२१ अम्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वा–नापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥

१८२२ त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥

[१६९]

अर्थ— [१८१९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यतः) जिस कारण (त्वं) तू (एतान्) इन (महः चित्) महान्
देवोंकी रक्षा करता है अतः इन (महः चित्) महान् (त्यजसः) त्यागियोंका (वरूता) रक्षक (असि) है । (सः)
वह (वेधः) ज्ञानी इन्द्र ! तू हमें (चिकित्वान्) जानता हुआ (मरुतां) मरुतोंके और (तव हि) अपने (प्रेष्ठा)
बहुत प्रिय (सुम्ना) सुख-साधनोंको (नः) हमें (वनुष्व) दे ॥ १ ॥

[१८२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! जिन (मरुतां) मरुतोंकी (पृत्सुतिः) सेना (स्वः-मीढस्य) सुख प्राप्ति
वाले (प्र-धनस्य) युद्धके (सातौ) समय आने पर बहुत (हासमाना) प्रसन्न होती है, (ते) वे (विश्व-कृष्टीः)
सब जनोंके (विदानासः) ज्ञाता, शत्रुओंको (निः-सिधः) दूर भगानेवाले मरुत् (मर्त्य-त्रा) मनुष्योंमें अन्योंको
छोडकर तुझसे ही (अयुज्रन्) जुडे हैं ॥ २ ॥

[१८२१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरी (सा) वह (ऋष्टिः) तलवार (अस्मे) हमें (अम्यक्) प्राप्त हो।
हमारी सहायताके लिये समीप आये । ये (मरुतः) मरुत (सनेमि) सदा (अभ्वं) जलको (जुनन्ति) प्रेरित
करते हैं । (अतसे) काठमें (शुशुक्वान्) प्रदीप्त (अग्निः चित् हि स्म) अग्नि जैसे लोगोंको और (आपः न)
जल जैसे (द्वीपं) द्वीपको रस देते हैं वैसे मरुत् तुझ इन्द्रको (प्रयांसि) अन्न (दधति) देते हैं ॥ ३ ॥

[१८२२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (याः) जो धन (स्तुतः) स्तुतिको प्राप्त कर (ते) तुझ (वायोः) गतिशील,
इन्द्रका (चकनन्त) कामना करते हैं और (वाजैः) अन्नसे, (मध्वः) मीठा दूध (स्तनं न) जैसे स्तनको बढाता
है, वैसे ही तुझे (पीपयन्त) बढाते हैं (त्वं तू) तू तो, (ओजिष्ठया) ओज-भरी (दक्षिणया इव) दक्षिणासे जैसे
(रातिं) दान करते हैं, वैसे (तं) वह (रयिं) धन (नः) हमें (दाः) दे ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्र मरुतों तथा अन्य महान् देवोंकी भी रक्षा करता है । मरुत् भी बडे त्यागी हैं वे अपने प्राणोंका
मोह छोडकर इन्द्रके साथी बन कर लडते हैं । तब उन्हें विजयमें उत्तम धन प्राप्त होता है। वह इन्द्र और मरुत् हमारी भी
रक्षा करके हमें अपने प्रिय तथा सुखके बढानेवाले साधनोंसे हमें सुख दें ॥ १ ॥

ये मरुत् युद्ध करनेसे घबराते नहीं अपितु युद्धका अवसर आने पर प्रसन्न होते हैं । ये मरुत् दूसरोंको अपना साथी
नहीं बनाते । वे तो इन्द्रको ही साथी मानते और उसीके साथ रहते हैं । इसी तरह मनुष्य भी युद्धके समय घबरायें नहीं
अपितु उसमें, डटकर शत्रुओंसे लोहा लें । मनुष्य सदा श्रेष्ठ वीरको ही अपना साथी बनायें, ताकि समय आने पर वह वीर
अपने साथियोंकी रक्षा कर सके ॥ २ ॥

अग्निसे प्रकाश और गर्मी मिलती है चारों ओरका जल टापूको शीतल रखता है ऐसे ही मरुतोंका दान भी इन्द्रको
प्रसन्न रखता है ॥ ३ ॥

इन्द्रका धन है । उससे इन्द्रकी शक्ति बढती है । स्तोता उसे ही अधिक मात्रामें चाहते हैं। इस इन्द्रको हमेशा
बढाना चाहिए ॥ ४ ॥

१८२३ त्वे रायं इन्द्र तोशतंमाः प्रणेतारः कस्यं चिदृतायोः ।
ते षु णों मरुतों मृळयन्तु ये स्मां पुरा गांतूयन्तींव देवाः ॥ ५ ॥
१८२४ प्रति प्र यांहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन् महः पार्थिवे सदंने यतस्व ।
अध यदेंषां पृथुबुध्नास एता स्तीर्थे नार्यः पौंस्यांनि तस्थुः ॥ ६ ॥
१८२५ प्रतिं घोराणामेतांनामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमै ऋणावानं न पतयंन्त सर्गैः ॥ ७ ॥
१८२६ त्वं मानेंभ्य इन्द्र विश्वजंन्या रदां मरुद्भिः शुरुधो गोअंग्राः ।
स्तवांनेभिः स्तवसे देव देवै र्विद्यामेषं वृजनं जीरदांनुम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१८२३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वे) तुझमें (कस्य चित्) किसी भी (ऋता-योः) यज्ञकी इच्छावाले यजमानके (प्र-नेतारः) प्रेरक और (तोश-तमाः) अत्यन्त आनन्द-दायक (रायः) धन हैं। हे इन्द्र ! (ये स्म) जो (देवाः) देव (पुरा) पूर्वकालसे (गातुयन्ति इव) यज्ञमें जानेके मानो अभ्यासी हैं (ते) वे (मरुतः) मरुत् (नः) हमें (सु मृडयन्तु) बहुत सुखी करें ॥ ५ ॥

[१८२४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (महः) बडे और (मीळ्हुषः) वर्षा करनेवाले (नॄन्) अग्रगामी मरुतोंके (प्रति) पास (प्र याहि) जा । और (पार्थिवे) पृथिवीके (सदने) स्थानोंमें (यतस्व) पराक्रम दिखा । (अध) तब (यत्) जोकि (एषां) इन मरुतोंके पृथु-बुध्नासः) मोटी पीठवाले ये (एताः) रंग-बिरंगे घोडे, (अर्यः) स्वामीकी (पौंस्यानि) सेनायें (तीर्थे न) जैसे उसके जानेके मार्गमें खडी रहती हैं, वैसे (तस्थुः) खडे हैं, उन पर बैठ ॥ ६ ॥

[१८२५] (ये) जो मरुत् (पृतना-यन्तं) युद्ध करनेकी इच्छावाले (मर्त्यं) मनुष्यको अपने (ऊमैः) रक्षा-साधनोंसे, (सर्गैः) रस्सीसे बांधकर गिरा देते हैं। जैसे (ऋणा-वानं) ऋण लेनेवाले अपराधीको वैसे ही (पतयन्त) गिराते हैं, उन (घोराणां) भयंकर (एतानां) शीघ्र-गामी, (अयासां) आक्रमण करने और (आयतां) घेरनेवाले (मरुतां) मरुतोंका (उपब्दिः) शब्द (प्रति शृण्वे) सुनाई देता है ॥ ७ ॥

[१८२६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (मरुत्-भिः) मरुतोंके साथ मिलकर अपनी (विश्वजन्या) विश्वको उत्पन्न करनेवाली शक्तिसे (मानेभ्यः प्रतिष्ठाके लिये (गो-अग्राः) गायोंको आगे रखनेवाली (शुरुधः) शोषक शत्रु-सेनाओंको (रद) काट दे । हे (देव) देव ! तेरी (स्तवानेभिः) स्तुति करनेवाले (देवैः) देवोंसे (स्तवसे) स्तुति होती है । हम तेरी कृपासे (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) जयके साधनको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ८ ॥

१ मानेभ्यः शुरुधः रद— अपने मानकी प्रतिष्ठाके लिए शत्रुओंका संहार करना चाहिए।

भावार्थ— इन्द्रके पास ऐसा धन है जो यजमानोंको सन्तुष्ट करके उन्हें यज्ञ-कार्यमें प्रेरित करता है। वैसे ही इन्द्रके साथी मरुत् भी यज्ञके प्रेरक हैं। क्योंकि वे सदा यज्ञमें जाकर यजमानोंको सुखी करते हैं ॥ ५ ॥

मरुत् पानी वर्षाते हैं। इन्द्र उनकी सहायता करता है और उनके घोडोंकी पंक्तिका निरीक्षण करता है ॥ ६ ॥

जिस प्रकार ऋणी मनुष्य साहुकारका धन नहीं देता तो उसे रस्सीसे बांध कर गिरा देते हैं। उसी प्रकार इन्द्रके साथी मरुत् भी असुरोंको शस्त्रोंसे जकड देते हैं और जकड कर नीचे गिरा देते हैं। यह मरुत् बहुत उत्साही हैं। वे भयंकर, शीघ्र-गामी, आक्रमण करनेवाले और शत्रुओंको घेरनेवाले हैं। ये प्रसन्न होकर ऐसे गरजते हैं, कि इनका शब्द दूर देने लगता है ॥ ७ ॥

इन्द्र यगा चुरानेवाले शत्रुओंका नाश कर ऋषियोंको धनादि देता है। अपने मानकी प्रतिष्ठाके लिए इन्द्र शत्रुओंका संहार करता है। उसका वृत्रहन्ताके रूपमें बडा मान है अतः इन्द्र भी शत्रुओंको मार कर अपना मान बनाये रखता है। मान प्राणकी अपेक्षा भी महत्वपूर्ण है। अतः मनुष्यको भी चाहिए कि वह अपने मानको बचानेके लिये शत्रुओंको संहार करे ॥ ८ ॥

[१७०]

(ऋषिः- १, ३, ४ इन्द्रः, ४ अगस्त्यो वा; २, ५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- १ बृहती, २-४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।)

१८२७ न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद् वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्य॒मुताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥

१८२८ किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २ ॥

१८२९ किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनो ऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥

१८३० अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥

[१७०]

अर्थ— [१८२७] जो आज प्राप्त होना चाहिये वह (नूनं) तो आज (न) नहीं मिल रहा (अस्ति) है, वह (श्वः) कल भी (नो) नहीं मिलनेवाला है। तब (यत्) जो अभी (अद्भुतं) अभूत, संकल्पमें भी नहीं आया, (तत्) उसे (कः) कौन (वेद) जानता है। (अन्यस्य) दूसरेका, (चित्तं) चित्त (अभि सं-चरेण्यं) चलायमान होता है (उत) और (आ-धीतं) संकल्पित विचार भी (वि नश्यति) नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

[१८२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (किं) क्यों (जिघांससि) मारना चाहता है ? (मरुतः) मरुत् (तव) तेरे (भ्रातरः) भाई हैं। (तेभिः) उनसे (साधु-या) उत्तम व्यवहार (कल्पस्व) कर। तू (नः) हमें (सं अरणे) युद्धमें (मा वधीः) मत मार ॥ २ ॥

[१८२९] हे (भ्रातः) भाई (अगस्त्य) अगस्त्य ! तू हमारा (सखा) मित्र (सन्) होता हुआ (नः) हमारा (किं) क्यों (अति मन्यसे) अनादर करता है ? (ते) तेरा (मनः) मन (यथा) जैसा है उसे हम (विद्म हि) खूब जानते हैं तू हमारा भाग (अस्मभ्यं) हमें (इत्) तो (न) नहीं (दित्ससि) देना चाहता ॥३॥

[१८३०] हे इन्द्र ! ऋत्विक् लोग (वेदिं) वेदीको (अरं कृण्वन्तु) अलंकृत करें, सजायें। उसमें (पुरः) सर्व प्रथम (अग्निं) अग्निको (सं इन्धतां) प्रदीप्त करें। तब (तत्र) वहां मैं और तू दोनों (ते) तेरे लिये (अमृतस्य) अमरताको (चेतनं) जगानेवाले (यज्ञं) यज्ञका (तनवावहै) प्रारम्भ करें ॥ ४ ॥

१ अमृतस्य चेतनं यज्ञं— यज्ञ अमरताको जगानेवाला है।

भावार्थ— आज मुझे अपना भाग नहीं मिला, कल भी नहीं मिलेगा कब मिलेगा यह कौन जानता है क्योंकि वह अभी संकल्पमें भी नहीं आया। दूसरेका चित्त स्थिर नहीं होता अतः वह संकल्प करेगा तो भी बदल सकता है। जिस मनुष्यका चित्त स्थिर नहीं होता, वह कभी भी संकल्प नहीं कर सकता। उसके विचार हमेशा बदलते रहते हैं। अतः संकल्प करनेके लिए प्रथम चित्तको स्थिर करना आवश्यक है ॥ १ ॥

भाई भाईके लाभ पर ईर्ष्या नहीं करता क्योंकि उसे अपनेसे भिन्न नहीं मानता। हे इन्द्र ! मैं अपराधी नहीं हूँ, मुझे मारनेकी इच्छा मत कर। नेता सभीसे समानतापूर्वक व्यवहार करे। वह किसीसे भी द्वेष न करे ॥ २ ॥

इन्द्रने कहा अगस्त्य ! तू हमारा मित्र है फिर भी हमें हमारा भाग नहीं देना चाहता। अब मैं तेरे मनको जान गया। तू अब मुझे मनसे नहीं चाहता। तेरे चित्तमें परिवर्तन आ गया है। प्रजा भी राजाका भाग ईमानदारीसे दे देवे। तथा नेताका अनादर कभी न करे ॥ ३ ॥

जिस यज्ञमें अग्निको प्रज्वलित करके उसमें श्रद्धा भक्तिपूर्वक आहुति दी जाती है, ऐसा श्रद्धा और भक्तिसे किया जानेवाला यज्ञ अमरताको प्रदान करता है ॥ ४ ॥

१८३१ त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वा-ध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥

[१७१]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुतः; ३-६ मरुत्वानिन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८३२ प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभि-र्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥

१८३३ एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद् वृधासः ॥ २ ॥

१८३४ स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तू-त स्तुतो मघवा शंभविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वना-न्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥

अर्थ— [१८३१] हे (वसु-पते) धनोंके स्वामी इन्द्र ! (त्वं) तू (वसूनां) धनोंका (ईशिषे) स्वामित्व करता है । हे (मित्र-पते) मित्रोंके रक्षक ! (त्वं) तू (मित्राणां) मित्रोंका (धेष्ठः) बडा धारक, आधार है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ (सं वद) प्रेमसे बोल (अध) और (ऋतुथा) ऋतुके अनुसार, उनके साथ, हमारे दिये (हवींषि) हवियोंको (प्र अशान) खा ॥ ५ ॥

[१७१]

[१८३२] हे (मरुतः) मरुतो ! (अहं एना नमसा) मैं इस नमनसे तथा (सूक्तेन) सूक्तसे (वः प्रति एमि) तुम्हारे समीप आता हूँ । (तुराणां) वेगसे जानेवाले तुम वीरोंकी (सुमतिं) अच्छी बुद्धिकी मैं (भिक्षे) याचना करता हूँ । (वेद्याभिः) इन जानने योग्य स्तुतियोंसे (रराणता) आनन्दित हुए मनसे तुम अपना (हेळः निधत्तः) द्वेष एक ओर धर दो, तथा (अश्वान्) अपने रथके घोडोंको (वि मुचध्वं) मुक्त करो ॥ १ ॥

[१८३३] हे (मरुतः) मरुत् वीरो ! (एषः) यह (नमस्वान्) नम्रतासे तथा (हृदा तष्टः) मनःपूर्वक रचा गया (वः स्तोमः) तुम्हारा काव्य (मनसा धायि) मन लगाकर सुनो । हे (देवाः) तेजस्वी वीरो ! (मनसा ई) मनसे यह हमारा काव्य (जुषाणाः) स्वीकार कर तुम (उप आयात) हमारी ओर आओ । (यूयं हि) क्योंकि तुम (नमसः इत्) सत्कर्मोंकी ही (वृधासः) समृद्धि करनेवाले हो ॥ २ ॥

१ मरुतः नमसः इत् वृधासः— मरुत् वीर उत्तम कर्मोंको ही बढावा देते हैं ।

[१८३४] (स्तुतासः मरुतः नः मृळयन्तु) स्तुत होकर मरुत् हमें सुखी करें (उत) और (शंभविष्ठः मघवा स्तुतः) सबके लिए सुखी होनेवाला ऐश्वर्यवान् इन्द्र भी स्तुत होकर हमें सुखी करे । हे (मरुतः) मरुतो ! (जिगीषा नः विश्वा अहानि) आगे आनेवाले हमारे सब दिन (ऊर्ध्वा) उन्नत तथा (कोम्या वनानि) स्पृहणीय और सबके द्वारा चाहे जाने योग्य (सन्तु) हों ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम यज्ञ करते हैं, उनमें तू हविका ग्रहण कर । अग्निमें यदि ऋतुके अनुसार सामग्री डालकर यज्ञ किया जाए तो वह अनेक तरहसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला होता है ॥ ५ ॥

मैं इन वीरोंकी उपासना करना चाहता हूँ इनके निकट जाकर रहना चाहता हूँ और प्रयत्न करना चाहता हूँ कि उनकी अच्छी बुद्धिसे मैं लाभ उठा सकूं । वे हमपर कभी क्रोध न करें और वे प्रसन्नचित्त हो सतत हमारे पास रहें । यही मेरी अभिलाषा है ॥ १ ॥

हे वीरो ! हमने बडी भक्तिसे ये तुम्हारे स्तोत्र बनाये हैं, अतः मन लगाकर इसे सुनो । तथा हमारे सत्कर्मोंकी उन्नति करो । राष्ट्रमें सदा सत्कर्मोंको ही बढावा मिलना चाहिए । उसीसे राष्ट्र उन्नत हो सकता है ॥ २ ॥

मरुत और इन्द्र दोनों हमसे स्तुत होकर हमें भी सुखी करें और इनकी कृपासे हमारे आगे आनेवाले दिन उत्तम और हमें सुख देनेवाले हों ॥ ३ ॥

१८३५ अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन् तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥
१८३६ येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥
१८३७ त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन् भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१७२]

(ऋषिः– अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता– मरुतः । छन्दः– गायत्री ।)

१८३८ चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः । मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥

अर्थ—[१८३५] हे (मरुतः) मरुतो ! (अस्मात् तविषात् इन्द्रात् अहं) इस बलवान् इन्द्रसे मैं (भिया ईषमानः रेजमानः) डर कर भागता और कांपता हूँ । इसी डरके कारण (युष्मभ्यं) तुम्हारे लिए (हव्या निशितानि आसन्) हवियां तैय्यार करके रखी गई थीं, (तानि आरे चकृम) उन्हें हमने दूर कर दिया, इसलिए (नः मृळत) हमें सुखी करो ॥ ४ ॥

[१८३६] हे इन्द्र (येन शवसा) जिस तेरे बलसे (मानासः उस्राः) प्रकटकी गई किरणें (शश्वतीनां व्युष्टिषु) अनेक उषाओंके प्रकाशित होने पर (चितयन्ते) चमकने लगती हैं । हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (उग्रः उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः सः) वीर, शक्तियोंसे सर्वश्रेष्ठ तथा बल देनेवाला वह तू (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ मिलकर (नः श्रवः धाः) हमें अन्न दे ॥ ५ ॥

[१८३७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (सहीयसः नॄन् पाहि) शत्रुओंका नाश करनेवाले नेताओंकी रक्षा कर और (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ रहनेवाला तू (अवयात हेळाः भव) गुस्सेसे रहित हो । (सुप्रकेतेभिः) उत्तम तेजोंसे युक्त तथा (सासहिः) शत्रुओंको नष्ट करनेवाले बलको तू (दधानः) धारण करनेवाला हो । हम भी (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और शीघ्र दानके स्वभावको प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१७२]

[१८३८] हे (सुदानवः) अच्छे दानशूर और (अ–हि–भानवः) न घटनेवाले तेजसे युक्त (मरुतः ; मरुतो ! (वः यामः चित्रः) तुम्हारी गति आश्चर्यकारक है तथा तुम्हारी (ऊती) संरक्षणक्षम शक्ति भी (चित्रः अस्तु) विलक्षण हो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे मरुतो ! इस बलवान् इन्द्रके डरके कारण हम भयसे कांपते हुए उधर इधर भागनेके कारण असावधानीसे तुम्हारे लिए दी जानेवाली हवियोंकी तरफ ध्यान नहीं दे सके, इसलिए तुम हम पर नाराज न हो अपितु हमें सुखी करो ॥ ४ ॥

इसी इन्द्रकी शक्तिसे प्रेरित होकर किरणें उषःकालमें प्रकाशित होती हैं । ऐसे वीर और वीरताके कारण ही सबसे श्रेष्ठ इस इन्द्रकी कृपासे हम हर तरहका अन्न प्राप्त करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको नष्ट करनेवाले नेताओंकी रक्षा कर और हम पर तू क्रोधित मत हो । क्रोधको दूर करके तू हमारे पास आ । तू उत्तम तेज धारण कर । हम भी अन्न और बल आदि धारण करें ॥ ६ ॥

शत्रुदल पर चढाई करनेकी वीरोंकी योजना बडी विलक्षण है और रक्षण करनेका शक्ति भी बहुत बडी है ॥ १ ॥

१८३९ आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥
१८४० तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः । ऊर्ध्वान् नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥

[१७३]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ; ४ विराट्स्थाना, विषमपदा वा ।)

१८४१ गायत् साम नभन्यं१ यथा वे-रर्चाम तद् वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत् सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥
१८४२ अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यै-र्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥

अर्थ— [१८३९] हे (सु-दानवः मरुतः) भलीभांति दान देनेवाले वीर मरुतो ! (सा वः) वह तुम्हारा (ऋंजती) वेगसे शत्रुदल पर टूट पडनेवाला (शरुः) शस्त्र हमसे (आरे) दूर रहे। (यं अस्यथ) जिसे तुम शत्रुपर फेंकते हो, वह (अश्मा) वज्र भी हमसे (आरे) दूर ही रहे ॥ २ ॥

[१८४०] हे (सुदानवः) अच्छे दानशूर वीरो ! (तृणस्कन्दस्य) तिनकेके समान आसानीसे नष्ट होनेवाले (विशः) इन प्रजाजनोंका नाश (नु) शीघ्र ही (परि वृङ्क्त) दूर हटा दो अर्थात् उन प्रजाओंकी रक्षा करो । (नः जीवसे) हमारे बहुत दिनोंतक जीवित रहनेके लिए हमें (ऊर्ध्वान् कर्त) उच्च कोटिका बनाओ ॥ ३ ॥

[१७३]

[१८४१] (यत्) जब (धेनवः) इच्छा पूर्ण करनेवाली (अदब्धाः) न दबनेवाली (गावः) गौवें (बर्हिषि) यज्ञमें (सद्मानं) बैठे (दिव्यं) दिव्य इन्द्रकी (विवासान्) सेवा करती हैं तब तू (यथा) जैसा (वेः) जानता है, वैसा (नभन्यं) शत्रु-हिंसक (साम) साम (गायत्) गा । हम भी (तत्) वही (स्वः-वत्) सुख-दायी और (वावृधानं) उन्नतिकारक साम इन्द्रके लिये (अर्चाम) कहते हैं ॥ १ ॥

[१८४२] (यत्) जब (अश्नः) खानेकी इच्छावाला इन्द्र, (मृगः) हरिणके (न) समान, (अति जुगुर्यात्) बहुत इच्छा करता है तब (वृषा) बलवान् यजमान (वृष-भिः) बलोंसे युक्त (स्व-इदुहव्यैः) अपने हव्य पदार्थोंसे इन्द्रकी (अर्चत्) पूजा करता है । हे (गूर्त) उद्यमी इन्द्र ! (मन्दयुः) स्तुति करनेवाला, (मर्यः) पुरुष, (यजत्रः) यज्ञकर्ता (होता) होता तेरे लिये (मनां) स्तुतिको (मिथुना) हवि आदिसे युक्त करके (प्र भरते) बोलता है ॥ २ ॥

भावार्थ— शत्रुपर फेंका जाकर उनका विनाश करनेवाला मरुतोंका शस्त्र हमसे दूर रहे, अर्थात् हमपर वह शस्त्र आकर न गिरे ॥ २ ॥

जो जनता तिनकेके समान नष्ट होती हो, उसे सुरक्षित करके उच्च पदतक ले जाओ और दीर्घायु सम्पन्न करो ॥ ३ ॥

इन्द्रके निमित्त उत्साहवर्धक साम गाया जाता है । तब यज्ञमें बैठे हुए इन्द्रकी गायें अपना दूध आदि देकर सेवा करती हैं अर्थात् यज्ञमें इन्द्रके लिए दूध घृतादि पदार्थ दिए जाते हैं ॥ १ ॥

जब इन्द्र हवि चाहता है तब ऋत्विज् लोग उसे दिया करते हैं । यह हवि स्वयं भी बलसे युक्त होकर दूसरोंको भी बलसे युक्त करती है ॥ २ ॥

१८४३ नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन् भरद् गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद् गौ-रन्तर्दूतो न रोदसी चरद् वाक् ॥ ३ ॥
१८४४ ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥
१८४५ तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान् ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥
१८४६ प्र यदित्था महिना नृभ्यो अ-स्त्यरं रोदसी कक्ष्ये३ नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१८४३] वह (होता) दाता इन्द्र (मिता) निश्चित (सद्म) यज्ञगृहकी (परि यन्) ओर जानेपर हविर्भाग (नक्षत्) प्राप्त करता है । (शरदः) शरद् ऋतु और (पृथिव्याः) पृथिवीके (गर्भं) गर्भको (आ भरत्) भर देता है, पुष्ट करता है । उसे यज्ञकी तरफ (नयमानः) ले चलता हुआ (अश्वः) घोडा (क्रन्दत्) शब्द करता है और उसे आता देखकर (गौः) गाय (रुवत्) रंभाती है । वह (वाक्) स्तुतिको ग्रहण करता हुआ (रोदसी) दोनों लोकोंके (अन्तः) बीच (दूतः न) दूतके समान (चरत्) घूमता है ॥ ३ ॥

[१८४४] (देव-यन्तः) देवोंको चाहनेवाले ऋत्विक् इन्द्रको जो (च्यौत्नानि) शत्रु-नाशक हवि (प्र भरन्ते) देते हैं (ता) वे (अपतरा) बहुत उपयोगी हवि हम (अस्मै) इसके लिये (कर्म) देते हैं । वह (दस्म-वर्चाः) दर्शनीय तेज और (सुग्म्यः) उत्तम गतिवाला, (रथे-स्थाः) रथपर बैठा हुआ (इन्द्रः) इन्द्र (नासत्या-इव) अश्विदेवोंके समान हमारा हवि (जुजोषत्) सेवन करे ॥ ४ ॥

[१८४५] (यः ह) जो इन्द्र (सत्वा) शत्रु-नाशक (यः) जो (शूरः) शूर, जो (मघ-वा) धनवान्, (यः) जो (रथे-स्थाः) रथपर बैठनेवाला (प्रतीचः चित्) बहुत विरोधियोंसे भी डट कर (योधीयान्) लडनेवाला (वृषण्-वान्) अनेक बलोंसे युक्त और (ववव्रुषः चित्) आवरण करनेवाले (तमसः) अन्धकारका (वि-हन्ता) नाशक है (तं) उस (उ) ही (इन्द्रं) इन्द्रकी (स्तुहि) स्तुति कर ॥ ५ ॥

[१८४६] (यत्) जो इन्द्र (इत्था) इस प्रकार अपनी (महिना) महत्तासे (नृ-भ्यः) मनुष्योंका (प्र अस्ति) प्रभु है । (कक्ष्ये) कक्षके समान (रोदसी) दोनों लोक (अस्मै) इस इन्द्रके रहनेके लिये (अरं न) पर्याप्त नहीं हैं । वह (इन्द्रः) इन्द्र अपने (वृजनं न) बलके समान (भूम) भूमिको भी अपने भीतर (सं विव्ये) समेटता है । वही (स्वधा-वान्) अपनी धारकशक्तिसे युक्त इन्द्र, जैसे बैल (ओपशं-इव) सींगको, वैसे (द्यां) द्यौको (भर्ति) धारण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— जैसे राजदूत कभी स्थिर नहीं बैठता वैसे इन्द्र भी जहां यज्ञ होते हैं वहां जाता है । इस इन्द्रसे सभी प्रेम करते हैं । उसे देखकर पशु भी अपना प्रेम जताते हैं । घोडा उसे यज्ञकी तरफ ले चलता हुआ प्रेमसे शब्द करता है और गाय भी उसे आता देखकर प्रेमसे रंभाती है ॥ ३ ॥

इन्द्रको जो हवि दी जाती है वह बहुत बलकारी है । उससे इन्द्रमें शत्रुओंको गिरानेकी शक्ति आती है ॥ ४ ॥

इन्द्र बहुत वीर है । अपने असंख्य विरोधियोंसे भी निर्भीक होकर लडता है । वह उत्तम रथी है, अनेक बलोंसे युक्त है तथा अन्धकार फैलानेवालेको नष्ट करता है । इसी तरह राजा भी राष्ट्रमें अज्ञान अन्धकारको फैलानेवालेको नष्ट करे ॥ ५ ॥

इन्द्र द्यौ और भूमिका धारक है । इसीलिये वही सबका स्वामी है । वह इतना विशाल है कि द्युलोक और पृथ्वीलोक भी इसके रहनेके लिए छोटे पडते हैं ॥ ६ ॥

१८४७ समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद् ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥
१८४८ एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत् त आसु मदन्ति देवीः ।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद् गौः सूरींश्चिद् यदि धिषा वेषि जनान् ॥ ८ ॥
१८४९ असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
असद् यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥
१८५० विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥

अर्थ— [१८४७] (ये) जो (स-जोषसः) उत्साहसे युक्त लोग (मदे) आनंदमें (वाजैः) अन्नोंसे तुझ (सूरिं) ज्ञानी (इन्द्रं) इन्द्रको (क्षोणीः) मरुतोंके साथ (अनु-मदन्ति) प्रसन्न करते हैं, वे हे (शूर) शूर! (सतां) श्रेष्ठोंमें (उराणं) श्रेष्ठ (प्रपथिन्तमं) उत्तम मार्ग-दर्शक (त्वा) तुझ इन्द्रको (समत्-सु) युद्धोंमें भी (परि-तंसयध्यै) श्रेष्ठ स्थानपर रखते हैं ॥ ७ ॥

[१८४८] (यत्) जिस समय (देवीः) आकाशस्थानीय (आपः) जल (समुद्रे) समुद्रमें तथा (आसु) इन स्थानोंमें बरसानेके लिये (ते) तुझे (मदन्ति) आनंदित करते हैं, (एव हि) तब (ते) तेरे लिये ये (सवना) सवन (शं) सुखकारक होते हैं। तू (यदि) जब (सूरीन् चित्) ज्ञानी (जनान्) मनुष्योंको (धिषा) बुद्धिसे (वेषि) जानता है, तब उनकी (विश्वा) सारी (गौः) वाणी (ते) तेरे लिये (अनु जोष्या) सेवन करने योग्य (भूत्) होती है ॥ ८ ॥

[१८४९] हे (इन) स्वामी इन्द्र! (नरां न) लोगोंके समान (शंसैः) स्तोत्रोंसे हम लोक (यथा) जिस प्रकार तेरे (सु-सखायः) उत्तम मित्र और (सु-अभिष्टयः) उत्तम धनवाले (असाम) हो सकें। (उक्था) स्तोत्रोंसे, (तुरः न) शीघ्र कार्य करनेवालेके समान (कर्म) कार्य (नयमानः) पूरा करता हुआ (इन्द्रः) इन्द्र (यथा) जिस प्रकार (नः) हमारी (वन्दने-स्थाः) वन्दनामें रहनेवाला (असत्) हो, वैसा ही करो ॥ ९ ॥

[१८५०] हम (नरां न) यज्ञ करनेवालोंके समान (शंसैः) स्तोत्रोंसे (वि-स्पर्धसः) स्पर्धा करते हैं कि जिससे (वज्र-हस्तः) हाथमें वज्र रखनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (अस्माक) हमारा (असत्) हो जाये। (मध्या-युवः) मध्यस्थ लोग (सु-शिष्टौ) उत्तम शिष्टताके समय (मित्रा-युवः न) मित्रता चाहनेवालोंके समान ही (पूः-पतिं) राष्ट्रके रक्षक इन्द्रको (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (उप शिक्षन्ति) दान दिया करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्र मरुतोंके साथ सारी सेनाका नेतृत्व करता है। तब उत्साही वीर गण आनन्दसे भरकर अन्नोंसे इस ज्ञानी इन्द्रको प्रसन्न करते हैं। यह इन्द्र उत्तम मार्गदर्शक है अतः यह हमेशा सेनाके आगे रहता है ॥ ७ ॥

आकाशमें घिरे हुए जल नीचे गिरनेके लिये इच्छा करते हैं और प्रजा भी वृष्टिके लिये यज्ञ रचाती है उस समय ज्ञानी इन्द्रकी स्तुति करते हैं और इन्द्र उन्हें इष्ट फल देता है ॥ ८ ॥

इन्द्र स्तोताओंका उत्तम मित्र और अभीष्ट पूरक है। वह उनकी प्रार्थना पर ध्यान देता है। वह एक बार जिस काममें हाथ डाल देता है, उस कामको पूरा करके ही छोडता है ॥ ९ ॥

जो शत्रुओंका नाश करता है वह इन्द्रका मित्र बनता है यह देख कर दूसरे लोग भी इन्द्रकी मित्रताके लिये यज्ञ करते हैं। वह इन्द्र राष्ट्रका रक्षक है, इसलिए वह सबके लिए मित्रके समान है। ऐसे गुणवान् इन्द्रको अपना बनानेके लिए ज्ञानी जन स्पर्धा करते हैं ॥ १० ॥

१८५१ यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्ध-ञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥
१८५२ मो षू णं इन्द्रात्र पृत्सु देवै-रस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद् यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ १२ ॥
१८५३ एष स्तोमं इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।
आ नो ववृत्याः सुवितायं देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १३ ॥

[१७४]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८५४ त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन् पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्र-स्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥

अर्थ— [१८५१] (कः चित्) हरकोई (यज्ञः हि स्म) यज्ञ (इन्द्रं) इन्द्रको (ऋन्धन्) बढाता है, (जुहुराणः चित्) कुटिलतासे किया गया कर्म तो इन्द्रके (मनसा) मनसे (परि-यन्) दूर चला जाता है । (तीर्थे न) जैसे तीर्थमें (अच्छ) समीपका (ओकः) घर (तातृषाणं) प्यासेको प्रसन्न करता है वैसे यज्ञ इन्द्रको प्रसन्न करता है । (दीर्घः) लम्बा (अध्वा न) मार्ग जैसे कष्ट पहुँचाता है वैसे कुटिल यज्ञ (सिध्रं) कुटिल फल (आ कृणोति) करता है ॥ ११ ॥

[१८५२] (यस्य) जिसकी (यव्या) जोडनेवाली (गीः) वाणी (महः चित्) बडे (मीढुषः) सुख दायक (हविष्मतः) हविसे युक्त (मरुतः) मरुतोंकी भी (वन्दते) वन्दना करती है (अव-याः) वह स्तुति है (शुष्मिन्) बलवाले इन्द्र ! (ते) तेरे लिये भी (अस्ति हि स्म) है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अत्र) इस (पृत्-सु) युद्धमें (देवैः) देवोंके साथ तू (नः) हमें (मो सु) मत छोड ॥ १२ ॥

[१८५३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे) हमारा (एषः) यह (स्तोमः) स्तोम (तुभ्यं) तेरे लिये है । हे (हरि-वः) घोडोंसे युक्त ! तू (एतेन) इससे (नः) हमारे यज्ञके (गातुं) मार्गको (विदः) जान । हे (देव) देव ! धनादि (सुविताय) देनेके लिए (नः) हमारे साथ (आ ववृत्याः) कार्य कर, जिससे हम (जीर-दानुं) विजय देनेवाले वीर, (वृजनं) बल और (इषं) अन्नको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ १३ ॥

[१७४]

[१८५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू सबका (राजा) राजा है । (ये च) जो (देवाः) देव हैं उनके साथ मिलकर तू (नॄन्) मनुष्योंकी (रक्ष) रक्षा कर । हे (असुर) बलवान् ! (त्वं) तू (अस्मान्) हमारी (पाहि) रक्षा कर । (त्वं) तू (सत्-पतिः) श्रेष्ठोंका पालक है । तू (मघ-वा) धनसे युक्त (नः) हमारा (तरुत्रः) तारनेवाला है । (त्वं) तू (सत्यः) सच्चा (वसवानः) आश्रय-दाता और (सहः दाः) बल-दाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यज्ञमें कपट रुचिकर नहीं है वह तो लम्बे मार्गके समान बहुत कष्ट देनेवाला है । इसके विपरीत सत्य यज्ञ मनुष्यके लिए उसी प्रकार आनंददायक होता है, जिस प्रकार मार्गमें जानेवाले प्यासे पथिकको पासमें ही घर दीखने पर होता है ॥ ११ ॥

इन्द्र और मरुत् साथ साथ रहते हैं, इन्द्र राजा है और मरुत् उसके सहकारी सैनिक हैं । इसलिए मरुतोंकी उन्नति देखकर इन्द्र प्रसन्न होता है । और इसी कारण जो स्तुतियां मरुतोंकी होती हैं, उन्हींसे इन्द्र भी प्रसन्न होता है । स्वामी भी अपने सहकारियोंकी उन्नति देखकर खुश हों ॥ १२ ॥

इन्द्र स्तुतिसे प्रसन्न होकर स्तोताके साथ कार्य करता और उसे धनादि देता है ॥ १३ ॥

इन्द्र सबका राजा है । वह सबको शत्रुओंसे बचाता है । वही धन, घर और बलका दाता है । वह सज्जनोंका पालक है ॥ १ ॥

१८५५ दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
१८५६ अजा वृतं इन्द्र शूरपत्नी—र्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
१८५७ शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णास्यव यद् युधा गा—स्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥
१८५८ वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ऽभि स्पृधो यासिषद् वज्रबाहुः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१८५५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (सप्त) सात (शारदीः) शरद् ऋतुके योग्य (पुरः) शत्रुके नगरोंके (शर्म) घरोंको (दर्त्) नष्ट किया, उसी समय (मृध्र--वाचः) दुःखानेवाली वाणी बोलनेवाले (विशः) शत्रुके सैनिकोंको भी (दनः) नष्ट कर दिया। हे (अनवद्य) निन्दा-रहित इन्द्र ! तूने (अर्णाः) बहनेवाले (अपः) जलोंको (ऋणोः) बहाया और (यूने) जवान (पुरु–कुत्साय) पुरुकुत्सके लिये (वृत्रं) वृत्रका (रन्धीः) नाश किया ॥ २ ॥

[१८५६] हे (पुरु-हूत) बहुतों द्वारा प्रार्थित (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नूनं) निश्चयसे (येभिः) जिन मरुतोंके साथ युद्धके लिये (द्यां च) द्युलोकको जाता है उनसे मिलकर (शूर-पत्नीः) वीरोंसे रक्षित होकर तू (वृतः) शत्रुकी दीवारोंको (अज) नष्ट कर देता है और हमारे (दमे) घरमें (अपांसि) जलोंकी (वस्तोः) स्थिरताके लिये (सिंहः न) सिंहके समान वीरतासे इस (अशुषं) सुखानेवाले (तूर्वयाणं) वेगवान् (अग्निं) अग्निकी (रक्षः) रक्षा कर ॥ ३ ॥

[१८५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) वे असुर तेरा (प्र--शस्तये) महत्त्व बढानेके लिये (पवीरवस्य) वज्रके (मह्ना) प्रतापसे (सस्मिन्) उसी (योनौ) युद्ध--स्थलमें (शेषन् नु) सो गये। (यत्) जब तूने (अर्णांसि) जलोंको (अव सृजत्) बहाया और (युधा) युद्ध करते हुए शत्रुके पास (गाः) गया, उस समय तू अपने (हरी) दोनों घोडों पर (तिष्ठत्) बैठा। तू अपने (धृषता) धर्षक, शत्रु--नाशक बलसे (वाजान्) वीरोंको (मृष्ट) पवित्र बना ॥ ४ ॥

[१८५८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (यस्मिन्) जिसके यज्ञमें हवि (चाकन्) चाहता है, (स्यूमन्यू) सुखके अभिलाषी (ऋज्रा) सीधा चलनेवाले (वातस्य) वायुके समान वेगवाले (अश्वा) घोडोंको, (कुत्सं) कुत्सकी ओर (वह) ले जा। (सूरः) सूर्य उसके (अभीके) समीप अपना (चक्रं) चक्र (प्रवृहतात्) चलाये और (वज्र-बाहुः) हाथमें वज्र धारनेवाला इन्द्र (स्पृधः) शत्रुओंकी (अभि) ओर (यासिषत्) जाये ॥ ५ ॥

भावार्थ— शत्रुके नगर कई प्रकारके हैं उनमें कुछ शरद् ऋतुके लिये भी हैं। इन्द्र उनको नष्ट कर वृत्र और उसके साथियोंको मारता है ॥ २ ॥

अग्नि सुखाता और शीघ्र चलता है। अग्निसे ही घरके सारे काम होते हैं। इन्द्र इस अग्निकी रक्षा करता है। और शत्रुके किलोंको दीवारोंको तोडता है। शरीरमें अग्नि रोगजन्तुओंको सुखाकर उन्हें नष्ट करता है और शरीरको स्वस्थ बनाकर उसे चलने फिरने योग्य बनाता है ॥ ३ ॥

जब शत्रु मरकर पृथिवी पर गिरते हैं तो उससे इन्द्रका गौरव बढता है क्योंकि शत्रुको मारना वीरका ही काम है। वह अपने बलसे अपने वीरोंको भी दोष–रहित रखता है ॥ ४ ॥

इन्द्र अपने घोडोंको यज्ञमें ले जा। कुत्सके युद्धमें सूर्य सहायता करता है और इन्द्र शत्रुकी ओर दौडता है। इसी प्रकार यदि राजा सम्मान चाहे तो वह राष्ट्रसे (कु–त्स) बुराईको दूर करनेवाले सज्जनकी रक्षा करे और उसे ही हर प्रकारकी सहायता प्रदान करे ॥ ५ ॥

१८५९ जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥
१८६० रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।
करत् तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥ ७ ॥
१८६१ सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत् पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥
१८६२ त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥

अर्थ— [१८५९] हे (हरि-वः) घोडोंवाले (इन्द्र) इन्द्र ! (चोद-प्रवृद्धः) उत्साहसे वृद्धिको प्राप्त हुए तूने (मित्रेरून्) मित्रोंके वैरी (अदाशून्) अदानी शत्रुओंको (जघन्वान्) मारा (ये) जिन्होंने (आयोः) अन्नके (सचा) साथ तुझ (अर्यमणं) दानीको (प्र पश्यन्) देखा, वे (अपत्यं) सन्तानको (वहमानाः) प्राप्त करते हुए (त्वया) तेरे द्वारा (शूर्ताः) वीर बनाये गये ॥ ६ ॥

१ मित्रेरून् अदाशान् जघन्वान्— इन्द्रने मित्रके समान हित करनेवाले सज्जनोंके वैरी और दान न देनेवालोंको मारा ।

[१८६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कविः) कविने (अर्क-सातौ) स्तुति करनेके समय तेरी (रपत्) प्रशंसा की । तूने (क्षां) पृथिवीको (दासाय) शत्रुके लिये (उप-बर्हणी) शय्या (कः) बना दी– शत्रुको मारा । (मघ-वा) धनी इन्द्रने (तिस्रः) तीनों स्थानोंको (दानु-चित्राः) देने योग्य पदार्थोंसे सुशोभित (करत्) कर दिया । (दुर्योणे) दुर्योणके (मृधि) युद्धमें (कुयवाचं) कुयवाचको (नि श्रेत्) नष्ट किया ॥ ७ ॥

[१८६१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नव्याः) नये ऋषियोंने (ते) तेरे (ता) उन (सना) सनातन स्तोत्रोंको फिर (आ अगुः) गाया । तूने (अवि-रणाय) युद्ध रोकनेके लिये (पूर्वीः) पुरानी (नभः) हिंसक शक्तियोंको (सहः) दबाया है । शत्रुके (पुरः न) नगरोंके समान उनके (अदेवीः) आसुरी (भिदः) भेदक बलोंको भी तूने (भिनत्) तोड दिया । (अदेवस्य) असुर (पीयोः) हिंसक शत्रुके (वधः) शस्त्रास्त्रोंको भी (ननमः) तूने नीचा कर दिया ॥ ८ ॥

[१८६२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू शत्रुओंको (धुनिः) कँपानेवाला है, इन (स्रवन्तीः) बहती हुई (सीराः न) नदियोंके समान तटको (धुनि-मतीः) तोडनेवाले (अपः) जलोंको (ऋणोः) तूने प्रवाहित कर दिया है । हे (शूर) पराक्रमी इन्द्र ! (यत्) जब तू (समुद्रं) समुद्रको जलसे (प्र अति पर्षि) पूरा भर देता है तब (तुर्वशं) तुर्वश और (यदुं) यदुको (स्वस्ति) कुशलतासे (पारय) पार कर ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन्द्रके बहुतसे मित्र हैं । जो लोग उनसे शत्रुता करते हैं, इन्द्र उन्हें मारता है । जो उस इन्द्रको अन्न देता है, इन्द्र उसे पुत्र और वीरता देता है ॥ ६ ॥

स्तुतिके स्थानमें इन्द्रका स्तोत्र गाया जाता है । वह इन्द्र शत्रुको मारकर पृथिवी पर सुला देता है । यागोंके स्थानों में भरपूर दान करता और दुर्योणके मित्र कुयवाचको मारता है । जो बुरे स्थान पर रहता है, वह दुर्योण और जो दुष्टवाणी बोलता है वह कुयवाच है । इन दोनोंको इन्द्र मारता है ॥ ७ ॥

इन्द्र शत्रुओंको मार कर युद्ध रोकता है । तब उसके पराक्रमकी प्रशंसा करनेके लिए ऋषि उसके स्तोत्र गाते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्र रुके हुए जल प्रवाहित करता, समुद्रको भरता और तुर्वश आदिका पालन करता है । जब वह जलोंका प्रवाह खोल देता है, तब नदियां अपने किनारोंको तोडकर बहने लगती हैं, वे नदियां समुद्रको भरती हैं ॥ ९ ॥

१८६३ त्वमस्माकमिन्द्र विश्वधं स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

[१७५]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- स्कंधोग्रीवी बृहती; २-५ अनुष्टुप, ६ त्रिष्टुप् ।)

१८६४ मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दु— र्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

१८६५ आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥

१८६६ त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान् दस्युमव्रत— मोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

अर्थ— [१८६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (विश्व-ध) सर्वदा (अस्माकं) हमारा (अवृक-तमः) बहुत कपटरहित (नरां नृ-पाता) प्रजा-रक्षक है । (सः) वह तू (नः) हमारी (विश्वासां) सारी (स्पृधां) सेनाओंका (सहः-दाः) बल बढानेवाला बन, जिससे हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) दीर्घ जीवन (विद्याम) प्राप्त कर सकें ॥ १० ॥

१ अवृकतमः नृपाता— यह इन्द्र छल कपटसे रहित मनुष्योंका पालक है ।

[१७५]

[१८६४] हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र ! (ते) तेरा (महः) महान् सोम तेरे द्वारा (अपायि) पिया गया है, तू उससे (मत्सि) तृप्त हो । यह (मदः) आनंद देनेवाला सोम अन्य (पात्रस्य इव) पात्रोंमें रखे सोमोंके समान ही (मत्सरः) आनंदकारक है । (ते) तुझ (वृष्णे) दानशील इन्द्रके लिये यह (वाजी) बल बढानेवाला (सहस्र-सातमः) सहस्रोंकी संख्यामें धन प्राप्त करानेमें समर्थ (वृषा) बलवर्धक (इन्दुः) सोम है ॥ १ ॥

[१८६५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः) हमारा (वृषा) बलवर्धक (मत्सरः) आनन्ददायक (वरेण्यः) उत्तम (सहवान्) शत्रु-नाशक शक्तिसे युक्त (सानसिः) दानशील (पृतनाषाट्) शत्रुसेनाको परास्त करनेवाला (अमर्त्यः) अमर (मदः) सोम (ते) तेरे पास (आगन्तु) आये ॥ २ ॥

[१८६६] हे इन्द्र ! (त्वं हि) तू ही (शूरः) वीर, धनोंका (सनिता) दाता है । तूने ही (मनुषः) मनुष्यके (रथं) रथको (चोदयः) प्रेरणा दी है । (सहवान्) बलसे युक्त तू अपने (शोचिषा) तेजसे, आग पर चढे (पात्रं न) बर्तनके समान, (अव्रतं) व्रतहीन (दस्युं) असुरको (ओषः) जला दिया ॥ ३ ॥

भावार्थ— इन्द्र कपट रहित होकर प्रजाकी रक्षा करता है । और सारी सेनाओंको बल प्रदान करता है ॥ १० ॥

सोम उत्साहवर्धक होता है, इन्द्र जिसे पीकर तृप्त होता और असंख्य धन जीतता है ॥ १ ॥

सोम इन्द्रमें उपर्युक्त सारे गुण बढाता है सोम स्वयं भी आनन्ददायक उत्तम और शत्रुनाशक शक्तिसे युक्त है ॥ २ ॥

यह इन्द्र मनुष्यके रथको प्रेरित करता है और शत्रुओंको उसी प्रकार सुखा देता है, जिस प्रकार चूल्हे पर चढे हुए बर्तनको अग्नि । शरीरमें यह इन्द्र--आत्मा इस मनुष्य शरीररूपी रथको प्रेरित करता है, यदि यह इन्द्र न हो तो रथ न चले ॥ ३ ॥

१८६७ मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

१८६८ शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

१८६९ यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१७६]

(ऋषिः– अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता– इन्द्रः । छन्दः– अनुष्टुप्; ६ त्रिष्टुप् ।)

१८७० मत्सि नो वस्यं इष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

अर्थ—[१८६७] हे (कवे) मेधावी इन्द्र! सबके (ईशानः) स्वामी तूने अपने (ओजसा) बलसे (सूर्य) सूर्यका (चक्रं) चक्र (मुषाय) छीन लिया । तू (वातस्य) वायुके (अश्वैः) घोडों द्वारा (शुष्णाय) शुष्णके मारनेके लिये (कुत्सं) कुत्सके पास अपना (वधं) मारक वज्र (वह) ले जा ॥ ४ ॥

[१८६८] हे इन्द्र ! (ते) तेरा (मदः) आनन्द (शुष्मिन्तमः) उत्तम बलकारक है (उत) और तेरा (क्रतुः) कर्म (द्युम्निन्तमः) बहुत अन्न देनेवाला है । (अश्वसातमः) घोडे देनेवालोंमें प्रसिद्ध तू हमारे लिये (वृत्र–घ्ना) वृत्रको मारनेवाले और (वरिवः–विदा) धन देनेवाले शस्त्रोंको (मंसीष्ठाः) दे ॥ ५ ॥

[१८६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यथा) जिस प्रकार तू (पूर्वेभ्यः) पहले (जरितृभ्यः) स्तोताओंके लिये, (तृष्यते) प्यासेके लिये (आपः न) जलके समान और दुःखीके लिये (मयः इव) सुखके समान आनन्दप्रद (बभूथ) हुआ, मैं उस (त्वा) तुझ इन्द्रको (तां) वह पुरानी (नि–विदं) स्तुति (अनु जोहवीमि) बार–बार कहता हूँ । हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीर–दानुं) दीर्घजीवन (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१७६]

[१८७०] हे इन्द्र ! तू (नः) हमें (वस्यः–इष्टये) धनकी प्राप्तिके लिये (मत्सि) आनंदित कर । तथा हे (इन्दो) सोम ! (वृषा) बलदाता तू (इन्द्रं) इन्द्रके देहमें (आ विश) प्रवेश कर । शत्रुओंको (ऋघायमाणः) मारते हुए देवोंके देहमें (इन्वसि) तू व्याप्त होता है और (शत्रुं) शत्रुको (अन्ति) समीप (न) नहीं (विन्दसि) आने देता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र कुत्सकी रक्षाके लिये उसे वज्रकी सहायता पहुँचाता है ॥ ४ ॥

इन्द्र कर्मसे फल और अन्न–धन प्राप्त करता है । उसका आनन्द भी सबको बल देनेवाला होता है ॥ ५ ॥

प्यासेको जल और दुःखीको सुख मिलनेके समान इन्द्र स्तोताओंका आनन्ददाता और प्रिय है । उसकी कृपासे हम अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

इन्द्रादि देव सोम पीकर शत्रुओंको बहुत दूर भगा देते हैं । शरीरमें यह इन्द्र–आत्मा काम–क्रोधादि शत्रुओंको मारते हुए देवों अर्थात् इन्द्रियोंमें प्रविष्ट होता है अर्थात् उन्हें शक्ति प्रदान करता है ॥ १ ॥

१८७१ तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥
१८७२ यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग् दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥
१८७३ असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥
१८७४ आवो यस्य द्विबर्हसो ऽर्केषु सानुषगसत् ।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—[१८७१] (यः) जो इन्द्र सारी (चर्षणीनां) प्रजाओंका (एकः) अकेला स्वामी है, (यं अनु) जिसको (स्वधा) अन्न (उप्यते) दिया जाता है, जो (वृषा) बलवान् इन्द्र शत्रुओंको पके (यवं न) जौके समान (चर्कृषत्) काट डालता है; तू (तस्मिन्) उसमें अपनी (गिरः) स्तुतियोंको (आ वेशय) प्रविष्ट करा। उसकी स्तुति कर ॥ २ ॥

[१८७२] हे इन्द्र! (पञ्च) पांचों प्रकारकी (क्षितीनां) प्रजाओंका (विश्वानि) सारा (वसु) धन (यस्य) जिस तुझ इन्द्रके (हस्तयोः) हाथोंमें है, वह तू (यः) जो (अस्मध्रुक्) हमारा द्रोही है, उसे (स्पाशयस्व) पराजित कर और (दिव्या अशनिः इव) आकाशसे गिरनेवाली बिजलीके समान उसका (जहि) नाश कर दे ॥ ३ ॥

[१८७३] हे इन्द्र! (यः) जो (ते) तेरे लिये (मयः) सुख (न) नहीं देता, उस (समं) सारे (दुः-नाशं) कठिनतासे नष्ट होनेवाले, (असुन्वन्तं) यज्ञ न करनेवालेको (जहि) मार। (अस्य) इसका (वेदनं) धन (अस्मभ्य) हमें (दद्धि) दे, क्योंकि वह धन (सूरिः) ज्ञानी (चित्) ही (ओहते) प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[१८७४] (अर्केषु) स्तोत्र पढे जाते समय (सानुषक्) सदैव (असत्) विद्यमान रहते हुए तूने (यस्य) जिस (द्वि-बर्हसः) दो प्रकारके यज्ञोंको करनेवाले यजमानकी (आवः) रक्षा की, उसीके समान हे (इन्दो) सोम! (आजौ) युद्धमें (इन्द्रस्य) इन्द्रका तथा दूसरे (वाजेषु) युद्धोंमें अन्य (वाजिनं) वीरका (प्र आवः) रक्षा कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— स्तोता उसकी स्तुति करते हैं जो सबका एक शासक और शत्रुओंका नाश करनेवाला है। वह शत्रुओंको उतनी ही आसानीसे काटता है, जितनी आसानीसे किसान जौकी फसलको काटते हैं ॥ २ ॥

संसारका सारा धन इन्द्रके हाथमें है। वह धन जो छीनता है उसका इन्द्र नाश कर डालता है। इन्द्रके उपासकोंसे जो द्रोह करता है, वह नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

जो इन्द्रको आनंद नहीं देता अथवा यज्ञ नहीं करता, वह धनका भागी नहीं है। इन्द्र उसे मारता और उसका धन यज्ञकर्ताको देता है ॥ ४ ॥

सोमने युद्धमें इन्द्रका रक्षण किया। सोम पीनेसे इन्द्रका उत्साह बढा और उससे इन्द्र विजयी हुआ ॥ ५ ॥

१८७५ यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ । ॥ ६ ॥
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्

[१७७]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८७६ आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः । ॥ १ ॥
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ्
१८७७ ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः । ॥ २ ॥
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे
१८७८ आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि । ॥ ३ ॥
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक्

अर्थ— [१८७५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यथा) जिस प्रकार तू (पूर्वेभ्यः) पहले (जरितृभ्यः) स्तोताओंके लिए (तृष्यते आपः न) प्यासेके लिए जलके समान और दुःखीके लिए (मयः इव) सुखके समान आनन्दप्रद (बभूथ) हुआ, मैं उस (त्वा) तुझ इन्द्रको (तां निविदं) वह पुरानी स्तुति (अनु जोहवीमि) बार बार कहता हूँ । हम (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१७७]

[१८७६] तू (इन्द्रः) इन्द्र (चर्षणि-प्रा) प्रजाका रक्षक (जनानां वृषभः) मनुष्योंमें बलवान् (कृष्टीनां) प्रजाओंका (राजा) स्वामी और (पुरुहूतः) बहुतोंसे सहायतार्थ प्रार्थित (आ) है । तू (स्तुतः) प्रशंसित होकर हमारे लिये (श्रवस्यन्) यश चाहता हुआ (अवसा) रक्षाके साथ (उप मद्रिक्) हमारी ओर, (वृषणा) बलवान् (हरी) घोडे रथमें (युक्त्वा) जोड कर (अर्वाङ्) हमारे समीप (आ याहि) आ ॥ १ ॥

[१८७७] हे (इन्द्रः) इन्द्र ! (ये) जो (ते) तेरे (वृषणः) बलवान् (वृषभासः) सामर्थ्यवान् (ब्रह्म-युजः) शब्दके इशारेसे रथमें जुडनेवाले (वृषरथासः) उत्तम सामर्थ्ययुक्त रथमें जुडनेवाले (अत्याः) घोडे हैं (तान्) उन पर (आ तिष्ठ) बैठ। (तेभिः) उनके द्वारा (अर्वाङ्) हमारी ओर (आ याहि) आ । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमे) सोमके (सुते) बनाने पर हम (त्वा) तुझे (हवामहे) बुलाते हैं ॥ २ ॥

[१८७८] हे इन्द्र ! तू (वृषणं) बलवर्धक (रथं) रथ पर (आ तिष्ठ) बैठ । (ते) तेरे लिये (वृषा) बलवर्धक (सोमः) सोम (सुतः) निचोडा गया है और उसमें (मधूनि) मीठे पदार्थ (परिसिक्ता) मिलाये गये हैं । हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! तू (वृषभ्यां) बलवान् (हरिभ्यां) घोडोंसे रथको (युक्त्वा) जोडकर उस (प्र-वता) विशेष गतिवाले रथसे अपनी (क्षितीनां) प्रजाओंके (मद्रिक्) पास (उप याहि) जा ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्यासेको जल और दुःखीको सुख मिलनेसे जो आनन्द होता है, उसीके समान इन्द्र स्तोताओंको आनन्द-दाता और प्रिय है । उसकी कृपासे हम भी अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

इन्द्र प्रजापालक, बलवान्, तेजस्वी, बहुत प्रतिष्ठित और प्रजाओंका स्वामी है, क्योंकि उसे यश पानेके लिये सभी लोग बुलाते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र अपने बलवान् घोडे रथमें जोडकर आता है । उसके घोडे बलवान्, शक्तिशाली और शब्दके इशारेसे रथमें जुड जानेवाले हैं । ऐसे सुशिक्षित घोडे इन्द्रके हैं ॥ २ ॥

इन्द्रके लिये सोममें मीठे पदार्थ मिलाये जाते हैं, जिन्हें पीनेके लिये वह स्तोताओंके पास जाता है ॥ ३ ॥

१८७९ अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥ ४ ॥

१८८० ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

[१७८]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८८१ यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १ ॥

१८८२ न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन् गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥

अर्थ—[१८७९] हे (इन्द्र) इन्द्र! (अयं) यह (देवयाः) देवोंको प्राप्त होनेवाला (यज्ञः) यज्ञ, (अयं) यह (मियेधः) पवित्र दूध देनेवाला पशु, (इमा) ये (ब्रह्माणि) स्तोत्र और (अयं) यह (सोमः) सोम तेरे लिये है। (बर्हिः) आसन (स्तीर्ण) बिछा हुआ है, हे (शक्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! तू (आ प्र याहि तु) समीप आ इस पर (नि-सद्य) बैठ कर सोम (पिब) पी और (इह) यहां ही अपने (हरी) घोडे (विमुच) खोल ॥ ४ ॥

[१८८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सु-स्तुतः) भली भाँति स्तुति किया हुआ तू (मान्यस्य) प्रतिष्ठा योग्य (कारोः) स्तोताके (ब्रह्माणि उप) स्तोत्रोंके समीप हमारे (अर्वाङ्) यहां (आ-उ याहि) आ। हम (वस्तोः) प्रत्येक दिन तेरी (अवसा) रक्षासे तेरी (गृणन्तः) प्रशंसा करते हुए धनादिको (विद्याम) प्राप्त करें और (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीरदानुं) विजयशील दान (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[१७८]

[१८८१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् ह) जो कि (ते) तेरा (स्या) वह (श्रुष्टिः) धन है (यया) जिससे तू (जरितृभ्यः) स्तोताओंका (ऊती) रक्षक (बभूथ) हुआ है वह हमें दे। (नः) हमारी (महयन्तं) बढती हुई (कामं) कामनाको (मा धक्) नष्ट मत कर। मैं (ते) तेरे (आयोः) मानवके योग्य (विश्वा) सारे (आपः) धनोंको (परि अश्यां) सब ओरसे भोगूँ ॥ १ ॥

[१८८२] हमारी (स्वसारा) अंगुलियोंने (या नु) जिन कार्योंको (योनौ) यज्ञ-स्थानमें (कृणवन्त) किया, (नः) हमारे उन कार्योंको (राजा) तेजस्वी (इन्द्रः) इन्द्र, (न घ) मत (आ दभत्) नष्ट करे। (आपः चित्) जल भी (अस्मै) इसके लिये (सु-तुकाः) अच्छी गतिवाले होकर (अवेषन्) प्राप्त हों। (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमें (सख्या) मित्रता (वयः च) और अन्न (गमत्) दे ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्रके लिये यज्ञ रचाया जाता है, वहाँ सोम बनता और आसन बिछाया जाता है जिस पर बैठ कर वह सोम पीता है ॥ ४ ॥

इन्द्र स्तुतिके स्थान पर आता और स्तोताओंको धनादि देता है। वह इन्द्र प्रतिष्ठाके योग्य है, सभी इसका मान करते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र स्तोताकी इच्छाको बीचमें ही नष्ट नहीं करता, उसे बढाता है। हे इन्द्र ! जिस धनसे तू स्तोताओंकी रक्षा करता है, वसे हमें दे। मैं तेरे सभी धनोंका उपभोग करूं ॥ १ ॥

हमारी उंगलियोंने जिस यज्ञ रूप कर्मको शुरु किया है, राजा इन्द्र उसे बीचमें नष्ट न कर दे। उसे हर तरहके पदार्थ हम प्रदान करते हैं। अतः वह प्रसन्न होकर हमें उत्तम अन्न प्रदान करे ॥ २ ॥

१८८३ जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत ॥ ३ ॥

१८८४ एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥

१८८५ त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रू- नभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भू- र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

[१७९]

(ऋषिः- १-२ लोपामुद्रा; ३-४ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः ५-६ अगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचारी ।
देवता- रतिः । छन्दः- त्रिष्टुप्; ५ बृहती ।)

१८८६ पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूना- मप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥

अर्थ— [१८८३] (शूरः) पराक्रमी (इन्द्रः) इन्द्र (पृत्-सु) युद्धोंमें (नृभिः) सैनिकोंके साथ धनका (जेता) जीतनेवाला; (नाधमानस्य) याचना करते हुए (कारोः) स्तोताको (हवं) पुकारको (श्रोता) सुननेवाला; (दाशुषः) दानशील यजमानके (उपाके) समीप (रथं) रथको (प्र-भर्ता) ठहरानेवाला (यदि च) और यदि यजमान (त्मना) मनसे स्तुति करनेवाला (भूत्) हो तो उसकी (गिरः) वाणियोंको (उत्-यन्ता) ऊपर उठानेवाला होता है ॥ ३ ॥

[१८८४] (सु-श्रवस्या) उत्तम कीर्तिवाला (इन्द्रः) इन्द्र (एव) इस प्रकार (नृभिः) वीरोंके साथ (मित्रिणः) मित्रके (पृक्षः अभि) अन्नको (प्र-खादः) खानेवाला (भूत्) होता है । स्तोताकी इच्छाको (सत्रा करः) सत्य करनेवाला और (यजमानस्य) यजमानका (शंसः) हितैषी इन्द्र (वि-वाचि) जहाँवीर एक दूसरे के विरुद्ध बोलते हैं ऐसे (स-मर्ये) युद्धमें (इषः) अन्नोंकी (स्तवते) स्तुति करता है ॥ ४ ॥

[१८८५] हे (मघवन्) धनवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम लोग (महतः) बडे (मन्यमानान्) घमण्डी (शत्रून्) शत्रुओंको (त्वया) तेरे साथ मिल कर (अभि स्याम) हरा दें । (त्वं) तू हमारा (त्राता) रक्षक और (त्वं उ) तू ही (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि, उन्नतिका कारण (भूः) बन । जिससे हम (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) जीवन (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[१७९]

[१८८६] (पूर्वीः शरदः) अनेकों वर्षोंतक (दोषा वस्तोः) दिन रात और (उषसः) उषाओंमें काम करती हुई अब (जरयन्तीः) वृद्ध हो जानेके कारण (अहं शश्रमाणा) मैं थक गई हूँ । अब (जरिमा) बुढापा (तनूनां श्रियं मिनाति) मेरे अंगोंकी शोभाको नष्ट कर रहा है, इसलिए (वृषणः पत्नीः जगम्युः) तरुण और वीर्यवान् व्यक्ति ही पत्नियोंके समीप जाएं ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र वीरोंका साथी, विपदामें पडे हुओंका सच्चा सहायक और भक्तिका-उपकारका सच्चा फल देनेवाला है ॥ ३ ॥

यजमानकी इच्छा पूर्ण करता और उसे युद्धमें अन्न-धन प्राप्त कराता है । वह इन्द्र सदा अपने मित्रके अन्नको ही खाता है । और जहां वीर परस्पर आव्हान करते हैं, ऐसे युद्धमें यह इन्द्र अपने मित्रकी रक्षा करता है ॥ ४ ॥

इन्द्रके सहायक बनने पर बडे-बडे घमण्डियोंका शिर नीचा हो जाता है । हे इन्द्र । तू ही हमारा रक्षक और उन्नति करनेवाला बन । हम दूसरेके पास न जायें ॥ ५ ॥

अनेकों वर्षोंतक दिन रात लगातार काम करनेके कारण स्त्री बुढापा आने पर थक जाती है, और उस समय वह बुढापा उस स्त्रीकी सारी सुन्दरता और शोभा हर लेता है और उस समय उसमें प्रजनन शक्ति भी नहीं रह जाती, इसलिए सन्तान प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले स्त्री पुरुषोंको चाहिए कि वे तारुण्यावस्थामें ही सन्तान प्राप्तिके लिए प्रयत्न करें ॥ १ ॥

१८८७ ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन् त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥
१८८८ न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत् स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत् सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥
१८८९ नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥
१८९० इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१८८७] (ये चित् हि) जो भी (पूर्वे ऋतसापः आसन्) पहले सत्यबोलनेवाले ऋषि थे, वे (देवेभिः साकं ऋतानि अवदन्) देवोंके साथ सत्य बोलते थे, वे भी (अव असुः) वीर्य सिंचन करते थे, (न हि अन्तं आपुः) वे भी ब्रह्मचर्यका अन्त नहीं पा सके । (पत्नीः वृषभिः आ जगम्युः) पत्नियां उन बलवान् और वीर्य सिंचनमें समर्थ अपने पतियोंसे जाकर मिलीं ॥ २ ॥

[१८८८] (न मृषा श्रान्तं) हमारा परिश्रम व्यर्थ ही नहीं है, (यत् देवाः अवन्ति) क्योंकि देवगण हमारी रक्षा करते हैं । इसीलिए हमने (विश्वा इत् स्पृधः अभ्यश्नवाव) सारे संग्राम जीत लिए हैं । (यत्) यदि (सम्यंचा मिथुनौ) परस्पर प्रेमपूर्वक रहनेवाले हम दम्पती (अभ्यजाव) पुत्र उत्पन्न करें, तो (अत्र शतनीथं आजिं जयाव) इस संसारमें सैंकडों प्रकारके भोग साधनोंसे युक्त संग्रामको जीतें ॥ ३ ॥

[१८८९] (रुधतः नदस्य) रोकी हुई नदीके पानीके समान (इतः अमुतः कुतश्चित् आजातः) इधरसे, उधरसे, कहींसे और चारों ओरसे उत्पन्न (कामः आगत्) काम आ गया है, (लोपामुद्रा वृषणं निरिणाति) लोपामुद्रा बलशालीके साथ संयुक्त होती है, और (अधीरा) चंचल मनवाली वह (श्वसन्तं धीरं धयति) दीर्घ सांस लेनेवाले धीरका उपभोग करती है ॥ ४ ॥

[१८९०] (हृत्सु पीतं) मनःपूर्वक पीए गए (इमं सोमं अन्तितः) इस सोमके पास जाकर (उप ब्रुवे) मैं प्रार्थना करता हूँ, (यत्) कि (यत् सीं आगः चकृम) हमने जो कुछ भी पाप किया हो, (तत् सु मृळतु) उसे सोम सुखी करे । (हि) क्योंकि (पुलुकामो मर्त्यः) मनुष्य अनेकों कामनाओंवाला होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— कामका प्रभाव इतना तीक्ष्ण है कि इसके प्रभावसे कोई भी अछूता नहीं रहा । बडे बडे महर्षि भी ब्रह्मचर्यको पालन करनेमें असमर्थ रहे । तब साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? उन समर्थ ऋषियोंसे उनकी पत्नियां मिलीं ॥ २ ॥

दम्पतियोंका परिश्रम वृथा नहीं होता, क्योंकि उनकी देवगण रक्षा करते हैं । यदि परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेवाले तथा उत्तम मार्गसे जानेवाले दम्पती उत्तम पुत्र पैदा करें, तो उस उत्तम पुत्रके कारण वे दोनों इस संसारमें हर तरहके कठिनाइयोंको जीत सकते हैं ॥ ३ ॥

जिस प्रकार रोक दी गई नदीका पानी इधर उधर अर्थात् चारों ओर फैल जाता है, उसी तरह मनुष्यमें काम सभी ओर फैलता है । उस समय स्त्री पुरुषका मन चंचल हो जाता है और उनका सांस तेज होने लगती है और हृदयकी धडकन भी तेज हो जाती है । तब स्त्री वीर्यशाली पुरुषके साथ संयुक्त होती है ॥ ४ ॥

मनुष्यकी कामनायें अनेक होती हैं, और उन कामनाओंको पूर्ण करनेके लिए वह अनेक तरहके पाप भी कर सकता है । अतः यदि कोई पाप वह कर भी दे, तो ज्ञानी जन उसे क्षमा करें ॥ ५ ॥

१८९१ अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥ ६ ॥

[१८०]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८९२ युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद् वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन् मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥

१८९३ युवमत्यस्याव नक्षथो यद् विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद् वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥

अर्थ— [१८९१] (अगस्त्यः) अगस्त्यने (खनित्रैः खनिमानः) कुदाल आदिसे खोदते हुए (प्रजां अपत्यं बलं इच्छमानः) उत्तम सन्तानकी कामना की । (उग्रः ऋषिः) उस वीर ऋषिने (उभौ वर्णौ पुपोष) दोनों वर्णोंको पुष्ट किया और (देवेषु सत्याः आशिषः जगाम) देवोंमें उत्तम आशीर्वादोंको प्राप्त किया ॥ ६ ॥

[१८०]

[१८९२] (यत् वां रथः) जब तुम दोनोंका रथ (अर्णांसि परि दीयत्) समुद्रमें या अन्तरिक्षमें संचार करने लगता है तब (युवोः अश्वाः) तुम दोनोंके घोडे (रजांसि सुयमासः) अन्तरिक्षमें नियमपूर्वक चलते हैं तब (वां हिरण्ययाः पवयः) तुम्हारे सुवर्णमय पहियोंके अरे (प्रुषायन्) गीले होने लगते हैं, (उषसः) उषःकालमें (मध्वः पिबन्ता सचेथे) मीठे सोमरसको पीते हुए तुम दोनों इकट्ठे होकर जाते हो ॥ १ ॥

[१८९३] हे (विश्व-गूर्ती) सबसे प्रशंसनीय तथा (मधुपौ) मधु पीनेवाले अश्विदेवो । (युवं) तुम दोनों (यत् अत्यस्य) जब गतिशील (विपत्मनः) आकाशमें संचार करनेवाले (नर्यस्य प्रयज्योः) मानवोंके हितकारी और अत्यन्त पूजनीय सूर्यके (अव नक्षथः) पूर्व ही पहुंचे हो (यत् वां स्वसा) तब तुम्हारी बहन उषा (भराति) तुम्हारा पोषण करती है और (वाजाय इषे च) बल तथा अन्न पानेके लिए तुम्हारा ही (ईट्टे) स्तवन मानव करता है ॥२॥

भावार्थ— प्रजा उत्पन्न करनेके बाद उनके भरण पोषणके लिए अगस्त्यने अन्नादि उत्पन्न करके अपने सन्तानोंको पुष्ट किया और इस प्रकार देवोंका आशीर्वाद उसने प्राप्त किया । प्रजाको उत्पन्न करके उनका भली प्रकार पालन पोषण करना चाहिए । तभी देव प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवो ? जब तुम्हारा रथ समुद्रमें अथवा अन्तरिक्षमें संचार करने लगता है, तब उस रथको चलानेवाले अश्व संज्ञक गति साधन भी अन्तरिक्षमें अपने नियमानुसार चलने लगते हैं । तुम्हारे रथके सुवर्ण जैसे चमकनेवाले पहिये भी अन्तरिक्षस्थ मेघमण्डलके जलसे भीगने लगते हैं तथा समुद्रमें जलसे भीगते हैं । तुम तो मधुर सोमरस पीकर उषःकालमें ही संचार करने लगते हो ॥ १ ॥

सर्वदा प्रशंसनीय तथा मधुर सोमरसका पान करनेवाले अश्विदेवो ! सतत गतिमान, आकाश संचारी, मानवोंका हितकारी पूजायोग्य सूर्यके आनेके पूर्वही तुम दोनों आते हो । तब उषा तुम्हारी सहायता करती है और यज्ञमें यजमान बल बढाने और अन्न मिलनेके लिए तुम दोनोंकी प्रशंसा करते हैं। सूर्य मनुष्योंका हित करता है । उसके आनेके पूर्व उठो, उषः-कालमें तैयार रहो । अपना बल बढानेके लिए तथा पर्याप्त अन्न कमानेके लिए यत्नवान् हो जाओ ॥ २ ॥

१८९४ युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद् वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥
१८९५ युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये ऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद् वां नराविश्वना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥
१८९६ आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥
१८९७ नि यद् युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् ।
प्रेषद् वेषद् वातो न सूरि--रा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१८९४] हे (ऋतप्सू) सत्यस्वरूप अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (उस्रियायां पयः) गौमें दूध (अधत्तं) रखा है तथा (गोः अमायां) अपरिपक्व गौमें भी (पक्वं पूर्व्यं अव) परिपक्व दूध पहिलेसे ही रखा है। (यत् वां) तुम दोनोंके लिए, (वनिनः अन्तः) जंगलोंके भीतर (ह्वारः न) सांपके तुल्य अत्यन्त सावधान रहकर (हविष्मान् शुचिः यजते) हविर्द्रव्य साथ रखनेवाला पवित्र यजमान उस दूधका यज्ञ करता है ॥ ३ ॥

[१८९५] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (एषे अत्रये) सुख चाहनेवाले अत्रिके लिए (युवं ह) तुम दोनोंने निश्चयपूर्वक (घर्मं) गर्मीको (अपः क्षोदः न) जलके प्रवाहके समान (मधुमन्तं अवृणीतं) मिठास युक्त कर दिया। गर्मीका निवारण करके शीत बनाया। (तत्) इसलिये (वां) तुम दोनोंके समीप (पश्वइष्टिः मध्वः) यज्ञ और मधुसंभार (रथ्या चक्रा इव) रथके पहियोंके समान (प्रति यन्ति) चले जाते हैं ॥ ४ ॥

[१८९६] हे (दस्रा) शत्रुविनाशक तथा (यजत्रा) पूजनीय अश्विदेवो ! (जिव्रिः) विजयका इच्छुक (तौग्र्यः न) तुग्रका पुत्र जैसे (गोः ओहेन) वाणीसे प्रशंसा द्वारा (वां दानाय) तुम दोनोंसे दान ले लेनेके लिए प्रवृत्त हुआ वैसा (आ ववृतीय) मैं तुम्हारी ओरसे दान लेनेके लिए प्रवृत्त होजाऊं; (वां माहिना) तुम दोनोंकी महिमासे तो (अपः क्षोणी सचते) अन्तरिक्ष और भूलोक व्याप्त हुए हैं, मैं इस कारण (जूर्णः) वृद्ध होता हुआ भी (वां) तुम दोनोंकी कृपासे (अंहसः) जरारूपी कष्टसे मुक्त हो (अक्षुः) दीर्घजीवी बनूँ। इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ॥ ५ ॥

[१८९७] हे (सुदानू) अच्छे दान देनेवाले अश्विदेवो ! (यत्) जब (नियुतः नि युवेथे) घोडोंको रथमें जोतते हो, तब (पुरंधि) बहुतोंको धारण करनेवाली बुद्धिको (स्वधाभिः उप सृजथः) अन्नोंसे संयुक्त कर डालते हो; (सुव्रतः न) अच्छे कार्य करनेहारोंके समान (सूरिः) विद्वान् पुरुष (महे) महत्त्वके लिए (वाजं आ ददे) अन्नका ग्रहण करता है, (प्रेषत्) तुम्हें तृप्त करता है और (वातः न) वायुके समान (वेषत्) तुम्हें शीघ्र प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— सत्य पालक अश्विदेवो ! तुमने गौमें दूध उत्पन्न किया है। अपक्व गायमें भी उत्तम परिपक्व दूध उत्पन्न किया है। इसी दूधसे, जंगलके अन्दर सांप जैसा सावधान रहता है, वैसा सावधान रहकर, शुचि होकर यजमान अश्विदेवोंके उद्देश्य सेही यज्ञ करता है ॥ ३ ॥

हे नेता अश्विदेवो ! अत्रि ऋषिको सुख देनेके लिए तुम दोनोंने गर्मीको जलके समान शीतल और मिठासके समान सुखकारक बना दिया। तब तुम्हारे लिये वह यज्ञ किया जाता है। चक्रके समान बारंबार चलकर यज्ञ तुम्हारे पास आता है। अनुयायियोंको सुख देनेके लिये नेता यत्न करे, और अनुयायी भी नेताका हित करें ॥ ४ ॥

हे शत्रुविनाशक पूजायोग्य अश्विदेवो ! जिस तरह विजयकी इच्छा करनेवाला तुग्रका पुत्र भुज्यु तुम्हारी स्तुति करनेसे मृत्युसे बच गया, ऐसी तुम्हारी महिमा तो सब द्यावापृथिवीमें प्रसिद्ध है। इसलिए अति वृद्ध हुआ मैं तुम्हारी कृपासे बुढापेको दूर करके दीर्घायु बनना चाहता हूं ॥ ५ ॥

१८९८ वयं चि॒द्धि वां॑ जरि॒तारः॑ स॒त्या विप॒न्याम॑हे॒ वि प॒णिर्हि॒तावा॑न् ।
अधा॑ चि॒द्धि ष्मा॑श्विनावनिन्द्या पा॒थो हि ष्मा॑ वृषणा॒वन्ति॑देवम् ॥ ७ ॥

१८९९ यु॒वां चि॒द्धि ष्मा॑श्विना॒वनु॒ द्यून् विरु॑द्रस्य प्र॒स्रव॑णस्य सा॒तौ ।
अ॒गस्त्यो॑ न॒रां नृ॒षु प्रश॑स्तः कारा॑धुनीव चितयत् स॒हस्रैः॑ ॥ ८ ॥

१९०० प्र यद् वहे॑थे महि॒ना रथ॑स्य॒ प्र स्प॑न्द्रा या॒थो मनु॑षो॒ न होता॑ ।
ध॒त्तं सू॒रिभ्य॑ उ॒त वा॒ स्वश्व्यं॒ नास॑त्या रयि॒षाचः॑ स्याम ॥ ९ ॥

अर्थ— [१८९८] हे (वृषणौ) बलवान् (अनिन्द्या) अनिन्दनीय अश्विदेवो! (वयं) हम (सत्या) सच्चे होकर (वां चित् हि जरितारः) तुम दोनोंकी ही प्रशंसा करनेकी इच्छासे (वि पन्यामहे) बहुत स्तुति करते हैं, परन्तु (हितावान् पणिः वि) धनसंग्रह करनेवाला व्यापारी यज्ञसे विरुद्ध हो रहा है। (अधा चित्) अब (अन्ति देवं) देवताके देने योग्य सोम (पाथः हि स्म) को ही तुम दोनों पीते हो ॥ ७ ॥

[१८९९] हे (अश्विनौ) अश्विदेवो! (नृषु नरां) मानवों और नेताओंमें (प्रशस्तः अगस्त्यः) प्रशंसनीय अगस्त्य ऋषि (अनु द्यून्) प्रति दिन (वि-रुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ) विशेष गर्जना करनेवाले जलप्रवाहको पानेके लिए (युवां चित् हि) तुम दोनोंकी ही (काराधुनी इव) बडी ध्वनि करनेवाले वाद्यके समान (सहस्रैः चितयत्) सहस्रों श्लोकोंसे स्तुति करता है ॥ ८ ॥

[१९००] हे (नासत्या स्पन्द्रा) सत्यपालक और गतिशील अश्विदेवो! (यत्) जो (रथस्य महिना) रथकी महनीयताके कारण (प्रवहेथे) तुम दोनों उत्कृष्ट ढंगसे आगे बढते हो, (मनुषः होता न) मानवोंमें हवनकर्ताके समान तुम दोनों (प्रयाथः) यात्रा करते हो, ऐसे तुम (सूरिभ्यः वा) विद्वानोंको भी (सु अश्व्यं धत्तं) सुन्दर घोडोंसे पूर्ण धन दो (उत रयिषाचः स्याम) और हम भी धनसे युक्त हों ॥ ९ ॥

भावार्थ— अच्छा दान देनेवाले हे अश्विदेवो! तुम दोनों जब घोडोंको अपने रथमें जोतते हो तब बहुतोंका पालन पोषण करनेकी बुद्धि विपुल अन्नोंके साथ अपने भक्तोंमें उत्पन्न करते हो। सत्कर्म करनेवाला विद्वान् इस महत्त्वपूर्ण कार्यके लिए जब अन्न प्राप्त करता है, तब उसके दानसे वह तुम्हें तृप्त करता है और वायुके गतिसे वह तुम्हें प्राप्त होता है। नेता स्वयं बहुत दान करे, और अपने अनुयायियोंको पर्याप्त अन्न देकर उनमें बहुतोंका पालन पोषण करनेकी उदार बुद्धि उत्पन्न करे। विद्वान् लोग इस तरह बहुतोंके पालन पोषण करनेके शुभ कर्म करें और अपनी उदारतासे देवत्वको प्राप्त हों ॥ ६ ॥

हे बलवान् अनिन्दनीय अश्विदेवो! हम तुम्हारे सत्य भक्त हैं अतः तुम्हारे गुणोंका वर्णन करते हैं। परन्तु यह पूंजीपति धनका केवल संग्रह करता है, परन्तु यज्ञ करता ही नहीं! आप तो यज्ञकर्ताके पास जाते हैं और देवोंके ही पीने योग्य सोमरसका पान करते हैं। अर्थात् उस अयाजक धनाढ्यके पास तुम जाते भी नहीं। जो यज्ञ नहीं करता, उस धनाढ्यके धनका कोई उपयोग नहीं है अतः जो धन अपने पास हो उसको यज्ञमें समर्पण करना चाहिये ॥ ७ ॥

मनुष्यों और नेताओंमें सुप्रसिद्ध अगस्त्य ऋषि प्रति दिन विशेष वेगवान् जल प्रवाहको प्राप्त करनेके लिए, बांसुरी कुशलतासे बजानेवालेके समान, कोमल ध्वनिसे सहस्रों आलापोंसे तुम्हारी ही स्तुति गाता है ॥ ८ ॥

हे सत्यके पालनकर्ता और सर्वत्र संचार करनेवाले अश्विदेवो! तुम दोनों अपने उत्तम रथके वेगसे यज्ञकर्ताके पास मनुष्य-लोकमें गमन करते हो, अतः जो उत्तम विद्वान् है, उसको उत्तम घोडे और धन दो और हमें भी धन दो ॥ ९ ॥

१९०१ तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् । ॥ १० ॥
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्

[१८१]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। देवता- अश्विनौ। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

१९०२ कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् । ॥ १ ॥
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम्

१९०३ आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः । ॥ २ ॥
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु

१९०४ आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सुप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः । ॥ ३ ॥
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या यः

अर्थ— [१९०१] हे (अश्विना) अश्विनौ! (अद्य सुविताय) आज सुविधाके लिये (वां तं नव्यं) तुम दोनोंके उस नये, (द्यां परि इयानं) द्युलोकके चारों ओर जानेवाले (अरिष्टनेमिं रथं) न बिगडनेवाली नेमिसे युक्त रथको (स्तोमैः) स्तोत्रोंकी सहायतासे (वयं हुवेम) हम इधर बुलाते हैं, (जीर-दानुं) शीघ्र दानको (इषं वृजनं) अन्न तथा बलको (विद्याम) हम प्राप्त करें ॥ १० ॥

[१८१]

[१९०२] हे (जनानां अवितारा) जनोंके रक्षक तथा (वसुधिती) धनोंको देनेहारे अश्विदेवो! (अयं यज्ञः) यह यज्ञ (वां प्रशस्तिं अकृत) तुम दोनोंकी सराहना कर चुका है; (अध्वर्यन्ता प्रेष्ठौ) हे अध्वरमें जानेहारे अत्यन्त प्यारे अश्विदेवो! (यत्) जो (अपां रयीणां इषां) जलोंको, धन संपदाओंको और अन्नोंको (उत् निनीथः) तुम दोनों ले चलते हो (कत् उ) वह कार्य अब किस समय शुरू होनेवाला है? ॥ १ ॥

[१९०३] हे अश्विदेवो! (शुचयः) विशुद्ध, (दिव्यासः,) दिव्य श्रेष्ठ, (अत्याः) गमनशील, (वात-रंहसः) वायुके तुल्य वेगवाले (पयः-पाः) दूध पीनेवाले, (मनो-जुवः) मनके समान वेगयुक्त, (वृषणः) बलिष्ठ (वीत-पृष्ठः) चमकीले पीठवाले (स्व-राजः अश्वासः) और स्वयं तेजस्वी घोडे (वां) तुम दोनोंको (इह आ वहन्तु) इधर ले आयँ ॥ २ ॥

[१९०४] हे (धिष्ण्या) ऊँचे स्थानपर रहनेयोग्य (स्थातारा) अपने पदपर रहनेवाले अश्विदेवो! (वां यः) तुम दोनोंका जो (वृष्णः मनसः जवीयान्) प्रबल और मनसे भी अधिक वेगवान् (यजतः) पूजनीय, (सुप्रव-न्धुरः) सुन्दर अग्रभागवाला, (अवनिः न) भूमिके तुल्य (प्रवत्वान्) अति विस्तृत, (अहंपूर्वः रथः) अहमह-मिकासे आगे बढनेवाला रथ है वह (सुविताय आ गम्याः) भलाईके लिए हमारे पास आ जाय ॥ ३ ॥

भावार्थ— अश्विदेवो! आज ही हमें सुखकी प्राप्ति हो, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, कि तुम्हारा कभी न बिगडनेवाला रथ हमारे पास आ जाय और हमें अन्न, बल तथा धन प्राप्त हो ॥ १० ॥

हे जनोंके संरक्षक और उनको धन देनेहारे देवो! यह यज्ञ हम तुम्हारे लिये ही करते हैं। हे यज्ञमें जानेवाले और प्रेमसे उसकी पूर्णता करनेवाले देवो! जो तुम जल, धन और अन्नका दान करते हो वह कार्य तुम कब करोगे? हम उससे लाभ प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १ ॥

अश्विदेवोंके घोडे विशुद्ध, दिव्य, गमनशील, वायुके तुल्य वेगवान्, बलिष्ठ और तेजस्वी होते हैं। वे उनको हमारे यज्ञमें ले आवें ॥ २ ॥

अश्विदेवोंका मनसे भी वेगवान्, पूज्य भूमिके समान विस्तृत और अहमहमिकासे आगे बढनेवाला रथ हमारे यज्ञके समीप आ जाय ॥ ३ ॥

१९०५ इहेह जाता समवावशीता-मरेपसा तन्वा३ नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरि-र्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥
१९०६ प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजै-र्मथ्रा रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ ॥
१९०७ प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजै-र्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥
१९०८ असर्जि वां स्थविरा वेधसा गी-र्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुतावव‍तं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

अर्थ— [१९०५] (अरेपसा तन्वा) दोषरहित शरीरसे तथा (स्वैः नामभिः जाता) अपनेही नामोंसे प्रसिद्ध हुए तुम दोनों (इह-इह सं अवावशीतां) इधर ही भली भाँति प्रशंसित हो चुके हो; (वां अन्यः) तुम दोनोंमेंसे एक (जिष्णुः सुमखस्य सूरिः) जयिष्णु और श्रेष्ठ यज्ञका प्रेरक है, (अन्यः) दूसरा (सुभगः) अच्छे ऐश्वर्यवाला, (दिवः पुत्रः ऊहे) द्युलोकका पुत्र जैसा वीर सब कार्यको निभाता है ॥ ४ ॥

[१९०६] हे अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंमेंसे एकका (पिशङ्गरूपः) पीतवर्णवाला अर्थात् सुनहरा और (निचेरुः) सभी जगह जानेवाला रथ (वशान् ककुहः अनु) वशीभूत दिशाओंमें स्थित (सदनानि प्र गम्याः) यज्ञस्थानोंमें चला जावे, (अन्यस्य हरी) दूसरेके घोडे (मथ्रा) बिलोडनेसे उत्पन्न वाजैः) अन्नोंसे तथा (घोषैः) घोषणाओंसे (रजांसि वि पीपयन्त) लोकोंको विशेष ढंगसे पुष्ट करते हैं ॥ ५ ॥

[१९०७] (वां) तुम दोनोंमेंसे एक (शरद्वान् वृषभः न) पुरातन, बलवान्, जैसा वीर (निष्षाट्) शत्रु-दलको हटानेवाला है और (मध्वः इष्णन्) मीठे सोमको चाहता हुआ (पूर्वीः इषः प्रचरति) बहुतसी अन्न सामग्रियोंको साथ लेकर संचार करता है । (अन्यस्य) दूसरेके (एवैः) गमनशील (वाजैः) अन्नोंके साथ (वेषन्तीः) फैलती हुई (ऊर्ध्वाः) ऊपरकी ओर बढनेवाली (नद्यः) नदियाँ सबको (पीपयन्त) पुष्ट करती हैं वे (नः आ अगुः) हमारे समीप आ जाएँ ॥ ६ ॥

[१९०८] हे (वेधसा) कार्यकर्ता अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (स्थविरा गीः) प्राचीन वाणी-स्तुति (त्रेधा क्षरन्ती) तीन प्रकारसे तुम्हें प्राप्त होती हुई (बाळ्हे असर्जि) बल बढानेके लिए उत्पन्न हुई है । (मे हवं) मेरी प्रार्थनाको (यामन् अयामन्) गमनके समय या गमन न करनेके समय तुम (शृणुतं) सुन लो । और (उपस्तुतौ) प्रशंसित होनेपर इस (नाधमानं अवतं) भक्तकी रक्षा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ— अश्विदेव निर्दोष होनेके कारण प्रसिद्ध हैं । इस लोकमें भी उनकी प्रशंसा हुई है । इनमेंसे एक विजयी यज्ञका प्रेरक है और दूसरा अन्य सब कार्य निभाता रहता है ॥ ४ ॥

अश्विदेव दो हैं । उनमेंसे एकका रथ सुनहरा है जो दिशाउपदिशाओंके यज्ञस्थानोंमें जाता है । दूसरेके घोडे बिलोड-नेसे उत्पन्न घृतादि अन्नोंको साथ लेकर सबको पुष्ट करते हुए चलते हैं ॥ ५ ॥

अश्विदेवोंमेंसे एक पुरातन वीर शत्रुको परास्त करता है और मीठा अन्नरस अपने साथ लेकर सर्वत्र संचार करता है। दूसरा अन्नोंको बढानेवाली नदियोंको वेगसे बढाता है । एक अन्नमें मीठे रसकी उत्पत्ति करता है और दूसरा नदियोंको महापूरसे भरपूर कर देता है ॥ ६ ॥

हे रचनाकार्यमें कुशल अश्विदेवो ! यह प्राचीनकालसे चली आयी स्तुति तीन प्रकारोंसे बल प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे पास पहुंचती है । मेरी की हुई इस प्रार्थनाको तुम सुन लो और प्रसन्नचित्त होकर मेरी रक्षा करो ॥ ७ ॥

१९०९ उत स्या वां रुशतो वप्सो गी—स्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥

१९१० युवां पूषेवाश्विना पुरंधि—रग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद् वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ ॥

[१८२]

(ऋषिः— अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता— अश्विनौ । छन्दः— जगती; ६-८ त्रिष्टुप् ।)

१९११ अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥

अर्थ— [१९०९] (उत वां) और तुम दोनोंके (रुशतः वप्सः) चमकवाले स्वरूपका वर्णन करनेवाली (स्या गीः) वह वाणी (नॄन्) मानवोंको (त्रि बर्हिषि सदसि) तीन कुशासनोंसे युक्त यज्ञस्थानमें (पिन्वते) पुष्ट करती है । हे (वृषणा) बलशाली अश्विदेवो ! (वां वृषा मेघः) तुम दोनोंके लिये वृष्टि करनेवाला मेघ (मनुषः दशस्यन्) मानवोंको जल देता हुआ (गोः सेके न) गौके दूधके सेचन करनेके समान ही (पीपाय) पोषण करता है ॥ ८ ॥

[१९१०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (पुरन्धिः पूषा इव) बहुतोंका धारण करनेवाला पूषा जिस प्रकार पोषण करता है वैसे ही (हविष्मान्) हवि साथ रखनेवाला यजमान (युवां) तुम दोनोंकी (उषां अग्निं न) उषा तथा अग्निके समान (जरते) स्तुति करता है, (यत् वां वरिवस्या) जो मैं तुम दोनोंकी सेवा करता हुआ (गृणानः हुवे) स्तुति-पूर्वक प्रार्थना करता हूँ, वह इसलिए कि हम लोग (जीरदानुं वृजनं इषं) शीघ्र दान द्वारा बल तथा अन्नको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ९ ॥

[१८२]

[१९११] हे (मनीषिणः) मननशील विद्वानो ! (इदं वयुनं अभूत्) यह ज्ञान हमें हुआ है कि अश्विदेवोंका (वृषण्वान् रथः) बलवान् रथ हमारे पास आ पहुंचा है, इसलिए (मदत) आनन्दित होओ (सु-भूषत) भली-भाँति अलंकृत होओ, क्योंकि वे दोनों अश्विदेव (शुचिव्रता) निर्दोष व्रतका अनुष्ठान करनेवाले (दिवः न-पाता) द्युलोकका पतन न होने देनेवाले, (धिष्ण्या) प्रशंसनीय (विश्पलावसू) विश्पलाको यश देनेवाले; (सुकृते धियं जिन्वा) अच्छे कर्म करनेवालेको सुबुद्धि देनेवाले हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंका वर्णन करनेवाली यह स्तुति यज्ञस्थानमें मनुष्योंकी शक्ति बढाती है । तुम्हारी प्रेरणासे वृष्टि करनेवाला यह मेघ मनुष्योंके लिये जल देकर, गौ दूध देकर पुष्ट करनेके समान, पोषण करता है ॥ ८ ॥

हे अश्विदेवो ! हविष्यान्न साथ लेकर यजमान यज्ञ करता हुआ तुम्हारी प्रार्थना करता है । इससे हमें अतिशीघ्र अन्न, बल और धन प्राप्त हो ॥ ९ ॥

हे मननशील विद्वानों ! हमें पता लगा है कि, अश्विदेवोंका सुदृढ रथ हमारे यज्ञस्थानके पास आ पहुंचा है, उसे देख-कर आनन्दित होवो, अच्छी तरह अलंकृत बनो । वे दोनों अश्विदेव शुद्ध कर्म करनेवाले, द्युलोकको आधार देनेवाले, विश्पलाकी सहायता करनेवाले, अच्छे कार्यकर्ताको शुभमति देनेवाले, एवं प्रशंसनीय हैं । अपने घर कोई बडा वीर आवे तो उत्तम वेषभूषा धारण करके उसका स्वागत करना योग्य है । बडा उसको कहते हैं कि जो उत्तम कर्म करता है, अनाथकी सहायता करता है, सद्बुद्धि देता है और सबको आधार देता है ॥ १ ॥

१९१२ इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २ ॥
१९१३ किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥
१९१४ जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृत-मुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥
१९१५ युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लव-मात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१९१२] हे (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! तुम दोनों (धिष्ण्या) स्तुतिके योग्य, (इन्द्रतमा मरुत्तमा) इन्द्र एवं मरुतोंके अत्यंन्त शुभ गुणोंको धारण करनेवाले, (दंसिष्ठा) अत्यन्त कार्यशील, (रथ्या रथीतमा हि) रथमें बैठनेवाले और अतीव श्रेष्ठ रथी हो, इसमें संशय नहीं; (मध्वः आचितं) मधुसे भरे हुए (पूर्णं रथं वहेथे) परिपूर्ण रथको लिए हुए तुम दोनों आगे बढते हो और (दाश्वांसं) दानीके प्रति (तेन उपयाथः) उसी रथके साथ जाते हो ॥ २ ॥

[१९१३] हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! (अत्र किं कृणुथः) इधर भला क्या करते हो ? (किं आसाथे) क्यों यहां बैठे हो ? (यः काश्चित्) जो कोई (जनः अहविः महीयते) पुरुष यज्ञ न करता हुआ बडा बन बैठा है, उसे (अति क्रमिष्टं) छोडकर आगे बढो और (पणेः असुं जुरतं) कृपण लोभी व्यापारीके प्राणोंको नष्ट करो, तथा (वचस्यवे विप्राय) स्तुति करनेके इच्छुक ज्ञानी पुरुषके लिए (ज्योतिः कृणुतं) प्रकाश करो ॥ ३ ॥

[१९१४] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (शुनः रायतः) कुत्तेके सदृश काटनेको आनेवालोंको (अभितः जम्भयतं) चारों ओरसे तुम विनष्ट करो, (मृधः हतं) लडनेवालोंको मार डालो, (तानि विदथुः) उन्हें तुम दोनों जानते हो, (जरितुः) स्तुतिकर्ताके (वाचं वाचं) प्रत्येक भाषणको (रत्निनीं कृतं) धनयुक्त करो और (उभा) दोनों (मम शंसं अवतं) मेरे प्रशंसाके भाषणकी रक्षा करो ॥ ४ ॥

[१९१५] (एतं आत्मन्वन्तं) इस निजी शक्तिसे युक्त, (पक्षिणं) पंछीके तुल्य उडनेवाले, (प्लवं) नौकाको (सिन्धुषु) समुद्रमें (तौग्र्याय) तुग्रपुत्रके लिए (कं चक्रथुः) सुखकारक ढंगसे बना चुके, (येन) जिससे (सुपप्तनी) अच्छे ढंगसे उडनेवाले तुम दोनों (मनसा) मनःपूर्वक (देवत्रा) देवोंके मध्य (निः ऊहथुः) ऊपर ऊपर ले चले और (महः क्षोदसः पेतथुः) बडे भारी जलसमूहके बीच आ गये ॥ ५ ॥

भावार्थ— शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! तुम दोनों प्रशंसायोग्य तथा इन्द्र और मरुतोंके सब शुभगुणोंको धारण करते हो । तुम सदा शुभ कार्यमें तत्पर, रथ चलानेमें तत्पर, उत्तम रथियोंमें श्रेष्ठ हो । तुम रथपर शहदके घडे भरकर रखते हो और यज्ञकर्ताके समीप उनके साथ पहुंचकर उसका दान करते हो ॥ २ ॥

हे शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! तुम इधर उधर न जाओ, विशेषतः यज्ञ न करनेवालेके पास न जाओ, उस लोभीके प्राण जाने दो । तुम सदा यज्ञकर्ताको प्रकाशका मार्ग बनाओ । जो सहायता पहुंचानी हो वह श्रेष्ठ सज्जनकी ही प्रथम देनी योग्य है । धर्मशील सन्मार्गवर्तियोंको ही प्रकाशका सरल मार्ग बताना योग्य है ॥ ३ ॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विदेवो ! कुत्तेके समान हिंसकोंको नष्ट करो, जो हमपर हमला करते हैं उनको मार डालो, इन सबको तुम जानते हो । तुम्हारी स्तुति करनेवालेको प्रत्येक स्तुतिके लिये उसे धन प्राप्त होता रहे, तथा मुझ भक्तकी भी सुरक्षा करो ॥ ४ ॥

तुग्रके पुत्र भुज्युकी रक्षा करनेके लिये तुमने निजशक्तिसे चलनेवाले, पक्षीके समान उडनेवाले नौका जैसे वाहनोंको बनाया और मनके वेगसे महासागरके मध्यमें जा पहुंचे और भुज्युको बचाया ॥ ५ ॥

१९१६ अवविद्धं तौग्र्यमप्स्व१न्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥
१९१७ कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥
१९१८ तद् वां नरा नासत्यावनु ष्याद् यद् वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

[१८३]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९१९ तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥

अर्थ— [१९१६] (अप्सु अन्तः) जलोंके मध्य (अवविद्धं) गिराये हुए (अनारम्भणे तमसि) आश्रयरहित अंधेरेमें (प्रविद्धं तौग्र्यं) पीडित हुए तुग्रके पुत्रको (जठलस्य जुष्टाः) समुद्रके मध्यतक पहुंची हुई और (अश्विभ्यां इषिताः) अश्विदेवोंसे प्रेरित हुई (चतस्रः नावः) चार नौकाएँ (उत् पारयन्ति) ऊपर उठाकर पार पहुंचा देती हैं ॥ ६ ॥

[१९१७] (अर्णवः मध्ये) जलके बीच (कः स्वित् वृक्षः निष्ठितः) भला कौनसा वृक्ष अर्थात् वृक्षसे निर्मित रथ स्थिर रहा है (यं) जिसे (नाधितः तौग्र्यः) प्रार्थना करता हुआ तुग्रका पुत्र भुज्यु (पर्यषस्वजत्) लिपटने लगा, आश्रित होने लगा; (पतरोः मृगस्य आरभे) पतनशील मृगके आलंबनके लिए (पर्णा इव) पत्तों या पंखोंके समान (अश्विनौ श्रोमताय) अश्विदेव कीर्ति पानेके लिए (कं) सुखकारक ढंगसे उसको (उत् ऊहथुः) ऊपर उठा चुके ॥ ७ ॥

[१९१८] हे (नासत्यौ नरा) सत्यके पालक, नेता अश्विदेवो ! (यत् मानासः) जो सम्माननीय लोग (वां) तुम दोनोंके लिए (उचथं अवोचन्) स्तोत्र कह चुके, (तत् वां अनु स्यात्) वह तुम्हें अनुकूल हो, (अद्य) आज (अस्मात् सोम्यात् सदसः) इस सोमयागके यज्ञस्थानसे (जीरदानुं वृजनं) विजयी, दान, बल और (इषं विद्याम) अन्नको हम प्राप्त करें ॥ ८ ॥

[१८३]

[१९१९] हे (वृषण !) बलवान् अश्विदेवो ! (यः त्रिचक्रः) जो तीन पहियोंवाला (त्रिवन्धुरः) तीन बैठनेके युक्त रथ है, (यः) जो (मनसः जवीयान्) मनसे भी अधिक वेगवान् है, (तं युञ्जाथां) उसे जोडकर तैयार करो; (येन त्रिधातुना) जिस तीन धातुओंसे बनाये रथवरसे (सुकृतः दुरोणं उपयाथः) शुभ कार्यकर्ताके घर तुम दोनों चले जाते हो, और (विः पर्णैः न) पंछी डैनोंसे जिस प्रकार उडता है, वैसेही (पतथः) तुम अन्तराळमें उडने लगते हो ॥ १ ॥

भावार्थ— समुद्रके बीचमें आश्रयरहित और अंधेरे जलस्थानमें पडे तुग्रपुत्र भुज्युको छुडानेके लिये अश्विदेवोंने चार नौकाएँ चलाईं और उसको समुद्रके पार पहुंचा दिया ॥ ६ ॥

अश्विदेवोंका सुदृढ रथ समुद्रके बीचमें खडा रहा, इसपर तुग्रका पुत्र भुज्यु चलने लगा। जिस तरह गिरनेवाले पक्षीको पंखोंका सहारा मिल जाय, उस तरह भुज्युको उस रथका आश्रय मिला और उसी समय अश्विदेवोंने भुज्युको अच्छी तरह ऊपर उठाया और रथमें बिठाया। इससे अश्विदेवोंकी कीर्ति बहुत हुई ॥ ७ ॥

हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! स्तोता लोगोंने जो तुम्हारे स्तोत्र गाये हैं उनसे तुम प्रसन्न हो जाओ और इस यज्ञसे विजय देनेवाला धन, बल और अन्न हमें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! तुम्हारा तीन पहियोंवाला, तीन बैठकोंके स्थानोंवाला, अत्यंत वेगवान् रथ जोतकर तैयार करो, इस तीन धारक शक्तियोंसे युक्त रथपर बैठकर यज्ञकर्ताके घरपर जाओ। तुम तो पक्षियोंके समानही आकाशसे उडकर जाते हो ॥ १ ॥

१९२० सुवृद् रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत् तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥
१९२१ आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥
१९२२ मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ४ ॥
१९२३ युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥

अर्थ—[१९२०] (क्रतुमन्ता) कार्यसे युक्त हुए तुम दोनों (पृक्षे अनु) हविष्य अन्नके पीछे जानेके लिए (यत् तिष्ठथः) जहां ठहरते हो, वह (क्षां यन्) पृथ्वीपर घूमनेवाला तुम्हारा (सुवृत् रथः) सुन्दर रथ (अभि वर्तते) यज्ञभूमिके पास जाता है, (वपुष्या इयं गीः) यह सुंदर रसमयी स्तुतिरूपी वाणी (वपुः सचतां) तुम्हारी रसमयी वृत्तिको प्राप्त हो जाए– तुम्हें आनंद देवे (दिवः दुहित्रा उषसा) द्युलोककी कन्या उषासे (सचेथे) तुम दोनों युक्त होते हो ॥ २ ॥

[१९२१] हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेता अश्विदेवो ! (यः हविष्मान् रथः) जो हविर्भागसे पूर्ण रथ (वां) तुम दोनोंको (व्रतानि वर्तते) कार्योंको चलानेके लिए ले जाता है, उस (सुवृतं आतिष्ठतं) सुन्दर वाहनपर चढकर बैठो; (येन) जिसपरसे (तनयाय त्मने च) पुत्रको और उसको (इषयध्यै) यज्ञकी प्रेरणा करनेके लिये ही उनके (वर्तिं याथः) घर चले जाते हो ॥ ३ ॥

[१९२२] हे (दस्रौ) शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं भागः निहितः) यह भाग रखा है, (इयं गीः) यह स्तुति तैयार है, (मधूनां इमे निधयः) शहदोंके ये भण्डार (वां) तुम्हारे लिए हैं; (मा परि वर्क्त) हमें न छोड दो (उत) और (मा अति धक्त) न हमसे अन्य दूसरेको दान दो, (वां) तुम्हारी कृपासे (मा वृकीः मा वृकः) मुझे वृकियाँ तथा भेडिया न (आ दधर्षीत्) आक्रान्त करें ॥ ४ ॥

[१९२३] हे (दस्रा नासत्या) शत्रुविनाशक और सत्यसे युक्त अश्विदेवो ! (हविष्मान्) हवि साथ लेकर (गोतमः अत्रिः पुरुमीळ्हः) गोतम, अत्रि और पुरुमीळ्ह (अवसे) रक्षाके लिए (युवां हवते) तुम दोनोंको बुलाते हैं, (ऋजूया इव यन्ता) सरल मार्गसे जानेवाला जैसे (दिष्टां दिशं न) दर्शायी हुई दिशाकी ओर जाता है वैसेही (मे हवं) मेरी पुकार सुनकर मेरे (उप यातं) समीप आ जाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम सदा सत्कर्ममें तत्पर रहते हो तुम हवनके यज्ञस्थानपर जानेके लिये अपने सुन्दर रथपर चढते हो और वह रथ यज्ञके स्थानपर चला जाता है । तुम्हारा वर्णन करनेवाली यह स्तुति सुननेसे तुम्हें आनन्द हो, तुम तो उषाके साथ ही अर्थात् सबेरेही रथपर चढते हो ॥ २ ॥

हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! हविर्द्रव्योंसे भरपूर भरा हुआ तुम्हारा रथ तुम दोनोंको अपने कार्य करनेके लिये ले जाता है, उसपर तुम बैठो और यजमानको तथा उसके बालबच्चोंको यज्ञकी प्रेरणा करनेके लिये उनके यज्ञस्थानके प्रति जाओ ॥ ३ ॥

हे शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! आपके लिये यह हविर्भाग रखा हुआ है, यह स्तुति तुम्हारे लिये ही है, ये शहदके पात्र तुम्हारे लिये ही तैयार रखे हैं, तुम हमें न छोडो, न दूसरेके पास जाओ । भेडी या भेडिया हमारे ऊपर हमला न करें ॥४॥

हे शत्रुविनाशक सत्यके पालक अश्विदेवो ! हवि लेकर गोतम, अत्रि और पुरुमीढ ये ऋषि अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । सरल मार्गसे जानेवाला इष्ट स्थानको सहज हीसे पहुंचता है; उस तरह मेरी प्रार्थना सुनकर सरल मार्गसे शीघ्र ही मेरे पास पहुंच जाओ । मनुष्य अपनी सुरक्षाका यत्न करे । सरल मार्गसे चले और निर्विघ्न इष्ट स्थानको पहुंचे ॥ ५ ॥

१९२४ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानै- र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१८४]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९२५ ता वामद्य तावपरं हुवेमो- च्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित् सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥
१९२६ अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथा- मुत् पणींर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीना- मेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥ २ ॥
१९२७ श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१९२४] (अस्य तमसः) इस अँधेरेके (पारं अतारिष्म) पार हम चले गये, हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां प्रति) तुम दोनोंके लिए (स्तोमः अधायि) स्तोत्र तैयार कर दिया है, (देवयानैः पथिभिः) देवतागण जिस परसे चलते हैं ऐसे मार्गोंसे (इह आयातं) इधर आओ (जीरदानुं इषं वृजनं विद्याम) शीघ्र विजय अन्न तथा बल हमें मिले ॥ ६ ॥

[१८४]

[१९२५] हे (दिवः न पाता) द्युलोकको न गिरानेवाले (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (अद्य) आज (ता वां) उन विख्यात तुम दोनोंको (अपरं) दूसरे दिन भी (तौ हुवेम) उन्हें ही तुम्हें, हम बुलाते हैं, (उच्छन्त्यां उषसि) अँधियारी हटानेवाली उषावेलाके समीप आनेपर (उक्थैः वह्निः) स्तोत्रोंका पाठ करते करते अग्नि प्रज्वलित किया है, (कुह चित् सन्तौ) कहीं भी तुम विद्यमान रहो, पर (सुदास्तराय) उत्तम दानीके पास इधर आओ, ऐसी (अर्यः) प्रगतिशील मानवकी प्रार्थना है ॥ १ ॥

[१९२६] हे (नरा वृषणा) नेता तथा बलवान् अश्विदेवो ! (अस्मे उ) हमें ही (सु मादयेथां) भली भाँति हर्षित करो। (ऊर्म्या मदन्ता) सोमपानसे आनन्दित होते हुए तुम (पणीन् उत् हतं) पणियोंका समूल वध करो, और (मे अच्छोक्तिभिः) मेरी निर्मल उक्तियोंसे उत्पन्न (मतीनां) मननीय स्तोत्रोंको (कर्णैः श्रुतं) अपने कानोंसे सुनलो, क्योंकि तुम दोनों (एष्टा निचेतारा च) ढूँढनेवाले और संग्रह करनेवाले हो ॥ २ ॥

[१९२७] हे (देवा) दानी ! (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (हे पूषन्) पोषणकर्ता ! (सूर्यायाः वहतुं) सूर्यकन्याको रथपर बिठाकर (श्रिये) यश-पानेके लिए तुम दोनों (इषुकृता इव) बाणकी तरह सीधे चले जाते हो; (अप्सु जाताः) सागरसे प्राप्त या उत्पन्न (ककुहाः) घोडे (भूरेः वरुणस्य) अत्यन्त विशाल वरुणके (जूर्णा इव युगा) प्राचीन समयके रथोंके समान ही (वां वच्यन्ते) तुम दोनोंके भी प्रशंसित होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— इस अन्धेरे स्थानसे हम पार हो चुके । तुम्हारे लिये यह स्तवन किया है । देवोंके आनेके मार्गसे यहां हमारे पास आओ । हमें विजय, अन्न तथा बल मिले । अन्धेरेका मार्ग शीघ्र समाप्त करो, प्रकाशमें शीघ्र आओ। जिन मार्गोंसे श्रेष्ठ लोग आते जाते हैं, उन मार्गोंसे ही आओ । शीघ्र ही विजय अन्न और बल प्राप्त करो ॥ ६ ॥

हे द्युलोकको आश्रय देनेवाले अश्विदेवो ! हम तुम्हें जैसा आज बुलाते हैं वैसे कल भी बुलावेंगे । हम प्रातःकालमें अग्निको प्रदीप्त करते हैं और तुम्हारे स्तोत्र गाते हैं । श्रेष्ठ पुरुष, तुम कहीं भी रहो तो, तुम्हें ही अपने पास बुलावेगा ॥ १ ॥

हे बलवान् नेता अश्विदेवो ! तुम हम सबको सुखी करो । तुम सोमपानसे आनंदित होकर पणियोंका नाश करो । मेरी स्तुतिका श्रवण करो । तुम अच्छे मनुष्यको ढूंढते हैं और उसीको अपना आश्रय देते हो ॥ २ ॥

हे दानी सत्यपालक, पोषणकर्ता अश्विदेवो ! सूर्यकी पुत्रीको अपने रथपर चढानेका यश प्राप्त करनेके लिये बाणके वेगसे तुम दोनों गये । इस समय समुद्रसे प्राप्त महान् वरुणदेवके प्राचीन रथके घोडोंके समान ही तुम्हारे घोडोंकी स्तुति होती है ॥ ३ ॥

१९२८ अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद् वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥
१९२९ एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥
१९३० अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१८५]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९३१ कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥

अर्थ— [१९२८] हे (सुदानू माध्वी) अच्छे दान देनेवाले मधुर सोमरस पीनेवाले अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंकी (सा रातिः) वह देन (अस्मे अस्तु) हमारे लिए ही रहे, (मान्यस्य कारोः) माननीय और कार्यशीलके (स्तोमं हिनोतं) स्तोत्रको चारों ओर तुम प्रेरित करो, (यत्) निश्चयसे (वां अनु) तुम दोनोंके अनुकूलतामें रहकर (श्रवस्या) यश पानेके लिए (चर्षणयः) सब लोग (सुवीर्याय मदन्ति) उत्तम पराक्रम करनेके लिये ही आनंदित होते हैं ॥ ४ ॥

[१९२९] हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न ! सत्यपालक अश्विदेवो ! (एषः) यह (वां स्तोमः) तुम दोनोंका स्तोत्र (सुवृक्ति अकारि) भलीभाँति तैयार किया है, इसलिए (तनयाय त्मने च) पुत्रके एवं अपने लाभके लिए (मदन्ता) हर्षित होते हुए (अगस्त्ये) अगस्त्यके (वर्तिः यातं) घर जाओ ॥ ५ ॥

[१९३०] (अस्य तमसः) इस अंधेरेके (पारं अतारिष्म) पार हम चले गए । हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां प्रति) तुम दोनोंके लिए (स्तोमः अधायि) स्तोत्र तैय्यार कर दिया है । (देवयानैः पथिभिः) देवतागण जिसपरसे चलते हैं, ऐसे मार्गोंसे (इह आयातं) इधर आओ । (जीरदानुं इषं वृजनं विद्याम) शीघ्र विजय, अन्न, तथा बल हमें मिले ॥ ६ ॥

[१८५]

[१९३१] (अयोः) इन द्यावापृथ्वीमें (कतरा पूर्वा कतरा अपरा) कौन पहले और कौन बादमें हैं, (कथा जाते) ये दोनों किस प्रकार उत्पन्न हुई, हे (कवयः) ज्ञानी जन ! (कः वि वेद) इन बातोंको कौन जानता है ? (यत् ह) चूंकि ये दोनो (त्मना) अपनी शक्तिसे (विश्वं नाम बिभृतः) सभी विश्वको धारण करती हैं, अतः (अहनी) दिन रातको बनानेवाली ये दोनों (चक्रिया इव) चक्रके समान (वि वर्तते) घूमती रहती हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे उत्तम दान देनेवाले, मधुर रस पीनेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनोंका दान हमें प्राप्त होता रहे । सन्माननीय कुशल कारीगरका या कविका स्तोत्र सुनो और उसका यश चारों ओर बढाओ । सब लोग तुम्हारी सहायतासे उत्तम पराक्रम करके श्रेष्ठ यश पानेको ही आनंदसे इच्छा करते हैं ॥ ४ ॥

हे ऐश्वर्यसंपन्न और सत्यपालक अश्विदेवो ! तुम्हारा स्तोत्र मैंने किया है । इससे आनंदित होकर तुम दोनों मुझ अगस्त्यके घर आओ और मेरे पुत्रोंका तथा मेरा भला करो ॥ ५ ॥

इस अन्धेरे स्थानसे हम पार हो चुके । तुम्हारे लिए यह स्तवन किया है । देवोंके आनेके मार्गसे यहां हमारे पास आओ । हमें विजय, अन्न तथा बल मिले ॥ ६ ॥

ये दोनों द्यु और पृथ्वी लोक कहांसे और किस प्रकार पैदा हुए और इन दोनोंमें कौन पहले पैदा हुआ और कौन बादमें पैदा हुआ, यह कौन जानता है । यह सब रहस्यमय है । पर इतना अवश्य ज्ञात होता है कि ये दोनों लोक सभी संसारको धारण कर रहे हैं और इन्हींके कारण दिन रात उत्पन्न होते हैं, तथा चक्रके समान घूम रहे हैं ॥ १ ॥

१९३२ भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदीं दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ २ ॥
१९३३ अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद् रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥
१९३४ अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥
१९३५ संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१९३२] (द्वे अपदी अचरन्ती) ये दोनों द्यावापृथिवी बिना पैरोंके तथा न चलनेवाली होती हुई भी (भूरिं चरन्तं पद्वन्तं गर्भं दधाते) बहुतसे चलनेवाले और पैरोंवाले प्राणियोंका धारण करती हैं। (पित्रोः उपस्थे सूनुं नित्यं न) जिस प्रकार मातापिताके पास रहनेवाले पुत्रकी ये दोनों हमेशा रक्षा करते हैं, उसी तरह (द्यावा पृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यु और पृथ्वी हमारी बडे बडे संकटोंसे रक्षा करें ॥ २ ॥

१ अपदी अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं दधाते— पैरोंसे रहित व न चलनेवाली ये द्यावापृथ्वी चलनेवाले व पैरवाले प्राणियोंको धारण करती हैं।

[१९३३] (अदितेः) अदितिके (अनेहः अनर्वं) पापसे रहित, क्षीण न होनेवाले (स्वर्वत् अवधं नमस्वत् दात्रं) तेजस्वी, अहिंसनीय और नम्रता प्रदान करनेवाले धनको (हुवे) मैं मांगता हूँ। (तत्) उस धनको (रोदसी) द्यावा पृथिवी (जरित्रे जनयतं) स्तोताके लिए उत्पन्न करें (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथ्वीलोक (अभ्वात् नः रक्षतं) पापसे हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

[१९३४] (देवपुत्रे रोदसी) देवोंको उत्पन्न करनेवाले द्यावा पृथ्वी (अतप्यमाने) पीडित न होते हुए (अवसा अवन्ती) अपने रक्षणके साधनोंसे लोगोंकी रक्षा करती हैं। (देवानां अन्हां उभयेभिः) दिव्य दिन और रातके साथ हम (उभे अनु स्याम) इन दोनोंके अनुकूल रहें और (द्यावापृथिवी अभ्वात् नः रक्षतं) द्यावा पृथिवी पापसे हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

[१९३५] (संगच्छमाने) साथ साथ चलनेवाली (युवती) तरुणियां (समन्ते स्वसारा) एक दूसरेके साथ सम्बद्ध, बहिनें तथा (जामी) एक दूसरेकी सहायता करनेवाली ये द्यावापृथ्वी (पित्रोः उपस्थे) पिताके समीप रहकर (भुवनस्य नाभिं अभि जिघ्रन्ती) भुवनकी नाभिको सूंघती हैं। ऐसी (द्यावा पृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावा पृथ्वी हमारी पापसे रक्षा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ— स्वयं यद्यपि पैरोंसे रहित होनेके कारण चलनेमें असमर्थ हैं, फिर भी पैरोंसे युक्त होनेके कारण चलने फिरनेमें समर्थ प्राणियोंको धारण करती हैं। ये दोनों प्राणियोंकी उसी तरह रक्षा करती है जिस प्रकार पिता पासमें बैठे हुए अपने पुत्रकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

हम अखण्डनीय पृथ्वीसे पापसे रहित, अहिंसनीय तेजस्वी और नम्रता प्रदान करनेवाला धन मांगते हैं। धन उत्तम मार्गसे कमाया जाए, छल कपटसे कमाया गया धन पापका होता है। उत्तम रीतिसे कमाया गया धन नम्रता प्रदान करनेवाला होता है। धन पाकर मनुष्य घमंडी और उद्धत न हो, अपितु नम्र ही रहे ॥ ३ ॥

ये द्यावापृथिवी देवोंको उत्पन्न करनेवाली हैं, इसीलिए इन्हें कोई कष्ट नहीं दे सकता। जितने भी देव इस ब्रह्माण्डमें हैं, वे सब द्यु और पृथ्वीके बीचमें हैं, इसलिए इन दोनोंको देवोंकी माता कहा है। जो इन दोनोंके अनुकूल आचरण करता है, उसकी ये हर तरहसे रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥

ये द्यावापृथ्वी सदा साथ साथ रहते हैं, एक दूसरेकी सहायता करते हैं और सारे संसारका पोषण करते हैं ॥ ५ ॥

१९३६ उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ६ ॥
१९३७ उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ७ ॥
१९३८ देवान् वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ८ ॥
१९३९ उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरिं चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१९३६] (ये सुप्रतीके) जो उत्तम रूपवाली द्यावापृथ्वी (अमृतं दधाते) अमृतको धारण करती हैं, उन (उर्वी) विस्तीर्ण (सद्मनी) निवासके आधार भूत (बृहती) महान् (जनित्री) सबको उत्पन्न करनेवाली द्यावापृथ्वीको (देवानां अवसा) देवोंके संरक्षणके लिए (ऋतेन हुवे) सत्यवाणीसे बुलाता हूँ (द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावापृथ्वी हमें पापोंसे सुरक्षित रखें ॥ ६ ॥

[१९३७] (ये सुभगे सु प्रतूर्ती दधाते) जो सुन्दर रूपवाली और उत्तम दान देनेवाली द्यावापृथ्वी सबको धारण करते हैं, ऐसे (उर्वी, पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते) विशाल, विस्तृत अनेकों आकारवाले तथा जिनका अन्त बहुत दूर है अर्थात् अनन्त ऐसे द्यावापृथ्वीकी मैं (अस्मिन् यज्ञे नमसा उप ब्रुवे) इस यज्ञमें स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करता हूँ । वे (द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावापृथिवी हमें पापसे सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

[१९३८] (देवान् यत् कच्चित् आगः चकृम) देवोंके प्रति कोई पाप यदि हमने किया हो, (सखायं वा) मित्रके प्रति पाप किया है (सदं इत् जास्पतिं) अथवा इन सब उत्पन्न हुए पदार्थोंके स्वामी प्रभुके प्रति पाप किया हो, तो (एषां अवयानं) उन पापोंको नष्ट करनेके लिए (इयं धीः भूयाः) यह बुद्धि समर्थ हो और (द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावापृथ्वी भी हमारी पापसे रक्षा करें ॥ ८ ॥

[१९३९] (शंसा नर्या) प्रशंसनीय तथा मनुष्योंका हित करनेवाली (उभा) दोनों द्यावापृथ्वी (मा अविष्टा) मुझे सुरक्षित करें । (ऊती उभे) संरक्षण करनेवाली दोनों द्यावापृथ्वी हमें (अवसा सचेतां) संरक्षणके साधनोंसे संयुक्त करें । हे (देवाः) देवो (अर्यः) श्रेष्ठ हम (इषा मदन्तः) अन्नसे आनन्दित होते हुए (सुदास्तराय) उत्तम दान देनेके लिए (भूरि चित् इषयेम) बहुतसा धन चाहते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— द्यावापृथ्वी दोनों उत्तम रूपवाले और जलको धारण करनेवाले हैं । ऐसे विशाल और सबको निवास करानेवाले सबके उत्पादक द्यावापृथ्वीको मैं यज्ञमें बुलाता हूँ ॥ ६ ॥

मैं सुन्दर रूपवाले विशाल विस्तृत और अनन्त द्यावापृथ्वीको यज्ञमें बुलाता हूँ, वे आकर हमारी पापोंसे रक्षा करें ॥७॥

यदि हमने कभी प्रमादवश देव विद्वानोंके प्रति, मित्रके प्रति और समस्त उत्पन्न जगत्के स्वामी प्रभुके प्रति कोई पाप किया हो, तो उस पापको हम अपनी उत्तम बुद्धिसे विनष्ट करनेमें समर्थ हों और द्यावापृथ्वी भी हमें सब पापोंसे सुरक्षित रखें ॥ ८ ॥

द्यावापृथ्वी दोनों संरक्षणके अनेक तरहके साधनोंसे युक्त हैं, अतः वे हमें हर तरहसे सुरक्षित रखें । हम भी श्रेष्ठ बनकर अन्नसे आनन्दित होकर उत्तम रूपसे दान देनेके लिए बहुतसे धनको प्राप्त करें ॥ ९ ॥

१९४० ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद् दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥ १० ॥
१९४१ इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१८६]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९४२ आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥ १ ॥
१९४३ आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥ २ ॥

अर्थ— [१९४०] (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिवाला मैं (पृथिव्या दिवे अभिश्रावाय) पृथिवी और द्युलोकको सुनानेके लिए (प्रथमं तत् ऋतं) सर्वश्रेष्ठ उस ऋतको (अवोचं) बोलता है । (अभीके) पासमें रहनेवाले वे दोनों (अवद्यात् दुरितात् पातां निन्दनीय पापोंसे हमारी रक्षा करें । (पिता माता च) पालन करनेवाला द्युलोक और उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी (अवोभिः रक्षतां) संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

[१९४१] हे (पितः मातः) पिता और माता द्यु एवं पृथिवी ! (वां) तुम दोनोंके लिए (इहे) इस यज्ञमें (यत् उप ब्रुवे) जो स्तुति करता हूँ, हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी ! (इदं सत्यं अस्तु) वह यह स्तुति सत्य हो । (देवानां अवमे) हम विद्वानोंके पास तुम दोनों (अवोभिः भूतं) संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर रहो, हम भी (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१८६]

[१९४२] (विश्वानरः सविता देवः) सबका कल्याण करनेवाला सवितादेव (सुशस्ति) अच्छी तरह प्रशंसित होकर (नः विदथे) हमारे यज्ञमें (इळाभिः आ एतु) अन्नसे युक्त होकर आवे । (युवानः) हे तरुणो ! (अभिपित्वे) हमारे यज्ञमें आकर तुम (मनीषा) अपनी कृपासे (नः विश्वं जगत् अपि) हमें और सम्पूर्ण विश्वको भी (यथा) जैसे हो वैसे (मत्सथः) आनन्दित करो ॥ १ ॥

[१९४३] (सजोषाः मित्रः वरुणः अर्यमा) परस्पर प्रीति करनेवाले मित्र, वरुण और श्रेष्ठ अर्यमा ये (विश्वे आस्क्राः देवाः) सभी शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले देव (नः आगमन्तु) हमारे पास आवें और (यथा) जिस प्रकार हो सके उस प्रकार (विश्वे नः वृधासः भुवन्) वे सब हमें बढानेवाले हों तथा (सुषाहा) शत्रुओंको हरानेकी शक्तिसे युक्त होकर वे (शवः विथुरं न करन्) हमारी शक्तिको नष्ट न करें ॥ २ ॥

भावार्थ— उत्तम बुद्धिवाला मैं द्युलोक और पृथ्वीलोकको अपनी सर्वश्रेष्ठ ऋचा सुनाता हूँ । वे मेरी स्तुतिसे प्रसन्न होकर निन्दनीय पापोंसे हमारी सुरक्षा करें ॥ १० ॥

द्यावापृथ्वीके लिये यज्ञमें हम जो स्तुति करते हैं, वह कभी व्यर्थ न हो अर्थात् उसका श्रेष्ठ फल हमें अवश्य मिले और दोनों हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर हमारी हर तरहसे रक्षा करें । हम भी सुरक्षित होकर अन्न, बल आदि प्राप्त करें ॥ ११ ॥

सब लोकोंका कल्याण करनेवाला देव हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर हमारे यज्ञमें अन्नसे युक्त होकर आवे । सभी देव तरुण हैं, वे कभी वृद्ध नहीं होते । वे सभी देव अपनी कृपासे हमें तथा सम्पूर्ण विश्वको आनन्दित करें ॥ १ ॥

हित एवं स्नेह करनेवाले वरणीय श्रेष्ठ देव शत्रुको विनष्ट करते हुए हमारे पास आवें और हमें हर तरहसे बढावें और कभी भी हमारी शक्तिको क्षीण न करें ॥ २ ॥

१९४४ प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषे ऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद् यथा नो वरुणः सुकीर्ति-रिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥ ३ ॥
१९४५ उप व एषे नमसा जिगीषो-षासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
समाने अहन् विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥ ४ ॥
१९४६ उत नोऽहिर्बुध्न्यो३ मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥ ५ ॥
१९४७ उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत् सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रा-स्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१९४४] जो (तुर्वणिः सजोषाः) शत्रुओंका विनाशक और सबके साथ प्रेमपूर्वक रहनेवाला है, ऐसे (वः प्रेष्ठं अतिथिं अग्निं) तुम्हारे अत्यन्त प्रिय और अतिथिके समान पूज्य अग्निकी (शस्तिभिः) स्तोत्रोंसे (गृणीषे) स्तुति करता हूँ। (यथा वरुणः नः सुकीर्तिः असत्) जिस प्रकार वरुण हमें उत्तम कीर्तिको देनेवाला हो तथा (अरिगूर्तः सूरिः शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला और विद्वान् वह वरुण (इषः च पर्षत्) हमें अन्नसे पूर्ण करे ॥ ३ ॥

[१९४५] सस्मिन् ऊधन् विषुरूपे पयसि) सभी थनोंसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके दूधमें (समाने अहन् अर्कं विमिमानः) सभी दिन तेजको देखता हुआ मैं हे देवो ! (जिगीषा) शत्रुओंको जीतनेकी शक्तिको पानेकी इच्छासे (वः उप) तुम्हारे पास (नमसा) नम्रतापूर्वक (उषासानक्ता) दिन और रातके समय (एषे) उसी प्रकार आता हूँ, जिस प्रकार सुदुघा धेनुः इव) उत्तम दुधारु गाय दिन और रातके समय ग्वालेके पास आती है ॥४॥

[१९४६] (उत) और (अहिर्बुध्न्यः) अहिर्बुध्न्य देव (नः मयः कः) हमें सुखी करे, और (शिशुं न) जिस प्रकार माता अपने बच्चेको तृप्त करता है, उसी प्रकार (पिप्युषी सिन्धुः वेति) जलसे तृप्त करनेवाली नदी हमारे पास आवे। (मनोजुवः वृषणः यं वहन्ति) मनके समान वेगवान् तथा बलशाली घोडे जिसे ले जाते हैं, ऐसे (अपां नपातं) जलोंको न गिरानेवाले अग्निका (येन जुनाम) जिससे हम सेवा कर सकें ॥ ५ ॥

[१९४७] ईं अभिपित्वे) इस यज्ञमें आकर (सूरिभिः सजोषा) विद्वानोंके साथ प्रेमसे मिलकर रहनेवाला (त्वष्टा) त्वष्टा देव (नः अच्छ आ गन्तु स्मत्) हमारे पास सीधे आवे। (उत) और (चर्षणिप्राः तुविस्तमः वृत्रहा इन्द्रः) मनुष्योंको तृप्त करनेवाला, बहुतोंसे प्रशंसित तथा वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (नः नरां इह आ गम्याः) हम मनुष्योंके इस कर्ममें आवे ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि शत्रुओंका नाशक होने और सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेके कारण अतिथिके समान पूज्य है। उसकी हम हर तरहसे स्तुति करते हैं। वरुण हमें उत्तम यश प्रदान करे और अन्नसे पूर्ण करे ॥ ३ ॥

सभी थनोंसे निकलनेवाले गायके दूधमें सभी तरहका अन्न और तेज रहता है। दूध एक उत्तम अन्न है, जो उत्तम तेज प्रदान करता है। ऐसे उत्तम तेजसे युक्त होकर मैं शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे नम्रतापूर्वक देवोंके पास जाता हूं ॥ ४ ॥

यह अग्नि बिजलीका रूप धारण कर मेघोंमें जलोंको इकट्ठा करता है। इसकी किरणें मनसे भी वेगवान् हैं और जल बरसानेवाली हैं। यह विद्युत् रूप अग्नि अन्तरिक्षमें रहकर अहि अर्थात् मेघका विनाशक है। मेघोंको मारकर पानी बरसाता है, उससे पानी पृथ्वी पर आता है और नदियां जलसे भरपूर होकर बहने लगती हैं और वे नदियां तब अन्नादि उत्पन्न करके मनुष्योंको तृप्त करती हैं ॥ ५ ॥

विद्वानोंसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेवाला यह त्वष्टा देव तथा मनुष्योंको तृप्त करनेवाला तथा शत्रुओंको विनष्ट करनेवाला इन्द्र हमारे पास आकर हमारे कार्योंमें सहायक हों ॥ ६ ॥

१९४८ उत नं ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥ ७ ॥
१९४९ उत नं ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद् रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥ ८ ॥
१९५० प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥ ९ ॥
१९५१ प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥ १० ॥

अर्थ— [१९४८] (नः अश्वयोगाः मतयः) हमारी चारों ओर गति करनेवाली बुद्धियां (ईं तरुणं रिहन्ति) इस तरुण इन्द्रको उसी तरह प्यार करती हैं, ((गावः शिशुं न) जिस प्रकार गायें अपने बछडोंको प्यारसे चाटती हैं। (उत) और (तं सुरभिस्तमं ईं) उस अत्यन्त यशस्वी इस इन्द्रको (नः नरां गिरः) हम मनुष्योंकी वाणियां (नसन्तः) उसी तरह घेरती है, (जनयः पत्नीः न) जिस प्रकार सन्तानको उत्पन्न करनेवाली स्त्रियां पतियोंको ॥ ७ ॥

[१९४९] (रथाः अवनयः न रिशादसः) रथों पर बैठे हुए रक्षकगणोंकी तरह शत्रुओंको खा जानेवाले (मित्रयुजः न देवाः) मित्रके समान सबसे मिलजुल कर रहनेवाले, तेजस्वी (पृषदश्वासः) चित्र विचित्र घोडोंवाले (समनसः) समान मनो भावोंवाले (वृद्धसेनाः) महती शक्तियोंवाले (मरुतः) मरुत् तथा (रोदसी) द्यावापृथ्वी (नः ईं सदन्तु) हमारे इस यज्ञमें आकर बैठें ॥ ८ ॥

[१९५०] (यत्) जब (सुवृक्ति) उत्तम स्तुति होने पर (ते) वे मरुद्गण (प्रयुजः युंजते) घोडोंको अपने रथमें जोडते हैं, (अध) इसके बाद (सुदिने शरुः न) मेघसे रहित दिनमें जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाशसे सब स्थानोंको सींचता है, उसी प्रकार (एषां सेनाः) इन मरुतोंकी सेना (विश्वं इरिणं प्रुषायन्तः) सभी ऊसर जमीनको जलसे सींचते हैं, तब (एषां महिना प्र चिकित्रे) इनकी कीर्ति और बढ जाती है ॥ ९ ॥

[१९५१] (अश्विनौ) अश्विनौकी (पूषणं) पूषाकी, (स्वतवसः हि सन्ति) जो देव अपनी शक्तिसे सम्पन्न है, (अद्वेषः विष्णुः) जो द्वेष न करनेवाला विष्णु है, (वातः) वायु है (ऋभुक्षा) सबका पति इन्द्र है, उन सबकी (अवसे) अपने रक्षकके लिए (प्र कृणुध्वं) अच्छीतरह स्तुति करो। मैं भी (सुम्नाय) सुख पानेके लिए (देवान् अच्छ ववृतीय) इन देवोंकी अच्छीतरह प्रशंसा करूं ॥ १० ॥

भावार्थ— जिस प्रकार गायें अपने बछडोंको प्यारसे चाटती हैं, उसी प्रकार हमारी बुद्धियां इस इन्द्रको प्यार करती हैं और उससे हमारी स्तुतियां उसी तरह संयुक्त होती हैं, जिस प्रकार सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छावाली स्त्री अपने पतिसे संयुक्त होती है ॥ ७ ॥

रथों पर बैठे हुए रक्षकगणोंकी तरह शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले तथा मित्रोंके समान परस्पर स्नेहपूर्वक रहनेवाले तथा समान मनवाले ये मरुत् तथा द्यावापृथ्वी हमारे यज्ञमें आकर बैठें ॥ ८ ॥

मरुद्गण वायु हैं, जब ये शक्तिका उपयोग करते हैं तब मेघोंसे जल बरसाते हैं। और उन जलोंसे ये ऊसर जमीनको भी सींचकर उपजाऊ बनाते हैं। यह काम इन मरुतोंकी कीर्तिको बढानेवाला है ॥ ९ ॥

अश्विना, पोषण करनेवाले, अपनी शक्तिके आश्रयसे रहनेवाले, किसीसे द्वेष न करनेवाले व्यापक देव, वायु और इन्द्र इन सब देवोंकी मनःपूर्वक स्तुति करनी चाहिए। इनकी स्तुति करनेसे हर तरहके सुख मिलते हैं ॥ १० ॥

१९५२ इयं सा वों अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयु-र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१८७]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अन्नम् । छन्दः- १ अनुष्टुब्गर्भा उष्णिक्; ३, ५-७, ११ अनुष्टुप्, ११ बृहती वा; २, ४, ८-१० गायत्री ।)

१९५३ पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥

१९५४ स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥ २ ॥

१९५५ उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१९५२] हे (यजत्राः) पूजाके योग्य देवो ! (वसूयुः या देवेषु यतते) ऐश्वर्यको प्राप्त करानेवाली जो दीप्ति देवोंको प्रेरित करती है, (सा वः अपिप्राणी सदनी) वह तुम्हारी मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली तथा उनको निवास करानेवाली (सा दीधितिः) वह दीप्ति (अस्मे भूयाः) हमारे अन्दर हो, ताकि हम (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१८७]

[१९५३] (यस्य ओजसा) जिसके ओजसे (त्रितः) तीनों लोकोंमें यशस्वी इन्द्रने (वृत्रं विपर्व) वृत्रके अंग प्रत्यंग काट काटकर (अर्दयत्) उसे मार दिया, उस (महः धर्माणं तविषीं) महान्, सबको धारण करनेवाले तथा शक्तिशाली (पितुं नु स्तोषं) पालक अन्नकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१९५४] हे (स्वादो पितो) स्वादयुक्त पालक तथा (मधो पितो) मधुर रसके पोषक देव ! (वयं त्वा ववृमहे) हम तेरी सेवा करते हैं, (अस्माकं अविता भव) तू हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ २ ॥

[१९५५] हे (पितो) पालक अन्न ! तू (शिवः मयोभुः अद्विषेण्यः) मंगलकारक, सुखकारक, किसीसे भी द्वेष न करनेवाला, (सखा सुशेवः अद्वयाः) मित्रके समान हितकारी, अच्छी तरह सेवनीय और छल कपटसे रहित है, अतः तू (शिवाभिः ऊतिभिः नः उप चर) कल्याणकारक संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ ॥ ३ ॥

भावार्थ— देवोंके अन्दर जो तेज है वह विद्वानोंको उत्तम कामोंमें प्रेरित करता है और वह मनुष्योंकी सब कामनाओंको पूर्ण करके उनका जीवन उत्तम और श्रेष्ठ बनानेवाला है। उसे प्राप्त करनेवाला मनुष्य उत्तम अन्न, उत्तम बल और दीर्घायुसे युक्त होता है ॥ ११ ॥

इस अन्नके बलसे इन्द्रने वृत्रके सब अंग काट काटकर उसे नष्ट किया । अन्नरूप इन्द्र अर्थात् सूर्यने प्रकाशको ढकनेवाले अन्धकारका नाश किया । यह अग्नि महान् और धारक होनेसे तनूनपात् अर्थात् शरीरको न गिरानेवाला है अर्थात् शरीरको शक्तिशाली बनाता है ॥ १ ॥

यह अन्न स्वादिष्ट और मधुर रसोंका पोषक है, यह मनुष्योंको पुष्ट करता है और इस प्रकार उनकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

इस मंत्रका देवता इळः अर्थात् अन्न है । यह अन्न कल्याणकारक, सुखकारक सबको समान रूपसे पुष्ट करनेवाला और हितकारी है, इसीलिए इस अन्नका आदर करना चाहिए ॥ ३ ॥

१९५६ तव॒ त्ये पि॑तो॒ रसा॒ रजां॒स्यनु॒ विष्ठि॑ताः । दि॒वि वाता॑ इव श्रि॒ताः ॥ ४ ॥
१९५७ तव॒ त्ये पि॑तो॒ दद॑त॒स्तव॑ स्वादिष्ठ॒ ते पि॑तो ।
प्र स्वा॒द्मानो॒ रसा॑नां तुवि॒ग्रीवा॑ इवेरते ॥ ५ ॥
१९५८ त्वे पि॑तो म॒हानां॑ दे॒वानां॒ मनो॑ हि॒तम् ।
अका॑रि॒ चारु॑ के॒तुना॒ तवाहि॒मव॒साव॑धीत् ॥ ६ ॥
१९५९ यद॒दो पि॑तो॒ अज॑गन् वि॒वस्व॒ पर्व॑तानाम् ।
अत्रा॑ चिन्नो मधो पितो॒ ऽरं॑ भ॒क्षाय॑ गम्याः ॥ ७ ॥
१९६० यद॒पामोष॑धीनां परिं॒शमा॑रि॒शाम॑हे । वाता॑पे॒ पीव॒ इद्भ॑व ॥ ८ ॥

अर्थ— [१९५६] हे (पितो) पालक अन्न ! (तव त्ये रसाः) तेरे वे रस (रजांसि अनु विष्ठिताः) लोकोंमें उसी तरह प्रतिष्ठित हैं, जिस तरह (दिवि श्रिताः वाताः इव) अन्तरिक्षमें वायु प्रतिष्ठित हैं ॥ ४ ॥

[१९५७] हे (पितो) पालक अन्न ! (तव त्ये ददतः) तेरे वे उपासक तेरा दान करते हैं, हे (स्वादिष्ठ पितो) मधुरतासे परिपूर्ण पिता अन्न देव ! (ते तव) वे तेरा पोषण ही करते हैं । (रसानां स्वाद्मानः) अन्नके रसोंको खानेवाले (तुविग्रीवाः इव ईरते) मोटी गर्दनवाले होकर चलते हैं ॥ ५ ॥

[१९५८] हे (पितो) सबके पालक अन्न देव ! (महानां देवानां मनः) बडे बडे देवोंका मन भी (त्वे हितं) तुझमें लगा रहता है । इन्द्रने (तव चारु केतुना) तेरे उत्तम बल एवं (अवसा) रक्षणशक्तिसे युक्त होकर (अहिं अवधीत्) अहि राक्षसको मारा और यह बडा कार्य (अकारि) किया ॥ ६ ॥

[१९५९] हे (पितो) पालक अन्न ! (यत्) जब (विवस्व पर्वतानां) जलयुक्त मेघोंका (अदः) यह शुभ जल (अजगन्) तेरे पास पहुंचता है, तब (मधो पितो) हे स्वादिष्ट अन्न ! (अत्र चित्) इस संसारमें (भक्षाय अरं गम्याः) हमारे खानेके लिए तू हमें पर्याप्त प्राप्त हो ॥ ७ ॥

[१९६०] (यत्) जब हम (अपां ओषधीनां) जलों औषधियोंसे उत्पन्न (परिंशं) चारों ओरसे सुखकारक अन्नको (आरिशामहे) खाते हैं, तब (वातापे) हे शरीर ! तू (पीवः इत् भव) मोटा– हृष्टपुष्ट हो ॥ ८ ॥

वातापिः— शरीर- " वातेन प्राणेन आप्नोति स्वनिर्वाहं– जो प्राणसे अपना निर्वाह चलाता है । (सायण)

भावार्थ— जिस प्रकार अन्तरिक्षमें अनेक तरहके वायु संचार करते हैं, उसी प्रकार इस अन्नके सभी तरहके रस इन लोकोंमें प्रतिष्ठित हैं अथवा रज अर्थात् धूलीसे भरी इस पृथ्वीमें सभी तरहके रस विद्यमान हैं ॥ ४ ॥

अन्नका दान करना ही अन्नका पोषण है । जो अकेला ही खाता है, वह पाप खाता है और अन्नकी हिंसा करता है, अतः हमेशा अन्नका दान करके ही खाना चाहिए । जो इस प्रकार अन्नका दान करते हुए खाते हैं, वे मोटी गर्दनवाले अर्थात् हृष्टपुष्ट शरीरवाले होकर सर्वत्र विचरते हैं ॥ ५ ॥

यह अन्न इतना महत्त्वपूर्ण है कि बडे बडे देव भी अमृतको छोडकर अन्न प्राप्त करनेकी कोशिश करते हैं । इस अन्नकी शक्तिसे परिपुष्ट होकर राजागण अपने शत्रुविनाशरूपी बडे बडे कार्योंको करते हैं ॥ ६ ॥

जब पानीसे भरे हुए बादलोंका शुभ जल अन्नके पास पहुंचता है अर्थात् जब जलवृष्टिके कारण फसल अच्छी होती है, तब मनुष्योंके खानेके लिए अन्न पर्याप्त मात्रामें मिलता है ॥ ७ ॥

जलसे औषधियां उत्पन्न होती हैं और ओषधिसे अन्न । अतः जब जल और ओषधियोंसे उत्पन्न अन्नका हम भक्षण करेंगे, तब हमारा शरीर हृष्टपुष्ट होगा ॥ ८ ॥

१९६१ यत् ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद् भव ॥ ९ ॥
१९६२ करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद् भव ॥ १० ॥
१९६३ तं त्वा वयं पितो वचोभि—र्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमाद—मस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ११ ॥

[१८८]

(ऋषिः– अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता– आप्रीसूक्तं= [१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः]। छन्दः– गायत्री ।)

१९६४ समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥
१९६५ तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिषः ॥ २ ॥

अर्थ— [१९६१] हे (सोम) सुखकारक अन्न ! (यत्) जब (गवाशिरः यवाशिरः ते भजामहे) गौके दूध घृतादिसे मिश्रित एवं जौ गेहूं आदिसे युक्त अन्न खाते हैं, तब (वातापे पीवः इत् भव) हे शरीर ! तू हृष्ट पुष्ट हो ॥ ९ ॥

[१९६२] हे (करंभ ओषधे) पके हुए अन्न ! तू (पीवः वृक्कः उदारथिः भव) पुष्टिकारक, रोगोंका नाशक एवं इन्द्रियोंको उन्नत करनेवाला हो । हे (वातापे पीवः इत् भव) शरीर तू पुष्ट हो ॥ १० ॥

[१९६३] हे (पितो) पालक अन्न ! (देवभ्यः सधमादं) देवोंको आनन्द देनेवाले तथा (अस्मभ्यं सधमादं) हमें आनन्द देनेवाले (तं त्वां) उस तुझे (वचोभिः सुषूदिम) स्तुतियोंके सहित उसी प्रकार निचोडते हैं, जिस तरह (गावः हव्या न) गायें हविके योग्य घी दूधको निचोडती हैं ॥ ११ ॥

[१८८]

[१९६४] हे (सहस्रजित्) हजारों शत्रुओंको जीतनेवाले अग्ने ! (देवैः समिद्धः देवः) देवोंके द्वारा प्रज्वलित तेजस्वी तू (अद्य राजसि) आज प्रदीप्त हो रहा है । (दूतः कविः) दूत और ज्ञानी तू (हव्या वह) हमारी हवियों-को देवोंके पास पहुंचा ॥ १ ॥

[१९६५] (तनूनपात् यज्ञः) शरीरको न गिरानेवाला पूज्य यह अग्नि (सहस्रिणीः इषः दधत्) हजारों तरहके अन्नोंको धारण करता हुआ (ऋतं यते) यज्ञमें जाता है और वहां (मध्वा समज्यते) मधुर हवियोंसे संयुक्त होता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जब अन्नमें जौ आदि पदार्थ एवं गायके दूध, घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थ खाये जाते हैं, तब शरीर पुष्ट होता है ॥ ९ ॥

हमेशा पका हुआ अन्न ही खाना चाहिए । ऐसा अन्न पुष्टिकारक, रोगोंका नाशक और इन्द्रियोंके लिए पोषक होता है । कच्चा अन्न अनेक रोगोंका कारण होता है । पके अन्न खानेसे शरीर पुष्ट होता है ॥ १० ॥

यह अन्न देवोंको और मनुष्योंको आनन्द देते हैं । जिस प्रकार एक ग्वाला बडे प्रेमसे मीठे वचन बोलता हुआ गायका दूध दुहता है उसी तरह बडे प्रेमसे अन्नका रस निकालना चाहिए । इस प्रकार प्रेमसे निकाला गया एवं प्रेमसे खाया गया अन्न रस पोषक होता है ॥ ११ ॥

अन्य देवों द्वारा प्रदीप्त किया गया अग्नि अत्यन्त तेजस्वी दिखाई देता है । यह अनेकों अन्नोंको धारण करता है और यज्ञमें मधुर हवियोंसे संयुक्त होता है ॥ १–२ ॥

१९६६ आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥
१९६७ प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥
१९६८ विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥
१९६९ सुरुक्मे हि सुपेशसा ऽधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥
१९७० प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥
१९७१ भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥ ८ ॥

अर्थ—[१९६६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (सहस्रसा असि) हजारों तरहके ऐश्वर्यसे युक्त है, इसलिए (ईड्यः) पूज्य तू (नः आजुह्वानः) हमारे द्वारा बुलाया जाता हुआ (यज्ञियान् देवान् आ वक्षि) पूजाके योग्य देवोंको ले आ ॥ ३ ॥

[१९६७] (प्राचीनं सहस्रवीरं बर्हिः) प्राचीन और हजारों वीर जिस पर बैठते हैं ऐसे आसनको मनुष्य (ओजसा) अपने बलसे (अस्तृणन्) बिछाते हैं। हे (आदित्याः) सूर्यके समान तेजस्वी वीरो ! (यत्र विराजथ) जहां तुम बैठते हो ॥ ४ ॥

[१९६८] (विराट् सम्राट् विभ्वीः) विशेष तेजस्वी, अच्छी तरहसे प्रकाशित अनेक प्रकारके (प्रभ्वीः बह्वीः भूयसीः च याः दुरः) विशेष शोभायमान् अनेकों जो द्वार हैं, वे (घृतानि अक्षरन्) पानी बहाते हैं ॥ ५ ॥

[१९६९] (सुरुक्मे सुपेशसा) उत्तम तेजवाले तथा उत्तम रूपवाले उषा और रात्रि (अधि श्रिया विराजतः) और अधिक शोभासे युक्त होते हैं। हे (उषसौ) उषा और रात्रि! तुम दोनों (इह सीदतां) यहां आकर बैठो ॥ ६ ॥

[१९७०] (प्रथमा सुवाचसा) मुख्य श्रेष्ठ उत्तम वाणीसे युक्त (दैव्या कवी होतारा) तेजस्वी और ज्ञानी होता (नः इमं यज्ञं यक्षतां) हमारे इस यज्ञको सम्पूर्ण करें ॥ ७ ॥

[१९७१] हे (भारति इळे सरस्वति) भारति, इळा और सरस्वती ! (याः वः सर्वाः उप ब्रुवे) जिन तुम सबको मैं बुलाता हूँ, (ताः) वे तुम सब (नः श्रिये चोदयत) हमें ऐश्वर्यकी तरफ प्रेरित करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह अग्नि हजारों तरहके ऐश्वर्य धारण करता है। अतः हम उसकी प्रार्थना करते हैं, वह अनेकों देवोंको हमारे यज्ञमें बुलाकर लावे ॥ ३ ॥

यज्ञमें हजारों वीर जिस पर बैठ सकते हैं, ऐसे आसन बिछाते हैं, जिस पर सूर्यके समान तेजस्वी जन बैठते हैं ॥ ४ ॥

यज्ञके द्वार अनेक तरहसे सजाए जानेके कारण विशेष तेजस्वी दीख पडते हैं और यज्ञमें अनेकों द्वार बनाये जाते हैं, वे सब द्वार मानों तेजस्वी पदार्थ प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

उषा और रात्रि ये दोनों प्रथम ही उत्तम तेजस्वी और सुन्दर रूपवाली हैं, पर जब इन कालोंमें यज्ञ किए जाते हैं, तब ये दोनों और ज्यादा तेजसे युक्त हो जाती हैं ॥ ६ ॥

दिव्य और उत्तम श्रेष्ठ ज्ञानी होता उषासानक्ता हमारे इस यज्ञको सम्पूर्ण करें। दिन और रात्रिमें यज्ञ होनेके कारण ये दोनों होता हैं, जो यज्ञको पूर्ण करते हैं ॥ ७ ॥

मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसंस्कृति इन तीनोंकी सदा उपासना करनी चाहिए। इन तीनोंका सदा सम्मान करना चाहिए, क्योंकि ये सदा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली होती हैं। जो इनकी उपासना करता है, वह ऐश्वर्यशाली होता है ॥८॥

१९७२ त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून् विश्वान् त्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ९ ॥
१९७३ उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥ १० ॥
१९७४ पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते ॥ ११ ॥

[१८९]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९७५ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्य१स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १ ॥

अर्थ— [१९७२] (त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः) त्वष्टादेव रूपोंको बनानेमें समर्थ है, वही (विश्वान् पशून् समानजे) सम्पूर्ण पशुओंको प्रकट करता है । हे त्वष्टादेव ! तू (नः) हमारे लिए (तेषां स्फातिं आ यज) उन पशुओंको समृद्ध कर ॥ ९ ॥

[१९७३] हे (वनस्पते) वनस्पते ! तू (त्मन्या) स्वयंकी शक्तिसे (देवेभ्यः पाथः उप सृज) देवोंके लिए अन्न तैय्यार कर, तब (अग्निः हव्यानि सिष्वदत्) अग्नि हव्योंको खाये ॥ १० ॥

[१९७४] (देवानां पुरोगा अग्निः) देवोंके आगे रहनेवाला अग्नि (गायत्रेण समज्यते) गायत्री मंत्रसे संयुक्त होता है और फिर (स्वाहाकृतीषु रोचते) स्वाहाकारपूर्वक दी गई आहुतियोंके कारण प्रदीप्त होता है ॥ ११ ॥

[१८९]

[१९७५] हे (देव अग्ने) तेजस्वी अग्ने ! (राये अस्मान् सुपथा नय) ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए हमें उत्तम मार्गसे ले चल, तू (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) हमारे सब कार्योंको जाननेवाला है, अतः (अस्मत् जुहुराणं एनः युयोधि) हमसे इस कुटिल पापको दूर कर, (ते भूयिष्ठां नमः उक्तिं विधेम) तुझे हम बार बार नमस्कारके वचनोंको कहें ॥ १ ॥

१ हे अग्ने राये अस्मान् सुपथा नय— हे तेजस्वी देव ! ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हमें तू उत्तम मार्गसे ही ले चल ।

२ विश्वानि वयुनानि विद्वान्— वह देव हमारे सभी कर्मोंको जानता है ।

३ अस्मत् जुहुराणं एनः एधि— हम कुटिल पापोंसे दूर रहें ।

४ भूयिष्ठां नमः उक्तिं विधेम— प्रतिदिन इस देवकी भक्ति करनी चाहिए । पापसे बचनेका एकमात्र उपाय परमात्माकी उपासना है ।

भावार्थ— त्वष्टा देव इस संसारके सभी मनुष्यों एवं पशुओंको बनाता है, वही सब प्राणियोंमें अलग अलग रूपोंका निर्माण करता है और वही सभी पशुओंको बढाता है ॥ ९ ॥

यज्ञकी समिधायें अग्निको प्रज्वलित करती हैं, उस प्रज्वलित अग्निमें हवि डाली जाती है और वह हवियां देवोंका भोजन तैय्यार करती हैं ॥ १० ॥

यह अग्नि हमेशा देवोंके आगे रहता है । इसीलिए इसे अग्नि कहा है। यज्ञमें अग्निके प्रज्वलित होनेपर गायत्री छन्दके मंत्रोंका पाठ किया जाता है और अन्तमें " स्वाहा " शब्दके साथ उस अग्निमें आहुतियां दी जाती हैं, जिनसे अग्नि और अधिक प्रज्वलित होता है ॥ ११ ॥

धन भी हमेशा उत्तम मार्गसे ही प्राप्त करना चाहिए । क्योंकि वह सर्वव्यापक प्रभु हमारे सब कर्मोंको जानता है उसकी प्रतिदिन प्रार्थना करनेसे मनुष्य पापकर्मसे दूर रहता है ॥ १ ॥

१९७६ अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥ २ ॥
१९७७ अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुवितायं देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥ ३ ॥
१९७८ पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्त्रै रुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१९७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं नव्यः) तू अत्यन्त नवीन अथवा स्तुत्य है तू (स्वस्तिभिः अस्मान् विश्वा दुर्गाणि अति पारय) इन कल्याणकारी मार्गोंसे हमें सारे दुर्गम पापोंसे पार लगा । (नः पृथ्वी च पूः बहुला उर्वी भव) हमारी पृथ्वी और नगर प्रशस्त हों । तू हमारे (तोकाय तनयाय शं योः भव) सन्तानोंके लिये तथा पुत्रोंके लिये सुख प्रदान करनेवाला हो ॥ २ ॥

१ स्वस्तिभिः अस्मान् विश्वा दुर्गाणि पारय— कल्याणकारी मार्गोंसे हम सब तरहके दुर्गम पापों एवं दुःखोंसे पार हों ।

२ पृथ्वीः पूः च उर्वी भव— यह पृथ्वी और नगर हमारे लिए विस्तृत और उत्तम हों ।

[१९७७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं अस्मत् अमीवाः युयोधि) तू हमारे पाससे रोगोंको दूर कर, (अन-ग्नित्राः कृष्टीः अभि अमन्त) अग्निहोत्र न करनेवाले मनुष्य चारों ओरसे रोगी होते हैं । (पुनः अस्मभ्यं सुविताय देवः) फिर हमारे कल्याणके लिए दिव्यगुण युक्त तू (विश्वेभिः अमृतेभिः क्षां यजत्र) सम्पूर्ण, मरण रहित देवताओंके साथ पृथ्वी पर संघटित होकर आ ॥ ३ ॥

१ अन्-अग्नित्राः, कृष्टीः अभि अमन्त— अग्निकी उपासना न करनेवाले अर्थात् नास्तिक मनुष्य रोगी होते हैं ।

[१९७८] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अजस्त्रैः पायुभिः नः पाहि) सतत अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर, (उत प्रिये सदने आ शुशुक्वान्) और हमारे प्रिय यज्ञगृहमें आकर सर्वत्र प्रकाशित हो । हे (यविष्ठ) सदा तरुण रहनेवाले अग्ने ! (ते जरितारं नूनं भयं मा विदत्) तेरी स्तुति करनेवालेको किसी प्रकारका भय प्राप्त न हो, तथा हे (सहस्वः) बलसे उत्पन्न ! (अपरं मा) दूसरे समयमें भी भयसे भयभीत न हो ॥ ४ ॥

१ ते जरितारं भयं अपरं मा विदत्— इस अग्निकी उपासना करनेवालेको आज या कल कभी भी भय प्राप्त नहीं होता ।

भावार्थ— हम सदा कल्याणमय मार्ग पर चलते हुए सारे दुःखोंसे पार हो जाएं और यह सारा विश्व हमारे लिए सुखदायक हो ताकि हम अपने पुत्र पौत्रादिकोंके साथ आनन्दसे रह सकें ॥ २ ॥

अग्निमें प्रतिदिन हवन करनेसे सारे रोग दूर हो जाते हैं, पर जो हवन नहीं करता वह रोगी रहता है । इसलिए हवन कल्याणकी प्राप्तिका एक मुख्य साधन है ॥ ३ ॥

यह सदा उत्साहसे भरपूर अग्नि अपने उपासकोंकी हर तरहसे रक्षा करता है, इसीलिए वे कभी भी भयभीत नहीं होते ॥ ४ ॥

१९७९ मा नो॑ अग्नेऽव॑ सृजो अघाया॑ ऽविष्यवे॑ रिपवे॑ दुच्छुना॑यै ।
मा दुत्वते॒ दश॑ते॒ माद॑ते॑ नो॒ मा रीष॑ते सहसावन् परा॑ दाः ॥ ५ ॥
१९८० वि घ त्वावाँ॑ ऋतजात यंसद् गृणानो॑ अग्ने तुन्वे॑ वरूथम् ।
विश्वा॑द् रिरिक्षोरुत वा॑ निनित्सो॑रभिहुता॑मसि हि दे॑व विष्पट् ॥ ६ ॥
१९८१ त्वं ताँ अ॑ग्न उभया॑न् वि विद्वान् वेषि॑ प्रपित्वे मनु॑षो यजत्र ।
अभिपित्वे मन॑वे शास्यो॑ भू॑र्मर्मृजेन्य॑ उशिग्भिर्नाक्रः ॥ ७ ॥
१९८२ अवो॑चाम निवच॑नान्यस्मिन् मान॑स्य सूनुः स॑हसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषि॑भिः सनेम विद्यामेषं॑ वृजनं॑ जीरदा॑नुम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१९७९] हे (सहसावन् अग्ने) महाबली अग्ने ! (नः अघाय अविष्यवे दुच्छुनायै) हमको पाप करनेवाले, अधर्मसे अन्नको खानेवाले, सुखके नाश करनेवाले (रिपवे मा अवसृजः) शत्रुओंके हाथमें मत सौंप । और (नः दत्वते दशते मा) हमें दांतोंसे युक्त डसनेवाले सर्पादिके अधीन मत कर तथा (अदते मा रिषते मा परा दाः) हिंसकों एवं तस्कर राक्षसादिके हाथोंमें भी कभी मत दे ॥ ५ ॥

[१९८०] हे (ऋतजात अग्ने) यज्ञार्थ उत्पन्न अग्ने ! (तन्वे वरूथं गृणानः त्वावान्) शरीर पुष्टिके लिये तुझ वरणीयकी स्तुति करता हुआ तेरा उपासक (विश्वात् रिरिक्षोः उत वा निनित्सोः वि घ यंसत्) सब हिंसक एवं निन्दक व्यक्तियोंसे अपनेको बचाता है । हे (देव) दिव्यगुण युक्त ! तू (अभिह्रुतां हि विष्पट् असि) सामनेसे कुटिल आचरण करनेवाले दुष्टोंका निश्चयसे दमन करनेवाला है ॥ ६ ॥

१ तन्वे वरूथं गृणानः त्वावान् रिरिक्षोः निनित्सोः वि यंसत्— अपने शरीरकी पुष्टि करनेके लिए तुझ वरणीय स्तुति करनेवाला तेरा उपासक हिंसक और निन्दकोंसे दूर रहता है ।

[१९८१] हे (यजत्र अग्ने) यजनीय अग्ने ! (त्वं तान् उभयान् विद्वान्) तू उन दोनों प्रकारके मनुष्योंको जानकर (प्रपित्वे मनुषः वेषि) प्रातःकाल मनुष्योंके पास जाता है । (अक्रः मनवे अभिपित्वे शास्यः भूः) आक्रमण करनेवाला तू मनुष्योंको यज्ञकालमें उसी प्रकार शिक्षा दे, जिस प्रकार (मर्मृजेन्यः उशिग्भिः) यजमान ऋत्विजों द्वारा शिक्षित होता है ॥ ७ ॥

१ उभयान् विद्वान्— यह अग्नि यज्ञ करनेवाले और न करनेवाले अथवा देव और मनुष्य दोनोंको जानता है।

[१९८२] (मानस्य सूनुः सहसाने अस्मिन् अग्नौ) यज्ञके उत्पादक और शत्रुनाशक इस अग्निके लिए हम (निवचनानि अवोचाम) सारे स्तोत्रोंको कहते हैं । (वयं ऋषिभिः सहस्रं सनेम) हम ऋषियोंके साथ असंख्य धनोंका उपभोग करें तथा (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घ आयुसे युक्त हों ॥ ८ ॥

१ मान— यज्ञ; मापन करके यज्ञ वेदि बनाई जाती है ।

भावार्थ— यह अग्नि दुष्ट शत्रु एवं हिंसक प्राणियोंसे अपने उपासकोंकी रक्षा करता है ॥ ५ ॥

अग्निकी उपासना करनेवाला शरीरसे पुष्ट होकर हिंसक और निन्दक व्यक्तियोंको दूर करता है । वह कुटिल आचरण से सर्वदा दूर रहता है ॥ ६ ॥

यह दोनों तरहके मनुष्योंको जानकर केवल सत्कर्मियोंका ही पक्ष लेता है । यह सब मनुष्योंका गुरु है और उन्हें सन्मार्ग पर चलनेकी शिक्षा देता है ॥ ७ ॥

यज्ञके पालक इस अग्निके लिए सब स्तुति करते हैं । हम इन इन्द्रियरूपी ऋषियोंको बलवान् कर अनेक प्रकारके धन को प्राप्त करें । इन्द्रियोंको बलवान् अपने शरीरमें प्राणाग्निको बलवान् बनाकर ही किया जा सकता है ॥ ८ ॥

[१९०]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- बृहस्पतिः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९८३ अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥ १ ॥

१९८४ तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत् समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥

१९८५ उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत् सवितेव प्र बाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो३ यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥ ३ ॥

---

[१९०]

अर्थ— [१९८३] (सु-रुचः नवमानस्य यस्य) सुन्दर तेजस्वी प्रशंसनीय ऐसे जिसके (गाथान्यः) वचनोंको (देवाः मर्ताः आ शृण्वन्ति) देवगण और मनुष्य श्रद्धासे सुनते हैं, ऐसे उस (अन-अर्वाणं, वृषभं, मन्द्रजिह्वं नव्यं बृहस्पतिं) अद्वेष्य, बलवान्, मधुर भाषण करनेवाले स्तुतिके योग्य बृहस्पतिको (अर्कैः आ वर्धय) स्तोत्रोंसे बढाओ ॥ १ ॥

१ सु-रुचः नवमानस्य यस्य गाथान्यः देवाः मर्ताः आ शृण्वन्ति— सुन्दर कान्तिवाले, प्रशंसनीय, जिस विद्वान्के भाषणोंको देव और मनुष्य ध्यानपूर्वक सुनते हैं ।

[१९८४] (ऋत्वियाः वाचः तं उप सचन्ते) ऋतुके अनुसार बोली गई वाणियां उसकी समीपसे सेवा करती हैं । (यः सर्गः नः देवयतां असर्जि) जिसने नवरचनाके समान देव बननेकी इच्छा करनेवालोंको उत्पन्न किया । (अंजः मातरिश्वा सः हि बृहस्पतिः) प्रगति करनेवाले वायुके समान वह बृहस्पति (ऋते) यज्ञमें (वरांसि विभ्वा सं अभवत्) श्रेष्ठ वस्तुओंके साथ अपनी व्यापक शक्तिसे उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

[१९८५] यह बृहस्पति (उपस्तुतिं) समीपसे की गई स्तुतिको (नमसः उत् यतिं च) नमनके लिए ऊपर हाथ जोडनेको और (श्लोकं) श्लोकको (सविता बाहू इव) सूर्यके बाहू फैलानेके समान (प्र यंसत्) प्रयत्नपूर्वक स्वीकार करे । (यः) जो (अ-रक्षसः अस्य क्रत्वा) क्रूरतारहित इसके अपने कर्तृत्वसे (अहन्यः) दिनके प्रकाशके समान (भीमः मृगः न) भयंकर सिंहके समान (तुविष्मान् अस्ति) बलवान् है ॥ ३ ॥

भावार्थ— उत्तम तेजस्वी और शास्त्रज्ञानसे पूर्ण उत्तम विद्वान्का भाषण विद्वान् और साधारण मनुष्य सभी श्रद्धा एवं भक्तिसे सुनते हैं । वह शास्त्रज्ञानी सबसे प्रेम करनेवाला, मधुरभाषण करनेवाला होनेसे सबके द्वारा पूजाके योग्य होता है ॥ १ ॥

ऋतुके अनुकूल कही गई वाणियां उसकी सेवा करती हैं । उसकी स्तुति करती हैं । जिसने नवरचनाके समान देव बननेकी इच्छा करनेवालोंको उत्पन्न किया स्वच्छ वायुके समान वह बृहस्पति यज्ञमें श्रेष्ठ वस्तुओंके साथ अपनी व्यापकशक्तिके साथ उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

जो राक्षसभावरहित इसके अपने कर्तृत्वसे भयंकर सिंहके समान बलवान् है यह बृहस्पति समीपसे की गई स्तुतिको तथा नमस्कारके लिए ऊपर किए हाथ जोडनेको तथा श्लोकोंको सूर्यके बाहु फैलानेके समान स्वीकार करे ॥ ३ ॥

१९८६ अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्या--मत्यो न यंसद् यक्षभृद् विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥ ४ ॥
१९८७ ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत् पियारुम् ॥ ५ ॥
१९८८ सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नो ऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६ ॥
१९८९ सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्त--र्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७ ॥

अर्थ-- [१९८६] (अस्य श्लोकः दिवि पृथिव्यां ईयते) इस बृहस्पतिका यश द्युलोक और पृथिवीलोकमें फैलता है। (अत्यः न) शीघ्र चलनेवाले घोडेके समान (यक्षभृत् वि-चेताः यंसत्), यजनीयका भरणपोषण करनेवाला, विशेष बुद्धिमान् यह बृहस्पति प्रयत्न करता है। (मृगाणां हेतयः न) मृगोंको मारनेवाले शस्त्रोंके समान (बृहस्पते इमाः) बृहस्पतिके ये शस्त्र (द्यून्) दिनमें (अहिमायान् अभि यन्ति) छली कपटी असुरोंकी ओर जाते हैं। उनको मारते हैं ॥४॥

[१९८७] हे (देव) देव ! (ये पज्राः पापाः) जो धनवान् पापी (भद्रं त्वा) कल्याण करनेवाले तुझको (उस्रिकं मन्यमानाः उप-जीवन्ति) बूढे बैल जैसा निर्वीर्य मानकर तेरे पास जाकर जीवित रहते हैं, तुम (दूढ्ये) उन दुष्ट बुद्धिवालोंको (वामं न अनुददासि) धन नहीं देते हो। हे (बृहस्पते) बृहस्पति देव ! तुम (पियारुं इत् चयसे) सोमपान करनेवालेको ही चुनते हो ॥ ५ ॥

[१९८८] बृहस्पति (सु-प्र-एतुः सु-यवसः पन्थाः न) उत्तम रीतिसे जानेवाले, तथा उत्तम अन्नवालेके लिए उत्तम मार्गके समान है, तथा (दुःनियन्तुः) कठिनतासे रोके जानेवाले मनुष्यके लिए (परि-प्रीतः न) चारों ओरसे प्रेम करनेवाले मित्रके समान है। (अन्-अर्वाणः ये) पापसे रहित जो मनुष्य (नः अभि चक्षते) हमारे सामने दृष्टि फेंकते हैं, वे (अपीवृताः अप ऊर्णुवन्तः अस्थुः) अज्ञानसे ढके होनेपर अज्ञानको हटाकर ज्ञानवाले होते हैं ॥ ६ ॥

[१९८९] (यं स्तुभः) जिस बृहस्पतिको स्तोत्र (अवनयः न) भूमियोंके समान (स्रवतः रोधचक्राः समुद्रं न) तथा बहती हुई अनेक भंवरोंवाली नदियाँ जैसे समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार (सं यन्ति) प्राप्त होते हैं। (गृध्रः सः विद्वान् बृहस्पतिः) सुखोंको चाहनेवाला वह विद्वान् बृहस्पति (उभयं अन्तः) दोनोंके बीचमें बैठा हुआ (तरः आपः च चष्टे) नाव और जल दोनोंको देखता है ॥ ७ ॥

भावार्थ-- इस बृहस्पतिका यश द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैलता है। घुडदौडके घोडेके समान विद्वानोंका भरण-पोषण करनेवाला विशेष बुद्धिमान् यह बृहस्पति लोकोंकी सहायता करनेका प्रयत्न करता है। मृगोंको मारनेके शस्त्रोंके समान बृहस्पतिके ये शस्त्र दिनोंमें छली शत्रुओंकी ओर जाते हैं। उनको मारते हैं ॥ ४ ॥

हे देव ! जो धनवान् पापी जन हैं वे कल्याण करनेवाले तुझको बूढा बैल अर्थात् निर्वीर्य मानकर निरुपद्रवी मानकर तेरे पास जाते हैं, और जीवित रहते हैं। ऐसे दुष्ट बुद्धिवालोंको तुम धन नहीं देते हो। हे बृहस्पते ! तुम सोमपान करनेवालेको ही चुनते हो ॥ ५ ॥

यह बृहस्पति उत्तम रीतिसे जानेवाले तथा उत्तम अन्नवालेके लिए उत्तम मार्गके समान है। कठिनतासे रोके जानेवाले मनुष्यके लिए चारों ओरसे प्रेम करनेवाले मित्रके समान है। निष्पाप होकर जो मनुष्य हमारे सामने दृष्टी फेंकते हैं, वे अज्ञानसे ढके रहनेपर भी अज्ञानको हटाकर ज्ञानवाले होते हैं ॥ ६ ॥

जिस बृहस्पतिको स्तोत्र, भूमियोंके समान तथा समुद्रको प्राप्त होनेवाली बहती हुई, अनेक भंवरोंवाली नदियोंके समान प्राप्त होते हैं। सुखोंको चाहनेवाला वह विद्वान् बृहस्पति दोनोंके बीचमें बैठा हुआ नाव और जल दोनोंको देखता है ॥ ७ ॥

१९९० एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान् बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

[१९१]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अप्तृणसूर्याः (विषघ्नोपनिषद्) । छन्दः- अनुष्टुप्; १०-१२ महापंक्तिः, १३ महाबृहती ।)

१९९१ कङ्कतो न कङ्कतो ऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥ १ ॥
१९९२ अदृष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥ २ ॥
१९९३ शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥ ३ ॥

अर्थ— [१९९०] (महः, तुवि-जातः, तुविष्मान्) महान्, बहुतोंमें प्रसिद्ध, बलवान् (वृषभः बृहस्पतिः देवः) सुखोंके वर्षक बृहस्पति देवकी (एव आ धायि) इस प्रकार स्तुति की जाती है । (सः स्तुतः) वह पूजित होकर (नः वीरवद् गोमद्, धातु) हमें वीर पुत्रोंवाला, गायोंवाला धन देवे, हम (एषं वृजनं, जीरदानुं विद्याम) इच्छा करने योग्य बलवान्, तेज देनेवाले देवको जानें ॥ ८ ॥

[१९१]

[१९९१] (कंकतः न कंकतः) विषैले तथा विषरहित तथा (सतीनकंकतः) जलादिमें रहनेवाले थोडे विष-वाले (द्वौ प्लुषी अदृष्टा) विषैले और विषरहित दोनों तरहके प्राणी दाह उत्पन्न करनेवाले और न दिखाई देनेवाले हैं, वे (अलिप्सत) मेरे शरीरको विषसे व्याप्त लेते हैं ॥ १ ॥

[१९९२] (आयती अदृष्टान् हन्ति) आती हुई न दीखनेवाले सांपोंको मारती है, (अथ परायती हन्ति) और जाती हुई मारती है, (अथ अवघ्नती हन्ति) और उन्हें कूटो जाती हुई मारती है (अथ) तथा (पिंषती पिनष्टि) पीसी जाती हुई उन सांपोंको पीसती है ॥ २ ॥

[१९९३] कुछ सांप (शरासः) सरकण्डोंमें रहते हैं, कुछ (कुशरासः) छोटे सरकण्डोंमें रहते हैं, कुछ (दर्भासः) कुशाघासमें रहते हैं, (उत सैर्याः) और कुछ नदियों, तालाबोंके किनारके घासमें छिपे रहते हैं, कुछ (मौञ्जा) कुछ मुंजमें रहते हैं और कुछ (वैरिणा अदृष्टाः) वीरण नामक घासमें छिपे हुए बैठे रहते हैं, ऐसे (सर्वे साकं न्यलिप्सत) सभी सांप लिपटनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— बहुतोंमें प्रसिद्ध, बलवान् सुखोंके वर्षक देवकी इस प्रकार स्तुति की जाती है वह पूजित होकर हमें वीर पुत्रोंवाला, धन देवे हम प्राप्त करने योग्य बलवान् तेज देनेवाले देवको जानें ॥ ८ ॥

कुछ सांप अत्यन्त विषैले और कुछ सांप विषरहित होते हैं, कुछ जलमें रहनेवाले सांप रहते हैं । पर जब विषैले या विषरहित अथवा जलीय या स्थलीय सांप काटते हैं, तो शरीरमें दाह उत्पन्न करते हैं और वह दाह सारे शरीरमें फैल जाता है ॥ १ ॥

यह औषधि आती हुई और जाती हुई सांपोंको मारती है और उन्हें पूरी तरह विषरहित कर देती है ॥ २ ॥

सांप कई स्थानों पर रहते हैं, कुछ सरकण्डोंमें, कुछ कुशामें, कुछ नदी तालाबोंके किनारों पर उत्पन्न होनेवाली घासमें, कुछ मुंजमें और कुछ वीरणमें बैठे रहते हैं, जो मनुष्यको देखकर उसके शरीरसे लिपट जाते हैं ॥ ३ ॥

१९९४ नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥ ४ ॥
१९९५ एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥
१९९६ द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टा—स्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥
१९९७ ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७ ॥
१९९८ उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान् त्सर्वाञ्जम्भयन् त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥

अर्थ—[१९९४] (गावः गोष्ठे नि असदन्) गायें बाडेमें बैठ जाती हैं, (मृगासः नि अविक्षत) पशु भी अपने स्थानोंमें विश्राम लेते हैं, (जनानां केतवः नि) मनुष्योंकी इन्द्रियां भी जब विश्राम लेने लगती हैं, तब (अदृष्टाः नि अलिप्सत) न दीखनेवाले ये सांप लिपट जाते हैं ॥ ४ ॥

[१९९५] (प्रदोषं तस्कराः इव) रात्रिके समय चोरोंके समान (त्ये एते प्रति अदृश्रन्) वे ये सांप दीखने लगते हैं । (अदृष्टाः विश्वदृष्टाः) दिनमें न दीखनेवाले ये रातको सबके द्वारा दीखने लग जाते हैं, इसलिए हे मनुष्यो ! (प्रतिबुद्धाः अभूतन) तुम सब सावधान रहो ॥ ५ ॥

[१९९६] हे सर्पो ! (वः पिता द्यौः) तुम्हारा पिता द्युलोक है, (पृथिवी माता) पृथिवी माता है (सोमः भ्राता) सोम भाई है, (अदितिः स्वसा) अदिति बहिन है, (अदृष्टाः विश्वदृष्टाः) तुम स्वयं अदृश्य रहते हुए भी सबको देखनेवाले हो, अतः हे सर्पो ! तुम (तिष्ठत) स्थिर रहो और (सु कं इळयत) आनन्दपूर्वक विचरो ॥ ६ ॥

[१९९७] (ये अंस्याः) जो पीठके बल चलनेवाले हैं, (ये अंग्याः) जो पैरोंके बल चलनेवाले हैं, (सूचीकाः) जो सुईके समान छेदनेवाले हैं, (ये प्रकंकता) जो महाविषैले हैं, (किं च) और जो (इह अदृष्टाः) यहां न दीखने वाले हैं, ऐसे (वः सर्वे) तुम सब (साकं नि जस्यत) एक साथ हमें छोड दो ॥ ७ ॥

[१९९८] (विश्वदृष्टः अदृष्टहा) सबको देखनेवाला तथा न दीखनेयोग्य जन्तुओंको नष्ट करनेवाला (सूर्यः) सूर्य (अदृष्टान् सर्वान् जंभयन्) न दीखनेवाले सभी जन्तुओंको मारता हुआ तथा (सर्वाः च यातुधान्यः) सभी राक्षसियोंको मारता हुआ (पुरस्तात् उत् एति) पूर्व दिशामें उदय हो रहा है ॥ ८ ॥

भावार्थ— जब गायें बाडेमें और पशु अपने अपने स्थानोंमें सो जाते हैं, तथा जब मनुष्योंकी इन्द्रियां भी आराम करने लग जाती है और मनुष्य भी सो जाते हैं तब ये रेंगनेवाले सांप बाहर आते हैं । प्रसिद्ध है कि रातको ओस चाटनेके लिए सांप बिलोंसे बाहर आते हैं ॥ ४ ॥

जिस प्रकार चोर दिनभर छिपे रहते हैं, और रात्रिके समय बाहर निकलते हैं, उसी तरह दिनमें छिपे रहनेके कारण न दिखाई देनेवाले ये सांप रातके समय बाहर निकलते हैं और सबको दिखाई देने लगते हैं अतः मनुष्योंको चाहिए कि रातके समय सावधानीसे चलें फिरें ॥ ५ ॥

हे सर्पो ! तुम्हारा पिता द्युलोक, माता पृथिवी, सोम भाई और अदिति बहिन है अर्थात् इतने ऊंचे कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ है, अतः तुम किसीको भी कष्ट न देते हुए सुखपूर्वक विचरो ॥ ६ ॥

कुछ जन्तु पीठके बल सरकते है, जैसे सांप आदि, कुछ पैरोंके बल चलते हैं, जैसे कानखजूरा आदि और कुछ सुईके समान छेदते हैं, जैसे बिच्छु आदि, ये सभी बहुत विषैले होते हैं । ये सभी मनुष्योंको दुःखी न करें ॥ ७ ॥

१९९९ उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥
२००० सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १० ॥
२००१ इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ ११ ॥
२००२ त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १२ ॥

अर्थ— [१९९९] (अदृष्टहा विश्वदृष्टः) न दीखनेवाले जन्तुओंका नाश करनेवाला सर्वद्रष्टा (आदित्यः असौ सूर्यः) रसोंका हरण करनेवाला यह सूर्य (विश्वानि पुरु जूर्वन्) सभी जन्तुओंको विनष्ट करते हुए (पर्वतेभ्यः उत् अपप्तत्) पर्वतोंसे उदय होता है ॥ ९ ॥

[२०००] (सुरावतः गृहे दृतिं) शराबीके घरमें जिस प्रकार पात्र रखा जाता है, उसी प्रकार मैं (सूर्ये विषं आ सजामि) सूर्यमें विषको रखता हूँ । (सः चित् नु न मराति) उस विषसे न वह मरे (न वयं मराम) न हम ही मरें, क्योंकि (हरिष्ठाः) सुनहले घोडोंवाला यह सूर्य (अस्य आरे योजनं) इस विषको दूर रखता है। (मधुला त्वा मधु चकार) मधुला तुझे मीठा बनाती है ॥ १० ॥

[२००१] (इयत्तिका शकुन्तिका) इतनी छोटीसी चिडिया (ते विषं जघास) तेरे विषको खा जाती है, (सः चित् नु न मराति) वह भी न मरे (न वयं मराम) न हम मरें । (हरिष्ठाः) सुनहले घोडोंवाला सूर्य (अस्य आरे योजनं) इस विषको दूर स्थापित करता है, (मधुला त्वा मधु चकार) मधुला तुझे अमृत बनाये ॥ ११ ॥

[२००२] (त्रिःसप्त विष्पुलिंगकाः) इक्कीस तरहकी छोटी छोटी चिडियायें (विषस्य पुष्यं अक्षरन्) विषके फूलको खा जाएं । (ताः चित् नु न मरन्ति न वयं मराम) न वे चिडियां मरें न हम मरें । (हरिष्ठाः अस्य आरे योजनं) सुनहले घोडोंवाले सूर्यने इसे दूर स्थापित किया, (मधुला त्वा मधु चकार) मधुलाने तुझे मीठा बनाया ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह सूर्य सभीका निरीक्षण करता है, तथा सभी रोगजन्तुओंको नष्ट करता है । वह सभी दीखने और न दीखनेवाले जन्तुओंको मारता हुआ उदय होता है ॥ ८ ॥

अनेक न दीखनेवाले जन्तुओंको विनष्ट करता हुआ यह सर्वद्रष्टा सूर्य अनेक पर्वोंवाले द्युलोकमें उदय होता है । इसके उदय होते ही सभी अनिष्टकारी जन्तु गायब हो जाते हैं ॥ ९ ॥

इस विषको सूर्यमें स्थापित करता हूँ । इस विषसे न सूर्य मरे, न हम ही मरें। सूर्य इसे दूर कर देता है अथवा मधुला औषधि इस विषको अमृत बनाती है ॥ १० ॥

कपिंजली नामक चिडिया इस विषको खा जाए । कपिंजल यह मादा चातक है, अथवा इसे तित्तरी भी कहते हैं । यह विषको खाने पर भी नहीं मरती । सूर्य इस विषको दूर करे और मधुला औषधी इस विषको अमृत बनावे ॥ ११ ॥

इक्कीस तरहकी ऐसी छोटी छोटी चिडियां हैं, जो विषके फूलोंको खा जाती हैं, पर फिर भी मरती नहीं । उनपर विषका कोई प्रभाव नहीं पडता । मधुला औषधी विषको भी अमृत बना देती है ॥ १२ ॥

२००३ नवानां नवतीनां विषस्य रोपुंषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामा-ऽऽरे अस्य योजनं हरिष्ठा मधुं त्वा मधुला चकार ॥ १३ ॥
२००४ त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जंभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥ १४ ॥
२००५ इयत्तकः कुषुम्भक-स्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥ १५ ॥
२००६ कुषुम्भकस्तदब्रवीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विष-मरसं वृश्चिक ते विषम् ॥ १६ ॥

॥ इति प्रथमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ— [२००३] (विषस्य रोपुषीणां) विषको नष्ट करनेवाली (नवतीनां नवानां सर्वासां नाम अग्रभं) सभी निन्यानवे औषधियोंका नाम मैं लेता हूँ। (हरिष्ठाः अस्य आरे योजनं) सुनहले घोडोंवाला सूर्य इसे दूर स्थापित करे और (मधुला त्वा मधु चकार) मधुला तुझे अमृत बनाये ॥ १३ ॥

[२००४] (त्रिः सप्त मयूर्यः) इक्कीस मोरनियां (स्वसारः ताः सप्त अग्रुवः) स्वयं बहनेवाली वे सात नदियां (ते विषं वि जभ्रिरे) तेरे विषको उसी प्रकार हर लें जिस प्रकार (कुंभिनीः उदकं इव) घडेवाली स्त्रियां पानी हरकर ले जाती हैं ॥ १४ ॥

[२००५] (इयत्तकः कुषुम्भकः) इतना छोटासा यह विषैला कीडा है, ऐसे (तकं) मेरी तरफ आते हुए छोटेसे कीडेको भी (अश्मना भिनद्मि) पत्थरसे मार देता हूँ और (ततः) तब उसके (विषं) विषको (पराचीः) पीछेकी तरफ (संवतः अनु) सब दिशाओंमें छोड देता हूँ ॥ १५ ॥

[२००६] (गिरेः प्रवर्तमानकः) पहाड परसे आनेवाले (कुषुम्भकः तत् अब्रवीत्) कुषुम्भकने यह कहा कि (वृश्चिकस्य विषं अरसं) बिच्छुका विष रसहीन है, हे (वृश्चिक) बिच्छु! (ते विषं अरसं) तेरा विष रस हीन है ॥ १६ ॥

भावार्थ— ९९ प्रकारकी औषधियां हैं, जो विषको दूर करती हैं। उनका उपयोग करनेसे हर तरहका विष दूर हो जाता है। उनमें मधुला नामकी एक औषधी विषको भी अमृत बना देती है ॥ १३ ॥

इक्कीस तरहकी मोरनियां और सात नदियां विषको हर लें ॥ १४ ॥

कोई विषैला कीडा, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, पत्थरसे मार देना चाहिए। यदि वह काट खाए, तो उसके विषको नष्ट करनेकी कोशिश करनी चाहिए ॥ १५ ॥

पहाड परसे आनेवाले एक औषधिको जाननेवालेने कहा है कि बिच्छुका विष रसहीन अर्थात् बेकार किया जा सकता है ॥ १६ ॥

॥ प्रथम मण्डल समाप्त ॥

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

प्रथम मण्डल

इस प्रथम मण्डलमें कुल १९१ सूक्त हैं। इन सूक्तोंमें २००६ मंत्र हैं। इन मंत्रोंमें सर्वाधिक मंत्र इन्द्र देवताके हैं और ऋषियोंमें सबसे ज्यादा मंत्र दीर्घतमा औचथ्यके हैं। सर्वाधिक सूक्त अगस्त्य मैत्रावरुणिके हैं। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ऋषि, सूक्त, मंत्र और देवताओंकी संख्या इसप्रकार है—

ऋषिवार सूक्त संख्या

ऋषि	सूक्त
१ दीर्घतमा औचथ्यः	२५
२ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः	२७
३ कुत्स आंगिरसः	२०
४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	१०
५ मेधातिथिः काण्वः	१२
६ जेता माधुच्छन्दसः	१
७ आजिगर्तिः शुनःशेपः	७
८ हिरण्यस्तूप आंगिरसः	५
९ कण्वो घौरः	८
१० प्रस्कण्वः काण्वः	७
११ सव्य आंगिरसः	७
१२ नोधा गौतमः	७
१३ गोतमो राहूगणः	२०
१४ पराशरः शाक्त्यः	९
१५ कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः	११
१६ वार्षागिरः ऋज्राश्वः	१
१७ परुच्छेपो दैवोदासिः	१३
१८ कश्यपो मारीचः	१
	१९१

ऋषिवार मंत्र संख्या

ऋषि	मंत्रसंख्या
दीर्घतमा औचथ्यः	२४२
अगस्त्यो मैत्रावरुणिः	२२०
कुत्स आंगिरसः	२१२
गौतमो राहूगणः	२०४
कक्षीवान् दैर्घतमसः औशिजः	१५१
मेधातिथिः काण्वः	१४३
मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	१०२
परुच्छेपो दैवोदासिः	१००
आजिगर्तिः शुनःशेपः	९७
कण्वो घौरः	९६
पराशरः शाक्त्यः	९१

*

ऋषि	मंत्रसंख्या
प्रस्कण्वः काण्वः	८२
नोधा गोतमः	७४
सव्य आंगिरसः	७२
हिरण्यस्तूप आंगिरसः	७१
वार्षागिरः ऋज्राश्वः	१९
इन्द्रः	११
जेता माधुच्छन्दसः	८
मरुतः	४
लोपामुद्रा	२
अगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचारी	२
कश्यपो मारीचः	१
स्वनयो भावयव्यः	१
रोमशा	१
	२००६

देवतावार मंत्रसंख्या

देवता	मंत्र
इन्द्रः	४६९
अग्निः	४०७
अश्विनौ	२१३
विश्वेदेवाः	१५२
मरुतः	१३५
उषाः	८४
सूर्यः	३९
मित्रावरुणौ	३७
ऋभवः	३६
आप्री-सूक्तं	३६
अश्वः	३५
वरुणः	३१
सोमः	२८
मरुत्वानिन्द्रः	२४
द्यावापृथिव्यौ	२३
इन्द्राग्नी	२२
विष्णुः	२०
रुद्रः	१७
पूषा	१७
सविता	१७
वायुः	१४

देवता	मन्त्र
अग्निषोमौ	१२
अन्नम्	११
ब्रह्मणस्पतिः	११
इन्द्रवायू	१०
बृहस्पतिः	९
इन्द्रावरुणौ	९
अग्निर्मरुतः	९
आपः	८
वरुणमित्रार्यमणः	७
स्वनयस्य दानस्तुतिः	७
स्वनयो भावयव्यः	६
रतिः	६
इन्द्राग्नी	६
सदसस्पतिः	४
सरस्वती	४
द्रविणोदाः	४
इन्द्राविष्णू	३
आदित्याः	३
इन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः सोमः	२
देव्यः	२
यूपो वा	२
कः (प्रजापतिः)	२
उलूखल	२
उलूखलमुसले	२
वाक्	२
साध्याः	१
संवत्सरकालचक्रम्	१
केशिनः	१
रोमशा	१
इन्दुः	१
त्वष्टा	१
पृथिवी	१
	२००६

इन सभी देवताओंके मंत्रोंके द्वारा ऋग्वेदके ऋषियोंने मनुष्योंको मानवजीवनकी उन्नतिके लिए बोधप्रद उपदेश दिये हैं। इन देवताओंके मार्फत मनुष्योंको क्या उपदेश मिलते हैं, उनका विचार हम यहां करेंगे।

जिसप्रकार किसी प्रजातंत्रीय राष्ट्रमें शासन चलता है और राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रीगण अपने कर्तव्यका पालन दक्षतासे करते हैं, उसी प्रकार विश्व-राज्यका यह प्रजातंत्रीय शासन विश्वराज्यके पदाधिकारियों-के निरीक्षणमें चल रहा है। उन पदाधिकारियोंमें परब्रह्म-राष्ट्रपति; परमात्मा-प्रधानमंत्री; अदितिः- परमात्माकी शक्ति; सदसस्पतिः- विश्वराज्यके उपराष्ट्रपति एवं राज्य-सभाके अध्यक्ष; क्षेत्रपतिः- लोकसभाके अध्यक्ष; अग्नि-शिक्षामंत्री, इन्द्र-रक्षामंत्री आदि मुख्य हैं (विशेष विवरणके लिए मेरी पुस्तक " विश्वराज्यमें देवताओंका कार्य " देखें) ये सभी पदाधिकारीगण अपना अपना कर्तव्य पालन करते हैं।

ऋग्वेदका प्रारंभ अग्निकी स्तुतिसे प्रारंभ हुआ है। अतः हम प्रथम " अग्नि " पर ही विचार करते हैं।

अग्नि

यह अग्नि कौन है ? इस शब्दकी व्युत्पत्ति करते हुए निरुक्तकार यास्क कहते हैं- ' अग्निः कस्मात् अग्रणीः भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते ' यह अग्नि अग्रणी होता है अर्थात् हर काममें आगे रहता है अथवा यज्ञोंमें सर्वप्रथम इस अग्निका आधान किया जाता है। हर वैदिक देवता तीन क्षेत्रोंमें अपने अर्थ प्रकट करता है, वे क्षेत्र हैं, (१) आध्यात्मिक, (२) आधिदैविक और (३) आधिभौतिक, इनमें शरीरके अन्दर होनेवाले कार्य आध्यात्मिक क्षेत्रके अन्तर्गत आते हैं। उपनिषद्में इस शरीरको ही अध्यात्म कहा है " अथ अध्यात्मं शरीरम्। " आध्यात्मिक क्षेत्रमें यह प्राण ही अग्नि है, क्योंकि शरीरमें प्राण ही अग्रणी या नेताका काम करता है। यह शरीर एक मन्दिर है, जिसमें सभी देवता निवास करते हैं, उनमें अग्नि मुखमें प्रविष्ट होकर वाणीको प्रेरित करता है (अग्निर्वाक् भूत्वा मुखं प्राविशत्)। अब हम यह देखते हैं कि ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें इस अग्निकी क्या विशेषतायें बताई हैं। प्रारंभका मंत्र है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ॥ (१।१।१)

" मैं अग्रभागमें रहनेवाले, यज्ञ के प्रकाशक, ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाले, हवन करनेवाले अथवा देवताओंको बुलानेवाले और रत्नोंको धारण करनेवाले अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूं ऐसे अग्निके गुणका वर्णन करता हूं। "

यह अग्नि प्रकाश देता है, उष्णता देता है और गति करता है। जो प्रकाश देकर उत्तम मार्ग बताता है, जो उष्णता देकर उत्साह बढाता है, और जो सबकी प्रगति करता है, वह वर्णनके योग्य है। मनुष्य भी अन्य जनोंको प्रकाश बताकर सन्मार्ग बतावे, जनतामें उत्साह बढावे और सबकी उत्तम रीतिसे उन्नति करे। जो ऐसा करता है वही समाजमें तेजस्वी धुरीण होता है। यह अग्निका आधिभौतिक पहलू है। जिसप्रकार शरीरमें प्राण अग्रणी होनेसे अग्नि है, उसी प्रकार समाजमें नेता या समाज सुधारक अग्रणी होनेसे अग्नि है। यह अग्नि या नेता प्रजाको अन्तिम सिद्धितक पहुंचानेवाला हो। बीच मंझधारमें ही प्रजाको न छोड दे। ऐसे अग्रणीके पीछे पीछे जानेवाला समाज निस्सन्देह उन्नति करता है। जो अग्रणी आपत्कालमें भी सबसे आगे रहकर अपने अनुयायियोंको संकटोंसे बचाता हो, वही प्रशंसाके योग्य होता है। जो स्वयं पीछे रहकर अपने अनुयायियोंको संकटोंमें ढकेल दे, वह प्रशंसाके योग्य नहीं होता।

यह यज्ञका देव है। यज्ञ वह कर्म है जिसमें देवपूजा-संगतिकरण और दानरूप त्रिविध शुभकार्य होते हैं। श्रेष्ठोंका सत्कार, समाजमें सबका संगठन, परस्परका मेल-मिलाप तथा सुपात्रोंको दान यह यज्ञरूप कर्म सबका कर्तव्य है। यह प्रशस्ततम कर्म है, यही श्रेष्ठतम कर्म है। ऐसे कर्मोंका प्रकाशक यह अग्रणी होता है।

सभी मनुष्य ऋतुके अनुसार व्यवहार करनेवाले हों। ऋतुचर्याके अनुसार चलनेवाला नीरोग, सुदृढ और दीर्घायु होता है। ऋतुके अनुकूल अपना व्यवहार रखनेवाला आदर्श पुरुष होता है। यह अग्रणी होता अर्थात् अपने राष्ट्रमें देवताओंको बुलाकर लानेवाला हो। राष्ट्रमें देवों अर्थात् विद्वानोंको बुलाकर उनका सत्कार करना चाहिए। उत्सवों, शुभ दिनों और यज्ञोंमें विद्वानोंको बुलाकर उनका सत्कार करना, उनके साथ मित्रता करना और उनको अपने धनका समर्पण भी करना चाहिए।

अग्रणी " रत्नधातम " हो। अग्रणी अपने पास रमणीय धनों और रत्नोंको धारण करनेवाला हो। पर यह देव है और देवका अर्थ है " दानशील " अतः यह जो अपने पास रत्नादि ऐश्वर्योंको रखता है वह अपने भोगके लिए नहीं अपितु जनताके हितके लिए ही वह ऐश्वर्योंको अपने पास रखता है। वह अपने पासके धनोंका दान अपने अनुयायियोंको करता है, वह अपने अनुयायियोंके हितोंको सिद्ध करता है।

आधिदैविक क्षेत्र यह विश्व है, इस विश्वमें यह परब्रह्म या परमात्मा है। वा. य. ३२।१ में कहा है कि " तत् एव अग्निः " वह ब्रह्म ही अग्नि है। वह परमात्मा यद्यपि एक है, पर भिन्न भिन्न नामोंसे वह सम्बोधित होता है।

एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति (ऋ. १।१६४।४६) यह परमात्म सत्तत्व एक होते हुए भी उसे ज्ञानी अनेक नामोंसे पुकारते हैं। इस तरह यह अग्नि ब्रह्मका अथवा परमेश्वरका रूप है। यह अग्नि परमेश्वरका मुख है, (अग्निं यश्चक्रे आस्यं। अथर्व. १०।७।३३) अतः परमात्माका स्वरूप समझ कर ही अग्निकी ओर देखना चाहिए।

यह परमात्मस्वरूप अग्नि अपने उपासकोंको मुक्तिरूप अन्तिम सिद्धितक ले जाता है। सबसे आगे रहकर वह मनुष्योंका पूर्ण हित करता है। हरएक यज्ञको सिद्ध करता है। ऋतुओंके अनुसार प्रकृतिका परिवर्तन करता है। परमात्मा भी इस विश्वरूपी यज्ञको सतत कालसे करता चला आ रहा है, जिसमें यह ऋतुओंके अनुसार हवि देता रहता है। ग्रीष्म वर्षा आदि षड्तु उस यज्ञके साधक हैं। वह सूर्यादि नाना रमणीय और अमूल्य तत्त्वोंको अपने पास धारण करता है, जिससे वह सब प्राणियोंका हित करता है। इसीलिए प्राचीन और नवीन ऋषि अर्थात् मन्त्रदृष्टा ज्ञानी इस अग्निकी प्रशंसा करते हैं, इसकी स्तुति करते हैं। वह अग्नि देवोंको बुलाकर लानेवाला है। विश्वमें परमात्मा रूप अग्नि सूर्य, चन्द्र, वायु आदि देवोंका शासक है। शरीरमें प्राणरूप अग्नि नेत्र, कर्ण, मुंह, नाक आदि देवोंकी शक्तियों पर शासन करता है और समाजमें ब्राह्मणरूपी अग्नि विद्वानों, शूरवीरों, धनिकों और कर्मवीरों पर शासन करता है।

अग्रणी अपनी प्रजाको वीरतासे परिपूर्ण यशस्वी और पुष्टिकारक धनको प्रदान करे। धन ऐसा हो कि जो राष्ट्रकी प्रजाओंमें वीरता भरनेवाला हो। ऐश्वर्य प्राप्त करके प्रजा विलासी या कायर न बन जाए। वीरता रहित धन किस कामका? यदि धन मिल भी जाए, तो वीरताके अभावमें उस धनकी रक्षा किस प्रकार होगी? अतः प्रजा वीर हो। सब पुष्ट हों। वह पुष्टि भी वीरतापूर्ण हो। धनवानोंकी तरह चर्बीवाली पुष्टि न हो। वह धन यश देनेवाला हो। लोग धनका संचय अपने भोगोंके लिए ही न करें। दूसरोंके हितके लिए ही धनका संचय किया जाए, दान देकर यश प्राप्त किया जाए। वेदमें कहा है कि जो स्वयंके लिए ही भोगोंका संचय करता है, वह मानों केवल पापोंका ही संचय करता है। अतः मनुष्य जो कुछ भी संचित करे वह देशहितके लिए ही करे और इस प्रकार यश का सम्पादन करे। अतः अग्रणी इसी तरहका धन राष्ट्रमें सुरक्षित रखे, जो धन प्रजाको वीरता, पुष्टि और यश प्रदान करनेवाला हो।

इस अग्रणीका यज्ञ या कर्म (अध्वर) हिंसा, कुटिलता कपट और छलसे रहित होता है। इस अग्निके यज्ञमें कायिक, वाचिक और मानसिक कुटिलता जरा भी नहीं रहती। इसीलिए यह अग्रणी उन्हीं कर्मोंको सफल बनाता है, जो हिंसा और छल कपटसे रहित होते हैं।

यह "परि-भू" है। "परि-भूः" के अर्थ हैं शत्रुका पराभव करना, उसपर विजय प्राप्त करना, शत्रुका नाश करना, शत्रुको चारों ओरसे घेरना आदि। यह अग्रणी शत्रुका पराभव करके अपने हिंसारहित यज्ञकर्मको सफल करता है। यह भाव यहां "परि-भू" शब्द में है। ऐसा कुटिलता रहित श्रेष्ठ कर्म देवोंतक जाकर पहुंचता है। अर्थात् देवों को लक्ष्य करके किए जानेवाला कर्म छल, कपट, हिंसा आदियोंसे रहित ही होना चाहिए।

यह अग्नि " कविक्रतुः " है। यह पद ज्ञान और शक्ति का बोधक है। "कवि" पद ज्ञानका और "क्रतु" पद कर्म का द्योतक है। इसप्रकार "ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला कविक्रतुः" कहलाता है। मनुष्य को प्रथम ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और फिर उस ज्ञानका उपयोग करके सुयोग्य कर्म करना चाहिए।

इसी अग्निको अंगिरा कहा है। यही अंगिरस भी है। इस शरीरमें एक प्रकारका रस बहता रहता है, जो शरीरको उत्साहसे और चैतन्यसे भरपूर बनाये रखता है। इसे जीवनरस भी कह सकते हैं। इस जीवन रसको शरीरमें उत्पन्न करने और उसे अंग प्रत्यंगोंमें प्रवाहित करनेवाला अग्नि ही है। इसलिए इसे अंगिरस कहा है। पेटमें जाठराग्नि है, जो पेटमें पडे हुए पदार्थोंको पचाकर उसका रस बनाती है और फिर उस रसका सारे शरीरमें संचार होता है। यह जीवन रस जिसके शरीरमें जितना उत्तम होगा, उतना ही मनुष्यका शरीर फुर्तीला और उत्साहमय होगा। ऐसे इस अंगिरस अग्निका यह व्रत है कि जो इसे दान करता है, उसका यह अग्नि कल्याण करता है। उदाहरणार्थ,

जो इस जाठराग्निको उत्तम उत्तम पदार्थ प्रदान करता है, उसके शरीरको पुष्ट बनाकर यह जाठराग्नि उसका कल्याण करती है। यह इस अग्निका व्रत है जो कभी टूटता नहीं। उत्तम पदार्थोंके खानेसे जो अंगरस बनता है, उससे मनुष्यका शरीर सुन्दर, बलवान्, वीर्यवान्, तेजस्वी, दीर्घजीवी, उत्साही, कार्यक्षम और ओजस्वी बनता है।

इसी तरह समाज या राष्ट्रमें भी अग्रणी दानियोंका कल्याण करे। जो देश या समाजके हितके लिए अपना धन, मन और तन अर्पण करते हैं, उनका हर तरहसे कल्याण करना चाहिए।

यह देव ऐसा है कि जो हिंसारहित, कुटिलतारहित और शुभ कर्मोंका ही अधिपति होता है। ऋत नामक जो अटल सत्य नियम हैं, उनका यह संरक्षण करता है। यह स्वयं प्रकाशमान् है। इस अग्निकी उपासना करता हुआ मनुष्य हिंसारहित, छलकपटरहित, कुटिलतारहित कर्म करता जाए, स्वभावसे ही वह कर्म करे, सत्यका पालन और संरक्षण करे, प्रकाशित होवे, तेजस्वी बने अपने स्थानमें, घरमें और देशमें बढता रहे।

यह अग्रणी परमात्मा हम मनुष्योंके लिए पिताके समान है। जिस तरह पुत्रके लिए पिता सुप्राप्य है अथवा पुत्रको पितासे मिलनेमें कोई अडचन नहीं पडती, उसी प्रकार मनुष्यके लिए भी परमात्मा सुप्राप्य है। वह जब चाहे परमात्माका सहवास प्राप्त कर सकता है। केवल आवश्यकता है लगनकी, मनुष्यमें यदि लगन हो, तो परमात्मा उसके लिए सहज ही सुप्राप्य होता है। जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्रका कल्याण करनेके लिए उसका मार्गदर्शक बनता है, उसी प्रकार परमात्मा इस मनुष्यका मार्गदर्शक है। इसीतरह समाजमें भी नेता अपनी प्रजाका पुत्रवत् पोषण करे, उसे उत्तम मार्गसे ले जाए।

इसप्रकार प्रथम सूक्तमें मधुच्छन्दा ऋषिने अग्निके रूपमें एक आदर्श ब्राह्मणके जो आदर्श रखे हैं, वे संक्षेपमें इसप्रकार हैं– ब्राह्मण (१) पौरोहित्य, ऋत्विक्कर्म और हवनकर्ममें प्रवीण बने, (२) अंगरसकी विद्या–चिकित्साशास्त्रमें प्रवीण हो, (३) सत्यका पालन करे, (४) हिंसारहित कर्म करे, (५) स्वयं ज्ञानी बनकर प्रज्ञाके द्वारा श्रेष्ठतम कर्म करे, (६) अपने स्थानमें श्रेष्ठ बने, (७) धन, पोषण और वीरोंका यश प्राप्त करे, (८) श्रेष्ठ बने और श्रेष्ठोंके साथ रहे, (९) उदार दाताका कल्याण करे (१०) सबका हित करनेका यत्न करे, (११) जैसे पिता पुत्रका सम्बन्ध प्रेमका होता है, वैसे ही प्रेमका सम्बन्ध निर्माण करे। कभी द्वेष न करे, (१२) प्रतिदिन सुबहशाम नम्र होकर ईश्वरोपासना करे।

आदर्श राजदूत

यह अग्नि " देवानां दूतः " भी है। यह मनुष्यों द्वारा, दी गई हविको देवों तक पहुंचाता है। लोकमें एक राज्यसे दूसरे राज्यमें जो जाता है और अपने राजाओंका सन्देश दूसरे राज्यके अधिकारियोंको उत्तम रीतिसे पहुंचाता है और अपने राजाका कार्य जो उत्तम रीतिसे करता है, वह उत्तम राजदूत कहाता है। ऐसा राजदूत " अग्नि " है—

अग्निर्देवानां दूत आसीत्

उशना काव्याऽसुराणाम्। (तै. सं. २।५।८।७)

" अग्नि देवोंका और काव्य उशना असुरोंका दूत है, " ऐसा तैत्तिरीयसंहितामें कहा है। इस उत्तम दूत रूपी अग्निके गुण इस प्रकार हैं–

१ विश्ववेदः (१११)– यह सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त है, इसके पास सभी प्रकारके धन हैं। उसी प्रकार दूत भी हरतरहके ज्ञान और धनसे युक्त हो।

२ यज्ञस्य सुक्रतुः (१११)– वह अपने ऊपर सौंपे गए कार्यको उत्तम रीतिसे निभाता है। पर वह हमेशा उत्तम कार्योंको ही करता है।

३ पुरुप्रियः (११२)– वह सबको प्रिय है।

४ ईड्यः (११३)– प्रशंसाके योग्य कर्म करनेवाला है।

५ जुह्वा आस्यः (११६)– अग्निकी ज्वालाके समान तेजस्वी भाषण करनेवाला हो।

६ प्राविताः (११८) उत्तम संरक्षण करनेकी शक्ति उसमें हो। इन गुणोंसे युक्त यह अग्नि देवोंका श्रेष्ठतम दूत है।

रोगनिवारक अग्नि

अग्निको " विश्व शं भुवं " कहा है अर्थात् यह हरतरहका कल्याण करता है। जिसके शरीरमें यह अग्नि उत्तम रीतिसे कार्य करती है वह मनुष्य रोगोंसे प्रभावित नहीं होता। उसके शरीरमें रोगप्रतिबन्धक शक्ति अच्छी होती है, इसलिए वह कभी रोगी नहीं होता।

अमीवचातनः (११७) बिना पचे अन्नका " आंव " पेटमें बनता है। अन्नके न पचनेसे पेटमें कब्ज हो जाती है। यही " आम " अर्थात् बेपचा अन्न नाना रोगोंको उत्पन्न

आधिदैविक क्षेत्र यह विश्व है, इस विश्वमें यह परब्रह्म या परमात्मा है। वा. य. ३२।१ में कहा है कि " तत् एव अग्निः " वह ब्रह्म ही अग्नि है। वह परमात्मा यद्यपि एक है, पर भिन्न भिन्न नामोंसे वह सम्बोधित होता है।

एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति (ऋ. १।१६४।४६) यह परमात्म सत्तत्त्व एक होते हुए भी उसे ज्ञानी अनेक नामोंसे पुकारते हैं। इस तरह यह अग्नि ब्रह्मका अथवा परमेश्वरका रूप है। यह अग्नि परमेश्वरका मुख है, (अग्नि यश्चक्रे आस्यं। अथर्व. १०।७।३३) अतः परमात्माका स्वरूप समझ कर ही अग्निकी ओर देखना चाहिए।

यह परमात्मस्वरूप अग्नि अपने उपासकोंको मुक्तिरूप अन्तिम सिद्धितक ले जाता है। सबसे आगे रहकर वह मनुष्योंका पूर्ण हित करता है। हरएक यज्ञको सिद्ध करता है। ऋतुओंके अनुसार प्रकृतिका परिवर्तन करता है। परमात्मा भी इस विश्वरूपी यज्ञको सतत कालसे करता चला आ रहा है, जिसमें यह ऋतुओंके अनुसार हवि देता रहता है। ग्रीष्म वर्षा आदि षड्तु उस यज्ञके साधक हैं। वह सूर्यादि नाना रमणीय और अमूल्य तत्त्वोंको अपने पास धारण करता है, जिससे वह सब प्राणियोंका हित करता है। इसीलिए प्राचीन और नवीन ऋषि अर्थात् मन्त्रदृष्टा ज्ञानी इस अग्निकी प्रशंसा करते हैं, इसकी स्तुति करते हैं। वह अग्नि देवोंको बुलाकर लानेवाला है। विश्वमें परमात्मा रूप अग्नि सूर्य, चन्द्र, वायु आदि देवोंका शासक है। शरीरमें प्राणरूप अग्नि नेत्र, कर्ण, मुंह, नाम आदि देवोंकी शक्तियों पर शासन करता है और समाजमें ब्राह्मणरूपी अग्नि विद्वानों, शूरवीरों, धनिकों और कर्मवीरों पर शासन करता है।

अग्रणी अपनी प्रजाको वीरतासे परिपूर्ण यशस्वी और पुष्टिकारक धनको प्रदान करे। धन ऐसा हो कि जो राष्ट्रकी प्रजाओंमें वीरता भरनेवाला हो। ऐश्वर्य प्राप्त करके प्रजा विलासी या कायर न बन जाए। वीरता रहित धन किस कामका? यदि धन मिल भी जाए, तो वीरताके अभावमें उस धनकी रक्षा किस प्रकार होगी? अतः प्रजा वीर हो। सब पुष्ट हों। वह पुष्टि भी वीरतापूर्ण हो। धनवानोंकी तरह चर्बीवाली पुष्टि न हो। वह धन यश देनेवाला हो। लोग धनका संचय अपने भोगोंके लिए ही न करें। दूसरोंके हितके लिए ही धनका संचय किया जाए, दान देकर यश प्राप्त किया जाए। वेदमें कहा है कि जो स्वयंके लिए ही भोगोंका संचय करता है, वह मानों केवल पापोंका ही संचय करता है। अतः मनुष्य जो कुछ भी संचित करे वह देशहितके लिए ही करे और इस प्रकार यश का सम्पादन करे। अतः अग्रणी इसी तरहका धन राष्ट्रमें सुरक्षित रखे, जो धन प्रजाको वीरता, पुष्टि और यश प्रदान करनेवाला हो।

इस अग्रणीका यज्ञ या कर्म (अध्वरं) हिंसा, कुटिलता कपट और छलसे रहित होता है। इस अग्निके यज्ञमें कायिक, वाचिक और मानसिक कुटिलता जरा भी नहीं रहती। इसीलिए यह अग्रणी उन्हीं कर्मोंको सफल बनाता है, जो हिंसा और छल कपटसे रहित होते हैं।

यह " परि-भू " है। " परि-भूः " के अर्थ हैं शत्रुका पराभव करना, उनपर विजय प्राप्त करना, शत्रुका नाश करना, शत्रुको चारों ओरसे घेरना आदि। यह अग्रणी शत्रुका पराभव करके अपने हिंसारहित यज्ञकर्मको सफल करता है। यह भाव यहां " परि-भू " शब्द में है। ऐसा कुटिलता रहित श्रेष्ठ कर्म देवोंतक जाकर पहुंचता है। अर्थात् देवों को लक्ष्य करके किए जानेवाला कर्म छल, कपट, हिंसा आदियोंसे रहित ही होना चाहिए।

यह अग्नि " कविक्रतुः " है। यह पद ज्ञान और शक्ति का बोधक है। " कवि " पद ज्ञानका और " क्रतु " पद कर्म का द्योतक है। इसप्रकार " ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला कविक्रतुः " कहलाता है। मनुष्य को प्रथम ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और फिर उस ज्ञानका उपयोग करके सुयोग्य कर्म करना चाहिए।

इसी अग्निको अंगिरा कहा है। यही अंगिरस भी है। इस शरीरमें एक प्रकारका रस बहता रहता है, जो शरीरको उत्साहसे और चैतन्यसे भरपूर बनाये रखता है। इसे जीवनरस भी कह सकते हैं। इस जीवन रसको शरीरमें उत्पन्न करने और उसे अंग प्रत्यंगोंमें प्रवाहित करनेवाला अग्नि ही है। इसलिए इसे अंगिरस कहा है। पेटमें जाठराग्नि है, जो पेटमें पडे हुए पदार्थोंको पचाकर उसका रस बनाती है और फिर उस रसका सारे शरीरमें संचार होता है। यह जीवन रस जिसके शरीरमें जितना उत्तम होगा, उतना ही मनुष्यका शरीर फुर्तीला और उत्साहमय होगा। ऐसे इस अंगिरस अग्निका यह व्रत है कि जो इसे दान करता है, उसका यह अग्नि कल्याण करता है। उदाहरणार्थ,

जो इस जाठराग्निको उत्तम उत्तम प्रदार्थ प्रदान करता है, उसके शरीरको पुष्ट बनाकर यह जाठराग्नि उसका कल्याण करती है। यह इस अग्निका व्रत है जो कभी टूटता नहीं। उत्तम पदार्थोंके खानेसे जो अंगरस बनता है, उससे मनुष्यका शरीर सुन्दर, बलवान्, वीर्यवान्, तेजस्वी, दीर्घजीवी, उत्साही, कार्यक्षम और ओजस्वी बनता है।

इसी तरह समाज या राष्ट्रमें भी अग्रणी दानियोंका कल्याण करे। जो देश या समाजके हितके लिए अपना धन, मन और तन अर्पण करते हैं, उनका हर तरहसे कल्याण करना चाहिए।

यह देव ऐसा है कि जो हिंसारहित, कुटिलतारहित और शुभ कर्मोंका ही अधिपति होता है। ऋत नामक जो अटल सत्य नियम हैं, उनका यह संरक्षण करता है। यह स्वयं प्रकाशमान् है। इस अग्निकी उपासना करता हुआ मनुष्य हिंसारहित, छलकपटरहित, कुटिलतारहित कर्म करता जाए, स्वभावसे ही वह कर्म करे, सत्यका पालन और संरक्षण करे, प्रकाशित होवे, तेजस्वी बने अपने स्थानमें, घरमें और देशमें बढता रहे।

यह अग्रणी परमात्मा हम मनुष्योंके लिए पिताके समान है। जिस तरह पुत्रके लिए पिता सुप्राप्य है अथवा पुत्रको पितासे मिलनेमें कोई अडचन नहीं पडती, उसी प्रकार मनुष्यके लिए भी परमात्मा सुप्राप्य है। वह जब चाहे परमात्माका सहवास प्राप्त कर सकता है। केवल आवश्यकता है लगनकी, मनुष्यमें यदि लगन हो, तो परमात्मा उसके लिए सहज ही सुप्राप्य होता है। जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्रका कल्याण करनेके लिए उसका मार्गदर्शक बनता है, उसी प्रकार परमात्मा इस मनुष्यका मार्गदर्शक है। इसीतरह समाजमें भी नेता अपनी प्रजाका पुत्रवत् पोषण करे, उसे उत्तम मार्गसे ले जाए।

इसप्रकार प्रथम सूक्तमें मधुच्छन्दा ऋषिने अग्निके रूपमें एक आदर्श ब्राह्मणके जो आदर्श रखे हैं, वे संक्षेपमें इसप्रकार हैं– ब्राह्मण (१) पौरोहित्य, ऋत्विक्कर्म और हवनकर्ममें प्रवीण बने, (२) अंगरसकी विद्या–चिकित्साशास्त्रमें प्रवीण हो, (३) सत्यका पालन करे, (४) हिंसारहित कर्म करे, (५) स्वयं ज्ञानी बनकर प्रज्ञाके द्वारा श्रेष्ठतम कर्म करे, (६) अपने स्थानमें श्रेष्ठ बने, (७) धन, पोषण और वीरोंका यश प्राप्त करे, (८) श्रेष्ठ बने और श्रेष्ठोंके साथ रहे, (९) उदार दानाका कल्याण करे (१०) सबका हित करनेका यत्न करे, (११) जैसे पिता पुत्रका सम्बन्ध प्रेमका होता है, वैसे ही प्रेमका सम्बन्ध निर्माण करे। कभी द्वेष न करे, (१२) प्रतिदिन सुबहशाम नम्र होकर ईश्वरोपासना करे।

आदर्श राजदूत

यह अग्नि " देवानां दूतः " भी है। यह मनुष्यों द्वारा दी गई हविको देवों तक पहुंचाता है। लोकमें एक राज्यसे दूसरे राज्यमें जो जाता है और अपने राजाओंका सन्देश दूसरे राज्यके अधिकारियोंको उत्तम रीतिसे पहुंचाता है और अपने राजाका कार्य जो उत्तम रीतिसे करता है, वह उत्तम राजदूत कहाता है। ऐसा राजदूत " अग्नि " है—

अग्निर्देवानां दूत आसीत्

उशना काव्योऽसुराणाम्। (तै. सं. २।५।८।७)

" अग्नि देवोंका और काव्य उशना असुरोंका दूत है, " ऐसा तैत्तिरीयसंहितामें कहा है। इस उत्तम दूत रूपी अग्निके गुण इस प्रकार हैं–

१ विश्ववेदः (१११)– यह सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त है, इसके पास सभी प्रकारके धन हैं। उसी प्रकार दूत भी हरतरहके ज्ञान और धनसे युक्त हो।

२ यज्ञस्य सुक्रतुः (१११)– वह अपने ऊपर सौंपे गए कार्यको उत्तम रीतिसे निभाता है। पर वह हमेशा उत्तम कार्योंको ही करता है।

३ पुरुप्रियः (११२)– वह सबको प्रिय है।

४ ईड्यः (११३)– प्रशंसाके योग्य कर्म करनेवाला है।

५ जुह्वा आस्यः (११६)– अग्निकी ज्वालाके समान तेजस्वी भाषण करनेवाला हो।

६ प्राविताः (११८) उत्तम संरक्षण करनेकी शक्ति उसमें हो। इन गुणोंसे युक्त यह अग्नि देवोंका श्रेष्ठतम दूत है।

रोगनिवारक अग्नि

अग्निको " विश्व शंभुवं " कहा है अर्थात् यह हरतरहका कल्याण करता है। जिसके शरीरमें यह अग्नि उत्तम रीतिसे कार्य करती है वह मनुष्य रोगोंसे प्रभावित नहीं होता। उसके शरीरमें रोगप्रतिबन्धक शक्ति अच्छी होती है, इसलिए वह कभी रोगी नहीं होता।

अमीवचातनः (११७) बिना पचे अन्नका " आंव " पेटमें बनता है। अन्नके न पचनेसे पेटमें कब्ज हो जाती है। यही " आम " अर्थात् बेपचा अन्न नाना रोगोंको उत्पन्न

करता है। इसीलिए रोगोंको वेदमें " अमीव " कहा है। यह अग्नि " अमीव " अर्थात् रोगोंको " चातन " अर्थात् नष्ट करनेवाला है। यह रोगोंका समूल उच्चाटन करता है। जिस मनुष्यकी जाठराग्नि प्रदीप्त होती है, उसका सारा भोजन आसानीसे पच जाता है और उसके शरीरमें किसी प्रकारका रोग उत्पन्न नहीं होता।

इसीप्रकार बाहर भी अग्नि जलाकर उसमें यदि उत्तम उत्तम और आरोग्यदायक पदार्थोंकी हवि दी जाए, तो उससे वायुमें स्थित रोगजन्तु जल जाते हैं और वायु शुद्ध होकर सर्वत्र नीरोगता फैलती है। इसलिए कहा है–

ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते
ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते ॥ (गोपथ– १।१९)

' जब एक ऋतुके खतम होनेपर दूसरी आनेको होती है, तब उन दोनों ऋतुओंके बीचके कालको सन्धिकाल कहते हैं। हर ऋतुका अपना अपना प्रभाव होता है। प्रथम ऋतुके परिणाम कुछ और होते हैं और आनेवाली ऋतुके परिणाम कुछ और होते हैं। ऐसी अवस्थामें जब मनुष्य एक ऋतुसे एकदम दूसरी ऋतुमें प्रवेश करता है, तो स्वभावतः ही वह अस्वास्थ्य अनुभव करने लगता है। ऐसे समय यदि यज्ञ किए जाएं और उन यज्ञोंमें ऋत्वनुकूल सामग्री की आहुतियां दी जाएं, तो उन उन ऋतुओंके कारण उत्पन्न होनेवाले रोग बीज नष्ट हो जाते हैं और इन सन्धिकालोंमें भी सर्वत्र नीरोगता बनी रहती है। रामायणमें ऐसे वर्णन मिलते हैं कि प्राचीनभारतमें नगरोंके हर चौराहोंपर यज्ञशालायें बनी हुई होतीं थीं और उनमें प्रतिदिन यज्ञ किए जाते थे। इससे वायु शुद्ध होकर प्रजाओंका स्वास्थ्य बना रहता था। इसलिए इस अग्निको " पावक " सर्वत्र पवित्र करनेवाला, " रक्षसः दहः " राक्षसरूपी रोगबीजोंको जलानेवाला कहा गया है।

मर्त्य और अमर्त्य

ऋग्वेदके (१।२६।९) एक मंत्रमें प्रार्थना की गई है–

अथा न उभयेषाममृतमर्त्यानाम्।
मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥

" हे अमर देव ! (तुम अमर हो) हम मर्त्य अर्थात् मरणशील हैं, अतः हम दोनोंके परस्पर प्रशंसायुक्त भाषण होते रहें। " सभी उपासक जन मरणशील हैं, पर यह अग्निरूप परमात्मा अमर है। अतः उपासक मनुष्य और उपास्य अग्निका जो सम्बन्ध है, वह एक मर्त्य और अमर्त्यका सम्बन्ध है। उपासक अपनी भक्तिसे अपने उपास्य देवको प्रसन्न करे और उपास्य देव उपासक पर अपनी कृपा बरसाकर उसे सर्वदा उन्नत करते रहें। इसी भावको भगवान्ने गीतामें इसप्रकार व्यक्त किया है—

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥
(गीता. ३।११)

" हे उपासको ! इस यज्ञसे तुम देवोंको खुश करो और देव तुम्हें प्रसन्न करें। इसप्रकार तुम और देव दोनों परस्पर एक दूसरेकी सहायता करते हुए श्रेयका सम्पादन करो। "

श्रेष्ठ प्रभुकी उपासना

यह अग्निदेव बलके विविध कार्य करनेके लिए ही प्रकट हुआ है। वह सर्वत्र गमन भी करता है। यह देव हमें दीर्घ आयु देता है। वह सब स्थानोंसे हमें पापी मनुष्योंके कपट जालसे बचावे। वह हमें सब प्रकारके बल प्रदान करे। हम सब प्रकारके धन प्राप्त करें। जिस पर इस प्रभुकी दया होती है, उसे अक्षय धन प्राप्त होते हैं। वह सब पर शासन कर सकता है। उसे कोई घेर नहीं सकता। उसकी शक्ति बडी विशाल होती है। वह देव सब मानवोंका हित करता है। वह अपरिमित बलवाला देव हमें बुद्धि और बल बढानेके कार्योंमें प्रेरित करे। वह प्रजा-पालन करता है, दिव्य सामर्थ्यसे युक्त है। बालक, तरुण और वृद्ध ये सब उसी देवके रूप हैं। यह अग्नि ही सब पदार्थोंमें विविधरूप धारण करके प्रकट होता है। कठोपनिषदमें कहा है–

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ (कठ उ. २।५।९)

" अग्नि जैसे भुवनमें प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूपमें उसके आकारवाला होकर रहता है। उसीप्रकार एक ही सब भूतोंका अन्तरात्मा है जो प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप भी है और बाहर भी है। " अग्नि जिसप्रकार सब पदार्थोंमें सबके रूपोंको धारण करके रहता है, उसीप्रकार यह सर्वभूतान्तरात्मा सबमें व्याप्त है।

परम पिताका यशगान

यह अग्नि वस्तुतः परमात्माका तेजस्वी रूप है। इसलिए कई सूक्तोंमें अग्निके बहाने उस प्रभुकी ही उपासना की है। वह अग्नि—

१ अंगिराः अग्निः देवः (३५१)- प्रत्येक अंग और अवयवोंमें रहनेवाला है।

२ प्रथमः ऋषिः देवानां शिवः सखा (३५१)- पहिला ज्ञानी और देवोंका शुभ मित्र है।

३ व्रत कवयः विद्मनापसः (३५१)- उस अग्निके नियमानुसार जो चलते हैं, वे अतीन्द्रिय ज्ञानी बनकर सब कार्य विधिपूर्वक करते हैं।

४ विश्वस्मै भुवनाय मेधिरः (३५२)- सब प्राणियोंको बुद्धिका दान करता है।

५ मनवे द्यां अ-वाशयः (३५४)- मनुष्यके हितके लिए आकाशको शब्द गुणयुक्त बनाया।

६ पुरु-रवसे सुकृते सुकृत्तरः (३५४)- बहुत ज्ञानी और शुभ कर्म करनेवालेके लिए यह अधिक शुभ कर्म करता है।

७ नः पिता, वयं जामयः (३६०) अग्नि हमारा पिता है और हम सब मनुष्य परस्पर भाई हैं।

८ अनिमेषं रक्षमाणः तोकस्य तनये गवां च त्राता (३६२)- यह सतत पलकोंको भी न मूंदते हुए पुत्रों, पौत्रों और गायोंकी रक्षा करता है।

९ विदुष्टरः पाकं दिशः प्र शास्सि (३६४)- हे अग्ने ! तू अधिक ज्ञानी है, इसलिए अज्ञानीको उन्नतिकी दिशाएं बताता है।

१० सोम्यानां मर्त्यानां आपिः, पिता, प्रमतिः, भूमिः ऋषिकृत् असि (३६६)- शान्त मनवाले मानवोंका यह अग्नि भाई, पिता, सद्बुद्धिदाता, संचालक और उसे मंत्रद्रष्टा बनानेवाला है।

११ नवेन अपसा कर्म ऋध्याम् (३५८)- नवीन प्रयत्न करके कर्मकी सिद्धि प्राप्त करें।

१२ मनुषस्य शासनीं इळां अकृण्वन् (३६१)- मानवोंके राज्यशासनके लिए नीति नियम बनाये।

१० पितुः यत् पुत्रः जायत, (सः) ममकस्य (३६१)- पिताका जो पुत्र होता है, उस पर उसका ममत्व रहता है।

इसप्रकार अग्निकी उपासनाके रूपमें मनुष्योंको उत्तम बोधप्रद उपदेश दिए हैं। इसके अलावा भी मनुष्योंके लिए अनेक बोधप्रद उपदेश ऋषियोंने दिए हैं जैसे—

१४ यः स्वादुक्षद्मा वसतौ स्योनकृत्, जीवयाजं यजते, सः दिवः उपमा (३६५)- जो अपने घरमें मीठे अन्न पकाकर अपने घर आए अतिथियोंको प्रसन्न करता है, जो जीवोंके लिए यज्ञ करता है, उसको स्वर्गकी उपमा है, वह घर मूर्तिमान् स्वर्ग ही है।

शक्तियोंका संगठन करनेवाला अग्नि

अग्नि उत्तम संगठनकर्ता है। शरीरमें जबतक इस अग्निकी गर्मी है, तबतक शरीरके सब अंग प्रत्यंग परस्पर संगठित होकर उत्तम रीतिसे कार्य करते हैं। इस शरीरमें तैंतीस देव रहते हैं, उन सभी देवोंका संगठन अग्नि इस शरीरमें करता है। ये देव परस्पर विरोधी हैं, जल अग्निको बुझा देता है और अग्नि जलको सुखा देता है। इसीप्रकार मेघ सूर्यको चमकने नहीं देता और सूर्य मेघको बरसाता है। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध स्वभाव होनेपर भी सब देवगण इस अग्निके कारण इस शरीरमें संगठित होकर रहते हैं। जबतक इस शरीरमें गर्मी रहती है, तबतक ये सभी देव संगठित होकर रहते हैं, पर अग्निके शरीर छोड देनेके साथ ही देवगण भी तितरबितर होकर इस शरीरको छोड जाते हैं।

राष्ट्रमें भी अग्निकी सहायतासे होनेवाले यज्ञ जनताका संगठन करते हैं। बडे बडे यज्ञोंमें बहुत संख्यामें मनुष्य आकर संगठित होते हैं। नरमेधमें वस्तुतः मनुष्यका वध नहीं किया जाता, अपितु उस यज्ञमें मानव संगठित होते हैं, इसीलिए उसे नरमेध कहते हैं। इस अग्निसे यज्ञ होते हैं और यज्ञोंसे प्रजा संगठित होती है, इसलिए अग्निको संगठनका देव कहा है।

अग्निके विशेषणों पर विचार

१ सहो-जाः (६७२)- बलसे उत्पन्न, बलके लिए उत्पन्न। दो अरणियोंका घर्षण करनेके लिए बडा बल लगता है। इस घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है। इसलिए अग्निको बलसे उत्पन्न होनेवाला कहा है।

२ सहोजाः अमृतः नि तुन्दते (३७२)- बलके साथ उत्पन्न हुआ अमर अग्नि कभी व्यथित नहीं होता। जो बलवान् है और जो मरनेवाला नहीं है, उसे किसी तरहके कष्ट नहीं हो सकते। क्योंकि जो निर्बल है और जिसको मृत्युका भय है, वही सदा दुःखी होता है। इसलिए सुख प्राप्त करनेकी यदि इच्छा हो, तो बल प्राप्त करना चाहिए और अपनी आत्मशक्तिका साक्षात्कार करना चाहिए।

३ विश्रु ऋञ्जसानः (६७४)- मनुष्योंमें जो अपने ध्येयकी सिद्धिके लिए प्रयत्न करता है, उसकी यह अग्नि सहायता करता है।

विश्वका संचालक

अग्निका एक विशेषण वैश्वानर भी है। इसका अर्थ है, "विश्वका नेता" या "विश्वका संचालक"। यह विश्वानर अपनी महिमासे सब प्राणियोंका रूप धारण करता है। यह वैश्वानरका स्वरूप है। यही जनता जनार्दन है। यही नारायण है। नरोंका समूह ही नारायण है। इसी विश्वानरका वर्णन "पुरुषसूक्त" में किया गया है। और इसीकी महिमा गीताके ११ वें अध्यायमें स्वयं भगवान् कृष्णने गाई है। जो कुछ भूतकालमें हुआ और जो कुछ आगे होगा वह सब इस पुरुषकी ही महिमा है।

"इसी विश्वानरके मुखसे ब्राह्मण हुए, क्षत्रियसे बाहु हुए, उरुओंसे वैश्य हुए और पांवोंसे शूद्र बने।"

१ या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु मानुषेषु तस्य राजा (६८३)- जो कुछ भी पर्वतोंमें, औषधियोंमें, जलोंमें और मनुष्योंमें है, उस सबका वह राजा है।

२ मानुषीणां कृष्टीनां राजा (६८५)- मानवी प्रजाजनोंका यह राजा है।

३ आर्याय ज्योतिः (६८२)- आर्योंके लिए यह वैश्वानर प्रकाशका मार्ग दिखाता है। असुरोंका नाम "निशाचर" है, क्योंकि उनका मार्ग अन्धेरेका है। इसी लिए अनार्योंके आधीन राज्य प्रबन्ध नहीं रहना चाहिए। जो आर्य हैं, उन्हींके अधीन राज्य प्रबन्ध, सब धन और सब बल रहना चाहिए।

४ पूरवः वृत्रहणं सचन्ते। वैश्वानरः अग्निः दस्युं जघन्वान् (६८६)- नागरिकजन शत्रुका वध करनेवालेकी ही सेवा करते हैं।

५ स्ववते सत्यशुष्माय वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः गिरः (६८४)- आत्मज्ञानी, सत्य बलवाले अत्यन्त श्रेष्ठ नेताकी विशेष प्रशंसा करनी चाहिए। सब मानवोंका समुदाय ही वैश्वानर है। सभी मानव प्रभुके रूप हैं। पर इस जनसमूहका नेतृत्व किसके हाथमें हो, इसका वर्णन इस मंत्र भागमें है। सब मनुष्योंका नेतृत्व करनेवाला मनुष्य ज्ञानी हो, सत्यनिष्ठाका बल उसके पास हो, वह सार्वजनिक हितमें तत्पर हो और सब मानवोंमें श्रेष्ठ हो।

६ वैश्वानरः नाभिः क्षितीनां (६८१)- सार्वजनिक हित करनेवाला यह श्रेष्ठ पुरुष ही सब मानवोंका, सब जनताका केन्द्र अथवा मध्यबिन्दु है।

७ स्थूणा इव जनान् उपमित् (६८१)- जिसप्रकार खम्भा सब घरके लिए आधार होता है, उसी तरह यह विश्वानर सब मानवोंका आधार होता है।

८ अन्ये अग्नयः ते वयाः इत् (६८१)- अन्य अग्नियां इसकी शाखायें हैं। यह नेता वृक्ष है और अन्य मानव उसकी शाखायें हैं। सब मिलकर एक ही अखण्ड वृक्ष है। इसीप्रकारका सम्बन्ध नेताका जनताके साथ होना चाहिए।

९ विश्वे अमृताः ते मादयन्ते (६८१)- सब देव तुझमें आनंद प्राप्त करते हैं। सार्वजनिक हितमें ही आनन्द मानना देवत्वका लक्षण है।

१० दिवः मूर्धा, पृथिव्याः नाभिः, रोदस्योः अरतिः (६८२)- यह वैश्वानर द्युलोकका सिर, पृथ्वीका केन्द्र और दोनों लोकोंका स्वामी है। अरतिका अर्थ स्वामी भी होता है।

११ देवासः वैश्वानरं अजनयन्त (६८२)- सब देवोंने वैश्वानरको प्रकट किया। सब विद्वान् मिलकर जनताका नेता चुनें।

इसप्रकार यह वैश्वानर अग्नि सब जगत्को चलाता है।

१२ यत् एभ्यः नृभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ, ते एता व्रता नकिः मिनन्ति (६८५)- जो नियम तुमने मानवोंकी उन्नतिके लिए बनाये, उन नियमोंका कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता।

मनुष्योंकी उन्नति

मनुष्योंकी उन्नति किसप्रकार हो सकती है, उसके भी कुछ नियम ऋग्वेदके अग्नि सूक्तोंमें बताये गए हैं। जो यहां मननीय हैं-

१ अर्हते जातवेदसे मनीषया स्तोमं सं महेम (१०४१)- जो पूजनीय है, जो उत्तम ज्ञानी है उसीकी प्रशंसा हम मननपूर्वक करेंगे। जो सत्कारके योग्य हो, उसीकी प्रशंसा करनी चाहिए। अयोग्यकी झूठी प्रशंसा करनेसे मनुष्यकी गिरावट होती है जो उत्पन्न हुए पदार्थोंको यथावत् जानता है, जो ज्ञान विज्ञान सम्पन्न है, वही सत्कारके योग्य है।

२ अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा (१०४१)- इस ज्ञानीकी संगतिमें रहनेसे हमारी पहलेसेही उत्कृष्ट बुद्धि और कल्याणकारिणी बन जाती है ।

३ यस्मै त्वं आ यजसे, सः साधति (१०४२)- जिस मानवके लिए ऐसा सुयोग्य ज्ञानी सत्पुरुष अन्तःकरण-पूर्वक अपने ज्ञानके यज्ञसे सहायता करता है, वही मानव सिद्धिको प्राप्त होता है ।

४ सः तूताव, एनं अंहतिः न अश्नोति (१०४२)- वह ज्ञानी बढता है, उन्नत होता है, । इसको कोई आपत्ति नहीं सताती ।

५ ये के चित् दूरे वा अन्ति वा अत्रिणः, वधैः दुःशंसान् दूढ्यः अप जहि (१०४९)- जो कोई खाऊ दुष्ट दुर्जन दूर या समीपमें रहते हैं, उन दुष्टोंका शस्त्रोंसे वध कर, उनको समाजमें न रहने दे ।

६ यज्ञाय सुगं कृधि (१०४९)- यज्ञ करनेवाले उदार धर्मात्माके लिए सुगम मार्ग कर। इसका मार्ग निष्कण्टक हो।

७ दाशुषे रत्नं द्रविणं च दधाति (१०५४) - दाताके लिए धन और रत्न दिया जावे ।

८ सर्वताता अनागास्त्वं ददाशः (१०५५)- सब प्रकारसे यज्ञीय जीवन व्यतीत करनेवालेके लिए निष्पाप जीवन प्राप्त हो ।

९ भद्रेण शवसा चोदयासि, प्रजावता राधसा स्याम (१०५५)- सबका कल्याण करनेवाले सामर्थ्यसे जो कर्मोंको प्रेरणा मिलती है, उससे शुभ सन्तान होती है और उत्तम धन मिलता है।

अग्निके तीन जन्म

इस अग्निके तीन जन्म बताये हैं । इस अग्निका एक जन्म (समुद्रे एकं) समुद्रमें बडवानल रूपसे है। (दिवि एकं) द्युलोकमें सूर्यरूप दूसरी अग्नि है । सूर्य अग्निका ही रूप है । (अप्सु एकं) अन्तरिक्षमें मेघाशयमें विद्युत्‌रूपी तीसरी अग्नि है ।

आकाशमें सूर्य, अन्तरिक्षमें विद्युत् और पृथ्वी पर अग्नि ये तीन रूप एक ही अग्निके हैं। वास्तवमें सूर्य, विद्युत् और अग्नि ये तीन पदार्थ पृथक् पृथक् दिखाई देते हैं, पर एक ही अग्निके ये तीन रूप हैं ।

यहां समुद्रपद पृथ्वी स्थानका वाचक है । पृथ्वीमें भयानक प्रखर अग्नि है । पृथ्वीमें सब पदार्थ इस अग्निके कारण उबलते रसके रूपमें विद्यमान हैं । यह अग्नि सभी पदार्थोंमें गुप्तरूपसे विद्यमान है । सबमें व्याप्त है, पर दीखता नहीं। ज्ञानी ही उसको जानता है । इस अग्निके यद्यपि पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकसे उत्पन्न होनेके कारण ये लोक इस अग्निकी मातायें हैं, पर यह अग्नि पुत्र होते हुए भी पृथ्वीको, बिजली अन्तरिक्षको और सूर्य द्युलोकको प्रकाशित करता है।

(महान् कविः स्वधावान् गर्भः बह्वीनां अपसां उपस्थात् निश्चरति) (१०६०) सामर्थ्यवान् होकर यह पुत्र रूप गर्भ अर्थात् बडा ज्ञानी अग्नि बहुत जल प्रवाहोंके सामनेसे निकलकर संचार करता है। विद्युत् रूप अग्नि वृष्टिके प्रवाहोंके मध्यमें प्रकट होता है ।

(आसु चारुः आविष्टयः वर्धते) (१०६१) इन जल प्रवाहोंके अन्दर इन मेघोंके अन्दर विद्युद्रूपसे प्रविष्ट होकर यह अग्नि बढती है ।

सब मानवोंका सहायक नेता

जो सबको सुयोग्य मार्गसे चलाता है, नेता बनकर जो अपने अनुयायियोंको उन्नतिके मार्गसे चलाता है तथा स्वयं भोगोंमें न फंसता हुआ अनासक्त होकर जो श्रेष्ठ कार्योंमें तत्पर रहता है, वह नेता- " वैश्वा-नर " है ।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम (१०८५) सब मानवोंके हित करनेके कार्यमें जो दत्तचित्त रहता है, ऐसे नेताकी उत्तम बुद्धिमें सब प्रजा रहें। सब मानव ऐसे उत्तम जन हितकारी कार्य करें जिससे सन्तुष्ट होकर नेता उन पर सर्वदा अपनी कृपावृष्टि रखें । इससे यह बोध मिलता है कि जनताका नेता सब मानवोंको उन्नतिके मार्गपर योग्य रीतिसे चलावे, स्वयं भोगोंमें न फंसे, जनताको सन्मार्ग पर चलावे, और अनुयायी भी ऐसे हों कि जो नेताके आदेशानुकूल अपना नियत कर्तव्य करते जाएं और अपने नेताकी आयोजना सफल करें ।

(इतः जातः वैश्वानरः इदं वि चष्टे) (१०८५)- इसी समाजसे उत्पन्न हुआ यह नेता जनताका अग्रणी है । नेता होनेके बाद वह इसी समाजकी परिस्थिति का विशेष रीतिसे निरीक्षण करे ।

(सूर्येण यतते) (१०८५) वह नेता सूर्यके साथ यत्न करता है । जिस प्रकार सूर्य निरलस रहकर सबको प्रकाश बताता है, उसी प्रकार यह नेता आलस्य छोडकर उन्नतिके कार्यमें दत्तचित्त रहता है । जिस प्रकार सूर्य विश्वका मार्गदर्शक है, उसी तरह यह नेता मानवोंको मार्ग बताता है । यह नेता अपने सामने सूर्यका आदर्श रखता है।

(वैश्वानरः अग्निः) सब मानवोंका सच्चा हित करनेवाला नेता सचमुच अग्नि है। अग्निके समान जनतामें यह नवचैतन्यकी आग उत्पन्न करता है। जैसे अग्निमें पडा हुआ पदार्थ अग्निरूप बन जाता है, उसी तरह इस अग्निकी संगतिमें आया हुआ मनुष्य इसके सदृश ही उत्साही होता है। वैश्वानरके विषयमें निरुक्तकार यास्क लिखते हैं- " वैश्वानरः कस्मात् ? विश्वान् नरान् नयति, विश्वे एनं नरा नयन्तीति वा अपि वा विश्वानर एव स्यात् (नि० ७।६।२१)- यह अग्नि सब मानवोंको ठीक तरह ले जाता है अथवा सब मानव इसको साथ रखते हैं अथवा यह सबका नेता है।

इसप्रकार प्रथम मण्डलमें अग्निके बारेमें ऋषियोंके विचार प्रगट हुए हैं। उपरोक्त सभी वर्णनोंमें अग्निको एक ज्ञानी नेताके रूपमें वैदिक ऋषियोंने प्रस्तुत किया है। यह अग्नि विश्वसमाजके ब्राह्मणत्वका प्रतिनिधित्व करता है।

अब इसके बाद इन्द्र पर विचार करते हैं।

इन्द्र

इन्द्र विश्वराज्यमें संरक्षणमंत्री और क्षत्रियसमाजका प्रतिनिधि है। इन्द्र राष्ट्रके शत्रुओंका मर्दन करके सज्जनोंकी रक्षा करके राष्ट्रको हरतरहसे सुरक्षित रखता है। इन्द्रके सैनिक मरुत् हैं, ये सैनिक इन्द्रकी हरतरहसे सहायता करते हैं। इनका नाम ही मरुत् या " मर-उत् " है। अर्थात् ये मरनेतक उठ उठकर शत्रुओंसे लडते हैं। ऐसे शूरवीर सेनाओंका सेनापति यह इन्द्र है। यह संरक्षणमंत्रीपदके बिलकुल योग्य है। अब हम यह देखते हैं कि ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें इसके बारेमें क्या कुछ लिखा है।

पालक इन्द्र

यह इन्द्र सज्जनोंका पालन करता है और उन्हें हरतरहसे आनन्दित रखता है।

१ पुरूतमः- इसके पास अत्यन्त धन है। जो सबका पालन पोषण करता है, वह " पुरु " है। वह इन्द्र पालन पोषणका कार्य अत्यन्तपूर्ण रीतिसे करता है, इसीलिए वह " पुरू-तम " है।

२ पुरूणां वार्याणां ईशानः (४२)- अत्यन्त धनोंका स्वामी, जिसके पास जनताके पालनपोषण करनेवाले सब प्रकारके पर्याप्त धन है।

३ शतक्रतुः (४८)- सैंकडों प्रकारकी युक्तियां जिसके पास हैं।

४ अक्षित-ऊतिः (४९)- जिसके पासके संरक्षणके साधन कभी न्यून नहीं होते। जिसके पास सदा ही पर्याप्त सुरक्षाके साधन रहते हैं।

५ स योगे राये पुरन्ध्यां आ भुवत् (४३)- वह इन्द्र साधन, धन और सुबुद्धि देता है।

६ समत्सु शत्रवः यस्य न वृण्वते (४४)- युद्धोंमें शत्रु जिसको घेर नहीं सकते।

७ अक्षितोतिः इन्द्रः विश्वानि पौंस्या, सहस्रिणं वाजं सनेत् (४९)- अक्षय रक्षा साधनोंसे सम्पन्न इन्द्र अनेक बल और सहस्रोंका पालन करनेवाला अन्न देता है।

८ ईशानः वधं यावय (५० - यह इन्द्र परिस्थितिका स्वामी बनकर मृत्युको दूर करता है। इसीतरह मनुष्य भी परिस्थितियोंका स्वामी बने, कभी भी उनका दास न बने। और इसप्रकार सशक्त होकर वह मृत्युको दूर करे।

यह इन्द्र निर्भीक, सदा प्रसन्न और प्रकाशमान्-तेजस्वी है। यह—

९ अकेतवे केतुं कृण्वन् (५३)- अज्ञानीको ज्ञान देता है।

१० अपेशसे पेशः कुर्वन् (५३)- रूपहीनको सुरूप बनाता है।

११ अविभ्युषा संजग्मानः (५७)- यह निर्भीक व्यक्तियोंके साथ सदा रहता है।

मनुष्य सदा अज्ञानियोंको ज्ञान देता रहे। यह राष्ट्रमें ज्ञानप्रसारका कार्य हर मनुष्यको करना चाहिए। इन्द्र क्षत्रिय होते हुए भी इस ज्ञानप्रसारके कार्यकी तरफ बहुत सावधान रहता और ध्यान देता रहता है। इसीप्रकार राष्ट्रका राजा भी शिक्षाकी तरफ ध्यान दे और सभी प्रजाको सुशिक्षित बनाये। इन्द्र हमेशा ऐसे मनुष्योंके साथ रहता है जो निर्भीक होते हैं, जो कठिनसे कठिन समय पर भी उसका साथ देते हैं। राजा भी ऐसे निर्भीक वीरोंको अपना सहायक बनाये।

यह इन्द्र महान् है। (दाशुषे ऊतयः सद्यः सन्ति) दान दाताके संरक्षणके लिए इसके आयुध हमेशा तैयार रहते हैं। इसीलिए इस वज्रधारी शूर इन्द्रका महत्व सर्वत्र विख्यात है।

वीरतावाला धन

१ स्पार्हं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं ऊतये आभर (७१)- स्वीकार करने योग्य, विजयशील, शत्रुके

नाश करनेमें समर्थ और श्रेष्ठ धन सुरक्षाके लिए हमें भरपूर मिले। मनुष्योंको मिलनेवाला धन (वर्षिष्ठं रयिं) श्रेष्ठ धन हो। वह उत्तम धन (स्पार्हम्) सेवन या उपभोग करनेके योग्य हो। धनका संचय उपभोगके लिए किया जाए (सजित्वानं) जो धन शूरवीरोंके साथ रहता हो, वही धन हमें प्राप्त हो। जो कायर, डरपोक और दुष्ट लोगोंके पास धन हो, वह हमें न मिले। शूरवीरोंवाला धन शत्रुओंका नाश करता है। अत: वेदने यहां केवल वही धन मांगा है, जो " सेवन करने योग्य, वीरोंके साथ रहनें वाला और शत्रुको पराजित करनेके श्रेष्ठ सामर्थ्यसे युक्त हो। "

२ वरेण्यं चित्रं विभु प्रभु राधः (६५)- धन विविध प्रकारका, विशेष प्रभावी और सिद्धि तक पहुंचाने वाला हो ?

३ गोमत् वाजवत् पृथु बृहत् विश्वायु अक्षितं श्रव (८७ – गौओंके साथ रहनेवाला, विस्तृत, बडा, पूर्ण आयुतक जीवित रखनेवाला, अक्षय और यश देनेवाला हो।

४ वसुः (८९)- जो मनुष्योंके सुखपूर्वक निवासका हेतु होता हो, ऐसा धन हो।

ऐसा उत्तम धन संचित होनेके बाद उसका दान हजारों मनुष्योंको करना चाहिए। धन किसी अकेलेके भोगके लिए नहीं होता। इसलिए उसे सहस्रोंके पालन पोषण और संवर्धनमें ही लगाना चाहिए।

सत्यभाषण

पक्वा शाखा न। विरप्शी गोमती मही सूनृता (७१)- जिस तरह उत्तम मधुर फलवाले वृक्षकी परिपक्व फलोंसे भरपूर शाखा जिस तरह लाभदायक होती है, उसी प्रकार मनुष्यकी वाणी हो। मनुष्यकी वाणी शुष्क शाखाके समान शुष्क और रसहीन न हो, अपितु रसदार फलोंसे लदी हुई शाखाके समान रसीली, मधुर और श्रवण करनेके योग्य हो। मनुष्यकी वाणी (वि–रप्शी) विशेष सुन्दर स्वरालापों से युक्त मधुर और कोमल हो। (गोमती) प्रगतियुक्त हो (मही) महत्ववाली और बडी श्रेष्ठ विचारोंसे युक्त और (सूनृता) उत्तम मानवता प्रकट करनेवाली हो। वाणीसे मनुष्यत्वका विकास हो। ऐसी वाणी मनुष्योंको बोलनी चाहिए। जिस राष्ट्रके नागरिक ऐसी उत्तम मीठी वाणी बोलते हों, वह राष्ट्र निस्सन्देह उन्नतिशील होगा।

युद्धनीति

वृषायुधः वध्रयः न– हमारे सैनिक तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग करनेवाले हों।

२ निरष्टाः चितयन्तः प्रवद्भिः आयन्– शत्रुके सैनिक अपना पराभव मानकर नीचेके मार्गसे दूर भाग जावें।

३ रुदतः जक्षतः रजसः पारे अयोधयः, दस्युं आ अव अदहः– शत्रु रोते रहें या आनंन्दमें रहें, उन्हें अपने स्थानसे दूर करके भगा दो, या उन्हें जला दो।

३ स्पशः परि अदधात्– शत्रुके गुप्तचरोंको चारों ओरसे पकडना चाहिए।

४ अमन्यमानान् दस्यून् मन्यमानैः नि अधमः– अपनी बात न माननेवाले शत्रुओंको बात माननेवाले मित्रोंसे दूर करना चाहिए।

५ सध्रीचीनेन मनसा ओजिष्ठेन हम्मना तं अहन् – वीरोंको चाहिए कि वे धैर्ययुक्त मनसे, शान्तचित्तसे, परन्तु अधिक तीक्ष्ण शस्त्रसे शत्रुओंपर हमला करें। युद्धके समय वीर अपना मन बहुत शान्त रखें, वे अशान्त न हों, पर लडते समय तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र लेकर लडें।

६ इलीबिशस्य दृळ्हा नि अविध्यत्– अपनी मातृभूमिपर खडे हुए शत्रुओंके मजबूत किलोंको तोड देना चाहिए।

इन्द्रके मानव हितकारी कर्म

यह इन्द्र सदा मनुष्योंके लिए हितकारी कर्म ही किया करता है।

१ यस्य मानुषा, द्यावः न, विचरन्ति– जिस इन्द्रके मनुष्योंका हित करनेके लिए किए जानेवाले कर्म सूर्यकिरणोंके समान चारों ओर फैले हुए हैं।

२ शतक्रतुः- सैकडों तरहके मानव हितकारी कर्म करनेवाला।

३ सुक्रतुः– जनताके लिए उत्तम और हितकर कर्म करनेवाला।

४ संभृतक्रतुः–मनुष्योंके भरणपोषणके कार्य करनेवाला।

५ मानुषप्रधनाः ऊतयः नृषाचः मरुतः स्वः इन्द्रं अनु अमदन्– मनुष्योंके हितार्थ युद्ध करनेवाले संरक्षक संघटित वीरोंने स्वयं तेजस्वी इन्द्रको अनुकूल शक्ति प्रदान करके आनंदित किया।

इस इन्द्रने अंगिराओंके लिए गौओंकी रक्षा की । अत्रिको कारागृहसे बाहर निकाला। विमदको धन धान्य प्रदान किया। ववसानको युद्धमें सुरक्षित किया । पिप्रु असुरके नगरोंका नाश किया । आर्योंके लाभके लिए दस्युओं-दुष्टोंको नष्ट करता है। नियमके अनुसार न चलनेवालोंको नियमशीलोंके लिए विनष्ट करता है। शक्तिमान् होकर यज्ञकर्मोंको प्रेरित करता है । मातृभूमिके भक्तोंके द्वारा मातृभूमिके विरोधकोंको नष्ट करवाता है ।

इस प्रकार वह इन्द्र मनुष्योंके लिए हितकारी कर्म करता है। यह इन्द्र (वीर्येण अति प्रचेकिते) अपने पराक्रमके कारण बहुत तेजस्वी दीखता है। यह (विश्वस्मै कर्मणे पुरोहितः) सब उत्तम कर्मोंका नेता है । इसीलिए (सः जनेषु इन्द्रियं चारु प्रब्रुवाणः चन्त्रस्यते) वह इन्द्र सब मानवोंमें विशेष प्रभाव दिखानेके कारण प्रशंसित होता है।

शवसे अपावृतं यस्य विश्वायुः राधः दुर्धरं–शक्तिके लिए जिसकी सब आयुभर प्रसिद्धि है, वह सचमुच दुर्धर बलवाला और अजिक्य सामर्थ्यवाला है ।

इन्द्रकी युद्ध विद्या

१ आजौ अद्रिं नर्तयन् - युद्धमें पर्वतके समान कठोर वज्रको नचाता रहता है ।

२ मायिनः मायाभिः अप अधमः– इन्द्रने कपटी शत्रुओंको कपटोंसे ही मारा ।

३ सः द्वरिषु द्वरः– वह इन्द्र घेरनेवाले शत्रुओंको भी घेर लेता है ।

४ त्वष्टा ते युज्यं शवः ववृधे, अभिभूति ओजसं वज्रं ततक्ष– त्वष्टाने तेरे योग्य बल बढाया और शत्रुको हरानेवाले वज्रका निर्माण किया ।

५ युध्यतः अस्य (अन्तं) न (आनशुः) - युद्ध करते समय इस इन्द्रकी शक्तिका पार कोई भी न पा सका ।

६ स युध्मः मज्मना ओजसा जनेभ्यः महानि समिधानि कृणोति, इन्द्राय (जनाः) श्रत् दधति– यह योद्धा इन्द्र अपने शुद्ध बलसे जनताका हित करनेके लिए बडे युद्ध करता है, इसके लिए सब लोग इस इन्द्र पर श्रद्धा रखते हैं ।

स्वराज्यकी पूजा

ऋग्वेदका (१।८०) सूक्त " स्वराज्यसूक्त " है। वेदमें स्वराज्यका अर्थ बडा विशाल है । अपने ऊपर स्वयं शासन करनेको स्वराज्य कहते हैं । अपने शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि पर पूर्णरूपसे स्वाधीनता प्राप्त करना स्वराज्य है । ऐसे स्वयंशासक लोगोंके द्वारा जो राज्यशासन चलाया जाता है, वह स्वराज्य है । स्वयंशासित एवं संयमी, जितेन्द्रिय लोगों के द्वारा जो शासन चलाया जाता है, वही वैदिक स्वराज्य है। जो सर्वोपरि श्रेष्ठ राज्यशासन है । इसमें मित्रवत् व्यवहार करनेवाले और व्यापक दृष्टिवाले स्वयंशासक ही राज्यशासन करते हैं ।

ऐसे स्वराज्यकी (अनु अर्चन्) अर्चना, पूजा करनी चाहिए । ऐसे उत्तम राज्यशासनका आदर एव इसे चिरस्थायी बनानेके लिए क्या करना चाहिए, वह इस सूक्तमें बताया है—

१ ओजसा अहिं पृथिव्याः निः शशा (१) अपने बलसे शत्रुको पृथ्वी परसे निःशेष कर देना चाहिए । दुष्टोंको ऐसे नियंत्रणमें रखना चाहिए कि वे प्रजाजनोंको कष्ट देनेमें समर्थ न हों । दुष्टोंकी दुष्टता दूर करनेके लिए उनका नियमन करना ही उत्तम उपाय है ।

२ ब्रह्मा वर्धनं चकार– ज्ञानीने इस बलका वर्धन किया था । जिस बलसे ये स्वराज्यके चालक, पालक और शत्रुके नियामक हो सके । राष्ट्रके अन्दर ज्ञानी बल बढानेका प्रयत्न करें और नाना साधनोंसे नाना क्षेत्रोंमें शक्तिका संवर्धन करें ।

३ ओजसा वृत्रं नि जगन्थ (२)– बलसे घेरने वाले शत्रुको मारा ।

४ प्रेहि अभीहि, धृष्णुहि (३)– आगे बढो, हमला करो, चारों ओरसे घेर कर शत्रुओंका पराभव करो ।

५ न ते वज्रः नि यंसते– युद्ध करते समय इस इन्द्रके वज्रको कोई रोक नहीं सकता ।

६ मायिनं मृगं मायया अवधीः– कपटी, छद्मी शत्रुको कपट और छलसे ही मारता है ।

७ सैंकडों और सहस्रोंकी संख्यामें इकट्ठे होकर प्रभुकी उपासना करो और स्वराज्यकी अर्चना करो ।

८ इन्द्रः सहसा वृत्रस्य तविषीं सहः च नि अहन्– इन्द्रने अपने बलसे शत्रुकी सेना और उसके सब सामर्थ्यका नाश किया ।

९ इस इन्द्रकी गर्जनासे स्थावर और जंगम जगत् कांपता है और त्वष्टा भी उसके सामने कांपता है ।

१० देवाः तस्मिन् ओजांसि नृम्णं उत क्रतुं संदधुः– सब देवोंने इस इन्द्रमें बल, वीर्य और कर्तृत्वकी शक्ति स्थापित की ।

इस प्रकार स्वराज्यकी पूजा किस तरह हो सकती है, यह बात इस सूक्तमें बताई है। प्रथम राष्ट्रमें ज्ञानकी वृद्धि करनी चाहिए। शस्त्रास्त्र भरपूर प्रमाणमें तैय्यार रहने चाहिए। वीरोंका निर्माण करना चाहिए। ये वीर शत्रु पर हमला करके उनका पराभव करें। कपटी शत्रुका नाश कपटसे ही करें।

इस प्रकार इन्द्र देवताका वर्णन इस मण्डलमें है। इन्द्र देवताके सूक्तोंमें प्रायः वीररसके ही दर्शन होते हैं। इसके सूक्त या आदर्श राष्ट्रमें वीरतोत्पादक हैं।

अश्विनौ देवता

ये देवता सदा दोकी संख्यामें रहनेके कारण ये हमेशा द्विवचनमें ही प्रयुक्त होते हैं। ये विश्वराज्य मंत्रीमण्डलमें आरोग्यमंत्री हैं। ये देवता कौन हैं, इस विषयमें अनेक वचन ब्राह्मणग्रंथोंमें उपलब्ध हैं। यथा (१) सबका भक्षण करनेसे द्यावापृथिवी " अश्विनौ " हैं। (२) दोनों कान, (३) दोनों नाक, (४) दोनों आंख अश्विनी हैं (५) दोनों अध्वर्यु अश्विनी हैं। (६) ये दोनों देवोंके वैद्य हैं। वेद-मंत्रोंमें " देवानां भिषजौ " (ऐ० ब्रा० १। १८) के रूपमें दोनोंका वर्णन है। कथा है कि वैद्य होनेके कारण इन दोनोंको देवोंके साथ बैठकर सोम पीनेका अधिकार नहीं था। पर शर्याति राजाकी कन्या सुकन्याकी आराधना पर इन्होंने उसके बूढे और अन्धे पति च्यवनको तरुण और दृष्टिसे युक्त बनाया। उसके बदलेमें च्यवनने अश्विनौको देवोंके साथ बैठकर सोम पीनेका अधिकारी बनाया। इन दोनोंमें एक शल्यचिकित्सामें कुशल है और दूसरा औषधि चिकित्सामें। ये उत्तम चिकित्साके लिए अत्यन्त कुशल साधन अपने पास रखते हैं।

अश्विनौ वैद्य हैं

युवं ह स्थ भिषजा भेषजेभिः (१।१५७।६)

इन्होंने कायाकल्पका प्रयोग करके बूढेको तरुण बनाया था।

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुंचतं
द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्
पतिमकृणुतं कनीनाम्। (ऋ० १।११६।१०)

" हे अश्विदेवो ! तुमने च्यवनकी चमडीको कवचके समान उतार दिया, उसकी आयु बढाई और उसे कई कमनीय स्त्रियोंका पति बनाया। "

जिस प्रकार सांप अपने शरीरसे केंचुलीको उतार कर फिर तरुण बन जाता है, उसी प्रकार कायाकल्पकी पद्धतिसे जीर्णशीर्ण चमडीको उतार कर मनुष्य फिर तरुण बन सकता है। इस कायाकल्पका प्रयोग अश्विनौ किया करते थे।

युवं च्यवानं जरन्तं... पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः (ऋ० १।११७।१३)

हे अश्विनौ ! तुमने बूढे च्यवानको अपने सामर्थ्योंसे फिर तरुण बनाया।

इसी प्रकार एक वन्दन नामक व्यक्तिको भी उत्तम बनाया।

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः। (ऋ० १।११९।७)

उद् वन्दनं ऐरयतं स्वर्दृशे। (ऋ० १।११२।५)

" हे अश्विनौ ! तुमने बुढापेके कारण अत्यन्त बुरी अवस्थावाले वन्दनको उत्तम बनाया और देखनेके लिए उसे आंखें प्रदान कीं। "

इन अश्विनौने घायलको व्रणरहित किया।

त्रिधा ह श्यावं विकस्तं उज्जीवसे ऐरयतं।
(ऋ० १।११७।२४)

" तीन स्थानपर कटे और जख्मी हुए श्यावको पुनः जीवन देकर चलने फिरने योग्य बनाया। "

अन्धेको आंखें दीं

याभिः शचीभिः वृषणा परावृजं
प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः। (ऋ० १।११२।८)

अपनी अनेक शक्तियोंसे परावृजका अन्धत्व दूर करके उसे देखने योग्य बनाया। इसी प्रकार—

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानं ऋज्राश्वं
तं पितान्धं चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्त...
(१।११६।१६-१७)

" ऋज्राश्वने एकसौ एक मेंढें भेडियेको खानेके लिए दीं। यह देखकर क्रोधित हुए पिताने उसे अन्धा बना दिया। परन्तु अश्विनौने उसकी दूसरी आंखें लगाकर उसे आंखवाला बनाया। " इसी प्रकार अश्विनौने " दृष्टि पानेकी इच्छासे प्रार्थना करनेवाले कविको उत्तम आंखें दीं। "
(ऋ० १।११६।१४)

लोहेकी टांग लगाना

खेल राजाकी पुत्री विश्पला युद्ध करने गई। युद्ध करते करते उसकी एक टांग कट गई। उस स्थानपर अश्विनौने एक लोहेकी टांग लगाई।

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा
खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै
धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् । (ऋ० १।११६।१५)
प्रति जंघां विश्पलाया अधत्तम् (ऋ० १।११८।८)
युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः (ऋ० १०।३९।८)

" खेल राजाकी पुत्री विश्पला युद्धमें गयी । युद्धमें उसकी एक टांग टूट गई । उसकी जगह अश्विनोंने एक लोहेकी टांग लगा दी । जिससे वह चलने योग्य बन गई । "

अश्विनौने कारागृहमें पडे जख्मी रेभका उद्धार किया (ऋ० १।११२।५; ११६।२४; ११७।४)। वंध्या गौको दुधारु बनाया, (१।११२।३; ११७।२०; ११९।६)

अश्विनौंका रथ

अश्विनौका रथ पक्षीके समान आकाशसे उडता था।

" जब आपका रथ पक्षियोंके समान आकाशमें उडता है, तब आपके घोडे अन्तरिक्षमें गमन करते हैं । " इनके आकाशगामी रथोंमें पक्षी जोडे जाते थे ।

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु
रथे युक्तास आशवः पतंगाः (१।११८।४)

" अश्विनौ ! आपके रथ-आकाशयानमें शीघ्रगामी पक्षी जोडे गए हैं ।

इनके जमीनपर चलनेवाले रथ भी थे, जो बिना घोडोंके ही दौडा करते थे—

अनश्वं याभी रथमावतं जिषे (१।११२।१२)
अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः ।
(१। १२०।१०)

" जिसमें घोडे नहीं जोडे गए हैं, ऐसे अश्वरहित रथ अश्विनौके हैं ।

उडनेवाली नौका-विमान

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवं
आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः
सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः । (ऋ० १८२।५)

" तुमने तुग्रपुत्रके लिए अपने सामर्थ्यसे पंखयुक्त नौका महासागरमें बनाई । वह पक्षीके समान थी । उस नौकासे उत्तम प्रकार उडनेवाले तुम दोनों सहजहीसे समद्रसे उडकर ऊपर चले गए । "

अश्विनौकी यह नौका जलमें तो चलती ही थी, पर आकाशमें भी उडती थी ।

तुग्रनामक सम्राट्का भुज्यु नामक पुत्र बडा वीर था । वह एक बार शत्रुओंसे लडने गया और समद्रके पार रेगिस्तानमें जाकर वह घिर गया । उसने अश्विनौकी आराधना की, तब अश्विनौने अपने विमानों द्वारा उसका उद्धार किया ।

वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां
वा जूतिभिः शाशदाना । (१।११६।२)

बडे वेगसे उडनेवाले, त्वरासे दौडनेवाले, दैवी शक्तियोंसे प्रेरित होनेवाले यानोंसे अश्विदेव बडा पराक्रम करते हैं । "

तमूहथुः नौभिरात्मन्वतीभिः
अन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः । (१।११६।३)

" भुज्युको अश्विनौने सामर्थ्यवाली तथा आकाशमें उडनेवाली नौकाओं द्वारा, जो जलमें चलती थीं, घर पहुंचाया । "

अश्विनौके जहाज जल-थल-आकाश तीनों स्थलोंमें आसानीसे चलनेवाले थे ।

तिस्रः क्षपः त्रिरहाति व्रजद्भिः
नासत्या भुज्युं ऊहथुः पतंगैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे
त्रिभी रथैः शतवद्भिः षडश्वैः (ऋ० १।११६।४)

" तीन रात्रि और तीन दिन तक अतिवेगसे दौडनेवाले पक्षीसदृश यानोंसे भुज्युको आकाशमार्गसे वहन किया। जलमय समद्रके परे रेतीले प्रदेशमेंसे उसे तीन रथोंसे उसके घर पहुंचाया । उन रथोंमें सैकडों चक्र और घोडे लगे हुए थे ।

अनारंभणे तदवीरयेथां अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुः भुज्यमस्तं
शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् । (१ ११६।५)

" जिसके आदि-अन्तका पता नहीं, जिसकी थाहका भी पता नहीं लग सकता, ऐसे अगाध समुद्रमेंसे सौ बल्लियोंवाली नौकाकी सहायतासे भुज्युको अपने घर पहुंचाया । "

युवं भुज्युं अर्णसो निः समुद्रात्
विभिरूहथुः ऋज्रेभिरश्वैः । (१।११७।१४)

" अश्विनौ ! तुमने बडे महासागरमेंसे बडे वेगवाले अपने पक्षिसदृश वाहनोंसे ऊपर उठाया ।

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं
स्वयुक्तिभिः निवहन्ता पितृभ्य आ। (१।११९।४)

" तुम जलमें डूबनेवाले भुज्युको उडनेवाले पक्षी जैसे यानोंसे उठाकर अपनी खास युक्तियोंसे पिताके पास लाये। "

इस प्रकार अश्विनी देव सर्वत्र नीरोगता उत्पन्न करते हैं, रोगियोंके रोग दूर करते हैं, आरोग्यका संरक्षण करते हैं, आरोग्यके संरक्षणका मार्ग बताते हैं।

उषा

उषा देवताके सूक्तोंमें साधारणतया प्राभातिक दृश्यका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। इस देवताके द्वारा ऋषियोंने स्त्रियोंको उत्तम उत्तम बोध दिए हैं। उषाके मंत्रोंमें आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त करनेका मार्ग बताया है। उषाका माहात्म्य निम्न मंत्रोंमें वर्णित है—

१ ज्योतिः कृणोति सूनरी। (१।४८।८)
२ ज्योतिः विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती
उषः तमः वि आवः (१।९२।४)
३ अपः प्रागात् तम आ ज्योतिरेति। (१।११३।१६)

यह भलीभांति ले चलनेवाली उषा प्रकाशका सृजन करती है। समूचे संसारके लिए उजालेका निर्माण करती हुई उषा अन्धेरा दूर करती है। अन्धेरा दूर हो गया और अब उजाला आ रहा है।

इस प्रकार उषा अन्धकारको दूर करके उजाला फैलाती हुई आती है और सभी सोये हुए प्राणियोंको जगाकर उन्हें अपने अपने कामोंमें नियुक्त करती है।

सूनरी उषा आयाति, पद्वत् ईयते,
पक्षिणः उत्पातयति। (१।४८।५)
उत्ते वयश्चित् वसतेरपप्तन् नरश्च...व्युष्टौ।
(१।१२४।१२)
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ। (१।४८।६)

" सुन्दरी उषा जब प्रकट होती है, तब पैरोंवाले प्राणी चलने लगते हैं, और पक्षी उडने लगते हैं। हे उषे! तेरे प्रकट होनेपर पक्षी भी अपना घोंसला छोड छोडकर उडने लगते हैं और मनुष्य भी अपने कामोंमें लग जाते हैं। हे उषे! तेरे आजाने पर कोई पक्षी घोंसलेमें बैठा नहीं रहता। "

विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती (१।९२।९)
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं
त्वे वि यदुच्छसि सूनरी। (१।४८।१०)
ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्। (१।१२४।४)

" यह उषा अपना अपना कार्य करनेके लिए सारे प्राणियोंको जगाती है। यह उषा जब उठती है। तबसारे विश्वकी प्राणशक्ति और जीवनशक्ति इस उषा पर निर्भर रहती है। यह उषा सोते हुओंको उठाती हुई आती है। यह उषा ऐश्वर्योंको भी प्रदान करनेवाली है।

दिवः दुहितः त्येभिः वाजेभिः आगहि,
रयिं अस्मे नि धारय।
वामेन सह बृहता द्युम्नेन राया
सह नः वि व्युच्छ। (१।४८।१)
सा अस्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यं
उषो वाजं सुवीर्यम्। (१।४८।१२)
उषो अद्येह ... रेवदस्मे व्युच्छ। (१।९२।१४)

" हे उषे! तू सुन्दर सुन्दर धनोंके साथ हमारे पास आ और हमें ऐश्वर्यसम्पन्न बना। "

इस प्रकार उषा सोते हुओंको जगाकर उन्हें ऐश्वर्यसम्पन्न बनाती है। इसी भांति घरकी स्त्रियां घरमें उठकर उजाला करें, सोते हुओंको जगायें और उन्हें हरतरहसे सुखी बनावें। घरकी स्त्रियां सदा उषाकी भांति सजी सजाई और प्रफुल्ल चेहरेवाली रहें। यह बोध उषादेवताके सूक्तोंसे मिलता है।

इस प्रकार प्रथम मण्डलमें देवताओंसे बोध प्राप्त होता है। इन देवताओंके अलावा मरुत् ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति आदि अनेक देवताओंके वर्णन हैं, जो मनुष्योंको विविध प्रकारके बोध देते हैं। पर इन बोधोंसे मनुष्य तभी लाभ उठा सकता है, कि जब वह देवोंके द्वारा बताये गए मार्गोंपर चले। " यत् देवा अकुर्वन् तत् करवाणि " जो देवोंने किया वही मैं भी करूं। " देव मनुष्योंके लिए आदर्श हैं, इसीलिए देव मनुष्योंके लिए उपास्य हैं। अग्नि अपने प्रकाशसे जगत्का कल्याण करता है, उसी तरह विद्वान् गण अपने ज्ञानके प्रकाशसे जगत्का कल्याण करें। इन्द्र वीर है, स्वराज्यका संरक्षक है। उसी तरह वीरगण निर्भीक होकर स्वराज्यका संरक्षण करें। इसीतरह अन्यान्य देवोंसे भी मनुष्योंको बोध प्राप्त होता है। देवोंके द्वारा दिए गए बोधोंके अनुसार आचरण करके उस ज्ञानको आत्मसात् करना मानवमात्रका कर्तव्य है। देवोंने तो अपने कार्योंसे आदर्श सामने रखे, अब उन आदर्शोंको अपनाना मनुष्य पर निर्भर है।

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

प्रथम मण्डल

सु भा षि त

१ पुरोहितं यज्ञस्य देवं होतारं अग्निं ईळे (१)– अग्रस्थानमें रहनेवाले, समाजमें संगठनका काम करनेवाले, तेजस्वी तथा देवोंको बुलानेवाले अग्रणीकी स्तुति करता हूँ।

२ अग्निः पूर्वेभिः उत नूतनैः ऋषिभिः ईड्यः (२) – संगठन करनेवाला यह अग्रणी प्राचीन और नवीनोंके द्वारा प्रशंसित होता है

३ अग्निना दिवे दिवे पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिं अश्नवत् (३)- इस अग्रणीकी सहायतासे मनुष्य प्रतिदिन पुष्टिकारक यशस्वी और वीरतासे युक्त ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

४ अग्ने अध्वरं यज्ञं विश्वतः परि भूः असि (४) – हे अग्रणी ! तू शत्रुका पराभव करके अहिंसामय शुभ कर्मको सफल बनाता है।

५ अग्ने ! दाशुषे भद्रं करिष्यसि (६)– हे अग्ने ! तू दान देनेवालेका कल्याण करता है।

६ अग्ने ! सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व (७)– जिस प्रकार पिता पुत्रका कल्याण करता है उसी प्रकार, हे अग्ने ! तू हमें भी कल्याणसे युक्त कर।

७ सरस्वती नः पावका...धियावसुः यज्ञं वष्टु (२८)- सरस्वती हमें पवित्र करे और बुद्धिसे प्राप्त होनेवाले अनेक प्रकारके धन देनेवाली यह विद्या हमारे यज्ञको सफल करे।

८ सूनृतानां चोदयित्री सुमतीनां चेतन्ती सरस्वती यज्ञं दधे (२९)– सत्य कर्मोंको प्रेरणा देनेवाली, उत्तम बुद्धियोंको बढानेवाली विद्याकी देवी शुभ कर्मको धारण करती है, उन्हें सफल करती है।

९ सरस्वती केतुना महः अर्णः प्र चेतयति, विश्वाः धियः वि राजति (३०)– यह विद्या अपने ज्ञानसे संसाररूपी महासागरका ज्ञान प्राप्त कराती है और सब प्रकारकी बुद्धियोंको प्रकाशित करती है।

१० इन्द्रस्य शर्मणि स्याम उत अरिः कृष्टयः नः सुभगान् वोचेयुः (३६)- हम इन्द्रकी शरणमें रहें ताकि शत्रु तथा अन्य दूसरे मनुष्य भी हमें सौभाग्यशाली कहें।

११ यः रायः महान् अवनिः सुपारः सुन्वतः सखा (४०)– जो धनका महान् रक्षक दुःखोंसे पार करानेवाला और यज्ञ करनेवालोंका मित्र है, उस इन्द्रकी स्तुति करो।

१२ अक्षितऊतिः इन्द्रः इमं सहस्रिणं वाजं सनेत्, यस्मिन् विश्वानि पौंस्या (४९)– संरक्षण करनेके सामर्थ्यसे युक्त वीर सहस्रों प्रकारके बल बढानेवाले अन्नका सेवन करे, जिसमें सभी तरहके बल निहित हैं।

१३ मर्ताः नः तनूनां मा अभिद्रुहन् (५०)- शत्रुके मनुष्य हमारे शरीरोंसे द्रोह न करें अर्थात् हमारे शरीरोंको क्षतविक्षत न करें।

१४ मर्याः ! अ-केतवे केतुं कृण्वन् अपेशसे पेशः उषद्भिः सं अजायथाः (५३)- अज्ञानीके लिए ज्ञान देता हुआ तथा रूपरहितको रूप प्रदान करता हुआ यह सूर्य उषाओंके साथ उदय हुआ है।

१५ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत्, गोभिः अद्रिं वि ऐरयत् (६३)- इन्द्रने विशेष प्रकाश करनेके लिए द्युलोकमें सूर्यको चढाया और उसीने अपनी किरणोंसे मेघोंको प्रेरित किया।

१६ वयं महाधने अर्भे इन्द्रं हवामहे (६५)- हम बडे युद्धमें और छोटी लडाईमें भी इन्द्रको ही बुलाते हैं।

१७ इन्द्रः महान् परः च, वज्रिणे महित्वं, द्यौः न प्रथिता शवः अस्तु (७५)- इन्द्र बडा और श्रेष्ठ है, उस वज्रधारी वीरको महत्त्व प्राप्त हो और द्युलोकके समान विस्तृत बल प्राप्त हो।

१८ ये नरः समोहे आशत, तोकस्य वा सनितौ, धियायवः वा विप्रासः (७६)- जो नेता युद्धमें लगे रहते हैं, जो पुत्रकी देखभालमें व्यस्त रहते हैं, अथवा जो बुद्धिमान् ज्ञानी ज्ञान प्रचारमें लगे रहते हैं, वे सब आदरणीय हैं।

१९ दाशुषे ऊतयः सद्यः चित् सन्ति (७९)- दाताके लिए सुरक्षायें तत्काल प्राप्त हो जाती हैं।

२० इन्द्र ! रभस्वतः यशस्वतः राये चोदय (८६) - हे इन्द्र ! प्रयत्न करनेवाले तथा यशस्वी लोगोंको ही धनके लिए प्रेरित कर अर्थात् प्रयत्न करनेवाले ही धन प्राप्त कर सकते हैं।

२१ इन्द्र अस्मे बृहत् पृथु श्रवः अक्षितं विश्वायुः धेहि (८७)- हे इन्द्र ! हमें तू महान् यश और सम्पूर्ण आयु प्रदान कर। सभी मनुष्य यशस्वी और स्वास्थ्यपूर्ण दीर्घायुवाले हों।

२२ शतक्रतो ! ब्रह्माणः त्वा वंशं इव उत् येमिरे (९१) - हे सैंकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! ज्ञानी जन तुझे बांसके समान उन्नत करते हैं।

२३ ऋघायमाणं त्वा उभे रोदसी नहि इन्वतः (९८)- शत्रुका नाश करनेवाले तेरे (इन्द्रके) सामर्थ्यको दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक भी नहीं पा सकते।

२४ नव्यं आयुः प्रसू तिर ऋषिं सहस्रसां कृधि (१०१)- हे इन्द्र ! नवीन आयु हमें दो और ज्ञानीको हजारों तरहके धनोंसे युक्त करो।

२५ शवसः पते इन्द्र ! वाजिनः ते सख्ये मा भेम, जेतारं अपराजितं त्वा प्र नोनुमः (१०४)- हे सब तरहके बलोंके स्वामी इन्द्र ! बलशाली तेरी मित्रतामें रहते हुए हम किसीसे न डरें। शत्रुओंको जीतनेवाले पर स्वयं शत्रुओंसे पराजित न होनेवाले इन्द्रको हम बारबार प्रणाम करते हैं।

२६ इन्द्रस्य रातयः पूर्वीः (१०५)- इन्द्रके दान अनेक तरहके होते हैं।

२७ यत् ई स्तोतृभ्यः मघं मंहते, ऊतयः न वि दस्यन्ति (१०५)- जो भी स्तोताओंके लिए धनका दान देते हैं, उनके लिए संरक्षण कभी कम नहीं होते।

२८ इन्द्रः पुरां भिन्दुः युवा कविः अमितौजाः विश्वस्य कर्मणः धर्ता वज्री पुरुष्टुतः (१०६)- इन्द्र शत्रुओंके नगरोंको तोडनेवाला, तरुण, ज्ञानी, अत्यन्त तेजस्वी, सभी उत्तम कर्मोंका कर्ता, वज्र धारण करनेवाला और सभीके द्वारा पूजित होता है।

२९ इन्द्र ! त्वं मायिनं शुष्णं मायाभिः अवातिरः (१०९)- हे इन्द्र ! तूने कपट करनेवाले शुष्णको कपटोंसे ही मारा। कपट करनेवाले शत्रुके साथ कपटका प्रयोग करके ही उसका पराभव करना चाहिए।

३० विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं अग्निं वृणीमहे (१११)- सब भले बुरे कर्मोंको जाननेवाले, इस यज्ञ अर्थात् समाजमें संगठनके कार्यको करनेवाले अग्रणीको हम एकमतसे अपना नेता स्वीकार करते हैं।

३१ पुरुप्रियं अग्निं विश्पतिं सदा हवन्ते (११२)- प्रजाओंके प्रिय और तेजस्वी प्रजापालक राजाकी सदा प्रशंसा होती है।

३२ अग्ने त्वं रक्षस्विनः रिषतः दह (११५)- हे अग्ने ! तू राक्षसी स्वभाववाले हिंसक शत्रुओंको जला दे।

३३ अग्निः कविः युवा जुह्वास्यः (११६)- अग्नि ज्ञानी, तरुण और तेजस्वी मुखवाला है।

३४ अग्ने ! यः त्वा दूतं सपर्यति, तस्य प्र अविता भव (११८)- हे अग्रणी ! जो दूत कर्म करनेवाले तेरी सेवा करता है, उसकी तू रक्षा करनेवाला हो।

३५ यः देववीतये अग्निं आ विवासति, पावक तस्मै मृळय (११९)- जो मनुष्य श्रेष्ठ होनेके लिए इस अग्रणीकी सेवा करता है, हे पवित्र करनेवाले अग्ने ! तू उसे सुखी कर।

३६ हे अग्ने ! (त्वं) मनुः हितः होता असि (१२६)- हे अग्ने ! तू मनुष्योंका हित करनेवाला और होता है।

३७ इळा सरस्वती मही तिस्रः देवीः मयोभुवः (१३१)- मातृभूमि, मातृसंस्कृति और मातृभाषा ये तीनों देवियां सुख देनेवाली हैं।

३८ (त्वष्टा) केवलः अस्माकं अस्तु (१३२)- वह सबका निर्माण करनेवाला प्रभु केवल हमारा ही होकर रहे।

३९ विप्र (अग्ने) ! ते धियः गृणन्ति (१३६)- हे ज्ञानी अग्ने ! तेरे ज्ञानपूर्वक कर्मोंकी सब प्रशंसा करते हैं। ज्ञानपूर्वक किए गए कर्मोंकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

४० अग्ने ! यजत्रान् ऋतावृधः पत्नीवतः कृधि (१४१)- हे अग्ने ! यज्ञ करनेवाले तथा सत्यकी वृद्धि करनेवाले मनुष्योंको तू पत्नियोंसे युक्त करता है।

४१ द्रविणोदा नः वसूनि ददातु, ता देवेषु वनामहे (१५४)- धन देनेवाला देव हमें धन प्रदान करे और हम उन धनोंको देवोंको प्रदान करें।

४२ गार्हपत्येन ऋतुना यज्ञनीः (१५८)- गृहस्थाश्रममें रहनेवाला ऋतुके अनुसार रहकर ही शुभकर्म करनेमें प्रवृत्त होता है।

४३ देवयते देवान् यज (१५८)- देवत्व पानेकी इच्छा करनेवालोंको ज्ञानियोंका सत्कार करना चाहिए।

४४ इमा धाना घृतस्नुवः (१६०)- यज्ञमें डाली जानेवाली ये लाजायें (खीलें) घीमें भीगी हुई हों।

४५ अयं स्तोमः अग्रियः हृदिस्पृक् शंतमः अस्तु (१६५)- यह स्तोत्र श्रेष्ठ, हृदयको छूनेवाला और शांति देनेवाला हो।

४६ शचीनां हि युवाकु, सुमतीनां युवाकु, वाजदाव्नां भूयाम (१७१)- हमारी शक्तियोंका संघटन हो, हमारी उत्तम बुद्धियोंमें एकता हो अर्थात् हम सभी एकमतवाले होकर चलें, ताकि हम सभी बलशालियोंमें मुख्य हों !

४७ यस्मात् ऋते विपश्चितः चन यज्ञः न सिध्यति सः धीनां योगं इन्वति (१८३)- जिसके बिना विद्वानोंका भी यज्ञ सिद्ध नहीं होता, उन उत्तम बुद्धियोंसे मनुष्य सम्पन्न हो।

४८ विश्वे देवासो अद्रुहः (१८८)- सभी देवगण कभी किसीसे द्रोह नहीं करते।

४९ सत्यमंत्राः ऋजूयवः ऋभवः पितरा पुनः युवाना अक्रत (१९८)- सत्य विचारवाले सरल स्वभावी ऋभुओंने अपने मातापिताको फिरसे तरुण बना दिया।

५० ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्षः उब्जताम् (२०७)- वे महान् और मनुष्योंके समाजोंके स्वामी इन्द्र (राजा) और अग्नि (ब्राह्मण विद्वान्) दुष्टोंको सरल स्वभाववाला बना दें।

५१ तस्य व्रतानि उश्मसि (२१४)- हम सब उस सूर्यके नियमोंका पालन करें।

५२ राधांसि दाता शुम्भति (२१६)- सिद्धियोंके प्रदाता सूर्यदेव सब प्रकाशित हो रहे हैं। उदय होता हुआ सूर्य स्वास्थ्य आदि अनेक सिद्धियोंका देनेवाला है।

५३ पृथिवि ! स्योना अनृक्षरा निवेशनी भव, सप्रथः शर्म नः यच्छ (२२३)- हे पृथ्वी ! तू सुखदायिनी, कण्टकरहित और हमारा निवास करानेवाली बन, और हमें विस्तृत सुख दे।

५४ विष्णुः इदं विचक्रमे। त्रेधा पदं नि दधे। अस्य पांसुरे समूढं (२२५)- विष्णुने यह विक्रम किया। उसने तीन प्रकारसे अपने पद रखे। पर इसका एक पद धूली प्रदेशमें (अन्तरिक्षमें) गुप्त है।

५५ अदाभ्यः गोपा विष्णुः धर्माणि धारयन् अतः त्रीणि पदा वि चक्रमे (२३६)- न दबनेवाला, सबका रक्षक विष्णु सब धर्मोंको धारण करता हुआ यहांसे तीन पद रखनेका विक्रम करता है।

५६ विष्णोः कर्माणि पश्यत, यतः व्रतानि पस्पशे, इन्द्रस्य युज्यः सखा (२२७)- विष्णुके ये कर्म देखो। उनसे ही हम अपने व्रतोंको किया करते हैं। यह विष्णु इन्द्रका सुयोग्य मित्र है।

५७ विष्णोः तत् परमं पदं दिवि आततं चक्षुः इव सूरयः सदा पश्यन्ति (२२८)- विष्णुका वह परम स्थान द्युलोकमें फैले हुए प्रकाशके समान ज्ञानी सदा देखते हैं।

५८ विष्णोः यत् परमं पदं, तत् विपन्यवः जागृवांसः विप्रासः सं इन्धते (२२९)- विष्णुका जो पद है, उसे कर्मकुशल और जाग्रत रहनेवाले ज्ञानी सम्यक् प्रकाशित हुआ देखते हैं।

५९ ता मित्रावरुणा ऋतेन ऋतावृधौ ऋतस्य ज्योतिषः पती (२३४)- ये दोनों मित्र और वरुण सरलतासे सन्मार्गकी वृद्धि करनेवाले और सन्मार्गकी ज्योतिके पालनकर्ता हैं।

६० अप्सु अन्तः अमृतं, अप्सु भेषजं, उत अपां प्रशस्तये देवाः वाजिनः भवतः (२४८)- जलके भीतर अमृत है, जलमें औषधिके गुण हैं। ऐसे जलोंकी प्रशंसा करनेके लिए, हे देवो ! तुम उत्साही बनो।

६१ सोमः मे अब्रवीत्, अप्सु अन्तः विश्वानि भेषजा, विश्वशंभुवं अग्निं, विश्वभेषजीः आपः च (२४९)- सोमने मुझसे कहा कि जलोंके अन्दर सब औषधियां हैं, सबको सुख देनेवाला अग्नि है और जल सब तरहकी दवाइयां देता है।

६२ आपः! मम तन्वे वरूथं भेषजं पृणीत, ज्योक् च सूर्यं दृशे (२५०)- हे जलो ! मेरे शरीरके लिए संरक्षक औषधि दो, जिससे निरोग होकर मैं बहुत कालतक सूर्यको देखूं।

६३ मयि यत् किं च दुरितं, यत् वा अहं अभि दुद्रोह यत् वा शेपे उत अनृतं इदं आपः प्र वहत (२५१)- मुझमें जो दोष हो, जो मैंने द्रोह किया हो, जो असत्य भाषण किया हो, ये सब दोष ये जल मेरे शरीरसे बाहर बहाकर ले आवें और मै शुद्ध बन जाऊं।

६४ सः (अग्निः) नः मह्यै अदितये पुनः दात् पितरं मातरं च दृशेयं (२५५)- वह अग्नि मुझ बडी अदितिके पास पुनः दे, ताकि मैं पिता और माताको देख सकूं।

६५ पतयन्तः अमी वयः चन ते क्षत्रं न हि आपुः, सहः न, मन्युं न (२५९)- हे वरुण देव ! ये उडनेवाले पक्षी तेरे पराक्रमका अन्त नहीं पा सकते, तेरा बल तथा उत्साह भी नहीं प्राप्त कर सकते।

६६ अनिमिषं चरन्तीः इमाः आपः न, ये वातस्य अभ्वं प्रमिनंति न (२५९)-हमेशा चलनेवाले ये जल-प्रवाह भी तेरी गतिको नहीं जान सकते और जो वायुके वेगको रोकते हैं, वे भी तेरे सामर्थ्यको नहीं लांघ सकते हैं।

६७ पूतदक्षः राजा वरुणः वनस्य स्तूपं अबुध्ने ऊर्ध्वं ददते (२६०)- पवित्र कार्य करनेके लिए अपने बलका उपयोग करनेवाला राजा वरुण वनके स्तंभको आधार रहित आकाशमें ऊपर ही ऊपर धारण करता है। अर्थात् जलके आधारभूत सूर्यको ऊपर आकाशमें स्थिर करता है।

६८ नीचीनाः स्थुः एषां बुध्नः उपरि, अस्मे अन्तः केतवः निहिताः स्युः (२६)- इस सूर्यकी शाखायें नीचेकी ओर हैं, और मूल ऊपर द्युलोकमें हैं, द्यु और पृथ्वीके मध्यमें किरणें फैली रहती हैं।

६९ राजा वरुणः सूर्याय पन्थां अनु- एतवै उ उरुं चकार हि (२६१)- राजा वरुणने सूर्यके मार्गको उसके गमनके लिए विस्तृत बनाया।

७० अपदे पादा प्रतिधातवे अकः (२६१)- स्थानरहित अन्तरिक्षमें पांव रखनेके लिए उस वरुणने स्थान भी बना दिया।

७१ अमी ऋक्षाः उच्चा निहितासः ये नक्तं ददृश्रे, दिवाकशात् चन्द्रमा नक्तं एति, वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि (२६३)- ये नक्षत्र ऊपर आकाशमें उच्च भागमें रखे हुए हैं, ये रात्रीके समय दीखते हैं। विशेष रूपसे चमकता हुआ चन्द्रमा रात्रिमें आता है, वरुण राजाके ये सभी नियम अटूट हैं।

७२ उरुशंस वरुण ! अहेळमानः बोधि, नः आयुः मा प्रमोषीः (२६४)- हे बहुतों द्वारा प्रशंसित देव वरुण ! क्रोधित न होता हुआ तू हमारी प्रार्थना सुन, हमारी आयुको मत घटा।

७३ राजन् वरुण ! ते हेळः नमोभिः अव, कृतानि एनांसि शिश्रथः (२६७)- हे तेजस्वी वरुण ! तेरे क्रोधको हम अपने नमस्कारोंसे दूर करते हैं, तू हमारे लिए पापोंको शिथिल करके विनष्ट कर।

७४ वरुण ! उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय, अधमं अव श्रथाय, मध्यमं वि श्रथाय, आदित्य ! अथ वयं तव व्रते अनागसः स्याम (२६८)- हे वरुण ! हमारे सत्त्वगुणरूपी उत्तम पाशको ढीला करो, तमोगुणरूपी अधम पाशको ढीला करो, तथा रजोगुणरूपी मध्यम पाशको ढीला करो। हे अदितिपुत्र वरुण ! हम तुम्हारे व्रतमें रहते हुए पापरहित हों।

७५ जिहीळानस्य हत्नवे वधाय नः मा रीरधः (२७०)- अपना निरादर करनेवालेका वध करनेके लिए ऊपर उठाये हुए अस्त्रसे हमारी हिंसा मत कर।

७६ दाशुषे सद्यः क्षरसि (३०५)-हे देव ! दाताको तुम तत्काल धन देते हो।

७७ अग्ने ! पृत्सु यं मर्त्यं अवाः, यं वाजेषु जुनाः, सः शश्वतीः इषः यन्ता (३०६)-हे अग्निदेव ! युद्धमें जिस मनुष्यकी तुम रक्षा करते हो, जिसको तुम रणोंमें जानेके लिए उत्साहित करते हो, वह शाश्वत अन्नोंका नियामक होता है।

७८ शूर ! त्या अरातयः ससन्तु, रातयः बोधन्तु (३२५)– हे शूरवीर ! हमारे वे शत्रु सोये रहें, और मित्र जागते रहें ।

७९ दस्रौ अश्विना ! वां रथः समानयोजनः अमर्त्यः हि समुद्रे ईयते (३४६)– हे शत्रुनाशको अश्विदेवो ! तुम दोनोंका एक साथ जोते जानेवाला रथ विनाशरहित है, जो समुद्रमें चलता है ।

८० अग्ने ! त्वं प्रथमः अंगिराः ऋषिः अभवः, देवानां देवः शिवः सखा अभवः (३५१)– हे अग्ने ! तू सबसे पहला अंगिरा नामक ऋषि हुआ था, तू देवोंका देव और कल्याणकारक मित्र हुआ ।

८१ विभुः विश्वस्मै भुवनाय मेधिरः (३५२)– व्यापक यह अग्नि सभी प्राणियोंको बुद्धि प्रदान करनेवाला है ।

८२ सुक्रतूया विवस्वते आविर्भव, रोदसी अरेजेतां (३५३)– उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे युक्त होकर यह अग्निदेव मनुष्योंके हितके लिए प्रकट हुआ । इसके डरसे दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक कांपते हैं ।

८३ अग्ने ! त्वं मनवे द्यां अवाशयः (३५४)– हे अग्ने ! तूने मनुष्योंके हितके लिए आकाशको शब्दगुण युक्त बनाया ।

८४ अग्ने ! त्वं वृषभः पुष्टिवर्धनः, एकायुः विशः आ विवासयसि (३५५)- हे अग्ने ! तू बडा बलिष्ठ और पुष्टि देकर सबको बढानेवाला है । पूर्णायु देकर मनुष्योंको बसाता है ।

८५ त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् विदथे पिपर्षि, शूरसातौ दभ्रेभिः चित् भूयसः हंसि (३५६) – हे अग्ने ! तू कुमार्गगामी मनुष्यको भी अपने साथ रहने पर युद्धमें सहायता करता है और शूरवीरोंके युद्धमें थोडेसे वीरोंको लेकर भी बहुतसे शत्रुओंको मार देता है ।

८६ अग्ने ! त्वं तं मर्तं उत्तमे अमृतत्वे दधासि (३५७)– हे अग्ने ! तुम इस उत्तम मनुष्यको अमरत्व प्रदान करते हो ।

८७ अग्ने ! त्वं धनानां सनये नः यशसं कारुं कृणुहि (३५८)– हे अग्ने ! तू धनोंके दानके लिए हमें यश देनेवाली कारीगरीकी विद्या प्रदान कर ।

८८ अनवद्य ! देवः देवेषु जागृविः (३५९)– हे निन्दाके अयोग्य अग्ने ! तेजस्वी तू देवोंमें हमेशा जागता रहता है ।

८९ व्रतपां सुवीरं सहस्रिणः रायः यन्ति (३६०) – नियमके पालन करनेवाले तथा उत्तम पुत्रवाले मनुष्यको अनेक प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ।

९० त्वां देवाः प्रथमं आयुं नहुषस्य विश्पतिं अकृण्वन्, मनुषस्य शासनीं इळां अकृण्वन् । यत् ममकस्य पितुः पुत्रः जायते (३६१) - हे अग्ने ! तुझे देवोंने प्रथम आयु दी, पश्चात् उन्होंने मानवोंके लिए प्रजापालक राजाका निर्माण किया । तब मनुष्योंकी व्यवस्थाके लिए धर्मनीतिका निर्माण किया, जैसे पितासे ममत्वरूप पुत्रका जन्म होता है, वैसे ही आत्मीयतासे राजा प्रजाका पुत्रवत् पालन करे ।

९१ देव अग्ने ! त्वं तव पायुभिः मघोनः नः तन्वः च रक्ष (३६२)- तू अपनी संरक्षणशक्तिसे हमें धनवान् बनाकर हमारे शरीरोंकी सुरक्षा कर ।

९२ हे अग्ने ! त्वं यज्यवे पायुः (३६३)- हे अग्ने ! तू यज्ञ करनेवालेका संरक्षक है ।

९३ अवृकाय धायसे रातहव्यः (३६३)- किसीकी हिंसा न करनेवाले और दूसरोंके पोषण करनेवालेको तू अन्न देता है ।

९४ अग्ने ! त्वं उरुशंसाय वाघते स्पार्हं परमं यत् रेक्णः तत् वनोषि (३६४)- तू श्रद्धासे स्तुति करनेवाले भक्तको उत्तम और श्रेष्ठ धन प्रदान करता है ।

९५ आध्रस्य चित् प्रमतिः पिता उच्यसे (३६४) हे अग्ने ! दुर्बलको भी उत्तम बुद्धि प्रदान करनेके कारण तुझे सब पिता कहते हैं ।

९६ विदुष्टरः दिशः प्रशास्सि (३६४)- यह अग्रणी अज्ञानियोंको ज्ञान और उन्नतिकी दिशा दिखाता है ।

९७ अग्ने ! त्वं प्रयतदक्षिणं नरं विश्वतः परि पासि (३६५)- हे अग्ने ! तू प्रयत्नसे उत्तम कर्म करनेवालेके लिए जो योग्य दक्षिणा देता है, उस मनुष्यको तू हरतरहसे रक्षा करता है ।

९८ स्वादुक्षद्मा वसतौ स्योनकृत्, यः जीवयाजं यजते स दिवः उपमा (३६५)- जिस घरमें अतिथियोंके लिए हमेशा स्वादिष्ट पदार्थ तैय्यार रहते हैं, तथा जीवोंके हितके लिए यज्ञ किया जाता है, वह घर स्वर्गकी उपमाके योग्य है ।

९९ सोम्यानां मर्त्यानां पिता असि (३६६)- हे अग्ने ! तू शान्त और अकुटिल स्वभाववालोंका पालक है ।

१०० वज्री यानि प्रथमानि वीर्याणि चकार इन्द्रस्य नु प्र वोचं (३६९)- वज्रधारी इन्द्रने जो पहले पराक्रम किए थे, इन्द्रके उन्हीं पराक्रमोंका हम वर्णन करते हैं।

१०१ अहिं अहन्, अनु अपः ततर्द, पर्वतानां वक्षणा प्र अभिनत् (३६९) - इन्द्रने अहि असुरका वध किया, पश्चात् जल-प्रवाहोंको मुक्त किया, और पर्वतोंमेंसे नदियोंका मार्ग खोलकर विशाल किया।

१०२ इन्द्र ! यत् अहीनां प्रथमजां अहन् आत् मायिनां मायाः प्र अमिनाः (३७२)- हे इन्द्र ! जब तूने अहियोंमेंसे प्रमुख वीरका नाश किया, तब कपटियोंके कपट-पूर्ण षड्यंत्रका भी नाश किया।

१०३ आत् द्यां उषासं सूर्यं जनयन् तादीत्ना शत्रुं न विविस्से किल (३७२)- पश्चात् आकाशमें उषा और सूर्यको प्रकट किया, तब तुम्हारे (इस इन्द्रके) लिए कोई भी शत्रु निस्सन्देह नहीं रहा।

१०४ इन्द्रः महता वधेन वज्रेण वृत्रतरं वृत्रं अहन् (३७३)- इन्द्रने बडे घातक शस्त्रसे बडे घेरनेवाले वृत्रका वध किया।

१०५ दुर्मदः अयोद्धा इव महावीरं तुविबाधं ऋजीषं आ जुह्वे हि अस्य वधानां समृतिं न अतारीत् (३७४) - महा घमण्डी और अपनेको अप्रतिम योद्धा समझनेवाले वृत्रने महावीर और बहुतसे शत्रुओंका प्रतिबन्ध करनेवाले शत्रुनाशक इन्द्रको आह्वान देकर युद्धके लिए बुलाया, पर बादमें इस इन्द्रके आघातोंका सामना वह नहीं कर सका।

१०६ इन्द्र ! अहन्तुः ते हृदि यत् भीः अगच्छत् अहेः यातारं कं अपश्यः (३८२)- हे इन्द्र ! वृत्रका वध करते समय तुम्हारे हृदयमें यदि भय उत्पन्न हो जाता, तब तुमने अहिका वध करनेके लिए किस दूसरे वीरको देखा होता अर्थात् तुम्हें छोडकर कोई दूसरा वीर मिलना संभव ही नहीं था।

१०७ सर्वसेनः इषुधीन् नि असक्त (३८६)- सब सेनाओंका सेनापति इन्द्र तरकसोंको अपने पीठ पर धारण करता है।

१०८ प्रवृद्ध ! अस्मत् अधि पणिः मा भूः (३८६) - हे श्रेष्ठ इन्द्र ! तू हमें धन देनेके बारेमें बनियों जैसा व्यवहार मत कर अर्थात् धन देनेमें कंजूसी मत कर।

१०९ अ-यज्वानः सनकाः प्र-इतिं ईयुः (३८७) - यज्ञ न करनेवाले दानव मृत्युको ही प्राप्त होते हैं।

११० यज्वभिः स्पर्धमानाः अयज्वानः परा चित् ववृजुः (३८८)- यज्ञ करनेवालोंके साथ शत्रुता करनेवाले अयज्ञशील जन परास्त होकर दूर भाग गए।

१११ मनीषिभिः अभ्यायं सेन्या भवतं (३९९)- मननशील लोगोंको तुम दोनों, हे अश्विनौ ! सहज हीसे प्राप्त होते रहो।

११२ कृष्णेन रजसा वर्तमानः अमृतं मर्त्यं च निवेशयन् सविता देवः भुवनानि पश्यन् हिरण्ययेन रथेन आ याति (४१२)- अन्धकारसे युक्त अन्तरिक्ष-लोकमेंसे परिभ्रमण करनेवाले अमर्त्य और मर्त्यको विश्राम देनेवाले सविता देव सब भुवनोंको देखते हुए सुवर्णके रथसे आते हैं।

११३ सविता देवः विश्वा दुरिता अपबाधमानः परावतः आ याति (४१३)- ये सविता देव सब पापों या दुष्टभावोंको दूर करते हुए दूर देशसे आते हैं।

११४ द्यावः तिस्रः द्वा सवितुः उपस्था, एका यमस्य भुवने विराषाट् (४१६)- तीन दिव्य लोक हैं, उनमेंसे दो लोक सवितादेवके पास हैं और एक अर्थात् तीसरालोक यमके भुवनमें वीरोंके लिए रहनेका स्थान देता है।

११५ जनासः सहोवृधं अग्निं दधिरे (४२३)- लोग बल बढानेवाली इस अग्निको धारण करते हैं। यह अग्नि शारीरिक शक्तियोंको बढाती है, अंगोंमें रसका संचार करती है।

११६ इह सुमनाः अविता (४२३)- यहां उत्तम मनवाला ही संरक्षक हो। रक्षा करनेवाला उत्तम मन-वाला ही हो।

११७ महः सतः अर्चयः विचरन्ति, भानवः दिवि स्पृशन्ति (४२४)- जो महात्मा सत्यनिष्ठ होते हैं, उनका तेज चारों ओर फैलता है और उनका तेज आकाश तक पहुंचता है।

११८ यः मर्त्यः ददाश स विश्वं धनं जयति (४२४) - जो मनुष्य दान करता है, वह धन प्राप्त करता है।

११९ सुमनाः सुवीर्यान् देवान् यक्षि (४२७)- उत्तम मनसे वीरों और विद्वानोंकी पूजा करनी चाहिए।

१२० नमस्विनः स्वराजं उपासते (४२८)- शस्त्र-धारी पुरुष ही स्वराज्यकी उपासना कर सकते हैं।

१२१ यविष्ठ्य ! राक्षसः, अराव्णः, धूर्तेः रिषतः जिघांसतः नः पाहि (४३६)- राक्षसों, कंजूसों, धूर्तों घातकों और हिंसकोंसे हमें बचाओ।

१२२ यः अस्म-ध्रुक् मर्त्यः अक्तुभिः अति शिशीते सः रिपुः नः मा ईशात (४३७)- जो द्रोह करनेवाला हमारा शत्रु हमारे घातका विचार करता है, वह कभी हम पर शासन न करे।

१२३ अग्निः सुवीर्यं वष्टे, सौभगं, मित्रा प्रावत् (४३८)- अग्निदेव उत्तम पराक्रम करता है, सौभाग्य देता है और मित्रोंकी रक्षा करता है।

१२४ अग्ने ! ज्योतिः त्वां शश्वते जनाय मनुः नि दधे (४४०)- हे अग्ने ! ज्योतिस्वरूप तुझको शाश्वत-कालसे मानवोंके हितके लिए मनुने स्थापित किया।

१२५ अग्नेः अर्चयः त्वेषासः अमवन्तः भीमासः प्रति ईतये न (४४१) - अग्निकी ज्वालायें प्रकाशित, बलशाली और भयंकर हैं, इसलिए इनका विरोध नहीं किया जा सकता।

१२६ नरः दिवः च ग्मः चः धूतयः (४४७)- नेतृत्व गुणसे सम्पन्न मरुद्गण द्युलोकको एवं भूलोकको भी कंपित कर देते हैं।

१२७ वः वर्षिष्ठः कः (४४७)- हे मरुतो ! तुम्हारी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और दूसरा कौन है, अर्थात् कोई नहीं।

१२८ एषां जानं स्थिरं हि (४५०)- इन वीर मरुतोंकी जन्मभूमि सचमुच अटल है अर्थात् इनकी जन्मभूमि पर कोई शत्रु आक्रमण नहीं कर सकता।

१२९ पृश्निमातरः मर्तासः स्तोता अमृतः स्यात् (४६०)- मातृभूमिको ही अपनी माता माननेवाला स्तोता अमर होता है।

१३० जरिता अजोष्यः मा भूत्, यमस्य पथा मा उप गात् (४६१)- अग्निकी स्तुति करनेवाला अप्रिय और यमलोककी राह पर न चले।

१३१ दुर्हणा निर्ऋतिः नः मा सु वधीत् (४६२)- विनाश करनेमें बहुत ही कठिन यह दुर्दशा हमारा विनाश न करे।

१३२ वः आयुधाः पराणुदे स्थिरा उत प्रतिष्कभे वीळू सन्तु। युष्माकं तविषी पनीयसी अस्तु मायिनः मर्त्यस्य मा (४७३) - तुम्हारे हथियार शत्रुदलको हटानेके लिए अटल तथा सुदृढ रहें और शत्रुओंकी राहमें रुकावट खडी करनेके लिए भी अत्यधिक बलयुक्त एवं शक्तिसम्पन्न हों। तुम्हारी शक्ति या सामर्थ्य अतीव प्रशंसनीय हो, कपटी लोगोंका बल न बढे।

१३३ रिशादसः ! अधि द्यवि वः शत्रुः नहि विविदे, भूम्यां न (४७५)- हे शत्रुको खा जानेवाले वीरो ! द्युलोकमें तो तुम्हारा शत्रु नहीं पाया जाता और भूमंडल पर भी नहीं दीखता।

१३४ सर्वया विशा प्र आरत (४७६)- हे मरुतो ! तुम समूची जनताके साथ मिलकर प्रगति करते चलो।

१३५ ऋषिद्विषे परिमन्यवे द्विषं सृजत (४८१)- ऋषियोंसे द्वेष करनेवाले क्रोध करनेवाले शत्रु पर दूसरे शत्रुको छोड देना चाहिए अर्थात् उसे किसी दूसरे शत्रुसे भिडा देना चाहिए।

१३६ यो वाघते सूनरं वसु ददाति सः आक्षिति श्रवः धत्ते (४८५)- जो यज्ञकर्ताको उत्तम धन देता है वह अक्षय यश प्राप्त करता है।

१३७ इमां वाचं प्रतिहर्यथ विश्वा इत् वामा अश्नवत् (४८७)- जो वेदरूपी वाणीकी प्रशंसा करता और तदनुसार आचरण करता है, वह सभी तरहके सुन्दर सुख प्राप्त करता है।

१३८ ब्रह्मणस्पतिः क्षत्रं उप पृंचीत, राजभिः हन्ति भये चित् सुक्षितिं दधे (४८९) - ज्ञानका स्वामी ब्रह्मणस्पति क्षात्र बलका संचय करता है और राजाओंकी सहायतासे वह शत्रुओंको मारता है, महाभयके उपस्थित होनेपर भी यह उत्तम धैर्यको धारण करता है।

१३९ प्रचेतसः वरुणः मित्रः अर्यमा यं रक्षन्ति, सः जनः नू चित् दभ्यते (४९०)- उत्तम ज्ञानी, तरुण मित्र और अर्यमा जिसकी रक्षा करते हैं, उस मानवको भला कौन दबा सकता है ?

१४० यं पान्ति सः अरिष्टः एधते (४९१)- ज्ञानी जिस मानवको हिंसक शत्रुसे बचाते हैं, वह सब प्रकारसे अहिंसित होता हुआ बढता है।

१४१ ऋतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः च (४९३) - सत्यके मार्गसे जानेवालेके लिए इस विश्वमें सुगम और कण्टकरहित मार्ग मिलता है।

१४२ देवयन्तं घ्नन्तं शपन्तं मा प्रति वोचे (४९७)- देवत्वको पानेकी इच्छा करनेवाले सज्जनकी हिंसा करनेवाले अथवा उसको गाली देनेवाला भी हमारे साथ बात न करे।

१४३ सुम्नैः इत् वः आ विवासे (४९७)- शुभ संकल्पोंके द्वारा ही हम सबको तृप्त करें।

१४४ दुरुक्ताय न स्पृहयेत् (४९८)– दुष्ट भाषण करनेकी इच्छा कोई न करे।

१४५ चतुरः ददमानात् आ निधातोः बिभीयात् (४९८) - चारों पुरुषार्थोंको धारण करनेवाले मनुष्यसे विरोध करनेसे मनुष्य डरे।

१४६ देव ! अंहः वि नः पुरः प्र सक्षत्र (४९९)- हे देव ! हमें पापसे पार कराकर उन्नतिके मार्ग पर आगे बढावो।

१४७ यः अघः वृकः दुःशेवः नः आदिदेशति, तं पथः अप जहि (५००)– जो पापी क्रूर और सेवाके अयोग्य दुष्ट हमें अपनी आज्ञामें चलाना चाहता हो, उसे मार्गसे दूर करो।

१४८ सश्चतः नः अति नय, नः सुगा सुपथा कृणु (५०५)- बाधा या कष्ट देनेवाले दुष्टोंसे हमें पार ले जाओ, हमें उत्तम मार्गसे ले चलो।

१४९ पूषन् सु यवसं अभि नय (५०६)– हे पोषक देव ! उत्तम जौवाले प्रदेशमें हमें ले चलो।

१५० सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि (५१९)- उत्तम वीर्य सामर्थ्य और अन्न हमें दो।

१५१ त्रातारं अहं स्तविष्यामि (५२२)– रक्षककी मैं प्रशंसा करता हूँ। जो वीर निर्बलोंकी रक्षा करता है, उसकी प्रशंसा होनी ही चाहिए।

१५२ दैव्यं जनं नमस्य (५२३)– दिव्य अर्थात् उत्तम गुणवालोंकी हमेशा पूजा करनी चाहिए।

१५३ विश्ववेदसं विशः सं-इन्धते (५२४)– सर्वज्ञ इस अग्निको सब प्रजायें प्रदीप्त करती हैं।

१५४ उषर्बुधः स्वर्दृशः देवान् (५२६)– उषःकालमें जागनेवाले तथा आत्मसाक्षात्कारी ज्ञानियोंको " देव " कहते हैं।

१५५ ग्रामेषु अविता असि (५२७)– यह अग्रणी नेता अपने ग्रामका रक्षक होता है। हर अग्रणी नेताको अपने अपने ग्रामकी रक्षा करनी चाहिए।

१५६ जनं यज (५३२)- मनुष्यमात्रके हितके लिए यज्ञ करना चाहिए।

१५७ विचेतसः देवाः दाशुष श्रुष्टिवानो हि (५३३)– विशेष ज्ञानसम्पन्न देव दाताको उत्तम फल देते ही हैं।

१५८ पारं एतवे ऋतस्य पन्थाः साधुया (५५२) – दुःखसे पार होनेके लिए सत्यका मार्ग ही सर्वोत्तम मार्ग है।

१५९ ऋतावृधा युवं याभिः अभिष्टिभिः कण्वं प्र अवतं, ताभिः अस्मान् सु अवतं (५६१)– हे ऋतको बढानेवाले अश्विनी देवो ! तुम दोनोंने जिन शक्तियोंसे कण्वकी अच्छी तरह रक्षा की थी, उन्हीं शक्तियोंसे हमारी भी भली प्रकार रक्षा करो।

१६० ये सूरयः मनः दानाय प्र युंजते, एषां नृणां कण्वः कण्वतमः (५७०) - जो विद्वान् अपना मन धनादिके दान करनमें लगा देते हैं, उन मनुष्योंमें कण्व सबसे अधिक बुद्धिमान् है।

१६१ उषाः सूनरी योषा इव प्रभुंजती, पद्वत् ईयते, पक्षिणः उत्पातयति (५७१)– यह उषा उत्तम गृहिणी स्त्रीके समान विशेष रीतिसे सबका पालन करती है, पांवव लोंको चलाती और पक्षियोंको उडाती है।

१६२ ओदती समनं विसृजति, अर्थिनः वि पदं न वेति (५७२)- जीवन देनेवाली यह उषा मननशील पुरुषोंको कार्य करनेके लिए प्रेरित करती है, धन पानेकी इच्छावालोंको प्रेरित करती है और यह स्वयं भी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहती।

१६३ मघोनी दिवः दुहिता उषाः स्रिधः द्वेषः अप उच्छत् (५७४)– ऐश्वर्यवाली स्वर्गीय कन्या यह उषा हिंसक शत्रुओंको दूर करती है।

१६४ सू-नरी ज्योतिः कृणोति, अस्याः चक्षसे नानाम (५७४)– यह उत्तम संचालन करनेवाली उषा प्रकाश करती है, इसलिए सब जगत् इस उषाको देखते ही नमस्कार करता है।

१६५ उत्तमं ज्योतिः देवत्रा देवं सूर्यं उत् अगन्म (५९६)- हम अत्यन्त श्रेष्ठ ज्योति और देवोंमें भी सर्वश्रेष्ठ देव सूर्यको प्राप्त करें।

१६६ सूर्य ! अद्य उद्यन् मम हृद्रोगं हरिमाणं च नाशय (५९७)– आज उदय होते हुए मेरे हृदयके रोग अर्थात् क्षय आदि तथा पीलिया आदि रोगोंको नष्ट कर।

१६७ द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् आदित्यः विश्वेन सहसा सह उत् अगात् (५९९)– द्वेष करनेवाले शत्रुओंको हमारे अधिकारमें करता हुआ यह सूर्य अपने सम्पूर्ण तेजके साथ उदय हो गया है।

१६८ यस्य मानुषाः वि चरन्ति, त्यं इन्द्रं गीर्भिः मदत (६००)- जिसके गुप्तचर सब जगह घूमते हैं, ऐसे उस इन्द्रको स्तुतियोंसे आनंदित करो।

१६९ त्वं अंगिरोभ्यः गोत्रं अप वृणाः (६०२) हे इन्द्र ! तूने अंगिराओंके लिए गौसमूहको बाहर निकाला ।

१७० शतदुरेषु अत्रये गातुवित् (६०२)– संकडों द्वारवाले भवनमें कैद किए गए अत्रिके लिए मार्गको ढूंढा ।

१७१ अद्रिं नर्तयन् आजौ वावसानस्य (६०२)– वज्रको नचाते हुए संग्राममें स्थित लोगोंकी रक्षा की ।

१७२ इन्द्र ! यत् शवसा वृत्रं अहिं अवधीः, आत् इत् दृशे सूर्यं दिवि आरोहयः (६०३)- हे इन्द्र ! जब तूने बलसे आच्छादन करनेवाले अहिको मारा, उसके बाद ही देखनेके लिए सूर्यको द्युलोकमें चढाया. अर्थात् जब बादल हट गए, तो सूर्य चमका ।

१७३ ये स्वधाभिः जुह्वौ अधि अजुव्हत, मायिनः त्वं मायाभिः अप अधमः (६०४) – जो अन्न आदिका अपने मुंहमें ही हवन करते हैं अर्थात् अपने लिए ही जो अन्नादि पकाते हैं, उन मायावियोंको तू मायाओंसे ही मार ।

१७४ त्वं शुष्णहत्येषु कुत्सं आ विथ (६०५)– हे इन्द्र ! तूने शुष्णासुरको मारनेवाले युद्धमें कुत्स अर्थात् समाजमेंसे बुराइयोंको दूर करनेवाले मनुष्यकी रक्षा की ।

१७५ अतिथिग्वाय शम्बरं अरन्धयः (६०५)– तूने अतिथिग्व अर्थात् अतिथियोंका सत्कार करनेवाले सज्जनके लिए शम्बरको मारा ।

१७६ सनात् एव दस्युहत्याय जज्ञिषे (६०५) – हे इन्द्र ! प्राचीनकालसे ही तू असुरोंको मारनेके लिए पैदा हुआ है ।

१७७ त्वे विश्वा तविषी सध्र्यक् हिता (६०६)– हे इन्द्र ! तुझमें सब बल एक साथ स्थित हैं ।

१७८ आर्यान् विजानीहि, ये च दस्यवः, अव्रतान् शासत् बर्हिष्मते रन्धय (६०७) – हे इन्द्र ! तू आर्योंको जान और जो राक्षस हैं, उन्हें भी जान, व्रतहीनों पर शासन करते हुए उन्हें यज्ञकर्ताओंके लिए नष्ट कर ।

१७९ इन्द्रः अनुव्रताय अपव्रताय रन्धयत् ६०८) – इन्द्र व्रत करनेवालोंके लिए व्रतहीनोंका नाश करता है ।

१८० आभूभिः अनाभुवः श्नथयन् (६०८)– यह इन्द्र मातृभूमिके भक्तोंके द्वारा देशद्रोहियोंको नष्ट करवाता है ।

१८१ यत् उशना सहसा ते सहः तक्षत्, शवः मज्मना रोदसी वि बाधते (६०९)– जब उशना ऋषिने अपने बलसे तेरे बलको तीक्ष्ण किया, तो तेरे बलने अपनी तीक्ष्णतासे द्युलोक और पृथ्वीलोकको डराया ।

१८२ इन्द्रः यत् मन्दिष्ट वंकू वंकुतर अधि तिष्ठति (६१०)– यह इन्द्र जब आनंदित होता है, तब अत्यन्त कुटिल शत्रुपर भी शासन करता है ।

१८३ अनवाणं श्लोकं आरोहसे (६११)– यह इन्द्र अपने कर्मोंके कारण स्थिर यशको प्राप्त होता है ।

१८४ इन्द्रः सुध्यः निरेके अश्रायि (६१३)– इन्द्र उत्तम बुद्धिवालोंकी दारिद्र्यमें सहायता करता है ।

१८५ इन्द्रः रायः क्षयति (६१३)– इन्द्र सब धनों पर शासन करता है ।

१८६ अस्मिन् वृजने सर्ववीराः तव (इन्द्रस्य) शर्मन् स्याम (६१४)– इस संग्राममें हम सब वीरोंके साथ तेरे अर्थात् इन्द्रके आश्रयमें रहें ।

१८७ धरुणेषु पर्वतः न, स तविषीषु अच्युतः (६१६)– जिस प्रकार जलप्रवाहोंमें पर्वत स्थिर रहता है, उसीप्रकार यह इन्द्र संग्रामोंमें स्थिर रहता है ।

१८८ स हि द्विरिषु द्वरः, (मित्रेभ्यः) चन्द्रबुध्नः (६१७)– वह इन्द्र शत्रुओंका कट्टर शत्रु है, पर मित्रोंके लिए चन्द्रके समान आल्हादकारक है ।

१८९ अपः वृत्वीः रजसः बुध्नं आशयत्, प्रवणे इन्द्र दुर्गृभिश्वनः वृत्रस्य हन्वोः तन्यतुं निजघन्थ, ईं परि घृणा चरति, शवः तित्विषे (६२०)– जब वृत्र जलोंको रोककर अन्तरिक्षके मूलमें सो गया था, तब जलोंको बहानेके लिए, हे इन्द्र ! तूने मुश्किलसे मारे जानेवाले वृत्रकी ठोढी पर वज्रको मारा, तब इस इन्द्रका तेज चारों ओर फैल गया और इसका बल सर्वत्र प्रकाशित हुआ ।

१९० त्वष्टा चित् ते युज्यं शवः वावृधे, अभिभूति ओजसं वज्रं ततक्ष (६२१)– त्वष्टाने भी तेरे योग्य बलको बढाया और शत्रुको हरानेमें समर्थ वज्र तीक्ष्ण किया ।

१९१ यत् इन्द्र शवसा रोदसी बद्बधानस्य वृत्रस्य शिरः अभिनत्, अमवान् द्यौः चित् अहेः स्वनात् भियसा अयोयवीत् (६२४)– जब, हे इन्द्र ! तूने बलसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको पीडित करनेवाले वृत्रके सिरको काट डाला, तब बलवान् द्युलोक भी वृत्रके चिल्लाहटको सुनकर कांपने लगा ।

१९२ इन्द्र ! यदा इत् पृथिवी दशभुजिः कृष्टयः विश्वा अहानि ततनन्त, ते सहः अत्राह विश्रुतं शवसा बर्हणा द्यां अनु भुवत् (६२५)– हे इन्द्र ! जब पृथ्वी दसगुनी हो जाए और मनुष्य सम्पूर्ण दिनोंको विस्तृत

कर दें, तब तेरा बल इनमें समा सकता है, तथा तेरे बल और पराक्रमसे द्युलोक भी पूर्ण हो जाए।

१९३ धृषन्मनः ओजसः प्रतिमानं (६२६)– हे शत्रुओंको मारनेकी इच्छावाले इन्द्र! तू बलकी साक्षात् मूर्ति है।

१९४ त्वं पृथिव्याः भुवः प्रतिमानं (६२७)– तू विस्तृत भूमिकी प्रतिमा है।

१९५ ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिः (६२७)– यह इन्द्र महान् वीरोंसे युक्त द्यौका भी स्वामी है।

१९६ महित्वा विश्वं अन्तरिक्षं आ प्रा (६२७)– तू अपने यशसे सम्पूर्ण अन्तरिक्षको पूर्ण करता है।

१९७ सत्यं अद्धा त्वावान् अन्यः न किः (६२७)– यह सत्य है कि तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है।

१९८ यस्य व्यचः द्यावापृथिवी न अनु (६२८) – जिसके विस्तारको द्युलोक और पृथ्वीलोक भी न पा सके।

१९९ रजसः सिन्धवः अन्तं न आनशुः (६२८) – लोक तथा नदियां भी इस इन्द्रके अन्तको न पा सकीं।

२०० एकः अन्यत् विश्वं चकृषे (६२८)- यह अकेला ही विश्वको बनाता है।

२०१ द्रविणोदेषु दुस्तुतिः न शस्यते (६३०)– धन देनेवालोंकी निन्दा करना ठीक नहीं।

२०२ वसुनः इनः, शिक्षानरः, प्र दिवः, सखिभ्यः सखा (६३१) - यह इन्द्र धनका स्वामी है, वह दानियोंका नेता है, विशेष तेजस्वी है, वह मित्रोंके लिए मित्र है।

२०३ अभितः वसु तव इत् (६३२)– चारों ओरका धन इसी इन्द्रका है।

२०४ गोभिः अश्विना अमतिं निरुन्धानः सुमनाः (६३३) - इन्द्र! गायों और घोडोंसे हमारी दरिद्रताको रोकते हुए उत्तम मनवाला हो।

२०५ वृत्रहत्येषु दश सहस्राणि वृत्राणि अ-प्रति निबर्हय (६३५)– इस इन्द्रने युद्धोंमें दस हजार असुरोंको पीछे न हटते हुए मारा।

२०६ सख्या परावति नमुचिं नि बर्हयः (६३६) - अपने मित्र वज्रसे दूर देशमें नमुचिको मारा।

२०७ वृषा वृषत्वा वृषभः (६४२)- यह बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे ही बलवान् है।

२०८ सः हि बृहत् श्रवा असु-रः, बर्हणा वृषभः (६४३)– यह इन्द्र महान् यशवाला, प्राणोंका दाता, शत्रुओंको मारनेवाला तथा बलवान् है।

×

२०९ मायिनः व्रन्दिनः धृषत् शितां गभस्तिं अशनिं पृतन्यसि (६४४)– असुरके सैन्यसमूहको मारते हुए तीक्ष्ण किए गए हाथमें पकडे हुए वज्रको उन पर मारता है।

२१० रोरुवत् व्रन्दिनः चित् श्वसनस्य शुष्णस्य मूर्धनि वना नि वृणक्षि (६४५) - गर्जते हुए इन्द्रने सेनाओंके होते हुए भी लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले शुष्णके सिर पर शस्त्रास्त्रोंको मारा।

२११ यः शासं इन्वति सः जनः राजा सत्पतिः शुशुवद् (६४७)– जो इन्द्रके शासनमें रहता है, वह मनुष्य तेजस्वी सज्जनोंका पालक और समृद्धशाली होता है।

२१२ ये ते क्षत्रं, स्थविरं वृष्ण्यं वर्धयन्ति, नेमे अपमा सन्तु (६४८)– जो तेरे बल, महत्ता और सामर्थ्यको बढाते हैं, वे कर्मोंसे समृद्धशाली हों।

२१३ अस्मे शेवृधं द्युम्नं, महि जनाषाट् तव्यं क्षत्रं आ धाः (६५१)- हे इन्द्र! हममें अमूल्य यश, महान्, शत्रुको पराजित करनेवाले प्रवृद्ध बलको स्थापित कर।

२१४ अस्य वरिमा दिवः चित् वि पप्रथे (६५२) - इस इन्द्रकी श्रेष्ठता द्युलोकसे भी ज्यादा फैली हुई है।

२१५ पृथिवी चन मह्ना इन्द्रं न प्रति (६५२)– पृथ्वी भी अपने बलसे इन्द्रको नहीं हरा सकती।

२१६ युध्मः सः सनात् ओजसा पनस्यते (६५३) – युद्ध करनेवाला वह इन्द्र प्राचीनकालसे ही अपने बलके कारण प्रशंसित होता है।

२१७ त्वं महः नृम्णस्य धर्मणां इरज्यसि (६५४) – तू इन्द्र बडे बडे पौरुषोंको धारण करनेवालोंपर भी शासन करता है।

२१८ उग्रः विश्वस्मै कर्मणे पुरः हितः (६५४) - वह वीर इन्द्र सभी कार्योंमें आगे किया जाता है।

२१९ जनेषु इन्द्रियं प्रब्रुवाणः (६५५) - वह लोगोंमें अपनी शक्ति प्रकट करता है।

२२० सः युध्मः जनेभ्यः ओजसा महानि समिथानि कृणोति (६५६)– वह योद्धा इन्द्र मनुष्योंके हितके लिए अपने बलसे बडे बडे युद्धोंको करता है।

२२१ सः सुक्रतुः कृत्रिमा सद्नानि विनाशयन् (६५७) - वह उत्तम कर्म करनेवाला वीर शत्रुके निर्माण किए नगरोंको विनष्ट करता है।

२२२ ते सारथयः यमिष्ठासः (६५८)- इस इन्द्रके सारथी घोडों पर अच्छा नियंत्रण रखते हैं ।

२२३ केताः भूर्णयः त्वा न आ दभ्नुवन्ति (६५८) - प्रसिद्ध शत्रु भी तुझे नहीं दबा सकते ।

२२४ इन्द्र ! हस्तयोः अ-प्रक्षितं वसु बिभर्षि (६५९) - हे इन्द्र ! तू हाथोंमें क्षयरहित धनको धारण करता है ।

२२५ ते तनूषु भूरयः क्रतवः (६५९) - तेरे शरीरोंसे बहुतसे कर्म होते हैं ।

२२६ सनिष्यवः संचरणे समुद्रं न (६६१) - जैसे धनके चाहनेवाले परदेश जानेके लिए समुद्रमें जाते हैं । परदेशमें जाकर व्यापार आदि करके धन कमाते हैं ।

२२७ आयसः दुध्रः मदे मायिनं शुष्णं आ भूषु दामनि रामयत् (६६२) - वह लोहेके कवचवाला, शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र उत्साहमें मायावी शुष्णको कारागृहोंमें रस्सियोंसे बांधता है ।

२२८ तुजा शवः पौंस्ये भ्राजते (६६२) - शत्रुको मारनेवाला बल संग्राममें चमकता है ।

२२९ धृष्णुना शवसा तमः बाधते (६६३) - वह इन्द्र अपने बलसे अन्धकारका नाश करता है ।

२३० यदि इन्द्रं देवी तविषी सिषक्ति, अर्हरिष्वणिः बृहद् रेणुं गमयति (६६३) - जब इन्द्रको दिव्य बल सींचता है, तब वह इन्द्र बहुत धूलि उडाता है अर्थात् जब बलसे युक्त होनेपर सेनाओंके साथ शत्रुपर हमला करता है, तब सेनाके चलनेसे बहुत धूली उडती है ।

२३१ यस्य रायः विश्वायुः अपावृतं (६६६) - इस इन्द्रका धन सभी मनुष्योंके लिए खुला हुआ है ।

२३२ प्रवणे अपां इव, रायः दुर्धरं (६६६) - जिस प्रकार नीचेकी तरफ वेगसे बहनेवाले धनको रोकना मुश्किल है, उसीप्रकार इस इन्द्रके धनको एक जगह रोकना कठिन है ।

२३३ यस्य धाम नाम इन्द्रियं ज्योतिः श्रवसे अयसे अकारि (६६८) - इस इन्द्रके तेजस्वी तथा प्रसिद्ध सामर्थ्य और तेज लोगोंको अन्नादि देनेके लिए प्रयत्नशील करते हैं ।

२३४ त्वत् गिरः अन्यः नहि सघत् (६६९ - इस इन्द्रके यशको दूसरा कोई नष्ट नहीं कर सकता ।

२३५ महान् द्यौः ते वीर्यं अनु ममे (६७०) - महान् द्युलोक भी तेरे पराक्रमकी प्रशंसा करता है ।

२३६ इयं पृथिवी ते ओजसे नेमे (६७०) - यह पृथ्वी तेरे बलके आगे झुकती है ।

२३७ केवलं विश्वं सहः दधिषे (६७१) - केवल वह इन्द्र ही सब बलोंको धारण करता है ।

२३८ सहो-जाः अमृतः हविषा आ विवासति (६७२) - बलके साथ उत्पन्न हुआ अमर यह अग्नि हविसे देवोंका सत्कार करता है ।

२३९ भृगवः मानुषेषु जनेभ्यः दिव्याय जन्मने वरेण्यं आ दधुः (६७७) - भृगुओंने मनुष्योंके समाजमें सब मनुष्योंके कल्याण करने और उनके जन्मको दिव्य बनानेके लिए इस अग्रणीको स्थापित किया ।

२४० अध्वरेषु वाघतः (६७८) - हिंसारहित अकुटिल कर्मोंमें इस अग्निकी प्रशंसा की जाती है ।

२४१ क्षितीनां नाभिः असि (६८१) - यह अग्नि सब प्राणियोंकी नाभि अर्थात् केन्द्र है ।

२४२ वैश्वानर ! आर्याय ज्योतिः इत् (६८२) - हे विश्वके नेता ! तूने आर्योंके लिए प्रकाशका मार्ग बताया ।

२४३ सूर्ये रश्मयः न विश्वानरे अग्ना वसूनि आ (६८३) - जिसप्रकार सूर्यमें सभी किरणें रहती हैं, उसी प्रकार इस विश्वके नेता अग्निमें सभी तरहके धन रहते हैं ।

२४४ उभयासः अस्य शासु सचन्ते (६८९) - चर तथा अचर दोनों तरहके लोग इस अग्निके शासनमें रहते हैं ।

२४५ अस्मै इत् त्वष्टा स्वर्यं वज्रं ततक्ष (६९८) - इसी इन्द्रके लिए त्वष्टाने उत्तम वेगवान् वज्रको तैय्यार किया ।

२४६ उर्वी द्यावापृथिवी जभ्रे, अस्य महिमानं न परिस्तः (७००) - उस इन्द्रने विशाल द्यावापृथिवीको अपने अधीन किया, अतः वे द्यावापृथिवी इसकी महिमाका पार न पा सके ।

२४७ दमे स्वराट् विश्वगूर्तः इन्द्रः रणाय ववक्षे (७०१) - युद्धमें अपने बलसे प्रकाशित होनेवाला श्रेष्ठ वीर इन्द्र युद्धके लिए हमेशा तैय्यार रहता है ।

२४८ अस्य महित्वं दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात् परि (७०१) - इस इन्द्रकी महिमा द्यु, पृथ्वी और अन्तरिक्षसे भी बडी है ।

२४९ ग्राणाः अवनिः अमुंचत् (७०२) - शत्रुद्वारा कब्जेमें की गई भूमिको इन्द्रनें छुडाया ।

२५० अस्य त्वेषसा सिन्धवः रन्तः (७०३)- इस इन्द्रके बलसे नदियां बहती हैं।

२५१ वज्रेण सीं परि अयच्छत् (६०३)- वज्रसे इन्द्रने नदियोंको सीमित किया।

२५२ तुर्वणिः तुर्वीतये गाधं कः (७०३)- शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाला इन्द्र शत्रुओंको विनष्ट करनेवालेकी ही सहायता करता है।

२५३ उक्थैः नव्यः (७०५)- यह इन्द्र अपने ही गुणोंके कारण सबसे प्रशंसनीय होता है।

२५४ एकः भूरेः ईशानः (७०७)- यह इन्द्र अकेला ही बहुतसे धनोंका ईश्वर है।

२५५ गोतमासः विश्वपेशसं धियं धाः (७०८)- अत्यन्त प्रयत्न करनेवाले ही अत्यन्त सुन्दर रूपवाली बुद्धिको प्राप्त करते हैं।

२५६ येन नः पूर्वे पितरः गाः अविन्दन्, पदज्ञाः (७१०)- इसी इन्द्रकी सहायतासे हमारे पूर्वजोंने ज्ञानको प्राप्त किया था और पदोंके ज्ञाता बने थे।

२५७ अस्य दस्मस्य कर्म प्रयक्षतमं चारुतमं (७१४) - इस दर्शनीय इन्द्रका कर्म अत्यधिक प्रशंसनीय और अत्यधिक सुन्दर है।

२५८ सु-अपस्यमानः शवसा सूनुः सख्यं सनेमि दाधार (७१७)- उत्तम कर्म करनेवाला बलका पुत्र इन्द्र अपने मित्रोंका प्राचीनकालसे धारण पोषण करता आ रहा है।

२५९ जज्ञानः अमे द्यावापृथिवी शुष्मैः धाः (७२२) - इस इन्द्रने उत्पन्न होते ही भयभीत द्युलोक और पृथ्वीलोकको अपने बलोंसे धारण किया।

२६० ते भिया विश्वाः अभ्वाः गिरयः दृळ्हासः चित् किरणाः न एजन् (७२२)- इस इन्द्रके डरसे सभी बडे बडे पहाड दृढ होते हुए भी किरणोंके समान कांपते हैं।

२६१ कुत्साय शुष्णं अहन् (७२४)- इस इन्द्रने बुराइयोंको दूर करनेवाले सज्जनकी रक्षाके लिए शोषण करनेवालेको मारा।

२६२ त्वं मर्तानां अ-जुष्टौ त्यत् दृळहस्य अरिषण्यन् (७२६)- हे इन्द्र ! तू शत्रु मनुष्योंके क्रोधित होकर सामने आनेपर उस दृढसे दृढ शत्रुको भी मार देता है।

२६३ वाजेषु अतसाय्या तव इयं ऊतिः आभूत् (७२७)- बलकी परीक्षा होनेवाले संग्राममें सब लोग इस इन्द्रके रक्षा की कामना करते हैं।

२६४ पर्वताः इव पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवना दृळ्हा चित् मज्मना प्र च्यावयन्ति (७३३)- पर्वतके समान अटल भावसे अपनी जगह पर स्थिर रहनेवाले मरुतगण भूमि परके तथा पर्वत शिखरोंपर विद्यमान सुदृढ दुर्गतकको अपने अद्भुत सामर्थ्यसे हिला देते हैं।

२६५ दिव्यानि ऊधः दुहन्ति, भूमिं पयसा पिन्वन्ति (७३५)- ये मरुद्गण द्युलोकमें स्थित धनों अर्थात् बादलोंका दोहन करके भूमण्डले पर वर्षाजलरूपी दूधकी वर्षा करते हैं।

२६६ पयोवृधः ध्रुव-च्युतः भ्राजत्-ऋष्टयः, आपथ्यः न, पर्वतान् उत् जिघ्नन्ते (७४१)- दूध पीकर पुष्ट बननेवाले, अचल रूपसे खडे हुए शत्रुओंको भी अपनी जगहसे हिला देनेवाले और तेजस्वी हथियार पासमें रखनेवाले वीर मरुत्, जिसप्रकार चलनेवाला राहमें पडे हुए तिनकेको दूर फेंक देता है उसीप्रकार, पहाडोंतकको आसानीसे उडा देते हैं।

२६७ शतं हिमाः पुष्येम (७४४)- हम सौ वर्षतक जीवित रहकर पुष्ट होते रहें।

२६८ देवाः ऋतस्य व्रता अनु गुः द्यौः न भूम (७४८)- देवोंने सत्यव्रतोंके अनुकूल आचरण किया और भूमि स्वर्गके समान सुख देनेवाली बनाई गई।

२६९ उषः भुत् क्रत्वा विशां चेतिष्ठः (७५४)- यह अग्रणी उषःकालमें जागकर अपने कर्मसे अन्योंको भी जगानेवाला है।

२७० सूरः न संदृक्, नित्यः सूनुः न, पयः धेनुः न (७५६-७५७)- ज्ञानीके समान यह अग्रणी सबको अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे देखता है। यह सगे पुत्रके समान हितकारी है और दूधसे भरपूर गायके समान हितकारी है।

२७१ रण्वः क्षेमं दधाति (७५८)- यह रमणीय अग्रणी लोगोंका कल्याण करता है।

२७२ विक्षु प्रशस्तः प्रीतः वयः दधाति (७५९)- प्रजाजनोंमें प्रशंसित तथा प्रसन्न मनवाला यह अग्रणी नेता लोगोंके हितके लिए अपना जीवन अर्पित करता है।

२७३ योनौ जाया इव सर्वस्मै अरं (७६०)- घरमें जिसप्रकार स्त्री सुखदायी होती है, उसी तरह यह अग्रणी सबको पर्याप्त सुख देता है।

२७४ समत्सु रुक्मी त्वेषः (७६१)- यह अग्रणी वीर युद्धोंमें और अधिक तेजस्वी हो जाता है।

२७५ सृष्टा सेना इव अस्तुः दीद्युत् अमं दधाति (७६२)– शत्रु पर प्रेरित की गई सेनाके समान और वेगसे फेंके गए अस्त्रके समान यह अग्रणी बलशाली है।

२७६ राजा अजुर्यं इव मित्रः साधुः श्रुष्टिं वृणीते (७६६–७६७)– जिसप्रकार कोई राजा सर्वगुणसम्पन्न वीरको अपना सहायक चुनता है, उसीप्रकार सबका मित्र और सज्जनोंका हित करनेवाला यह अग्रणी प्रजाके कल्याण करनेवालेको अपना सहायक चुनता है।

२७७ यः आ ससाद अस्मै वसूनि प्र ववाच (७७२–७७३ – जो इस अग्रणीकी उपासना करता है, उसे ही यह अग्नि धन प्राप्तिके मार्ग बताता है।

२७८ विश्वेषां देवानां महित्वा परि भुवन् (७७६–७७७)– सभी देवोंका महत्त्व इस अग्निने पा लिया। यह अग्रणी देव अन्य सब देवोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्ववाला है।

२७९ अमृतं एव सपन्तः विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्ते (७७८–७७९)– इस अमर अग्निकी उपासना करके सब लोग यश, सत्य और देवत्व प्राप्त करते हैं।

२८० यः शिक्षात्, रयिं दयस्व (७८१)– जो ज्ञान प्राप्त करता है, वही धन भी प्राप्त करता है।

२८१ ये अस्य शासं क्रतुं जुषन्त, रायः दुरः वि और्णोत् (७८४–७८५)– जो मनुष्य इस अग्निके शासनमें रहकर कर्म करते हैं, उनके लिए यह अग्नि धनके द्वार खोल देता है।

२८२ देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः (७८७)– देवोंका पुत्र होता हुआ भी यह अग्नि उनका पिता है, अर्थात् देवोंके द्वारा उत्पन्न होकर भी यह अग्नि हवि आदि पहुंचाकर उनका पालन करता है।

२८३ वेधाः अदृप्तः (७८९)– बुद्धिमान् होते हुए भी यह अग्नि निरहंकारी है।

२८४ रण्वः प्रीतः वि तारीत् (७९०)–यह सुखदायक अग्रणी प्रसन्न होनेपर भक्तको दुःखसे पार कराता है।

२८५ अग्निः विश्वानि देवत्वा अश्याः (७९१)– यह अग्रणी सारे देवभावोंको प्राप्त करता है।

२८६ व्रता नकिः मिनन्ति (७९२)– इस अग्रणीके नियमोंको कोई तोड नहीं सकता।

२८७ दुरः ऋण्वन् दशीके स्वः विश्वे नवन्त (७९५) – द्वारोंको खोलकर इस अग्निकी किरणें अनन्त आकाशमें फैल जाती हैं।

२८८ अग्निः मनीषा (७९६)– यह अग्नि देव बुद्धिसे प्राप्त करने योग्य है।

२८९ विश्वानि दैव्यानि व्रता मनुष्यस्य जन्म चिकित्वान् (७९७ – वह अग्नि देवोंके सम्पूर्ण कर्मों और मनुष्योंके जन्मोंको जानता है।

२९० अर्यः दिधिष्वः विभृत्राः अतृष्यन्तीः प्रयसा देवान् जन्म वर्धयन्तीः (८०९ – राष्ट्रकी प्रजायें धनकी स्वामिनी, तेज धारण करनेवाली, पोषण करनेवाली, तृष्णा रहित, कर्म करनेवाली, हविदान और अन्नदानसे देवों और मनुष्योंको बढानेवाली हों।

२९१ तुभ्यं स्वे दमे विभाति, अनुद्यून् नमः दाशात् वय. वर्धः राया यासत् (८१२)– इस अग्निको जो अपने घरमें प्रकाशित करता एवं प्रतिदिन हवि देता है, उसकी आयु बढती है और उसे धन प्राप्त होता है।

२९२ अग्ने! कविः सन् अभिविदुः, पित्र्याणि सख्या मा प्र मर्षिष्ठाः (८१६)– हे अग्ने ! तू क्रान्तदर्शी होनेके कारण सब कुछ जाननेवाला है, अतः तू पितरोंसे आई हुई हमारी मित्रता नष्ट न कर।

२९३ रूपं जरिमा मिनाति, अभिशस्तेः तस्याः पुरा अधि इति (८१६)– रूपको बुढापा नष्ट कर देता है, अतः हे अग्ने ! विनाश करनेवाले इस बुढापेके आनेके पहले ही उस बुढापेको तू समाप्त कर दे।

२९४ पद्व्यः अग्नेः परमे पदे तस्थुः (८१८)– खोजनेवाले ज्ञानी अग्निके उत्तम स्थानतक पहुंच ही जाते हैं।

२९५ वयुनानि विद्वान् क्षितीनां जीवसे शुरुधः आनुषक् विधाः (८२३)– राष्ट्रमें अग्रणीको प्रजाका आचार विचार जानकर उनके जीवनके लिए और उनकी भूख मिटानेके लिए अन्नकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

२९६ ऋतज्ञाः रायः दुरः विदन् (८२४)– सत्यको जाननेवालोंने ऐश्वर्यका मार्ग जान लिया।

२९७ दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन् अस्मिन् चारु श्रियं नि दधुः (८२६)– द्युलोकमें देवोंने जब दो आंखें अर्थात् सूर्यचन्द्र बनाये, उसी समय उन्होंने इस अग्निमें सुन्दर तेज स्थापित किया।

२९८ स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः (८२७)– सुखसे विश्राम करनेवाले अतिथिकी तरह सुख देनेवाला यह अग्नि है।

२९९ यः सत्यमन्मा कृत्वा विश्वा विजनानि नि पाति (८२८)– जो सत्यमार्ग पर चलता है, वह अपने कर्मोंसे सारे पापोंसे सबको सुरक्षित रखता है ।

३०० हित मित्रः पृथिवीं उपेक्षति (८२९)– हितकारी मित्रोंसे युक्त व्यक्ति ही इस संसारमें सुखसे रह सकता है ।

३०१ अनवद्या पतिजुष्टा नारी विश्वधायाः (८२९) – अनिन्दित और पतिव्रता नारी ही संसारको धारण करती है ।

३०२ सूरयः ददतः विश्वमायुः वि (८३१)– विद्वान् दाताओंको दीर्घआयु प्राप्त हो ।

३०३ शृण्वते मंत्रं वोचेम (८३७ – सुननेवालेको ही हम उपदेश दें । जो सुनता न हो उसे कभी भी उपदेश न दें ।

३०४ दाश्वान् त्वा ऊतः वाजी अह्रयः पूर्वस्मात् अपरः अस्थात् (८४४)– दाता अग्निसे सुरक्षित होकर बलवान् बनता और हीनताकी भावनासे छूटकर निकृष्ट अवस्थासे उच्च अवस्थाको प्राप्त होता है ।

३०५ महे सौमनसाय देवान् यज (८५२)– उत्तम मनकी प्राप्तिके लिए देवोंकी पूजा करनी चाहिए, अर्थात् उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलना ही एकमात्र उपाय है ।

३०६ कविः सन् कविभिः यजस्व (८५५)– मनुष्योंको चाहिए कि वह स्वयं ज्ञानी बनकर ज्ञानियोंके साथ प्रशस्त कर्म करे ।

३०७ मर्ताय देवान् वेः (८५७)- यह अग्रणी मनुष्योंका हित करनेके लिए दिव्य ज्ञानियोंकी सहायता लेता है ।

३०८ अद्भुतस्य रथीः (८५८)– वह अग्नि इस शरीररूपी रथका रथी अर्थात् स्वामी है ।

३०९ अग्निः नृणां नृतमः रिशादाः (८५९)– अग्नि मनुष्योंके बीच उत्कृष्ट नेता और शत्रुओंका विनाशक है ।

३१० इन्द्र ! प्र इहि, अभि इहि, धृष्णुहि, ते वज्रः न नियंसते (८८०)– हे इन्द्र ! शत्रुके सम्मुख जा, उसे सब ओरसे घेर ले और उसका नाश कर दे, तेरा वज्र कभी पराभूत नहीं किया जा सकता ।

३११ स्वराज्यं अनु अर्चन् वृत्रं हनः, ते शवः नृम्णं हि (८८०)– स्वराज्यका सत्कार करते हुए, हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको मार । तेरा बल मनुष्योंका हित करनेवाला है ।

३१२ इन्द्र ! तुभ्यं इत् वीर्यं अनुत्तं, यत् ह त्वं स्वराज्यं अनु अर्चन् त्यं मायिनं मृगं मायया अवधीः (८८४)– हे इन्द्र ! तेरा ही पराक्रम उत्कृष्ट है, क्योंकि तूने अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए उस कपटी शत्रुको कपटसे ही मारा ।

३१३ स्वराज्यं अनु अर्चन् ते वीर्यं महत्, ते बाह्वोः बलं हितं (८८५)– स्वराज्यकी अर्चना करनेवाले इन्द्रका पराक्रम महान् है, उसकी भुजाओंमें बहुत बल है ।

३१४ दभ्रस्य चित् वृधः असि (८९५) यह इन्द्र छोटेको भी बडा बना देता है ।

३१५ कश्चन त्वावान् न, न जातः, न जनिष्यते (८९८)– कोई भी तेरे समान नहीं है, तेरे समान न कोई उत्पन्न हुआ और न होगा ।

३१६ अतथाः इव मा (९०३)– हे इन्द्र ! तू परायेके समान मत हो ।

३१७ तव ऊतिभिः सु प्रावीः मर्त्यः अश्वावतिः गोषु प्रथमः गच्छति (९०७)– तेरी सुरक्षाके साधनोंसे सुरक्षित हुआ भक्त मनुष्य बहुत घोडोंवाले और बहुत गौओंसे युक्त प्रथम स्थान प्राप्त करता है ।

३१८ सन्वते यजमानाय भद्रा शक्तिः (९११)– यज्ञ करनेवालेके लिए इस इन्द्रकी ओरसे मंगलकारी शक्ति दी जाती है ।

३१९ असंयत्तः ते व्रते क्षेति पुष्यति (९११)– असंयमसे रहनेवाला भी तेरे (इन्द्रके) व्रत–नियममें रहकर पुष्ट हो जाता है ।

३२० इन्द्रः अराधसं मर्तं पदा स्फुरत् (९२२) इन्द्र दानरहित मनुष्यको पैरसे ठुकरा देता है ।

३२१ अप्रतिष्कुतः इन्द्रः दधीचः अस्थभिः नवनवतीः वृत्राणि जघान (९२७)– जिसके सामने शत्रु नहीं ठहर सकता, उस इन्द्रने दधीचिकी अस्थियोंके वज्रसे निन्यानवे शत्रुओंको मार दिया ।

३२२ यः एषां भृत्यां ऋणधत्, सः जीवात् (९३०) – जो इन देवोंकी उत्तम सेवा करता है, वही जीवित रहता है ।

३२३ ते उक्षितासः महिमानं आशत (९३६) - वे वीर अपने स्थानों पर अभिषिक्त होकर बडप्पनको पा सके । उसी प्रकार मनुष्य भी अपने स्थान पर रहकर ही महत्ताको प्राप्त कर सकता है ।

३२४ शुभ्राः गो-मातरः विश्वं अभिमातिनं अप बाधन्ते, एषां वर्त्मानि घृतं अनु रीयते (९३७)–

तेजस्वी मातृभूमिको अपनी माता समझनेवाले वीर जब सारे शत्रुओंको दूर हटा देते हैं, तब उनके जाने योग्य रास्तों पर घी की धारायें बहने लगती हैं। सभी प्रजायें उन वीरोंको पौष्टिक पदार्थ प्रदान करके उनका सत्कार करती हैं।

३२५ राजानः इव त्वेष-संदृशः नरः मरुद्भ्यः विश्वा भुवना भयन्ते (९४२)– राजाओंके समान तेजस्वी दिखाई देनेवाले ये नेता वीर हैं, इसलिए इन मरुतोंसे सारे लोक भयभीत हो उठते हैं।

३२६ विश्वं अत्रिणं वि यात, यत् ज्योतिः उश्मसि कर्त (९५६)– (हम वीर मरुतोंकी सहायतासे राष्ट्रमेंसे) सभी पेटू दुरात्माओंको दूर कर दें और जिस तेजको हम पानेके लिए लालायित हैं, वह हम प्राप्त करें।

३२७ यत् ह शुभे युंजते, एषां अज्मेषु यामेषु भूमिः विथुरा इव प्र रेजते (९५९)– जब सचमुच ये वीर अच्छे कर्म करनेके लिए कटिबद्ध हो जाते हैं, तब उनके वेगवान् हमलोंसे पृथ्वी भी अनाथ नारीके समान थर थर कांपने लगती है।

३२८ श्रिये कं वः तनूषु अधि वाशीः (९६५ – विजयश्री तथा सुख पानेके लिए तुम्हारे शरीरोंपर शस्त्रास्त्र लटकते रहते हैं, किसी पर अत्याचार करनेके लिए नहीं।

३२९ भद्राः अदब्धासः अपरीतासः उद्भिदः क्रतवः विश्वतः नः आ यन्तु (९६९)– कल्याणकारक, न दबनेवाले, पराभूत न होनेवाले, उच्चताको पहुंचानेवाले शुभ कर्म चारों ओरसे हमारे पास आयें।

३३० अप्रायुवः रक्षितारः देवाः सदं इत् वृधे असन् (९६९)– प्रगतिको न रोकनेवाले तथा सुरक्षा करनेवाले देव हमारा सदा संवर्धन करें।

३३१ ऋजूयतां सुमतिः भद्राः (९७०)– सरल और सत्य मार्ग पर चलनेवालोंकी उत्तम बुद्धि सबका कल्याण करनेवाली होती है।

३३२ देवानां रातिः नः (९७०)– देवोंका दान सदा मिलता रहे।

३३३ देवानां सख्यं उपसेदिम (९७०)– देवोंकी मित्रतामें हम सदा रहें।

३३४ जीवसे नः आयुः प्र तिरन्तु (९७०)– उत्तम जीवन जीनेके लिए देव हमारी आयु दीर्घ करें।

३३५ जगतः तस्थुषः पतिं धियं जिन्वं तं ईशानं वयं अवसे हूमहे (९७३)– स्थावर और जंगमके अधिपति बुद्धिको प्रेरणा देनेवाले उस ईश्वरको हम अपनी सुरक्षाके लिए बुलाते हैं।

३३६ पूषा नः वेदसां वृधे रक्षिता यथा असत् (९७३)– वह पोषक देव हमारे ऐश्वर्यको समृद्धि करनेवाला हो, अदब्धः स्वस्तये पायुः । वह आलस्यरहित देव हमारा कल्याण करे और संरक्षक होवे।

३३७ वृद्धश्रवाः इन्द्रः, विश्वे वेदाः पूषा, अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः, बृहस्पतिः नः स्वस्ति दधातु (९७४) बहुत यशस्वी इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा, निरन्तर चलनेवाले रथसे युक्त तार्क्ष्य और बृहस्पति हमारा कल्याण करे।

३३८ कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम (९७६)– कानोंसे हम कल्याणकारी भाषण सुनें।

३३९ अक्षभिः भद्रं पश्येम (९७६)– आंखोंसे हम कल्याणकारक वस्तु देखें।

३४० स्थिरैः अंगैः तनूभिः तुष्टुवांसः यत् आयुः देवहितं वि अशेम (९७६)– स्थिर तथा सुदृढ अवयवोंसे युक्त शरीरोंसे हम देवोंकी स्तुति करते हुए जितनी हमारी आयु है, वहांतक हम देवोंका हित ही करें।

३४१ शरदः शतं अन्ति इत् नु (९७७)– सौ वर्ष तक ही हमारे आयुष्यकी मर्यादा है।

३४२ नः तनूनां जरसं यत्र चक्र (९७७)– उसमें भी हमारे शरीरकी वृद्धावस्था शामिल है।

३४३ नः आयुः गन्तोः मध्या मा रीरिषत (९७७) – हमारी आयु बीचमें ही न टूटे।

३४४ विद्वान् मित्रः वरुणः अर्यमा नः ऋजुनीती नयतु (९७९)– ज्ञानी मित्र, वरुण और अर्यमा हमें सरल नीतिके मार्गसे ले जावें।

३४५ ऋतायते वाता मधु, सिन्धवः मधु क्षरन्ति (९८४)– सरल और सत्य आचरण करनेवालेके लिए वायु और नदियां मीठे रससे भरपूर होकर बहती हैं।

३४६ न जीवातुं (सोमः) प्रियस्तोत्रः वनस्पतिः (९९३)– हमारे दीर्घजीवनके लिए सोम प्रशंसनीय वनस्पति है।

३४७ त्वं च वशः न मरामहे (९९३)– इस सोमके अनुकूल रहने पर हम नहीं मरेंगे।

३४८ त्वावतः सखा न रिष्येत् (९९५)– इस सोमसे रक्षित हुआ भक्त नाशको प्राप्त नहीं होता।

३४९ नः हृदि रारन्धि (१०००)- हे सोम ! हमारे हृदयमें शान्ति एवं सन्तोष उत्पन्न कर।

३५० सुकृते सुदानवे विश्वा अह इषः वहन्ती (१०१३)- उत्तम कर्म करनेवालेको तथा उत्तम दानीको यह उषा प्रतिदिन भरपूर अन्न देती है।

३५१ देवी मर्तस्य आयुः प्रमिनती आमिमाना (१०२०)- यह उषा देवी मनुष्यकी आयुको क्षीण करती जाती है।

३५२ दैव्यानि व्रतानि अमिनती (१०२२)- वह उषा देवोंके कार्योंका कभी नाश नहीं करती।

३५३ ज्योतिः एकं बहुभ्यः (१०३२)- सूर्यकी यह एक ज्योति बहुतों अर्थात् सभीके लिए है।

३५४ अस्य संसदि जः प्रमतिः भद्रा (१९४१)- इस अग्रणीकी संगतिमें रहनेसे मनुष्योंकी बुद्धि कल्याणकारिणी बनती है।

३५५ अग्ने ! सख्ये मा रिषाम (१०४१) इस अग्निकी मित्रतामें जो रहता है, वह कभी दुःख नहीं पाता।

३५६ यस्मै त्वं आ यजसे सः साधति (१०४२) जिसको यह अग्रणी ज्ञानसे सहायता करता है, वह सिद्धिको प्राप्त करता है।

३५७ स तूताव, अंहतिः न अश्नोति (१०४२)- वह सदा बढता रहता है, कभी दरिद्र नहीं होता।

३५८ जीवातवे धियः प्रतरं साधय (१०४४)- दीर्घजीवनके लिए बुद्धिशक्तिको और कर्मशक्तिको उत्तम बनाना चाहिए।

३५९ अस्य विशां गोपाः जन्तवः द्विपत् चतुष्पत् अक्तुभिः चरन्ति (१०४५)- इस अग्निकी प्रजारक्षक किरणें दुपायों और चौपायोंकी रातमें भी रक्षा करती हैं।

३६० अध्वर्युः, प्रशास्ता, पोता, जनुषा पुरोहितः विश्वा आर्त्विज्या विद्वान् (१०४६)- यह अग्रणी देव हिंसारहित कर्मोंका संयोजक, शासक, पवित्र करनेवाला, जन्मसे ही उत्तम कर्मोंमें आगे रहनेवाला तथा ऋतुओंके अनुसार कर्म करनेवाला विद्वान् है।

३६१ राम्याः चित् अन्धः अति पश्यति (१०४७) - यह अग्नि रात्रीके अन्धकारमें भी बहुत प्रकाशता है।

३६२ ये के चित् दूरे अन्तिके अत्रिणः वधैः अप जहि (१०४९)- हे अग्ने ! पास अथवा दूर जितने भी खाऊ शत्रु हैं अथवा मनुष्य शरीरको खानेवाले रोगजन्तु हैं उन्हें तू अपने शस्त्रोंसे मार।

३६३ अवयातां मरुतां हेळः अद्भुतः (१०५२)- शत्रुपर हमला करनेवाले मरुत् वीरोंका क्रोध भयानक है।

३६४ देवः देवानां अद्भुतः मित्रः (१०५३)- यह उत्तम गुणोंसे युक्त अग्रणी उत्तम गुणवालोंसे ही मित्रता करता है।

३६५ समिद्धः जरसे मृळयत्तमः (१०५४)- तेजस्वी होकर यह अग्नि उपासकको अत्यधिक सुख देता है।

३६६ सर्वताता अनागाः, भद्रेण शवसा (१०५५)- सभी हिंसारहित यज्ञोंको करनेवाला उपासक पापरहित और कल्याणकारी बलसे युक्त होता है।

३६७ सा समितिः देवताता (१०६४)- यज्ञकी समिति दिव्यताका फैलाव करनेवाली होती है।

३६८ धन्वन् गातुं स्रोतः ऊर्मिं कृणुते (१०६६) - निर्जल स्थानमें यह अग्नि मार्ग बनाता और जलप्रवाह तथा पानीके स्रोत उत्पन्न करता है।

३६९ शुक्रैः ऊर्मिभिः क्षां अभि नक्षति (१०६६)- वह तेजस्वी पानीकी तरंगोंसे पृथ्वीको भर देता है।

३७० विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते (१०६६)- सब अन्नोंको प्राणियोंके पेटमें स्थापित करता है।

३७१ रायः बुध्नः, वसूनां संगमनः, यज्ञस्य केतुः वेः मन्मसाधनः (१०७३)- यह अग्नि धनका आधार, ऐश्वर्योंकी प्राप्ति करानेवाला, यज्ञका ज्ञान करानेवाला और प्रगतिशील मानवोंके लिए इष्ट सिद्धि देनेवाला है।

३७२ नू च पुरा च रयीणां सदनं (१०७४)- यह अग्नि इस समय और पहले भी अर्थात् सनातन रूपसे सम्पत्तिका घर है।

३७३ द्रविणोदाः दीर्घं आयुः रासते (१०७५)- सम्पत्ति दाता यह अग्नि दीर्घ आयु प्रदान करता है।

३७४ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम (१०८५)- सब जनताका हित करनेवालेकी उत्तम मनोभावनामें सदा रहें।

३७५ वैश्वानरः अग्निः दिवि पृष्टः, पृथिव्यां पृष्टः (१०८६)- सब प्रजाके हित करनेवाले अग्रणी नेताका यश स्वर्गके निवासी और भूलोकके निवासी सभीके द्वारा गाया जाता है।

३७६ सः अग्निः सहसा पृष्टः (१९८६)- वह अग्रणी अपने बलके कारण सर्वत्र प्रशंसित होता है।

३७७ वेदः अरातीयतः नि दहाति (१०८८) यह अग्नि सब कुछ जानता हुआ शत्रुके समान आचरण करनेवालेको जला देता है।

३७८ अग्निः दुरिता अति (१०८८)– अग्नि हमें सब पापोंसे पार करे।

३७९ वृत्र–हा भरे भरे शुष्म अस्ति (१०९०)- वृत्र-नाशक इन्द्र प्रत्येक युद्धमें असुरोंको भयसे सुखानेवाला है।

३८० पौंस्येभिः तरत्–द्वेषाः सासहिः (१०९१) – वह अपने पराक्रमोंसे द्वेषका नाश करनेवाला और शत्रुओंका पराभव करनेवाला है।

३८१ सः एकः विश्वस्य करुणस्य ईशे (१०९५) – वह इन्द्र अकेला ही सब उत्तम कर्मोंका स्वामी है।

३८२ दिवः न त्वेषः रवथः शिमीवान् (११०१)- वह इन्द्र सूर्यके समान तेजस्वी व्याख्यान देनेवाला और कर्ममें कुशल है।

३८३ यस्य शवसः अन्तं देवता देवाः मर्ताः आपः चन न आपुः, सः त्वक्षसा क्ष्मः दिवः च प्र रिक्वा (११०३)– जिस इन्द्रके बलका अन्त दानशील एवं तेजस्वी देव, मनुष्य और जल भी नहीं पा सके, ऐसा वह इन्द्र अपनी सूक्ष्म शक्तिसे पृथ्वी और द्युलोकसे आगे बढा हुआ है।

३८४ इन्द्रः विश्वाहा नः अधि वक्ता अस्तु, अपरिहृताः वाजं सनुयाम (११०७)– यह इन्द्र सब दिन हमें उत्तम सलाह देनेवाला हो और हम भी कुटिलताको छोडकर उसे अन्न प्रदान करें।

३८५ अस्य व्रते द्यावापृथिवी, वरुणः, सूर्यः सिन्धवः सश्चति (१११०)– इस इन्द्रके नियममें द्युलोक, पृथ्वीलोक, वरुण, सूर्य और नदियां रहती हैं।

३८६ यः वशी कर्मणि कर्मणि स्थिरः (११११)– वह इन्द्र सबको अपने वशमें रखता हुआ प्रत्येक कर्ममें स्थिर रहता है।

३८७ यः विश्वस्य प्राणतः जगतः पतिः (१११२)– वह इन्द्र सारे प्राणके आधार पर जीवित रहनेवाले जगत्का स्वामी है।

३८८ यं इन्द्रं विश्वा भुवना अभि संदधुः (१११३) – इस इन्द्रको सारा संसार आगे रखता है।

३८९ यः शूरेभिः भीरुभिः धावद्भि जिग्युभिः हव्यः (१११३)– जो इन्द्र शूरोंके द्वारा, भयभीतोंके द्वारा, युद्धमें भागनेवालोंके द्वारा और विजयी वीरोंके द्वारा सहाय्यार्थ बुलाने योग्य है।

३९० विचक्षणः पृथुज्रयः तनुते (१११४)– बुद्धिमान् मनुष्य ही अपने विस्तृत तेजको सब जगह फैला सकता है।

३९१ अस्य श्रवः सप्त नद्यः बिभ्रति (११२०)– इस इन्द्रके यशको सातों नदियां धारण करती हैं।

३९२ दर्शतं वपुः द्यावाक्षामा पृथिवी (११२०)– इस इन्द्रके सुन्दर शरीरको तीनों लोक धारण करते हे।

३९३ श्रद्धे सूर्याचन्द्रमसा कं चरतः (११२०)– सत्य ज्ञान देनेके लिए सूर्य और चन्द्रमा सुखपूर्वक विचरते हैं।

३९४ (अस्य) बाहू गोजितो (११२४)– इस इन्द्रकी भुजाएं गायोंको जीतनेवाली हैं।

३९५ इन्द्रः अमितक्रतुः खजंकरः अकल्पः (११२४) – वह इन्द्र अपरिमित बलवाला, संग्राम करनेवाला और अद्वितीय वीर है।

३९६ कर्मन् कर्मन् शतं ऊतिः (११२४)– प्रत्येक कर्ममें सैकडों संरक्षणके साधन अपने पास रखनेवाला है।

३९७ (अस्य) क्राणेषु श्रवः शतात् उत् सहस्रात् उत् रिरिचे (११२५)– इस इन्द्रका मनुष्योंमें यश सैकडों तथा हजारों प्रकारोंसे भी अधिक है।

३९८ जनुषा अशत्रुः आसि (११२६)- यह इन्द्र जन्मसे ही शत्रुरहित है।

३९९ त्वं जिगेथ, धना न रुरोधिथ (११२८)–यह इन्द्र युद्धोंको जीतता तो है, पर धनोंको रोक नहीं रखता। युद्धमें प्राप्त धनोंको अपने पास नहीं रखता अपितु अपने भक्तोंमें बांट देता है।

४०० आर्ये सहः द्युम्नं वर्धय (११३२)– आर्योंको बल और तेज बढाना चाहिए।

४०१ अस्य इन्द्रस्य इदं भूरि पुष्टं पश्यत, वीर्याय श्रद् धत्तन (११३४)– इस इन्द्रके इस अत्यधिक बलको देखो और इसके बल पर श्रद्धा करो।

४०२ यः शूरः आदृत्य अयज्वनः वेदः विभजन् एति, सोम सन्वाम (११३५)– जो शूरवीर ज्ञानियोंका आदर करके यज्ञ न करनेवालोंके धनको छीनकर ज्ञानियोंमें बांट देता है, उसका हम सत्कार करें।

४०३ नः जीवशंसे अनागास्त्वे (११४३)– हे इन्द्र ! हमें जीवोंके द्वारा प्रशंसित और पापरहित कार्यमें संयुक्त कर।

४०४ अकृते यानौ मा (११४४)– हे इन्द्र ! हमें धनशून्य घरमें स्थापित मत कर।

४०५ अर्थिनः अर्थं इत् (११४८)– इच्छा करनेवाले अपने प्राप्तव्यको निस्सन्देह प्राप्त कर ही लेते हैं।

४०६ शंभुवः सोम्यस्य शूने कदाचन मा भ्रम

११४९)– आनन्द देनेवाले सोमसे रहित स्थानमें हम कभी भी न रहें।

४०७ यः असौ आदित्यः पन्थाः, स न अतिक्रमे (११६२)– यह जो आदित्यका मार्ग है, उसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

४०८ मर्तासः तत् न पश्यथ (११६२)– साधारण मनुष्य उस मार्गको देख भी नहीं सकते।

४०९ यत् ते मनुः हितं तत् शं योः ईमहे (११७०) – जो तेरे पास मानवोंका हित करनेवाला सच्चा सुख देने और दुःख दूर करनेका साधन है, वही हम मांगते हें।

४१० रश्मीन् मा छ्रम ११९१)– हमारे सन्तानरूपी किरणोंका विच्छेद न हो।

४११ पितृणां शक्तीः अनुयच्छमानाः (११९१)– पितरोंकी शक्ति वंशजोंमें अनुकूलतासे रहे।

४१२ मे अपः ततं तत् उ पुनः तायते (११९७)- मेरा कर्म समाप्त हुआ है, वही कर्म में फिरसे करूंगा।

४१३ मर्तासः सन्तः अमृतत्वं आनशुः ११९७) – मरणशील मनुष्य भी देवत्व और अमरत्व प्राप्त कर सकते हें।

४१४ असुन्वतां पृत्सुतीः अभितिष्ठम (१२०३)- यज्ञ न करनेवालोंकी सेनाका हम पराभव करें।

४१५ तप्तं घर्मं अत्रये ओम्यावन्तं (१२१७)– अश्विनौने गर्म और तपे हुए कारागृहको अत्रि ऋषिके लिए ठण्डा बना दिया।

४१६ शचीभिः अन्धं परावृकं चक्षसे, श्रोणं एतवे प्रकृथः १२१७ – अश्विनौने अपनी शक्तियोंसे अन्धे ऋषि परावृक्को देखनेके लिए दृष्टिसंपन्न किया और लंगडेको चलनेके लिए टांगसे युक्त किया।

४१७ याभिः विमदाय पत्नीः ऊहथु (१२२९)– अश्विनौने अपनी शक्तियोंसे विमदको धर्मपत्नीको उसके पास पहुंचाया।

४१८ अरुणीः घ आ अशिक्षतं (१२२९)- अरुण रंगकी घोडियोंको अश्विनौने पूर्णतया शिक्षित किया।

४१९ ज्योतिषां श्रेष्ठं इदं ज्योतिः आगात् (१२३६) तेजस्वी पदार्थोंके तेजसे भी अधिक श्रेष्ठ उषाका यह तेज पूर्व दिशामें प्रकट हो रहा है।

४२० यथा रात्रिः सवितुः सवाय प्रसूता एवा उषसे योनिं आरैक् (१२३६)– जिस तरह रात्री सूर्यकी उत्पत्तिके लिए उत्पन्न हुई, वैसी ही यह रात्री उषाके जन्मके लिए भी स्थान खुला कर रही है।

४२१ स्वस्रोः अध्वा समानः अनन्तः (१२३८)– रात्री और उषा इन दोनों बहिनोंका मार्ग एक ही है और वह अन्तरहित है।

४२२ देवशिष्टे अन्या अन्या तं चरतः (१२३८) – ईश्वरकी आज्ञानुसार चलनेवाली ये दो बहिनें क्रमसे एकके पीछे दूसरी इस मार्गसे चलती हें।

४२३ नक्तोषासा सुमेके विरूपे समनसा (१२३८) - ये दोनों रात्री और उषा उत्तम स्नेह धारण करनेवाली परस्पर विरुद्ध रूपरंगवाली होनेपर भी एक मतसे काय करनेवाली हें।

४२४ जिह्मश्ये चरितवे आभोगये राये मघोनी (१२४०)- सोनेवालेको घुमानेके लिए, भोगोंको प्राप्त करनेके लिए तथा धन प्राप्त करनेके लिए धनवाली यह उषा प्रकाशित होती है।

४२५ ये मर्तासः व्युच्छन्तीं पूर्वतरां उषसं अपश्यन, ते ईयुः, अस्माभिः नु प्रतिचक्ष्या अभूत्, ये अपरीषु पश्यान् ते यन्ति (१२४६)–जो मानव प्रकाशनेवाली पूर्वसमयकी उषाको देख चुके, वे चले गए। हमारे द्वारा यह उषा देखी जा रही है और आगे भी जिनके द्वारा देखी जाएगी, वे भी चले जायेंगे।

४२६ उदीर्ध्वं, नः असुः जीवः आगात्, ज्योतिः आ एति, यत्र आयुः प्रतिरन्त अगन्म (१२५१)- हे मनुष्यो! उठो, हमारा यह प्राणरूप प्रकाश आ गया है, ज्योति प्रकट हो रही है, अतः इस प्रकाशमें अपनी आयु बढाते हुए हम आगे बढें।

४२७ ग्रामे विश्वं पुष्टं अनातुरं असत् द्विपदे चतुष्पदे शं (१२५६)– गांवमें सब प्राणिमात्र हृष्टपुष्ट और निरोगी रहें तथा द्विपद और चतुष्पादके लिए शान्ति प्राप्त हो।

४२८ मीढ्वः रुद्र ! ते सुमतिं अश्याम (१२५८)– हे सुखदायक रुद्रदेव ! तेरी उत्तम बुद्धिको हम सब प्राप्त करें।

४२९ देवानां अनीकं चित्रं चक्षुः (१२६७)- यह सूर्य देवोंका तेज और विलक्षण आंख है।

४३० सूर्यः जगतः तस्थुषः आत्मा (१२६७)- यह सूर्य चराचर जगत्की आत्मा है।

४३१ यत्र देवयन्तः नराः युगानि, भद्रं प्रति भद्राय वितन्वते (१२६८)– जहां देवत्व प्राप्तिके इच्छुक मनुष्य योग्य कर्म करते हें, वहां उस कल्याणकारी पुरुषका कल्याण करनेके लिए यह सूर्य अपना प्रकाश फैलाता है।

४३२ सूर्यस्य अश्वाः भद्राः अनुमाद्याः (१२६९) – सूर्यकी किरणें कल्याण करनेवाली और आनंद देनेवाली हैं।

४३३ कर्तोः मध्या विततं सं जभार तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं (१२७०)- काम करनेवालेका काम पूरा भी नहीं हो पाता कि यह सूर्य बीचमें ही अपनी फैली हुई किरणोंको समेट लेता है, यही सूर्यका देवत्व और महत्त्व है।

४३४ नासत्या वीळुपत्मभिः आशु हेमभिः देवानां जूतिभिः शाशदाना (१२७४)- असत्यसे दूर रहनेवाले दोनों अश्विनौ आकाशमें वेगसे उडनेवाले, शीघ्रगतिसे जानेवाले देवोंकी गतिसे संचालित होनेवाले यानोंसे शीघ्रगतिसे जानेवाले हैं।

४३५ आत्मन्वतीभिः अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः नौभिः भुज्युं ऊहथुः (१२७५)- निजशक्तियोंसे युक्त अन्तरिक्षमेंसे जानेवाली तथा जलप्रवाहोंको चीरती हुई जलमें भी जानेवाली नौकाओंसे तुमने भुज्युको ऊपर उठाया।

४३६ नासत्या ! आर्द्रस्य समुद्रस्य पारे धन्वन् तिस्रः क्षपः त्रि अहा अतिव्रजद्भिः शतपद्भिः षड् अश्वैः पतंगैः त्रिभिः रथैः भुज्युं ऊहतुः (१२७६)- हे सत्यपालक अश्विनौ ! तुमने जलमय अगाध समुद्रके परे रेतीले मरुदेशसे तीन रातें और तीन दिन न ठहरते हुए बराबर वेगसे जानेवाले सौ पहियोंके युक्त और छै अश्व शक्तियोंवाले यंत्रोंसे युक्त पक्षी जैसे उडते हुए जानेवाले तीन यानोंसे भुज्युको तुम ले चले।

४३७ अश्विना ! अनास्थाने अनारंभणे अग्रभणे समुद्रे शतारित्रां नावं आतस्थिवांसं भुज्युं यत् अस्तं ऊहथुः, तत् अवीरयेथां (१२७७)- हे अश्विनौ ! स्थानरहित, आलम्बन शून्य, हाथसे जहांसे किसीको पकडना असंभव है, ऐसे अथाह समुद्रमें सौ बल्लियोंसे चलायी जानेवाली नौका पर चढे हुए भुज्युको जो तुम दोनोंने घर पहुंचाया, वह कार्य सचमुच बडी ही बीरतासे पूर्ण था।

४३८ नासत्या ! जुजुरुषः च्यवानात् द्रापिं इव वव्रिं प्र अमुंचतं उत जहितस्य आयुः प्र तिरतं कनीनां पतिं अकृणुतं (१२८२)- हे अश्विनौ ! तुमने जराजीर्ण च्यवानके शरीरसे कवचके तुल्य बुढापेकी चमडीको उतार कर दूर कर दिया, स्वजनों द्वारा त्याग दिए गए उस च्यवानकी आयु दीर्घ कर दी और उसे अनेक सुन्दर नारियोंका पति बनाया।

४३९ अश्विनौ ! वध्रिमत्ये हिरण्यहस्तं अदत्तं (१२८५)- हे अश्विनौ ! तुमने वन्ध्या स्त्रीको हिरण्यहस्त नामक पुत्र प्रदान किया।

४४० वेः पर्णं इव आजा खेलस्य चरित्रं अच्छेदि हि, परितक्म्यायां विश्पलायै हिते धने सर्तवे आयसीं जंघां सद्यः प्रत्यधत्तं (१२८७)- पंछीका पंख जिस प्रकार टूट जाता है, उसी प्रकार युद्धमें खेल नरेशकी सम्बन्धिनी स्त्रीका पैर टूट गया, तब रात्रीके समय ही उस विश्पलाके लिए युद्ध शुरु होनेके बाद चलने फिरनेके लिए लोहेकी टांग तुरन्त ही तुम दोनोंने बिठला दी।

४४१ ऋज्राश्वं पिता अन्धं चकार, तस्मै अनर्वन् अक्षी विचक्षे अधत्तं (१२८८)- ऋज्राश्वको उसके पिताने अन्धा बना दिया था, तब तुमने उस अन्धेको रोगरहित आंखें देखनेके लिए विशेष रूपसे दीं।

४४२ स्तर्यं गां चित् शचीभिः पिन्वथुः (१२९४) – वन्ध्या गायको भी अपनी शक्तियोंसे तुम दोनोंने दुधारु बनाया।

४४३ विप्रुतं रेभं ऋषिं दंसोभिः अश्वं न सं रिणीथः (१३०१)- हे बलवान् अश्विदेवो ! अत्यन्त शिथिल और दुर्बल रेभ ऋषिको तुमने अपने भैषज्य कार्योंसे भलीभांति घोडे जैसा सुदृढ शरीरवाला बना दिया था।

४४४ वां पूर्व्या कृतानि न जूर्यन्ति (१३०१)– तुम्हारे द्वारा किए गए ये पहलेके कार्य कभी जीर्ण या नष्ट नहीं होते।

४४५ पितृषदे दुरोणे जूयन्त्यै घोषायै चित् पतिं आदत्तं (१३०४)- अश्विनौने पिताके घरमें ही बूढी हो जानेवालीको तरुणी बनाकर उसे पति प्रदान किया।

४४६ विषेण विष्वाच जातं अहतं (१३१३) हे अश्विनौ ! तुम दोनोंने विषकी सहायतासे सभी ओर संचार करनेवाले शत्रुके सैनिकोंको मार डाला।

४४७ स्वपतस्य अभुंजतः रेवतः निर्विदे, ता उभा वीव्रा नश्यतः (१३५५)- सोते हुए अर्थात् आलसी और भोजन न देनेवाले कंजूस धनीको देखकर मुझे दुःख होता है, क्योंकि वे दोनों ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

४४८ अयज्यून् नवतिं पारं प्रास्य कर्तं अपि अवर्तयः (१३६८)– इस इन्द्रने यज्ञ न करनेवालोंको नब्बे नदियोंके पार फेंककर बडा भारी काम किया।

४४९ पृक्षयामेषु पज्रः शाता गव्यां रातिः (१३७७) – जहां घोडे बहुत दौडाये जाते हैं, ऐसे संग्रामोंमें शूरवीरको ही गौओंका दान प्राप्त होता है।

४५० यः वाजिनीवान् जनः अस्य महिमघस्य

राधः स्तुषे (१३७८)– जो बलवान् होता है, उस महान् ऐश्वर्यवाले धनकी सब प्रशंसा करते हैं।

४५१ सुवीराः नद्यः सचा सनेम (१३७८) – उत्तम वीरतासे सम्पन्न मनुष्य संघटित हों।

४५२ यः जनः अभि ध्रुक् अक्षणया ध्रुक्, अपः न सुनोति, हृदये यक्ष्मं नि धत्ते (१३७९) जो मनुष्य देवोंसे या मनुष्योंसे द्रोह करता है, टेढेमेढे मार्गसे चलता है और यज्ञ नहीं करता, वह अनेक तरहके रोगोंको अपने हृदयमें धारण करता है।

४५३ यत् ऋतावा हात्राभिः, ईं आपः (१३७९) – जो सत्यमार्ग पर चलता हुआ मंत्रोंसे यज्ञ करता है, वह देवोंकी कृपा प्राप्त करता है।

४५४ नभोजुवः ! महिना निरवस्य राधः प्रशस्तये रथवते (१३८१) आकाशको व्यापनेवाले देवो ! तुम अपनी शक्तिसे लोगोंका अहित करनेवाले दुष्टका धन प्रशंसनीय और उत्तम रथवाले वीरको देते हो।

४५५ यस्य सूरेः दशतयस्य नंशे, एतं शर्ध धाम, इति अवोचन् (१३८२)- जिस विद्वान्के अन्नको हम खाते हैं, उसे हम बलवान् बनावें, इसप्रकार देवगण कहते हैं।

४५६ धाया ऋतस्य धाम न मिनाति, अहः अहः निष्कृतं आचरन्ती (१३९४)- यह स्त्री उषा सत्यके व्रतको नहीं तोडती और प्रतिदिन नियत स्थान पर आती और नियमपूर्वक रहती है।

४५७ उषः ! ऋतस्य रश्मिं अनुयच्छमाना अस्मासु भद्रं क्रतुं धेहि (१३९८)- हे उषा ! सूर्यकी किरणोंके अनुकूल रहनेवाली तू हमारे अन्दर कल्याणकारक कर्म करनेकी बुद्धि स्थापित कर।

४५८ अरेपसा तन्वा शाशदाना न अर्भात् ईषते, न महः, विभाती (१४०४) निष्पाप शरीरसे प्रकाशित होती हुई यह उषा न छोटेसे दूर भागती है और न बडेसे दूर भागती है अपितु सब पर समान रूपसे प्रकाशती है।

४५९ उषः ! पृणतः प्रबोधय, अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु (१४०८)– हे उषा ! तू दाताओंको जगा, अज्ञानी और दान न देनेवाले कंजूस बनिये सो जाएं।

४६० प्रातः इत्वा रत्नं दधाति (१४३२) सूर्य सबेरे आकर लोगोंको रत्न देता है।

४६१ चिकित्वान् तं प्रतिगृह्य नि धत्ते (१४१२)– पर केवल बुद्धिमान् ही उस रत्नको लेकर अपने पास रखता है।

४६२ यः प्रातः आयन्तं वसुना उत् सिनाति, सुगुः, सुहिरण्यः, सु अश्वः असत् (१४१३)- जो मनुष्य सबेरे आते हुए याचकको धनसे बांध देता है, वह उत्तम गौ, सोने और घोडेसे युक्त होता है।

४६३ ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः घृतस्य धाराः उप यन्ति (१४१५)– इस समय यज्ञ करनेवाले तथा आगे भी यज्ञ करनेवालोंको गायें घी की धारायें प्राप्त कराती हैं।

४६४ श्रितः यः प्रिणाति नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति (१४१६)- जो अपने आश्रितोंको तृप्त करता है, वह सदा सुखमें रहता है।

४६५ सह देवेषु गच्छति (१४१६)- वह देवोंमें जाकर बैठता है।

४६६ सिन्धवः आपः तस्मै घृतं क्षरन्ति (१४१६)– जलप्रवाह उस दानीके लिए तेजस्वी जल बहाते हैं।

४६७ दक्षिणा तस्मै सदा पिन्वते (१४१६)– यह पृथ्वी उसके लिए सदा ही अन्नसे भरपूर रहती है।

४६८ दक्षिणावन्तः आयुः प्र तिरन्त (१४१७)- दक्षिणावालोंकी आयु बढती है।

४६९ पृणन्तः दुरितं एनः मा आरन् (१४१८)– देवों और मनुष्योंको तृप्त करनेवालेको दुःख और पाप नहीं प्राप्त होते।

४७० सूरयः सुव्रतासः मा जारिषुः । अपृणन्तं शोकाः सं यन्तु (१४१८)- विद्वान् और उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले मनुष्य वृद्ध न हों। देवोंको तृप्त न करनेवालेको शोक प्राप्त हों।

४७१ संचक्षे अस्यै भुजे (१४३६)– दीर्घायु प्राप्तिके लिए ही संसारका उपभोग करें। मनुष्यका भोग सीमातीत न होकर दीर्घायु प्राप्तिमें सहायक हो।

४७२ सखीयते विश्वश्रुष्टिः, श्रवस्यते रयिः इव (१४३७) यह अग्नि अपने साथ मैत्रीकी इच्छा करनेवालेको सब कुछ देता है और धनकी इच्छा करनेवालेके लिए यह धनके समुद्रके समान ही है।

४७३ ऋतस्य पथा नमसा तं वातयामसि (१४३८) – सत्यके मार्गसे तथा नम्रतासे उस अग्रणीकी हम सेवा करते हैं।

४७४ सुकृते वार्यं ऋण्वति, द्वारा वि ऋण्वति (१४४२)- उत्तम कर्म करनेवालोंके लिए यह धन देता है, उनके लिए यह धनके द्वार खोल देता है।

४७५ सः वरुणस्य धूर्तेः न त्रासते (१४४३)– वह अग्नि यज्ञमें बाधा पहुंचानेवाले धूर्तोंसे हमारी रक्षा करे।

४७६ अपाका सन्तं रथं प्र नयसि, प्र नयसि (१४४५)- जो भक्त अपरिपक्व बुद्धिवाला होता है, उसके पास इन्द्र अपना रथ ले जाता है और उसे आगे बढाता है।

४७७ शूर! अररु मर्त्यं श्वावीः, परि वृणक्षि (१४४७)- यह शूर इन्द्र कष्ट पहुंचानेवाले, इसीलिए मारे-जाने योग्य असुरको दूर करता और काटता है।

४७८ विश्वं शत्रुं स्तृणोषि शत्रुः त्वा नहि स्तरते (१४४८)- यह इन्द्र सारे शत्रुओंको मारता है, पर सब शत्रु मिलकर भी उस अकेले इन्द्रको नहीं मार सकते।

४७९ उग्र! ऊतिभिः कयस्य चित् अति मतिं वि सु नम (१४४९)- हे वीर! अपने रक्षणोंके प्रकारसे प्रसिद्ध शत्रुके अभिमानको नीचा कर दे।

४८० अनेनाः मन्यसे (१४४९)- हे इन्द्र! शत्रुओंको मारने पर भी तू निष्पाप ही माना जाता है।

४८१ परीणसा रायः अंहसा पथा याहि (१४५३) - सब ओरसे धन होनेपर भी पापरहित मार्गसे जाना चाहिए।

४८२ पापस्य रक्षसः हन्ता विप्रस्य त्राता (१४५५) - यह इन्द्र पापी राक्षसोंका विनाशक और ज्ञानियोंका रक्षक है।

४८३ विश्वेषु आजिषु आर्यं आवत् (१४६३)- इन्द्र सब युद्धोंमें केवल मनुष्यकी ही रक्षा करता है।

४८४ मनवे अव्रतान् शासत् (१४६३)- मननशील पुरुषके लिए नियम तोडनेवालों पर शासन करता है।

४८५ (इन्द्रः) अयज्युं मर्त्यं शासः, महीं पृथिवीं अमुष्णाः (१४६९)- इन्द्रने यज्ञसे हीन मनुष्यको दण्डित किया और विशाल पृथ्वीको उससे छीना।

४८६ वृषा मृधः हन्तवे चिकेतति (१४७१)- यह बलवान् इन्द्र हिंसकोंको मारनेके लिए हमेशा सावधान रहता है।

४८७ (इन्द्र) ऋतस्य क्षयं वा असि (१४७५)- हे इन्द्र! तू सत्यका स्थान प्राप्त करनेवाला है।

४८८ क्राणाः ऊतयः दक्षं इरध्यै सचन्ते (१४८७) - कर्मशील पुरुषार्थी और रक्षाके इच्छुक मनुष्य बलको प्राप्त करनेके लिए उद्योग करते हैं।

४८९ उषासः भद्रा वस्त्रा तन्वाते (१४९९)- उषायें हितकारी वस्त्र बुनती हैं।

४९० सबर्दुघा धेनुः विश्वा वसूनि दोहते (१४८९) - दूध रूपी अमृत देनेवाली गौ सब धन देती है।

४९१ शुक्रासः शुचयः तुरण्यवः उग्रा भुर्वणि मदेषु इषणन्त (१४९०)- बलवान्, शुद्ध, त्वरासे काम करनेवाले उग्रवीर, भरण पोषण करनेवाले आनन्दके समय तुमको चाहते हैं।

४९२ अनर्वाणं अंहसः परिपातः (१५०५)- जो किसीसे शत्रुता नहीं रखता, ऐसे मनुष्यकी मित्रावरुण दुःखोंसे रक्षा करते हैं।

४९३ दाश्वांसं, ऋजूयन्तं अनुव्रतं अर्यमा अंहसः अभि रक्षति (१५०५)- दान देनेवाले, सरल और सत्य-मार्गपरसे चलनेवालेकी अर्यमा दुःखोंसे रक्षा करता है।

४९४ विपन्यवः क्रत्वा बुभुज्रिरे (१५१३)- बुद्धिमान् जन अपने पुरुषार्थसे भोगोंको भोगते हैं।

४९५ देवस्य दर्शतं भर्गः वपुषे धायि (१५३९)- दिव्य अग्निका वह दर्शनीय तेज शरीरकी सुदृढताके लिए लोक धारण करते हैं।

४९६ साम्राज्याय प्रतरं दधानः अस्तावि (१५५१) - साम्राज्यको उत्तमतासे धारण करनेवाला राजा प्रजाओं द्वारा प्रशंसित होता है।

४९७ सु प्रतीकस्य भानवः अजराः (१५६७)- शुभ मुखवाले मनुष्यका तेज चारों ओर फैलता है।

४९८ मरुतां स्वनः इव सृष्टा सेना इव दिव्या अशनिः इव न वारय (१५६९)- मरुतोंके गर्जनके समान, आक्रमण करनेवाली सेनाके समान तथा आकाशके वज्रके समान बलशाली इस अग्निको कोई हटा नहीं सकता।

४९९ न शुक्रवर्णां धियं उत् यंसते (१५७१)- वह अग्नि हमारी निर्मल बुद्धिको प्रेरित करता है।

५०० मानुषा युगा पुरुचरन् अजरः (१५७६)- अनेकों मानवी युगोंतक अर्थात् अनन्तकालतक बहुत संचार करता हुआ भी यह अग्नि कभी बूढा नहीं होता, सदा तरुण ही बना रहता है।

५०१ धीरः स्वेन मनसा यत् अग्रभीत्, प्रथमं न अपरं, वचः न मृष्यते (१५८२)- धीर बुद्धिमान् मनुष्य जो मनसे निश्चय कर लेता है, उसे पहले ही कर डालता है, बादमें नहीं, क्योंकि वह किसीका कहना सुनना पसन्द नहीं करता।

५०२ अप्रदृपितः अस्य क्रत्वा सचते (१५८१)- गर्वहीन मनुष्य ही इस अग्निके बलसे युक्त होता है।

५०३ मर्त्येभ्यः वयुना वि अब्रवीत् (१५८४)-यह अग्रणी अग्नि मनुष्योंको ज्ञानका उपदेश देता है।

५०४ त्वः पीयति, त्व अनु गृणाति (१५९१)-एक

मनुष्य इस देवको पीडा पहुंचाता है, तो दूसरा मनुष्य इस देवकी स्तुति करता है।

५०५ तान् सुकृतः विश्ववेदाः ररक्ष (१५९२)- यह अग्नि पुण्यशालियोंकी रक्षा करता है।

५०६ अघायुः अररिवान् अरातिः मृक्षीष्ट (१५९३) - पापी, दान देनेसे रोकनेवाला तथा स्वयं भी दान न देनेवाला मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है।

५०७ दुरुक्तैः तन्वं मृक्षीष्ट (१५९३) दूसरोंको बुरे शब्द बोलनेवालेका ही शरीर क्षीण हो जाए।

५०८ यः नार्मिणीं पुरं आ अदीदेत् (१६०२)- यह अग्नि इस अविनश्वर आत्माकी नगरी इस शरीरको चारों ओरसे प्रकाशित करता है।

५०९ बृहत् ऋतं आ घोषथः (१६११)- जो सत्य हो उसकी घोषणा करनी चाहिए।

५१० विश्वा अनृतानि अव अतिरतं, ऋतेन सचेथे (१६१७)- ये मित्र और वरुण असत्य भाषण करनेवालोंको नष्ट करके मनुष्योंको सत्यसे संयुक्त करते हैं।

५११ देवनिदः प्रथमा अजूर्यन् (१६१८) देवोंकी निन्दा करनेवाला प्रथम शक्तिशाली होते हुए भी बादमें शक्तिहीन हो जाते हैं।

५१२ मामतेयं धेनवः तस्मिन् ऊधन् पीपयन् (१६२२)- गायोंसे अत्यधिक ममता या प्रेम रखनेवालोंको गायें अपने सभी थनोंसे दूध देकर पुष्ट करती हैं।

५१३ (मित्रावरुणौ) आ विवासन् अदितिं उरुष्येत् (१६२२)- मित्रावरुणकी उपासना करते हुए मनुष्य मृत्युको दूर कर सकता है।

५१४ ऋताय हविर्दे जनाय अदितिः धेनुः पीपाय (१६२६)- सत्यमार्ग पर चलनेवाले तथा हवि देनेवाले मनुष्यको न काटे जाने योग्य गायें तृप्त करती हैं।

५१५ यस्य विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति, तत् विष्णुः वीर्येण स्तवते (१६२९)- जिसके आधार पर सारे भुवन रहते हैं वह विष्णु अपने पराक्रमके कारण सर्वत्र प्रशंसित होता है।

५१६ एकः इत् इदं दीर्घं आयतं सधस्थं वि ममे (१६३०)- यह विष्णु अकेला ही इस लम्बे और चौडे द्युलोकको नाप देता है।

५१७ मधुना पूर्णा पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति (१६३१)- इस विष्णुके अमृतसे भरपूर कदम कभी नष्ट न होते हुए अपनी धारण शक्तिसे हर्षित होते हैं।

५१८ देवयवः नरः यत् मदन्ति, अस्य तत् प्रियं पाथः अश्यां (१६३२)- देवत्वको प्राप्त करनेवाले मनुष्य जहां आनंद करते हैं, विष्णुके उस प्रिय स्थानको हम भी प्राप्त करें।

५१९ उरुक्रमस्य बन्धुः (१६३२)- यह विष्णु पराक्रम करनेवाले उद्योगियोंका भाई अर्थात् सहायक होता है।

५२० विष्णोः परमे पदे मध्वः उत्सः (१६३२)- विष्णुके उस उत्तम स्थानमें अमृतका झरना बहता है।

५२१ वां गमध्यै ता वास्तूनि यत्र भूरिशृंगाः गावः अयासः (१६३३)- हे दम्पती! तुम्हारे निवासके लिए घर ऐसे हों, जहां अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्यकिरणें प्रविष्ट हो सकें, अथवा घर ऐसे हों, कि जहां उत्तम सींगोंवाली गायें रह सकें।

५२२ अत्र अह वृष्णः परमं पदं अवभाति (१६३३) - ऐसे ही उत्तम घरोंमें बलवान् विष्णुका वह श्रेष्ठ स्थान प्रकाशित होता है।

५२३ मर्त्यः स्वर्दृशः अस्य द्वे इत् क्रमणे भुरण्यति (१६३८)- मनुष्य तेजस्वी दृष्टिवाले इस विष्णुके दो पैर का ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

५२४ अस्य तृतीयं न किः आ दधर्षति (१३६८) - इस विष्णुके तीसरे कदमको कोई भी हरा नहीं सकता।

५२५ विष्णो! महः ते सुमतिं भजामहे (१६४२)- हे व्यापक देव! महान् तुम्हारी उत्तम बुद्धिको हम प्राप्त करें।

५२६ वेधाः आर्यं अजिन्वत् (१६४४)- बुद्धिमान् विष्णु श्रेष्ठ पुरुषको हरतरहसे उत्तम बनाता है।

५२७ यत् वां बद्धः तमनि क्षां खादति (१६५४)- जिसने तुम दोनोंके भक्तको बांधा, वही अब भूमि पर धूल खाता पडा है।

५२८ अद्रुहः पितुः मातुः मन हविर्भिः मन्ये (१६५८)- द्रोह न करनेवाले माता पिताका मन अपनी स्तुतियोंसे प्रसन्न करना चाहिए।

५२९ सु-अपसः सुदंससः ते सूनवः पूर्वचित्तये मही मातरा जज्ञुः (१६५९)- उत्तम कर्म करनेवाले तथा दर्शनीय वे पुत्र प्रथम ज्ञान प्राप्त करनेके लिए इन दोनों बडी माताओं अर्थात् द्यावापृथिवियोंको जानते हैं।

५३० स सूर्यः मायया भुवनानि पुनाति (१६६४) - वह सूर्य अपनी शक्तिसे सभी लोकोंको पवित्र करता है।

५३१ महाकुलं चमसं न निन्दिम, भूतिं इत् ऊदिम (१६६७)- उत्तम जमीन पर होनेवाले अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, अपितु उसकी प्रशंसा ही करनी चाहिए।

५३२ य देवपानं अनिन्दिषुः एनान् हनाम, त्वष्टा अब्रवीत् (१६७१)– जो देवोंके द्वारा भक्षण करने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, उन्हें हम मारें, ऐसा त्वष्टाने कहा।

५३३ सु-अपस भागं एतन (१६७२)– उत्तम कर्म करनेवाले ही यज्ञके भागको प्राप्त करते हैं।

५३४ ऋभुः विभ्वा वाजः देवान् अगच्छत (१६७२) – ज्ञानी, तेजस्वी और बलवान् ही देवत्व प्राप्त कर सकते हैं।

५३५ यत् अ-गोह्यस्य गृहे असस्तन, तत् इदं नु अनु गच्छथ (१६७७)– जबतक मनुष्य गायके न रहने योग्य घरमें रहेंगे, जबतक वे ऐश्वर्यको नहीं पा सकते।

५३६ यत्, तत् शुभानैः वोचेः (१७७०)– जो कुछ भी करना हो, वह मीठी और शुभ वाणीमें ही बोला जाए।

५३७ यत् वशाम, क्रत्वा (१७७४)– हम जो भी प्राप्त करना चाहें, उसे उद्योगसे ही प्राप्त करें।

५३८ स्वेन भामेन तविषः बभूवान् (१७७५)– मनुष्योंको चाहिए कि वह अपने बलसे ही बलवान् बने।

५३९ ते अनुत्तं न किः (१७७६)– इस इन्द्रसे अप्रेरित ऐसा कोई पदार्थ नहीं है।

५४० यानि करिष्या कृणुहि, न जातः नशते न जायमानः (१७७६)– जिन कर्तव्योंको यह इन्द्र करता है, उसका अन्त पानेवाला न कोई हुआ है और न होगा।

५४१ या नु दधृष्वान् मनीषा कृणवै मे ओजः विभुः (१७७७)– जिस कर्मोंको यह इन्द्र करना चाहता है, उन्हें मन लगाकर करता है, इसीलिए उसका यश चारों ओर फैलता है।

५४२ अहं उग्रः वि दानः यानि च्यवं एषां इत् ईशे (१७७७)– यह इन्द्र वीर और विद्वान् है, इसलिए यह जिनकी तरफ जाता है, उनका स्वामी बन जाता है।

५४३ मानेभ्यः शुरुधः रद (१८२६)– अपने मानकी प्रतिष्ठाके लिए शत्रुओंका संहार करना चाहिए।

५४४ अमृतस्य चेतनं यज्ञं (१८३०)– यज्ञ अमरताको जगानेवाला है।

५४५ मरुतः नमसः इत् वृधासः (१८३३)- मरुत् वीर उत्तम कर्मोंको हा बढावा देते हैं।

५४६ सुदानवः मरुतः! सा वः शरुः आरे, अश्मा आरे (१८३९)– हे उत्तम दान देनेवाले मरुतो! वह तुम्हारा शस्त्र और वज्र हमसे दूर रहे।

५४७ मित्रेरुन् अदाशान् जघन्वान् (१८५९)- इन्द्रने मित्रके समान हित करनेवाले सज्जनोंके शत्रु और दान न देनेवालोंको मारा।

५४८ अवृकतमः नृपाता (१९५३)– यह इन्द्र छल-कपटसे रहित मनुष्योंका पालक है।

५४९ न मृषा श्रान्तं देवाः अवन्ति (१८८८)– झूठ-मूठमें थक जानेका ढोंग दिखानेवालेका देव रक्षा नहीं करते अर्थात् जो प्रयत्न करके सचमुच थक जाता है उसीकी देवता रक्षा करते हैं।

५५० हे अग्ने! राये अस्मान् सुपथा नय (१९७५) – हे तेजस्वी देव! ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हमें तू उत्तम मार्गसे ही ले चल।

५५१ विश्वानि वयुनानि विद्वान् (१९७५)– वह अग्निदेव हमारे सभी कर्मोंको जानता है।

५५२ अस्मात् जुहुराणं एनः यथि (१९७५)– हम कुटिल पापोंसे दूर रहें।

५५३ भूयिष्ठां नमः उक्तिं विधेम (१९७५) हम प्रतिदिन इस देवकी भक्ति करें; पापसे बचनेका एकमात्र उपाय परमात्माकी उपासना है।

५५४ स्वस्तिभिः अस्मान् विश्वा दुर्गाणि पारय (१९७६)– कल्याणकारी मार्गोंसे हम सब तरहके दुर्गम पापों एवं दुःखोंसे पार हों।

५५५ पृथ्वीः पूः च उर्वी भव (१९७६)– यह पृथ्वी और नगर हमारे लिए विस्तृत और उत्तम हों।

५५६ अन्-अग्नित्राः कृष्टीः अभि अमन्त (१९७७) अग्निकी उपासना न करनेवाले अर्थात् नास्तिक मनुष्य रोगी होते हैं।

५५७ ते जरितारं भयं अपरं मा विदत् (१९७८)- इस अग्निकी उपासना करनेवालेको आज या कल कभी भी भय प्राप्त नहीं होता।

५५८ नः अघाय अविष्यवे दुच्छुनायै रिपवे मा अवसृज (१९७९)– हे अग्ने! हमको पाप करनेवाले, अधर्मसे अन्नको खानेवाले, सुखके नाश करनेवाले शत्रुओंके हाथमें मत सौंप।

५५९ त्वावान् रिरिक्षोः निनित्सोः वि यंसत् (१९८०) – तेरा उपासक हिंसक और निन्दकोंसे दूर रहता है।

५६० अस्य श्लोकः दिवि पृथिव्यां ईयते (१९८६) – इस बृहस्पतिका यश द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैलता है।

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

प्रथम मण्डल

मन्त्रवर्णानुक्रमसूची

अकारि त इन्द्र गोतमेभिः १,६३,९
अक्षन्नमीमदन्त १, ८२, २
अक्षितोतिः सनेदिमं १, ५, ९
अगच्छतं कृपमाणं परावति
१, ११९, ८
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः
१, १७९, ६
अग्नि दूतं प्रति यदब्रवीतना
१, १६१, ३
अग्नि दूतं वृणीमहे १, १२, १
अग्नि विश्वा अभि पृक्षः १, ७१, ७
अग्नि होतारं मन्ये दास्वन्तं
१, १२७, १
अग्नि होतारमीळते वसुधिति
१, १२८, ८
अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः १, १, २
अग्निना रयिमश्नवत् १, १, ३
अग्निनाग्निः समिध्यते १, १२, ६
अग्निना तुर्वशं यदुं १, ३६, १८
अग्निमग्नि हवीमभिः १, १२, २
अग्निमीळे पुरोहितं १, १, १
अग्निर्वक्ने सुवीर्यं १, ३६, १७
अग्निर्होता कविक्रतुः १, १, ५
अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यमीवा
१, १८९, ३
अग्ने त्वं पारया नव्यो १, १८९, २
अग्ने नय सुपथा राये, १, १८९, १
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य १, १४४, ७
अग्ने तव त्यदुक्थ्यं १, १०५, १३
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो १, १२, ३
अग्ने देवाँ इहा वह सादया १, १५, ४
अग्ने पत्नीरिहा वह १, २२, ९
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो
१, ४४, १०
अग्ने यं यज्ञमध्वरं १, १, ४
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां १, २४, २
अग्ने वाजस्य गोमत १, ७९, ४
अग्ने विवस्वदुषसः १, ४४, १
अग्ने शुक्रेण शोचिषा १, १२, १२
अग्ने सुखतमे रथे १, १३, ४
अग्नीषोमाविभानि नो १, ९३, ११
अग्नीषोमावनेन वां १, ९३, १०
अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य
१, ९३, ७
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न
१, ९३, १२
अग्नीषोमा सवेदसा १, ९३, ९
अग्नीषोमाविमं सु मे १, ९३, १
अग्नीषोमा य आहुतिं १, ९३, ३
अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं १, ९३, ४
अग्नीषोमा यो अद्य १, ९३, २
अच्छा वदा तना गिरा १, ३८, १३
अच्छिद्रा सूनो सहसो १, ५८, ८
अचेति दस्रा व्युनाकमृण्वथो
१, १२९, ४
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र
१, १६४, ६
अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैः
१, १७३, २
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः
१, ९२, ३
अजो न क्षां दाधार १, ६७, ५
अजोहवीन्नासत्या करा वां
१, ११६, १३
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां
१, ११७, १५
अजोहवीदश्विना वर्तिका वा
१, ११७, १६
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीः १,१७४,३
अतः परिज्मन्ना गहि १, ६, ९
अतप्यमाने अवसावन्ती १, १८५, ४
अत्यो नाज्मन् सर्गः प्रसक्तः
१, ६५, ६
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं १, १६३, ७
अत्राह गोरमन्वत १, ८४, १५

अत्राह तद् वहेथे मध्व १, १३५, ८
अतारिष्म तमसस्पारमभ्यो १, ९२, ६
अतारिष्म तमसस्पारमस्य १,१८३,६
अतारिष्म तमसस्पारमस्य १,१८४,६
अति नः सश्चतो नय १, ४२, ७
अति वायो ससतो याहि १, १३५, ७
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां १,३२,१०
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः १,१६५,५
अतो देवा अवन्तु नो १, २२, १६
अतो विश्वान्यद्भुता १, २५, ११
अथा तं अंगिरस्तम १, ७५, २
अथा ते अन्तमानां १, ४, ३
अथा न उभयेषां १, २६, ९
अर्थमिद् वा उ अर्थिन १, १०५, २
अददा अर्भां महते वचस्यवे १, ५१, १३
अद्या दूतं वृणीमहे १, ४४, ३
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य १, ११५,६
अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी १,१३६,२
अद्रौ चिदस्मा १, ७०, ४
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम् १,८९,१०
अदृश्रमस्य केतवो १, ५०, ३
अदृष्टान् हन्त्याय १, १९१, २
अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः १, १२२, ११
अध ते विश्वमनु हासदिष्टये १, ५७, २
अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु १, १२१, ६
अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो १, ९४, ११
अध स्वनान्मरुतां १, ३८, १०
अध स्वप्नस्य निर्विदे १, १२०, १२
अधा नो विश्वसौभग १, ४२, ६
अधा मन्ये श्रत् ते अस्मा १, १०४, ७
अधारयन्त वन्हयो १, २०, ८
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं १, ८३, ३
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवा १, ९२, ४
अधि श्रियं नि दधुः १, ७२, १०
अधि सानौ नि जिघ्नते १, ८०, ६
अधीवासं परि मातू रिहन्नह १, १४०, ९
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्ता १, ११७, २०
अनच्छये तुरगातु जीवम् १,१६४,३०
अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं १,१९०,१
अनवद्यैरभिद्युभिः १, ६, ८
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा १,१५२,५
अनारम्भणे तदवीरयेथां १, ११६,५
अनुकामं तर्पयेथां १, १७, ३
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु १, १६५, ९
अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे १, १२१, ११
अनु त्वा रथो अनु मर्यो १, १६३, ८
अनुप्रत्नस्यौकसो १, ३०, ९
अनुव्रताय रन्धयन्नप व्रतान् १,५१,९
अनु स्वधामरक्षन्नापो अस्या १, ३३, ११
अनेहो दात्रमदितेरनर्वं १, १८५, ३
अप त्ये तायवो यथा १, ५०, २
अप त्यं परिपन्थिनं १, ४२, ३
अप नः शोशुचदघम् १, ९७, १
अपश्यं गोपामनिपद्यमानम् १, १६४, ३१
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे १, ११२, २४
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोः १, ५५, ८
अप्स्वन्तरमृतं १, २३, १९
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने १,१४३,८
अप्सु मे सोमोऽब्रवीत् १, २३, २०
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतो १, १६४, ३८
अपां नपातमवसे १, २२, ६
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्र १, ३२, ७
अपान्यदेत्यभ्यन्यदेति १, १२३, ७
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां १,१५२,३
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमो १,५४,१०
अपो देवीरुप ह्वये १, २३, १८
अबुध्ने राजा वरुणो वनस्य १,२४,७
अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो १,१५७,१
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची १,१२४,७
अभि त्यं मेष पुरुहूतमृग्मियं १,५१,१
अभि त्वा गोतमा गिरा १, ७८, १
अभि त्वा देव सवितः १, २४, ३
अभि त्वा पूर्वपीतये १, १९, ९
अभि द्विजन्मा त्रिवृदन् १, १४०, २
अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि १, १४९, ४
अभि नो देवीरवसा १, २२, ११
अभिमवन्वन्त्स्वभिष्टि १, ५१, २
अभि यज्ञं गृणीहि नो १, १५, ३
अभिव्लग्या चिदद्रिवः १, १३३, २
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् १, ३३, १३
अभि सूयवसं नय १, ४२, ८
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो १, ५२,
अभिष्टने ते अद्रिवो १, ८०, १४
अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या १, १४०, १३
अभीमृतस्य दोहना १, १४४, २
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं १, ३५, ५
अभूदिदं वयुनमो षु भूषता १,१८२,१
अभूदु पारमेतवे १, ४६, ११
अभूदु भा उ अंशवे १, ४६, १०
अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र १, १६५, ११
अमन्दान्त्स्तोमान् प्र भरे १,१२६,१
अम्बयो यन्त्यध्वभिः १, २३, १६
अम्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे १, १६९, ३
अमिनती दैव्यानि व्रतानि १,१२४,२
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चैः १, २४, १०
अमी ये देवाः स्थन १, १०५, ५
अमी ये पञ्चोक्षणो १, १०५, १०
अमी ये सप्त रश्मयः १, १०५, ९
अमूर्या उप सूर्ये १, २३, १७

अयमु ते समुतसि १, ३०, ४
अयं जायत मनुषो धरीमणि १,१२८,१
अयं देवानामपसामपस्तमो १,१६०,४
अयं देवाय जन्मने १, २०, १
अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे
१, ९४, १२
अयं मित्राय वरुणाय शंतमः १,१३६,४
अयं मे स्तोमो अग्नियो १, १६, ७
अयं यज्ञो देवया अयं मियेध
१, १७७, ४
अयं वां मधुमत्तमः १, ४७, १
अयं समह मा तनू १, १२०, ११
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता
१, १६४, २९
अयं स होता यो द्विजन्मा १,१४९,५
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः १, ५०, ९
अयुञ्जन्त इन्द्र विश्वकृष्टीः १,१६९,२
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनां १, ३३, ६
अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे १,३२. ६
अराधि होता स्वर्निषत्तः १, ७०, ८
अरित्रं वा दिवस्पृथु १, ४६, ८
अरुणो मा सकृद् वृकः १, १०५, १८
अरं कृण्वन्तु वेदिं १, १७०, ४
अर्चा दिवे बृहते १, ५४, ३
अर्चा शक्राय शाकिने १, ५४, २
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो १, ७३, ९
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो १,१५७,३
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहु १,१०४,९
अर्वाचं दैव्यं जनं १, ४४, १०
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो
१, ४७, ८
अव त्मना भरते केतवेदा १,१०४,८३
अव ते हेळो वरुण नमोभिः १,२४,१४
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना
१, १०६, ३
अवः परेण पर एनावरेण १,१६४,१७
अवः परेणं पितरं यो अस्या
१, १६४, १८
अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः
१, १३३, ६
अवसृजन्नुप त्मना १, १४२, ११
अव सृजा वनस्पते १, १३, ११
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय
१, ११६, २३
अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा १,१६८,४
अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वन्त १, १८२, ६
अवा नो अग्न ऊतिभिः १, ७९, ७
अवासां मघवञ्जहि १, १३३, ३
अविन्दद् दिवो निहितं गुहा १,१३०,३
अवेयमश्वैद् युवतिः १, १२४, ११
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः
१, ११४, ११
अवोचाम निवचनान्यस्मिन्
१, १८९, ८
अवोचाम रहूगणा १, ७८, ५
अषाळ्हं युत्सु पृतनासु १, ९१, २१
अष्टा महो दिव आदो हरी इह
१, १२१, ८
अष्टौ व्यख्यत् ककुभः १, ३५, ८
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया
१, ११४, ३
अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैः १,११७,४
अश्वं न त्वा वार वन्तं १, २७, १
अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति
१, ८३, १
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा
१, १२३, १२
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो
१, ४८, २
अश्विना पिबतं मधु १, १५, ११
अश्विना पुरुदंससा १, ३, २
अश्विना मधुमत्तमं १, ४७, ३
अश्विना यज्वरीरिषो १, ३, १
अश्विना वर्तिरस्मदा १, ९२, १६
अश्विनोरसनं रथमनश्वं १.१२०,१०
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र १ ३२,१२
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां १,१०९, २
असमं क्षत्रमसमा मनीषा १, ५४, ८
असर्जि वां स्थविरा वेधसा १,१८१,७
अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः
१. १४१, १३
अस्ति हि ष्मा मदाय १. ३७, १५
अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दधं
१, १३९, १
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे
१, १२४, १३
अस्मा इदु ग्नाश्चित् १, ६१, ८
अस्मा इदु त्यदनु १, ६१, १५
अस्मा इदु त्यमुपमं १, ६१, ३
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षत् १, ६१, ६
अस्मा इदु प्र तवसे १, ६१, १
अस्मा इदु प्रय इव १, ६१, २
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो
१, ६१, १२
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्ये
१, ६१, ५
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि १.६१,४
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये १,१२९,४
अस्माकं शिप्रिणीनां १, ३०, ११
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिहि
१, १४०. १०
अस्मादहं तविषादीषमाण १,१७१.४
अस्मान्त्सु तत्र चोदय १, ९, ६
अस्मे ऊ षु वृषणा १, १८४. २
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् १, ९, ८
अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं
१, १४१. ११
अस्मे वत्सं परिषन्तं १, ७२, २
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु
१, १८४, ४
अस्मे सोम श्रियमधि १, ४३, ७
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर
१, ५७, ३
अस्य त्वेषा अजरा १. १४३, ३
अस्य पीत्वा शतक्रतो १, ४, ८
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋताया १,१२१.४
अस्य वामस्य पलितस्य १, १६४.१
अस्य वीरस्य बर्हिषि १, ८६, ४
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो १, ८६, ५
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते १, ६०, २
अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः१,१२२,८

अस्य श्रवो नद्य: सप्त बिभ्रति
१, १०२, २
अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्याम्
१, १९०, ४
अस्या ऊ षु ण उप सातये १,१३८.४
अस्येदु त्वेषसा रन्त १. ६१, ११
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि १, ६१, १३
अस्येदु भिया गिरयश्च दृह्ळा
१, ६१, १४
अस्येदु: मातु: सवनेषु सद्य: १,६१,७
अस्येदेव प्र रिरिचे १,६१, ९
अस्येदेव शवसा शुषन्तं १, ६१, १०
असाम यथा सुषखाय एन १, १७३,९
असाम्योजो बिभृथा सु दानव:
१, ३९, १०
असामि हि प्रयज्यव: १, ३९, ९
असावि सोम इन्द्र ते १, ८४, १
असि यमो अस्यादित्यो १,१६३,३
असि हि वीर सेन्य: १, ८१, २
असुन्वन्तं समं जहि १, १७६, ४
असूत पृश्निर्महते रणाय १,१६८,९
असृग्रमिन्द्र ते गिर: १, ९, ४
असौ य: पन्था आदित्यो १, १०५,१६
अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसं १, ३२, ५
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं १, ३२, २
अहं सो अस्मि य: पुरा १,१०५,७
अहानि गृध्रा: पर्या व १, ८८, ४
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र १, ३२, १४
आक्रीं सूर्यस्य रोचनात् १, १४, ९
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो १,३५,२
आ ग्ना अग्न इहावसे १, २२, १०
आघृणिता परिगघिता १, १२६. ६
आ घ त्वावान् त्मनाप्त: १,३०,१४
आ घा गमद्यदि श्रवत् १, ३०, ८
आ घा योषेव सूनर्युषा १, ४८, ५
आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां १,१७०,१
आ च वहासि तां इह १, ७४, ६
आजुह्वानो न ईड्यो १, १८८, ३
आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभव:
१, १११, ३
आ तत् ते दस्रमन्तुम १, ४२, ५
आत्मानं ते मनसारादजानाम्
१, १६३, ३
आ त्वा कण्वा अहूषत १. १४, २
आ त्वा जुवो रारहाणा अभि
१, १३४, १
आ त्वा वहन्तु हरयो १, १६, १
आ त्वा विप्रा अचुच्यवु: १, ४५, ८
आ त्वा विशन्त्वाशव: १, ५, ७
आ त्वेता निषीदत १, ५, १
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते १,१७७,३
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं १, ८४, ३
आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो १, १८३, ३
आ तू न इन्द्र कौशिक १, १०, ११
आ ते धामानि हविषा यजन्ति
१, ९१, १९
आ ते सुपर्णा अमिनन्त १, ७९, २
आथर्वणायाश्विना दधीचे १,११७,२२
आदस्य ते ध्वसयन्तो १, १४०, ५
आदंगिरा: प्रथमं वयो दधिरे
१, ८३, ४
आदह स्वधामनु १, ६, ४
आदारो वां मतीनां १, ४६, ५
आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्
१, १३१, ५
आदित्ते विश्वे १, ६८, ३
आदिन्मातॄराविशद् यास्वा १,१४१,५
आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु
१, १४१, ६
आवृष्णोति हविष्कृति १, १८, ८
आ दैव्यानि व्रता १, ७०, २
आ धेनवो मामतेयमवन्ती १,१५२,६
आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति
१, १८६, १
आ न ऊर्जं वहतमश्विना १,१५७,४
आ नस्ते गन्तु मत्सरो १, १७५, २
आन्यं दिवो मातरिश्वा १, ९३, ६
आ नासत्या गच्छतं हूयते हवि:
१, ३४, १०
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह
१, ३४, ११
आ नो नियुद्भि: शतिनीभिरध्वरं
१, १३५, ३
आ नो अग्ने रयिं भर १, ७९, ८
आ नो अग्ने सुचेतुना १, ७९, ९
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेन
१, ३४, १२
आ नो नावा मतीनां १, ४६, ७
आ नो बर्हीं रिशादसो १, २६, ४
आ नो भज परमेष्वा १, २७, ५
आ नो भद्रा क्रतावो १, ८९, १
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वय:
१, १११, २
आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा
१, १६७, २
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु
१, १८६, २
आ पप्रौ पार्थिवं रजो १, ८१, ५
आप्यायस्व मदिन्तम १, ९१, १७
आ प्यायस्व समेतु ते १, ९१, १६
आ पूषञ्चित्रबर्हिष १, २३, १३
आपो अद्यान्वचारिषं १, २३, २३
आपो न देवीरुपयन्ति १, ८३ २
आप: पृणीतभेषजं १, २३, २१
आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीत्
१, १६१, ९
आ भन्दमाने उपाके १, १४२, ७
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू १,१०९.७
आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्य:
१, ११०, ६
आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतना
१, ११०, २
आयजी वाजसातमा १, २८, ७
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् १,७१,८
आ यद् दुव: शतक्रत १, ३०, १५
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता १, ६३, २
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिष:
१, ५२, ४
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छ १, १२५,३
आ य: पुरं नार्मिणीमदीदे १, १४९,३
आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारु:
१, १६५, १४

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिः १, १९, ८
आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत १, १६६, ४
आ यो विवाय सचथाय १, १५६, ५
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः १, ७१, ९
आर्चन्न त्र मरुतः सस्मिन्नाजौ १, ५२, १५
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं १, ११४, १०
आरे सा वः सुदानवो १, १७२, २
आ रोदसी बृहती वेविदानाः १, ७२, ४
आ व इन्द्रं क्रिविं यथा १, ३०, १
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिन् चाकन् १, ३३, १४
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु १,३३,१५
आवहन्ती पोष्या वार्याणि १, ११३, १५
आ वां दानाय ववृतीय दस्रा १, १८०, ५
आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ १,१३५,५
आ वां भूषन् क्षितयो १, १५१, ३
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा १, १८१, २
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं १, १५२, ७
आ वामृताय केशिनीरनूषत १, १५१, ६
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य १,११६,१७
आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं १, ११९, १
आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र १,११८,५
आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा १, ११८, १
आ वां रथो नियुत्वान् १, १३५, ४
आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान् १, १८१, ३
आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु १, ११८, ४
आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः १, ८८, १
आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु १,९५,५
आ वो मक्षू तनाय कं १, ३९, ७
आवो यस्य द्विबर्हसो १, १७६, ५
आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै १, १२२, ५
आ वो वहन्तु सप्तयो १, ८५, ६
आ श्येनस्य जवसा नूतनेना १, ११८, ११
आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं १, १०, ९
आश्विनावश्वावत्येषा १, ३०, १७
आस्थापयन्त युवतिं युवानः १, १६७, ६
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके १, ११६, १४
आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि १, ५१, १२
आ स्वमद्म युवमानो १, ५८, २
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणा १,१२४,९
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो १,५९,३
आ हि ष्मा सूनवे १, २६, ३
इच्छन्त रेतो मिथः १, ६८, ८
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः १, ८४, १४
इत्था हि सोम इन्मदे १, ८०, १
इतो वा सातिमीमहे १, ६, १०
इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि १, १४०, ११
इदमापः प्रवहत १, २३, २२
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतन १,१६१,८
इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु १, १८५, ११
इदं नमो वृषभाय स्वराजे १,५१,१५
इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः १, ११४, ६
इदं विष्णुर्विचक्रमे १, २२, १७
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् १, ११३, १
इन्द्र इद्धर्योः सचा १, ७, २
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा १, २३, ८
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा १, १८२,२
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवो १, ८०, ७
इन्द्र त्वोतास आ वयं १, ८, ३
इन्द्र मिद्गाथिनो बृहत् १, ७, १
इन्द्रमिद्धरी वहतो १, ८४, २
इन्द्रमीशानमोजसा १, ११, ८
इन्द्र वाजेषु नोऽव १, ७, ४
इन्द्रवायू इमे सुता १, २, ४
इन्द्रवायू बृहस्पतिं १, १४, ३
इन्द्रवायू मनोजुवा १, २३, ३
इन्द्रः सहस्रदाव्नां १, १७, ५
इन्द्र सोमं पिब ऋतुना १, १५, १
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं १, ३२, १
इन्द्रस्यांगिरसां चेष्टौ १, ६२, ३
इन्द्राय नूनमर्चतो १, ८४, ५
इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नते १, १३१, १
इन्द्रा याहि चित्रभानो १, ३, ४
इन्द्रा याहि तूतुजान १, ३, ६
इन्द्रा याहि धियेषितो १, ३, ५
इन्द्रावरुण नू नु वां १, १७, ८
इन्द्रावरुण वामहं १, १७, ७
इन्द्रावरुणयोरहं १, १७, १
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो १, ९, १
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे १, ६, ७
इन्द्रो अश्रायि सुध्यो तिरेके १,५१,१४
इन्द्रो दधीचो अस्थभिः १, ८४, १३
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस १, ७, ३
इन्द्रो मदाय वावृधे १, ८१, १
इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं १, ८०, १०
इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः १, ८०, ५
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा १,३२,१५
इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना १,१६१,६
इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं १, १०६, ६
इन्द्रं प्रातर्हवामहे १, १६, ३
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः १, १६४, ४६
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये १, १०६, १
इन्द्रं वयं महाधन १, ७, ५

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् १, ११, १
इन्द्रं वो विश्वतस्परि १, ७, १०
इन्द्रः समस्तु यजमानमार्यं १,१३०,८
इम आ यातमिन्दवः १, १३७, २
इममिन्द्र सुतं पिब १, ८४, ४
इमम् षु त्वमस्माकं १, २७, ४
इमं नु सोममन्तितो १, १७९, ५
इमं मे वरुणश्रुधी १, २५, १९
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः १,१६४,३
इमं यज्ञमिदं वचो १, ९१, १०
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे १, ९४, १
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानी
१, १६३, ५
इमा धाना घृतस्नुवो १, १६, २
इमामग्ने शरणिं मीमृषो न १,३१,१६
इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने १,११४,१
इमां ते धियं प्र भरे महो महीं
१, १०२, १
इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो
१, १३०, ६
इमे चित् तव मन्यवे १, ८०, ११
इमे त इन्द्र ते वयं १, ५७, ४
इमे ये ते सुवायो बाह्वोजसो
१, १३५, ९
इमे वां सोमा अप्स्वा सुता १,१३५,६
इमे सोमास इन्दवः १, १६, ६
इयत्तकः कुषुम्भकः १, १९१, १५
इयत्तिका शकुन्तिका १, १९१, ११
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या
१, १६४, ३५
इयं सा वो अस्मे दीधितिः १,१८६,११
इह त्वष्टारमग्रियं १, १३, १०
इह ब्रवीतु य ईमङ्गवेदा १,१६४,७
इहेन्द्राग्नी उपह्वये १, २१, १
इहेन्द्राणीमुपह्वये १, २२, १२
इहेव शृण्व एषां १, ३७, ३
इहेह जाता समवावशीताम्
१, १८१, ४
इळा सरस्वती मही १, १३, ९
ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः
१, १६३, १०
ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् १,११३,११
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो १,६४,५
ईळते त्वामवस्यवः १, १४, ५
ईळितो अग्न आ वह १, १४२, ४
ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये १,११२,१
उक्थमिन्द्राय शंस्यं १, १०, ५
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू १, ४७, १०
उक्षा महाँ अभि ववक्ष १, १४६, २
उग्रा सन्त हवामहे १, २१, ४
उच्छिष्टं चम्वोर्भर १, २८, ९
उत त्यं चमसं नवं १, २०, ६
उत त्या मे यशसा श्वेतनायै १,१२२,४
उत द्युमत्सुवीर्यं १, ७४, ९
उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा १,१८६,६
उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः १,१८६,७
उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः १,१८६,८
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो १,१४१,१२
उत नः सुभगाँ अरिः १, ४, ६
उत नो धियो गोअग्राः १, ९०, ५
उत नोऽहिर्बुध्न्यो मयस्कः १, १८६,५
उत ब्रुवन्तु जन्तवः १, ७४, ३
उत ब्रुवन्तु नो निदो १, ४, ५
उत मन्ये पितुरद्रुहो १, १५९, २
उत यो मानुषेष्वा १, २५, १५
उत वा यः सहस्य १, १४७, ५
उत वा यस्य वाजिनो १, ८६, ३
उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो १, १५३, ४
उत स्म ते वनस्पते १, २८, ६
उत स्या वां मधुमन् १, ११९, ९
उत स्यां वां रुशती वप्ससो १,१८१,८
उतो नो अस्या उषसो जुषेत
१, १३१, ६
उतो स मह्यमिन्दुभिः १, २३, १५
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते १, ४०, १
उत् ते वयश्चिद् वसतेर १,१२४,१२
उत् ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस
१, १०२, ७
उत् पुरस्तात् सूर्य एति १, १९१, ८
उदगादयमादित्यो १, ५०, १३
उदपप्तदसौ सूर्यः १, १९१, ९
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा १,९२,२
उदीरतां सूनृता उत् पुरन्धीः
१, १२३, ६
उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगात्
१, ११३, १६
उदुत्तमं मुमुग्धि नो १, २५, २१
उदु त्यं जातवेदसं १, ५०, १
उदु त्ये सूनवे गिरः १, ३७, १०
उदुत्तमं वरुणपाशमस्मत् १,२४,१५
उद्यन्नद्य मित्रमह १, ५०, ११
उद् यंयमीति मवितेव बाहू १,९५,७
उद्वयं तमसस्परि १, ५०, १०
उद्वत्स्वमा अकृणोतना तृणं
१, १६१, ११
उद् वन्दनमैरतं दंसनाभि १, ११८, ६
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति १, ४०, ८
उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव
१, १२५, ४
उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं
१, ११४, ९
उप त्मन्या वनस्पते १, १८८, १०
उप त्वाग्ने दिवे दिवे १, १, ७
उप नः पितवा चर १, १८७, ३
उप नः सवना गहि १, ४, २
उप नः सुतमागहि १, १६, ४
उप नो देवा अवसा गमन् १,१०७,२
उप प्र जिन्वन्नुशती १, ७१, १
उप्र प्रयन्तो अध्वरं १, ७४, १
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा
१, १६३, १२
उप प्रागात् परमं यत् सधस्थं
१, १६३, १३
उप प्रगात् सुमन्मेऽधायि १, १६२,७
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता
१, १२६, ३
उप व एषे नमसा जिगीषो १,१८६,४
उपस्तच्चित्रमा भयस्मभ्यं १,९२,१३
उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च १, १९०, ३

उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येत् १, १५८, ४
उपस्थायं चरति यत् १, १४५, ४
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां १,१६४,२६
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं १, ८७, २
उपेदहं धनधामप्रतीतं १, ३३, २
उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो
१, १२४, ४
उपोप मे परा मृश १, १२६, ७
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं १, ३९, ६
उपो षु शृणुही गिरः १, ८२, १
उभा देवा दिविस्पृशा १, २३, २
उभा पिबतमश्विनो १, ४६, १५
उभा शंसा नर्या मामविष्टाम्
१, १८५, ९
उभे पुनामि रोदसी ऋतेन १,१३३,१
उभे भद्रे जोषयेते न मेते १, ९५,६
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं १, ९५, ९
उरु व्यचसा महिनी असश्चता
१, १६०, २
उरुष्या णो अभिशस्ते १, ९१, १५
उरुं हि राजा वरुणश्चकार १,२४,८
उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन १,१८५,६
उवासोषा उच्छाच्च नु १, ४८, ३
उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु १,६०,४
उष आ भाहि भानुना १, ४८, ९
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं १, ९२, ८
उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना
१, १२४, १
उषो अद्येह गोमत्य १, ९२, १४
उषो न जारो १, ६९, ९
उषो भद्रेभिरागहि १, ४९, १
उषो यदग्निं समिधे चकर्थ १,११३,९
उषो यदद्य भानुना १, ४८, १५
उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते १,४८,४
उषो वाजं हि वंस्व १, ४८, ११
ऊती देवानां वयमिन्द्र वन्तो
१, १३६, ७
ऊर्ध्व ऊ षु ण १, ३६, १३
ऊर्ध्वस्तिष्ठान ऊतये १, ३०, ६
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयाम १,११९,२
ऊर्ध्वो न पाह्यंसो १, ३६, १४
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त १, ८५, १०
ऊर्वी पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते १,१८५,७
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् १,१६४,३९
ऋजुनीती नो वरुणो १, ९०, १
ऋतस्य देवा अनु व्रता गुः १, ६५, ३
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य १, ६८, ५
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना
१, १२३, १३
ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः
१, ७३, ६
ऋतेन मित्रावरुणा १, २, ८
ऋतेन यावृतावृधा १, २३, ५
ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या
१, १८५, १०
ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुवं ऊतय १,१११,४
ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीया १,११०,७
ऋभुर्भराय सं शिशातु साति
१, १११, ५
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो १,६६,४
ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यम्
१, ११७, ३
एकं चमसं चतुरः कृणोतन १,१६१,२
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता
१, १६२, १९
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो
१, १६५, १०
एकस्या वस्तोरावतं रणाय
१, ११६, २१
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् १, १९१, ५
एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां
१, १५२, २
एतत् त्यत् त इन्द्र वृष्ण उक्थं
१, १००, १७
एतत् त्यन्न योजनं १, ८८, ५
एता उ त्या उषसः केतुमक्रत १,९२,१
एता चिकित्वो भूमा १, ७०, ६
एता ते अग्ने उचथानि वेधो १,७३,१०
एतानि वामश्विना वीर्याणि
१, ११७, २५
एतानि वां श्रवस्य सुदानू
१, ११७, १०
एतायामोप गव्यन्त इन्द्र १, ३३, १
एति प्र होता व्रतमस्य १, १४४, १
एते त इन्द्र जन्तवो १, ८१, ९
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व १,३१,१८
एतं शर्धं धाम यस्य सूरे १,१२२,१२
एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तो
१, १०५, १९
एन्द्र याह्युप नः परावतो १,१३०,१
एन्द्र सानसिं रयिं १, ८, १
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिः
१, ५३, ४
एमाशुमाशवे भर १, ४, ७
एमेनं सृजता सुते १, ९, २
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो
१, ९५, ११
एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या १,१७८,४
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो
१, ९६, ९
एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान्
१, १९०, ८
एवा हि ते विभूतय १, ८, ९
एवा हि ते शं सवना समुद्र १,१७३,८
एवा ह्यस्य काम्या १, ८, १०
एवा ह्यस्य सूनृता १, ८, ८
एवेदेते प्रति मा रोचमाना १,१६५,१२
एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं १,१२४,६
एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं १,१२८,३
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य
१, १०८, १३
एषच्छागः पुरो अश्वेन १, १६२, ३
एष प्र पूर्वी रव तस्य चम्रिषो १,५६,१
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः
१, १६५, १५
एष वः स्तोमो मरुत इयं १,१६६,१५
एष वः स्तोमो मरुत इयं १,१६७,११
एष वः स्तोमो मरुत इयं १,१६८,१०
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्
१, १७१, २
एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे १,१७३,१३

एष वां स्तोमो अश्विनावकारि १, १८४, ५
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना १, १२४, ३
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः १,११३,७
एषायुक्त परावतः १, ४८, ७
एषा स्या वो १, ८८, ६
एषो उषा अपूर्व्या १, ४६, १
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋताता १, ७७, ५
एवा ते हरियोजना १, ६१, १६
एह देवा मयोभुवा १, ९२, १८
एहि स्तोमाँ अभि स्वरा १, १०, ४
एह्यग्न इह होता १, ७६, २
ऐभिरग्ने दुवो गिरो १, १४, १
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये १, १०४, २
ओमासश्चर्षणीधृतो १, ३, ७
ओ षू णो अग्ने शृणुहि १, १३९,७
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वा १,१७७,५
क इमं वो निण्यमा चिकेत १,९५,४
क ईषते तुज्यते को बिभाय १,८४,१७
कङ्कतो न कङ्कतो १, १९१, १
कतरा पूर्वा कतरापरायोः १,१८५,१
कथा ते अग्ने शुचयन्त १, १४७, १
कथा दाशेमाग्नये १, ७७, १
कथा राधाम सखायः १, ४१, ७
कदा क्षत्रश्रियं नरं १, २५, ५
कदा मर्तमराधसं १, ८४, ८
कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां १,१२१,१
कदु प्रेष्ठाविषां रयीणाम् १,१८१,१
कद्धनूनं कधप्रियः १, ३८, १
कद्रुद्राय प्रचेतसे १, ४३, १
कद् व ऋतस्य धर्णसि १, १०५, ६
कन्येव तन्वा शाशदानाँ १,१२३,१०
कया शुभा सवयसः १, १६५, १
करम्भ ओषधे भव १, १८७, १०
कविमग्निमुपस्तुहि १, १२, ७
कवी नो मित्रावरुणा १, २, ९
कस्त उषः कधप्रिये १, ३०, २०
कस्ते जामिर्जनानां १, ७५, ३
कस्य नूनं कतमस्यामृतानां १,२४,१
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः १, १६५, २
कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये १, १८२, ७
का त उपेतिर्मनसो १, ७६, १
का राधद्धोत्राश्विना वां १,१२०,१
किं न इन्द्र जिघांससि १, १७०, २
किं नो भ्रातरगस्त्य १, १७०, ३
किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे १, १८२, ३
किम श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन् १, १६१, १
कियात्या यत् समया भवाति १, ११३, १०
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन् १,१६५,३
कुविन्नो अग्निरुचथस्य १, १४३, ६
कुषुम्भकास्तद ब्रवीद् १, १९१, १६
कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य १, ११७, १२
कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य १,१४०,३
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा १, १६४, ४७
केतुं कृण्वन्नकेतवे १, ६, ३
को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन १,८४,१८
को अद्य युंक्ते धुरि गा १, ८४, १६
को ददर्श प्रथमं जायमानम् १,१६४,४
को देवयन्तमश्नवत् १, ४०, ७
को न्वत्र मरुतो मामहे वः १,१६५,१३
को वां दाशत् सुमतये १, १५८, २
को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो १, १६८, ५
को वो वर्षिष्ठ आ नरो १, ३७, ६
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं १, ८१, ४
क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चते १, १२८, ५
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः १, ५८, ३
क्रीळं वः शर्धो मारुतं १, ३७, १
क्व त्री चक्रास्त्रिवृतो रथस्य १,३४,९
क्व नूनं कद् वो अर्थं १, ३८, २
क्व वः सुम्ना नव्यांसि १, ३८, ३
क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद् १, १६५, ६
क्व स्विदस्य रजसो महस्परं १, १६८, ६
क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया १, ११३, ६
क्षपो राजन्नुत त्मना १, ७९, ६
क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ १,११०,५
क्षेमो न साधुः १, ६७, २
गन्तारा हि स्थोऽवसे १, १७, २
गर्भो यो अपां १, ७०, ३
गयस्फानो अमीवहा १, ९१, १२
गाथपतिं मेधपतिं १, ४३, ४
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कम् १, १६४, २४
गायन्ति त्वा गायत्रिणो १, १०, १
गायत् साम नभन्य यथा वे १,१७३,१
गार्हपत्येन सन्त्य १, १५, १२
गूहता गुह्यं तमो १, ८६, १०
गृणानो अंगिरोभिः दस्म १, ६२, ५
गृहंगृहमहना यात्यच्छा १, १२३, ४
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः १, १०२, ६
गो मातरो यच्छुभयन्ते १, ८५, ३
गोषु प्रशस्तिं वनेषु १, ७०, ९
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं १,१६४,२८
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत् १, १६४, ४१
घनेव विष्वग्वि जहि १, ३६, १६
घृतपृष्ठा मनोयुजः १, १४, ६
घृतप्रतीकं व ऋतस्य १, १४३, ७
घृतवन्तमुप मासि १, १४२, २
घृताहवन दीदिवः १, १२, ५
घृताहवन सन्त्येमा १, ४५, ५
घृषुं पावकं वनिनं १, ६४, १२
घ्नन्तो वृत्रमतरन् १, ३६, ८
चक्रवांस ऋभवस्तदपृच्छत् १, १६१, ४
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या १,३३,८

चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं १,१०८,३
चतुरश्चित् ददमानाद् १, ४१, ९
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः १, १५५, ६
चतुस्त्रिंशद् वाजिनो १, १६२, १८
चत्वारि वाक् परिमिता पदानि १, १६४, ४५
चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः १, १२६, ४
चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वः १, १२२, १५
चन्द्रमा अप्स्वन्तरा १, १०५, १
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्ण १, ११६, १५
चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं १,६४,१४
चित्तिरपां दमे १, ६७, १०
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे १, ६४, ४
चित्रो यदभ्राट् छ्वेतो न विक्षु १, ६६, ६
चित्रो वोऽस्तु याम १, १७२, १
चित्रं देवानामुदगादनीकं १, ११५, १
चोदयित्री सूनृतानां १, ३, ११
जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद् १, १६४, २५
जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरून् १, १७४, ६
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रत १,५२,८
जनासो अग्निं दधिरे १, ३६, २
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रु १, १२२, ९
जने न शेवः १, ६९, ४
जम्भयनमभितो रायतः शुनो १, १८२, ४
जयतामिव तन्यतुः १, २३, ११
जराबोध तद् विविड्ढि १, २७, १०
जातवेदसे सुनवाम सोम १, ९९, १
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम १, १२३, ९
जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रा १, ६५, ७
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया १, ८५, ११
जिह्मश्ये चरितवे मघोन्या १,११३,५
जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं १,११६,१०
जुषस्व सप्रथस्तमं १, ७५, १
जुष्टो हि दूतो असि १, ४४, २
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः १,१७८,३
जोषद् यदीमसुर्या सचध्यै १,१६७,५
ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत् १, १३६, ३
त आदित्या आ गता सर्वतातये १, १०६, २
त उक्षितासो महिमान १, ८५, २
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति १,६६,२
तक्षत् यत्त उशना महसा सहो १, ५१, १०
तक्षन् नासत्याभ्यां १, २०, ३
तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापस १, १११, १
ततं मे अपस्तदु तायते पुनः १, ११०, १
तत् त इन्द्रियं परमं पराचै १,१०३,१
तत्तदितदिदस्य पौंस्यं गृणीमसी १, १५५, ४
तत्तदिदश्विनोरवो १, ४६, १२
तत्तु ते दंसो १, ६९, ८
तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते १, १३२, ३
तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे १, ९४, १३
तत् राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं १, १५९, ५
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः १, २४, ११
तत् सविता वोऽमृतत्वमासुव १, ११०, ३
तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं १, ११५, ४
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां १, १५४, ५
तदस्येदं पश्यतां भूरि पुष्टं १,१०३,५
तदित् समानमाशाते १, २५, ६
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ १, १०३, ७
तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुः १,२४,१२
तदु प्रयक्षतममस्य कर्म १, ६२, ६
तदूचुषे मानुषेमा युगानि १,१०३,४
तद्विप्रासो विपन्यवः १, २२, २१
तद्विष्णोः परमं पदं १, २२, २०
तद् वो जामित्वं मरुतः परे युगे १, १६६, १३
तद् वः सुजाता मरुतो महित्वनं १, १६६, १२
तद् वां नरा नासत्यावनु १, १८२, ८
तद् वां नरा शंस्यं पज्रियेण १,११७,६
तद् वां नरा शंस्यं राध्यं १,११६,११
तद् वां नरा सनये दंस उग्रम १, ११६, १२
तथा तदस्तु सोमपाः १, ३०, १२
तनूनपादृतं यते १, १८८, २
तन्न इन्द्रस्तद् वरुणस्तदग्निः १, १०७, ३
तन्नस्तुरीपमद्भुतं १, १४२, १०
तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने १, १६६, १
तन्नो वातो मयोभु १, ८९, ४
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे १, ११५, ५
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो १, ५८, ५
तमग्रुवः केशिनीः सं हि १, १४०, ८
तमप्सन्त शवस उत्सवेषु १, १००, ८
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि १, १२७, ५
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना १, १५६, ४
तमिद् गच्छन्ति जुह्व १, १४५, ३
तमित् पृच्छन्ति न सिमो १,१४५,२
तमिद् वोचेमा विदथेषु १, ४०, ६
तमित् सखित्व ईमहे १, १०, ६
तमित् सुहव्यमंगिरः १, ७४, ५
तमीशानं जगतः १, ८९, ५
तमीं हिन्वन्ति धीतयो १, १४४, ५
तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं १, ९६, ३

तामु त्वा गोतमो गिरा १, ७८, २
तामु त्वा वाजसातम १, ७८, ३
तामु त्वा वृत्रहन्तमं १, ७८, ४
तामु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा १,१७३,५
तामु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद १, १५६, ३
तामूतयो रणयञ्छूरसातौ १,१००,७
तयोरित् घृतवत्पयो १, २२, १४
तयोरिदवसा वयं १, १७, ६
तरणिर्विश्वदर्शतो १, ५०, ४
तव त्ये पितो ददत १, १८७, ५
तव त्ये पितो रसा १, १८७, ४
तव शरीरं पतयिष्णवर्वन् १,१६३,११
तवाहं शूररातिभिः १, ११, ६
ता वां रथं वयमद्या हुवेम १,१८०,१०
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः १,५६,२
तं घेमित्था नमस्विन १, ३६, ७
तं त्वा नरो दम आ १, ७३, ४
तं त्वा वयं पतिमग्ने १, ६०, ५
त्वं त्वा वयं पितो वचोभिः १, १८७, ११
तं त्वा वाजेषु वाजिनं १, ४, ९
तं त्वा वयं विश्ववारा १, ३०, १०
तं नव्यसी हृद आ जायमानं १,६०,३
तं पृच्छता स जगामा १, १४५, १
तं यज्ञसाधमपि वातयाम १,१२८,२
तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् १, १८३, १
तं वश्चराथा वयं वसत्या १, ६६, २
तं स्मा रथं मघवन् प्राव १,१०२,३
तस्मिन्ना वेशया गिरो १, १७६, २
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत् स्वर्षा १, १००, १३
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति १, १६४, ४२
ता अस्य पृशनायुवः १, ८४, ११
ता अस्य मनसा सह १, ८४, १२
ताँ उशतो वि बोधय १, १२, ४
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं १,१५५,३
ता कर्माषतरास्मै १, १७३, ४
तान् पूर्वया निविदा १, ८९, ३
तान् यजत्राँ ऋतावृधो १, १४, ७
ता नो अद्य वनस्पती १, २८, ८
ता महान्ता सदस्पती १, २१, ५
ता मित्रस्य प्रशस्तय १, २१, ३
ता यज्ञेषु प्रशंसते १, २१, २
तां वां धेनुं न वासरीम् १, १३७, ३
ता वामद्य तावपरं हुवेमो १,१८४,१
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै १, १५४, ६
ता विद्वांसा हवामहे वां १, १२०, ३
ता वां नरा स्ववसे सुजाता १, ११८, १०
ता सुजिह्वा उप ह्वये १, १३, ८
तीव्राः सोमास आ गहि १, २३, १
तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिः १, ११६, ४
तिस्रो द्यावा सवितुः १, ३५, ६
तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् १,१६४,१०
तिस्रो यदग्ने शरदः १, ७२, ३
तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे १, ७, ७
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे १,११६,३
तुभ्यदेते बहुला अद्रिदुग्धाः १,५४,९
तुभ्यमुषासः शुचयः परावति १, १३४, ४
तुभ्यं वयो यत् पितरावनीतां १, १२१, ५
तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो १, १३४, ५
तुभ्यायं सोमः परिपूतो १, १३५, २
तृणस्कन्दस्य नु विशः १, १७२, ३
ते अस्मभ्यं शर्म १, ९०, ३
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास १, ६४, २
ते त्वा मदा अमदन् १, ५३, ६
तेन नासत्या गतं १, ४७, ९
तेन सत्येन जागृतं १, २१, ६
ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः १, १६०, ५
ते नो रत्नानि धत्तन १, २०, ७
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो १, १५९, ४
तेऽरुणेभिर्वरमा १, ८८, २
तेऽवर्धन्त स्वतवसो १, ८५, ७
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो १, १५९, ३
ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव १, १६०, १
ते हि वस्वो वसवान १, ९०, २
त्मना वहन्तो दुरो १, ६९, १०
त्ये विश्वा ताविषी सध्र्यग्घिता १, ५१, ७
त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं १, ३७, ११
त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं १, ५२, १
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते १, १६४, ४४
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे १, ३४, २
त्रितः कूपेऽवहितो १, १०५, १७
त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषे १, १४६, १
त्रिरश्विना सिन्धुभिः १, ३४, ८
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा १, ३४, ६
त्रिर्नो अश्विना यजता दिवे दिवे १, ३४, ७
त्रिर्नो रयिं वहमश्विना युवं १,३४,५
त्रिर्वर्तियातं त्रिरनुव्रते जने १,३४,४
त्रिवधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा १,४७,४
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन १,११८,२
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा १,४७,२
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजस १, १०२, ८
त्रिश्चिन् नो अद्या भवतं नवेदसा १, ३४, १
त्रिः सप्त मयूर्यः १, १९१, १४
त्रिः सप्त यद् गुह्यानि १, ७२, ५
त्रिः सप्त विष्णुलिङ्गका १,१९१,१२
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य १,९५,३
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि १, १६३, ३
त्रीणि पदा वि चक्रमे १, २२, १७
त्वमंग प्र शंसिषो १, ८४, १९
त्वमग्न उरुशंसाय वाघते १,३१,१४

त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषि: १,३१,१
त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तम: १, ३१, २
त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन १,३१,३
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि न: १, ३१, १०
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं १, ३१, १५
त्वमग्ने मनवे द्यामवाशय: १, ३१, ४
त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरा १,३१,१३
त्वमग्ने वसूँरिह १, ४५, १
त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं १, ३१, ६
त्वमग्ने वृषभ पुष्टिवर्धन: १,३१,५
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते १, १४१, १०
त्वमग्ने सहसा सहन्तम: १,१२७,९
त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्य: १,९४,६
त्वमपामपिधानावृणो: १, ५१, ४
त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या १, १७४, १०
त्वमस्य पारे रजसो व्योमन: १, ५२, १२
त्वमायसं प्रति वर्तयो गो १,१२१,९
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं १,५४,६
त्वमाविथ सुश्रवसं १, ५३, १०
त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन् १, १२१, १२
त्वमिमा ओषधी: सोम १, ९१, २२
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां १, १७०, ५
त्वमृत्विया उप वाय: सचन्ते १, १९०, २
त्वमेतांजनराज्ञो १, ५३, ९
त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्च १, ३३, ७
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रून् १, १७८, ५
त्वया वयं मघवन् पूर्व्ये धन १,१३२,१
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो १,१४१,९
त्वष्टा यद्वज्रं सुकृत हिरण्ययं १, ८५, ९
त्वष्टा रूपाणि हि प्रभु: १, १८८, ९
त्वां चित्रश्रवस्तम १, ४५, ६
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे १, १०२, ९
त्वामग्ने प्रथममायुमायवे १, ३१, ११
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र १, ४०, २
त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष १, १०१, ९
त्वां स्तोमा अवीवृधन् १, ५, ८
त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ १, ६३, ६
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा १,७३,७
त्वे इदग्ने सुभगे १, ३६, ६
त्वे पितो महानां १, १८७, ६
त्वे राय इन्द्र तोशतमा: १,१६९,५
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतो १, १५५, २
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् १,९५,८
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं १, ११४,४
त्वेषासो अग्ने रमवन्तो १, ३६, २०
त्वोतो वाज्यह्रयो १, ७४, ५
त्वं करंजमुत पर्णयं वधी: १, ५३, ८
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येषु आविथ १,५१,६
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्यो १, ५१, ३
त्वं च सोम नो वशो १, ९१, ६
त्वं जामिर्जनानां १, ७५, ४
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिया १, १०२, १०
त्वं त ब्रह्मणस्पते १, १८, ५
त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे १, ३१, ७
त्वं तमिन्द्र पर्वतं १, ५७, ६
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे १,५५,३
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयु १, १३१, ७
त्वं तस्य द्वयाविनो १, ४२, ४
त्वं ताँ अग्न उभयान् वि १,१८९,७
त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा १,१६९,४
त्वं त्यान इन्द्र देव १, ६३, ८
त्वं त्येभिरा गहि १, ३०, २२
त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा १, ५६, ६
त्वं दिवो बृहत: सानु कोपयो १,५४,४
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीः १, १७४, ९
त्वं न इन्द्र राया तरूषयो १,१२९,१०
त्वं न इन्द्र राया परीणसा १,१२९,९
त्वं न: सोम विश्वतो १, ९१, ८
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभि: १, ३१, १२
त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ १,३१,९
त्वं नो अग्ने सनये धनानां १,३१,८
त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणाया: १, १२१, १४
त्वं नो वायवेषामपूर्व्य: १, १३४, ६
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन् १,१७१,६
त्वं भुव: प्रतिमानं पृथिव्या: १, ५२, १३
त्वं महाँ इन्द्र यो ह १, ६३, १
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या १, १६९, ८
त्वं मायाभिरपमायिनोऽधम: १,५१,५
त्वं राजेन्द्र ये च देवा १, १७४, १
त्वं वलस्य गोमतो १, ११, ५
त्वं विश्वस्य मेधिर: १, २५, २०
त्वं वृभा नद्य इन्द्र सर्तवे १,१३०,५
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् १, ६३, ३
त्वं सुतस्य पीतये १, ५, ६
त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् १, १२१, १३
त्वं सोम क्रतुभि: सुक्रतुर्भू: १, ९१, २
त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा १,९१,१
त्वं सोम महे भगं १, ९१, ७
त्वं सोमासि सत्पति १, ९१, ५
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदी: १, ६३, ४
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् १,६३,७
त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् १, ६३, ५
त्वं हि विश्वतोमुख १, ९७, ६
त्वं हि शूर: सनिता १, १७५, ३
त्वं होता मनुर्हितो १, १४, ११
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य १, १४४, ६
दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा १, १२५, ६
ददानमिन्न ददभन्त मन्मा १,१४८,२
दधन्नृतं धनयन्नस्य १, ७१, ३
दधृष्वा भृगवो मानुषेष्वा १,५८,६
दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो १, १३९, ९

दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः १,१७४,२
दर्श नु विश्वदर्शतं १, २५, १८
दश रात्रीरशिवेना न द्यू १,११६,२४
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भम् १,९५,२
दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि १, १२९, ३
दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैः १, १००, १८
दस्रा युवाकवः सुता १, ३, ३
दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः १, १३०, ४
दाधार क्षेममोको न रण्वो १,६६,३
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु १,५५,७
दासपत्नी रहिगोपा अतिष्ठन् १, ३२, ११
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं १, १६४, ४८
द्वादशारं नहि तज्जराय १,१६४,११
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया १,१६४,२०
दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु १, १४६, ५
दिविश्चित् ते बृहतो जातवेद १,५९,५
दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ १,५५,१
दिवस्कण्वास इन्दवो १, ४६, ९
दिवा चित्तमः कृण्वन्ति १, ३८, ९
दिवा यान्ति मरुतो भूम्या १ १६१, १४
दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः १, १००, ३
दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं १,११४,५
दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तम् १, १६४, ५२
द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो १, १२७, ७
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे १,६२,७
द्विषो नो विश्वतो मुखा १, ९७, ७
दीर्घतमा मामतेयो १, १५८, ६
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि १, ५३, २
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो १,६६,५
दुहीयन् मित्रधितये युवाकु १,१२०,९
दृळ्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा १,१२७,४
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मान् १, ११२, २५
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र १, १६४, ३३
द्यौर्वः पिता पृथिवी माता १,१९१,६
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः १, ५२, १०
द्रविणोदा ददातु नो १, १५, ८
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य १,९६,८
द्रविणोदा द्रविणसो १, १५, ७
द्रविणोदाः पिपीषति १, १५, ९
देवयन्तो यथामति १, ६, ६
देवान् वा यच्चकृमा कच्चिदागः १, १८५, ८
देवानां भद्रा सुमतिः १, ८९, २
देवासस्त्वा वरुणो मित्रो १, ३६, ४
देवी यदि तविषी १, ५६, ४
देवेन नो मनसा देव १, ९१, २३
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु १, १०६, ७
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो १, ९४, १३
देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया १,७३,३
देवो न यः सविता १, ७३, २
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशो १,१५५,५
द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे १, ९५, १
धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं १, ९५, १०
धीरासः पदं कवयो १, १४६, ४
नकिरस्य सहन्त्य १, २७, ८
नकिष्ट एता व्रता १, ६९, ७
नकिष्ट्वद् रथीतरो १, ८४, ६
नक्तोषासा वर्णमामेम्याने १,९६,५
नक्तोषासा सुपेशसा १, १३, ७
नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् १, १२१, ३
नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन् १, १७३, ३
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो १,१७८,२
नदं न भिन्नममुया शयानं १, ३२,८
नदस्य मा रुधतः काम १, १७९, ४
न नूनमस्ति नो श्वः १, १७०, १
न पूषणं मेथामसि १, ४२, १०
न मा गरन् नद्यो मातृतमा १,१५८,५
न मृषा श्रान्तं यदवन्ति १, १७९,३
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां १,१३६,६
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो १, २७, १३
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो १, २५, १४
न यं रिपवो न रिषण्यवो १,१४८,५
न यस्य देवा देवता न मर्ता १, १००, १५
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो १, ५२, १४
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुः १, ३३, १०
न योरुपब्दिरश्व्यः १, ७४, ७
न यो वराय मरुतामिव १, १४३, ५
नराशंसं सुधृष्टमं १, १८, ९
नराशंसमिह प्रियं १, १३, ३
नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह १,१०६,४
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि १, १६२, २१
नवानां नवतीनां १, १९१, १३
न विजानामि यदिवेदमस्मि १, १६४, ३७
न वेपसा न तन्यते १, ८०, १२
नव्यं तदुक्थ्यं हितं १, १०५, १२
नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं १,२४,६
नहि त्वा रोदसी उभे १, १०, ८
नहि देवो न मर्त्यो १, १९, २
नहि नु यादधीमसि १, ८०, १५
नहि वः शत्रुर्विविदे १, ३९, ४
नहि वामस्ति दूरके १, २२, ४
नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे १,१६७,९
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति १,१२५,५
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे १, १०२, ५
नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे १, ११६, १
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध १,३२,१३
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं १ १६२,१४
नि काव्या वेधसः शश्वतः १, ७२, १
नि गावो गोष्ठे असदन् १, १९१, ४
नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप १, १६६, २

नित्ये चिन्नु यं सदने १, १४८, ३
नि त्वामग्ने मनुर्दधे १, ३६,१९
नि त्वा यज्ञस्य साधनं १, ४४, ११
नि त्वा होतारमृत्विजं १, ४५, ७
नि नो होता वरेण्य: १, २६, २
नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य १, ५४, ५
नि यद् युवेथे नियुत: १, १८०, ६
निरिन्द्र भूम्या अधि १, ८०, ४
निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस १, १४१, ३
नि येन मुष्टिहत्यया १, ८, २
नि वो यामाय मानुषो १, ३७, ७
निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत १, ११०, ८
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभि: १, १६१, ७
नि षसाद धृतव्रतो १, २५, १०
निं षू नमातिमतिं कयस्य १,१२९,५
निष्वापया मिथूदृशा १, २९, ३
नि सर्वसेन इषुधींरसक्त १, ३३, ३
नीचावया अभवत् वृत्रपुत्रेन्द्रो १, ३२, ९
नू इत्था ते पूर्वथा च १, १३२, ४
नू च पुरा च सदनं रयीणां १,९६,७
नू चित् सहोजा अमृतो १, ५८, १
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तं १,६४,१५
न्यघ्न्यस्य मूर्धनि १, ३०, १९
न्याविध्यदिळीबिशस्य दृळ्हा १, ३३, १२
न्यूषु वाचं प्र महे भरामहे १, ५३, १
पञ्चपादं पितरं द्वादशा १,१६४,१२
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने १,१६४,१३
पताति कुण्डृणाच्या १, २९, ६
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने १, ४४, ९
पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या १,१२२,२
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्र १,३३,५
परा मे यन्ति धीतयो १, २५, १६
परायती नामन्वेति पाथ १, ११३, ८
परावतं नासत्यानुदेथाम् १, ११६, ९
परा शुभ्रा अयासो यव्या १, १६७,४
परा ह यत् स्थिरं हथ १, ३९, ३
परा हि मे विमन्यव: १, २५, ४
परि त्वा गिर्वणो गिर १, १०, १२
परि प्रजातः क्रत्वा १, ६९, २
परि यदिन्द्र रोदसी उभे १, ३३, ९
परि यदेषामेको विश्वेषां १, ६८, २
परिविष्टं जाहुषं विश्वत: सीं १, ११६, २०
परीं घृणा चरति तित्विषे शवो १, ५२, ६
परेहि विग्रमस्तृतं १, ४, ४
पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना १,९२,१२
पश्वा न तायुं १, ६५, १
पाक: पृच्छामि मनसाविजानन् १, १६४, ५
पान्ति मित्रावरुणाववद्यात् १, १६७, ८
पावका न: सरस्वती १, ३, १०
पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधो १,१२९,११
पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रै: १, १८९, ४
पाहि नो अग्ने रक्षस: १, ३६, १५
पितुं नु स्तोषं १, १८७, १
पितुर्न पुत्रा: क्रतुं १, ६८, ९
पितु: प्रत्नस्य जन्मना १, ८७, ५
पिन्वन्त्यपो मरुत: सुदानव: १, ६४, ६
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभि: १, १३०, २
पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं १, १३३, ५
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय १, १५३, ३
पुत्रो न जातो रण्वो १, ६९, ५
पुन:पुनर्जायमाना पुराणी १, ९२, १०
पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ता १,१०९,८
पुरां भिन्दुर्युवा कवि: १, ११, ४
पुरा यत् सूरस्तमसो अपीते १, १२१, १०
पुरु त्वा दाश्वान् वोचे १, १५०, १
पुरूतमं पुरूणामीशानं १, ५, २
पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना १,११७,९
पुरूणि दस्मो नि रिणाति १,१४८,४
पुरोगा अग्निर्देवानां १, १८८, ११
पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी १,६५,५
पूर्वामनु प्रयतिमा ददे १, १२६, ५
पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि १, १२३, २
पूर्वीभिर्हि ददाशिम १, ८६, ६
पूर्वीरहं शरद: शश्रमाणा १,१७९,१
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो: १, ११, ३
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य १, १२४, ५
पूर्वे देवा भवतु सुन्वतो रथो १,९४,८
पूर्व्य होतरस्य नो १, २६,५
पूषण्वते मरुत्वते १, १४२, १२
पूषा राजानमाघृणि: १, २३, १४
पृक्षो वपु: पितुमान् नित्य आ १, १४१, २
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्या: १, १६४, ३४
पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं १, १२३, १
पृषदश्वा मरुत: पृश्निमातर: १,८९,७
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्नि: पृथिव्यां १, ९८, २
प्र चर्षणिभ्य: पृतनाहवेषु १, १०९,६
प्रजावता वचसा वन्हिरासा १,७६,४
प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां १, १६७, ७
प्र तद् विष्णु: स्तवते वीर्येण १,१५४,२
प्र तद् वोचेयं भव्यायेन्दवे १,१२९,६
प्र तव्यसीं नव्यसीं १, १४३, १
प्रति घोराणामेतानामयसां १,१६९,७
प्रति त्यं चारुमध्वरं १, १९, १
प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो १, १६९, ६
प्रति यत् स्या नीथादर्शि १, १०४, ५
प्रति व एना नमसाहमेमि १,१७१,१
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धव: १, १६८, ८
प्रत्यङ् देवानां विश: १, ५०, ५
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि १, ९२, ५
प्रत्वक्षस: प्रतवसो १, ८७, १
प्र त्वा दूतं वृणीमहे १, ३६, ६३

प्रथमा हि सुवाचसा १, १८८, ७
प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी १, १५९, १
प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे १, १८६, ९
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः १, ४०, ५
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं १, ५९, ६
प्र नू स मर्तः शवसा १, ६४, १३
प्र पूतास्तिग्मशोचिषे १, ७९, १०
प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते १, १३८, १
प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती १, १२९, ८
प्र बोधयोषः पृणतो मघोन् १, १२४, १०
प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो १, १०१, १
प्र मन्महे शवसानाय शूषं १, ६२, १
प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये १, ५७, १
प्र यदग्नेः सहस्वतो १, ९७, ५
प्र यदित्था परावतः १, ३९, १
प्र यदित्था महिना नृभ्यो १, १७३, ६
प्र यत् त्वे अग्ने सूरयो १, ९७, ४
प्र यत् पितुः परमान् १, १४१, ४
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां १, २७, ३
प्र यद् रथेषु पृषतीः १, ८५, ५
प्र यद् वहेथे महिना रथस्य १, १८०, ९
प्रयन्तमित् परिजारं १, १५२, ४
प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे १, १२०, ५
प्र यात शीभमाशुभिः १, ३७, १४
प्र ये शुंभन्ते जनयो १, ८५, १
प्रवद्यामना सुवृता रथेन १, ११८, ३
प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो १, १२२, १
प्र वः पान्तमन्धसो धियायते १, १५५, १
प्र वः शर्धाय घृष्वये १, ३७, ४
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचम् १, ११६, २५
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ १, १८१, ५
प्र वामश्नोति सुष्टुतिः १, १७, ९
प्र वां शरद्वान् वृषभो न १, १८१, ६
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म १, १५४, ३
प्र वेपयन्ति पर्वतान् १, ३९, ५
प्र वो भ्रियन्त इन्दवो १, ?४, ४
प्र वो महे महि नमो १, ६२, २
प्र वो महे सहसा सहस्वत १, १२७, १०
प्र वो यह्वं पुरूणां १, ३६, १
प्र शंसा गोष्वघ्न्यं १, ३७, ५
प्र सा क्षितिरसुर या महि १, १५१, ४
प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां १, १३६, १
प्र सु विश्वान् रक्षसो १, ७६, ३
प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसो १, १६६, ७
प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिः १, १५३, २
प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि १, १३८, २
प्राचीनं बर्हिरोजसा १, १८८, ४
प्रातर्याव्णः सहस्कृत १, ४५, ९
प्रातर्युजा वि बोधय १, २२, १
प्राता रत्नं प्रातरित्वा १, १२५, १
प्रियमेधवदत्रिवत् १, ४५, ३
प्रिया पदानि पश्वो १, ६७, ६
प्रियो नो अस्तु विश्पतिः १, २६, ७
प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं १, १८६, १०
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः १, ४०, ३
प्रैषामज्मेषु विथुरे व १, ८७, ३
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषे १, १८६, ३
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि १, ८०, ३
बळित्था तद् वपुषे धायि १, १४१, १
बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय १, ८४, १
बिभ्रदापि हिरण्ययं १, २५, १३
बोधा मे अस्य वचसो १, १४७, २
बृहत् स्वश्चन्द्रममवत् १, ५२, ९
बृहती इव सूनवे रोदसी १, ५९, ४
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि १, १०६, ५
ब्रह्मा कृणोति वरुणो १, १०५, १५
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः १, १६५, ४
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः १, १५, ५
भजन्त विश्वे देवत्वं १, ६८, ४
भगभक्तस्य ते वयं १, २४, ५
भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिः १, १२३, ५
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम १, ८९, ८
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य १, ११५, ३
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते १, ९४, ४
भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिः १, १५६, १
भवा वरूथं गृणते विभावो १, ५८, ९
भारतीळे सरस्वति १, १८८, ८
भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवःस्तवे १, ९२, ७
भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति १, ११३, ४
भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे १, १०३, ७
भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे १, १०३, ६
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे १, १६५, ७
भूरि त इन्द्र वीर्यं १, ५७, ५
भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं १, १८५, २
भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु १, १६६, १०
भषन् न योऽधि बभ्रूषु १, १४०, ६
मत्सि नो वस्य इष्टय १, १७६, १
मत्स्यपायि ते महः १, १७५, १
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः १, ९, ३
मथीद् यदीं विभृतो १, ७१, ४
मथीद् यदीं विष्टो मातरिश्वा १, १४८, १
मदेमदे हि नो ददिः १, ८१, ७
मधु नक्तमुतोषसो १, ९०, ७
मधुमन्तं तनूनपात् १, १३, २
मधुमान्नो वनस्पतिः १, ९०, ८
मधु वाता ऋतायते १, ९०, ६
मध्वः सोमस्याश्विना मदाय १, ११७, १
मनुष्वदंगे अंगिरस्वदंगिरो १, ३१, १७
मनो न योऽध्वनः १, ७१, ९
मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवो १, १३४, २
मन्दामहे दशतयस्य धासे १, १२२, १३
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ १, ५१, ११
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी १, १४२, ८
मन्द्रो होता गृहपति १, ३६, ५
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा १, १२२, ३

मरुतः पिबत ऋतुना १, १५, २
मरुत्वन्तं हवामहे १, २३, ७
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा १, १०१, ११
मरुतो यद्ध वो बलं १, ३७, १२
मरुतो यस्य हि क्षये १, ८६, १
मरुतो वीळुपाणिभिः १, ३८, ११
महश्चित् त्वमिन्द्र यत् १, १६९, १
महः स राय एषते १, १४९, १
महाँ इन्द्रः परश्च नु १, ८, ५
महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो १, १६६, ११
महिकेरव ऊतये १, ४५, ४
महिषासो मायिनः चित्रभानवो १, ६४, ७
मही अत्र महिना वारम् १,१५१,५
मही द्यौः पृथिवी च न १, २२, १३
मही वामूतिरश्विना मयोभूः १, ११७, १९
महे यत्पित्र ईं रसं १, ७१, ५
महो अर्णः सरस्वती १, ३, १२
मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो १, १२०, ८
मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः १, १०९, ३
माता देवानामदितेरनीकं १, ११३, १९
माता पितरमृत आ बभाज १,१६४,८
मा ते राधांसि १, ८४, २०
मा त्वाग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धिः १, १६२, १५
मा त्वा तपत् प्रिय आत्मा १, १६२, २०
मादयस्व सुते सचा १, ८१, ८
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र १,१०१,१०
मा नस्तोके तनये मा न आयौ १, ११४, ८
मा नः शंसो अररुषो १, १८, ३
मा नः सोमपरिबाधो १, ४३, ८
मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि १, ७१, १०
मा नो अस्मिन् मघवन् १, ५४, १
मा नो अग्नेऽव सृजो अघाया १, १८९, ५
मा नो मर्ता अभिद्रुहन् १, ५, १०
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं १, ११४, ७
मा नो मित्रो वरुणो अर्यम् १,१६२,१
मा नो वधाय हत्नवे १, २५, २
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा १, १०४, ८
मा पृणन्तो दुरितमेन आरन् १, १२५, ७
मायाभिरिन्द्रमायिनं १, ११, ७
मा वां वृको मा वृकीरा १,१८३,४
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं १, ४१, ८
मा वो मृगो न यवसे १, ३८, ५
मा सा ते अस्मत् सुमतिर्विदसद् १, १२१, १५
मित्रं न यं शिम्या गोषु १, १५१, १
मित्र वयं हवामहे १, २३, ४
मित्रं हुवे पूतदक्षं १, २, ७
मिमीहि श्लोकमास्ये १, ३८, १४
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची १, १६७, ३
मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते १,१४०,४
मुषाय सूर्यं कवे १, १७५, ४
मूर्धा दिवो नाभिरग्निः १, ५९, २
मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि १, ११४, २
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैः १, १७३, १२
मो षु णः परावरा १, ३८, ६
मो षु देवा अदः स्व १, १०५, ३
मो षु वो अस्मदभि तानि १,१३९,८
य इन्द्राय वचोयुजा १, २०, २
य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो १,१०८,१
य ईङ्खयन्ति पर्वतान् १, १९, ७
य ईं चकार न सो अस्य १,१६४,३२
य ईं चिकेत गुहा १, ६७, ७
य उग्रा अर्कमानृचुः १, १९, ४
य एक इद्व विदयते १, ८४, ७
य एकश्चर्षणीनां १, ७, ९
यच्चित्रमप्न उषसो वहन्ती १, ११३, २०
यच्चिद्धि ते विशो यथा १, २५, १
यच्चिद्धि त्वं गृहेगृहे १, २८, ५
यच्चिद्धि शश्वता तना १, २६, ६
यच्चिद्धि सत्यसोमपा १, २९, १
यजा नो मित्रावरुणा १, ७५, ५
यजामहे वां महः सजोषा १,१५३,१
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम १,१२७,२
यज्ञं पृच्छाम्यवमं १, १०५, ४
यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिः १, १६८, १
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः १,१६४,५०
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते १,८३,५
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो १, ८६, २
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्न १,१०७,१
यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदन्धन् १, १७३, ११
यत् ते गात्रादग्निना पच्यमाना १, १६२, ११
यत् ते सादे महसा १, १६२, १७
यत् ते सोम गवाशिरो १, १८७, ९
यस्त्वा तुरीयमृतुभिः १, १५, १०
यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान् १, १६६, ५
यत्र ग्रावा पृथुबुध्नः १, २८, १
यत्र द्वाविव जघना १, २८, २
यत्र नार्यपच्यवं १, २८, ३
यत्र मंथां विबध्नते १, २८, ४
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम् १, १६४, २१
यत्सानोः सानुमारुहत् १, १०, २
यथा नो अदितिः करत् १, ४३, २
यथा नो मित्रो वरुणो १, ४३, ३
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र १, १७५, ६
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र १,१७६,६
यथा विप्रस्य मनुषो १, ७६, ५

य उदृचीन्द्र देवगोपा: १, ५३, ११
यदक्रन्द: प्रथमं जायमान १, १६३, १
यदंग दाशुषे त्वं १, १, ६
यददो पितो अजगन् १, १८७, ७
यदद्य आगं विभजासि नृभ्य १, १२३, ३
यदपामोषधीनां १, १८७, ८
यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो १, १०८, ६
यदयातं दिवोदासाय वर्ति: १, ११६, १८
यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे १, ९४, १०
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश १, १६२, ९
यदश्वाय वास उपस्तृणन् १, १६२, १६
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां १, १०८, ९
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य १, १०८, १२
यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत् १, १०८, ११
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां १, १०८, १०
यदिन्द्राग्नी मदथ: स्वे दुरोणे १, १०८, ७
यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु १, १०८, ८
यदिन्द्राहन् प्रथमजा महीनां १, ३२, ४
यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजि १, ५२, ११
यदीमृतस्य पयसा पियानो १, ७९, ३
यदुदीरत आजयो १, ८१, ३
यदूवध्यमुदरस्यापवाति १, १६२, १०
यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं १, १६४, २३
यद्देवानां मित्रमह: पुरोहितो १, ४४, १२
यद्ध त्यद् वां पुरुमीळ्हस्य १, १५१, २
यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृताद १, १३९, २
यद्ध यान्ति मरुत: १, ३७, १३
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं १, १६२, ४
यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति १, १७८, १
यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना १, १५७, २
यद् यूयं पृश्नि मातरो १, ३८, ४
यद्वातजूतो वना व्यस्थात् १, ६५, ८
यद वाजिनो दाम संदानमर्वतो १, १६२, ८
यद् वा मरुत्व: परमे सधस्थे १, १०१, ८
यद्वृत्रं तव चाशनिं १, ८०, १३
यन्नासत्या परावति १, ४७, ७
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य १, १६२, २
यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उरवाया १, १६२, १३
यमग्नि मेध्यातिथि: १, ३६, ११
यमग्ने पृत्सु मर्त्यं १, २७, ७
यमश्विना ददथु: श्वेतमश्वम् १, ११६, ६
यमीं द्वा सवयसा सपर्यत: १, १४४, ४
यमेन दत्तं त्रित एनमायुन १, १६३, २
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं १, १४३, ४
यमो ह जातो यमो जनित्वं १, ६६, ८
यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं १, ११७, २१
यश्चिद्धि त इत्था भग: १, २४, ४
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य १, ८४, ९
यस्तुभ्यं दाशात् १, ६८, ६
यस्ते स्तन: शशयो यो मयोभू: १, १६४, ४९
यस्त्वामग्ने हविष्पति: १, १२, ८
यस्मा ऊमासो अमृता अरासत १, १६६, ३
यस्मादृते न सिद्ध्यति १, १८, ७
यस्मिन् वृक्षे मध्वद: सुपर्णा १, १६४, २२
यस्मै त्वमायजसे स साधत्य १, ९४, २
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशो १, ९४, १५
यस्य ते पूषन् त्सख्ये विपन्यव: १, १३८, ३
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान् १, १५४, ४
यस्य दूतो असि क्षये १, ७४, ४
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद् १, १०१, ३
यस्य विश्वानि हस्तयो: १, १७६, ३
यस्य संस्थे न वृण्वते १, ५, ४
यस्याजस्त्रं शवसा मानमुक्थं १, १००, १४
यस्यानाप्त: सूर्यस्येव यामो १, १००, २
यस्या: रुशन्तो अर्चय: १, ४८, १३
यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातये १, १२९, १
यं त्वा देवासो मनवे १, ३६, १०
यं बाहुतेव पिप्रति १, ४१, २
यं यज्ञं नयथा नर १, ४१, ५
यं रक्षन्ति प्रचेतसो १, ४१, १
य: कुक्षि: सोमपातम: १, ८, ७
य: पूर्व्याय वेदसे नवीयसे १, १५६, २
य: शुक्र इव सूर्यो १, ४३, ५
य: शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभि: १, १०१, ६
य: सोम सख्ये तव १, ९१, १४
य: स्नीहितीषु पूर्व्य: १, ७४, २
या गोमती रुषस: सर्ववीरा १, ११३, १८
याति देव: प्रवता १, ३५, ३
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां १, ९१, ४
या दस्रा सिन्धु मातरा १, ४६, २
या न: पीपरदश्विना १, ४६, ६
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि १, १०८, ५
यान् राये मर्तान् सुषूदो १, ७३, ८
याभि: कण्वमभिष्टिभि: १, ४७, ५
याभि: कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू १, ११२, २३
याभि: कृशानुमसने दुवस्यथो १, ११२, २१
याभि: पठर्वा जठरस्य मज्मना १, ११२, १७
याभि: पत्नीर्विमदाय न्यूहथु: १, ११२, १९

याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना १, ११२, ४
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथो १, ११२, १८
याभिरन्तकं जसमानमारणे १, ११२, ६
याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये १,११२,२२
याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये १, ११२, १६
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं १ ११२, १४
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं १, ११२, १५
याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं १, ११२, १०
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं १, ११२, ९
याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे १, ११२, ११
याभिः सूर्यं परियाथः परावति १, ११२, १३
याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं १, ११२, ८
याभिः शंताती भवथो ददाशुषे १, ११२, २०
याभिः शुचन्ति धनसां सुषंसदं १, ११२, ७
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुः १, ११२, १२
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य १, ११२, ५
यामथर्वा मनुष्पिता १, ८०, १६
यावदिदं भुवनं विश्वम० १,१०८,२
यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः १, ११३, १२,
या वः शर्म शशमानाय १, ८५, १२
या वां कशा मधुमत्यश्विना १,२२,३
यावित्था श्लोकमादिवो १, ९२, १७
यासां तिस्रः पञ्चाशतो १, १३३, ४
या सुरथा रथीतमोभा १, २२, २
यास्ते प्रजा अमृतस्य १, ४३, ९
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण १, ८२, ५
युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया १, १६४, ९
युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय १,१५८,३
युक्ष्वा हि केशिना हरी १, १०, ३
युक्ष्वा हि वाजिनीव १, ९२, १५
युक्ष्वा ह्यरुषी रथे १, १४, १२
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं १, ६, १
युञ्जन्त्यस्य काम्या १, ६, २
युधा युधमुप घेदेषि १, ५३, ७
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना १, ८२,६
युयोप नाभिरुपरस्यायोः १,१०४,४
युयूषतः सवयसा तदिद् १, १४४, ३
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं १, ११७, १३
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा १,१३२,६
युव तासां दिव्यस्य प्रशासने १,११२,३
युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः १, ११७, १४
युवं दक्षं धृतव्रत १, १५, ६
युवं धेनुं शयवे नाधिताया १,११८,८
युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय १,११७,७
युवं नरा स्तुवते पज्रियाय १,११६,७
युवं पय उस्रियायामधत्तं १, १८०, ३
युवं पेदवे पुरुवारमश्विना १,११९,१०
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं १, ११९, ४
युवमत्यस्याव नक्षथो ९, १८०, २
युवमत्रयेऽवनीताय तप्तम् १,११८,७
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु १, १८२, ५
युवमेतानि दिवि रोचना १, ९३, ५
युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो १,११९,६
युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया १, ११९, ७
युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे १, १५२, १
युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं १,११७,८
युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूत १, ११८,९
युवं ह धर्मं मधुमन्तमत्रये १,१८०,४
युवं ह गर्भं जगतीषु १, १५७, ५
युवं ह स्थो भिषजा १, १५७, ६
युवं ह्यास्तं महो रन् १, १२०, ७
युवाकु हि शचीनां १, १७, ४
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिः १, १८३, ५
युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु १,१८०,८
युवाना पितरा पुनः १, २०, ४
युवानो रुद्रा अजरा १, ६४, ३
युवां पूषेवाश्विना पुरंधिः १,१८१,९
युवाभ्यां देवी धिषणा मदाय १, १०९, ४
युवाभिन्द्राग्नी वसुनो विभागे १, १०९, ५
युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत १, १५१, ८
युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो १, १३९, ३
युवो रजांसि सुयमासो अश्वा १, १८०, १
युवोरश्विना वपुषे युवायुजं १,११९,५
युवोरुषा अनुश्रियं १, ४६, १४
युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो १, ११२, २
यूष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित १,३९,८
यूपव्रस्का उत ये यूपवाहा १,१६२,६
यूयं तत् सत्यशवसः १, ८६, ९
यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना १,१६६,६
ये अर्वाञ्चस्तां उ पराच आहुः १, १६४, १९
ये अंस्या ये अङ्ग्याः १, १९१, ७
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये १, ४८, १४
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन् १, १७९, २
ये ते पन्थाः सवितः १, ३५, ११
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र १,१७७,२
ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः १, १९०, ५
ये देवासो दिव्येकादश स्थ १,१३९,११
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम १,१६६,१४
येन मानासश्चितयन्त उस्रा १,१७१,५
ये नाकस्याधि रोचने १, १९, ६
ये पायवो मामतेयं ते १, १४७, ३

येना पावक चक्षसा १, ५०, ६
ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः १, ३७, २
ये महो रजसो विदुः १, १९, ३
ये यजत्रा य ईड्या १, १४, ८
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं
१, १६२, १२
ये शुभ्रा घोरवर्पसः १, १९, ५
येषामज्मेषु पृथिवी १, ३७, ८
यो अग्नि देववीतये १, १२, ९
यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्
१, ९३, ८
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा १, ७७, २
यो अर्यो मर्तभोजनं १, ८१, ६
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी
१, १०१, ४
योगे योगे तवस्तरं १, ३०, ७
यो नः पूषन्नघो वृको १, ४२, २
योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि १, १०४, १
यो नो अग्ने अररिवाँ १, १४७, ४
यो नो अग्नेऽभिदासति १, ७९, ११
यो मित्राय वरुणायाविधज्जनो
१, १३६, ५
यो रायोवनिर्महान् १, ४, १०
यो रेवान् यो अमीवहा १, १८, २
यो वाघते ददाति सूनरं १, ४०, ४
यो वामश्विना मनसो जवीयान्
१, ११७, २
यो वां यज्ञैः शशमानो १, १५१, ७
यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि
१, ९४, ७
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः
१, १०१, ५
यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना १, १०१, २
रथाय नावमुत नो गृहाय १, १४०, १२
रथो न यातः शिक्वभिः १, १४१, ८
रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ १, १७४, ७
रयिर्न चित्रः सूरो न संदृक् १, ६६, १
रयिर्न यः पितृवित्तो १, ७३, १
रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः १, ११६, १९
राजन्तमध्वराणां १, १, ८
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि १, ९१, ३
रायस्पूर्धिस्वधावः १, ३६, १२
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां १, ९६, ६
रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो
१, १०१, ७
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागा १, ११३, २
रेवतीर्नः सधमाद १, ३०, १३
रेवद् वयो दधाथे १, १५१, ९
रोदसी आ वदता गणश्रियो १, ६४, ९
रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामी
१, १००, १६
वच्यन्ते वां ककुहासो १, ४६, ३
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ १, ३३, ४
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण १, १६५, ८
वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि १, ९४, ९
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या १, १२९, ७
वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा १, ७०, १
वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो १, ६७, १
वनोति हि सुन्वन् क्षयं १, १३३, ७
वन्दस्व मारुतं गणं १, ३८, १५
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा १, १६७, १०
वयं चिद्धि वां जरितारः १, १८०, ७
वयं जयेम त्वया युजा वृतम् १, १०२, ४
वयं शूरेभिरस्तृभिः १, ८, ४
वयश्चित्ते पतत्रिणो १, ४९, ३
वयं हि ते अमन्मह्य १, ३०, २१
वया इदग्ने अग्नयस्ते १, ५९, १
वरुणः प्राविता भुवन् १, २३, ६
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विं १, ६५, ४
वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो १, ७०, ७
वव्रासो न ये स्वजाः १, १६८, २
वसिष्वा हि मियेध्य १, २६, १
वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता १, १५८, १
वसोरिन्द्रं वसुपतिं १, ९, ९
वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्
१, १७४, ५
वह्निं यशसं विदथस्य १, ६०, १
वाय उक्थेभिर्जरन्ते १, २, २
वाजेभिर्नोवाजसातावविड्ढ्यृ
१, ११०, ९
वायवा याहि दर्शते १, २, १
वायविन्द्रश्च चेतथः १, २, ५
वायविन्द्रश्च सुन्वतः १, २, ६
वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा
१, १३४, ३
वायो तव प्रपृञ्चती १, २, ३
वावसाना विवस्वति १, ४६, १३
वाश्रेव विद्युन्मिमाति १, ३८, ८
वि घं श्वाकँ ऋतजात १, १८९, ६
वि जानाञ्छ्यावा १, ३५, ५
वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो १, ५१, ८
वि ते वज्रासो अस्थिरन् १, ८०, ८
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो
१, १३१, ३
वि त्वा नरः पुरुत्रा १, ७०, १०
विदन्तीमत्र नरो १, ६७, ४
वि दुर्गा वि द्विष पुरो १, ४१, ३
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः १, १३१, ४
विद्मा हि त्वा वृषन्तमं १, १०, १०
वि द्यामेषि रजस्पृथु १, ५०, ७
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां १, ७२, ७
विद्वांसाविद् दुरः पृच्छेद् १, १२०, २
वि नः पथः सुविताय १, ९०, ४
वि पृक्षो अग्ने मघवानो १, ७३, ५
वि पृच्छामि पाक्या न देवान्
१, १२०, ४
विभक्तारं हवामहे १, २२, ७
विभक्तासि चित्रभानो १, २७, ६
वि मृळीकाय ते मनो १, २५, ३
वि यत्तिरो धरुणमच्युतं १, ५६, ५
वि यदस्याद् यजतो १, १४१, ७
वि या सृजति समनं व्यर्थिनः १, ४८, ६
वि ये चृतन्त्यृता १, ६७, ८
वि ये भ्राजन्ते सुमखासः १, ८५, ४
वि यो वीरुत्सु १, ६७, ९
विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीः
१, १८८, ५
वि राय और्णोद् १, ६८, १०
वि वातजूतो अतसेषु १, ५८, ४
विशां गोपा अस्य चरन्ति १, ९४, ५
विशो यदह्वे नृभिः १, ६९, ६
वि श्रयन्तामृतावृधः १, १४२, ६
वि श्रयन्तामृतावृधो १, १३, ६

विश्वमस्या नानाम चक्षसे १, ४८, ८
विश्वमित्सवनं सुतं १, १६, ८
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः १, ६४, १०
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं ते १,४८,१०
विश्वानि देवी भुवनामिचक्ष्या १, ९२, ९
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो १, १६६, ९
विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतये १, ४८, १२
विश्वान् देवान् हवामहे १, २३, १०
विश्वासां त्वा निशां पतिं हवामहे १, १२७, ८
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अ १, १०२, ११
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो १,१००,१९
विश्वे देवासो अप्तुरः १, ३, ८
विश्वे देवासो अस्रिधः १, ३, ९
विश्वेभिरग्ने अग्निभिः १, २६, १०
विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्ने १,१४,१०
विश्वेषु हि त्वा सवनेषु १, १३१, २
विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे १, १२८, ६
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो १, ११०, ४
विष्णोः कर्माणि पश्यत १, २२, १९
विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं १, १५४, १
विष्पर्धसो नरां न शंसैः १,१७३,१०
वि सुपर्णो अन्तरिक्षाणि १, ३५, ७
वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छ १,१०९,१
वीळु चिदारुजत्नुभिः १, ६, ५
वीळु चिद् दृळ्हा पितरो १, ७१, २
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा १,११६,२
वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव १,१३९,६
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं १, ३२, ३
वृषा यूथेव वंसगः १, ७, ८
वृष्णे शर्धाय सुमखाय १, ६४, १
वेद मासो धृतव्रतो १, २५, ८
वेद वातस्य वर्तनिं १, २५, ९
वेदा यो वीनां पदं १, २५, ७
वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते १,१४०,१
वेधा अदृप्तो अग्निः १, ६९, ३
वैश्वानर तव तत् सत्यम् १, ९८, ३
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम १, ९८, १
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टि १, ५९, ७
व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौ १, ११३, १४
व्यनिनस्य धनिनः १, १५०, २
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिः १, ४९, ४
व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ १, ९२, ११
शकमयंधूम मारादपश्यं १,१६४,४३
शकेम त्वा समिधं साधया धिय १, ९४, ३
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च १, ४२, ९
शचीभिर्नः शचीवसू १, १३९, ५
शचीव इन्द्र पुरुकृत् द्युमत्तम १,५३,३
शतं ते राजन् सहस्रं १, २४, ९
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् १, १६६, ८
शतमिन्नु शरदो १, ८९, ९
शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानम् १, ११६, १६
शतं मेषान् वृक्ये मामहानं १, ११७, १७
शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कान् १, १२६, २
शतं वा यः शुचीनां १, ३०, २
शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा १, ११६, २२
शरासः कुशरासो १, १९१, ३
शशमानस्य वा नरः १, ८६, ८
शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्य १, ११३, १३
शश्वदिन्द्र पोप्रथुद्भिर्जिगाय १, ३०, १६
शं नः करत्यर्वते १, ४३, ६
शं नो मित्रः शं वरुणः १, ९०, ९
शिप्रिन् वाजानां पते १, २९, २
शुकेषु ते हरिमाणं १, ५०, १२
शक्रः शुशुक्वाँ १, ६९, १
शुचिः पावको अद्भुतो १, १४२, ३
शुचिर्देवेष्वर्पिता १, १४२, ९
शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा १, ११७, १८
शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतः १,२४,१३
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र १,१०३,८
शुष्मिन्तमो हि ते मदो १, १७५, ५
शूरा इवेद् युयुधयो १, ८५, ८
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवः १, ४४, १४
शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् १,१७४,४
श्रियसे कं भानुभिः १, ८७, ६
श्रिये कं वो अधि १, ८८, ३
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा १, १८४, ३
श्रीणन्नुप स्थाद् १, ६८, १
श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं १ १२०,६
श्रुतं मे मित्रावरुण हवेमोत १,१२२,६
श्रुधि श्रुत्कर्ण वन्हिभिः १, ४४, १३
श्रुष्टिवानो हि दाशुषे १, ४५, २
श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं १, ४४, ४
श्रोणामेक उदकं गामवाजति १, १६१, १०
श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् १, ६५, ९
स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते १,५५,४
स इधानो वसुष्कविः १, ७९, ५
स इन्महानि समिथानि १, ५५, ५
स ईं मृगो अप्यो वनर्गु १, १४५, ५
सखाय आ निषीदत १, २२, ८
सख्ये त इन्द्र वाजिनो १, ११, २
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिः १, १००, १०
स घा तं वृषणं रथं १, ८२, ४
स घा नो योग आभुवत् १, ५, ३
स घा नः सूनुः शवसा १, २७, २
स घा राजा सत्पतिः १, ५४, ७
स घा वीरो न रिष्यति १, १८, ४
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो १, १५०, ३
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः १,१०३,३

स जामिभियत् समजातिमीह्ळे १, १००, ११
स जायमानः परमे १, १४३, २
सजोषा धीराः पदैरनुग्मन् १, ६५, २
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये १,५६,३
सत्तो होता मनुष्वदा १, १०५, १४
सत्यं त्वेषा अमवन्तो १, ३८, ७
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्व १, १०४, ६
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वान् १, ९४, १६
स त्वामददद् वृषा मदः १, ८०, २
सदसस्पतिमद्भुतं १, १८, ६
सदा कवी सुमतिमा चके वां १, ११७, २३
सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो १,१२३,८
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च १, १०३, २
स न पितेव सूनवेऽग्ने १, १, ९
सना ता त इन्द्र नव्या आगुः १, १७४, ८
सनात् दिवं परि भूमा विरूपे १,६२,८
सनात् सनीळा अवनीरवाता १,६२,१०
सनादेव तव रायो गभस्तौ १,६२,१२
सनायते गोतम इन्द्र १, ६२, १३
सनायुवो नमसा नव्यो १, ६२, ११
सनेमि चक्रमजरं वि वावृतं १, १६४, १४
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः १, ६२, ९
स नो दूराच्चासाच्च १, २७, ३
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः १, १३०, १०
स नो नृणां नृतमो रिशादा १,७७,४
स नो नेदिष्ठं ददृशान आ १,१२७,११
स नो महाँ अनिमानो १, २७, ११
स नो विश्वाहा सुक्रतुः १, २५, १२
स नो वृषन्नमुं चरुं १, ७, ६
स नः पावक दीदिवो १, १२, १०
स नः सिन्धुमिव नावया १, ९७, ८
स नः स्तवान आ भर १, १२, ११
स पर्वतो धरुणेष्वच्युतः १, ५२, २
स पूर्वया निविदा कव्यतायो १,९६,२
सप्त त्वा हरितो रथे १, ५०, ८
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम् १, १६४, २
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतः १, १६४, ३६
स प्रत्नथा सहसा जायमानः १,९६,१
स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः १,१२२,१०
समत्सु त्वा शूर सतामुराणं १,१७३,७
स मन्युमीः समदनस्य कर्ता १,१००,६
स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टि १,९६,४
समानयोजनो हि वां १, ३०, १८
समानं वत्समभि संचरन्ती १,१४६,३
समानमेतदुदकम् १, १६४, ५१
स मानुषे वृजने शंतमो १, १२८, ७
समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना १,३४,३
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तः १,११३,३
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना १, १०८, ४
समिद्धो अग्न आ वह १, १४२, १
समिद्धो अद्य राजसि १, १८८, १
समिन्द्र गर्दभं मृण १, २९, ५
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि १,५३,५
समोहे वा य आशत १, ८, ६
स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोकाः १, १००, १
स यो वृषो नरां न रोदस्योः १,१४९,२
स रत्नं मर्त्यो वसु १, ४१, ६
स रेवाँ इव विश्पतिः १, २७, १२
सर्वं परिक्रोशं जहि १, २९, ७
स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः १, १००, १२
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् १, १६०, ३
स वाजं विश्वचर्षणिः १, २७, ९
सवितारमुषसमश्विना १, ४४, ८
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे १,५४,११
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु १,१२९,२
स संस्तिरो विष्टिरः सं १, १४०, ७
ससन्तु त्या अरातयो १, २९, ४
स सव्येन यमति व्राधतश्चित् १, १००, ९
स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमे १,१२८,४
स सुष्टुभा स स्तुभा १, ६२, ४
स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा १,१००,५
सहस्रं त इन्द्रोतयो नः १, १६७, १
सहस्रं साकमर्चत १, ८०, ९
सह वामेन न उषो १, ४८, १
सहस्राक्षो विचर्षणिः १, ७९, १२
स हि क्रतुः स मर्यः १, ७७, २
स हि क्षपावाँ अग्नी १, ७०, ५
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि १,५२,३
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता १, १२७, ३
स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा १, ५५, ६
स हि शर्धो न मारुतं १, १२७, ६
स हि स्वसृत् पृषदश्वो १, ८७, ४
संगच्छमाने युवती समन्ते १, १८५, ५
सं गोमदिन्द्र वाजवत् १, ९, ७
सं चोदय चित्रमर्वाग् १, ९, ५
संजानाना उपसीदन्न भिज्ञु १,७२,५
सं ते पयांसि समु १, ९१, १८
सं नु वोचावहै पुनः १, २५, १७
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा १, ४८, १६
सं पूषन्नध्वनस्तिर १, ४२, १
सं माग्ने वर्चसा सृज १, २३, २४
सं मा तपन्त्यभितः १, १०५, ८
संमील्य यद् भुवना पर्यसर्पत १, १६१, १२
सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर १,१३२,५
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत १, ११९, ३
सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति १,१९०,७
सं यन्मदाय शुष्मिणः १, ३०, ३
सं वो मदासो अग्मत १, २०, ५
सं सीदस्य महाँ असि १, ३६, ९
साकं जानां सप्तथमाहुरेकजं १, १६४, १५

सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती १,१६८,७
साधुर्न गृध्नुरस्तेव १, ७०, ११
सिन्धुर्नक्षोदः प्रनीचीरैनो १,६६,१०
सिहा इव नानदनि प्रचेतसः १,६४,८
सुक्षेत्रिया सुगातुया १, ९७, २
सुगः पन्था अनृक्षर १, ४१, ४
सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं १,१६२,२२
सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो १,१२५,२
सुतपाव्ने सुता इमे १, ५, ५
सुते सुते न्योकसे १, ९, १०
सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे १,४७,६
सुपर्णा एत आसते १, १०५, ११
सुपेशसं सुखं रथं १, ४३, २
सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था १, १९०, ६
सुभगः स प्रयज्यवो १, ८६, ७
सुरुक्मे हि सुपेशसा १, १८८, ६
सुरूपकृत्नमूतये १, ४, १
सुविवृतं सुनिरजं १, १०, ७
सुवृद् रथो वर्तते यन्नभि १,१८३,२
सुशंसो बोधि गृणते १, ४४, ६
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छता १, १६१, १३
सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे १,११७,५
सुषुमा यातमद्रिभिः १, १३७, १
सुसमिद्धो न आ वह १, १३, १
सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषा १, १२३, ११
सुसंदृशं त्वा वय १, ८२, ३
सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना १, ११७, ११
सूयवसाद् भगवती हि भूया १, १६४, ४०
सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा १, १३०, ९
सूर्ये विषमा सजामि १, १९१, १०
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां १,११५,२
सेनेव सृष्टामं दधाति १, ६६, ७
सेमं नः काममा पृण १, १६, ९
सेमं नः स्तोम मा गहि १, १६, ५
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद् १, १००, ४
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः १,५५,२
सोम गीर्भिष्ट्वा वयं १, ९१, ११
सोम यास्ते मयोभुवः १, ९१, ९
सोम रारन्धि नो हृदि १, ९१, १३
सोमानं स्वरणं कृणुहि १, १८, १
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो १, १६८, ३
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशु १, ९१, २०
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः १,६५,१०
स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषाय १, १२१, २
स्तविष्यामि त्वामहं १, ४४, ५
स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तु १,१७१,३
स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिः १, १२२, ७
स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि १, १३५, १
स्तृणानासो यतस्रुचो १, १४२, ५
स्तृणीत बर्हिरानुषक् १, १३, ५
स्तोत्रं राधानां पते १, ३०, ५
स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस १,१६४,१६
स्थिरं हि जानमेषां १, ३७, ९
स्थिरा वः सन्तु नेमयो १, ३८, १२
स्थिरा वः सन्त्वायुधः १, ३९, २
स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः १, ११३, १७
स्योनो पृथिवि भव १, २२, १५
स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति १, ७१, ६
स्वग्नयो हि वार्यं १, २६, ८
स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्म १,१३२,२
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै १, १२४, ८
स्वस्ति न इन्द्रो १, ८९, ६
स्वादो पितो मधो पितो १, १८७, २
स्वादोरित्था विषूवतो १, ८४, १०
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वीः १,७२,८
स्वाहा कृतान्या ग १, १४२, ११
स्वाहा यज्ञं कृणोतन १, १३, १२
स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात् १, १२१, ७
हत वृत्रं सुदानवः १, २३, ९
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीत् १, १६१, ५
हविषा जारो अपां १, ४६, ४
हस्काराद् विद्युतस्परि १, २३, ११
हस्ते दधानो नृम्णा १, ६७, ३
हिरण्यकेशो रजसो विसारे १,७९,१
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां १, १६४, २७
हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां १,११६,८
हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णः १, १२२, १४
हिरण्यपाणिमूतये १, २२, ५
हिरण्यपाणिः सविता १, ३५, ९
हिरण्ययेभि पविभिः पयोवृधः १, ६४, ११
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा १, १६३, ९
हिरण्य हस्तमश्विना रराणा १, ११७, २४
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः १,३५,१०
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो १, १६२, ५
होता निषत्तो मनोरपत्ये १, ६८,७
होता यक्षद् वनिनो वन्त १,१३९,१०
होतारं विश्ववेदसं १, ४४, ७
होतारं सप्त जुह्वो यजिष्ठं १,५८,७
ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो १,५२,७
ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये १, ३५, १

१ ऋग्वेद सातवलेकर